आनन्दाश्रमसंस्कृतग्रन्थावलिः

ग्रन्थाङ्कः ८५

# ज्योतिर्निबन्धः ।

## शूरमहाठश्रीशिवराजविनिर्मितः ।

एतत्पुस्तकं वैद्योपनामकसदाशिवसूनुरङ्गनाथशास्त्रिभिः संशोधितम् ।

तच्च

बी. ए. इत्युपपदधारिणा

विनायक गणेश आपटे

इत्यनेन

पुण्याख्यपत्तने

आनन्दाश्रममुद्रणालये

आयसाक्षरैर्मुद्रयित्वा

प्रकाशितम् ।

शालिवाहनशकाब्दाः १८४१

खिस्ताब्दाः १९१९



मूल्यम् एकाणकन्यूनं रूपकचतुष्टयम् ।( ३ ॥ १५ )

## आदर्शपुस्तकोल्लेखपत्रिका ।

ज्योतिर्निबन्धस्यास्य शोधनार्थमादर्शपुस्तकानि यैः परहितेच्छुभिः प्रहितानि तन्नामानि पुस्तकसंज्ञाश्च प्रदर्श्यन्ते—

( क. ) इति संज्ञितं पुस्तकं—खेडग्रामनिवासि कै० रा. रा. नागुभाऊ वकील इत्येतेषाम् । अस्य लेखनकालः श० १७०१.

( ख. ) इति संज्ञितं पुस्तकं—पुण्यपत्तनस्थ-करंबेळकरोपाह्व रा. रा. गोपाळ महादेव इत्येतेषाम् ।

( ग. ) इति संज्ञितं पुस्तकं—पुण्यपत्तनस्थ वे० शा० सं० रा. रा. राघवाचार्य-रामानुज इत्येतेषाम् । त्रुटितमेतत् ।

( घ. ) इति संज्ञितं पुस्तकं—पुण्यपत्तननिवासिनां वे. शा. सं. रा. रा. विनायक-शास्त्री शेवगांवकर इत्येतेषाम् । काश्यां शिला-मुद्रितमेतदस्य मुद्रणकालः संवत् १८३४.

समाप्तेयमादर्शपुस्तकोल्लेखपत्रिका ।

# श्रीशिवराजविनिर्मितज्योतिर्निबन्धस्य विषयानुक्रमः।




| विषयाः | पृष्ठाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|---|
| शास्त्रोपनयः .... .... | १ | प्रकारान्तरम्.... .... .... | ३३ |
| ज्योतिःशास्त्रप्रशंसा .... .... | ,, | आयव्ययानयनम् .... .... | ,, |
| दैवज्ञप्रशंसा .... .... | ३ | मासप्रकरणम् ... ... | ,, |
| रविचारः .... .... .... | ४ | तिथिप्रकरणम् ... ... | ३४ |
| चन्द्रचारः .... .... .... | ६ | वारप्रकरणम् .... ... | ३६ |
| कुजचारः .... .... .... | ८ | योगप्रकरणम् .... ... | ३८ |
| बुधचारः .... .... .... | ९ | करणप्रकरणम् .... ... | ,, |
| गुरुचारः .... .... .... | १० | नक्षत्रप्रकरणम् ... ... | ४० |
| शुक्रचारः ... ... ... | १२ | शुद्धनक्षत्रविचारः .... .... | ४३ |
| शनिचारः ... ... ... | १४ | वेधविचारः .... .... .... | ४४ |
| राहुचारः ... ... ... | १६ | पीडितनक्षत्रापवादः.... .... | ४५ |
| केतुचारः ... ... ... | १७ | मुहूर्तप्रकरणम् .... .... | ४६ |
| अगस्त्यचारः .... .... | २० | उपग्रहप्रकरणम् .... .... | ,, |
| सप्तर्षिचारः ... .... .... | ,, | उपग्रहदोषापवादः .... .... | ४८ |
| ग्रहयुद्ध ... ... | २१ | चन्द्रताराबलप्रकरणम् .... | ४९ |
| चन्द्रग्रहसमागमः .... ... | २२ | दुष्टतारापवादः ... ... | ५० |
| ग्रहशृङ्गाटकम् .... .... | २३ | गोचरप्रकरणम् .... .... | ५१ |
| मानप्रकरणम् .... .... | २४ | पृथक्फलानि .... .... | ५३ |
| संवत्सरप्रकरणम् .... .... | २५ | गोचरापवादः .... .... | ५४ |
| प्रभवादिसंवत्सरफलानि .... | २६ | ग्रहदानानि .... .... | ५५ |
| राजादीनां निर्णयः.... .... | २९ | अनिष्टचन्द्रापवादः .... .... | ५६ |
| राजफलम् .... .... .... | ३० | सौम्यक्रूरादिविचारः .... | ५७ |
| मन्त्रिफलम्.... .... .... | ,, | सूर्ये कथं क्रूरत्वादीति प्रश्नोत्तरम् | ,, |
| अग्रधान्येशफलम् .... .... | ,, | लग्नप्रकरणम्.... ... .... | ,, |
| मेघेशफलम्.... .... .... | ३१ | षड्वर्गप्रकरणम् .... .... | ६० |
| रसाधिपफलम् .... .... | ,, | अनिष्टवर्गापवादः ... .... | ,, |
| पश्चिमधान्येशफलम् .... | ३२ | तिथ्यादीनां बलविचारः .... | ६१ |
| विश्वानयनम्.... .... .... | ,, | लग्नबलप्रशंसा ... .... | ६२ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| चन्द्रबलप्रशंसा | ६३ |
| चन्द्रलग्नयोर्वलनिर्णयः | ,, |
| लग्नस्थार्कप्राशस्त्यम् | ६५ |
| लग्नस्थचन्द्रनिषेधप्रश्नोत्तरम् | ६६ |
| तात्कालिकविचारः | ,, |
| सूक्ष्मर्क्षानयनम् | ,, |
| तिथ्यादिगुणप्रशंसा | ६७ |
| त्याज्यप्रकरणम् | ,, |
| दोषफलप्रकरणम् | ,, |
| अपवादप्रशंसा | ६८ |
| महादोषनिरूपणम् | ६९ |
| एषां लक्षणानि | ,, |
| गण्डान्तापवादः | ७१ |
| कर्तरीविचारः | ,, |
| कर्तर्यपवादः | ,, |
| षडष्टरिष्फचन्द्रदोषः | ७२ |
| षडष्टरिष्फचन्द्रापवादः | ,, |
| संग्रहदोषः | ,, |
| संग्रहापवादः | ,, |
| अष्टमलग्नदोषः | ,, |
| अष्टमलग्नापवादः | ७३ |
| विषनाडीदोषः | ७४ |
| विषनाड्यपवादः | ,, |
| दुर्मुहूर्तदोषः | ,, |
| वारदोषः | ७५ |
| कुलिकाद्यपवादः | ,, |
| एकार्गलादिदोषः | ,, |
| कुनवांशः | ७६ |
| नवांशापवादः | ,, |
| पातदोषनिर्णयः | ,, |
| भद्रापवादः | ७६ |
| कालहोरापवादः | ७७ |
| पञ्चकदोषः | ,, |
| पञ्चकापवादः | ७८ |
| संधिविचारः | ,, |
| उक्तानुक्तदोषापवादः | ७९ |
| दोषापवादभङ्गः | ८० |
| मौढ्यादिविचारः | ,, |
| अस्तापवादः | ८१ |
| अस्ते तीर्थयात्रानिषेधः | ,, |
| अस्यापवादः | ८२ |
| चन्द्रास्तदोषः | ,, |
| मलमासनिर्णयः | ,, |
| मलमासे कार्याकार्याणि | ८३ |
| क्षयमासनिर्णयः | ८४ |
| ग्रहणनिर्णयः | ,, |
| ग्रहणविधिः | ८५ |
| पर्वेशसाधनम् | ८६ |
| पर्वेशादिफलानि | ,, |
| निजराशौ ग्रहणफलम् | ९० |
| ग्रहणे दानम् | ९१ |
| ग्रहणमाहात्म्यम् | ,, |
| ग्रहणे वर्ज्यम् | ,, |
| सिंहस्थगुरुनिर्णयः | ९२ |
| संकटे प्रवृत्तिः | ९३ |
| संक्रान्तिनिर्णयः | ,, |
| संक्रान्तिवाहनादिविचारः | ९५ |
| संक्रान्तेः पुण्यकालः | ,, |
| पुण्यकालविशेषः | ९७ |
| पुण्यकालानयनम् | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|---|
| संक्रान्तिस्नानम् .... .... | ९७ | कर्णवेधः .... .... .... | ११४ |
| संक्रान्तिफलम् .... .... | ९८ | निष्क्रमणम् .... .... ... | ११५ |
| संक्रान्तिदानानि .... .... | ,, | भूम्युपवेशनम् .... .... | ,, |
| जन्मराशिनिर्णयः .... ... | ९९ | जीविकापरीक्षणम् .... .... | ११६ |
| नामराशिनिर्णयः ... .... | ,, | अन्नप्राशनम्.... .... .... | ,, |
| जन्ममासादीनां निर्णयः .... | १०० | चूडाकरणम् .... .... | ११७ |
| व्यवस्थाविकल्पः .... .... | ,, | चौलनिषेधः .. .... | ११८ |
| जन्ममासप्रवृत्तिः .... .... | ,, | क्षौरनिषेधः ... .... | ११९ |
| जन्मनक्षत्रविचारः ... ... | ,, | अक्षरारम्भविधिः .... ... | १२० |
| सिद्धान्तमीमांसाध्यायः .... | १०१ | अङ्कुरार्पणम् .... .... | ,, |
| अस्य निर्णयः ... ... | १०२ | उपनयनम् ... .... .... | १२१ |
| आधुनिकमतम् ... ... | ,, | उपाकरणम् .... .... .... | १२६ |
| संदेहे विचारः ... ... | १०३ | केशान्तकर्म .... .... | १२८ |
| जातकलग्नयोः प्राधान्यविचारः ... .... ... | १०४ | विद्यारम्भः .... ... .... | ,, |
|  |  | अनध्यायाः .... ... .... | १२९ |
| शास्त्रार्थशिष्टाचारप्रामाण्यविचारः .... .... .... | १०५ | छुरिकाबन्धनम् ... ... | १३० |
|  |  | विवाहप्रकरणम् ... .... | १३१ |
| प्रथमार्तवप्रकरणम् .... .... | १०६ | कुलविचारः .... .... | ,, |
| तत्र पृथक्फलानि .... ... | ,, | गोत्रप्रवरनिर्णयः .... ... | १३२ |
| रजस्वलाशान्तिः .... .... | १०८ | वरगुणाः ... ... .... | १३५ |
| गर्भाधानम् ... .... | १०९ | कन्यागुणाः ... .... | १३६ |
| पुंसवनम् ... ... .... | ,, | सामुद्रिकलक्षणानि ... .... | ,, |
| सीमन्तोन्नयनम् .... ... | ११० | स्वस्थारिष्टानि .... ... | १३८ |
| जातकर्म .... .... .. | १११ | दैवज्ञं प्रति पृच्छा .... ... | १३९ |
| नामकर्म ... .... .... | ,, | विवाहप्रश्नः ... ... .... | ,, |
| खट्वारोहविधिः .... .... | ११२ | शुभाशुभज्ञानम् ... .... | १४० |
| दुग्धपानविधिः ... .... | ११३ | राशिकूटविचारः .... ... | ,, |
| चरयोगिनी .... .... .... | ,, | घटितभेदाः .... .... | ,, |
| राहुलक्षणम् .... .... .... | ,, | वर्णविचारः .... .... | १४१ |
| रुद्रलक्षणम् .... .... .... | ,, | वश्यम् ... .... .... | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|---|
| ताराः .... .... .... | १४२ | गान्धर्वविवाहशुद्धिः .... .... | १५७ |
| योनिः .... .... .... | ,, | विवाहाङ्गादीनां शुद्धिः .... | ,, |
| ग्रहसख्यम् .... .... .... | ,, | विवाहभेदाः .... .... ... | १५८ |
| गणशुद्धिः .... .... .... | १४३ | दातृनिर्णयः .... .... .... | १५९ |
| भमेलः .... .... .... | ,, | विषकन्याज्ञानम् .... .... | ,, |
| नाडीविचारः .... .... | १४५ | मूलजादीनां फलम् .... .... | ,, |
| नाड्यपवादः .... ... | १४६ | वैधव्यादियोगे विवाहः .... | १६० |
| पुञ्जी .... .... ... | ,, | समानक्रियाविचारः .... ... | १६१ |
| वर्गः.... .... .... .... | १४७ | यमलविशेषः .... .... | १६२ |
| दूरविचारः .... .... .... | ,, | प्रत्युद्वाहनिषेधः .... .... | ,, |
| धिष्ण्यदूरम् .... .... ... | ,, | प्रतिकूलविचारः .... .... | ,, |
| दुष्टफलपरिहारः ... .... | ,, | तत्र सूतकादौ शान्तिः .... | १६३ |
| गुणविचारः .... .... ... | ,, | नववधूप्रवेशः .... .... | १६४ |
| विवाहनिश्चयः .... .... | १४८ | अग्न्याधानम् .... .... | ,, |
| कन्यावरणम् .... .... | १४९ | गृहारम्भप्रकरणम् .... .... | १६५ |
| विवाहकालविचारः .... .... | ,, | दिक्साधनम्.... .... | १६६ |
| गुरुशुक्रास्तापवादः .... .... | १५० | शङ्कुन्यासः .... .... .... | १६७ |
| रविगुर्वोर्बलविचारः .... .... | ,, | दुर्निमित्तानि.... .... .... | ,, |
| बृहस्पतिशान्तिः .... ... | १५१ | स्तम्भः .... .... .... | १६८ |
| आदित्यशान्तिः .... ... | ,, | आयः .... .... .... | ,, |
| मासनिर्णयः ... .... .... | १५२ | निषिद्धग्राह्यकाष्ठानि .... .... | १७१ |
| तिथ्यादिशुद्धिः .... .... | ,, | द्वारनिर्णयः .... .... | १७२ |
| जामित्रशुद्धिः .... ... | १५३ | गृहनियमः .... .... .... | १७३ |
| अंशशुद्धिः .... .... .... | ,, | ग्रामदिङ्नियमः .... .... | ,, |
| लग्नशुद्धिः .... .... .... | ,, | वास्तुनिवेशमुहूर्तविचारः .... | १७४ |
| लग्नगोचरम् .... ... | १५४ | गृहायुर्दाययोगाः .. .... | १७५ |
| भावशुद्धिः .... .... ... | १५५ | गृहप्रवेशः .... .. .... | १७६ |
| गोरजःशुद्धिः ... .... | ,, | वास्तुपूजाविधिः .... .... | १७९ |
| घटीलक्षणं प्रतिष्ठा च .... | १५६ | सूतिकागृहनिर्माणविधिः .... | १८० |
| वेदिकालक्षणम् .... .... | १५७ | शय्यालक्षणम् .... .... | १८१ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| राज्याभिषेकप्रकरणम् | १८२ |
| यात्राप्रकरणम् | १८३ |
| यात्रानिवृत्तिकालः | १८४ |
| यात्रायां पञ्चाङ्गशुद्धिः | ,, |
| पन्था राहुः | १८७ |
| यात्रायां दोहदप्रकरणम् | ,, |
| लग्नबलविचारः | १८८ |
| पृथग्भावफलं–तत्र रविफलम् | १९१ |
| चन्द्रफलम् | १९२ |
| भौमफलम् | ,, |
| बुधफलम् | १९३ |
| गुरुफलम् | ,, |
| शुक्रफलम् | ,, |
| शनिफलम् | ,, |
| राहुकेतुफलम् | ,, |
| यात्रायां समुदायेन पृथक्फलानि | १९४ |
| यात्रायां लग्नांशफलम् | १९५ |
| यात्रायां प्रतिशुक्रविचारः | १९६ |
| प्रतिशुक्रापवादः | ,, |
| शुक्रस्तोत्रम् | १९७ |
| प्रतिशुक्रपूजाविधानम् | ,, |
| प्रतिशुक्रदानम् | १९८ |
| योगप्रशंसा | ,, |
| यात्रायां योगाः | १९९ |
| राजयोगभङ्गः | २०३ |
| यात्रायामनिष्टयोगाः | २०४ |
| यात्रायां मनोविशुद्धिः | ,, |
| आवश्यके यात्रा | २०५ |
| यात्रोपयोगि मिश्रकम् | ,, |
| प्रयाणे कर्तव्यानि | [illegible] |
| नियमाः | २०८ |
| यात्रायां प्रस्थानविधिः | २०९ |
| यात्रायां शकुनाः | २११ |
| अपशकुनाः | २१४ |
| अपशकुनविधानम् | २१५ |
| क्षुतम् | ,, |
| अश्वेङ्गितम् | २१६ |
| गजेङ्गितम् | ,, |
| स्वस्थानकृत्यम् | ,, |
| नानाविधमुहूर्तप्रकरणम् | ,, |
| तत्र सुरप्रतिष्ठा | २१७ |
| वस्त्रधारणम् | २१८ |
| पृथक्फलानि | २१९ |
| वस्त्रक्षालनम् | २२० |
| दग्धस्फुटितवस्त्रफलम् | ,, |
| वस्त्रारम्भणम् | २२१ |
| तूलिका | ,, |
| अलंकृतिः | ,, |
| धननिक्षेपः | २२२ |
| विपणिः | ,, |
| सेवा | ,, |
| व्यभिचारः | ,, |
| आयुष्पुष्टिकर्म | ,, |
| रससंग्रहादि | ,, |
| संन्यासः | ,, |
| ब्रह्मज्ञानोपदेशः | २२३ |
| दीक्षा | ,, |
| श्रुतिस्मृतिप्रारम्भः | ,, |
| नाट्यम् | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|---|
| ताराः .... .... .... | १४२ | गान्धर्वविवाहशुद्धिः .... .... | १५७ |
| योनिः .... .... .... | ,, | विवाहाङ्गादीनां शुद्धिः .... | ,, |
| ग्रहसख्यम् .... .... .... | ,, | विवाहभेदाः .... .... .... | १५८ |
| गणशुद्धिः .... .... .... | १४३ | दातृनिर्णयः .... .... .... | १५९ |
| भमेलः .... .... .... | ,, | विषकन्याज्ञानम् .... .... | ,, |
| नाडीविचारः .... .... | १४५ | मूलजादीनां फलम् .... .... | ,, |
| नाड्यपवादः .... .... | १४६ | वैधव्यादियोगे विवाहः .... | १६० |
| पुञ्जी .... .... .... | ,, | समानक्रियाविचारः .... .... | १६१ |
| वर्गः .... .... .... | १४७ | यमलविशेषः .... .... | १६२ |
| दूरविचारः .... .... .... | ,, | प्रत्युद्वाहनिषेधः .... .... | ,, |
| धिष्ण्यदूरम् .... .... .... | ,, | प्रतिकूलविचारः .... .... | ,, |
| दुष्टफलपरिहारः .... .... | ,, | तत्र सूतकादौ शान्तिः .... | १६३ |
| गुणविचारः .... .... .... | ,, | नववधूप्रवेशः .... .... | १६४ |
| विवाहनिश्चयः .... .... | १४८ | अग्न्याधानम् .... .... | ,, |
| कन्यावरणम् .... .... | १४९ | गृहारम्भप्रकरणम् .... .... | १६५ |
| विवाहकालविचारः .... .... | ,, | दिक्साधनम् .... .... | १६६ |
| गुरुशुक्रास्तापवादः .... .... | १५० | शङ्कुन्यासः .... .... | १६७ |
| रविगुर्वोर्बलविचारः .... .... | ,, | दुर्निमित्तानि.... .... | ,, |
| बृहस्पतिशान्तिः .... .... | १५१ | स्तम्भः .... .... .... | १६८ |
| आदित्यशान्तिः .... .... | ,, | आयः .... .... .... | ,, |
| मासनिर्णयः .... .... .... | १५२ | निषिद्धग्राह्यकाष्ठानि .... .... | १७१ |
| तिथ्यादिशुद्धिः .... .... | ,, | द्वारनिर्णयः .... .... .... | १७२ |
| जामित्रशुद्धिः .... .... | १५३ | गृहनियमः .... .... .... | १७३ |
| अंशशुद्धिः .... .... .... | ,, | ग्रामादिद्नियमः .... .... | ,, |
| लग्नशुद्धिः .... .... .... | ,, | वास्तुनिवेशमुहूर्तविचारः .... | १७४ |
| लग्नगोचरम् .... .... .... | १५४ | गृहायुर्दाययोगाः .... | १७५ |
| भावशुद्धिः .... .... .... | १५५ | गृहप्रवेशः .... .... | १७६ |
| गोरजःशुद्धिः .... .... | ,, | वास्तुपूजाविधिः .... .... | १७९ |
| घटीलक्षणं प्रतिष्ठा च .... | १५६ | सूतिकागृहनिर्माणविधिः .... | १८० |
| वेदिकालक्षणम् .... .... | १५७ | शय्यालक्षणम् .... .... | १८१ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|---|
| भूषणनिर्माणम् .... .... | २३९ | पल्लीशब्दफलम् .... .... | २५५ |
| मणिधारणम्.... .... .... | ,, | पल्लीसरटयोः शान्तिः .... | २५६ |
| शान्त्यध्यायः— | | काकमैथुनशान्तिः .... .... | २५७ |
| तत्र गण्डजातफलम् .... .... | ,, | कपोतशान्तिः .... .... | ,, |
| गण्डदोषशान्तिः .... .... | २४० | उलूकादिशान्तिः .... .... | २५८ |
| अभुक्तमूलविचारः .... .... | ,, | मधुजालशान्तिः .... .... | २५९ |
| मूलसार्पजातफलम् .... .... | २४१ | अन्नशान्तिः .... .... .... | ,, |
| मूलसार्पजातस्यापवादः ... | २४२ | अग्निशान्तिः .... .... .... | ,, |
| शिशुमुखदर्शनादर्शने .... | ,, | उल्कालक्षणम् .... .... | २६२ |
| मूलशान्तिः . .... .. | २४३ | परिवेषलक्षणम् .... .... | २६३ |
| आश्लेषाशान्तिः .... .... | २४४ | इन्द्रचापलक्षणम् .... .... | २६४ |
| ज्येष्ठाशान्तिः . . .... | २४५ | गन्धर्वनगरलक्षणम् .... .... | ,, |
| एकनक्षत्रजननशान्तिः .... | २४६ | प्रतिसूर्यलक्षणम् .... .... | ,, |
| कृष्णचतुर्दशीशान्तिः .. | २४७ | निर्घातलक्षणम् .... .... | २६५ |
| सिनीवालीशान्तिः .... ... | २४८ | दिग्दाहलक्षणम् .... .... | ,, |
| गोप्रसवविधिः .... .... | ,, | रजोलक्षणम् .... .... .... | ,, |
| व्यतीपातादिशान्तिः.... .... | २५० | भूकम्पलक्षणम् .... .... | २६६ |
| सदन्तोत्पन्नशान्तिः .... .... | ,, | कदलीदुष्प्रसवशान्तिः .... | ,, |
| धनिष्ठापञ्चकविचारः .... | २५१ | अङ्गस्फुरणफलम् .... .... | २६७ |
| पञ्चकशान्तिः.... .... .... | ,, | सद्योवृष्टिलक्षणम् .... .... | ,, |
| त्रिपुष्करयोगः .... .... | २५२ | सप्तनाडीचक्रम् .... .... | २६९ |
| त्रिपुष्करशान्तिः .... .... | ,, | सस्योत्पत्तिविचारः .... .... | २७० |
| भावकाष्टकम्.... .... .... | ,, | जातकाध्यायः—तत्र राशिभेदाः | २७१ |
| पल्लीपतनफलम् .... .... | ,, | ग्रहस्वरूपभेदाध्यायः.... .... | २७३ |
| देहाङ्गफलानि .... .... | २५३ | आधानचिन्ता .... .... | २७४ |
| तिथिफलम् .... .... .... | २५४ | जन्माध्यायः.... .... .... | २७६ |
| वारफलम् .... .... .... | ,, | सूतिकाध्यायः .... .... | २७७ |
| नक्षत्रफलम् .... .... .... | ,, | व्रणादिज्ञानम् .... .... | २७८ |
| लग्नफलम् .... .... .... | ,, | अनिष्टाध्यायः .... .... | २७९ |
| सरटपतनफलम् .... .... | २५५ | अरिष्टाध्यायः .... .... | २८० |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
| --- | --- |
| राज्योपकरणादीनि | २२३ |
| पण्यविक्रयः | ,, |
| धर्मारम्भोऽभिचारश्च | ,, |
| संधिः | २२४ |
| वेतालसिद्धिः | ,, |
| वापीकूपाद्यारम्भः | ,, |
| वृक्षाधिरोपः | ,, |
| कृषिः | ,, |
| बीजोप्तिः | २२५ |
| धान्यच्छेदनम् | २२६ |
| धान्यसंग्रहः | ,, |
| बीजसंग्रहः | ,, |
| मेथी | २२७ |
| धान्यस्थापनम् | ,, |
| धान्यनिष्क्रमणम् | ,, |
| चौर्यम् | ,, |
| द्रव्यार्पणम् | ,, |
| गोविक्रयादि | २२८ |
| अश्वविक्रयादि | ,, |
| नूतनाश्वपल्याणम् | ,, |
| पक्षिकर्म | ,, |
| स्थलाम्बुवनचारिकर्म | ,, |
| शत्रुबन्धनम् | ,, |
| पुष्पफलोच्चारणम् | २२९ |
| औषधनिष्पादन् | ,, |
| औषधग्रहणम् | ,, |
| रोगमुक्तिस्नानम् | २३० |
| सूतिकास्नानम् | ,, |
| व्रताभिषवस्नानफलम् | ,, |
| तैलाभ्यङ्गः | २३१ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
| --- | --- |
| प्रथमस्त्रीभोगः | २३१ |
| मद्यारम्भः | ,, |
| व्यालग्रहणम् | ,, |
| गजकर्म | ,, |
| बलकर्म | २३२ |
| नृपदर्शनम् | ,, |
| शान्तिः | ,, |
| दीपिकाशय्यादि | ,, |
| सूची | ,, |
| दिव्यम् | ,, |
| नौका | ,, |
| क्रूरम् | २३३ |
| शस्त्रनिर्माणम् | ,, |
| शस्त्रधारणम् | ,, |
| अभ्यासः | ,, |
| धनुरभ्यासः | ,, |
| वैदिको बाणमन्त्रः | २३४ |
| स्मार्तो बाणमन्त्रः | ,, |
| खड्गादिलक्षणम् | ,, |
| ताम्बूलम् | २३५ |
| दीपविधिः | २३६ |
| स्त्रीसंभोगः | ,, |
| नवान्नभोजनम् | २३७ |
| पात्रम् | ,, |
| मैत्री | २३८ |
| दासी | ,, |
| सेतुः | ,, |
| सर्वकर्म | ,, |
| रोगमुक्तिदिवसाः | ,, |
| दुर्गादीनां यजनम् | २३९ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| भूषणनिर्माणम् | २३९ |
| मणिधारणम् | ,, |
| शान्त्यध्यायः— | |
| तत्र गण्डजातफलम् | ,, |
| गण्डदोषशान्तिः | २४० |
| अभुक्तमूलविचारः | ,, |
| मूलसार्पजातफलम् | २४१ |
| मूलसार्पजातस्यापवादः | २४२ |
| शिशुमुखदर्शनादर्शने | ,, |
| मूलशान्तिः | २४३ |
| आश्लेषाशान्तिः | २४४ |
| ज्येष्ठाशान्तिः | २४५ |
| एकनक्षत्रजननशान्तिः | २४६ |
| कृष्णचतुर्दशीशान्तिः | २४७ |
| सिनीवालीशान्तिः | २४८ |
| गोमसवविधिः | ,, |
| व्यतीपातादिशान्तिः | २५० |
| सदन्तोत्पन्नशान्तिः | ,, |
| धनिष्ठापञ्चकविचारः | २५१ |
| पञ्चकशान्तिः | ,, |
| त्रिपुष्करयोगः | २५२ |
| त्रिपुष्करशान्तिः | ,, |
| भावकाण्डकम् | ,, |
| पल्लीपतनफलम् | ,, |
| देहाङ्गफलानि | २५३ |
| तिथिफलम् | २५४ |
| वारफलम् | ,, |
| नक्षत्रफलम् | ,, |
| लग्नफलम् | ,, |
| सरटपतनफलम् | २५५ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| पल्लीशब्दफलम् | २५५ |
| पल्लीसरटयोः शान्तिः | २५६ |
| काकमैथुनशान्तिः | २५७ |
| कपोतशान्तिः | ,, |
| उलूकादिशान्तिः | २५८ |
| मधुजालशान्तिः | २५९ |
| अन्नशान्तिः | ,, |
| अग्निशान्तिः | ,, |
| उल्कालक्षणम् | २६२ |
| परिवेषलक्षणम् | २६३ |
| इन्द्रचापलक्षणम् | २६४ |
| गन्धर्वनगरलक्षणम् | ,, |
| प्रतिसूर्यलक्षणम् | ,, |
| निर्घातलक्षणम् | २६५ |
| दिग्दाहलक्षणम् | ,, |
| रजोलक्षणम् | ,, |
| भूकम्पलक्षणम् | २६६ |
| कदलीपुष्पप्रसवशान्तिः | ,, |
| अङ्गस्फुरणफलम् | २६७ |
| सद्योवृष्टिलक्षणम् | ,, |
| सप्तनाडीचक्रम् | २६९ |
| सस्योत्पत्तिविचारः | २७० |
| जातकाध्यायः—तत्र राशिभेदाः | २७१ |
| ग्रहस्वरूपभेदाध्यायः | २७३ |
| आधानचिन्ता | २७४ |
| जन्माध्यायः | २७६ |
| सूतिकाध्यायः | २७७ |
| व्रणादिज्ञानम् | २७८ |
| अनिष्टाध्यायः | २७९ |
| अरिष्टाध्यायः | २८० |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|---|
| चन्द्रारिष्टभङ्गः .... .... | २८५ | प्रश्नप्रकरणम् .... | २९८ |
| नियतायुः .... .... .... | २८६ | तत्रादौ शुभाशुभज्ञानम् .... | ,, |
| अमितायुः .... .... .... | ,, | लग्नादिभावविचारः .... .... | २९९ |
| आयुर्दायविवरणम् .... .... | २८७ | ग्रहबलाबलम् .... .... | ३०० |
| आयुर्दायानयनम् .... .... | २८८ | धात्वादिचिन्ता .... | ,, |
| दशाविभागः .... .... .... | ,, | बहुप्रश्ने विशेषः .... | ,, |
| दशाफलपाकनिर्देशः .... .... | ,, | लाभालाभविचारः .... .... | ,, |
| अन्तर्दशाफलम् .... .... | ,, | नष्टलाभविचारः .... .... | ३०१ |
| भावविचारः .... .... .... | २९० | गर्भपृच्छा .... .... .... | ३०२ |
| धनचिन्ता .... .... .... | ,, | विवाहपृच्छा .... .... .... | ३०३ |
| सहजचिन्ता .... .... .... | ,, | विवाहे शुभाशुभम् .... .... | ३०४ |
| सुहृच्चिन्ता .... .... .... | ,, | संभोगः .... .... .... | ,, |
| सुतचिन्ता .... .... .... | ,, | गमनम् .... .... .... | ,, |
| अरिचिन्ता .... .... .... | २९१ | आगमनम् .... .... | ३०५ |
| कलत्रचिन्ता .... .... .... | ,, | परचक्रागमः .... .... | ३०६ |
| मृत्युचिन्ता .... .... .... | ,, | युद्धपृच्छा .... .... | ३०७ |
| गतिज्ञानम् .... .... .... | २९२ | जयपराजयौ .... .... .... | ,, |
| भाग्यचिन्ता .... .... .... | ,, | संधिविग्रहौ .... .... .... | ३०८ |
| कर्मचिन्ता .... .... .... | ,, | दुर्गभङ्गः .... .... .... | ,, |
| आयचिन्ता .... .... .... | २९३ | वेष्टितदुर्गभङ्गपृच्छा .... .... | ३०९ |
| व्ययचिन्ता .... .... .... | ,, | परदुर्गाप्तिपृच्छा .... .... | ,, |
| ग्रहभावफलम् .... .... | ,, | आत्मदुर्गपृच्छा .... .... | ,, |
| स्त्रीजातकाध्यायः .... .... | २९४ | अन्यद्दुर्गभङ्गपृच्छा .... .... | ३१० |
| राजयोगाध्यायः .... .... | २९५ | मन्त्रभेदपृच्छा .... .... | ,, |
| राजयोगभङ्गः .... .... | २९६ | विवादः .... .... .... | ,, |
| राजयोगनिर्णयः .... .... | २९७ | सेवापृच्छा .... .... .... | ,, |
| चन्द्रयोगः .... .... .... | ,, | आश्रयः .... .... .... | ,, |
| म्लेच्छयोगः .... .... .... | ,, | नृपदर्शनम् .... .... .... | ३११ |
| राशिलग्नयोः फलम् .... .... | ,, | गौरवम् .... .... .... | ,, |
| प्रव्रज्यायोगः .... .... | २९८ | पदलाभपृच्छा .... .... | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः | विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|---|---|
| अधिकारः .... .... .... | ३११ | सादिः .... .... .... | ३१६ |
| पदनिर्वाहपृच्छा .... .... | ३१२ | अनयोः कः सत्यः .... .... | ,, |
| स्थानप्राप्तिः .... .... | ,, | दिनचर्या .... .... .... | ,, |
| धातुवादः .... .... .... | ,, | धान्यनिष्पत्तिः .... .... | ,, |
| चौर्यपृच्छा .... .... .... | ,, | सुभिक्षपृच्छा.... .... .... | ,, |
| सौख्यपृच्छा .... .... .... | ,, | दुर्भिक्षम् .... .... .... | ,, |
| भयपृच्छा .... .... .... | ,, | वृष्टिपृच्छा .... .... .... | ,, |
| अग्निभयम् .... .... .... | ३१३ | कूपपृच्छा .... .... .... | ३१७ |
| नदीपूरणपृच्छा .... .... | ,, | नौका .... .... .... | ,, |
| कालवृष्टिपृच्छा .... .... | ,, | रोगपृच्छा .... .... .... | ,, |
| स्त्रीविग्रहः .... .... .... | ,, | रोगनाशकयोगः .... .... | ३१८ |
| धृताविवाहितापृच्छा .... | ,, | स्वस्थो रोगी वा .... .... | ,, |
| बन्धनपृच्छा .... .... | ,, | क मृत्युः .... .... .... | ,, |
| मृत्युयोगः .... .... .... | ,, | मुक्तिर्भविष्यति न वा .... | ,, |
| मृत्युभङ्गः .... .... .... | ३१४ | कस्माल्लोकादागतोऽयम् .... | ३१९ |
| गतप्राप्तिपृच्छा .... .... | ,, | रोगज्ञानम् .... .... .... | ,, |
| मृताप्तिपृच्छा .... .... | ,, | दोषपृच्छा .... .... .... | ,, |
| हृतादिवस्तुपृच्छा .... .... | ,, | निधिपृच्छा .... .... .... | ,, |
| चोरोऽयं न वेति पृच्छा .... | ,, | मृगया .... .... | ३२० |
| कोऽयं नर इति पृच्छा .... | ,, | बन्धमोक्षौ ... ... .... | ३२१ |
| अस्य को देश इति पृच्छा .... | ,, | लिखितपृच्छा .... .... | ,, |
| मित्रप्रीतिपृच्छा .... .... | ३१५ | वार्तापृच्छा .... .... .... | ३२२ |
| कोऽश्वो विजयीति पृच्छा .... | ,, | हन्तुं गमनम्.... .... .... | ,, |
| मेलकः .... .... .... | ,, | अभिचारः .... .... .... | ,, |
| वस्तुग्रहणम् .... .... .... | ,, | योगसिद्धिः .... ... .... | ,, |
| वस्तुविक्रयः .... .... .... | ,, | विद्याभ्यासः .... .... .... | ,, |
| क्रयविक्रयमध्ये कस्माल्लाभः.... | ,, | काव्यम् .... .... .... | ,, |
| वस्तुसंग्रहणाल्लाभोऽस्ति न वा | ,, | दीक्षा .... .... .... | ३२३ |
| कृतसंग्रहस्य वस्तुनः कदा विक्रयः | ,, | स्वप्नः .... ... .... | ,, |
| वर्षेऽस्मिन्कथं भविष्यति .... | ३१६ | भोजनम् .... .... .... | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| भुक्तियानम् | ३२३ |
| वाटिका | ,, |
| अर्घपृच्छा | ३२४ |
| देशभङ्गपृच्छा | ,, |
| आयुष्पृच्छा | ,, |
| नष्टजन्म | ,, |
| दुर्दिने लग्नज्ञानम् | ३२५ |
| चिन्तामुष्टिकज्ञानम् | ,, |
| फलकालनिर्णयः | ,, |
| स्वरशास्त्रप्रशंसा | ,, |
| स्वरोदयः | ३२७ |
| तत्कालस्वरचिन्ता | ३२८ |
| वर्णस्वरचक्रम् | ३२९ |
| राशिस्वरचक्रम् | ,, |
| नक्षत्रस्वरचक्रम् | ,, |
| मासस्वरचक्रम् | ,, |
| द्वादशवार्षिकस्वरचक्रम् | ,, |
| ऋतुस्वरचक्रम् | ,, |
| वारस्वरचक्रम् | ३३० |
| दिवस्वरचक्रम् | ,, |
| राहुकालानलम् | ,, |
| चन्द्रार्ककालानलम् | ३३१ |
| रिक्तपूर्णचक्रम् | ,, |
| कुलाकुलचक्रम् | ,, |
| लोहज्ञानम् | ३३२ |
| कविचक्रम् | ३३३ |
| कोटचक्रम् | ,, |
| लग्नबलम् | ३३५ |
| कालबलम् | ,, |
| वडवानली भूमिः | ,, |
| क्षेत्रपाली | ३३६ |
| पक्षभूमिः | ,, |
| कालभूमिः | ,, |
| बिम्बभूमिः | ,, |
| लग्नभूमिः | ,, |
| राहुभूमिः | ३३७ |
| कुलिकराहुचक्रम् | ,, |
| योगिनी | ,, |
| वारकालः | ,, |
| वारयोगिनीचक्रम् | ३३८ |
| तिथिकालः | ,, |
| तिथियोगिनीचक्रम् | ,, |
| वायुभूमिः | ३३९ |
| भूबलम् | ,, |
| घातचक्रम् | ,, |
| द्वितीया घातवटी | ३४० |
| तृतीया घातवटी | ,, |
| घातचक्रम् | ३४१ |
| जाग्रत्सुप्तचक्रम् | ,, |
| सेनाचक्रम् | ,, |
| द्वन्द्वयुद्धम् | ३४२ |
| छुरिकायुद्धम् | ३४३ |
| छुरिकोपास्तिः | ३४४ |
| मन्त्रः | ,, |
| व्यूहरचना | ,, |
| सूक्ष्मस्वरप्रकरणम् | ३४६ |
| तत्त्वगुणाः | ३४७ |
| प्रश्नोत्तराध्यायः | ३४८ |
| अष्टकवर्गप्रश्नोत्तरम् | ,, |
| मलयप्रश्नोत्तरम् | ,, |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| दासीजातकफलप्रश्नोत्तरम् .... | ३४९ |
| स्वप्नप्रश्नोत्तरम् .... .... | ,, |
| आक्षेपपरिहाराः .... .... | ,, |
| कवेः प्रशंसा .... .... | ,, |
| कर्माभावे सृष्ट्युत्पत्तिविषयक आक्षेपः .... .... .... | ३५० |
| अस्य परिहारः .... .... | ,, |
| एककाले बहुसंहारे किं कारणम् | ३५१ |
| अस्योत्तरम् .... .... .... | ,, |
| यमलयोः को ज्येष्ठस्तस्योत्तरम् | ,, |
| जीवात्मनोः को भेदः .... | ३५२ |
| रोगस्नानाक्षेपः .... | ,, |
| अस्योत्तरम् .... .... .... | ,, |
| रवीन्द्वोः स्थिरचरत्वविषयक आक्षेपस्तत्परिहारश्च .... | ,, |
| धलपाकाक्षेपस्तत्परिहारश्च .... | ३५३ |
| योगाक्षेपस्तत्परिहारश्च .... | ,, |
| भूमानाक्षेपस्तत्परिहारश्च .... | ,, |
| ज्योतिःशास्त्रोक्तं भूमानम् .... | ,, |
| ब्रह्माण्डमानम् .... .... | ३५४ |
| वैधव्यादियोगे कथं विवाहसिद्धिः | ,, |
| अस्य परिहारः .... .... | ,, |
| मूकबधिरयोर्मौञ्ज्यादिसंस्काराः .... .... .... | ,, |
| तिथिनिर्णयः .... .... | ३५५ |
| काललक्षणम् | ,, |
| साधारणतिथिनिर्णयः .... | ,, |
| तिथिनियमनवाक्यानि .... | ३५६ |
| जन्माष्टमीनिर्णयः .... .... | ३५७ |
| रामनवमी .... .... .... | ३५८ |
| एकादशीनिर्णयः .... .... | ,, |
| नित्यैकादश्युपवासविषयकवचनानि.... .... .... | ,, |
| काम्यैकादशीविषयकवचनानि | ,, |
| शिवरात्रिनिर्णयः .... .... | ३५९ |
| पूर्णिमानिर्णयः .... .... | ३६० |
| आन्दोलननिर्णयः .... .... | ,, |
| अक्षयतृतीयानिर्णयः.... .... | ३६१ |
| पर्वनिर्णयः .... .... .... | ,, |
| श्राद्धतिथिनिर्णयः .... .... | ३६२ |
| नवरात्रप्रतिपन्निर्णयः .... | ३६३ |
| महानवमीनिर्णयः .... .... | ,, |
| विजयादशमीनिर्णयः.... .... | ३६४ |
| दीपोत्सवनिर्णयः .... .... | ३६५ |
| होलिकानिर्णयः .... .... | ३६७ |
| नागपञ्चमीविधानम् .... .... | ३६९ |
| पारणाहनिर्णयः .... .... | ,, |
| चैत्रशुक्लप्रतिपदि काकपिण्डविधानम् .... .... .... | ३७० |
| अवटधान्यनिक्षेपविधानम् .... | ३७१ |
| चैत्रशुद्धप्रतिपदि वायुपरीक्षा.... | ,, |
| वत्सराधिपपूजा .... .... | ३७२ |
| दमनकार्पणम् .... .... | ,, |
| पुनर्दहनम् .... .... .... | ३७३ |
| सापिण्ड्यादिश्राद्धप्रकरणम्.... | ,, |
| ग्रन्थसमाप्तिः .... .... | ३७४ |


समाप्तेयं ज्योतिर्निबन्धस्य विषयानुक्रमणिका।

# ज्योतिर्निबन्धः ।

---

वेदाग्रं यातमर्धेन्दुभालयुग्विन्दु तत्पुनः । भीयनत्यन्तमङ्गार्णं मनुर्यस्य नमामि तम् ॥ १ ॥ अभीष्टफलदो देवः सर्वज्ञः परमेश्वरः । आदधातु गणाध्यक्षः स्थितिं मनसि नः सदा ॥ २ ॥ तिथ्यादिकालावयवस्वरूपां जगत्प्रसूत्यादिकहेतुभूताम् । कालत्रयज्ञानविधायिनीं तां वन्देऽहमाद्यामिह शास्त्रदेवीम् ॥ ३ ॥ नारदः—ब्रह्माऽऽचार्यो वसिष्ठोऽत्रिर्मनुः पौलस्त्यरोमशौ । मरीचिरङ्गिरा व्यासो नारदः शौनको भृगुः ॥ ४ ॥ च्यवनो यवनो गर्गः कश्यपश्च पराशरः । अष्टादशैते गम्भीरा ज्योतिःशास्त्रप्रयोजकाः ॥ ५ ॥ वराहमिहराचार्यः श्रीपतिः सत्यभास्करौ । लल्लः सूरिर्ब्रह्मगुप्तो वैद्यनाथश्च रेणुकः ॥ ६ ॥ एषां शास्त्राणि संवीक्ष्य सारमादाय यत्नतः । तदुक्तवचनैः कुर्वे फलग्रन्थं मनोरमम् ॥ ७ ॥ यथवारोपयत्येकं श्रेयोर्थी सद्द्रुमं पथि । सत्स्वारामेषु शास्त्रेषु तथैनां विद्धि मत्कृतिम् * ॥ ८ ॥ गर्गः- धूर्तदुर्जनविद्वेषिकृतघ्नानां कदाचन । न प्रकाश्यमिदं शास्त्रं रहस्यं केवलं यतः ॥ ९ ॥ तथा च भास्करः— दिव्यं ज्ञानमतीन्द्रियं यदपिमिर्ब्राह्मं वसिष्ठादिभिः पारम्पर्यवशाद्रहस्यमवनौ नीतं प्रकाशं यतः । नैतद्द्वेषिदुरुक्तदुर्जनदुराचाराचिरावासिनां स्यादायुःसुकृतक्षयो मुनिकृतां सीमामिमामुज्झताम् ॥ १० ॥

इति श्रीज्योतिर्निबन्धे शास्त्रोपनयनाध्यायः ॥

---

## अथ ज्योतिःशास्त्रप्रशंसा ॥

आर्थर्वणिः—वेदेषु विद्यासु च ये प्रदिष्टा धर्मादयः कालविशेषतोऽर्थाः । ते सिद्धिमायान्त्यखिलाश्च येन तद्वेदनेत्रं जयतीह लोके ॥ १ ॥ मूलसूत्रे—वेदेषु विद्यासु च ये प्रदिष्टा कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः । तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञम् ॥ २ ॥ नारदः—विनैतदखिलं श्रौतस्मार्त-

---

* ग. पुस्तके–गङ्गातीयं काचकूप्यादिसंस्थं माल्यं यद्वत्तद्वदेवं (षोडस्म) मदीयम् (यः) ग्रन्थो यस्माद्व्यासगर्गादिशास्त्रोक्तं तस्य नूनमत्रास्ति नान्यत् ॥ ९ ॥

---

१ क. म मन । २ ख. जवना ग° । ३ ग. नो माठरेग° । ४ ग. °र्थायं प्रवक्ष्यामि । ग्रन्थं ज्योतिर्निबन्ध एवं महाः श्रीशिवो नृपः । ५ ग. वेदा हि यज्ञार्थमभि प्रवृत्ताः का° ।

कर्म न सिध्यति । तस्माज्जगद्धितायेदं ब्रह्मणा रचितं पुरा ॥ ३ ॥ याज्ञवल्क्यः- पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः । वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥ ४ ॥ वृद्धमनुः—वेदोपवेदवेदाङ्गमीमांसावेदसंहिताः । पुराणानि च धर्मस्य स्थानान्याहुः षडेव हि ॥ ५ ॥ वसिष्ठः—क्रतुक्रियार्थं श्रुतयः प्रवृत्ताः कालाश्रयास्ते क्रतवो निरुक्ताः । शास्त्रादमुष्मात्किल कालबोधो वेदाङ्गता मुख्यतरा प्रसिद्धा ॥ ६ ॥ छन्दः पादौ शब्दशास्त्रं च वक्त्रं कल्पः पाणी ज्योतिषं चक्षुषी च । शिक्षा घ्राणं श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं वेदस्याङ्गान्याहुरेतानि षट् च ॥ ७ ॥ भास्करः—वेदचक्षुः किलेदं स्मृतं ज्योतिषं मुख्यता चाङ्गमध्येऽस्य तेनोच्यते । संयुतोऽपीतरैः कर्णनासादिभिश्चक्षुषाऽङ्गेन हीनो न किंचित्करः ॥ ८ ॥ तस्माद्द्विजैरध्ययनीयमेतत्पुण्यं रहस्यं परमं च तत्त्वम् । यो ज्योतिषं वेद नरः स सम्यग्धर्मार्थमोक्षं लभते यशश्च ॥ ९ ॥ वसिष्ठः—अध्येतव्यं ब्राह्मणैरेव तस्माज्ज्योतिःशास्त्रं पुण्यमेतद्रहस्यम् । एतद्बुद्ध्वा सम्यगाप्नोति यस्मादर्थं धर्मं मोक्षमग्र्यं यशश्च ॥ १० ॥ चतुर्विंशतिमते—गणितात्सिध्यते कालः काले तिष्ठन्ति देवताः । वरमेकाहुतिः काले नाकाले कोटिसंमिताः ॥ ११ ॥ अतीतानागते काले दानहोमजपादिकम् । ऊषरे वापितं बीजं तद्वद्भवति निष्फलम् ॥ १२ ॥ मनुः—यज्ञाध्ययनसंक्रान्तिश्राद्धषोडशकर्मणाम् । प्रयोजनं च विज्ञेयं तत्तत्कालविनिर्णयम् ॥ १३ ॥ वेदाः प्रमाणं स्मृतयोऽपराणि तर्कादिशास्त्राणि तथेतिहासाः । सत्याभिधं ज्योतिषशास्त्रमेतज्ज्ञानं समस्तानि समाश्रयन्ति ॥१४॥ वराहः—मुनिविरचितमिदमिति यच्चिरन्तनं साधुनाऽऽधुनिककृतम् । तुल्येऽर्थेऽक्षरभेदादमन्त्रके का विशेषोक्तिः ॥ १५ ॥ धरणिसुतदिवसवारो न शुभकृदिति पितामहेनोक्तम् । कुजदिनमनिष्टमिति वा कोऽत्र विशेषो नृदेवकृते ॥ १६ ॥ आर्ष्टिषेणिः—यथा क्षारादिसंतापैर्हेम्नोऽधिकतरा द्युतिः । तथैव नूतनोपायैः शास्त्रं निर्मलतां व्रजेत् ॥ १७ ॥ वराहः—यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः प्राप्तिम् । व्यञ्जयति शास्त्रमेतत्तमसि द्रव्याणि दीप इव ॥ १८ ॥ मूलसूत्रे—यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा । तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम् ॥ १९ ॥ व्यासः—यथा काष्ठमयः सिंहो यथा चित्रमयो नृपः । तथा वेदाद्यधीतोऽपि ज्योतिशास्त्रं विना द्विजाः ॥ २० ॥ अप्रत्यक्षाणि शास्त्राणि विवादस्तेषु केवलम् । प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं चन्द्रार्कौ यत्र साक्षिणौ ॥ २१ ॥ चूडामणौ—गारुडे भूतवादे च ज्योतिषे वैद्यके तथा । कारणं प्रत्ययस्तत्र न तु शब्दविचारणा ॥ २२ ॥ ज्योतिषे ग्रहणं सारं गारुडे विषभक्षणम् । शैवे घट-

१ ग. °मनुष्यकृताऽत्र मुख्या । २ ग. °दाः पुराण । ३ क. °ण श्रुत° ।

वती दीक्षा कौलिके ग्रहनिग्रहौ ॥२३॥ पितामहः—पुराणं मानवो धर्मः साङ्गो वेदश्चिकित्सितम् । आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हन्तव्यानि हेतुभिः ॥ २४ ॥ ज्योतिर्विवरणे—इदमागमसिद्धत्वात्प्रत्यक्षफलदर्शनात् । मन्त्रवत्संप्रयोक्तव्यं न मीमांस्यं कथंचन ॥ २५ ॥ आथिर्वणिः— मो वृथाऽऽधुनिकविप्रनिर्मितं शास्त्रमेतदिति मा न जीगणः । केवलं तु यत एव सूरिभिर्भाषितस्य मथितार्थसंग्रहः ॥ २६ ॥ मन्त्रार्थमुक्तावल्याम्—चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाऽऽश्रमाः पृथक् । भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदाच्च सिध्यति ॥ २७ ॥ पितृदेवमनुष्याणां वेदचक्षुः सनातनम् । तच्चक्षुर्ज्योतिषं शास्त्रं दिव्यं ज्ञानमतीन्द्रियम् ॥ २८ ॥ दिव्यं ज्ञानमिदं विप्रैः श्रौतस्मार्तक्रियापरैः । वेदवत्पठितव्यं हि कर्मकालप्रकाशकम् ॥ २९ ॥

इति श्रीज्योतिर्निबन्धे ज्योतिषप्रशंसाध्यायः ॥

---

## अथ दैवज्ञप्रशंसा ॥

नारदः—त्रिस्कन्धज्ञो दर्शनीयः श्रौतस्मार्तक्रियापरः । निर्दाम्भिकः सत्यवादी दैवज्ञो दैववित्स्थिरः ॥ १ ॥ कौमुद्याम्—व्यक्ताङ्कः फलकालवित्सुकृतिमान्पूर्वापरस्मारकः पाटीकुट्टकबीजशास्त्रकुशलः सिद्धान्तवित्प्राञ्जलः । भिन्नाभिन्नसवर्णनादिगुणने भूयो महानुद्यमी क्षुत्तृष्णादिसहः स एव गणकः श्लाघ्यो विदां संसदि ॥ २ ॥ अन्यच्च—*सत्सिद्धान्तविचारजातकफलग्रन्थादिशुद्धार्थवित्प्रश्नज्ञो गुणवान्स्थिरः पटुमतिः संशुद्धचित्तः सदा । पाटीकुट्टकबीजशास्त्रकुशलः सद्ग्रामशास्त्रान्तगो धर्मिष्ठो गणकः स भूमिपसभायोग्यः कलाज्ञो मतः ॥ ३ ॥ वराहः—अप्रदीपा यथा रात्रिरनादित्यं यथा नभः । तथाऽसांवत्सरो लोको भ्रमत्यन्ध इवाध्वनि ॥४॥ नासांवत्सरिके देशे वस्तव्यं भूतिमिच्छता । चक्षुर्भूतो हि यत्रैषस्तत्र पापं न विद्यते ॥ ५ ॥ ग्रन्थतश्चार्थतश्चैनं कृत्स्नं जानाति यो द्विजः । अग्रभुक् स भवेच्छ्राद्धे पूजितः पङ्क्तिपावनः ॥ ६ ॥ कृत्स्नाङ्गोपाङ्गकुशलं होरागणितनैष्ठिकम् । यो न पूजयते राजा स नाशमुपगच्छति ॥ ७॥ वनं समाश्रिता ये च निर्ममा निष्परिग्रहाः । अपि ते परिपृच्छन्ति ज्योतिषां गतिकोविदम् ॥ ८ ॥ म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक्शास्त्रमिदं स्थितम् । ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते किं पुन-

---

* श्लोकोऽयं ख. ग. पुस्तकयोर्नास्ति ।

---

१ क. °के जलनिग्रहौ ।

दैवविद्द्विजः ॥ ९ ॥ चतुर्विंशतिमते—अविदित्वैव यः शास्त्रं दैवज्ञत्वं प्रपद्यते । स पङ्क्तिदूषकः पापो ज्ञेयो नक्षत्रसूचकः ॥ १० ॥ कालनिर्णये—नक्षत्रसूचकोद्दिष्टमुपवासं करोति यः । स व्रजत्यन्धतामिस्रं सार्धमृक्षविडम्बिना ॥११॥ पृथुयशाः—नगरद्वारि लोष्टस्य यद्वत्स्यादुपयाचितम् । आदेशस्तद्वदज्ञानामज्ञैः सत्यं स मन्यते ॥ १२ ॥ श्रीधरः—न वेत्ति यो जातककर्मपद्धतिं न ग्रहसिद्धान्तभवानपि ग्रहान् । यात्राविवाहादिषु कालसूचको ज्ञेयोऽत्र मृत्युः खलु तत्स्वरूपधृक् ॥ १३ ॥ वराहः—न प्रतिबद्धं गमयति वक्ति न च प्रश्नमपि पृष्टः । निगदति न च शिष्येभ्यः स कथं शास्त्रार्थविज्ञेयः ॥ १४ ॥ न तत्सहस्रं करिणां वाजिनां वा चतुर्गुणम् । करोति देशकालज्ञो यदेको दैवचिन्तकः ॥१५॥ भूपालः—तथा न माता हितकृन्न पिता न सुहृद्गुरुः । यद्वत्सांवत्सरो राज्ञां स्वयशोधर्मवृद्धये ॥ १६ ॥ व्यासः—दुःस्वप्नदुर्विचिन्तितदुष्प्रेक्षितदुष्कृतानि कर्माणि । क्षिप्रं प्रयान्ति नाशं दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा च दैवज्ञम् ॥१७॥ वराहः—श्रुत्वा तिथिं भग्रहवासरं च प्राप्नोति धर्मार्थयशांसि सौख्यम् । आरोग्यमायुर्विजयं सुतांश्च दुःस्वप्ननाशं प्रियतां च लोके ॥ १८ ॥

इति श्रीज्योतिर्निबन्धे दैवज्ञप्रशंसाध्यायः ॥

---

## *अथ चाराध्यायः ॥

### अथ रविचारः ।

तत्राऽऽदौ रविचारः । कश्यपः—अथातः संप्रवक्ष्यामि रविचारमनुत्तमम् । सूर्यचारवशादेव निखिलः कालनिर्णयः ॥ १ ॥ वराहः—आश्लेषार्धाद्दक्षिणमुत्तरमयनं रवेर्धनिष्ठाद्यम् । नूनं कदाचिदासीद्येनोक्तं पूर्वशास्त्रेषु ॥ २ ॥ सांप्रतमयनं सवितुः कर्कटा (द्का)द्यं मृगादितश्चैतत् । उक्ताभावो विकृतिः प्रत्यक्षपरीक्षणैर्व्यक्तिः ॥ ३ ॥ सतमस्कां (स्कं) पर्व विना त्वष्टा नामार्कमण्डलं कुरुते । स निहन्ति सप्त भूपाञ्जनांश्च शस्त्राग्निदुर्भिक्षैः ॥ ४ ॥ कश्यपः—त्रयस्त्रिंशद्राहुसुतास्तामसाख्याः प्रकीर्तिताः । तानर्कमण्डले दृष्ट्वा वर्णाकारैः फलं वदेत् ॥ ५ ॥ सूर्यमण्डलगाः पापाश्चन्द्रमण्डलगाः शुभाः । चन्द्रेऽप्यनिष्टदाः खड्गकबन्धध्वाङ्क्षसंनिभाः ॥ ६ ॥ वराहः—तेषामुदये रूपाण्यम्भः कलुषं रजोवृतं व्योम । नगतरुशिखरावमर्दी सशर्करो मारुतश्चण्डः ॥ ७ ॥ ऋतुविपरीतास्तरवो दीप्ता मृगपक्षिणो दिशां दाहः । निर्घातभूमिकम्पादयो भवन्त्यत्र

---

* अयमध्यायो ग. पुस्तके नास्ति ।

चोत्पाताः ॥ ८ ॥ न पृथक्फलानि तेषां शिखिकीलकराहुदर्शनं यदि चेत् । तदुदयकारणमेषां केत्वादीनां फलं ब्रूयात् ॥ ९ ॥ यस्मिन्यस्मिन्देशे दर्शनमायान्ति सूर्यबिम्बस्थाः । तस्मिंस्तस्मिन्व्यसनं महीपतीनां परिज्ञेयम् ॥ १० ॥ क्षुत्तृण्म्लानशरीरा मुनयोऽप्युत्सृष्टधर्मसच्चरिताः । निर्मांसबालहस्ताः कृच्छ्रेण यान्ति परदेशम् ॥ ११ ॥ तस्करविलुप्तचित्ताः प्रदीर्घनिःश्वासमुकुलिताक्षिपुटाः । सन्तैश्छन्नशरीराः शोकोद्भवबाष्परुद्धदृशः ॥ १२ ॥ क्षामा जुगुप्समानाः स्वपतिपरचक्रपीडिता मनुजाः । स्वपतिचरितं कर्म च पुरा कृतं प्रब्रुवन्त्यन्ये ॥ १३ ॥ गर्भेष्वपि निष्पन्ना वारिमुचो न प्रभूतवारिमुचः । सरितो यान्ति तनुत्वं क्वचित्क्वचिज्जायते सस्यम् ॥ १४ ॥ नारदः–दण्डाकारे कबन्धे वा ध्वाङ्क्षाकारेऽथ कीलके । दृष्टेऽर्कमण्डले व्याधिर्भीतिश्चौरार्थ ( र्थे )नाशनम् ॥ १५ ॥ वराहः–दण्डे नरेन्द्रमृत्युर्व्याधिभयं स्यात्कबन्धसंस्थाने । ध्वाङ्क्षे च तस्करभयं दुर्भिक्षं कीलकर्कस्थे ॥ १६ ॥ नारदः–छत्रध्वजपताकाद्यैराकारैस्तिमिरैर्घनैः । रविमण्डलगैर्धूमस्फुलिङ्गैर्जननाशनम् ॥ १७ ॥ सितरक्तपीतकृष्णैर्विमादीनामनिष्टदम् । हन्ति द्वित्रिचतुर्भिर्वा राजान्यत्वं जनक्षयम् ॥ १८ ॥ ऊर्ध्वैर्भानुकरैस्ताम्रैर्नाशयन्ति ( शं याति ) चमूपतिम् ( तिः ) । पीतैर्नृपसुतं ( तः ) श्वेतैः पुरोधाश्चित्रितैर्जनैः ( नाः ) ॥ १९ ॥ धूम्रैर्नृपं पिशङ्गैश्च जलदोऽधोमुखैः सदा । उदयास्तमये काले स्वास्थ्यं तैः पाण्डुसंनिभैः ॥ २० ॥ भास्करस्ताम्रसंकाशः शिशिरे कपिलोऽपि वा । कुङ्कुमाभो वसन्ततौ कपिलो वाऽपि शस्यते ॥ २१ ॥ आपाण्डुरः स्वर्णवर्णो ग्रीष्मे चित्रो जलागमे । पद्मोदराभः शरदि हेमन्ते लोहितच्छविः ॥ २२ ॥ हेमन्ते प्रावृषि ग्रीष्मे रोगानावृष्टिभीतिकृत् । पीताभः कृष्णवर्णोऽर्को लोहितस्तु यथाक्रमात् ॥ २३ ॥ इन्द्रचापार्धमूर्तिश्चेद्भानुर्भूपविरोधकृत् । मयूरपत्रसंकाशो द्वादशाब्दं न वर्षति ॥ २४ ॥ शशरक्तनिभे भानौ सङ्ग्रामो न चिराद्भवेत् । चन्द्रस्य सदृशो यत्र चान्यं राजानमादिशेत् ॥ २५ ॥ वराहः–ग्रीष्मे रक्तो भयकृद्वर्षास्वसितः करोत्यनावृष्टिम् । हेमन्ते पीतोऽर्कः करोति नचिरेण रोगभयम् ॥ २६ ॥ प्रावृट्काले सद्यः करोति विमलद्युतिर्वृष्टिम् । वर्षाकाले वृष्टिं करोति सद्यः शिरीषपुष्पाभः ॥ २७ ॥ नारदः–अर्के श्यामे कीटभयं भस्माभे शस्त्रतो भयम् । छिद्रेऽर्कमण्डले दृष्टे तदा चोरार्थनाशनम् ॥ २८ ॥ घटाकृतिः क्षुद्भयकृत्पुरहा तोरणाकृतिः । छत्राकृतिर्देशभयं खण्डभानुर्नृपान्तकृत् ॥ २९ ॥ उदयास्तमये भानोर्विद्युदुल्काशनिर्यदि । तदा

---

१ ख. "न्तः सन्नश° ।

नृपवधो ज्ञेयस्त्वथ वा राजविग्रहः ॥ ३० ॥ पक्षं पक्षार्धमर्केन्दुपरिवेषात्व( पाव )-हर्निशम् । राजानमन्यं कुरुतो लोहितावुदयास्तगौ ॥ ३१ ॥ उदयास्तसमये भानुः स्थगितः शस्त्रसंनिभैः । घनैर्युद्धं खरोष्ट्राद्यैर्दंष्ट्रिरूपैर्भयमदः ॥ ३२ ॥ वराहः—कृष्णा रेखा सवितरि यदि हन्ति ततो नृपं सचिवः । दिवसकृतः प्रतिसूर्यो जलकृदुदग्दक्षिणे स्थितोऽनिलकृत् ॥३३॥ उभयस्थः सलिलभयं नृपमुपरि हन्त्यधो जनहा ॥ ३४ ॥ वसिष्ठः—यद्युपसूर्यकमस्यां संध्यायामर्थनाशनं प्रचुरम् । क्षितिपतिकलहः शीघ्रं सलिलभयं वा भवेन्नूनम् ॥ ३५ ॥ वराहः—अमलवपुरवक्रमण्डलः स्फुटविपुलामलदीर्घदीधितिः । अविकृततनुवर्णचिह्नभृज्जगति करोति शिवं दिवाकरः ॥ ३५ ॥

इति रविचारः ।

---

## अथ चन्द्रचारः ।

अमृतकिरणचारं खेटचारेषु सारं विपुलनिखिललोकानन्ददं सुन्दरीयम् । सदसदखिललोकाभोगदं यत्फलं तत्कथितविषमकालज्ञानदीपं प्रवच्मि ॥ १ ॥ नित्यमधस्थस्येन्दोर्भाभिर्भानोः सितं भवत्यर्धम् । स्वच्छाययाऽन्यदसितं कुम्भस्येवाऽऽतपस्थस्य ॥ २ ॥ सलिलमये शशिनि रवेर्दीधितयो मूर्छितास्तमो नैशम् । क्षपयन्ति दर्पणोदरविहिता इव मन्दिरस्यान्तः ॥ ३ ॥ त्यजतोऽर्कतलं शशिनः पश्चादवलम्बते यथा शौक्ल्यम् । दिनकरवशात्तथेन्दोः प्रकाशतेऽधः प्रभृत्युदयः ॥ ४ ॥ प्रतिदिवसमेवमर्कात्स्थानविशेषेण शौक्ल्यपरिवृद्धिः । भवति शशिनोऽपराह्णे पश्चाद्भागे घटस्येव ॥ ५ ॥ नारदः—याम्यशृङ्गोन्नतश्चन्द्रः शुभदो मीनमेषयोः । सौम्योन्नतोदितः श्रेष्ठो नृयुङ्मकरयोस्तथा ॥ ६ ॥ समोऽक्षघटयोः कर्किचापयोः शरसंनिभः । चापवत्कीटहर्योस्तु शूलवत्तौलिकन्ययोः ॥ ७ ॥ विपरीतोदितश्चेन्दुर्दुर्भिक्षकलहप्रदः । यथोक्तोऽभ्युदितश्चन्द्रः प्रतिमासं सुभिक्षकृत् ॥८॥ वराहः—उन्नतमीषच्छृङ्गं नौसंस्थाने विशालता चोक्ता । नाविकपीडा तस्मिन्भवति शिवं सर्वलोकस्य ॥ ९ ॥ अर्धोन्नते च लाङ्गलमिति पीडा तदुपजीविनां तस्मिन् । प्रीतिश्च निर्निमित्तं मनुजपतीनां सुभिक्षं च ॥ १० ॥ दक्षिणविषाणमर्धोन्नतं यदा दुष्टलाङ्गलाख्यं तत् । पाण्ड्यनरेशनिधनकृदुद्योगकरं बलानां च ॥ ११ ॥ समशशिनि सुभिक्षक्षेमवृष्टयः प्रथमदिवससदृशाः

स्युः ।। दण्डवदुदिते पीडा गवां नृपश्चोग्रदण्डोऽत्र ॥ १२ ॥ कार्मुकरूपे युद्धानि भूभृतां ज्यायतो ( सो ) जयस्तेषाम् । स्थानं युगमिति याम्योत्तरायतं भूमिकम्पाय ॥ १३ ॥ युगमेव याम्यकोट्यां किंचित्तुङ्गं सपार्श्वशायीति । विनिहन्ति सार्थवाहान्वृष्टेश्च विनिग्रहं कुर्यात् ॥१४॥ अत्युच्छ्रायादेकं यदि शशिनोऽवाङ्मुखं भवेच्छृङ्गम्। आवर्जितमित्यसुभिक्षकारि तद्गोधनस्यापि ॥१५॥ अव्युच्छिन्ना रेखा समं ततो मण्डले च कुण्डाख्ये । तस्मिन्माण्डलिकानां स्थानत्यागो नरपतीनाम् ॥१६॥ शृङ्गेणैकेनेन्दुं विलीनमथ चाऽप्यवाङ्मुखम् शृङ्गम् । संपूर्णशृङ्गं चाभिनवं दृष्ट्वैको जीविताद्भ्रश्येत् ॥१७॥ संस्थानविधिः कथितो रूपाण्यस्माद्भवन्ति चन्द्रमसः । स्वल्पो दुर्भिक्षकरो महान्सुभिक्षावहः प्रोक्तः ॥ १८ ॥ नारद –आषाढद्वयमूलेन्द्रधिष्ण्यानां याम्यगः शशी । अग्निमदस्तोयचरवनसर्पविनाशकृत् ॥१९॥ विशाखामित्रयोर्याम्यपार्श्वयोः पापकृच्छशी । मध्यगः पितृदैवत्ये द्विदैवत्ये शुभोत्तरे ॥२०॥ कश्यप.–धातृपैतृकयोर्याम्यवर्ती दुर्भिक्षकृच्छशी । शुभदोऽनिलधिष्ण्यस्य सौम्यगो याम्यगोऽशुभः ॥ २१ ॥ वसिष्ठ.–प्रजापतेर्भं यदि पैतृभं वा भिनत्ति चन्द्रोऽन्तकरः प्रजानाम् । भानां यदा सौम्यगतस्तदानीं जनानुरागं सततं करोति ॥ २२ ॥ सदाऽऽमयाप्रीतिर(म)तीव दुःखं करोति याम्योपगतश्च भानाम् । षट् पौष्णतो द्वादश रौद्रधिष्ण्यात्सुराधिपाद्भानि नव क्रमेण ॥२३॥ पूर्वापरार्धापरभागगेन्दुर्भुङ्क्तेऽखिला व्योमचरास्तथैव । पूर्वार्धभुग्भेषु पतेः प्रिया स्याद्विवाहिता मध्यमभागगेषु ॥ २४ ॥ परस्परं प्रेम तयोर्नृनार्योः परेषु भर्ता वनिताप्रियः स्यात् । जघन्यधिष्ण्यानि जलेशसार्परौद्रेन्द्रयाम्यानिलदैवतानि ॥ २५ ॥ अध्यर्धधिष्ण्यान्यदितिद्विदैवस्थिराणि शेषाणि समाह्वयानि । अध्यर्धधिष्ण्येऽभ्युदितः शशाङ्कः करोति धान्यं महदर्घनाशम् ॥ २६ ॥ जघन्यभेत्यर्धमसंशयेन समार्घमन्येषु च मासि मासि । ज्ञात्वैवमेवं मणिजीवधातुमूलोर्णकर्पूररसादिकानाम् ॥ २७ ॥ अर्घं वदेज्ज्यौतिषिकः प्रजानां समस्तवस्तूत्तमसंग्रहार्थे । एतानि जाघन्यसमाधिकर्क्षाण्यत्रार्घकाण्डे विनियोजितानि ॥ २८ ॥ नोद्वाहजन्मादिषु यन्न चोक्तं तत्राभिजिद्भं विनियोजनीयम् ॥२९॥ नारदः–शुक्ले पिपीलिकाकारे हानिर्वृद्धिर्यवाकृतौ । सुभिक्षकृद्विशालेन्दुरविशालोऽर्घनाशनः । अवाङ्मुखे शस्त्रभयं कलहो दण्डसंनिभे ॥३०॥

---

१ ख. ज्यायिनो ज° । २ क. पुस्तक एव ग्रन्थान्तरीय. पाठ – °र्धग पा° । ३ ख. °म्यग गु° ।

वराहः- मत्यन्तान्कुनृपान्निहन्त्युडुपतेः शृङ्गे कुजेनाऽऽहते शस्त्रक्षुद्भयकृद्यमेन शशिजे नावृष्टिदुर्भिक्षकृत् । श्रेष्ठान्हन्ति नृपान्महेन्द्रगुरुणा शुक्रेण चाल्पान्नृपाञ्छुक्ले याप्यमिदं फलं ग्रहकृतं कृष्णे यथोक्तागमः ॥ ३१ भिन्नः सितेन मगधान्यवनान्पुलिन्दान्नेपालवङ्गमरुकच्छसुराष्ट्रमद्रान् । पाञ्चालकैकयकुलूतकपोरुपादान्हन्यादुशीनरजनानपि सप्तमासान् ॥ ३२ ॥ गान्धारसौवीरकसिन्धुवीरान्धान्यानि शैलान्द्रविडाधिपांश्च । द्विजांश्च मासान्दश शीतरश्मिः संतापयेद्राक्पतिना विभिन्नः ॥ ३३ ॥ उद्युक्तान्सह वाहनैर्नरपतींस्त्रिगर्तकान्मालवान्कौलिन्दान्गणपुङ्गवानथ शिबीनायोध्यकान्पार्थिवान् । हन्यात्कौरवशुक्तिमत्स्यनृपतीन्राजन्यमुख्यानपि प्रालेयांशुरसद्ग्रहे तनुगते षण्मासमर्यादया ॥ ३४ ॥ यौधेयान्सचिवान्सकौरवान्प्रागीशानथ चार्जुनायनान् । हन्यादर्कजभिन्नमण्डलः शीतांशुर्दशमासपीडया ॥ ३५ ॥ मगधान्मथुरांश्च पीडयेद्वेणायाश्च तटं शशाङ्कजः । अपरत्र कृतं युगं वदेद्यदि भित्त्वा शशिनं विनिर्गतः ॥ ३६ ॥ क्षेमारोग्यसुभिक्षविनाशी शीतांशुः शिखिना यदि भिन्नः । कुर्यादायुधजीविविनाशं चौराणामधिकेन च पीडाम् ॥ ३७ ॥ उल्कया यदा शशी ग्रस्त एव हन्यते । हन्यते तदा नृपो यस्य जन्मनि स्थितः ॥ ३८ ॥ भस्मनिभः परुषोऽरुणमूर्तिः शीतकरः किरणैः परिहीनः । श्यामतनुः स्फटिकस्फुरणो वा क्षुत्तृडमगाय (?) च चौरभयाय ॥ ३९ ॥ शुक्ले पक्षे संप्रवृद्धे विवृद्धिं ब्रह्म क्षत्रं याति वृद्धिं प्रजाश्च । हीने हानिस्तुल्यता तुल्यतायामुक्तं कृष्णे तत्फलं व्यत्ययेन ॥ ४० ॥ यदि कुमुदमृणालहारगौरस्तिथिनियमात्क्षयमेति वर्धते वा । अविकृतगतिमण्डलांशुयोगी भवति नृणां विजयाय शीतरश्मिः ॥ ४१ ॥

इति चन्द्रचारः ॥

---

## अथ कुजचारः ।

कश्यपः—अथातः संप्रवक्ष्यामि कुजचारमनुत्तमम् । यतः शुभाशुभं तेन चारेणाखिलदेहिनाम् ॥ १ ॥ नारदः—सप्ताष्टनवमर्क्षेषु स्वोदयाद्वक्रिते कुजे । तद्वक्रमुष्णं तस्मिन्स्यात्प्रजापीडाऽग्निसंभवः ॥ २ ॥ दशमैकादशे ऋक्षे द्वादशे वा प्रतीपगे । वक्रमश्रुमुखं तस्मिन्सस्यवृद्धिविनाशनम् ॥ ३ ॥ कुजे त्रयोदशे ऋक्षे वक्रिते वा चतुर्दशे । व्यालाख्यवक्रं तस्मिन्स्यात्सस्यवृद्धिरहेर्भयम् ॥ ४ ॥ पञ्चदशे षोडशर्क्षे तद्वक्रं रुधिराननम् । सुभिक्षकृद्भयं रोगान्करोति

---

१ ख कुशैत° २ क. रत्नगृहे ।

यदि भूमिजः ॥ ५ ॥ अष्टादशे सप्तदशे तदाऽसिमुशलं स्मृतम् । दस्युभिर्धनधान्यादि नश्येद्धामे प्रतीपगे ॥ ६ ॥ फल्गुन्योरुदितो भौमो वैश्वदेवप्रतीपगः । अस्तगश्चतुरास्यर्क्षे लोकत्रयविनाशकृत् ॥ ७ ॥ उदितः श्रवणे पुष्ये वक्रगो नृपहानिदः । यद्दिग्भेऽभ्युदितो भौमस्तद्दिग्भूपविनाशनम् ॥ ८ ॥ मघामध्यगतो भौमस्तस्यामेव प्रतीपगः । अवृष्टिशस्त्रभयदः पाण्ड्यदेशाधिपान्तकृत् ॥ ९ ॥ वसिष्ठः—अभ्युदितः पितृधिष्ण्ये तस्मिन्नेव प्रतीपगः क्षितिजः । पाण्ड्यक्षितिपतिमरणं करोति कलहं क्षितीशानाम् ॥ १० ॥ यस्मिन्दिग्द्वारनक्षत्रे क्षितिजोऽभ्युदयं गतः । तद्दिगीशस्य भयदो यदि तस्मिन्प्रतीपगः ॥११॥ नारदः—पितृद्विदैवधातॄणां भिद्येद्योगतारकाः । दुर्भिक्षं मरणं घोरं करोति यदि भूमिजः ॥ १२ ॥ त्रिपूत्तरेषु रोहिण्यां नैर्ऋते श्रवणेन्दुभे । अवृष्टिदश्चरन्भौमो रोहिणीदक्षिणे स्थितः ॥ १३ ॥ वसिष्ठः—विशाखाविश्वधिष्ण्यान्तपण्णां याम्यचरः कुजः । दुर्भिक्षवृष्टिभयकृदाहवो भुवि भूभुजाम् ॥१४॥ वराहः—दक्षिणतो रोहिण्याश्चरन्महीजोऽर्घनिग्रहकृत् । धूमायन्सशिखो वा विनिहन्यात्पारियात्रस्थान् ॥ १५ ॥ नारदः—भूमिजः सर्वधिष्ण्यानामुदग्गामी शुभावहः । याम्यगोऽनिष्टफलदो भेदे भेदकरो नृणाम् ॥ १६ ॥ वसिष्ठः—मेषसिंहवृषचापसंस्थिते वक्रिते क्षितिसुतेऽथ वा शनौ । गोनराश्वगजपक्षिसमूहो नाशमेति निखिलं च दलं वा ॥ १७ ॥ वराहः—विपुलविमलमूर्तिः किंशुकाशोकवर्णः स्फुटरुचिरमयूखस्तप्तताम्रप्रभाभः । विचरति यदि मार्गं चोत्तरं मेदिनीजः शुभकृदवनिपानां हार्दिदश्च प्रजानाम् ॥ १८ ॥

इति कुजचारः ॥

---

## अथ बुधचारः ।

कश्यपः—अथातः संप्रवक्ष्यामि बुधचारं समासतः । उदयं न व्रजेत्सौम्यो विनोत्पातेन सर्वदा ॥ १ ॥ आतङ्कवृष्टिसङ्ग्रामदुर्भिक्षानलतो भयम् ॥ नारदः—वसुवैष्णवविश्वेन्दुधातृभेषु चरन्बुधः । भिनत्ति यदि तत्तारामवृष्टिव्याधिभीतिकृत् ॥ २ ॥ आर्द्रादिपितृभान्तेषु दृश्यते यदि चन्द्रजः । तदा दुर्भिक्षकलहरोगानावृष्टिभीतिकृत् ॥ ३ ॥ हस्तादिषट्सु तारासु विचरन्निन्दुनन्दनः । क्षेमं सुभिक्षमारोग्यं कुरुते पशुनन्दनम् ॥ ४ ॥ अहिर्बुध्न्यार्यमाग्नेययाम्यभेषु चरन्यदि । धातुक्षोभं च जन्तूनां करोति शशिनन्दनः ॥ ५ ॥ दस्रवारुणनैर्ऋत्यरेवतीषु

१ क. 'द्रे म' ।

चरन्बुधः । भिषक्तुरगवाणिज्यवृत्तीनां नाशदस्तदा ॥ ६ ॥ पूर्वात्रये चरन्सौम्यो योगतारां भिनत्ति चेत् । क्षुच्छस्त्रामयतोये भ्यो भयदः प्राणिनां तदा ॥ ७ ॥ याम्याग्निधातृवायव्यधिष्ण्येषु प्राकृता गतिः । ऐशेन्दुसार्पपित्र्येषु ज्ञेया मिश्राह्वया गतिः ॥ ८ ॥ संक्षिप्तां दितिभाग्यार्यमेज्यधिष्ण्येषु या गतिः । गतिस्तीक्ष्णाजचरणाहिर्बुध्न्येन्द्राश्विभेषु या ॥ ९ ॥ योगान्तिकान्त्यविश्वाम्बुमूलगस्येन्दुजस्य च । घोरा गतिर्हरित्वाष्ट्रवसुवारणभेषु च ॥ १० ॥ इन्द्राग्निमित्रमार्तण्डभेषु पापाह्वया गतिः । प्राकृताद्यासु गतिषूदितो वाऽस्तमितोऽपि वा ॥ ११ ॥ एतावन्ति दिनान्येव दृश्यस्तावन्त्यदृश्यगः । चत्वारिंशत्क्रमात्त्रिंशद्द्वाविंशद्विंशतिर्नव ॥ १२ ॥ पञ्चादशैकादशेतिदिवसैः शशिनन्दनः । प्राकृतायां गतौ सस्यक्षेमारोग्यसुभिक्षकृत् ॥ १३ ॥ मिश्रसंक्षिप्तयोर्मध्यफलदोऽन्यास्वनिष्टदः ॥ १४ ॥ वसिष्ठः—विकला ऋज्व्यनुवक्रा वक्रा स्युर्वो धनस्य गतिभेदाः । विविधफलं तासु करोत्यविकलमेवं चलीयांश्चेत् ॥ १५ ॥ शस्त्रभयाभयजननी विकला ऋज्वी च देहिनां शुभदा । अर्थविनाशनकरी त्वनुवक्रा भूपयुद्धदा वक्रा ॥ १६ ॥ नारदः—वैशाखे श्रावणे पौषेऽप्याषाढेऽभ्युदितो बुधः । जनानां पापफलदस्त्वितरेषु शुभप्रदः ॥ १७ ॥ वराहः—पौषे करोति डमरं माघे वातं तथा च चन्द्रसुतः । आषाढे रोगभयं वैशाखे श्रावणे च दुर्भिक्षम् ॥१८॥ आषाढमासे यदि शुक्लपक्षे सोमस्य पुत्रोऽभ्युदयं करोति । देवस्य भङ्गं त्वथ राष्ट्रभङ्गं जलस्य शोषं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ १९ ॥ नारदः—इषोर्जमासयोः शस्त्रदुर्भिक्षाग्निभयप्रदः । वसिष्ठः—रुद्धानि सौम्येऽस्तमिते पुराणि यान्युद्गमे तान्युपयान्ति मोक्षम् । अन्ये तु पश्चादुदिते वदन्ति लाभं पुराणां भवतीह तज्ज्ञाः ॥ २० ॥ हेमकान्तिरथ वा शुकवर्णः स्फाटिकेन मणिना सदृशो वा । स्निग्धमूर्तिरलघुश्च हिताय व्यत्यये न शुभकृच्छशिपुत्रः ॥ २१ ॥

इति बुधचारः ॥

---

## अथ गुरुचारः।

कश्यपः—अथातः संप्रवक्ष्यामि गुरुचारमनुत्तमम् । अनेन गुरुचारेण प्रभवाद्यब्दलक्षणम् ॥ १ ॥ वराहः—नक्षत्रेण महोदयमुपगच्छति येन देवपतिमन्त्री । तत्संज्ञं वक्तव्यं वर्षं मासक्रमेणैव ॥ २ ॥ वर्षाणि कार्तिकादीन्याग्नेयाद्भद्वयानुयोगीनि । क्रमशस्त्रिभं तु पञ्चममुपान्त्यमन्त्यं च यद्वर्षम् ॥३॥ नारदः—पीडा

स्यात्कार्तिके वर्षे रथगोग्न्युपजीविनाम् । क्षुच्छस्त्राग्निभयं वृद्धिः पुष्पकौसुम्भजीविनाम् ॥ ४ ॥ अनावृष्टिः सौम्यवर्षे मृगाखुशलभाण्डजैः । सर्वसस्यक्षयो व्याधिर्वैरं राज्ञां परस्परम् ॥ ५ ॥ निवृत्तवैराः क्षितिपा जगदानन्दकारका[१] । पुष्टिकर्मरताः सर्वे पौषेऽब्देऽध्वरतत्पराः ॥ ६ ॥ माघेऽब्दे सततं सर्वे पितृपूजनतत्पराः । सुभिक्षं क्षेममारोग्यं वृष्टिः कर्षकसंमता ॥ ७ ॥ चोराश्च प्रबलाः स्त्रीणां दौर्भाग्यं सुजनः खलः । क्वचिद्वृष्टिः क्वचित्सस्यं क्वचिद्वृद्धिश्च फाल्गुने ॥ ८ ॥ चैत्रेऽब्दे मध्यमा वृष्टिरुत्तमार्धं सुदुर्लभम् । सस्यार्घवृष्टयः स्वल्पा राजानः क्षेमकारिणः ॥ ९ ॥ वैशाखे धर्मनिरता राजानः सप्रजा भृशम् । निष्पत्तिः सर्वसस्यानामध्वरोद्युक्तचेतसः ॥ १० ॥ वृक्षगुल्मलतादीनां क्षेमं सस्यविनाशनम् । ज्यष्ठेऽब्दे धर्मतत्त्वज्ञाः सनृपाः पीडिताः परैः ॥ ११ ॥ क्वचिद्वृष्टिः क्वचिद्वृद्धिः क्वचित्सस्यं न च क्वचित् । आषाढेऽब्दे क्षितीशाः स्युरन्योन्यजयकाङ्क्षिणः ॥१२॥ अनेकसस्यसंपूर्णा सुरस्पर्धिजनाकुला । पापपाखण्डिहन्त्री भूः श्रावणेऽब्दे विराजिता ॥ १३ ॥ पूर्वसस्यस्य संपूर्तिर्नाशं यात्यपरं तु यत् । मध्यवृष्टिर्महत्सस्यं नृपाणां समरं महत् ॥ १४ ॥ अब्दे भाद्रपदे लोके क्षेमाक्षेमं क्वचित्क्वचित् । धनधान्यसुवृद्धिश्च सुभिक्षमतिवृष्टयः ॥ १५ ॥ भवन्त्याश्वयुजे वर्षे संतुष्टाः सर्वजन्तवः । सुवृष्टिः सर्वसस्यानि फलितानि भवन्ति च ॥ १६ ॥ सौम्यभागे चरन्भानां क्षेमारोग्यसुभिक्षकृत् । विपरीतं गुरुर्याम्ये मध्ये चरति मध्यमम् ॥ १७ ॥ पीताग्निश्यामहरितरक्तवर्णोऽङ्गिराः क्रमात् । व्याध्यग्निरणचोरास्त्रभयकृत्प्राणिनां तदा ॥ १८ ॥ अनावृष्टिं धूमनिभः करोति सुरपूजितः । दिवा दृष्टो नृपवधं त्वथवा राष्ट्रनाशनम् ॥१९॥ संवत्सरः शरीरं स्यात्कृत्तिकारोहिणीत्युभे । नाभिस्त्वाषाढाद्वितयमार्द्रा हृत्कुसुमं मघा ॥२०॥ दुर्भिक्षाग्निमरुद्भीतिः शरीरे क्रूरपीडिते । नाभ्यां तु क्षुद्भयं पुष्पे सम्यग्ज्ञानफलक्षयः ॥२१॥ हृदये सस्यनिधनं शुभं स्यात्पीडिते शुभैः । मेषराशिगते जीवे त्वीतिर्मेषविनाशनम् ॥ २२ ॥ सस्यवृद्धिः प्रजारोग्यं वृष्टिः कर्षकसंमिता । वृषराशिगते जीवे शिशुस्त्रीपशुनाशनम् ॥ २३ ॥ मध्यवृष्टिः सस्यहानिर्नृपाणां समरं महत् । जनानां भीतिरीतिश्च नृपाणां दारुणं भयम् ॥ २४ ॥ विमर्पीडा मध्यवृष्टिः सस्यवृद्धिस्तृतीयभे ॥ २५ ॥ प्रभूतपयसो गावः सुजनाः सुखिनः स्त्रियः । मदोद्धताः कर्किणीज्ये सस्यवृष्टियुता धरा ॥ २६ ॥ सिंहराशिगते जीवे निःस्वा भूसुरसज्जनाः । अतिवृष्टिर्व्यालभयं नृपा युद्धे लयं ययुः ॥ २७ ॥ जीवे कन्यागते पुष्टा वृष्टिः स्वस्थाः क्षितीश्वराः। महोत्सुकाः क्षितिसुराः स्वस्थाः स्युर्निखिला जनाः ॥ २८ ॥ जीवे तुलागते

१ ग. 'हिर्ष्णाः' ।

सर्वं धातुमूलाकुलं जगत् । तथाऽपि धात्री संकीर्णा धनधान्यसुवृष्टिभिः ॥२९॥ महोद्धतानां भूपानां युद्धे जनपदक्षयः । अतुला वृष्टिरत्युग्रं डामरं कीटगे गुरौ ॥ ३० ॥ जीवे चापगते भीतिरीतिर्भूपावहं महत् । अतुला वृष्टिरत्युग्रा पीडा निःस्वाः क्षितीश्वराः ॥ ३१ ॥ अशत्रवो जना धात्री पूर्णा सस्यार्घवृष्टिभिः । वीतरोगभयाः सर्वे मकरस्थे सुरार्चिते ॥ ३२ ॥ सुरस्पर्धिजनैर्धात्री फलपुष्पार्घवृष्टिभिः । संपूर्णा कुम्भगे जीवे त्वीतिरोगयुता धरा ॥ ३३ ॥ धान्यार्घवृष्टिः संपूर्णा क्वचित्क्षेमं क्वचिद्भयम् । न्यायमार्गरता भूपाः सर्वे मीनस्थिते गुरौ ॥३४॥ वसिष्ठः–कुन्देन्दुशङ्खस्फटिकप्रवालनीहारमुक्ताफलसंनिभाभः । एवंविधो देवगुरुर्जनानां शुभप्रदः क्लेशनिवारकश्च ॥ ३५ ॥

इति गुरुचारः ॥

---

## अथ शुक्रचारः ।

नारदः—सौम्यमध्यमयाम्येषु मार्गेषु त्रित्रिवीथयः । शुक्रस्य दस्रभाज्ज्ञेयाः पर्यायैश्च त्रिभिस्त्रिभिः ॥ १ ॥ नागेभैरावताश्चैव वृषभगोजरद्गवाः । मृगाजदहनाः स्युस्ता याम्यान्ता वीथयो नव ॥ २ ॥ वसिष्ठः—अथ कथयामि नवानां वीथीनां फलानि यानि तान्यधुना ॥ ३ ॥ नागवीथिविचरन्भृगोः सुतः पश्चिमे दिशि च वृष्टिनाशकृत् ॥ क्षेमकृत्सुखकरो गजवीथ्यामर्घवृद्धिमतुलां करोति सः ॥ ४ ॥ शालीक्षुगोधूमयवादिसस्यसंपूर्णधात्री नितरां विभाति । ऐरावतोक्षाख्ययोश्च वीथ्योः स्थिते सिते संयति राजनाशः ॥ ४ ॥ गोवीथिगे दैत्यपुरोहिते भूर्विभाति नानाविधसस्यहृष्ट्या ('हृष्टा) । जरद्गवायां मृगसंज्ञितायां मध्याऽर्घवृष्टिर्महदाहवश्च ॥ ५ ॥ क्षितीशसङ्ग्रामक्षितिरितरी( मतिस्तथे )तिर्वह्निभयं वारिभयं जनानाम् । अजाग्निवीथ्योरतुलाग्निभीतिः किंचित्क्वचिद्वर्षति वासवोऽपि ॥६॥ उदग्वीथ्यां स दैत्येज्यश्चास्तगश्चोदितोऽपि वा । सुभिक्षकृन्मध्यवीथ्यां समः स्याद्याम्यगोऽशुभः ॥ ७ ॥ वराहः—भरणीपूर्वमिमण्डलमृक्षचतुष्कं सुभिक्षकरमाद्यम् । वङ्गाङ्गमहिषबाह्लिककलिङ्गदेशेषु भयजनकम् ॥ ८ ॥ अत्रोदितमारोहेद्ग्रहोऽपरो यदि सितं ततो हन्यात् । भद्राश्वशूरसेनकयोधेयककोटिवर्षनृपान् ॥ ९ ॥ भचतुष्टयमार्द्राद्यं द्वितीयमपि चाम्बुसस्यसंपत्त्यै । विप्राणामशुभकरं विशेषतः क्रूरचेष्टानाम् ॥ १० ॥ अन्येनात्राऽऽक्रान्ते म्लेच्छाटविकांश्च जीवगोमन्तान् । गोनर्दनीचशूद्रान्वैदेहांश्चानयः स्पृशति ॥११॥ विचरन्मघादिपञ्चकमुदितः सस्यप्रणाशकृच्छुक्रः । क्षुत्तस्करभयजननो नीचोन्नतिसंक-

रकरश्च ॥ १२ ॥ पित्राद्येऽवष्टब्धो हन्त्यश्मकनाविकाञ्शवरशूद्रान्। पुण्ड्रापरान्त्यमौलिकवनवासिद्रविडसामुद्रान् ॥ १३ ॥ स्वात्याद्यं भत्रितयं मण्डलमेतच्चतुर्थमभयकरम्। ब्रह्मक्षत्रसुभिक्षाभिवृद्धये मित्रलाभाय ॥ १४ ॥ अत्राऽऽक्रान्ते मृत्युः किरातभर्तुः पिनष्टि चेक्ष्वाकून्। प्रत्यन्तावन्त्यपुलिन्दटङ्कणान्सौरसेनांश्च ॥ १५ ॥ ज्येष्ठाद्यं पञ्चर्क्षं क्षुत्तस्कररोगदं प्रबाधयते। काश्मीराश्मकमत्स्यान्सचारुदेवीमवन्तीं च ॥ १६ ॥ आरोहेऽथाऽऽभीरद्रविडाम्बष्ठत्रिगर्तसौराष्ट्रान्। नाशयति सिन्धुसौवीरकांश्च काशीश्वरस्य वधः ॥१७॥ षष्ठं षण्नक्षत्रं शुभमेतन्मण्डलं धनिष्ठाद्यम्। भूरिधनगोकुलाकुलमनल्पधान्यं क्वचित्सभयम् ॥ १८ ॥ अत्राऽऽरोहे चूलिकगान्धारावन्तयः प्रपीड्यन्ते। वैदेहवधः प्रत्यन्तयवनशकदासपरिवृद्धिः ॥ १९ ॥ अपरस्यां स्वात्याद्यं ज्येष्ठाद्यं चापि मण्डलं शुभदम्। पित्राद्यं पूर्वस्यां शेषाणि यथोक्तफलदानि ॥ २० ॥ ज्योतिष्फलोदये—याम्याष्टकेऽम्बुदद्वारं तत्रास्तं गमिते सिते। भूरिवृष्टियुता धात्री सस्यवृद्धिः प्रजायते ॥ २१ ॥ मघाद्यं पञ्चकं वायुद्वारं शुक्रेऽस्तमागते। तत्र मेघोन्नतियुता द्यौः पयो नैव मुञ्चति ॥ २२ ॥ स्वातित्रयेऽस्तमायाते धर्मद्वारं भृगोः सुते। तत्राऽऽरोग्यसुखक्षेमयुताः स्युर्धर्मिणो जनाः ॥ २३ ॥ ज्येष्ठाद्यं पञ्चकं धूलिद्वारं तत्रास्तमागते। अग्निक्षुद्भीतिरत्यन्तं विग्रहो दारुणः सिते ॥ २४ ॥ वासवाश्वीभपर्यन्तं काञ्चनद्वारमीरितम्। तत्रास्तमागते शुक्रे सस्यवृद्धिः प्रजायते ॥ २५ ॥ भिन्द्न्यातोऽनलर्क्षं कूलातिक्रान्तवारिवाहाभिः। अव्यक्ततुङ्गनिम्ना समा सरिद्भिर्भवति धरित्री ॥ २६ ॥ वसिष्ठः—भिनत्ति रोहिणीचक्रं शुक्रः पैतृभतारकम्। यदा तदा भवत्येव कपालास्थिमयी धरा ॥२७॥ दृष्टः समस्तदिवसं भयदश्चाऽऽमयः सदा। दिनार्धं प्रति दृष्टश्चेत्परेषां बलभेदकृत् ॥ २८ ॥ नारदः—पूर्वस्यां दिशि जलदः शुभकृत्पितृपञ्चके। स्वातीत्रये पश्चिमायां सम्यक् शुक्रस्तथाविधः ॥ २९ ॥ विपरीते त्वनावृष्टिर्वृष्टिकृद्बुधसंयुतः। कृष्णाष्टम्यां चतुर्दश्याममायां वा यदा सितः ॥ ३० ॥ उदयास्तमयं याति सदा जलमयी क्षितिः। मिथः सप्तमराशिस्थौ पश्चात्प्राग्वीथिसंस्थितौ ॥ ३१ ॥ गुरुशुक्रावनावृष्टिदुर्भिक्षमरणप्रदौ। कुजज्ञजीवरविजाः शुक्रस्याग्रे सदा यदि। युद्धातिवायुदुर्भिक्षजलनाशकरास्तदा ॥ ३२ ॥ पृथक्फलानि वराहेणोक्तानि—निहन्ति शुक्रः क्षितिजेऽग्रतः प्रजा हुताशशस्त्रक्षुदवृष्टितस्करैः। चराचरं व्यक्तमथोत्तरापथं दिशो रजोल्कादहनैश्च पीडयेत् ॥ ३३ ॥ सौम्योऽस्तोदयोः पुरो भृगुसुतस्यावस्थितस्तोयकृद्रोगान्कामलपित्तजांश्च कुरुते पुष्णाति च ग्रैष्मिकान्।

हन्यात्प्रव्रजिताग्निहोत्रिकभिषग्रङ्गोपजीव्यान्हयान्वैश्यान्गाः सह वाहनैर्नरपतीन्मृद्नाति पश्चाद्दिशम् ॥३४॥ बृहस्पतौ हन्ति पुरस्थिते भृगोः सितं समस्तं द्विजगोसुरालयम् । दिशं च पूर्वां करकासृजोऽम्बुदा गले गदो भूरि भवेच्च शारदम् ॥३६॥ शनैश्चरे म्लेच्छविडालकुञ्जराः खरा महिष्योऽसितधान्यसूकराः । पुलिन्दशूद्राश्च सदक्षिणापथाः क्षयं व्रजन्त्यक्षिगदो मरुद्भवः ॥ ३६ ॥ प्रावृषि शुक्रः प्राच्यां दिशि स्थितोऽल्पं जलं सृजति । धान्यं च भूरि कुरुते तृणं च बहु जायते तत्र ॥ ३७ ॥ अपरां निषेवमाणः काष्ठां शुक्रो जलं सृजति भूरि । धान्यं कुरुते चाल्पं तृणं च बहु जायते तत्र ॥ ३८ ॥ उदक्स्थो दक्षिणस्थो वा बलवान्भार्गवः सदा । विबला याम्यगाश्चान्ये सौम्यगा बलिनो ग्रहाः ॥ ३९ ॥ शिखिभयमनलाभे शस्त्रकोपश्च रक्ते कनकनिकषगौरे व्याधयो दैत्यपूज्ये । हरितकपिलरूपे श्वासकासप्रकोपाः पतति न सलिलं खाद्भस्मरूक्षासिताभे ॥ ४० ॥ दधिकुसुमशशाङ्ककान्तिभृत्स्फुटविकसत्किरणो बृहत्तनुः । सुगतिरविकृतो जयान्वितः कृतयुगरूपधरः सिताह्वयः ॥ ४१ ॥

इति शुक्रचारः ॥

---

## अथ शनिचारः ॥

नारदः--श्रवणानिलहस्तार्द्राभरणीभाग्यभेषु च । चरञ्शनैश्चरो नृणां सुभिक्षारोग्यसस्यकृत् ॥ १ ॥ जलेशसार्पमाहेन्द्रनक्षत्रेषु सुभिक्षकृत् । क्षुच्छस्त्रावृष्टिदो मूलेऽहिर्बुध्न्यान्त्यमयोर्भयम् ॥ २ ॥ वराहः--यदा विशाखासु महेन्द्रमन्त्री सुतश्च भानोर्दहनर्क्षयातः । तदा प्रजानामनयोऽतिघोरः पुरप्रदोभे ( प्रभेदो ) गतयोर्भमेकम् ॥ ३ ॥ वसिष्ठः--अनुक्तभेष्वर्कसुतः प्रजानां चरंस्तदा मध्यमवृष्टिदः स्यात् । कीटाजपश्चाननकर्कटेषु चरञ्छनिः क्षुद्भयदः प्रजानाम् ॥ ४ ॥ दृष्टेर्भयं कुत्रचिदामयश्च तथाऽपि जीवन्ति जनाः कथंचित् । कन्यानृयुग्मे घटचापसंस्थितः स्वक्षेत्रसंस्थोऽपि शुभप्रदः स्यात् ॥ ५ ॥ वङ्गाङ्गकाश्मीरकलिङ्गगौडसौराष्ट्रदेशेष्वशुभप्रदः स्यात् ॥ ६ ॥ प्रक्षुभ्यन्ति क्षितीशाः प्रचलति वसुधा मोदते दस्युवर्गो धीभ्रंशो बुद्धिभाजां जनपदहरणं चित्रवर्षी पयोदः । चन्द्रार्को मन्दरश्मी ग्रहगणसहितौ वान्ति वाताः प्रचण्डाश्चक्राकारं समस्तं भ्रमति जगदिदं मीनगे सूर्यसूनौ ॥ ७ ॥ पृथक्फलानि वराहेणोक्तानि--तुरगतुरङ्गोपचा-

---

१ ख. °ते सितः सि° ।

रक्तकविवैद्यामात्यहार्कजोऽभिगतः । याम्ये नर्तकवादकगेयज्ञक्षुद्रनैकृ( ष्कृ )-तिहा ॥ ८ ॥ बहुलास्थे पीड्यन्ते सौरेऽग्न्युपजीविनश्च भूपाश्च । रोहिण्यां कोशलमद्रकाशिपाञ्चालशाकटिकाः ॥ ९ ॥ मृगशिरसि वत्सयाजकयजमानार्यजनमध्यदेशाश्च । रौद्रस्थे पारतरमठतैलका [ र ] रजकचौराश्च ॥ १० ॥ आदित्ये पाश्चनदमत्यन्तसुराष्ट्रसिन्धुसौवीरान् । पुष्ये घाण्टिकघौषिकयवनवणिक्कितवकुसुमानि ॥ ११ ॥ सार्पे जलरुहसर्पाः पित्र्ये वाह्लीकचीनगान्धाराः । चूलिकपारतवैश्याः कोष्ठागाराणि वणिजश्च ॥ १२ ॥ भाग्ये रसविक्रयिणः पण्यस्त्री-कन्यका महाराष्ट्राः । आर्यम्णे ( म्णे ) नृपगुडलवणभैक्षकाम्बूनि तक्षशिलाः ॥ १३ ॥ हस्ते नापितचाक्रिकचौरभिषक्सूचिकद्विपग्राहाः । वन्धयवः कोशलका मालाकाराश्च पीड्यन्ते ॥ १४ ॥ चित्रास्थे प्रमदाजनलेखकचित्रज्ञचित्रभाण्डानि । स्वातौ मागधचरदूतसूतपोतप्लवनटाद्याः ॥ १५ ॥ ऐन्द्राग्न्याख्ये त्रैगर्तचीनकौलूतकुङ्कुमं लाक्षा । सस्यान्यथ मञ्जिष्ठा कौसुम्भं च क्षयं याति ॥ १६ ॥ मैत्रे कुलूतटङ्कणखषकाश्मीराः समन्त्रिचक्रचराः । उपतापं यान्ति जना भवति विभेदश्च मित्राणाम् ॥ १७ ॥ ज्येष्ठासु नृपपुरोहितनृपपूज्यज्येष्ठकुलश्रेण्यः । मूले तु काशिकोशलपाञ्चालफलौषधियोधाः ॥ १८ ॥ आप्येऽङ्गवङ्गकोशलगिरिव्रजान्मागधपुण्ड्रमिथिलांश्च । उपतापं यान्ति जना वसन्ति ये ताम्रलिप्त्यां च ॥ १९ ॥ वैश्वे चरन्नर्कपुत्रश्चरन्दशार्णान्निहन्ति यवनांश्च । उज्जयनीशवरान्पारियात्रकान्कुन्तिभोजांश्च ॥ २० ॥ श्रवणे राज्याधिकृतान्विप्राड्यान्भिषक् पुरोहितकलिङ्गान् । वसुभे मगधेशजयो वृद्धिश्च जनेष्वधिकृतानाम् ॥ २१ ॥ साजे शतभिषजि भिषक्कविशौण्डिकपण्यनीतिवार्तानाम् । आहिर्बुध्न्ये नद्यो यानकराः स्त्री हिरण्यं च ॥ २२ ॥ रेवत्यां राजभृतः क्रौञ्चद्वीपाश्रिताः शरत्सस्यम् । शवराश्च निपीड्यन्ते यवनाश्च शनैश्चरे चरति ॥ २३ ॥ अण्डजहा रविजो यदि चित्रः क्षुद्भयकृद्यदि पीतमयूखः । शस्त्रभयाय च रक्तसवर्णो भस्मनिभो बहुवैरकरश्च ॥ २४ ॥ वैडूर्यकान्तिरमलः शुभदः प्रजानां बाणातसीकुसुमवर्णनिभश्च शस्तः । यं चातिवर्णमुपगच्छति तत्सवर्णं सूर्यात्मजः क्षपयतीति मुनिप्रवादः ॥ २५ ॥ मूर्ध्न्येकं च मुखे त्रीणि गुह्ये द्वे नयने तथा । हृदये पञ्च ऋक्षाणि वामहस्ते चतुर्थकम् ॥ २६ ॥ वामपादतले त्रीणि दक्षिणे त्रीणि वै तथा । चत्वारि दक्षिणे हस्ते जन्मभाद्रविजः स्थितः ॥ २७ ॥ रोगो लाभस्तथा हानिर्लाभः सौख्यं च बन्धनम् । आयासश्रेष्ठा यात्रा च अर्थलाभः क्रमात्फलम्

---

१ ख. "शावज्ञ" । २ क. तैतिकार"।

॥ २८ ॥ वक्रकृद्रविजस्येह तद्वक्रफलमीदृशम् । करोत्येव समः साम्यं शीघ्रगो व्युत्क्रमात्फलम् ॥ २९ ॥

इति शनिचारः ॥

## अथ राहुचारः ॥

वराहः—अमृतस्वादविशेषाच्छिन्नमपि शिरः किलासुरस्येदम् । प्राणैरपरित्यक्तं ग्रहतां यातं वदन्त्येके ॥१॥ इन्द्वर्कमण्डलाकृतिरसितत्वात्किल न दृश्यते गगने । अन्यत्र पर्वकालाद्वरमदानात्कमलयोनेः ॥ २ ॥ मुखपुच्छविभक्ताङ्गं भुजङ्गमाकारमुपदिशन्त्यन्ये । कथयन्त्यमूर्तमपरे तमोमयं सैंहिकेयाख्यम् ॥ ३ ॥ यदि मूर्तो भविचारी शिरोऽथवा मण्डली भवति राहुः । । भगणार्धेनान्तरितो गृह्णाति कथं नियतचारः ॥ ४ ॥ अनियतचारः स तु चेदुपलब्धिः संख्यया कथं तस्य । पुच्छाननाभिधानोऽन्तरेण कस्मान्न गृह्णाति ॥ ६ ॥ अथवा भुजगेन्द्ररूपः पुच्छेन मुखेन वा संगृह्णाति । मुखपुच्छान्तरसंस्थं स्थगयति कस्मान्न भगणार्धम् ॥ ६ ॥ राहुद्वयं यदि स्याद्ग्रस्तेऽस्तमितेऽथवोदिते चन्द्रे । तत्समगतिनाऽन्येन ग्रस्तः सूर्योऽपि दृश्येत ॥ ७ ॥ भूछायां स्वग्रहणे भास्करमर्कग्रहे मविशन्तीन्दुः । प्रग्रहणमतः पश्चान्नेन्दोर्भानोश्च पूर्वार्धे ॥ ८ ॥ वृक्षस्य स्वच्छाया यथैकपार्श्वे भवति दीर्घा च । निशिनिशि तद्वद्भूमेरावरणवशाद्दिनेशस्य ॥ ९ ॥ सूर्यात्सप्तमराशौ यदि चोदग्दक्षिणेन नातिगतः । चन्द्रः पूर्वाभिमुखश्छायामौर्वीं तदा विशति ॥ १० ॥ चन्द्रोऽधस्थः स्थगयति रविमम्बुदवत्समागतः पश्चात् । मतिदेशमतश्चित्रं दृग्विषयाद्भास्करग्रहणम् ॥ ११ ॥ आवरणं महदिन्दोः कुण्ठविपाणस्ततोऽर्धसंछन्नः । स्वल्पं रवेर्यतोऽतस्तीक्ष्णविपाणो रविर्भवति ॥ १२ ॥ एव मुपरागकारणमुक्तमिदं दिव्यदृग्भिराचार्यैः । राहुरकारणमस्मिन्नित्युक्तः शास्त्रसद्भावः ॥ १३ ॥ योऽसावसुरो राहुस्तस्य वरो ब्रह्मणाऽयमाज्ञप्तः। आप्यायनमुपरागे दत्तहुतांशेन ते भविता ॥ १४ ॥ तस्मिन्काले सांनिध्यमस्य तेनोपचर्यते राहुः । याम्योत्तरा शशिगतिर्गणितेऽप्युपचर्यतेऽर्थेन ॥ १५ ॥ न कथंचिदपि निमित्तैर्ग्रहणं विज्ञायते निमित्तानि । अन्यस्मिन्नपि काले भवन्त्यथोत्पातरूपाणि ॥ १६ ॥ पञ्चग्रहसंयोगान्न किल ग्रहणस्य संभवो भवति । तैलं च जलेऽष्टम्यां न विचिन्त्यमिदं विपश्चिद्भिः ॥ १७ ॥ अवनत्याऽर्के ग्रासो दिग्ज्ञेया चलनयाऽवनत्या च । तिथ्यवसानाद्वेलाकरणे कथितानि तानि मया ॥ १८ ॥ शेषो राहुचारो ग्रहणोपयोगित्वात्तत्र लिखितोऽस्ति ।

इति राहुचारः ॥

## अथ केतुचारः ।

वराहः—गार्गीयं शिखिचारं पाराशरमसितदेवलकृतं च । अन्यांश्च बहून्दृष्ट्वा क्रियतेऽयमनाकुलश्चारः ॥ १ ॥ दर्शनमस्तमयो वा न गणितविधिनाऽस्य शक्यते ज्ञातुम् । दिव्यान्तरिक्षभौमास्त्रिविधाः स्युः केतवो यस्मात् ॥ २ ॥ अहुताशेऽनलरूपं यस्मिंस्तत्केतुरूपमेवोक्तम् । खद्योतपिशाचालयमणिरत्नादीन्परित्यज्य ॥ ३ ॥ ध्वजशस्त्रभवनतरुतुरगकुञ्जराद्येष्वथाऽऽन्तरिक्षास्ते । दिव्या नक्षत्रस्था भौमाः स्युरतोऽन्यथा शिखिनः ॥ ४ ॥ शतमेकाधिकमेके सहस्रमेके वदन्ति केतूनाम् । बहुरूपमेकमेव प्राह मुनिर्नारदः केतुम् ॥ ५ ॥ यद्येको यदि बहवः किमनेन फलं तु सर्वथा वाच्यम् । उदयास्तमनैः स्थानैः स्पर्शैराधूमितैर्वर्णैः ॥ ६ ॥ यावन्त्यहानि दृश्यो मासास्तावन्त एव फलपाकः । मासैरब्दानि वदेत्प्रथमात्पक्षत्रयात्परतः ॥ ७ ॥ ह्रस्वतनुः प्रसन्नः स्निग्धस्त्वृजुरचिरसंस्थितः शुक्लः । उदितो वाऽप्यभिवृष्टः सुभिक्षसौख्यावहः केतुः ॥ ८ ॥ उक्तविपरीतरूपो न शुभकरो धूमकेतुरुत्पन्नः । इन्द्रायुधानुकारी विशेषतो द्वित्रिशूलो वा ॥ ९ ॥ हारमणिहेमरूपाः किरणाख्याः पञ्चविंशतिः सशिखाः । प्रागपरदिशोर्दृश्या नृपतिविरोधावहा रविजाः ॥ १० ॥ शुकवदनबन्धुजीवकलाक्षाक्षतजोपमा हुताशसुताः । आग्नेय्यां दृश्यन्ते तावन्तस्तेऽपि शिखिभयदाः ॥ ११ ॥ वक्रशिखा मृत्युसुता रूक्षाः कृष्णाश्च तेऽपि तावन्तः । दृश्यन्ते याम्यायां जनमरकावेदिनस्ते च ॥ १२ ॥ दर्पणवृत्ताकारा विशिखाः किरणान्विता धरातनयाः । क्षुद्भयदा द्वाविंशतिरैशान्यामम्बुतैलनिभाः ॥ १३ ॥ शशिकिरणहिमकुन्दकुमुदकुसुमोपमाः सुताः शशिनः । उत्तरतो दृश्यन्ते त्रयः सुभिक्षावहाः शिखिनः ॥ १४ ॥ ब्रह्मसुत एक एव त्रिशिखो वर्णैस्त्रिभिर्युगान्तकरः । अनियतदिक्संप्रभवो विज्ञेयो ब्रह्मदण्डाख्यः ॥ १५ ॥ शतमभिहितमेकसमेतमेकेन विरहिताऽन्यस्मात् । कथयिष्ये केतूनां शतानि नव लक्षणैः स्पष्टैः ॥ १६ ॥ सौम्यैशान्योरुदयं शुक्रसुता यान्ति चतुरशीत्याख्याः । विपुलसिततारकास्ते स्निग्धाश्च भवन्ति तीव्रफलाः ॥ १७ ॥ स्निग्धा प्रभासमेता विशिखाः षष्टिः शनैश्चराङ्गरुहाः । अतिकष्टफला दृश्याः सर्वत्रैते कनकसंज्ञाः ॥ १८ ॥ विकचा नाम गुरुसुताः सितैकताराः शिखापरित्यक्ताः । षष्टिः पञ्चभिरधिका स्निग्धा याम्याश्रिताः पापाः ॥ १९ ॥ नातिव्यक्ताः सूक्ष्मा दीर्घाः शुक्ला यथेष्टदिक्प्रभवाः । बुधजात (न्न) स्करसंज्ञाः पापफलास्त्वेकपञ्चाशत् ॥ २० ॥ क्षतजा-

१ क. °नपष्ट । २ ख. °सम्भव° ।

नलानुरूपास्त्रिशूलतारा: कुजात्मजा: षष्टि: । नाम्ना च कौङ्कुमास्ते सौम्याशासंस्थिता: पापा: ॥ २१ ॥ त्रिशत्र्यधिका राहोस्ते तामसकीलका इति ख्याता:। रविशशिगा दृश्यन्ते तेषां फलमर्कचारोक्तम् ॥ २२ ॥ विंशत्यधिकमन्यच्छतमग्नेर्विश्वरूपसंज्ञानाम् । तीव्रानलभयदानां ज्वालामालाकुलतनूनाम् ॥ २३ ॥ श्यामारुणा वितागश्चामररूपा विकीर्णदीधितय:। अरुणाख्या वायो: सप्तसप्तति: पापदा: पुरुषा: ॥ २४ ॥ पुञ्जनिकाशागणका नाम प्रजापतेरष्टौ । द्वे च शते चतुरधिके चतुरस्रा ब्रह्मसन्ताना: ॥ २५ ॥ कङ्का नाम वरुणजा द्वात्रिंशद्गुल्मसंस्थाना: । शशिवत्प्रभासमेतास्तीव्रफला: केतव: प्रोक्ता: ॥ २६ ॥ पण्णवति: कालसुता: कबन्धसंज्ञा: कबन्धसंस्थाना: । चण्डाभयप्रदा: स्युर्विरूपताराश्च ते शिखिन: ॥ २७ ॥ शुक्लविमलैकतारा नव विदिशां केतव: समुत्पन्ना: । एवं केतुसहस्रं विशेषमेषामतो वक्ष्ये ॥ २८ ॥ उदगायतो महान् स्निग्धमूर्तिरपरोदयी वसाकेतु: । सद्य: करोति मरकं सुभिक्षमप्युत्तमं कुरुते ॥ २९ ॥ तल्लक्षणोऽस्थिकेतु: स तु रूक्ष: क्षुद्भयावह:। कथित: स्निग्धस्तादृक्प्राच्यां शस्त्राख्यो डमरमरकाय ॥ ३० ॥ दृश्योऽमावास्यायां कपालकेतु: सधूम्ररश्मिशिख: । प्राङ्नभसोऽर्धविचारी क्षुन्मरकारोगवृष्टिकर: ॥ ३१ ॥ प्राग्वैश्वानरमार्गे शूलाग्र: श्यावरूक्षताम्रार्चि: । नभसस्त्रिभागगामी रौद्र इति कपालतुल्यफल: ॥ ३२ ॥ अपरस्यां चलकेतु: शिखया याम्याग्रयाऽङ्गुलोच्छ्रितया । गच्छेद्यथायथोदक् तथा तथा दैर्घ्यमायाति ॥ ३३ ॥ सप्त मुनीन्संस्पृश्य ध्रुवमभिजितमेव च प्रति निवृत्त: । नभसोऽर्धमात्रमित्वा याम्येनास्तं समुपयाति ॥ ३४ ॥ हन्यात्प्रयागकूलाद्यावदवन्तीति पुष्करारण्यम् । उदगपि च देविकामपि भूयिष्ठं मध्यदेशाख्यम् ॥३५॥ अन्यानपि च स देशान्क्वचित्क्वचिद्धन्ति दुर्भिक्षै: । दशमासात्फलपाकोऽस्य कैश्चिदष्टादशे प्रोक्त: ॥ ३६ ॥ प्रागर्धरात्रदृश्यो याम्याग्र: श्वेतकेतुरन्यश्च । क इति युगाकृतिरपरे युगपत्तौ सप्तदिनदृश्यौ ॥ ३७ ॥ स्निग्धौ सुभिक्षभयदावथाधिकं दृश्यते कनकमय: । दश वर्षाण्युपतापं जनयति शस्त्रप्रकोपकृतम् ॥ ३८ ॥ श्वेत इति जटाकारो रूक्ष: श्यामो वियत्त्रिभागगति: । विनिवर्ततेऽपसव्यं त्रिभागशेषा: प्रजा: कुरुते ॥ ३९ ॥ आधूम्रया तु शिखया दर्शनमायाति कृत्तिकासंस्थ: । ज्ञेय: स रश्मिकेतु: श्वेतसमानं फलं धत्ते ॥ ४० ॥ ध्रुवकेतुरनियतगति: प्रमाणवर्णाकृतिर्भवति विष्वक् । दिव्यान्तरिक्षभौमो भवत्ययं स्निग्ध इष्टफल: ॥ ४१ ॥ सेनाङ्गेषु नृपाणां गृहतरुदेशेषु वाऽपि देशानाम् । गृहिणामुपस्करेषु च विनाशिनां दर्शनं याति ॥ ४२ ॥ कुमुद इति कुमुदकान्तिर्वारुण्यां प्राक्शिखामेकाम् । दृष्ट: सुभिक्षमतुलं दश किल वर्षाणि स करोति ॥ ४३ ॥ सकृदेकयाम-

दृश्यः सुसूक्ष्मतारोऽपरेण मणिकेतुः । ऋज्वी शिखाऽस्य श्लक्ष्णा स्तनोद्गता क्षीरधारेव ॥ ४४ ॥ उदयन्नेव सुभिक्षं चतुरो मासान्करोत्यसौ सार्धान् । प्रादुर्भावं प्रायः करोति च क्षुद्रजन्तूनाम् ॥ ४५ ॥ जलकेतुरपि च पश्चात्स्निग्धशिखया परेण चोन्नतया । नवमासं स सुभिक्षं करोति शान्तिं च लोकस्य ॥ ४६ ॥ जलकेतुरेकरात्रं दृश्यः प्राक् सूक्ष्मतारकः स्निग्धः । हरिलाङ्गूलोपमया प्रदक्षिणावर्तया शिखया ॥ ४७ ॥ यावन्तः ( तः ) सुमुहूर्तान्दर्शनमायाति निर्दिशेन्मासान् । तावत्तुलं सुभिक्षं रूक्षः प्राणान्तिकान्रोगान् ॥ ४८ ॥ अपरेण पद्मकेतुर्मृणालगौरो भवेन्निशामेकाम् । सप्त करोति सुभिक्षं वर्षाण्यतिहर्षयुक्तानि ॥ ४९ ॥ आवर्त इति निशार्धे सव्यशिखोरुणनिभोऽपरोऽस्निग्धः । यावत्क्षणान्स दृश्यस्तावन्मासान्सुभिक्षकरः ॥५०॥ पश्चात्संध्याकाले संवर्तो नाम ताम्रशिखः । आक्रम्य वियत्त्र्यंशं शूलाग्रावस्थितो रौद्रः ॥५१॥ यावत एव मुहूर्तान्दृश्यो वर्षाणि हन्ति तावन्ति । भूपाञ्छस्त्रनिपातैरुदयर्क्षं चापि पीडयति ॥५२॥ ये शस्तास्तान्हित्वा केतुभिराधूमितेऽथ वा स्पृष्टे । नक्षत्रे भवति वधो येषां राज्ञां प्रवक्ष्ये तान् ॥ ५३ ॥ गगनार्धचारी ( चरः ) सद्यः प्रधानदेशान्विनाशयत्याचिरात् । सकलगगनानुचारी त्रैलोक्यविनाशनः केतुः ॥ ५४ ॥ अश्विन्यामश्मपतिं भरणीषु किरातपार्थिवं हन्यात् । बहुलासु कलिङ्गेशं रोहिण्यां सूरसेनपतिम् ॥ ५५ ॥ औशीनरमपि सौम्ये जलजाजीवाधिपं तथाऽऽर्द्रासु । आदित्येऽश्मकनाथं पुष्ये मगधाधिपं हन्ति ॥ ५६ ॥ असिकेशं मौजङ्गे पित्र्येऽङ्गं पाण्ड्यनाथमपि भाग्ये । औज्जयिनीकमार्यम्णे सावित्रे दण्डकाधिपतिम् ॥ ५७ ॥ चित्रासु कुरुक्षेत्राधिपस्य मरणं समादिशेत्प्राज्ञः । काश्मीरककाम्बोजौ नृपती प्राभञ्जने न स्तः ॥ ५८ ॥ इक्ष्वाकुरलकनाथश्च हन्यते यदि भवेद्विशाखासु । मैत्रे पौण्ड्राधिपतिर्ज्येष्ठास्वथ सार्वभौमवधः ॥ ५९ ॥ मूले तु मद्रकपतिर्जलदैवे काशिको मरणमेति । यौधेयकार्जुनायनशिबिचैद्या वैश्वदेवे च ॥ ६० ॥ हन्यात्कैकयनाथं पाञ्चनदं सिंहलाधिपं वङ्गम् । नैमिषनृपं किरातं श्रवणादिषु षट्सु च क्रमशः ॥६१॥ उल्काभिताडितशिखः शुभः शिखी शिवतराभिदृष्टो यः । अशुभः स एव चोलाश्रकाणसिंहहूणचीनानाम् ॥ ६२ ॥ नक्षत्रायतः शिखिशिखाभिहतो युतो वा ऋक्षं च यत्स्पृशति तत्कथितांश्च देशान् । दिव्यप्रभावनिहतान्स यथा गरुत्मान्भुङ्क्ते गतो नरपतिः परभोगिभोगान् ॥ ६३ ॥ दृष्टः पोदन्न वासरगनशुभदः केश्चिन्नदिष्टः शिखी सर्वारम्भफलप्रदो हि नियतं चैत्रेऽथवा

१ क. भवके । २ क. 'तारोऽभिवृष्टो' ।

माधवे। ऋक्षे यत्परिभुक्तधूमितहतं दग्धं शिखाभेदितं तत्सर्वं परिवर्ज्य शुद्धमपरं पाणिग्रहे वास्तुषु ॥ ६४ ॥

इति केतुचारः ॥

---

## अथागस्त्यचारः

वराहः–भानोर्वर्त्मविघातवृद्धशिखरो विन्ध्याचलः स्तम्भितो वातापी मुनिकुक्षिभित्सुररिपुर्जीर्णश्च येनासुरः। पीत्वा चाम्बुनिधेः पयांसि विपुला याम्या च दिग्भूषिता तस्यागस्त्यमुनेः पयोद्युतिकृतश्चारः समारभ्यते ॥ १ ॥ स्मरणादपि पापमपाकुरुते किमुत स्तुतिभिर्वरुणाङ्गरुहः। मुनिभिः कथितोऽस्य यथाऽर्घविधिः कथयामि तथैव नरेन्द्रहितम् ॥ २ ॥ संख्याविधानात्प्रतिदेशमस्य विज्ञाय संदर्शनमादिशेज्ज्ञः। तच्चोज्जयिन्यामगतस्य कन्यां भागैः स्वराख्यैः स्फुटभास्करस्य ॥ ३ ॥ ईषत्प्रभिन्नेऽरुणरश्मिजाले नैशेऽन्धकारे दिशि दक्षिणस्याम्। सांवत्सरावेदितदिग्विभागे भूपोऽर्घमुर्व्यां प्रयतः प्रयच्छेत् ॥ ४ ॥ कालोद्भवैः सुरभिभिः कुसुमैः फलैश्च रत्नैश्च सागरभवैः कनकाम्बरैश्च। धेन्वा वृषेण परमान्नयुतैश्च भक्ष्यैर्दध्यक्षतैः सुरभिधूपविलेपनैश्च ॥ ५ ॥ नरपतिरिदमर्घं श्रद्दधानो ददानः प्रविगतगददोषो निर्जितारातिपक्षः। भवति च यदि दद्यात्सप्त वर्षाणि सम्यग्जलनिधिरशनायाः स्वामितां याति भूमेः ॥ ६ ॥ द्विजो यथालाभमुपाहृतार्घः प्राप्नोति पुत्रान्प्रमदाश्च पौत्रान्। वैश्यश्च गा भूरि धनं च शूद्रो रोगक्षयं धर्मफलं च सर्वे ॥ ७ ॥ रोगान्करोति परुषः कपिलस्त्ववृष्टिं धूम्रो गवामशुभकृत्स्फुरणो भयाय। माञ्जिष्ठरागसदृशः क्षुधमाहवं च कुर्यादणुश्च पुररोधमगस्त्यनामा ॥ ८ ॥ शातकुम्भसदृशः स्फटिकाभस्तर्पयन्निव महीं किरणाग्रैः। दृश्यते यदि ततः प्रचुरान्ना भूर्भवत्यभयरोगजनाढ्या ॥ ९ ॥ उल्कया विनिहतः शिखिना वा क्षुद्भयं मकरमेव स धत्ते। दृश्यते किल स भाग्यगतेऽर्के रोहिणीमुपगतेऽस्तमुपैति ॥ १० ॥

इत्यगस्त्यचारः।

---

## अथ सप्तर्षिचारः।

वराहः–सैकावली विराजति ससितोत्पलमालिनी सहासेव। नाथवतीति च दिक्पैः कौबेरी सप्तभिर्मुनिभिः ॥ १ ॥ ध्रुवनायकोपदेशान्नरिनर्तीवोत्तरा भ्रमद्भिश्च। यैश्चारमहं तेषां कथयिष्ये वृद्धगर्गमतात् ॥ २ ॥ आसन्मघासु मुनयः

शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ । षड्द्विकपञ्चद्वि २५२६ युतः शककालस्तस्य राज्यस्य ॥ ३ ॥ वर्षसहस्रत्रितयं शतमेकं सप्ततिर्नवाग्रा च । शककालेयुतं मिश्रं कलेर्गतं धर्मपुत्रात्तु ॥ ४ ॥ एकैकस्मिन्नृक्षे शतं शतं ते चरन्ति वर्षाणाम् । प्रागुदयतोऽस्तविवराहजूद्रयं तत्र संयुक्ताः ॥ ५ ॥ पूर्वे भागे भगवान्मरीचिरपरे स्थितो वसिष्ठोऽस्मात् । तस्याङ्गिरास्ततोऽत्रिस्तस्याऽऽसन्नः पुलस्त्यश्च ॥ ६ ॥ पुलहः क्रतुरिति भगवानासन्नानुक्रमेण पूर्वाद्याः । तत्र वसिष्ठं मुनिवरमुपाश्रिताऽरुन्धती साध्वी ॥ ७ ॥ उल्काशनिधूमाद्यैर्हता विवर्णा विरश्मयो ह्रस्वाः । हन्युः स्वं स्वं वर्गं विपुलाः स्निग्धाश्च तद्वृद्ध्यै ॥ ८ ॥ गन्धर्वदेवदानवमन्त्रौषधिसिद्धयक्षनागानाम् । पीडाकरो मरीचिर्ज्ञेयो विद्याधराणां च ॥ ९ ॥ शकयवनदरदपारतकाम्बोजांस्तामसान्वनोपेतान् । हन्ति वसिष्ठोऽभिहतो विवृद्धिदो रश्मिसंपन्नः ॥ १० ॥ अङ्गिरसो ज्ञानयुता धीमन्तो ब्राह्मणाश्च निर्दिष्टाः । अत्रेः कान्तारभवा जलजान्यम्भोनिधिः सरितः ॥ ११ ॥ रक्षःपिशाचदैत्या दानवभुजङ्गाः स्मृताः पुलस्त्यस्य । पुलहस्य तु मूलफलं क्रतोस्तु यज्ञाः सयज्ञकृतः ॥ १२ ॥

इति सप्तर्षिचारः ।

---

## अथ ग्रहयुद्धम् ।

वराहः—युद्धं यथा यदा वा भविष्यमादिश्यते त्रिकालज्ञैः । तद्विज्ञानं करणे मया कृतं सूर्यसिद्धान्ते ॥ १ ॥ वियति चरतां ग्रहाणामुपर्युपर्यात्मसंस्थानाम् । अतिदूरा दृग्विषये समतामिव संप्रयातानाम् ॥ २ ॥ आसन्नक्रमयोगाद्भेदोल्लेखांशुमर्दनासव्यैः । युद्धं चतुष्प्रकारं पराशराद्यैर्मुनिभिरुक्तम् ॥ ३ ॥ केचित्—हस्तमात्रे भवेद्युद्धं बाहुमात्रे समागमः । वितस्तिमात्रमुल्लेखो भेदश्चैव निरङ्गुलः ॥ ४ ॥ भेदे वृष्टिविनाशो भेदः सुहृदां महाकुलानां च । उल्लेखे शस्त्रभयं मन्त्रिविरोधः प्रियान्नत्वम् ॥ ५ ॥ अंशुविमर्दे युद्धानि भूभुजां शस्त्ररुक्क्षुदवमर्दाः । युद्धे चाप्यपसव्ये भवन्ति युद्धानि भूपानाम् ॥ ६ ॥ रविराक्रन्दो मध्ये पौरः पूर्वे परे स्थितो यायी । पौरा बुधगुरुरविजा नित्यं शीतांशुराक्रन्दः ॥ ७ ॥ केतुकुजराहुशुक्रा यायिन एते ग्रहा हता हन्युः । आक्रन्दयायिपौरा जयिनो जयदाः स्ववर्गस्य ॥ ८ ॥ पौरे पौरेण हते पौराः पौरान्नृपान्विनिघ्नन्ति । एवं याय्याक्रन्दा नागरयायिग्रहाश्चैव ॥ ९ ॥ दक्षिणदिक्स्थः पुरुषो वेपथुरप्राप्य

---

१ क. 'दृश्यतामि' ।

संनिवृत्तोऽणुः। अधिरूढो विकृतो निष्प्रभो विवर्णश्च यः स जितः॥ १०॥ उक्तविपरीतलक्षणसंपन्नो जयगतो विनिर्दिष्टः। विपुलः स्निग्धो द्युतिमान्दक्षिणदिक्स्थोऽपि जययुक्तः॥ ११॥ द्वावपि मयूखयुक्तौ विपुलौ स्निग्धौ समागमे भवतः। अत्रान्योन्यप्रीतिविपरीतावात्मपक्षघ्नौ ॥१२॥ युद्धं समागमो वा यद्यव्यक्तौ तु लक्षणैर्भवतः। भुवि भूभृतामपि तथा फलमव्यक्तं विनिर्देश्यम् ॥ १३॥ गुरुणा जितेऽवनिसुते वाह्लिका यायिनोऽग्नि वार्ताश्च। शशिजेन सूरसेनककलिङ्गशाल्वाश्च पीड्यन्ते ॥१४॥ सौरेणाऽऽरे विजिते जयन्ति पौराः प्रजाश्च सीदन्ति। कोष्ठागारम्लेच्छक्षत्रियतापश्च शुक्रजिते ॥ १५॥ भौमेन हते शशिजे वृक्षसरित्तापसाश्मकनरेन्द्राः। उत्तरदिक्स्थाः क्रतुदीक्षिताश्च संतापमायान्ति॥ १६॥ गुरुणा बुधे जिते म्लेच्छशूद्रचौरार्थयुक्तपौरजनाः। त्रैगर्तपार्वतीयाः पीड्यन्ते कम्पते च मही ॥ १७॥ रविजेन बुधे ध्वस्ते नाविकयोधाब्जधेनुगर्भिण्यः। भृगुणाऽग्निशस्त्रकोपाः सस्याम्बुदयायिविध्वंसः॥१८॥ जीवे शुक्राभिहते कुलूतगान्धारकैकया मद्राः। शाल्वा वत्सा वङ्गा गावः सस्यानि नश्यन्ति ॥ १९॥ भौमेन जिते जीवे मध्यो देशो नरेश्वराः गावः। रविजेनवार्जुनाय नवसातियौधेयशिविविप्राः ॥ २०॥ शशितनयेनापि जिते बृहस्पतौ म्लेच्छसत्यशस्त्रभृतः। उपयान्ति मध्यदेशश्च संक्षयं यच्च भक्तिफलम् ॥ २१॥ शुक्रे बृहस्पतिहते यायी श्रेष्ठो विनाशमुपयाति। ब्रह्मक्षत्रविरोधः सलिलं च न वासवस्त्यजति ॥ २२॥ कोशलककलिङ्गवङ्गा वत्सा मत्स्याश्च मध्यदेशयुताः। महतीं व्रजन्ति पीडां नपुंसकाः सूरसेनाश्च ॥ २३॥ रविजेन सिते विजिते गणमुख्याः शस्त्रजीविनः क्षत्रम्। जलदाश्च निपीड्यन्ते सामान्यं भक्तिफलमन्यत् ॥ २४॥ असिते हते सिते वाऽर्घवृद्धिरहिविहगमानिनां पीडा। क्षितिजेन टङ्कणान्ध्रोण्ड्रकाशिवाह्लीकदेशानाम् ॥ २५॥ सौम्येन पराभूते मन्देऽङ्गवणिग्विहङ्गपशुनाशः। संताप्यन्ते गुरुणा स्त्रीबहुला महिपकर्पकाश्चापि ॥ २६॥ अयं विशेपोऽभिहितो हतानां कुजज्ञवागीशसितासितानाम्। फलं हि वाच्यं ग्रहभक्तितोऽन्यद्यथा यथा घ्नन्ति हताः स्वभक्तिः ॥ २७॥

इति ग्रहयुद्धम् ॥

---

## अथ चन्द्रग्रहसमागमः ॥

वराहः–भानां यथासंभवमुत्तरेण यातो ग्रहाणां यदि वा शशाङ्कः। प्रदक्षिणं तच्छुभदं नृपाणां याम्येन याते न शुभं शशाङ्के ॥ १॥ चन्द्रमा यदि कुजस्य

यात्युदक् पार्वतीयबलशालिनां जयः । क्षत्रियाः प्रमुदिताः समायिनो भूरिधान्यमुदिता वसुन्धरा ॥ २ ॥ उत्तरतः स्वसुतस्य शशाङ्कः पौरजयाय सुभिक्षकरश्च । सस्यचयं कुरुते जनहार्दं कोशचयं च नराधिपतीनाम् ॥ ३ ॥ बृहस्पतेरुत्तरगे शशाङ्के पौरद्विजक्षत्रियपण्डितानाम् । धर्मस्य देशस्य च मध्यमस्य वृद्धिः सुभिक्षं मुदिताः प्रजाश्च ॥ ४ ॥ भार्गवस्य यदि यात्युदक् शशी कोशयुक्तगजवाजिवृद्धिदः । यायिनां च विजयो धनुष्मतां सस्यसंपदपि चोत्तमा तदा ॥ ५ ॥ रविजस्य शशी प्रदक्षिणं यदि कुर्यात्पुरभूभृतां जयः । शकबाह्लिकसिन्धुपल्हवाः सुखभाजो यवनैः समन्विताः ॥ ६ ॥ येषामुदग्गच्छति भग्रहाणां प्रालेयरश्मिर्निरुपद्रवश्च । तद्द्रव्यपौरेतरभक्तिदेशान्पुष्णाति याम्येन निहन्ति तांश्च ॥ ७ ॥ शशिनि फलमुदक्स्थे यद्ग्रहस्योपदिष्टं भवति तदपसव्ये सर्वमेतत्प्रतीपम् ॥ इति शशिसमवायः कीर्तितोऽयं ग्रहाणां न खलु भवति युद्धं साकमिन्दोर्भ्रक्षैः ॥ ८ ॥

इति चन्द्रग्रहसमागमः ॥

---

## अथ ग्रहशृङ्गाटकम् ॥

यस्यां दिशि दृश्यन्ते विशन्ति तारा ग्रहा रविं सर्वे । भवति भयं दिशि तस्या आयुधकोपक्षुधातङ्कैः ॥१॥ चक्रधनुःशृङ्गाटकदण्डपुरप्रासादवज्रसंस्थानाः । क्षुद्वृष्टिकरा लोके समराय च मानवेन्द्राणाम् ॥ २ ॥ दृश्यते यत्र खांशे ग्रहमाला दिनकरे दिनान्तगते । तत्रान्यो भवति नृपः परचक्रोपद्रवश्च महान् ॥३॥ यस्मिन्नृक्षे कुर्युः समागमं तज्जनान्ग्रहा हन्युः । अविभेदिनः परस्परममलमयूखाः शिवास्तेषाम् ॥ ४ ॥ ग्रहसंवर्तसमागमसंमोहसमाजसंनिपाताख्याः । कोशश्चेत्येतेषामभिधास्ये लक्षणं सफलम् ॥ ५ ॥ एकर्क्षे चत्वारः सह पौरर्यायिनोऽथवा पञ्च । संवर्तो नाम भवेच्छिखिराहुयुतः स संमोहः ॥ ६ ॥ पौरः पौरसमेतो यायी सह यायिना समाजाख्यः । यमजीवसमाजेऽन्यो यद्यागच्छेत्तदा कोशः ॥ ७ ॥ उदितः पश्चादेकः प्राक्चान्यो यदि स संनिपाताख्यः । अविकृततनवः स्निग्धा विपुलाश्च समागमे धन्याः ॥ ८ ॥ सर्मा तु संवर्तसमागमाख्यौ संमोहकोशौ भयदौ प्रजानाम् । समाजसंज्ञे सुसमाः प्रदिष्टा वैरप्रकोपः खलु संनिपाते ॥ ९ ॥ वसिष्ठः—चत्वारः पञ्च वा खेटा बलिनस्त्वेकराशिगाः । राजाहवभयं दद्युरघमामयभीतिदाः ॥ १० ॥ यदा प्रतीपगौ खेटौ नृपसंक्षोभदौ तदा । प्रतीपगास्त्रयो यत्र युद्धवृष्टिभयप्रदाः ॥ ११ ॥ राजान्यत्वं च कुर्वन्ति चत्वारो यदि

चक्रिताः। प्रतीपगाः पञ्च खेटा राजराष्ट्रविनाशदाः ॥ १२ ॥* अर्कः सौरिः कुजः सौरिस्तमः सौरिः कुजो गुरुः। गुरुः सौरिः समायोगो महीनाशाय जायते ॥१३॥पञ्च ग्रहा घ्नन्ति चतुष्पदान्वै षट् च ग्रहा घ्नन्ति समस्तभूपान्। सप्त ग्रहा घ्नन्ति समस्तदेशान्निहन्ति चाष्टग्रहकूटयोगः ॥ १४ ॥ त्रिभिः क्रूरैश्चतुःसौम्यैरेकराशिस्थितैर्यदा। ग्रहसंकलितं नाम मेदिन्यां रुधिरं भवेत् ॥ १५ ॥ एकराशौ यदा यान्ति चत्वारः पञ्च खेचराः। प्लावयन्ति महीं सर्वां रुधिरेण जलेन वा ॥ १६ ॥

इति ग्रहशृङ्गाटकम्।

इति श्रीज्योतिर्निबन्धे चाराध्यायः समाप्तः।

---

## अथ मानप्रकरणम्।

वसिष्ठः—फलानि संहितोक्तानि मानायत्तानि यत्नतः। सिद्धान्तोक्तानि तान्यादौ ब्राह्मादीनि प्रचक्ष्महे ॥ १ ॥ पौलिशः—ब्राह्मं दैवं मनोर्मानं पैत्रं सौरं च सावनम्। नाक्षत्रं च तथा चान्द्रं जैवं मानानि वै नव ॥ २ ॥ एषु सावनसौरर्क्षचान्द्रैः स्यात्सर्वकर्मणाम्। सिद्धिरत्राथ वर्षस्य फलं जैवेन गृह्यते ॥ ३ ॥ वसिष्ठः—मानं विधातुः खलु नित्यमायुःप्रमाणविज्ञानविधौ च कार्यम्। गीर्वाणमन्वोरपि मानमेवं पैत्रं च मानं शशिनः प्रवृत्तम् ॥ ४ ॥ शिरोमणौ—खखाभ्रदन्तसागरैः ४३२००० र्युगा ४ ब्धि ३ युग्म २ भू १ गुणैः। क्रमेण सूर्यवत्सरैः कृतादयो युगाङ्घ्रयः ॥५॥ सिद्धान्तसार—जलधिभि ४ श्च युगै ४ श्च चतुर्युगं शशिनगै ७१श्चतुर्युगकैर्मनुः। कृतकुभि १४ र्मनुभिश्च दिनं विधेरिति निशाऽब्दशतायुरथाऽऽत्मभूः ॥ ६ ॥ आर्ष्टिषेणिः—पैतामहमहो दैवं युगं खाभ्राभ्रभू १००० गुणम्। स कल्पः कथ्यते प्राज्ञैस्तत्रेन्द्राः स्युश्चतुर्दश ॥ ७ ॥ शिरोमणौ—संधयः स्युर्मनूनां कृताब्दैः समा आदिमध्यावसानेषु तैर्मिश्रितैः। स्याद्युगानां सहस्रं दिनं वेधसः सोऽपि कल्पो द्युरात्रं तु कल्पद्वयम् ॥ ८ ॥ शतायुः शतानन्द एवं प्रदिष्टस्तदायुर्महाकल्प इत्युक्तमाद्यैः। यतोऽनादिमानेष कालस्ततोऽहं न वेद्म्यत्र पद्मोद्भवा ये गतास्तान् ॥ ९ ॥ तथा वर्तमानस्य कस्याऽऽयुषोऽर्धं कथं सार्धवर्षाष्टकं केचिदूचुः। भवत्वागमः कोऽपि नास्योपयोगो ग्रहा वर्तमानद्युपातात्प्रसाध्याः ॥ १० ॥ यतः सृष्टिरेषां दिनादौ दिनान्ते लयस्तेषु

* चत्वारः श्लोकाः ख. पुस्तके न सन्ति।

१ क. युगान्°।

सत्स्वेव तच्चारचिन्ता । अतो युज्यते कुर्वते तान्पुनर्येऽप्यसत्स्वेपु तेभ्यो महद्भ्यो नमोऽस्तु ॥ ११ ॥ याताः पण्मनवो युगानि भ २७ मितान्यन्यद्युगाङ्घ्रित्रयं नन्दाद्रीन्दुगुणास्तथा शकनृपस्यान्ते कलेर्वत्सराः । गोद्रीन्द्वद्रिकृताङ्कदस्त्रनगगोचन्द्राः शकाब्दान्विताः सर्वे संकलिताः पितामहदिने स्युर्वर्तमाने गताः ॥१२ ॥ सिद्धान्तसारे—स्वयंभूः स्वरोचिर्मनुश्चोत्तमाख्यस्ततस्तामसो रैवतश्चाक्षुषश्च । स वैवस्वतः पञ्च सावर्णिरेवं रुचिर्भूतिरुक्ताविमौ देवविद्भिः ॥ १३ ॥ मार्कण्डेयः—शतं हि तस्य वर्षाणां परमित्यभिधीयते । पञ्चाशद्भिस्तथा वर्षैः परार्धमिति कीर्त्यते ॥ १४ ॥ प्रथमं तत्परार्धं तु यातं तन्मुनिसत्तम । यस्यान्तेऽभून्महाकल्पः पाद्म इत्यभिधीयते ॥ १५ ॥ द्वितीयस्य परार्धस्य वर्तमानस्य वै द्विज । वाराह इति कल्पोऽयं प्रथमः परिकल्पितः ॥ १६ ॥ +नारदः—ग्रहाणां निखिलश्चारो गृह्यते सौरमानतः । वृद्धेर्विधानं स्त्रीगर्भं सावनेनैव गृह्यते ॥ १७ ॥ प्रवर्षणं मेघगर्भं नाक्षत्रेण च गृह्यते । यात्रोद्वाहव्रतक्षौरतिथिवर्षेशनिर्णयः ॥ १८ ॥ पर्ववास्तूपवासादि कृत्स्नं चान्द्रेण गृह्यते । गृह्यते गुरुमानेन प्रभवाद्यब्दलक्षणम् ॥ १९ ॥

इति मानप्रकरणम् ।

---

## अथ संवत्सरप्रकरणम् ।

ज्योतिष्प्रकाशे—शाककालं भजेत्षष्ट्या शेषं स्याद्व्यावहारिकः । प्रमाथिपूर्वकोऽब्दस्तु तुपारकरमानजः ॥ १ ॥ नन्दात्पष्टिगुणैर्युक्तः ३१७९ शालिवाहनकः शकः । कलेर्गतेन हीनोऽसौ तेनाङ्केन शको भवेत् ॥ २ ॥ तथा च विक्रमः शाको वेदवेदाभ्रपावकैः ३०४४ । बाणराममहीतुल्यं १३५ मन्तरं शकयोर्मतम् ॥ ३ ॥ शाके कङ्गाग्निभूतुल्ये १३६१ माघादौ प्रभवो भवेत् । कभ्रभूस्माङ्क ६११०१ वर्गोऽब्दभोगोऽब्दादिर्बृहस्पतेः ॥ ४ ॥ श्रीपतिः—शकेन्द्रकालः पृथगाकृतिघ्नः २२ शशाङ्कनन्दाश्वियुगैः ४२९१ समेतः । शराद्रिवस्विन्दु-१८७५ हृतः सलब्धः षष्ट्याऽऽप्तशेषे प्रभवादयोऽब्दाः ॥ ५ ॥ नारदः—युगं स्यात्पञ्चभिर्वर्षैर्युगानि द्वादशैव ते । तेषामीशाः क्रमाज्ज्ञेया विष्णुर्देवपुरोहितः ॥६॥ वराहः—विष्णुः सुरेज्यो बलभिद्धुताशस्त्वष्टोत्तराप्रोष्ठपदाधिपश्च । क्रमाद्युगेशाः पितृविश्वसोमशक्रानलाख्याश्विभगाः प्रदिष्टाः ॥ ७॥ संवत्सरोऽग्निः परिवत्सरोऽर्क

---

+ श्लोकद्वयं ग. पुस्तके नास्ति ।

१ ग. 'इकोऽग्निर्मोर्द' ।

इंद्राधिपः शीतमयूखमाली । प्रजाधिपश्चाप्यनुवत्सरः स्यादुद्वत्सरः शैलसुतापतिश्च ॥ ८ ॥ वृष्टिः समाऽऽद्ये प्रमुखा द्वितीये प्रभूततोया कथिता तृतीये । पश्चाज्जलं मुञ्चति यच्चतुर्थे स्वल्पोदकं पञ्चममब्दमुक्तम् ॥ ९ ॥ चत्वारि मुख्यानि युगानि तेषां विष्विन्द्रजीवानलदैवतानि । चत्वारि मध्यानि च मध्यमानि चत्वारि चान्त्यान्यधमानि विद्यात् ॥ १० ॥ आद्यं धनिष्ठांशमभिप्रवृत्तो माघे यदा यात्युदयं सुरेज्यः । षष्ट्यब्दपूर्वः प्रभवः स नाम्ना प्रपद्यते भूतहितस्तदाऽब्दः ॥ ११ ॥ पैतामहसिद्धान्ते–प्रमाथी प्रथमं वर्षे कल्पादौ ब्रह्मणः स्मृतम् । तदाऽपि परिहृच्छाके शेषं चान्द्रोऽत्र वत्सरः ॥ १२ ॥ व्यावहारिकसंज्ञोऽयं कालः स्मृत्यादिकर्मसु । योज्यः सर्वत्र तत्रापि जैवो वा नर्मदोत्तरे ॥१३॥ आर्ष्टिषेणिः–स्मरेत्सर्वत्र कर्मादौ चान्द्रं संवत्सरं सदा । नान्यं यस्माद्वत्सरादौ प्रवृत्तिस्तस्य कीर्तिता ॥ १४ ॥ नारदः–प्रभवो विभवः शुक्लः प्रमोदोऽथ प्रजापतिः । अङ्गिराः श्रीमुखो भावो युवा धाता तथैव च ॥ १५ ॥ ईश्वरो बहुधान्यश्च प्रमाथी विक्रमो वृषः । चित्रभानुः सुभानुश्च तारणः पार्थिवो व्ययः ॥ १६ ॥ सर्वजित्सर्वधारी च विरोधी विकृतिः खरः । नन्दनो विजयश्चैव जयो मन्मथदुर्मुखौ ॥ १७ ॥ हेमलम्बो विलम्बश्च विकारी शार्वरी प्लवः । शुभकृच्छोभनः क्रोधी विश्वावसुपराभवौ ॥ १८ ॥ प्लवङ्गः कीलकः सौम्यः साधारण ( णो ) विरोधकृत् । परिधावी प्रमादी स्यादानन्दो राक्षसोऽनलः ॥ १९ ॥ पिङ्गलः कालयुक्तश्च सिद्धार्थी रौद्रदुर्मती । दुन्दुभी रुधिरोद्गारी रक्ताक्षी क्रोधनः क्षयः ॥ २० ॥

इति संवत्सरनामानि ।

## अथ प्रभवादिसंवत्सरफलानि ।

क्वचिद्वृद्धिः क्वचिद्धानिः क्वचिदीतिः क्वचिद्भयः । तथाऽपि मोदते लोकः प्रभवाब्दे विमत्सरः ॥ १ ॥ आन्वीक्षिक्यां च निरताः सप्रजाः स्युः क्षितीश्वराः । कर्षकाभिमता वृष्टिर्विभवाब्दे विवैरिणः ॥ २ ॥[1] सकलत्रात्मजान्सम्यग्लालयन्त्यखिला जनाः । अमरस्पर्धिनः शुक्लवत्सरे विगतारयः ॥ ३ ॥ ईतिव्याध्यर्दि.ा लोकाः क्षितीशाः कलहोत्सुकाः । प्रमोदाब्दे प्रमोदन्ते तथाऽपि निखिला जनाः ॥ ४ ॥ कीनाः क्वचिन्न व्रजन्तः स्वाधीना धर्मवृत्तयः । एवं तमोदते लोकः प्रजापतिपरायतः ॥ ५ ॥ अतिथिस्वजनैः सार्धमन्नं बोभुज्यते मधु ।

१ स. प. स्याद्रीद'।

पेपीयते कामिनीभिरङ्गिरोब्दे निरन्तरम् ॥ ६ ॥ श्रीमुखाब्दे दुग्धपूर्णगोकर्णवलयेव भूः । सस्यपीताम्बरा वारिगात्रोतुङ्गपयोधरा ॥ ७ ॥ स्युर्भूभुजो भूभुजेभ्यः प्रभञ्जनभुजः परे । भावाब्दे भ्रमणाब्दीयाः शान्ता भ्रमणलोचनाः ॥ ८ ॥ युवानो निखिला लोकाः क्षितिश्चापि फलोत्कटा । यूनोऽजस्रं रमयति युवाब्दे युवतीजनः ॥ ९ ॥ धात्री धात्रीव लोकानामभया च फलप्रदा । धात्र्यब्दे धरणीनाथाः परस्परजयोत्सुकाः ॥ १० ॥ ईश्वराब्दे स्थिराः क्ष्मेशा जगदानन्दिनी मही । अम्बरे निरता विप्राः स्वस्वमार्गरताः परे ॥ ११ ॥ बहुधान्याब्दे बहुभिर्धान्यैः पूर्णाऽखिला धरा । गावः प्रभूतपयसो राजानः स्युर्विवैरिणः ॥ १२ ॥ बलाहका न मुञ्चन्ति कुत्रचित्प्रचुरं पयः । प्रमाथ्यब्दे वीतरागास्तथाऽपि सुखिनो जनाः ॥ १३ ॥ स्रवन्तोऽविरतं स्वच्छं स्रवन्ति प्रचुरं पयः । विक्रमाब्देऽखिलाः क्ष्मेशा विक्रमाक्रान्तभूमयः ॥ १४ ॥ विविधैरन्नपानाद्यैर्हृष्टपुष्टाङ्गचेतसः । मदोन्मत्ताः खिला लोका वृषाब्दे वृषसंनिभाः ॥ १५ ॥ चित्रिता वसुधा चित्रपुष्पवृष्टिफलादिभिः । चित्रभानुशरच्चैषा भाति चित्राङ्गना यथा ॥ १६ ॥ भजन्ते भेषजं भुक्त्वा भूमिं भूरिफलान्विताम् । सुभानुवत्सरे भूमिर्भीमभूपाजिविग्रहा ॥ १७ ॥ प्रतरन्त्युडुपोपायैः सारितोऽर्थाय संततम् । तारणाब्दे त्वतुलिता ह्यर्थवन्तो हि जन्तवः ॥ १८ ॥ पतन्ति करकोपेताः पयोधारा निरन्तरम् । पापादपेतमनसः पार्थिवाब्दे तु पार्थिवाः ॥ १९ ॥ दीप्यते वसुधा वीरभटवारणवाजिभिः । व्यपेतव्याधयः सर्वे व्ययाब्दे तु व्ययान्विताः ॥ २० ॥ गीर्वाणपूर्वगीर्वाणगर्वनिर्भरचेतसः । सर्वजिद्वत्सरे सर्वे उर्वीशा घ्नन्ति भूमिपान् ॥ २१ ॥ सर्वधारिणि वर्षेऽस्मिञ्जगदानन्दिनी धरा । प्रशान्तवैरा राजानः प्रजापालनतत्पराः ॥ २२ ॥ विरोधं सततं कुर्वन्त्यन्योन्यं भूमिपाः प्रजाः । विरोधिकृद्वत्सरे भूर्भूरिवारिधरैर्वृता ॥ २३ ॥ विकृतिः प्रकृतिं याति प्रकृतिर्विकृतिं तथा । तथाऽपि मोदते लोकश्चास्मिन्विकृतिवत्सरे ॥ २४ ॥ खराब्दे सततं सम्यग् वर्धन्ते पशवः प्रजाः । राजानो विलयं यान्ति परस्परविरोधिनः ॥ २५ ॥ आनन्ददा धराऽजस्रं प्रजाभ्यः फलसंचयैः । नन्दनाब्दे स्वहानिः स्यात्कोशधान्यविनाशतः ॥ २६ ॥ नश्यते वारिधाराभिः पूर्वकृष्यखिलं फलम् । राजभिश्चावरं सर्वं विजयाब्दे जयेप्सुभिः ॥ २७ ॥ शैलोद्यानवनारामफलैस्तुलिता मही । जेगीयते वेणुनादैर्जयाब्दे यर्णहार्यलम् ॥ २८ ॥ मन्मथाब्देऽखिला लोकास्तत्केलिरसलो-

---

१ क. 'ङ्गेनपा' । २ ख. ग. 'रोधनः ३ क. 'शफन्

लुपाः । शाल्मीक्षुयवगोधूमैर्नयनाभिनवा धरा ॥ २९ ॥ दुर्मुखाब्देऽग्निरोगाः स्युः प्रचुरान्नं तथेतयः । राजानः सप्रजास्तुष्टा निःस्वास्ते द्विजसत्तमाः ॥ ३० ॥ हेमलम्बे नृपाः सर्वे परस्परविरोधिनः । प्रजापीडा त्वनर्घत्वं तथाऽपि सुखिनो जनाः ॥ ३१ ॥ विलम्बिवत्सरे राजविग्रहो भूरिवृष्टयः। आतङ्कपीडितो लोकः प्रभूतं चापरं फलम् ॥ ३२ ॥ विकारिणो विकार्यब्दे पित्तरोगादिभिर्नराः । देवो वर्षति संपूर्णं समुद्ररसनक्षितौ ॥ ३३ ॥ शार्वरीवत्सरे सर्वसस्यवृद्धिरनुत्तमा । राजानो विलयं यान्ति परस्परजयेच्छया ॥ ३४ ॥ चलिताचलसंकाशैः पयोदैरावृतं नभः। दीप्यन्ते सततं भूपाः प्लवाब्दे प्लवगा जनाः ॥ ३५॥ राजते पृथिवी सर्वा सततं विविधोत्सवैः । शुभकृद्वत्सरे वृद्धिः प्रजानां पशुभिः सह ॥ ३६ ॥ शोभने वत्सरे सर्वसस्यानामतिवृद्धयः । नृपाणां स्नेहमन्योन्यं प्रजानां च परस्परम् ॥ ३७ ॥ अपि सन्तीतयः क्रोधिन्यब्दे सस्यसमृद्धयः । दम्पत्योर्वैरमन्योन्यं प्रजानां च परस्परम् ॥ ३८ ॥ सम्यग्विश्वावसावब्दे मध्यसस्यार्घवृष्टयः । प्रचुरो घोररोगाश्च नृपा लोभाकुलीकृताः ॥ ३९ ॥ पराभवाब्दे राजानः प्राप्नुवन्ति पराभवम् । आमयः क्षुद्रधान्यानि प्रभूतानि सुवृष्टयः ॥४०॥ प्लवङ्गाब्दे सस्यहानिश्चिररोगार्दिता जनाः । मध्यवृष्टिः क्षितीशानां विरोधश्च परस्परम् ॥ ४१ ॥ प्रचुराः पैत्तरोगाः स्युर्मध्यवृष्टिरहेर्भयम् । कीलकाब्दे त्वीतिभयं प्रजाक्षोभः परस्परम् ॥ ४२ ॥ अतिवृष्टिररोगत्वं प्रजाः स्युः स्वस्थचेतसः । सौम्येऽब्दे सततं सर्वे शान्तवैराः क्षितीश्वराः ॥ ४३ ॥ साधारणाब्दे राजानः सुखिनो गतमत्सराः। प्रजाश्च पशवः सर्वे वृष्टिः कर्षकसंमता ॥ ४४॥ विरोधकृद्वत्सरे [1] परस्परविरोधिनः । राजानो मध्यमा वृष्टिः प्रजाः स्वस्था निरन्तरम् ॥ ४५ ॥ अनर्थामयरोगेभ्यो भीतिरीतिर्निरन्तरम् । परिधाविनि वर्षे तु नृणां वृष्टिश्च मध्यमा ॥४६॥ नृपक्रोधो भवत्युग्रः प्रजापीडा त्वनर्घता । तथाऽपि दुःखं नाऽऽप्नोति प्रमादिवत्सरे जनः॥४७॥ आनन्दवत्सरे सर्वे जन्तवः प्रसन्नः सदा । आनन्दयन्ति चान्योन्यमन्यथा तु क्वचित्क्वचित् ॥ ४८॥ अनन्ता मध्यफलदा तद्धीगाहवोऽन्वहम् । निष्कृपा राक्षसाब्दे तु राक्षसा इव जन्तवः ॥ ४९ ॥ अनलाब्देऽनलभयं मध्यवृष्टिरनर्घता । नृपसंक्षोभसंभूता भूरिभीकरभूमयः ॥ ५० ॥ पिङ्गलाब्दे तु सततं दिक्पूरितघनस्वनाम् । भूभुजः स्वभुजाक्रान्तां भुञ्जते भूसतीं शुभाम् ॥ ५१ ॥ अतिवृष्टिः कालयुक्तवत्सरे सुखिनो जनाः । सन्तीतयोऽपि सस्यानि संपूर्णान्यन्यथा द्रुमाः ॥ ५२ ॥ सिद्धार्थिवत्सरे

---

१ क. "राश्चेर"

भूपा अन्योन्यस्नेहकाङ्क्षिणः । संपूर्णसस्याम्बुसुधां दुदुहुर्गां यथा तथा ॥५३॥ अन्योन्यनृपसंक्षोभचौरव्याघ्रादिभिर्भयम् । मध्यवृष्टिरनर्घत्वं रौद्राब्दे नैव गौर्जरे ॥ ५४ ॥ दुर्मत्यब्दे दुर्मतयो भवन्त्यखिलभूमिपाः । तथाऽपि सुखिनो लोकाः सङ्ग्रामे निर्जितारयः ॥ ५५ ॥ सर्वसस्येन संपूर्णा धात्री दुन्दुभिवत्सरे। राजभिः पाल्यते पूर्वदेशश्चौरविनाशनम् ॥ ५६ ॥ आहवे निहताः सर्वे भूपा रोगैस्तथा जनाः । तथाऽपि ते प्रजीवन्ति रुधिरोद्गारिवत्सरे ॥ ५७ ॥ रक्ताक्षिवत्सरे सस्यवृद्धिर्वृष्टिरनुत्तमा । प्रेक्षन्ते सर्वदाऽन्योन्यं राजानो रक्तलोचनाः ॥ ५८ ॥ क्रोधनाब्दे मध्यवृष्टिः पूर्वसस्यं न तु क्वचित् । संपूर्णमितरत्सर्वं सर्वे क्रोधपरा जनाः ॥ ५९ ॥ कार्पासगन्धतैलेक्षुमधुसस्यविनाशनम् । क्षीयमाणाश्चापि नरा जीवन्ति क्षयवत्सरे ॥ ६० ॥ आनन्दादिर्भवेद्ब्रह्मा भावादिर्विष्णुरुच्यते । जयादिर्जायते रुद्रो विंशत्या च क्रमाद्भवेत् ॥ ६१ ॥

इति संवत्सरफलम् ।

---

## अथ राजादीनां निर्णयः ।

रत्नावल्याम्—दर्शप्रतिपत्सन्धौ चैत्रादौ यो भवेद्वारः । सोऽब्दप उक्तस्त्वपरैः प्रतिपदि मध्याह्नकाले यः ॥ १ ॥ बहुभिः कीर्तितो राजा रवेरुदयकालिकः । तत्र भूपद्वयं वृद्धौ भूपाभावस्तिथिक्षये ॥ २ ॥ चैत्रसितप्रतिपदि यो वारोऽर्कोदये स वर्षेशः । उदयद्वितये पूर्वो नोदययुगलेऽपि पूर्वः स्यात् ॥ ३ ॥ दर्शान्तेऽनलयेऽपि च स पूर्वराजस्तदागमाविरोधः । यस्माच्चैत्रसितादेरुदयाद्भानोः प्रवृत्तिरब्दादेः॥४॥ब्रह्मगुप्तः—चैत्रसितादेरुदयाद्भानोर्दिनमासयुगकल्पाः । सृष्ट्यादौ लङ्कायां समं प्रवृत्ता दिनेऽर्कस्य ॥ ५ ॥ गर्गः—अमाप्रतिपदोः सन्धिर्मध्याह्नात्पूर्वतो यदि । तदा तद्दिनपो राजा परतश्चेत्परो भवेत् ॥ ६ ॥ ज्योतिष्कलोदये—चैत्रस्य शुक्लप्रतिपत्तिथौ यो वारः स उक्तो नृपतिस्तदाब्दे । मेषप्रवेशः किल भास्करस्य यस्मिन्दिने स्यात्स तु राजमन्त्री ॥ ७ ॥ कर्कप्रवेशे दिनपः स उक्तो सस्यस्य नाथो मुनिभिः पुराणैः । आर्द्राप्रवेशे दिननाथ उक्तो मेघाधिपः मान्तनविप्रवर्यैः ॥ ८ ॥ तुलाप्रवेशेऽहनि यस्य वारो रसाधिपोऽयं नियतं प्रदिष्टः । चापप्रवेशे दिवसाधिनाथो धान्याधिपो वै कथितो मुनीन्द्रैः ॥ ९ ॥ चैत्रादिमेषचापार्द्रातुलाकर्कदिनेश्वराः । नृपमन्त्रिधान्यतोयरससस्याधिपेश्वराः ॥ १० ॥

इति राजादिनिर्णयः ।

## अथ राजफलम् ।

सूर्यस्य राज्ये जलहीनता स्यात्पयोधराणां महती च पीडा। जनस्य चोराः फलपुष्पमल्पं भवेत्तरूणां कलहो नृपाणाम् ॥ १ ॥ सोमस्य राज्येऽखिललोकगेहे कल्याणकार्याणि गवां विवृद्धिः । वृष्टिः प्रभूता बहुसस्यसंपत्सौख्यं जनो विन्दति रोगहीनः ॥ २ ॥ भौमस्य राज्येऽग्निभयं धरित्री सस्येन हीना क्वचिदेव वृष्टिः । चौराः प्रभूता मनुजेश्वराणां स्याद्विग्रहोऽन्योन्यजयाय नूनम्॥ ३ ॥ बुधस्य राज्ये धनधान्यसंकुलं महीतलं वृष्टिरनुत्तमा च । जना विवाहोत्सवयज्ञकाङ्क्षिणः सुभिक्षमस्मिन्बहुवातवृष्टिः ॥ ४ ॥ जीवस्य राज्ये कनकाम्बुधारावृष्टिश्च गावो बहुदुग्धयुक्ताः । विप्राः सदा यज्ञमहोत्सवेन प्रहृष्टचित्ताः फलपुष्पसंपत् ॥ ५ ॥ शुक्रस्य राज्ये सरितस्तडागा वाप्यश्च कूपाः परिपूर्णतोयाः । प्रभूतधान्यं फलिताश्च वृक्षा गावः सुदुग्धाः सुखिनश्च लोकाः ॥ ६ ॥ मन्दस्य राज्ये सकृदेव वृष्टिर्जने गदश्चोरकृता च पीडा । नृपा विनाशं युधि संप्रयान्ति दुर्भिक्षमुग्रं फलपुष्पहानिः ॥ ७ ॥

---

## अथ मन्त्रिफलम् ।

सूर्ये प्रधाने ज्वलिता धरित्री क्षुधाभिभूतं जगदल्पसस्यम् । महर्घता रोगभयं जनानां युद्धं नृपाणामतुलं न वृष्टिः ॥ १ ॥ सोमे प्रधानेऽभ्युदयं व्रजन्ति प्रजा महीशा बहुधा च वृष्टिः । शालीक्षुगोधूमगवां विवृद्धिर्यज्ञक्रियायां निरता द्विजाः स्युः ॥ २ ॥ भौमे प्रधाने क्वचिदेव वृष्टिर्धान्यं महर्घं ज्वलनप्रकोपः । स्यात्तस्कराणामनयोऽतिघोरः प्रजेश्वरा युद्धविधायिनः स्युः ॥ ३ ॥ बुधे प्रधाने कमलेक्षुदुग्धगोधूमसंपत्प्रचुरा च वृष्टिः । कीलालधान्यानि पचेलिमानि नरेश्वराणामपि कोशवृद्धिः ॥ ४ ॥ जीवे प्रधाने मुदिताश्च सर्वे लोकाः सुभिक्षं प्रचुरं विलोक्य । अनर्घता स्याद्बहुसस्यसंपन्महीरुहाणामतुला च वृद्धिः ॥ ५ ॥ शुक्रे प्रधाने प्रचुराम्बुवर्षी सुराधिनाथः सुखिनश्च सर्वे । गावो यथा कामदुघा नृपाणामतीव सौख्यं प्रचुरं च धान्यम् ॥ ६ ॥ मन्दे प्रधानेऽखिललोकपीडा वह्नेर्भयं धान्यविनाशनं च। रोगाभिभूता जनता न पश्येत्सौख्यं तथाऽस्मिन्नतिहीनवृष्टिः ॥ ७ ॥

---

## अथाग्रधान्येशफलम्।

खण्डा वृष्टिः सस्यहानिर्जनानां व्याधिर्युद्धं भूभुजां दारुणं च । चोरकीटा

दृश्यते सस्यनाथः सूर्यो यस्मिंस्तत्र गोदुग्धनाशः ॥ १ ॥ सस्यं समर्घं प्रचुराम्बुवृष्टिः सर्वाणि धान्यानि पचेलिमानि । जनाश्च सर्वे सुखसंप्रयुक्ताः सस्याधिपो यत्र निशाकरः स्यात् ॥ २ ॥ रोगाभिभूतं जगदस्ति सर्वं महर्घधान्यानि न वारि भूरि । वह्नेर्भयं तस्करजं कचित्स्यात्सस्याधिनाथे धरणीतनूजे ॥ ३ ॥ मही च सर्वा सलिलेन पूर्णा भयं विनष्टं च सुखी जनः स्यात् । नवानि धान्यानि फलैर्युतानि सस्याधिनाथो यदि चन्द्रजः स्यात् ॥ ४ ॥ आनन्दयुक्ता जनता पयोदाः सुवृष्टियुक्ताः फलपुष्पसंपत् । धान्यानि सर्वाणि शुभानि यत्र सस्याधिनाथः सुरराजमन्त्री ॥ ५ ॥ रोगैर्मुक्ता निर्भयाः सर्वलोकाः पच्यन्ते वा सर्वधान्यानि नूनम् । वृक्षाः शश्वत्पुष्पिता भूरिवृष्टिः सस्याधीशो यत्र दैत्येन्द्रमन्त्री ॥ ६ ॥ धान्यक्षयः कोशविहीनता स्यान्नरेश्वराणामपि मन्दवृष्टिः । हुताशभीतिः प्रचुरामयः स्यात्सस्याधिनाथोऽर्कसुतो यदा स्यात् ॥ ७ ॥

## अथ मेघेशफलम् ।

दिव्यभ्रजालं पिहितार्कमिन्द्रः कचिज्जलं वर्षति यूपकेतिः । महीरुहाः पुष्पफलैर्विहीना मेघाधिपो यत्र दिवाकरः स्यात् ॥ १ ॥ नदीतडागादिषु भूरितोयमतीव धान्यं प्रबला जनाश्च । शालीक्षुगोवारिचराभिवृद्धिर्मेघाधिपो यत्र निशाकरः स्यात् ॥ २ ॥ वातः प्रचण्डोऽग्निभयं जनानामवृष्टिभीत्याकुलितं च धान्यम् । व्याधिप्रकोपोपहताश्च सर्वे मेघाधिपो यत्र धरातनूजः ॥ ३ ॥ क्षपीश्वराभीष्टकृदम्बुवृष्टिर्मही लतापुष्पफलैः प्रपूर्णा । अस्त्यामयः कापि कलिर्नृपाणां मेघाधिपो यत्र हिमांशुपुत्रः ॥ ४ ॥ पश्चाज्जलं भूरि महेश्वराणामन्योन्यमैत्री कलहः कचित्स्यात् । धर्मक्रियायां निरता जनाः स्युर्मेघाधिपो यत्र सुरेन्द्रमन्त्री ॥ ५ ॥ नित्योत्सवानन्दितमानसानां गृहे द्विजानां धनधान्यसंपत् । गीर्वाणनाथो बहुवृष्टिकर्ता मेघाधिपो यत्र च भार्गवः स्यात् ॥ ६ ॥ न कापि वृष्टिर्धरणीश्वराणां कोशोऽल्पकः शीतभयं कचिच्च । अभूरि धान्यं प्रचुरामयश्च मेघाधिपो यत्र रवेः सुतः स्यात् ॥ ७ ॥

## अथ रसाधिपफलम् ।

कार्पासतैलेक्षुगुडादिकानां महर्घता शीतभयं जनानाम् । वापीतडागादिषु तुच्छमम्बु रसाधिनाथो दिनकृद्यदा स्यात् ॥ १ ॥ गावो बहुक्षीरमभिस्रवन्त्यो

वत्सोत्सुकाः सस्यभुजोऽतिपुष्टाः । यज्ञक्रियायां निरताश्च विप्रा रसाधिनाथो हिमकृद्यदा स्यात् ॥ २ ॥ सुवर्णरूप्यादि निगूढभावं प्रयाति कीलालमतीव तुच्छम् । मध्वाज्यपूगादि महर्घयुक्तं रसाधिनाथो यदि भूमिजः स्यात् ॥ ३ ॥ जम्बूमधूकामलकाम्रपुष्पलतानिकुञ्जाद्यभिवृद्धियुक्तम् । कासारवापीतटधान्यसंपद्रसाधिपे स्याद्रजनीशपुत्रे ॥ ४ ॥ चामीकरं स्यात्सुलभं तथाऽऽज्यं कौशेयकार्पासगुडाम्बराणि । सुलेन लभ्यान्यतिवारिवृष्टिर्यदा सुरेज्यो रसनायकः स्यात् ॥ ५ ॥ गवां विवृद्धिर्लवणेक्षुलाक्षाकांस्यातसीवस्त्रघृतादिकानाम् । समर्घताऽतीव जलस्य वृष्टी रसाधिपो यत्र च दैत्यमन्त्री ॥ ६ ॥ नीलीगजोर्णापटलोहजातं समर्घतामेति रसा महार्घाः । वलारिरल्पं सलिलं ददाति रसाधिनाथोऽर्कसुतो यदा स्यात् ॥ ७ ॥

---

## अथ पश्चिमधान्येशफलम् ।

नृपा मिथो विग्रहकारिणः स्युर्धान्यस्य तोयस्य च नैव वृद्धिः । सतां जनानां ज्वरजा च पीडा धान्याधिपो यत्र दिवाकरः स्यात् ॥ १ ॥ सुभिक्षसंदर्शनजातहर्षाः प्रजेश्वराः कोशविवृद्धियुक्ताः । गावो बहुक्षीरदुघा भवन्ति धान्याधिपो यत्र निशाकरः स्यात् ॥ २ ॥ वह्नेर्भयं व्याधिभयं कचिच्च पयोविहीना जलदा मही स्यात् । फलेन पूर्णा विदुषां विरोधो धान्याधिपो यत्र धरातनूजः ॥ ३ ॥ गोधूमशालीक्षुयवादिकानां विद्वज्जनानामपि वृद्धिरस्ति । वेदश्रुताभ्यासरता द्विजेन्द्रा धान्याधिपो यत्र हिमांशुपुत्रः ॥ ४ ॥ यज्ञक्रियायां निरता द्विजाः स्युर्गावो बहुक्षीरयुता महिष्यः । सुभिक्षकृद्वर्षति देवनाथो धान्याधिपो यत्र सुरेन्द्रमन्त्री ॥ ५ ॥ गृहे गृहे मङ्गलयज्ञकार्यं महीरुहाणां फलपुष्पसंपत् । सुभिक्षमुच्चैर्बहु वर्षतीन्द्रो धान्याधिपो यत्र भृगोः सुतः स्यात् ॥ ६ ॥ शचीपतिर्वर्षति नैव तोयं व्याधेर्भयं चास्ति सुभिक्षमल्पम् । भ्रमन्ति लोकाः परितो भयार्ता धान्याधिपो यत्र च सौरिरस्ति ॥ ७ ॥

---

## अथ विंश्वानयनम् ।

रामनिघ्ने शके सप्तभक्ते मुहुर्द्विघ्नशेषं शरैः संयुतं कारयेत् । पूर्ववद्वृष्टिरन्नं च शीतं तृणं चाऽऽतपो मारुतो जन्तुवृद्धिस्तथा विग्रहः ॥ १ ॥ शाके च वेदगुणिते सप्तभिर्भागमाहरेत् । शेषं तु द्विगुणीकृत्य रूपं चैव तु मिश्रितम् ॥ २ ॥ क्षुधा

तृषा तथा निद्रा आलस्योद्यम एव च। शान्तिः क्रोधस्तथा दण्डो भेद इष्टस्तथैव च ॥ ३ ॥ ततस्तु रसनिष्पत्तिः फलनिष्पत्तिरेव च। उत्साहः सर्वलोकानां ज्ञातव्यो निश्चितं बुधैः॥ ४ ॥

---

## अथ प्रकारान्तरम् ॥

शाकः सागरताडितो नवहृतो लब्धं निधाय क्वचिच्छेषं दस्रहतं शशाङ्कसहितं क्षुत्तृट्सुषुप्तिः क्रमात् । आलस्यं तत उद्यमश्च कथितः शान्तिस्तथा क्रोधयुग्दण्डो भेत्रमथोत्सवश्च गदितः पापं च पुण्यं तथा ॥ १॥ शकाब्दं वसुभिर्निघ्नं नवभिर्भागमाहरेत् । शेषं तु द्विगुणीकृत्य त्रिभिर्युक्तं च कारयेत् ॥ २ ॥ उग्रं रसः फलोत्पत्तिर्व्याधिश्च व्याधिनाशनम् । सदाचारोऽप्यनाचारो मरणं जन्म एव च ॥ ३ ॥ देशोपद्रवः स्वास्थ्यं च चौरकुलभयं तथा । चौरोपशमनं चाग्निभयं सान्यं क्रमेण च ॥ ४ ॥ त्रिघ्नः शाकः सप्तभक्तावशिष्टं द्विघ्नं युक्तं पञ्चभिः स्यात्क्रमेण । आपो धान्यं कक्षशीतोष्णवायुर्वृद्धिर्नाशो विग्रहो लब्धतोऽपि ॥५॥ शाकार्धं गुरुयुग्मामियुक्तं तेन शकात्फलम् । तत्संख्याको भवेद्धर्मः पापं तन्न्यूनविंशतिः ॥ ६ ॥

---

## अथाऽऽयव्ययानयनम् ॥

रवेरङ्गानि ६ चन्द्रस्य तिथयो १५ ष्टौ ८ कुजस्य च । ज्ञस्यात्यष्टि १७ र्गुरोरेकोनविंशति १९ स्त्वो भृगोः ॥ १ ॥ एकविंशतिराख्याता २१ मन्दस्य दशगंमिताः । राहोर्द्वादश १२ वर्षाणि दशायाः कथितानि च ॥ २ ॥ स्वस्वामिवर्षाधिपवत्सरस्वयं त्रि ३ घ्नं शरा ५ ढ्यं तिथि १५ भक्तशेषम् । आयोऽथ लब्धिस्त्रिगुणार्थयुक्ता तिथ्याप्त १५ शेषो व्ययसंज्ञकः स्यात् ॥ ३ ॥

इति संवत्सरादिप्रकरणम् ।

---

## अथ मासप्रकरणम् ।

श्रीपतिः—मधुस्तथा माधवसंज्ञकश्च शुक्रः शुचिश्चाथ नभोनभस्यौ । तथेष ऊर्जश्च सहःसहस्यौ तपस्तपस्याविति ते क्रमेण ॥ १ ॥ नारदः—यस्मिन्मासे

१ क. °स्वविहार ।

पौर्णमासी येन धिष्ण्येन संयुता । तन्नक्षत्राह्वयो मासः पौर्णमासी तदाह्वया ॥ २ ॥ तत्पक्षौ देवपित्र्याख्यौ शुक्लकृष्णौ तु तावुभौ । शुभेऽशुभे कर्मणि च प्रशस्तौ भवतः सदा ॥ ३ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—चान्द्रो दर्शावधिर्मासः सावनः खत्रिवासरैः । सौरोऽर्कराशिभोगेन नाक्षत्रो विधुभभ्रमात् ॥ ४ ॥ वसिष्ठः—सावनं स्याद्दिनं भानोरुदयादुदयं भवेत् । तदेव भूदिनं वारस्तद्देशार्कोदयादितः ॥ ५ ॥ भास्करः—रवेश्चक्रभोगोऽर्कवर्षं प्रदिष्टं द्युरात्रं तु देवासुराणां तदेव । रवीन्द्वोर्युतेः संयुतिर्यावदन्या विधोर्मास एतच्च पित्र्यं द्युरात्रम् ॥६॥ गर्गः—पौर्णमास्यवसानः स्यान्मासो देवऋतुस्तथा । दर्शान्तो मानुषो ह्येतौ विन्ध्याद्दुत्तरयाम्यगौ ॥७॥ परिशिष्टे—इन्द्राग्नी यत्र हूयेते मासादिः स प्रकीर्तितः । अग्नीषोमौ तथा मध्यं मासान्तः पितृसोमकौ ॥ ८ ॥ अङ्गिरसः—दर्शान्तो वैदिको मासो राकान्तः स्मार्त उच्यते । पौराणो हरिघस्रान्तः सौर उत्पत्तिपूर्वकः ॥ ९ ॥ विवाहादौ स्मृतः सौरो यज्ञादौ सावनः स्मृतः । वार्षिके पितृकार्ये च मासश्चान्द्रो विधीयते ॥१०॥ स्कान्दे—सौरमाभ्युदये मासं चान्द्रं तु पितृकर्मणि । यज्ञे सावनमित्याहुरार्क्षं सर्वव्रतेषु च ॥११॥ पितामहः—आयुर्दायविभागश्च प्रायश्चित्तक्रिया तथा । सावनेनैव कर्तव्या शत्रूणामप्युपासनम् ॥१२॥ यथा पाण्डवैः कौरवाणाम् । शिरोमणौ—वर्षायनर्तुयुगपूर्वकमत्र सौरान्मासास्तथा च तिथयस्तु हिमांशुमानात् । यत्कृच्छ्रसूतकचिकित्सितवासराद्यं तत्सावनाद्घटिकादिकमार्क्षमानात् ॥१३॥ ज्योतिष्प्रकाशे—तुलादिसंक्रमात्षट्के गोलौ स्तो दक्षिणोत्तरौ । तथा कर्किमृगात्षट्के याम्यसौम्यायने क्रमात् ॥ १४ ॥ श्रीपतिः—मृगादिराशिद्वयभानुभोगात्षट् चर्तवः स्युः शिशिरो वसन्तः । ग्रीष्मश्च वर्षाऽथ शरच्च तद्वद्धेमन्तनामा कथितोऽत्र षष्ठः ॥१५॥ गृहप्रवेशत्रिदशप्रतिष्ठाविवाहचौलव्रतबन्धपूर्वम् । सौम्यायने कर्म शुभं विधेयं यद्गर्हितं तत्खलु दक्षिणे स्यात् ॥ १६ ॥

इति मासप्रकरणम् ।

---

## अथ तिथिप्रकरणम् ।

संहिताप्रदीपे—सर्वत्र कार्येषु शुभाशुभेषु पृच्छन्ति लोकास्तिथिमेव पूर्वम् । न क्वापि योगं करणं ग्रहान्वा तस्मात्तिथेर्मुख्यतरत्वमिष्टम् ॥ १ ॥ अर्काद्विनिसृतः प्राचीं यद्यात्यहरहः शशी । तच्चान्द्रमानमंशैस्तु ज्ञेया द्वादशभिस्तिथिः ॥ २ ॥ क्रमात्तिथीशा ब्रह्माग्नी विरिञ्चिर्विष्णुशैलजे । विनायकयमौ नागचन्द्रौ स्कन्दोऽर्क-

---

१ ध. °स्तद्देशा° । २ क. °न्मासास्तथा । ३ क. ख. ग. °नाद्युत्र° ।

वासवौ ॥ ३ ॥ महेशो वसवो नागदुर्गे दण्डधराह्वयः । शिवो विश्वे हरिरवी कामः शर्वकली ततः ॥ ४ ॥ शिवो विश्वे दर्शसंज्ञतिथीशाः पितरः स्मृताः । कामोमयोः केचिदूचुरग्निपस्तु धनाधिपः ॥ ५ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—स्वैस्वदेव-प्रतिष्ठायां मन्त्रसंग्रहणे तथा । पवित्रदमनारोपे ग्राह्या तत्तत्तिथिर्बुधैः ॥ ६ ॥ श्रीपतिः–नन्दा च भद्रा च जया च रिक्ता पूर्णेति सर्वास्तिथयः क्रमात्स्युः । कनिष्ठमध्येष्टफलास्तु शुक्ले कृष्णे भवन्त्युत्तममध्यहीनाः ॥ ७ ॥ वृद्धिः सुमङ्गलपदा च बला खला च लक्ष्मीवती त्वथ यशा परतश्च मित्रा । तद्वद्बला सुमहती तिथिरुग्रकर्मा स्याद्धर्मिणी प्रतिपदादि तथैव नन्दा ॥ ८ ॥ क्रमाद्यशोवत्यपराजयोग्रा सौम्याह्वया पञ्चदशी तिथिश्च । फलानि नाम्ना सदृशानि तासां महर्षिभिर्नूनमुदाहृतानि ॥ ९ ॥ दैवज्ञवल्लभे—ज्ञानाग्निदे कर्मणि पौष्टिके च ध्रुवे च शस्ता प्रतिपत्प्रदिष्टा । व्यायामशिल्पौषधमङ्गलेषु यात्राविवाहादिषु च द्वितीया ॥ १० ॥ बीजोप्तिदास्यासवसंप्रयोगे ज्ञेया तृतीयोग्रविधौ चतुर्थी । माङ्गल्यकृत्येषु च पञ्चमी स्यात्षष्ठी ध्रुवे कर्मणि न प्रयाणे ॥ ११ ॥ ध्रुवं प्रयाणाभरणादिकेषु स्यात्सप्तमीष्टाऽखिलमङ्गलेषु । सेनासु यन्त्रादिषु चाष्टमीष्टा पापोग्रसिद्धौ नवमी वरिष्ठा ॥ १२ ॥ दशम्यभीष्टा गमने प्रवेशमाङ्गल्यकर्मस्विह पौष्टिके च । एकादशी मङ्गलसिद्धये च ध्रुवक्रियायां च महानसे च ॥ १३ ॥ ध्रुवे सपाणिग्रहणे निधाने स्याद्द्वादशी सिद्धिकरी न याने । त्रयोदशी कर्मणि मङ्गलाद्ये क्षिप्रे च सौभाग्यविधौ ध्रुवे च ॥ १४ ॥ चतुर्दशी सिद्धिकृदुग्रकार्ये न तु प्रयाणे न खलु प्रवेशे । माङ्गल्ययज्ञादिषु पौर्णमासी दर्शो न शस्तः पितृकर्म मुक्त्वा ॥ १५ ॥ नारदः–अष्टमी द्वादशी षष्ठी चतुर्थी च चतुर्दशी । तिथयः पक्षरन्ध्राख्या दुष्टास्ता अतिनिन्दिताः ॥ १६ ॥ चतुर्थमनुरन्ध्राङ्कतत्त्वसंज्ञास्तु नाडिकाः । त्याज्या दुष्टासु तिथिषु पञ्चस्वपि च सर्वदा ॥१७॥ अमावास्यां च नवमीं त्यक्त्वा विषमसंज्ञिताः । तिथयः सुप्रशस्ताः स्युर्मध्यमा प्रतिपत्सिता ॥१८॥ दर्शे षष्ठ्यां प्रतिपदि द्वादश्यां प्रतिपर्वसु । नवम्यां च न कुर्वीत कदाचिद्दन्तधावनम् ॥ १९ ॥ षष्ठ्यां तैलं तथाऽष्टम्यां मांसं क्षौरं तिथौ कलेः । पूर्णिमादर्शयोर्नारीसेवनं परिवर्जयेत् ॥ २० ॥ व्यतीपाते च संक्रान्तावेकादश्यां च पर्वसु । अर्कभौमदिने षष्ठ्यां नाभ्यङ्गो न च वैधृतौ ॥ २१ ॥ यः करोति दशम्यां च स्नानमामलकैः सह । पुत्रहानिर्भवेत्तस्य द्वितीयायां न संशयः ॥२२॥ अर्थपुत्रक्षयस्तस्य द्वितीयायां न संशयः । अमायां च नवम्यां च सप्तम्यां च कुल-

---

१ क. ख. घ. स्वस्व दे° । २ क °ग्याद्या । ३ क. °सुगन्धादि° ।

क्षयः ॥ २३ ॥ वसिष्ठः-चतुर्दश्यष्टमी कृष्णा त्वमावास्या च पूर्णिमा । पुण्यानि पञ्च पर्वाणि संक्रान्तिदिवसश्च यः ॥ २४ ॥ श्रीपतिः-एकान्तरा दिनेकरे तिथयो द्वितीयापूर्वान्त्यचापैधटयोर्घटकोक्षयोश्च । कन्यार्जयोर्मिथुनकन्यकयोश्च कीट-हर्योस्तुलामकरयोश्च भवन्ति दग्धाः ॥ २५ ॥ मासदग्धासु तिथिषु कृतं यन्मङ्गलादिकम् । तत्सर्वं नाशमायाति ग्रीष्मे कुसरितो यथा ॥ २६ ॥ श्रीपतिः-आद्याश्चतस्रः क्रियपूर्वकाणामेषां चतुर्णामिह पञ्चमी स्यात् । परा परेषां परत-स्तथैव सक्रूरराशेरशुभा तिथिः स्यात् ॥ २७ ॥ एकस्मिन्वासरे तिस्रस्तिथयः सा क्षया तिथिः । तिथिर्वारत्रयेऽप्येका त्वधिका द्वेऽतिनिन्दिते ॥ २८ ॥ गर्गः— सूर्योदये यथा तारा विलयं यान्ति खस्थिताः । तथा शुभानि कर्माणि क्षयवृद्धि-तिथौ ध्रुवम् ॥ २९ ॥ दोषद्वयमिदं जातु गुणैरन्यैर्न हन्यते । तथाऽपि सबले भानौ लाभस्थे वा तथा विधौ ॥ ३० ॥ नारदः-तिथेः पञ्चदश भागाः क्रमा-त्प्रतिपदादयः । क्षणसंज्ञास्तदर्धानि तासामर्धप्रमाणतः ॥ ३१ ॥ भूपालः- कूष्माण्डं बृहतीं क्षारं मूलकं पनसं फलम् । धात्रीं शिरःकपालान्त्रनखचर्मति-लानि च ॥ ३२ ॥ क्षुरकर्माङ्गनासेवां प्रतिपत्प्रभृति. त्यजेत् । ऊर्ध्वलोकगतिमे-प्सुरायुष्कामश्च मानवः ॥ ३३ ॥

इति तिथिप्रकरणम् ।

---

## अथ वारप्रकरणम् ।

श्रीपतिः—सूर्यादितः शिवशिवागुहविष्णुकेन्द्रकालाः क्रमेण पतयः कथिता ग्रहाणाम् । वह्न्यम्बुभूमिहरिशक्रशचीविरिञ्चिस्तेषां पुनर्मुनिवरैः प्रतिदेवताश्च ॥ १ ॥ राहोरधिपतिः कालः प्रत्यधीशो भुजङ्गमः । तथा केतोश्चित्रगुप्तः स्वयम्भूर्ऋषिभिः स्मृतः ॥ २ ॥ रविः स्थिरः शीतकरश्चरश्च महीज उग्रः शशिजश्च मिश्रः । लघुः सुरेज्यो भृगुजो मृदुश्च शनिश्च तीक्ष्णः कथितो मुनीन्द्रैः ॥ ३ ॥ पुंग्रहा जीव-सूर्यारा बुधमन्दौ नपुंसकौ । स्त्रीखगौ चन्द्रशुक्रौ च सजलौ तौ च कीर्तितौ ॥ ४ ॥ जीवशुक्रौ तु विप्रेशौ क्षत्रियेशौ कुजोष्णगू । ज्ञः शूद्राणां विशां चन्द्रो ह्यन्त्य-जानां शनिः स्मृतः ॥ ५ ॥ नारदः-नृपाभिषेकमाङ्गल्यसेवायानास्त्रकर्म यत् । औषधाहवधान्यादि विधेयं भानुवासरे ॥ ६ ॥ शङ्खमुक्ताम्बुरजतवृक्षेक्षुस्त्रीविभू-षणम् । पुष्पगीतक्रतुक्षीरकृषिकर्मेन्दुवासरे ॥ ७ ॥ विषाग्निबन्धनस्तेयसंधि-

---

१ ख. °नपतौति° । घ. नपतौदिवसाद्दि° । २ क. °र्शस्तु° । ३ क. °पञ्चपयो° । ४ क. °योश्चमिथुनावलयोर्मृगेन्द्रकौर्प्योस्तु° ।

निग्रहकर्षणम् । धात्वाकरप्रवालादिकर्म भूमिजवासरे ॥ ८ ॥ नृत्यशिल्पकलागीतलिपिभूरससंग्रहम् । विवादधातुसंग्रामकर्म कुर्याद्विदोऽहनि ॥ ९ ॥ यज्ञपौष्टिकमाङ्गल्यस्वर्णवस्त्रादिभूषणम् । वृक्षगुल्मलतायानकर्म देवेज्यवासरे ॥१०॥ नृत्यगीतादिगादिनस्वर्णस्त्रीरत्नभूषणम् । भूषण्योत्सवगोधान्यवाजिकर्म भृगोर्दिने ॥ ११ ॥ त्रपुसीसायसाश्मादि विषपापासवानृतम् । स्थिरकर्माखिलं वास्तुसंग्रहः सौरिवासरे ॥ १२ ॥ रक्तवर्णो रविश्चन्द्रो गौरो भौमस्तु लोहितः । दूर्वावर्णो बुधो जीवः पीतः श्वेतस्तु भार्गवः ॥ १३ ॥ कृष्णः सौरिः स्ववारेषु स्वस्ववर्णक्रियाः शुभाः । यस्मिन्वारे तु यत्प्रोक्तं तद्धोरावर्गयोः शुभम् ॥ १४ ॥ श्रीपति —सोमसौम्यगुरुशुक्रवासराः सर्वकर्मसु भवन्ति सिद्धिदाः । भानुभौमशनिवासरेषु तु प्रोक्तमेव खलु कर्म सिध्यति ॥ १५ ॥ गर्गः—ग्रहस्योपचयस्थस्य वारे कार्यं प्रसिध्यति । नैवापचयसंस्थस्य यत्नादपि कृतं नरैः ॥ १६ ॥ श्रीपतिः—वारप्रवृत्तिं मुनयो वदन्ति सूर्योदयाद्रावणराजधान्याम् । ऊर्ध्वं तथाऽधोऽप्यपरत्र तस्माच्चरार्धदेशान्तरनाडिकाभिः ॥ १७ ॥ चरार्धदेशान्तरयोर्वियोगयोगोत्थयाऽऽनीय पलैश्च सम्यक् । सूर्योदयादूर्ध्वमृणे धनेऽधो वारप्रवृत्तिं मुनयो वदन्ति ॥ १८ ॥ महेश्वर —होरेशा रविवर्जितोदयलवाः पश्चेन्दुभिर्भाजिता नाड्यो दसहता हृताश्च विपरीतं हि कैश्चित्स्मृताः । प्रोक्तोऽयं गणनाक्रमो दिनपतेर्होरेश्वराणां बुधमार्तण्डास्फुजिदिन्दुपुत्रहिमकृत्सौरेज्यपृथ्वीसुताः ॥ १९ ॥ आर्ष्टिषेणि —वारप्रवृत्तेर्या याता नाड्यः सूर्योदयादपि । द्विघ्नाः पञ्च हृता होराः स्ववारात्पूर्वकल्पमात् ॥ २० ॥ माण्डव्य —लाक्षाकौसुम्भमाञ्जिष्ठरागेऽर्कः स्वर्णकाचयोः । भौमश्चन्द्रश्च मुक्ताब्जे शनिर्लोहाश्मनोर्मतः ॥ २१ ॥ गर्ग —लाक्षाकौसुम्भमाञ्जिष्ठरागे काञ्चनभूषणे । प्रशस्तौ सोमभार्तण्डौ रविजो लोहकर्मणि ॥ २२ ॥ नारद —अभ्यक्तो भानुवारे यः स नरः क्लेशवान्भवेत् । ऋक्षेशे कान्तिमान्भौमे व्याधिः सौभाग्यमिन्दुजे । जीवे नैस्वं सिते हानिर्मन्दे सर्वसमृद्धिता ॥ २३ ॥ यस्य खेटस्य यत्कर्म वारे प्रोक्तं विधीयते ॥ २४ ॥ तत्कर्म तस्य होरायां तस्य तत्कर्म सर्वदा । भूपाल —वारस्त्रिघ्नोऽत्र कुम्भेषेऽपर्ययकः स्याद्धयामकः । मन्दवारोत्तरे भागे कुलिको दैयस्को निशि ॥ २५ ॥ भूपतेर्भौमजीवाभ्यां संख्या या द्विगुणा भवेत् । तत्क्षणे कण्टको जीवकुलिकोऽन्यो

१ क 'पैशेक स्या' ख. घ. 'पञ्चेस्या' । २ क. मन्दवारोप' ख. मन्दवारोचे भौमेषु' ग. मन्देष्वेष ३ ग. ०षेवहो।

विकुर्निशि ॥ २६ ॥ उद्वेगाऽमृतनामा च रोगा लाभा शुभा यला । कलिर्नामानि वेलानां होरावत्सूर्यतः क्रमात् ॥ २७ ॥

इति वारप्रकरणम् ।

## अथ योगप्रकरणम् ।

नारदः-योगेशा यमविष्ण्विन्दुधातृजीवनिशाकराः । इन्द्रतोयाहिवह्न्यर्कभूमिरुद्राङ्कतोयपाः ॥ १ ॥ गणेशरुद्रधनदत्वष्टृमित्रषडाननाः । सावित्री कमला गौरी नासत्यौ पितरो दितिः ॥ २ ॥ सर्वधृतिर्व्यतीपातो महापातावुभौ सदा । परिघस्य तु पूर्वार्धं सर्वकार्येषु गर्हितम् ॥ ३ ॥ विष्कम्भे घटिकास्तिस्रो नव व्याघातवज्रयोः । गण्डातिगण्डयोः षट् च शूले पञ्च न शोभनाः ॥ ४ ॥ नारदः-लिखेदूर्ध्वगतामेकां तिर्यग्रेखास्त्रयोदश । तत्र खार्जुरिके चक्रे कथितं मूर्ध्नि भं न्यसेत् ॥ ५ ॥ भान्येकरेखागतयोः सूर्याचन्द्रमसोर्मिथः । एकार्गलो दृष्टिपातश्चाभिजिद्वर्जितानि वै ॥ ६ ॥ गण्डे मूलं मृगं शूले विष्कम्भे च तथाऽश्विनीम् । मैत्रं षट्केऽन्तिमे त्वाष्ट्रं व्याघाते दितिभं न्यसेत् ॥ ७ ॥ वज्रे पुष्यं व्यतीपाते सार्पं च परिघे मघाम् । एकार्गलं पतङ्गेन्द्वोरेकरेखास्थयोर्न्यसेत् ॥ ८ ॥ साध्यहर्षणशूलान्त्यगण्डपातान्तसंस्थितम् । धिष्ण्यं चण्डायुधं शैवं शुभकार्ये विवर्जयेत् ॥ ९ ॥ लल्लः—विंशतिर्द्वियुतोत्पत्तौ भ्रमणे चैकविंशतिः । पतने दश नाड्यस्तु पतिते सप्त नाडिकाः ॥ १० ॥ फलं लक्षमुत्पत्तौ भ्रमणे कोटिरुच्यते । पतने दश कोट्यस्तु पतिते दानमक्षयम् ॥ ११ ॥ सर्वेषां पुण्यकालानां व्यतीपातो विशिष्यते । तत्राणुमात्रं यद्दत्तं तदनन्तफलप्रदम् ॥ १२ ॥ विनाडीभिर्द्वादशभी रहितं घटिकाद्वयम् । योगप्रकरणे योगाः क्रमात्ते सप्तविंशतिः ॥ १३ ॥

इति योगप्रकरणम् ।

## अथ करणप्रकरणम् ।

नारदः-इन्द्रः प्रजापतिर्मित्रस्त्वर्यमा भूर्हरिप्रिया । कीनाशः कलिरुद्राख्यौ तिथ्यर्धेशास्त्वहिर्मरुत् ॥ १ ॥ ववादिवणिगन्तानि शुभानि करणानि षट् । परीता विपरीता वा विष्टिर्नेष्टा तु मङ्गले ॥ २ ॥ स्थिराणि मध्यमान्येषां नेष्टे नागचतुष्पदे । रत्नकोशे-कुर्याद्बवे शुभचरस्थिरपौष्टिकानि धर्मक्रिया द्विज-

---

१ ग. पठेन्ति । २ क. ख. ध. 'र्गलः प. । ३ ग. 'नि शुभकर्मसु । अशुभेषु स्थिराण्येव वि° ।

हितानि च वालवाख्ये । सिध्यन्ति मित्रचरणानि च कौलवाख्ये सौभाग्यसंश्रयगृहाणि च तैतिलाख्ये ॥ ३ ॥ कृषिबीजगृहाश्रयजानि गरे वणिजे ध्रुवकार्यवणिग्युतयः । न हि विष्टिकृतं विदधाति शुभं परघातविषादिषु सिद्धिकरम् ॥ ४ ॥ कार्यं पौष्टिकमौषधानि शकुनौ मूलानि मन्त्रास्तथा गोकार्याणि चतुष्पदे द्विजपितॄनुद्दिश्य कार्याणि च । नागे चैव सुदारुणानि हरणं सौभाग्यकर्माण्यतः किंस्तुघ्ने शुभपुष्टिवृद्धिकरणं माङ्गल्यकर्माणि च ॥ ५ ॥ वसिष्ठः—वधबन्धविषाग्न्यस्त्रच्छेदनोच्चाटनादि यत् । तुरङ्गमहिषोष्ट्रादिकर्म विष्ट्यां च सिध्यति ॥ ६ ॥ श्रीपतिः–जलशिखिशशिरसःशर्वकीनाशवायुत्रिदशपतिककुप्सु प्रोक्तमास्यं हि विष्टेः । नियतमृषिभिराशासंख्ययामैः क्रमेण स्फुटमिह परिहार्यं मङ्गलेष्वेतदेव ॥ ७ ॥ दैवज्ञवल्लभे-मन्वा १४ ष्ट ८ मुनि ७ तिथ्य १५ ब्धि ४ दिग्न १० द्र ११ त्रि ३ मितासु च । तिथिष्वायाति पूर्वादेर्निन्द्याऽग्रे पृष्ठतः शुभा ॥ ८ ॥ नारदः–मुखे पञ्च गले त्वेका वक्षस्येकादश स्मृताः । नाभौ चतस्रः षड् श्रोणौ तिस्रः पुच्छाख्यनाडिकाः ॥ ९ ॥ दैवज्ञवल्लभे—मुखे कार्यहानिर्गले प्राणनाशो हृदि द्रव्यनाशः कलिर्नाभिदेशे । कटावर्थविध्वंसनं पुच्छभागे जयश्चेति भद्राशरीरे फलं स्यात् ॥ १० ॥ भृगुः–पृथिव्यां यानि कर्माणि शोभनान्यशुभानि च । तानि सर्वाणि सिध्यन्ति विष्टिपुच्छे न संशयः ॥ ११ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—चतुर्थ्येकादशीरात्रौ मुक्ते पूर्णाष्टमीदिवा । भद्रा त्रिदशमीरात्रौ कृष्णे स्याद्विमला तिथौ ॥ १२ ॥ सत्यः–क्रमायाताऽक्रमायाता भद्रा त्याज्या सदा बुधैः । तस्या वक्त्रे मृतिर्मध्ये हानिः पुच्छे जयो भवेत् ॥ १३ ॥ आथर्वणिः–भानि सार्धाब्धयः सूर्याः सार्धगोब्जाः क्रमोत्क्रमात् । क्रमाद्भद्रासु पुच्छं स्यादाद्यौ नाडीत्रयं परम् ॥ १४ ॥ भद्राङ्गन्यासघटिकाः षष्टितिथिभोगपक्षे न्यूनाधिकत्वे न्यूनाधिका ज्ञेयाः । श्रीपतिः–दैत्येन्द्रैः समरेऽमरेषु विजितेष्वीशः क्रुधा दृष्टवान्सा कोपात्किल निर्गता खरमुखी लाङ्गूलिनी च त्रिपात् । विष्टिः सप्तभुजा मृगेन्द्रगलका क्षामोदरी प्रेतगा दैत्यघ्नी मुदितैः सुरैस्तु किरणान्ते नियुक्ता सदा ॥ १५ ॥ उद्बद्धोद्धतरोपिण्डिकाऽतिकृष्णा दंष्ट्रोग्रा पृथुहनुगल्लदीर्घनासा । कार्यघ्नी हुतवहलक्ष्मुद्गिरन्ती विभ्रान्तः पतति समन्ततोऽत्र विष्टिः ॥ १६ ॥

इति करणप्रकरणम् ।

---

१ क. "भद्रोष्ट" । २ ख. "घोऽत्ययदि" ।

## अथ नक्षत्रप्रकरणम् ।

ज्योतिष्प्रकाशे—भेशा दस्रयमौ वह्निकेन्द्रीशादितयो गुरुः । भुजङ्गपितृयोन्यारुयार्यमार्कत्वष्ट्रवायवः ॥ १ ॥ वह्नीन्द्रौ मित्रशक्रौ च रक्षोऽम्भो विश्वविष्णघम् । वस्वम्बुपाजपादाहिर्बुध्न्यपूषाभिधाः क्रमात् ॥ २ ॥ नारदः—वस्त्रोपनयनक्षौरसीमन्ताभरणक्रियाः । स्थापनाऽश्वेभयानाद्यकृषिविद्यादयोऽश्विभे ॥ ३ ॥ वापीकूपतडागादिविषशस्त्रोग्रदारुणम् । बिलप्रवेशगणितनिक्षेपा याम्यभे शुभाः ॥ ४ ॥ अग्न्याधानास्त्रशस्त्रोग्रसन्धिविग्रहदारुणाः । सङ्ग्रामौपधवादित्रक्रियाः शस्ताश्च वह्निभे ॥ ५ ॥ सीमन्तोन्नयनोद्वाहवस्त्रभूषास्थिरक्रियाः । गजवास्त्वभिषेकाश्च प्रतिष्ठा ब्रह्मभे शुभाः ॥ ६ ॥ प्रतिष्ठाभूषणोद्वाहसीमन्तोन्नयनक्रियाः । क्षौरवास्तुगजाश्वोष्ट्रयात्राः शस्ताश्च चन्द्रभे ॥ ७ ॥ ध्वजतोरणसङ्ग्रामप्राकारास्त्रक्रियाः शुभाः । संधिविग्रहवैतानरसाढ्या रौद्रभे शुभाः ॥ ८ ॥ प्रतिष्ठायानसीमन्तवस्त्रवास्तूपनायनम् । क्षौराश्वकर्मादितिभे विधेयं धान्यभूषणम् ॥ ९ ॥ यात्राप्रतिष्ठासीमन्तव्रतबन्धप्रवेशनम् । करग्रहं विना सर्वं कर्म देवेड्यभे शुभम् ॥ १० ॥ अनृतव्यसनद्यूतक्रोधास्त्रविषदाहकम् । विवादरसवाणिज्यकर्म कद्रुजभे शुभम् ॥ ११ ॥ कृषिवाणिज्यगोधान्यरणोपकरणादिकम् । विवाहनृत्यगीताद्यं निखिलं कर्म पैतृभे ॥ १२ ॥ विवादविषशस्त्राग्निदारुणोग्राहवादिकम् । पूर्वात्रयेऽखिलं कर्म कर्तव्यं मांसविक्रयः ॥ १३ ॥ वस्त्राभिषेकसीमन्तविवाहव्रतबन्धनम् । प्रवेशस्थापनाश्वेभवास्तुकर्मोत्तरात्रये ॥ १४ ॥ प्रतिष्ठोद्वाहसीमन्तयानं वस्त्रोपनायनम् । क्षौरवास्त्वभिषेकाश्च भूषणं कर्म भानुभे ॥ १५ ॥ प्रवेशनवस्त्रसीमन्तप्रतिष्ठाव्रतबन्धनम् । त्वाष्ट्रभे वास्तुविद्याश्च क्षौरभूषणकर्म यत् ॥ १६ ॥ प्रतिष्ठोपनयोद्वाहवस्त्रसीमन्तभूषणम् । विवाहाश्वेभकृष्यादि क्षौरकर्म समीरभे ॥ १७ ॥ वस्त्रभूषणवाणिज्यवसुधान्यादिसंग्रहम् । इन्द्राग्निभे नृत्यगीतशिल्पलेखनकर्म च ॥ १८ ॥ प्रवेशस्थापनोद्वाहव्रतबन्धाप्तमङ्गलम् । वस्त्रभूषणवास्त्वर्थौ मित्रभे संधिविग्रहौ ॥ १९ ॥ क्षौरास्त्रशस्त्रवाणिज्यगोमहिष्यम्बुकर्म यत् । इन्द्रभे नृत्यगीताद्यं शिल्पलोहाश्मलेखनम् ॥ २० ॥ विवाहकृषिवाणिज्यदारुणाहवभेषजम् । निर्ऋतौ नृत्यशिल्पास्त्रसंधिविग्रहलेखनम् ॥ २१ ॥ प्रतिष्ठाक्षौरसीमन्तयानोपनयनौषधम् । पुरारामगृहारम्भं विष्णुभे पट्टबन्धनम् ॥ २२ ॥ वस्त्रोपनयनक्षौरप्रतिष्ठायानभेषजम् । वसुभे वास्तुसीमन्तप्रवेशाश्वेभभूषणम् ॥ २३ ॥ प्रवेशस्थापनक्षौरमौञ्जीबन्धनभेषजम् । अश्वाभरणसीमन्तवास्तुकर्म जलेशभे ॥ २४ ॥ विवाहव्रतबन्धाश्च प्रतिष्ठायानभूषणम् । प्रवेशव-

१ घ. 'वाहर'।

स्वसीमन्तर्क्षेऽरभेषजमन्त्यभे ॥ २५ ॥ आश्विपेणिः—ध्रुवं स्थिरं स्मृतं ब्राह्म्यं ञ्युत्तरा रविवासरः । चरं चलं त्रयं कर्णात्स्वात्यादित्यं च चन्द्रमाः ॥ २६ ॥ क्रूरमुग्रं मघा याम्यं पूर्वात्रितयकं कुजः । मिश्रं साधारणं प्रोक्तं विशाखाकृत्तिके बुधः ॥ २७ ॥ लघु क्षिप्रं च हस्ताश्विन्यभिजिद्गुरुभं गुरुः । मृदु मैत्रं मृगश्चित्राऽनुराधा रेवती सितः ॥ २८ ॥ दारुणं तीक्ष्णमाश्लेषा ज्येष्ठाऽऽर्द्रा मूलमर्कजः । नक्षत्रेष्वेषु कर्माणि नामतुल्यानि कारयेत् ॥ २९ ॥ भृगुः— ध्रुवभैः शान्तिपौष्टयाख्यं गृहग्रामद्रुमादिकम् । बीजौषधाभिषेकादि ध्रुवकर्म प्रशस्यते ॥ ३० ॥ चरे तु गजगोश्वादिदमनं सेतुबन्धनम् । प्रयाणारामकार्यं च चरकर्म हितावहम् ॥ ३१ ॥ क्रूरर्क्षे विषमद्यादि बन्धनोच्चाटनादि च । शत्रुप्रहारशस्त्रादि कुर्यादुग्रं च सिद्धये ॥ ३२ ॥ मिश्रर्क्षयोः प्रकुर्वीत यत्क्रूरैर्दारुणैः स्मृतम् । अग्निकार्यं वृषोत्सर्गं मिश्रकर्म शुभावहम् ॥ ३३ ॥ मित्रर्क्षे मित्रकार्याणि गृहग्रामप्रवेशनम् । रतिभूषावस्त्रगीतमङ्गलादि प्रशस्यते ॥ ३४ ॥ तीक्ष्णतारासु वेतालभूतमन्त्राभिचारिकम् । विघातरौद्रसंत्रासतीक्ष्णकर्म हितं भवेत् ॥ ३५ ॥ नारदः—पूर्वत्रयाग्निमूलाहिद्विदैवत्यमघान्तकम् । अधोमुखं तु नवकं भानां तत्र विधीयते ॥ ३६ ॥ बिलप्रवेशगणितभूतद्यूतविलेखनम् । खननं शिल्पकूपादिनिक्षेपोद्धरणादि यत् ॥ ३७ ॥ मित्रेन्द्रत्वाष्ट्रहस्तेन्द्वादित्यान्त्याश्विनवायुभम् । तिर्यङ्मुखाख्यं नवकं भानां तत्र विधीयते ॥ ३८ ॥ हलप्रवाहगमनं गन्त्रीयन्त्रखरोष्ट्रकम् । खरगोरथनौयानलुलायहयकर्म च ॥ ३९ ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशार्यवसुपाश्युत्तरात्रयम् । ऊर्ध्वास्यं नवकं भानां तेषु कर्म विधीयते ॥४०॥ पुरहर्म्यगृहारामवारणध्वजकर्म च । प्रासादवेदिकोद्यानप्राकाराद्यं च सिद्धये ॥४१॥ लल्लः—क्षिप्रचरध्रुवमृदौ देवार्चास्थापनं सदा कार्यम् । वास्तुनिवेशो मृदुभिर्ध्रुवैश्च कार्यो विवाहोऽपि ॥४२॥ क्षिप्रचरैः प्रस्थानं प्रवेशनं स्यात्तु मृदुभिश्च । क्रूरोग्रभेषु शस्त्रक्षाराग्निविषप्रयोगश्च ॥ ध्रुवमृदुभिः क्षिप्रचरैर्धिष्ण्यैरपि भेषजं कार्यम् । वस्त्रालंकारविधिः स्नानं च तथा नवान्नं च ॥ ४४ ॥ क्रूरोग्रस्थिरमृदुषु क्षिप्रेषु चैव धिष्ण्येषु । वृक्षाणामारोपश्छेदनमथ तक्षणं चैव ॥ ४५ ॥ क्रूरोग्रभेषु कुर्याव्द्यालग्रहणं रिपुप्रशमनं च । बन्धनवधसंग्रामं हननानि च पाशजालं च ॥ ४६ ॥ शस्त्राणामपि करणं विधारणं विक्रयं तथा दानम् । संस्कारश्चापि तथा कर्मसु संयोजनं चापि ॥ ४७ ॥ रत्नकोशे—आर्द्राऽऽश्लेषा मूलं मघाभरण्योरिन्दुयनविशाखे । याधानस्याभरणं क्षुरकर्म च वर्जयेदेषु ॥ ४८ ॥

---

१ घ विशाखे वरु॰ । ॰न्द्रादित्यैश्चाभि॰ ।

तीक्ष्णेषु पशून्गमयेद्दत्तमृणं ध्रुवेषु संग्राह्यम् । पशुपोषणं विधेयं चरेषु दीक्षाव्रतं मृदुषु ॥ ४९ ॥ श्रीपतिः—अन्धकं तदनु मन्दलोचनं मध्यलोचनमतः सुलोचनम् । रोहिणीप्रभृतिभं चतुर्विधं नूनमत्र गणयेत्पुनःपुनः ॥ ५० ॥ दैवज्ञवल्लभे— अन्धे सद्यो वस्तु नष्टं हृतं यल्लभ्यं दूरान्मन्दनेत्रे च कष्टात् । श्राव्यं द्रव्यं मध्यनेत्रे सुनेत्रे नैव श्राव्यं नैव लभ्यं कदाचित् ॥ ५१ ॥ भूपालः—तद्यात्यन्धेर्दिशं पूर्वां केकरैर्दक्षिणां पुनः । पश्चिमां चिपिटैर्धिष्ण्यैर्दिव्यदृष्टिभिरुत्तराम् ॥ ५२ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—पुष्यः परकृतं हन्ति न तु पुष्यकृतं परः । दोषं यद्यष्टमोऽपीन्दुः पुष्यः सर्वार्थसाधकः ॥ ५३ ॥ लल्लः—ग्रहरहितः सहितो वा भत्यरिनैधनविपत्करो वाऽपि । पाणिग्रहणं मुक्त्वा पुष्यः सर्वार्थसिद्धिकरः ॥ ५४ ॥ श्रीपतिः— सिंहो यथा सर्वचतुष्पदानां तथैव पुष्यो बलवानुडूनाम् । चन्द्रे विरुद्धेऽप्यथ गोचरे वा सिध्यन्ति कार्याणि कृतानि पुष्ये ॥ ५५ ॥ ग्रहेण विद्धोऽप्यशुभान्वितोऽपि विरुद्धतारोऽपि विलोमगोऽपि । करोत्यवश्यं सकलार्थसिद्धिं विहाय पाणिग्रहमेव पुष्यः ॥ ५६ ॥ लल्लः—शिखिशिखिरसशरगुणशशिकृतगुणरसविषयमलयमविषयाः[1] । शैशिशशिकृतयुगगुणशिवयुगगुणदहनजलधिशतयमलाः ॥५७॥यमलरदाः साभिजितास्तारासंख्येयमाश्विनादीनाम् । तारामितैरहोभिर्मासैरब्दैश्च फलपाकः ॥ ५८ ॥३।३।६।५।३।१।४।३।६।५।२।१ ५।१।१।४।४।३।११।४।३।३।४। १००।२।२।३२॥ श्रीपतिः— तुरगमुखसदृक्षं योनिरूपं क्षुराभं शकटसममथैणस्योत्तमाङ्गेन तुल्यम् । मणिगृहशरचक्राभानि शालोपमं भं शयनसदृशमन्यच्चात्र पर्यङ्करूपम् ॥ ५९ ॥ हस्ताकारमतश्च मौक्तिकसमं चान्यत्प्रवालोपमं धिष्ण्यं तोरणवत्स्थितं मणिनिभं सत्कुण्डलाभं परम् । क्रुध्यत्केसरिविक्रमेण सदृशं शय्यासमानं परं चान्यद्दन्तिविलासवत्स्थितमितः शृङ्गाटकव्यक्ति च ॥ ६० ॥ त्रिविक्रमाभं च मृदङ्गरूपं वृत्तं ततोऽन्यद्यमलद्वयाभम् । पर्यङ्कतुल्यं मुरजानुकारमित्येवमश्वादिभचक्ररूपम् ॥ ६१ ॥ रत्नकोशे—हुतवहदेवं पूर्वास्तिस्रोऽपि विप्रगणस्य भानि स्युः । स्तिस्रस्तथोत्तरा नृपगणस्य पुष्यश्च विज्ञेयः ॥ ६२ ॥ हस्तोऽभिजिदश्विन्यः पुनर्वसुश्चेति वणिजां स्युः । पैत्र्यं पौष्णं मैत्रं प्राजापत्यं च कर्षकजनस्य ॥ ६३ ॥ सेवकजनस्य चित्रा सौम्येन्द्रवासवं च चत्वारि । मूलं रौद्रं स्वाती वारुणमपि चोग्रजातीनाम् ॥ ६४ ॥ चाण्डालानां भरणी सार्पं चेन्द्राग्निविष्णुदैवं च । सप्तानां जातीनामेभ्यः सदसत्फलं ज्ञेयम् ॥ ६५ ॥ उमायामले—उल्काभि-

---

१ क °तुरसाभिजयम°। २ घ °मा विंदैर्धि°। ३ व. °शशिकृ°। ४ क. °तनिग्र°।

यातेन तमोविभूत्या वक्रातिचारेण सुतो धरित्र्याः । केतुर्गतिस्पर्शनधूमनैश्च चारेण पीडां कुरुतेऽर्कपुत्रः ॥ ६६ ॥ नारदः—या दृश्यते दीप्ततारा सा गणे योगतारका । विषवृक्षोऽश्विभो याम्ये धिष्ण्ये चाऽऽमलकस्तरुः ॥ ६७ ॥ उदुम्बरो वह्निधिष्ण्ये कभे जम्बूद्रुमो भवेत् । इन्दुभात्खदिरो जातः कलिवृक्षस्तु रुद्रभात् ॥ ६८ ॥ संभूतोऽदितिभाद्वंशः पिप्पलः पुष्यसंभवः । स्वात्यर्क्षादर्जुनो जातो द्विदैवत्याद्विकङ्कतः ॥ ६९ ॥ मित्रभाद्बकुलो जातो लक्ष्मीः पौरंदरर्क्षजा । मूलर्क्षात्सर्जवृक्षश्च वकुलो वारिधिष्ण्यजः ॥ ७० ॥ पनसो वैश्वभाज्जातो ह्यर्कवृक्षस्तु विष्णुभात् । वसुधिष्ण्याच्छमी जाता कदम्बो वारुणर्क्षजः ॥ ७१ ॥ अजैकपान्नूतवृक्षोऽहिर्बुध्न्यात्पिचुमन्दकः । मधुवृक्षः पौष्णधिष्ण्याद्धिष्ण्यवृक्षं प्रपूजयेत् ॥ ७२ ॥ अरियोनिश्चारिवृक्षः पीडनीयः प्रयत्नतः । ज्योतिष्प्रकाशे—यस्मिन्भे यच्च कर्मोक्तं कार्यं तस्योदये च तत् । वारोक्तं तस्य होरायां लग्नोक्तं तन्नवांशके ॥ ७३ ॥

इति नक्षत्रप्रकरणम् ।

---

## अथ शुद्धनक्षत्रविचारः ।

संहिताप्रदीपे—सर्वत्र कार्येषु हि शोभनेषु नक्षत्रशुद्धिं मृगयन्ति पूर्वम् । यत्कर्म यस्मिन्करणीयमुक्तं तत्तत्र देयं विदुषा विदित्वा ॥ १ ॥ विद्धं व्योमचरैर्विभिन्नमपि यद्वक्राहतं राहुणा युक्तं क्रूरयुतं विमुक्तमथ यद्भोग्यं तथोपग्रहैः । दुष्टं यद्ग्रहणोपगं परुषितैश्चण्डायुधेनाऽऽहतं चोत्पातग्रहयुद्धपीडितमथो यद्धूमितं केतुना ॥ २ ॥ पश्चात्संध्यागतं चोल्काऽभिहतं पापदूषितम् । यच्चैकार्गलविद्धं तत्पीडितं भं विनिर्दिशेत् ॥ ३ ॥ श्रीपतिः—क्रूरैर्युक्तं क्रूरगन्तव्यमुक्तं क्रूराक्रान्तं क्रूरविद्धं च नेष्टम् । यच्चोत्पातैर्दिव्यभौमान्तरिक्षैर्दुष्टं तद्वत्क्रूरलत्ताहतं च ॥ ४ ॥ संहिताप्रदीपे—दोषैरमीभिर्यदुपद्रुतं तत्तावन्न दृष्टं शुभकर्मणीष्टम् । यावन्न भुक्त्वा शशिना विमुक्तं ततो भवेन्मङ्गलकर्मणीष्टम् ॥ ५ ॥ इत्थं भदोषे तुदिनांशुभागैर्विशुद्धिरेषा किल सद्भिरुक्ता । सा वर्तमाने किमुत व्यतीते न भूयसामत्र मतैक्यमस्ति ॥ ६ ॥ यथैव चाण्डालधृतेन्द्रकुम्भः स्नातोऽपि नूनं न विशुद्धिमेति । तथैव पापग्रहयोगदुष्टधिष्ण्यं न शस्तं शशिनाऽपि भुक्तम् ॥ ७ ॥ स्पृष्ट्वा गते तु चाण्डाले शुद्धिगङ्गाम्भसा यथा । तथा भुक्त्वा गते क्रूरे चन्द्रभोगो विशोधनम् ॥ ८ ॥ यथा शरीरं परिपीडयन्गदः प्रयाति नाशं न ददाति कर्मण्यः । तथैव

---

१ क. केर्वं । २ ग. 'न्मुनिःयन्ते' ।

पापग्रहयोगदूषितं विनाशमायाति मृगाङ्कभोगतः ॥ ९ ॥ यथा विषं योगमवाप्य भेषजैर्नृणां भवेद्भुक्तमलं सुखावहम्। तथेन्दुसंभोगमवाप्य तारकं शुभग्रहैर्युक्तमपि प्रजायते ॥ १० ॥ संहिताप्रदीपे-इत्थं मिथो भिन्नमतं वचोभिर्विसंवदन्ति व्यवहारदक्षाः । प्रशाम्यते येन च यत्र दोषस्तं पूर्वशास्त्रानुमतेन वक्ष्ये ॥११॥ पश्चात्संध्यासंस्थितं खेटयुद्धोत्पातैर्दुष्टं धूमितं केतुना च । उल्कापाताद्दुष्टमुल्काहतं वा भिन्नं चैषां चन्द्रभोगेण शुद्धिः ॥ १२ ॥ सक्रूरचन्द्रयोगेण शुद्धमुत्पातदूषितम् । सूर्यभुक्तं सदा शुद्धं धिष्ण्यभोगं विना विधोः ॥ १३ ॥ नक्षत्रमर्केण समन्वितं यत्तदंशुजातात्समुपैति पीडाम् । तेनोज्झितं स्याद्विमलं नितान्तं कृशानुतापादिव जातरूपम् ॥ १४ ॥ राहुमुक्तं त्रिभिर्भोगैः शुद्धं षड्भिर्ग्रहोपगम् । चतुर्भिः शनिभोगेन दुष्टं द्वाभ्यां कुजेन च ॥ १५ ॥ द्वाभ्यां धरित्रीतनयेन दुष्टं त्रिभिः सराहुग्रहणोपयातम् । षड्भिश्चतुर्भिः शनिभोगदुष्टं शुद्धं भवेत्तत्तु हिमांशुभोगैः ॥ १६ ॥ वक्री खगश्चेत्पुनरेति दग्धं तत्पूर्वमृक्षं न हि धूमितं स्यात् । तदप्यतिक्रम्य यदेति पूर्वं सक्रूरदोषेऽपि विनाऽस्ति तस्य ॥ १७ ॥ पक्षान्तरेण ग्रहणद्वयं स्याद्यदा तदाऽऽद्यग्रहणोपभङ्गम् । पश्चाद्विरुद्धं भवति द्वितीयं ग्रहोपगं शुध्यति भोगषट्कात् ॥ १८ ॥ एकस्मिन्नपि धिष्ण्ये भिन्ने राशौ खलग्रहे शशिनि । तच्चन्द्रर्क्षे कुर्याद्विवाहयात्रादिकं सर्वम् ॥ १९ ॥

इति नक्षत्रशुद्धिः ।

---

## अथ वेधविचारः ।

वसिष्ठः-चक्रे सप्तशलाकाख्ये वेधः सर्वसु कर्मसु । त्याज्य एव विवाहे च तथैव पञ्चरेखजः ॥ १ ॥ हेमेन लोहदण्डेन दुःखं तुल्यं हि ताडनात् । तथैव सदसद्विद्धो दोषोऽशुभस्तयोः समः ॥ २ ॥ क्रूरविमुक्तं दग्धं क्रूरयुतं ज्वलितधूमितं पुरतः । एकशलाकाग्रचरं सवेधमृक्षं विजानीयात् ॥ ३ ॥ माण्डव्यः—विद्धे दग्धे ज्वलिते सधूमिते चापि चन्द्रर्क्षे । यात्राप्रवेशमङ्गलविवाहकर्माणि नेष्यन्ते ॥ ४ ॥ धिष्ण्यं सौम्यग्रहैर्विद्धं पादमात्रं परित्यजेत् । क्रूरैस्तु सकलं त्याज्यमिति वेधविनिश्चयः ॥ ५ ॥ वैद्यनाथः-वेधमात्रं तयोरङ्घ्र्योरन्योन्यं द्वितुतीययोः। क्रूरैरपि त्यजेत्पादं केचिदूचुर्महर्षयः ॥ ६ ॥ विवाहवृन्दावने-विश्लेषमायाति यथाऽसुभिः स्वैरेणः शरेणैकदिशि क्षतोऽपि । तथाऽङ्घ्रिवेधादपि तारकाणां नरस्य नश्येद्धलसस्यसंपत् ॥ ७ ॥ संहिताप्रदीपे—तत्रैकरेखास्थितखेचरं यद्विद्धं तदाहुः खचरेण धिष्ण्यम् । केचिद्विचिन्त्वन्ति च पादवेधं सम-

स्तमेवाशुभमाहुरन्ये ॥८॥ यथा शरेणावयवैकदेशे विद्धे तु तत्र क्षमतामुपैति । तथैव धिष्ण्यं खचरेण विद्धं न शोभनं शोभनकर्मणि स्यात् ॥ ९ ॥ पटस्य देशेऽल्पतरेऽपि दग्धे दग्धः पटो यद्वदिति प्रसिद्धिः । तथैव पादे हि नभश्चरेण विद्धे भवेद्विद्धमशेषमृक्षम् ॥ १० ॥ नक्षत्रवेधे यदि पादवेधस्तदङ्घ्रिवेधाद्घटिकासु वेधः । नाडीव्यधे स्याद्द्विघटीषु चैवं मानां तदा क्वापि न चास्ति वेधः ॥ ११ ॥ छिद्येत शाखा यदि काचिदद्रेर्भवेत्तदानीं किमशेषनाशः । एवं स एवाशुभदो ग्रहेण यो विध्यतेऽन्ये चरणाः शुभाः स्युः ॥१२॥ पादे विद्धे चेदनिष्टं भवेद्यं तत्संयोगाद्राशिरेवाशुभः स्यात् । तेनाप्येवं योगतो राशिचक्रं माङ्गल्यं तत्कर्म कार्यं कथं स्यात् ॥ १३ ॥ अन्ये मृक्षं यदसद्ग्रहेण विद्धं न शस्तं सकलं तु यावत् । प्रागुक्तसंख्यार्धहिमांशुभोगस्ततो विचिन्त्यः खलु पादवेधः ॥ १४ ॥ प्रागुक्तसंख्यार्धमेतत् । भौमस्य १ । शनेः २ । राहोः १ । केतोश्च १ । यथा शरेणावयवे विभिन्ने नरोऽक्षमः सम्पदुरोपर्धः स्यात् । हित्वा तथैवावयवं तथेन्दुभोगान्छुभं भं चरणस्तु दुष्टः ॥ १५ ॥ धिष्ण्ये शुभेन द्युचरेण विद्धे विद्धस्तु पादः परिवर्जनीयः । शेषं शुभं विद्धि विनेन्दुभोगं समस्तमेवाशुभकर्म विद्धम् ॥ १६ ॥ एकार्गलोपग्रहभैरवाखैर्लत्ताहतं भं सदसद्ग्रहेण । तस्यापि पादं परिहार्य दुष्टं शेषेषु सत्कर्म कृतं हितं स्यात् ॥ १७ ॥ रत्नकोशे—विषमदग्धेन हतस्य पत्रिणा मृगस्य मांसं सुखदं क्षताहते । यथा तथाऽत्राप्युडुपाद एव प्रदूषितोऽन्यत्त्रितयं शुभावहम् ॥ १८ ॥ राजमार्तण्डे—यस्मिन्पादे ग्रहस्तिष्ठेच्छुभो वा यदि वाऽशुभः । तेनाङ्घ्रिणा भपादो यो विद्धो नेष्टः परे शुभाः ॥ १९ ॥ लल्ल—बालग्रहदृष्टिपाताद्यद्वल्लक्ष्यं भिनत्ति धानुष्कः । समपादगतश्चैवं वेधेनाङ्घ्रिं प्रदूषयति ॥ २० ॥

इति नक्षत्रवेधः ।

---

## अथ पीडितनक्षत्रपदार्थः ।

कश्यपः—रव्यङ्गारकभास्करिभोगापन्नं विधूमितं शिखिना । ग्रहभिन्नं ग्रहयुद्धं सोपप्लुतमुल्कयाऽभिहतम् ॥ १ ॥ ग्रहणगतं चैव तथा पश्चात्संध्यागतं च त्रिदुर्क्षम् । त्रिविधोत्पातैर्दुष्टं पीडितमृक्षं विजानीयात् ॥ २ ॥ फलप्रदीपे—तत्सूर्येन्द्वोर्भोगात्कर्मण्यत्वं प्रयाति भूयोऽपि । धिष्ण्यं क्रमे विशुद्धं तापनिकपात्सुवर्णमिव ॥३॥ यद्धूमितं भं खचरेण येन तदग्रतो वा सुरराजमन्त्री । शुक्रो यदा वा यदि रौहिणेयस्तदा विशुद्धं किल धूमितं स्यात् ॥ ४ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—दोषमुक्तं तु

---

१ क. °भुमतां । २ घ °कातु° ।

नक्षत्रं कर्मयोग्यं च तद्भवेत् । भानुना शशिना वाऽपि भुक्तं सौम्यग्रहैरपि ॥५॥
इति पीडितनक्षत्रापवादः ।

## अथ मुहूर्तप्रकरणम् ।

भूपाल —दिवा क्षणाः स्यू रुद्राहिमित्रा पितृवसूदकम् । विश्वेऽभिजिद्ब्रह्म-शक्रेन्द्राग्निकोणेशपाशिनः ॥ १ ॥ अर्यमा भग इत्येते रात्रेरीशा जयादितः । दश भेशा रुद्रहीना हरीनत्यष्टृवायवः ॥ २ ॥ यस्मिन्भे यच्च कर्मोक्तं तत्तन्नाथमुहूर्तकैः । दिक्शूलाद्यं चिन्तनीयं तद्वद्दण्डश्च परिघः ॥ ३ ॥ श्रीपति —अर्यम्णोऽर्के तुहिनकिरणे राक्षसब्राह्मसंज्ञौ पित्राग्नेयौ क्षितिसुतदिने चन्द्रपुत्रेऽभिजिच्च । पित्र्यब्राह्म्यौ भृगुसुतदिने राक्षसाप्यौ च जीवे भौजङ्गेशौ सवितृतनये वर्जनीया मुहूर्ता ॥ ४ ॥ नारद —पौराणिका रौद्रसितमैत्रचारभटाः क्षणाः । सा वित्रश्चाथ वैराजो गान्धर्वश्चाष्टमोऽभिजित् ॥ ५ ॥ रौहिणो वलसंज्ञश्च विज्ञेयो नैर्ऋतस्तथा । इन्द्रो जलेश्वरः पञ्चदशमो भगसंज्ञकः ॥ ६ ॥ रुद्रगान्धर्वयक्षेशाश्वारुणी मारुतोऽनलः । रक्षो धाता तथा सौम्यः पद्मजो वाक्पतिस्तथा ॥७॥ पूषा हरिर्वायुनिर्ऋत्मुहूर्ता रात्रिसज्ञिताः। क्षणोऽत्र दिनमानस्य रात्रेश्च शरभू १५-लवः ॥ ८ ॥ लल्लः— श्वेतो मैत्रो विराजश्च सावित्रश्चाभिजित्तथा । वलश्च विजयश्चैव मुहूर्ताः कार्यसाधकाः ॥ ९ ॥ नारद —अष्टमो योऽभिजित्संज्ञः स एव कुतुपः स्मृतः । तस्मिन्काले शुभा यात्रा विना याम्या बुधैः स्मृता ॥ १० ॥ यात्रानृपाभिषेकात्तुद्वाहोऽन्यच्च माङ्गल्यम् । सर्वं शुभदं ज्ञेयं कृतं मुहूर्तेऽभिजित्सञ्ज्ञे ॥ ११ ॥ विष्टिव्यतीपातकृतान्दोषानुत्पातखचरभवान् । मध्याह्नगतो दिनकृत्सर्वानपनीय शुभकृत्स्यात् ॥ १२ ॥ यत्कार्यं नक्षत्रे तद्दैवत्यासु तिथिषु तत्कार्यम् । करणमुहूर्तेष्वपि तत्सिद्धिकरं देवतासदृशम् ॥ १३ ॥ गर्ग —ईषत्सन्ध्यामतिक्रान्तः किंचिदुद्भिन्नतारकः । विजयो नाम योगोऽसौ सर्वकार्यार्थसाधकः ॥ १४ ॥

इति मुहूर्तप्रकरणम् ।

## अथोपग्रहप्रकरणम् ।

लल्ल —विद्युत्पञ्चमभे क्षितेश्च चरन स्यात्सप्तमे सूर्यभात्शूलश्चाष्टमभे शनिश्च दशमे केतुस्तथाऽष्टादशे । दण्डः पञ्चदशे चतुर्दश इह मोक्तो निपातो बुधैस्तुल्याः कालविदा गणे निगदिताश्चैकोनविंशेऽर्कभात् ॥ १ ॥ दैवज्ञ —क्रमशो मोहनिर्घातौ

भूकम्पो वज्र एव च । परिवेषश्च विज्ञेयो नक्षत्रादेकविंशतेः ॥ २ ॥ एतेष्विन्दुसमेतेषु कुर्यात्कर्म न शोभनम् । दहनास्त्रं विषैः साध्यं यत्तत्सिद्धिमुपैति च ॥ ३ ॥ नारदः—त्रयोदश स्युर्मिलने संख्यया तिथिवारयोः । क्रकचो नाम योगोऽयं मङ्गलेष्वपि गर्हितः ॥ ४ ॥ वसिष्ठः—भानुना सप्तमी युक्ता बुधेन प्रतिपद्युता । संवर्तकस्तदा योगो निन्दितः सर्वकर्मसु ॥५॥ श्रीपतिः—आनन्दः कालदण्डो धूम्राख्योऽथ प्रजापतिः सौम्यः । ध्वाङ्क्षोऽथ ध्वजनामा श्रीवत्समुद्गरौ छत्रम् ॥ ६ ॥ मित्रं मानसनामा पद्माख्यो लुम्बकस्तथोत्पातः । मृत्युः काणः सिद्धः शुभामृतौ मुसलमथ गदाख्यश्च ॥ ७ ॥ मातङ्गराक्षसचरस्थिरप्रवृद्धा इमे योगाः । अष्टाविंशतिसंख्याः संज्ञासदृशं फलं दद्युः ॥ ८ ॥ क्रमात्स्युरेते रविवासरेऽभिभाद्विधौ मृगात्क्ष्मिसुते भुजङ्गात् । हस्ताद्बुधे देवगुरौ च मैत्रतः सिताद्वि वैश्वाद्रविजाद्वि वारुणात् ॥ ९ ॥ क्रमोत्क्रमाल्लक्षयन्ति सूर्यपूर्णेन्दुपूर्वकाः । धिष्ण्यमर्काकृतित्र्यद्रिरसेष्वष्टाङ्कसंमितम् ॥ १० ॥ माण्डव्यः—हस्तोत्तरात्रयं मूलं धनिष्ठारेवतीद्वयम् । पुष्यप्रतिपदष्टम्यो नवमी च शुभा रवौ ॥ ११ ॥ भरणी भास्करे देया विशाखात्रितयं मघा । सप्तमी द्वादशी षष्ठ्येकादशी च चतुर्दशी ॥ १२ ॥ द्वितीया नवमी पुष्यः श्रवणो रोहिणी मृगः । अनुराधा शुभा ज्ञेया दिने कुमुदिनीपतेः ॥ १३ ॥ आषाढाद्वितयं चित्रा विशाखा न शुभा भवेत् । सप्तम्येकादशी सोमे द्वादशी च त्रयोदशी ॥ १४ ॥ रेवती मूलमाश्लेषोत्तराभद्राऽश्विनी मृगः । त्रयोदश्यष्टमी षष्ठी तृतीयाऽभिमता कुजे ॥ १५ ॥ वर्जयेदुत्तराषाढां धनिष्ठात्रितयं कुजे । आर्द्रा प्रतिपदं चैकादशीं च दशमीं तथा ॥ १६ ॥ श्रवणो रोहिणी पुष्योऽनुराधामृगकृत्तिकाः । द्वितीया द्वादशी सप्तम्यपि सिद्धिप्रदा बुधे ॥ १७ ॥ न शुभाय बुधे मूलधनिष्ठारेवतीत्रयम् । तिथयः सचतुर्दश्यः प्रतिपन्नवमी जया ॥ १८ ॥ अदितेर्भं विशाखा च रेवतीद्वितयं करः । भाग्यमैत्रेज्यभं पूर्णैकादशी च गुरौ शुभा ॥ १९ ॥ कृत्तिकोत्तरफाल्गुन्यो रोहिणीत्रयमष्टमी । षष्ठी शतभिषग्भद्रा चतुर्थी चाशुभा गुरौ ॥२०॥ पुनर्वसुश्च सावित्रं वैश्वं पौष्णद्वयं तथा । शुभा त्रयोदशी नन्दाऽनुराधाभाग्यभं भृगौ ॥ २१ ॥ पुष्यादित्रितयं ज्येष्ठा रोहिणी शुक्रवासरे । द्वितीया सप्तमी रिक्ता तृतीया नेष्टदा सदा ॥ २२ ॥ पूर्वाफाल्गुनिरोहिण्यौ स्वाती शतभिषङ्मघा । श्रवणश्चाष्टमी रिक्ता तिथिः स्यात्सिद्धये शनौ ॥ २३ ॥ रेवतीमुत्तराषाढामुत्तराफाल्गुनीत्रयम् । षष्ठीं च सप्तमीं पूर्णां मन्दवारे विवर्जयेत् ॥ २४ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—शुक्रवारे तिथिर्नन्दा बुधे भद्रा कुजे जया । मन्दे रिक्ता गुरौ

१ क. °ण्डोऽथ धू २ क. °ष्वपकर्मकृ° ।

पूर्णा सिद्धियोगाः प्रकीर्तिताः ॥ २५ ॥ सुधासिद्धी रवौ हस्तो बुधे मैत्रं कुजेऽश्विनी । शनौ ब्राह्मं सिते पौष्णं गुरौ पुष्यो विधौ मृगः ॥ २६ ॥ मृत्युयोगोऽनुराधार्के वैश्वं चन्द्रे गुरौ मृगः । शुक्रे सार्पं शनौ हस्तो ज्ञेऽश्विनी वारुणं कुजे ॥ २७ ॥ मघाद्विदैवतं मैत्रं मूलं कार्शानवद्वयम् । हस्तश्चेत्यर्कवारादौ यमघण्टाः प्रकीर्तिताः ॥ २८ ॥ गुरुपुष्यो विवाहे च प्रयाणे शनिरोहिणी । भौमाश्विनी प्रवेशे च गृहारम्भे न शोभना ॥ २९ ॥ गर्गः-चतुर्थी चोत्तराधुक्ता मघायुक्ता तु पञ्चमी । तृतीययाऽनुराधा च नवम्या सह कृत्तिका ॥ ३० ॥ अष्टम्या रोहिणी युक्ता योगो ज्वालामुखाभिधः । त्याज्योऽयं शुभकार्येषु गृह्यते त्वशुभे पुनः ॥ ३१ ॥ नारदः-आदित्यभौमयोर्नन्दा भद्रा शुक्रशशाङ्कयोः । जया सौम्ये गुरौ रिक्ता शनौ पूर्णेति नो शुभाः ॥ ३२ ॥ एकादश्यामिन्दुवारो द्वादश्यामर्कवासरः । षष्ठ्यां बृहस्पतेर्वारस्तृतीया बुधवासरे ॥ ३३ ॥ अष्टमी शुक्रवारे तु नवमी शनिवासरे । पञ्चमी भौमवारे च दग्धयोगः प्रकीर्तितः ॥ ३४ ॥ दग्धयोगाश्च विज्ञेयाः षड्गुयोगाभिधा अमी । विशाखादिचतुर्वर्गमर्कवारादिषु क्रमात् ॥ ३५ ॥ उत्पातमृत्युकाणाख्यसिद्धियोगाः प्रकीर्तिताः । सूर्यभात्सार्पपित्र्यर्क्षत्वष्ट्रमित्रान्त्यभेषु च । सविधुभेषु क्रमशो दस्रभाच्चन्द्रसंयुते ॥ ३६ ॥ धिष्ण्ये तावतिथे ह्यत्र दुष्टयोगः पतत्यसौ । चण्डीशचण्डायुधाख्यस्तस्मिन्नेवाऽऽचरेच्छुभम् ॥ ३७ ॥

इत्युपग्रहप्रकरणम् ।

---

## अथोपग्रहदोषापवादः ।

गर्गः-यावदंशस्थिते सूर्ये तावदंशे निशाकरे । वर्जयेत्सूर्यजो दोषः शेषं कर्म शुभं भवेत् ॥ १ ॥ पूर्वाह्णे दण्डदोषः स्यादपराह्णे तु मोघकः । उल्का स्यादर्धरात्रे तु कम्पोऽहोरात्रदूषकः ॥ २ ॥ ॥ कम्पोल्कादण्डमोघानां स्वरमासदशर्तवः ॥ ७।१२।१०।६ ॥ आदितो घटिकास्तेषु व्यपनीयाः पराः शुभाः॥ ३ ॥ उपग्रहेषु लत्तायां तथा चण्डायुधादिषु । ग्रहोऽस्ति यत्प्रमाणांशे विद्धोंऽशस्तत्प्रमाणकः ॥४॥ वसिष्ठः-चण्डीशचण्डायुधपादवेधः खार्जूरचक्रे समपाददोषः। शुभोऽथ यात्रादिषु सूर्यचन्द्रौ बलान्वितौ वा शुभवीक्षितौ वा ॥५॥ राजमार्तण्डे-ध्वाङ्क्षेन्द्रादिषु मुद्गरेषु घटिकास्त्याज्यास्तु पञ्चाऽऽदिमाः पञ्चौलुम्बकयोश्चतस्र उदिता धूम्रे सदैका पुनः ॥ ६ ॥ गर्गः—उत्पाते यमघण्टे च काणे च क्रकचे शुभे । तिथौ दग्धे च पापे च प्राग्यामात्परतः शुभम् ॥ ७ ॥ रत्नकोशे—वारर्क्षतिथि-

योगैस्तु यात्रामेव न कारयेत् । विवाहादीनि कुर्वीत गर्गादीनामिदं वचः ॥ ८॥ नारदः—तिथिवारोद्भवा नेष्टा योगा वारर्क्षसंभवाः । हूणवङ्गखशेभ्योऽन्यदेशेष्वातिशुभप्रदाः ॥ ९ ॥ शौनकः—खशेषु हूणेषु च रिष्टयोगाः पट्काष्टकाद्या न विचिन्तनीयाः । वारर्क्षयोगास्तिथिवारजाता वङ्गे तु योज्या न तु चान्यदेशे ॥ १० ॥ सौराष्ट्रशाल्वेषु च लत्तितं भं कलिङ्गवङ्गादिषु पातितं च । उपग्रहाख्यं कुरुबाह्लिकेषु त्यजेत्तु सर्वत्र सवेधमृक्षम् ॥ ११ ॥ गर्गः—यमघण्टे त्यजेदष्टौ मृत्यौ द्वादश नाडिकाः । अन्येषु दुष्टयोगेषु मध्याह्नात्परतः शुभम् ॥ १२ ॥ क्रकचा मृत्युयोगाश्च दग्धाद्याश्च तथा परे । चन्द्रे शुभे प्रणश्यन्ति वृक्षा वज्रहता इव ॥ १३ ॥

इत्युपग्रहापवादः ।

---

## अथ चन्द्रताराबलप्रकरणम् ।

नारदः—शुक्लपक्षाद्यदिवसे चन्द्रो यस्य शुभप्रदः । स पक्षस्तस्य शुभदः कृष्णपक्षेऽन्यथा शुभः ॥ १ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—कृष्णाष्टम्यूर्ध्वतो ग्राह्यं दशाहं तारकाबलम् । परतोऽब्जबलं ग्राह्यं सर्वमङ्गलकर्मसु ॥ २ ॥ बुद्धिवेदाङ्गनागाङ्कमितास्ताराः शुभप्रदाः । शेषा निन्द्योऽथ पक्षादौ शस्तौ शस्ते विधौ शुभम् ॥ ३ ॥ कश्यपः—जन्मसंपद्विपत्क्षेमप्रत्यरा[1] तारा मुसाधिका । कष्टा मैत्रातिमैत्रा च संज्ञातुल्यफलप्रदा ॥ ४ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—गणयेज्जन्मभाच्चन्द्रं जन्मधिष्ण्याच्च तारकम् । जन्मराशेः शशाङ्काद्वा गणयेद्वेधकं ग्रहम् ॥ ५ ॥ ताराबलेन हीनोऽपि चन्द्रः शुक्ले बली शुभः । शुभं ताराबलं कृष्णे यदि चन्द्रोऽप्यनिष्टदः ॥ ६ ॥ पक्षे सिते चन्द्रबलं प्रधानं ताराबलं तत्र न चिन्तनीयम् । सुस्थे गृहस्थे सबले च पत्यौ प्रधानता नास्ति यतोऽङ्गनानाम् ॥ ७ ॥ न कृष्णपक्षे शशिनः प्रभावस्ताराबलं तत्र भवेत्प्रधानम् । देशान्तरस्थे विकले च पत्यौ स्त्री सर्वकार्याणि न किं करोति ॥ ८ ॥ अत्रापि तारापतिवीर्यमेव वदन्ति पक्षद्वितयेऽन्तिमे तत् । केचिच्च ताराबलयुक्तमिन्दोर्बलं सदाऽऽदेयमिति ब्रुवन्ति ॥ ९ ॥ कृष्णेऽपि पक्षे विधुवीर्यमेव भवेत्प्रधानं न तु तारकायाः । दुःस्थः कृशो वा पतिरेव यद्वत्सर्वाणि कार्याणि विधापयीत ॥ १० ॥ विहाय ताराबलमोषधीशः पक्षद्वयेऽपीष्टफलं न यच्छेत् । अप्राप्य जायानुमतं हि लोके न कार्यसिद्धौ पुरुषः समर्थः ॥ ११ ॥ वसिष्ठमाण्डव्यमतादिहेत्थं बलाबलं तारकशीतभान्वोः । विचारितं सम्यगमी तदर्थाः श्लोकास्तदीयाः सुरसंहितायाम् ॥ १२[2] ॥ तिथयः पञ्च शुक्लाद्याश्चन्द्र-

---

१ क. ख. '-प्रत्यरा' । २ ड. स्ताः स्युस्त ।

स्तारायुतो बली । तनुत्वाद्वर्तमानोऽपि मौढ्यस्त्रीको यथा पतिः ॥ १३ ॥ परत-श्चन्द्रमा एव यावत्कृष्णाष्टमीदलम् । मौढ्यत्वात्पुरुषो यद्वत्स्वतन्त्रः स्याद्विना स्त्रियम् ॥ १४ ॥ कृष्णाष्टम्यूर्ध्वतो यावद्दिनं पत्रं निशाकरः । क्षीणत्वाद्दुर्बल-त्वेन प्रधानं तारकाबलम् ॥ १५ ॥ विकलाङ्गे यथा पत्यौ कार्येषु प्रभवः स्त्रियः । एवं चन्द्रे च विकले तारा बलवती भवेत् ॥ १६ ॥ गर्गः—जन्माद्यं दशमं कर्म संघातं षोडशं स्मृतम् । अष्टादशं सामुदायं त्रयोविंशं विनाशकम् ॥ १७ ॥ मानसं पञ्चविंशाख्यं षड्भानीति नृणां जगुः । नव भानि नृपाणां तु देशजात्यभिषेकजैः ॥ १८ ॥ अभिषेकेऽभिषेकर्क्षं देशभं जन्मभागतः । जातिभं जातिनक्षत्रं पापैर्युक्तं न शोभनम् ॥ १९ ॥ वराहः—निरुपद्रुतभो निरामयः सुखभाङ् नष्टरिपुर्धना-न्वितः । षडुपद्रुतभो विनश्यति त्रिभिरन्यैश्च सहावनीश्वरः ॥ २० ॥ केत्वर्को-र्कियुतं भौमवक्रभेदेन दूषितम् । हतमुल्कोपरागाभ्यां स्वभावान्यत्वमागतम् ॥२१॥ पीडिते जन्मभे मृत्युः कर्मनाशश्च कर्मणि । संघाते बन्धुपीडा स्यात्सामुदाये सुखक्षयः ॥ २२ ॥ वैनाशिके देहनाशो मनस्तापस्तु मानसे । कुलदेशश्रियां नाशो जातिदेशाभिषेकभे ॥ २३ ॥ च्यवनः—यस्य जन्मर्क्षमासाद्य रविसंक्रमणं भवेत् । तन्मासाभ्यन्तरे तस्य वैरक्लेशधनक्षयाः ॥ २४ ॥ शाकल्यः—जन्मर्क्ष-युक्ता यदि जन्ममासे यस्य ध्रुवं जन्मतिथिर्भवेच्च । भवन्ति तद्वत्सरमेव यावत्सौ-रूज्यसन्मानसुखानि तस्य ॥ २५ ॥ वृद्धगर्गः—कृतान्तवक्रयोर्वारे यस्य जन्मदिनं भवेत् । ऋक्षयोगेण संजातं विघ्नं तस्य पदे पदे ॥ २६ ॥ जन्म-धिष्ण्ये यदि स्यातां वारौ भौमशनैश्चरौ । मासः स कल्मषो नाम मनोदुःखप्र-दायकः ॥ २७ ॥ नारदः—चन्द्रस्य द्वादशावस्था राशौ राशौ यथा क्रमात् । यात्रोद्वाहादिकार्येषु संज्ञातुल्यफलप्रदाः ॥ २८ ॥ षष्टिघ्नं चन्द्रनक्षत्रं तत्काल-घटिकान्वितम् । वेदघ्नमिषुवेदाप्तमवस्था भानुभाजिताः ॥ २९ ॥ एतच्च षष्टिघ-टिकाभिप्रायेणोक्तम् । श्रीपतिः—प्रवासनष्टाख्यमृताजयाख्याहास्यारतिक्रीडितसु-प्तभुक्ताः ज्वराह्वया कम्पितसुस्थिरे च द्विषट्कसंख्या हिमगोरवस्थाः ॥ ३० ॥ कल्लः—जन्माधानप्रत्यरिनैधननक्षत्रयुक्तदिवसेषु । प्रवसेन्मनुजो मोहात्प्राणात्य-यमाप्नुयान्नियतम् ॥ ३१ ॥

इति चन्द्रताराबलप्रकरणम् ।

---

## अथ दुष्टतारापवादः ।

ज्योतिःसागरे—शशिनि परिस्फुटकिरणे स्वतुङ्गभवने स्वकीयवर्गे वा । क्षौरा-दिकेऽपि कार्ये तारादोषो न दोषाय ॥ १ ॥ शुभदः स्वशुभोच्चगृहे भवति

यदीन्दुः फलावशेषोऽपि । ताराऽप्यशुभा शुभदा भवति तदानीं न संदेहः ॥ २ ॥ राजमार्तण्डे—सौम्यसुहृन्निजभवने चन्द्रे तुङ्गे त्रिकोणसंस्थे च । अणुतामपि संप्राप्ते तारादौष्टयं न दोषाय ॥ ३ ॥ च्यवनः—तगरुसरोरुहपत्रै रजनीसिद्धार्थलोध्रसंयुक्तैः । स्नानं जन्मर्क्षगते रविसंक्रान्तौ नृणां शुभदम् ॥ ४ ॥ अस्यार्थः—यस्य वै जन्मनक्षत्रं भौमादियुक्तं भवति । तस्य सर्वौषधिस्नानं गुरुविप्रसुरार्चनम् । सौरारयोर्दिने मुक्ता देया धिष्ण्ये तु काञ्चनम्॥ ५ ॥ वाग्भटः—सुरामांसी वचा कुष्ठं शैलेयं रजनीद्वयम् । सटा चम्पकमुस्तं च सर्वौषधिगणः स्मृतः ॥ ६ ॥ गर्गः—विपदि प्रत्यरे चैव नैधने च यथाक्रमम् । प्रथमान्त्यतृतीयाः स्युर्वर्जनीयाः प्रयत्नतः ॥ ७ ॥ विपत्तारे गुडं दद्याच्छाकं देयान्निजन्मसु । प्रत्यरे लवणं दद्यान्नैधने तिलकाञ्चने ॥ ८ ॥

इति दुष्टतारापवादः ।

---

## अथ गोचरप्रकरणम् ।

भूपालः—फलं न गोचरं दत्ते शुभोऽपि ग्रहवेधतः । ग्रहवेधविधानं तद्यवनोक्तं प्रकाश्यते ॥ १ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—गणयेज्जन्मभाच्चन्द्रं जन्मधिष्ण्याच्च तारकम् । जन्मराशेः शशाङ्काद्वा गणयेद्वेधकं ग्रहम् ॥ २ ॥ कश्यपः—हिमाद्रिविन्ध्ययोर्मध्ये वेधजं तद्ग्रहालयात् ॥ ३ ॥ वैद्यनाथः—जन्मभाद्गणयेच्चन्द्रं जन्मभाद्वेधकं ग्रहम् । स तु वेधक्रमो युक्तः कथितः शौनकादिभिः ॥ ४ ॥ चन्द्रमित्युपलक्षणम् । नारदः—शुभोऽर्को जन्मतस्त्र्यायदशषट्सु न विध्यते । जन्मतो नवपञ्चाम्बुव्ययगैर्व्योर्किभिर्ग्रहैः ॥ ५ ॥ विध्यते जन्मतो नेन्दुर्धूनाद्यायतुंदिक्त्रिषु । स्वेष्वष्टान्त्याम्बुधर्मस्थैर्विबुधैर्जन्मतः शुभः ॥ ६ ॥ त्र्यायारिपु कुजः श्रेष्ठो जन्मराशेर्न विध्यते । अन्त्येष्वङ्कग्रहैः सौरिरौपि सूर्येण संमतः ॥ ७ ॥ ज्ञः खाब्ध्यर्यष्टखायेषु जन्मतश्चेन्न विध्यते । धीत्र्यङ्काष्टान्त्यखेटैर्हि जन्मतो वीक्षितः शुभः ॥ ८ ॥ जन्मतः स्वायगोऽध्यस्तेष्वन्त्याष्टखलजत्रिगैः । जन्मराशेर्गुरुः श्रेष्ठो ग्रहैर्यदि न विध्यते ॥ ९ ॥ जन्मभादासुताष्टाङ्कान्त्यायेष्विष्टो न विध्यते । जन्मभान्मृत्युसप्ताद्यखाङ्केष्वायारिपुत्रिगैः ॥ १० ॥ शार्ङ्गधरः—राहुकेतुफलं सर्वं मन्दवत्कथितं बुधैः । विबलोऽर्कयुतो मन्दश्चन्द्रयुक्तो बुधस्तथा ॥ ११ ॥ भूपालः—यादृशेन ग्रहेणेन्दुर्युतः सोऽपि तथाविधः । यतो वृत्तिसमायोगाद्विकारो वदनस्य तु ॥ १२ ॥ नारदः—न ददाति

---

१ ख. °दौष्टयं° । २ क. °थग्रहेषु° । ३ ग. °र्व्योर्किभि° । ४ घ. अथा° । ५ क. ख. घ. °रप्यसूर्येणजन्मतः ।

शुभं किंचिद्गोचरे वेधसंयुतः । तस्मादेवं विचार्याथ कथ्यते तच्छुभाशुभम् ॥ १३ ॥ वामवेधविधानेन शोभनस्त्वशुभोऽपि च । अतस्तान्द्विविधान्वेधान्विचार्याथ वदेद्बुधः ॥ १४ ॥ अज्ञात्वा द्विविधान्वेधान् यो ग्रहज्ञो फलं वदेत् । स मृषावचनाभाषी हास्यं याति नरः सदा ॥ १५ ॥ सौम्येक्षितोऽनिष्टफलः शुभदः पापवीक्षितः । निष्फलौ तौ ग्रहौ स्वेन शत्रुणा च विलोकितौ ॥ १६ ॥ नीचराशिगतः स्वस्य शत्रोः क्षेत्रगतोऽपि वा । शुभाशुभफलं नैव दद्यादस्तं गतोऽपि वा ॥ १७ ॥ दैवज्ञवल्लभे–क्षोणीपालविलोकने दिनकरो धात्रीसुतः सङ्गरे यात्रायां भृगुनन्दनोऽतिवलवाञ्छास्त्रावबोधे बुधः । गीर्वाणेशगुरुर्विवाहसमये दीक्षाविधौ भास्करिः मारम्भेऽखिलकर्मणां निगदितः सद्भिर्निशानायकः ॥ १८ ॥ श्रीपतिः–विवाहचर्यां मृगयां च साहसं सुदूरयानं गजवाजिवाहनम् । गृहे परेषां गमनं च वर्जयेद्ग्रहेषु राजा विषमस्थितेषु ॥ १९ ॥ आर्ष्टिषेणिः–नाऽऽत्मक्षेत्रं पीडयन्ति विषमस्था अपि ग्रहाः । तद्वद्धर्मरतं बालमात्मज्ञं सत्यवादिनम् ॥ २० ॥ बादरायणः–गोचरे वा विलग्ने वा ये ग्रहा नेष्टसूचकाः । पूजयेत्तान्प्रयत्नेन पूजिताः स्युः शुभप्रदाः ॥ २१ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे–सत्तारया शशी शस्तो ग्लौवीर्यादर्कसंक्रमः । भौमाद्योऽर्कवीर्येण दुष्टा अपि शुभप्रदाः ॥ २२ ॥ ग्रहणे ग्रहसंक्रान्तौ वर्षादावुत्सवेऽयने । यादृग्विधो विधुः पुंसां तादृग्विधफलं भवेत् ॥ २३ ॥ प्रवेशकाले भौमार्कौ शुक्रेज्यौ राशिमध्यगौ । निर्गच्छतो शनीन्दू च सर्वदा फलदो बुधः ॥ २४ ॥ ऋक्षसन्धिगता ये च राशिसन्धिगता ग्रहाः । दद्युस्ते फलमेष्यस्य गतस्य तु विलोमगाः ॥ २५ ॥ ज्योतिःसागरे–भानुर्ददाति गन्तव्यराशेः पञ्चदिनं फलम् । चन्द्रो नाडीत्रयं भौमो दिनान्यष्टौ बुधो व्यहम् ॥ २६ ॥ सार्धमासं गुरुः शुक्रश्चतुर्दिनमथार्कजः । मासषट्कं फलं राहुः केतुर्मासत्रयं तथा ॥ २७ ॥ रत्नकोशेः–पक्षं दशाहं च तथा त्रिपक्षं मासत्रिभागं खलु मासषट्कम् । भौमादिखेटास्त्वतिचारवक्रा दद्युः फलं पूर्वगृहे यदुक्तम् ॥ २८ ॥ त्रयोदशार्कैः क्षितिजश्च सप्त द्व्यहं बुधः पञ्च दिनानि शुक्रः । वक्री गुरुः पूर्वफलप्रदः स्यादेकादशाहानि गुरुर्विराहः ॥ २९ ॥ मासं शनीज्यौ कुजभार्गवौ तु पक्षं दशाहानि च सोमसूनुः । ददाति वक्री फलमाद्यराशेः केषांचिदेवं न मतं बहूनाम् ॥ ३० ॥ विलोमगत्या यदि वाऽतिगत्या प्रयाति यो राशिमतीत्यमेष्यम् । हित्वा तदीयं गगनेचरोऽसौ दद्यात्फलं पूर्वगृहे यदुक्तम् ॥ ३१ ॥ यावन्ति यो वक्रगतिर्दिनानि भवेत्स वक्रे यदि वाऽतिचारे । दशांशतुल्यानि फलानि तेषां दद्यात्फलं पूर्वगृहे यदुक्तम् ॥ ३२ ॥ वक्रातिचारेण गृहान्तरेऽपि स्थितो ग्रहः पूर्वफलप्रदः स्यात् । देशा-

न्तरं कार्यवशाद्गतोऽपि तद्देशधर्मं न जहाति मर्त्यः ॥ ३३ ॥ यदा ग्रहोऽयं समुपैति राशिं तदा तदीयं स फलं ददाति । पीतादिवर्णेन समन्वितोऽपि वर्णः सितस्तन्मयतामुपैति ॥ ३४ ॥ यथा प्रदेशेषु शुभाशुभेषु गच्छञ्जलौघः सदसत्त्वमेति । स्थानप्रभावाद्द्युचरस्तथैव शुभाशुभं राशिफलं ददाति ॥ ३५ ॥ शुभाशुभस्थानभवं ग्रहाणां शुभाशुभत्वं न निसर्गसिद्धम् । स्थितिं यदा यत्र गुणे करोति भजेत्तदा तत्प्रकृतिं हि मर्त्यः ॥ ३६ ॥ इत्यादिसामान्यवचोभिरेतैर्न निश्चयः स्यादितरेतरघ्नैः । फलाप्तिराद्याद्दुत वर्तमानादिति भ्रमोऽप्येतद्विरोधिवाक्यात् ॥ ३७ ॥ निश्चयवाक्यम्—यस्मिन्गृहे स्थितो दीपस्तत्र द्योतं करोति वै । एवं ग्रहोऽपि यत्र स्यात्तत्रैव फलदः स्मृतः ॥ ३८ ॥ गर्गः—चारातिचारवक्रेण यो यत्रावस्थितो ग्रहः । स तद्राशिफलं दद्याद्गोचरे. बलसाधने ॥ ३९ ॥ वसिष्ठः—ग्रहा राज्यं प्रयच्छन्ति ग्रहा राज्यं हरन्ति च । ग्रहैस्तु व्याप्तं सकलं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ४० ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—सर्वे लाभगताः श्रेष्ठा गोचरे लाभदा मताः । आयुःप्रदा विलग्नाच्च जातके कारकास्तथा ॥ ४१ ॥ गर्गः—द्वादशाष्टमजन्मस्थः शनिरङ्गारको गुरुः । कुर्वन्ति प्राणसंदेहं देशत्यागं धनक्षयम् ॥ ४२ ॥

## अथ पृथक्फलानि ।

लल्लः—स्थानं जन्मनि नाशयेद्दिनकरः कुर्याद्द्वितीये भयं दुश्चिक्ये श्रियमातनोति हिबुके मानक्षयं गच्छति । दैन्यं पञ्चमगः करोति रिपुहा षष्ठोऽध्वदः सप्तमः पीडामष्टमगः करोति वपुषः पुण्यक्षयं धर्मगः ॥ १ ॥ कर्मसिद्धिजनकस्तु कर्मगो वित्तलाभकृदथायसंस्थितः । द्रव्यनाशजनितां महापदं यच्छति व्ययगतो दिवाकरः ॥ २ ॥ जन्मन्यन्नं दिशति हिमगुर्वित्तनाशं द्वितीये दद्याद्द्रव्यं सहजभवने कुक्षिरोगं चतुर्थे । कार्यभ्रंशं तनयगृहगो वित्तलाभं च षष्ठे द्यूने द्रव्यं युवतिसहितं मृत्युसंस्थोऽपमृत्युम् ॥ ३ ॥ नृपभयं कुरुते नवमः शशी दशमधामगतस्तु महत्सुखम् । विविधमायगतः कुरुते धनं व्ययगतस्तु रुजं च धनक्षयम् ॥ ४ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—शुक्लपक्षे द्वितीयस्तु चन्द्रो वित्तसुखप्रदः । पञ्चमो वरवस्त्राप्तिं कुर्याद्रोगं च पुण्यगः ॥ ५ ॥ श्रीपतिः—करोति जन्मन्यरिजं भयं कुजो धनेऽर्थनाशं सहजे धनं ध्रुवम् । सुखेऽरिभीतिं तनयेऽर्थसंक्षयं रिपौ स्वलब्धिं धनविभ्रमं स्मरे ॥ ६ ॥ भयं महच्छस्त्रकृतं गृहेऽष्टमे शरीरपीडां नवमे पदे शुचम् । अनेकशो लाभगृहे धनागमं व्यये धराजः कुरुते धनक्षयम् ॥ ७ ॥ बन्धं बुधो दिशति जन्मगतोऽर्थगोऽर्थं दुश्चिक्यगो रिपुभयं जलगो धनाप्तिम् । धीस्थो वपुर्विलयतां स्थितिदो रिपुस्थः पीडां परां कुसुमका-

भुक्तधामसंस्थः ॥ ८ ॥ अष्टमे शशिसुते धनलब्धिर्धर्मगे च महती तनुपीडा । कर्मगे सुखमुपान्त्यगतेऽर्थो द्वादशे भवति वित्तविनाशः ॥ ९ ॥ गुरुर्भयं जन्मगृहे ददाति धने धनं क्लेशभयं तृतीये । सुखेऽर्थनाशं तनये सुखानि रिपौ शुचं भूपतिमानमस्ते ॥ १० ॥ जीवोऽष्टमे मृत्युसमानरोगं सुखानि धर्मे दशमेऽतिदैन्यम् । धनाम्बरस्थानफलब्धिमाये तनोश्च पीडां वितनोति रिष्फे ॥ ११ ॥ जन्मन्यरिक्षयकरो भृगुजोऽर्थदः स्वे दुःश्चिक्यगः सुखकरो धनदश्चतुर्थः । सत्पुत्रदस्तनयगोऽरिगतोऽरिवृद्धिं शोकप्रदो मदनगो निधनेऽर्थदाता ॥ १२ ॥ जनयति विविधाम्बराणि धर्मे न शुभकरो दशमस्थितस्तु शुक्रः । धननिचयकरः स लाभसंस्थो व्ययभवनेऽपि धनागमं करोति ॥ १३ ॥ सर्वभ्रंशं विधत्ते दिनकरतनयो जन्मराशि प्रपन्नो वित्तक्लेशं द्वितीये धनहरणकृतं वित्तलाभं तृतीये । पाताले शत्रुवृद्धिं सुतभवनगतः पुत्रभृत्यार्थनाशं षष्ठस्थानेऽर्थलाभं जनयति मदने दोषसंघातमार्किः ॥ १४ ॥ शरीरपीडां निधने च धर्मे धनक्षयं कर्मणि दौर्मनस्यम् । उपान्त्यगो वित्तमनर्थमन्त्ये शनिर्ददातीत्यवदद्वसिष्ठः ॥ १५ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे–हानिं नैस्व्यं धनं रोगं शोकं वित्तं कलिं व्यसुम् । पापं वैरं सुखं हानिं राहुः कुर्यात्स्वजन्मभात् ॥ १६ ॥ रोगं वैरं सुखं भीतिं शुचं वित्तं गतिं पदम् । पापं शोकं यशो वैरं जन्मभात्कुरुते शिखी ॥ १७ ॥

इति गोचरप्रकरणम् ।

---

## अथ गोचरापवादः ।

माण्डव्यः–गोचरपीडायामपि राशिर्बलिभिः शुभग्रहैर्दृष्टः । पीडां न करोति तदा क्रूरैरेवं विपर्यासः ॥ १ ॥ मार्तण्डः–यादृशेन शशाङ्केन ग्रहः संचरते नृणाम् । तादृशं फलमाप्नोति शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥ २ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे–यथोक्तमोपधिस्थानं ग्रहविप्रार्चनं तथा । ग्रहानुद्दिश्य होमो वा त्रिधा शान्तिर्बुधैः स्मृता ॥ ३ ॥ श्रीपतिः–देवब्राह्मणवन्दनाद्गुरुवचःसंपादनात्प्रत्यहं साधूनामपि भाषणाच्छ्रुतिरवश्रेयःकथाकर्णनात् । होमादध्वरदर्शनाच्छुचिमनोभावाज्जपाद्दानतो नो कुर्वन्ति कदाचिदेव पुरुषस्यैवं ग्रहाः पीडनम् ॥ ४ ॥ मनःशिलैलासुरदारुकुङ्कुमैरुशीरयष्टीमधुपद्मकान्वितैः । सताम्रपुष्पैर्विषमस्थिते रवौ शुभप्रदं स्नानमुदाहृतं बुधैः ॥ ५ ॥ पञ्चगव्यगजदानविमिश्रैः शङ्खशुक्तिकुमुदस्फटिकैश्च । शीतरश्मिकृतवैकृतहन्तृ स्नानमेतदुदितं नृपतीनाम् ॥ ६ ॥ बिल्वचन्दनबलारुणपुष्पैर्हिङ्गुलूकफलिनीवकुलैश्च । स्नानमद्भिरिह मांसियुताभिर्भौ-

मदोपविनिवारणमाहुः ॥ ७ ॥ गोमयाक्षतफलैः सरोचनैः क्षौद्रशुक्तिभवमूलहेमभिः । स्नानमुक्तमिदमत्र भूभुजां बोधनाशुभविनाशनं बुधैः ॥ ८ ॥ मिश्रबन्धुमधुकेन च स्फुटं वैकृतं गुरुकृतं निकृन्तति ॥ ९ ॥ एलया च शिलया समन्वितैर्वारिभिः सफलमूलकुङ्कुमैः । स्नानतो भृगुसुतोपपादितं दुःखमेति विलयं न संशयः ॥ १० ॥ असिततिलाञ्जनलोध्रबलाभिः शतकुसुमाघनलाजयुताभिः । रवितनये कथितं विषमस्थे दुरितहृदाप्लवनं मुनिमुख्यैः ॥ ११ ॥ दर्भगर्भतिलपत्रकमुस्ताहस्तिदानमृगनाभिपयोभिः । स्नानमार्तिमिह कृन्तति राहोः साजमूत्रमिदमेव च केतोः ॥ १२ ॥ समियङ्गुरजनीद्वयमांसीकुष्ठलाजासितसर्षपखण्डैः । वारिभिः सह वचैः सह लोध्रैः स्नानमत्ति निखिलग्रहपीडाः॥१३॥ धार्यं तुष्ट्यै विद्रुमं भौमभान्वो रौप्यं शुक्रेन्द्वोश्च हेमेन्दुजस्य । मुक्ता सूरेर्लोहमर्कात्मजस्य लाजावर्तः शेषयोः कीर्तितश्च ॥ १४ ॥ मूणालः–माणिक्यमर्के मुक्ताऽब्जे प्रवालं भूमिजे हितम् । बुधे गारुत्मतं जीवे पुष्परागं भृगौ पविम् ॥ १५ ॥ शनौ नीलं सैंहिकेये गोमेदं धारयेद्बुधः । केतौ वैडूर्यममलं विषमे तुष्टिकारकम्॥१६॥श्रीपतिः–सदौषधैर्याति गदो विनाशं यथा यथा दुष्टबलानि मन्त्रैः । तथोदितस्नानविधानतोऽपि ग्रहाशुभं नाशमुपैत्यवश्यम् ॥ १७ ॥ अनपत्या च या नारी दुर्भगा वाऽपि या भवेत् । स्नानैरेभिर्यदा स्नाता सौभाग्यारोग्यभागिनी ॥ १८ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे–धेनुः शङ्खो वृषः स्वर्णं वस्त्रमश्वश्च गौरयः । छागो वै दक्षिणा प्रोक्ता सर्वेभ्योऽन्नं च हेम वा ॥ १९ ॥ गुडान्नं क्षीरिकासारो दुग्धान्नं दधिभक्तकम् । घृतान्नं कृशरं माषं चित्रान्नं सूर्यतः क्रमात् ॥२०॥ कल्लः–न भवति शरीरपीडा यस्य विना शान्तिभिर्भयं पीडा । तस्य शरीरावित्तिं पाकान्ते देवलः प्राह ॥ २१ ॥ गर्गः–स्नानमङ्गलहोमैश्च घोरमप्येति मार्दवम् । नैवमापचयते दैवं निहतं शान्तिकर्मभिः ॥ २२ ॥ कल्लः–जन्मर्क्षादिकपीडायां दिनमेकमुपोषितोऽनलं जुहुयात् । सावित्र्या क्षीरतरोः समिद्भिरमरद्विजानुरतः ॥ २३ ॥

## अथ ग्रहदानानि ।

कौसुम्भवस्त्रं गुडहेमताम्रं माणिक्यगोधूमसूरिकाऽब्जम् । सवत्सगोदानमिति प्रणीतं दुष्टाय सूर्याय वदन्ति दानम् ॥ २४ ॥ घृतकलशं सितवस्त्रं युगस्थवृषभं सुवर्णं च । रजतं च संप्रदद्याच्चन्द्रारिष्टस्य प्रशमाय ॥ २५ ॥ आरक्तवस्त्रं गुडहेमदानं प्रवालगोधूममसूरिकाश्च । वृषः सुताम्रः करवीरपुष्पं दुष्टाय भौमाय वदन्ति दानम् ॥ २६ ॥ नीलं वस्त्रं मुद्गदानं बुधाय रत्नं पाचिर्दासिका हेम

१ क. मृतमा° । २ क. °मांग ।

सर्पिः । कांस्यं दन्तः कुञ्जरस्याथ मेषो रौप्यं सर्वं पुष्पजात्यादिकं च ॥ २७॥ अश्वः सुवर्णं शुभपीतवस्त्रं सपीतधान्यं लवणं सुपुष्पम् । सशर्करं तद्रजनीप्रयुक्तं दुष्टाय शान्त्यै गुरवे प्रणीतम् ॥ २८ ॥ चित्रवस्त्रमपि दानवार्चिते दुष्टगे मुनिवरैः परिणीतम् । तण्डुला घृतसुवर्णरूप्यकं वज्रक परिमला शबला गौः॥२९॥ नीलकं महिषी वस्त्रं कृष्णं लोहं सदक्षिणम् । तैलमाषकुलित्थाश्च शनेर्दौष्टयप्रशान्तये ॥ ३० ॥ राहोर्दानं बुधैर्मेषो गोमेदो लोहकम्बलौ । सौवर्णं नागरूपं च सतिलं ताम्रभाजनम् ॥ ३१ ॥ केतौ वैडूर्यकं शस्त्रं तैलं मृगमदं तथा । ऊर्णां तिलैश्च संयुक्तां दद्यात्क्लेशापनुत्तये ॥ ३२ ॥ नवग्रहहोमस्तु स्वशाखोक्तो ग्राह्यः ।

इति गोचरापवादः ।

---

## अथानिष्टचन्द्रापवादः ।

गर्गः-अनिष्टस्थानसंस्थोऽपि गोचरे शुभदः शशी । सौम्यर्क्षगोऽधिमित्रेण गुरुणा च विलोकितः ॥ १ ॥ वैद्यनाथः-निषिद्धस्थानसंस्थोऽपि शुभमित्रग्रहांशके । स्थितोऽधिमित्रसंदृष्टश्चन्द्रमाः शुभदः स्मृतः ॥ २ ॥ ज्योतिःसागरे-अनिष्टस्थानगोऽपीन्दुर्लग्नाद्राशेश्च शोभनः । भवेत्सौम्यांशगः स्वामिमित्रेण वलिनेक्षितः ॥ ३ ॥ स्वोच्चेऽथवा स्वभवने स्फुटरश्मिजालः सौम्यालये हितगृहे शुभवर्गयोगे । जामित्रवेधयुतिपूर्वकदोपराशिं हित्वा ददाति बहुशः सुखमेव चन्द्रः ॥ ४ ॥ प्राप्तोदयः प्राप्तबलैश्च सौम्यैर्विलोकितो वा शुभराशिसंस्थः । निहन्त्यनिष्टं सकलं स्वकीयं फलं विधत्ते शुभमेव चन्द्रः ॥ ५ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे-यात्रादावशुभे चन्द्रे यदि पक्षबलं भवेत् । तदा फलं शुभं कुर्यात्तथा लग्नाच्छुभेक्षितः ॥ ६ ॥ वैद्यनाथः-ऋक्षं दग्धं तिथिं रिक्तां चन्द्रमष्टमगं तथा । तत्सर्वं नाशयेत्तारा षट्चतुर्नवमी ध्रुवम्॥७॥वसिष्ठः-उशीरं च शिरीषं च चन्दनं पद्मकं तथा । शङ्खे न्यस्तमिदं स्नानं चन्द्रदोषनिवारणम् ॥ ८ ॥ दानखण्डे-शुक्लाक्षतैः पूरयित्वा पात्रं वेणुमयं शुभम् । तस्योपरि पयःपूर्णं कांस्यपात्रं समौक्तिकम् ॥ ९ ॥ सरौप्यं शुक्लगन्धाद्यैर्वस्त्रयुग्मेण संयुतम् । दद्याज्ज्योतिर्विदे तच्च चन्द्रारिष्टप्रशान्तये ॥ १० ॥ गदिता दक्षिणा तत्र शङ्खो मौक्तिकगर्भितः । घृतदीपश्चतुर्वर्त्तिः कुम्भो वा पयसाऽन्वितः ॥ ११ घृतकुम्भः सितं वस्त्रं सितो वा वृषभस्ततः । सुवर्णं रजतं वाऽपि चन्द्रारिष्टप्रशान्तये ॥ १२ ॥

इत्यनिष्टचन्द्रापवादः ।

## अथ सौम्यक्रूरादिविचारः ।

होरामकरन्दे—क्रूरग्रहाः कुजदिवाकरसूर्यसूनुक्षीणेन्दवः शशिसुतः सहितस्तु तैः स्यात् । पूर्णेन्दुजीवभृगुजाः शुभसंज्ञिताः स्युस्तैः संयुतस्तुहिनरश्मिसुतोऽपि सौम्यः ॥ १ ॥ सप्तवर्गे स्थितो यस्य तस्य स्यात्केवलः समः । मिश्रवर्गाश्रितस्त्वन्द्विराधिवयफलदो मतः ॥ २ ॥ जातकोत्तमे—क्षीणेन्द्वर्कार्किभौमाः स्युः पापास्तैः संयुतो बुधः । राहुकेतू पापतरौ पापः पापान्वितस्तथा ॥ ३ ॥ जातकतिलके-सौम्यः सपापस्त्वशुभः पापः सौम्ययुतः शुभः । पापौ युतावप्यशुभौ सौम्यावतिशुभौ युतौ ॥ ४ ॥ चन्द्रेण संयुताः सर्वे सर्वत्र बलोत्कटाः । भार्गोत्तरस्था अबलाः क्रमात्पापर्युयुक्षवः ॥ ५ ॥ अर्केणास्तंगता यद्वत्तेन युक्ताः क्रमाच्छुभाः । सौम्याः पापोज्झिताश्चैव सौम्ययोगे शुभं वदेत् ॥ ६ ॥ गार्ग्यः-तिथिभागान्तरस्थौ यौ ग्रहौ तौ योगसंज्ञितौ । तत्तुल्यांशैः फलं पूर्णं न्यूनं न्यूनाधिकैर्भवेत् ॥ ७ ॥ रुद्रः—योगा यथोक्तफलदाः कलार्धभागैकसंस्थितानां च । अमासातीतानामिच्छामात्रं फलं भवति ॥ ८ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—योगो ग्रहान्तरं यत्र तिथिभागाधिकं भवेत् । न योगफलमित्याहुरनुपातस्तदन्यथा ॥ ९ ॥ ज्योतिर्विवरणे—शुभाशुभत्वं सुसदां यदुक्तं योगतो बुधैः । तत्फलादेशविषये न स्वभावविमोचकम् ॥ १० ॥

इति सौम्यक्रूरादिविचारः ।

---

## अथ सूर्ये कथं क्रूरत्वादीति प्रश्नोत्तरम् ।

आदित्यपुराणे—कालात्मा सर्वदेवात्मा भूतात्मा विश्वतोमुखः । जगद्योनिः सहस्राक्षः कथं क्रूरत्वमागतः ॥ १ ॥ अस्योत्तरं—छायापुत्रो महारौद्रो मातुर्दुःखेन दुःखितः । शशाप पितरं क्रोधात्तेनार्कः क्रूरतां गतः ॥ २ ॥ रुद्रयामले—काश्यपेयो रविः केन हेतुना क्षत्रियोऽभवत् । इत्येतच्छ्रोतुमिच्छामि ब्रूहि शंकर ते नमः ॥ ३ ॥ शृणवपर्णे विशालाक्षि सृष्ट्यादावसृजद्विधिः । कर्मकालप्रबोधार्थं भचक्रं खेचरैः सह ॥४॥ तत्रार्को ग्रहभादीनां स्वामित्वे केन योजितः । तेनोच्यते स राजन्यः प्रभुत्वं तद्विना न हि ॥ ५ ॥

इति सूर्ये क्रूरत्वादिप्रश्नोत्तरम् ।

---

## अथ लग्नप्रकरणम् ।

श्रीपतिः—विरोधमभिषेकं च राज्ञां साहसकर्म च । धात्वाकरादिसंबन्धं मेष-

संधिस्थितः खेटः सर्वत्र विफलः स्मृतः । एवं भावविधिं ज्ञात्वा जन्मोद्वाहगमादिषु ॥ २५ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे–चरस्थिरद्विस्वभावा मेषाद्या राशयः क्रमात् । क्रूरकर्मणि सक्रूराः शुभे ग्राह्याः शुभान्विताः ॥२६॥ कश्यप.–स्वामियुक्तो वीक्षितो वा बुधजीवेक्षितस्तथा । बलवान्संभवेद्राशिर्दृष्टो युक्तोऽपि नापरैः ॥२७॥ वसिष्ठ.–पृष्ठोदये वृषो मेषः कर्किचापमृगास्तथा । शेषः शीर्षोदये राशिर्मीनः स्यादुभयोदयः ॥ २८ ॥ कुम्भमीनौ तथा सिंहश्चत्वारो बलिनो दिने । धनुर्मृगौ च मेषाद्याश्चत्वारस्तु निशाबलाः ॥ २९ ॥ वराहः–मेषवृषधन्विसिंहाश्चतुष्पदा मकरपूर्वभागश्च । कीटः कर्कटराशिः सरीसृपो वृश्चिकः कथितः ॥ ३० ॥ मकरस्य पश्चिमार्धं कुम्भो मीनश्च जलचराः ख्याताः । मिथुनतुलाधरकन्या द्विपदाख्या धन्विपूर्वभागश्च ॥ ३१ ॥ स्वरशास्त्रे–कुम्भान्त्यौ द्विनिशौ पङ्गू तुलाली मृगधन्विनौ । बधिरौ सिंहगोमेषा अन्धाः स्त्रीमृगकर्कटाः ॥ ३२ ॥ अन्धे शून्यं भ्रमः पङ्गौ बधिरे हानिरत्र चेत् । यदि तुष्टो भवेदंशः सौम्यो वै तत्फलं न हि ॥ ३३ ॥ घटान्त्योक्षनृयुङ्मेषकन्याकीटतुलाहयाः । कुलीरमृगसिंहाः स्युश्चैत्राद्याः शून्यराशयः ॥ ३४ ॥ तुलामृगौ प्रतिपदि तृतीयायां मृगार्कभे । पञ्चम्यां वृषराशी द्वौ सप्तम्यां चापचन्द्रभे ॥ ३५ ॥ नवम्यां हरिकीटौ द्वावेकादश्यां गुरोर्गृहे । त्रयोदश्यां मेषवृषौ दिनदग्धाश्च राशयः ॥ ३६ ॥ मासदग्धाह्वयान्राशीन्दिनदग्धांश्च वर्जयेत् । सत्यसूरि –जन्मर्क्षोदयवा जन्मलग्नाद्रन्ध्रेशभांशगाः । शुभं भावफलं घ्नन्ति ग्रहाः पुष्णन्ति चाशुभम् ॥ ३७ ॥ जन्मभाद्व्ययभांशस्था जन्मलग्नाच्च खेचराः । भवन्ति व्ययदाः शत्रुभांशस्थाः शत्रुकारिणः ॥ ३८ ॥ श्रीपतिः–अशुभोऽपि शुभांशस्थो दर्शने स्याच्छुभप्रदः । सामृतं किं विषं भुक्तं न शुभाय प्रजायते ॥ ३९ ॥ वैद्यनाथ –विलग्नस्थोऽष्टमो राशिर्जन्मलग्नात्स्वजन्मभात् । न शुभः सर्वकार्येषु लग्नाच्चन्द्रस्तथाऽष्टमः ॥ ४० ॥ वराहः–स्वगृहत्रिकोणतुङ्गादिमसंस्थितमित्रभवनभावगतः । चेष्टादिबलयुतो वा यत्नाद्योज्यः शुभे स्थाने ॥ ४१ ॥ नेष्टः शुभो विलग्ने नीचारिगृहोपगस्तु शत्रुदिने । क्रूरोऽपि सुहृद्दिवसे स्वोच्चगतः शुभफलो लग्ने ॥ ४२ ॥ भृगु –लग्नेशेऽस्तं गते रोगो रन्ध्रे मृत्युर्व्यये व्ययः । शत्रौ शत्रुभयं घोरं नीचे भङ्गोऽरिजं भयम् ॥ ४३ ॥ यवन –ऋक्षसंधिगताः खेटा राशिसंधिगतास्तथा । एष्यराशेः फलं दद्युर्विपरीतं तु वक्रगाः ॥ ४४ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे–प्रायो व्ययाष्टगाः सौम्या नेष्टा वृद्धिं विना खलाः । लग्नेशोऽष्टारिगो लुप्तश्चन्द्रो लग्नारिरन्ध्रगः ॥ ४५ ॥ त्याज्यो

१ क. °त्यौघुनिशा.प° । ख. °न्भाशोद्विनिशा.प° ।

लग्ने प्रसाधयेत् ॥ १ ॥ वृषोदये विवाहश्च ध्रुवं वेश्मप्रवेशनम् । कुमारीवरणं दानं क्षेत्रारम्भादि चेष्यते ॥ २ ॥ कलाविज्ञानसंबन्धं वृषलग्नोदितं च यत् । स्त्रीभूषणादिकं कर्म कर्तव्यं मिथुनोदये ॥ ३ ॥ वापीकूपतडागादिवारिबन्धनमोक्षणे । पौष्टिकं कर्म यत्किंचित्सर्वं सिध्यति कर्किणि ॥ ४ ॥ वणिक्कृपथाद्यं पण्यं च कर्षणं नृपसेवनम् । परयोमश्च मेषोक्तं तच्च कण्ठीरवे हितम् ॥ ५ ॥ औषधं शिल्पविज्ञानं भूषणादि चरं स्थिरम् । कर्तव्याः पौष्टिकारम्भाः कन्यालग्ने प्रसिद्धये ॥ ६ ॥ कृषिकर्म वणिक्सेवा यात्राकर्म तुलोदये । प्रसिध्यन्ति हि सर्वाणि तुलाभाण्डाश्रितानि च ॥ ७ ॥ साहसं दारुणोग्रं च राजसेवाभिषेचनम् । चौर्यकर्म स्थिरारम्भाः कर्तव्या वृश्चिकोदये ॥ ८ ॥ प्रस्थानपौष्टिकोद्वाहाः सवाहनपरिग्रहाः । चापलग्ने प्रसिद्धाः स्युश्चरकर्मप्रसिद्धये ॥ ९ ॥ क्षेत्राश्रयाण्यम्बुयात्रा बन्धमोक्षौ च वारिणाम् । दासीचतुष्पदोष्ट्रादि कर्तव्यं मकरोदये ॥१०॥ नौचौर्योदकयानं च कर्म ध्रुवचरं तथा । बीजसंग्रहणोप्ती च कर्तव्यं कलशोदये ॥ ११ ॥ विद्यालंकारशिल्पादि कृष्यम्बुपशुकर्म च । यात्रोद्वाहाभिषेकाद्यं कार्यं मीनोदये बुधैः ॥ १२ ॥ नारदः—मेषादिषु विलग्नेषु शुद्धेष्वेतत्प्रसिध्यति । क्रूरग्रहेक्षितेष्वुग्रं संयुक्तेष्वुग्रमेव हि ॥ १३ ॥ गोयुग्मकर्किकन्यान्त्यतुलाचापधराः शुभाः । शुभग्रहास्पदत्वात्सप्तेतराःपापराशयः ॥ १४ ॥ सौम्योग्रतैषां राशीनां प्रकृत्या न भवत्यसौ । योगेन सौम्यपापैश्च खेचरैर्वीक्षितेन वा ॥ १५ ॥ सौम्याश्रितत्वात्क्रूरोऽपि स राशिः शोभनः स्मृतः । सौम्योऽपि राशिः क्रूरः स्यात्क्रूरग्रहयुतो यदि ॥ १६ ॥ ग्रहयोगावलोकाभ्यां राशिर्धत्ते ग्रहोद्भवम् । फलं ताभ्यां विहीनोऽसौ स्वभावमुपसर्पति ॥ १७ ॥ आदौ संपूर्णफलदं मध्ये मध्यफलप्रदम् । अन्त्ये तुच्छफलं लग्नं सर्वस्मिन्नेवमेव हि ॥ १८ ॥ दैवज्ञवल्लभे—लग्ने शुभेऽपि यद्यंशः क्रूरः स्यान्नेष्टसिद्धिदः । लग्ने क्रूरेऽपि सौम्योंऽशः शुभदोंऽशो बली यतः ॥ १९ ॥ स चन्द्रराशेरशुभो नवांशः प्रोक्तः स पापस्य च लग्नसंस्थः । केन्द्रत्रिकोणेषु गुरुः सितो वा भवेत्तदाऽसावशुभोऽपि शस्तः ॥ २० ॥ विवाहपटले—सचन्द्रसक्रूरनवांशकं यल्लग्नं हरत्यायुरिति ब्रुवन्ति । धीधर्मकेन्द्रो भृगुजोऽथवेज्यो लग्नं तदेत्राऽऽयुरतीव धत्ते ॥ २१ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—मोच्यते लग्नसंस्थोऽसौ ग्रहो य उदितांशगः । द्वितीयोऽनुदितांशस्थः सर्वराशिष्वयं क्रमः ॥ २२ ॥ पटलसारे—लग्नांशतुल्या विज्ञेया भावा द्वादश ते पुनः । तिथ्यंशेन युतास्तेषु भावपराः सन्धयः क्रमात् ॥ २३ ॥ श्रीधरः—गतैष्यभावफलदः संधेर्न्नाधिको ग्रहः । भावतुल्यं फलं पूर्णं धत्तेऽन्यत्रानुपाततः ॥ २४ ॥ भाव-

संधिस्थितः खेटः सर्वत्र विफलः स्मृतः। एवं भावविधिं ज्ञात्वा जन्मोद्वाहगमादिषु ॥ २५ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—चरस्थिरद्विस्वभावा मेषाद्या राशयः क्रमात्। क्रूरकर्मणि सक्रूराः शुभे ग्राह्याः शुभान्विताः ॥२६॥ कश्यपः—स्वामियुक्तो वीक्षितो वा बुधजीवेक्षितस्तथा। बलवान्संभवेद्राशिर्दृष्टो युक्तोऽपि नापरैः ॥२७॥ वसिष्ठः—पृष्ठोदये वृषो मेषः कर्किचापमृगास्तथा। शेषः शीर्षोदये राशिर्मीनः स्यादुभयोदयः ॥ २८ ॥ कुम्भमीनौ तथा सिंहश्चत्वारो बलिनो दिने। धनुर्मृगौ च मेषाद्याश्चत्वारस्तु निशाबलाः ॥ २९ ॥ वराहः—मेषवृषधन्विसिंहाश्चतुष्पदा मकरपूर्वभागश्च। कीटः कर्कटराशिः सरीसृपो वृश्चिकः कथितः ॥ ३० ॥ मकरस्य पश्चिमार्धं कुम्भो मीनश्च जलचराः ख्याताः। मिथुनतुलाधरकन्या द्विपदाख्या धन्विपूर्वभागश्च ॥ ३१ ॥ स्वरशास्त्रे—कुम्भान्त्यौ द्विनिशौ पङ्गू तुलाली मृगधन्विनौ। बधिरौ सिंहगोमेषा अन्धाः स्त्रीमृगकर्कटाः ॥ ३२ ॥ अन्धे शून्यं भ्रमः पङ्गौ बधिरे हानिरत्र चेत्। यदि तुष्टो भवेदंशः सौम्यो वै तत्फलं न हि ॥ ३३ ॥ घटान्त्योक्षनृयुङ्मेषकन्याकीटतुलाहयाः। कुलीरमृगसिंहाः स्युश्चैत्राद्याः शून्यराशयः ॥ ३४ ॥ तुलामृगौ प्रतिपदि तृतीयायां मृगार्कभे। पञ्चम्यां बुधराशी द्वौ सप्तम्यां चापचन्द्रभे ॥ ३५ ॥ नवम्यां हरिकीटौ द्वावेकादश्यां गुरोर्गृहे। त्रयोदश्यां मेषवृषौ दिनदग्धाश्च राशयः ॥ ३६ ॥ मासदग्धाह्वयान्राशीन्दिनदग्धांश्च वर्जयेत्। सत्यसूरिः—जन्मर्क्षादथवा जन्मलग्नाद्रन्ध्रेशभांशगाः। शुभं भावफलं घ्नन्ति ग्रहाः पुष्णन्ति चाशुभम् ॥ ३७ ॥ जन्मभाद्व्ययभांशस्था जन्मलग्नाच्च खेचराः। भवन्ति व्ययदाः शत्रुभांशस्थाः शत्रुकारिणः ॥ ३८ ॥ श्रीपतिः—अशुभोऽपि शुभांशस्थो दर्शने स्याच्छुभप्रदः। सामृतं किं विषं भुक्तं न शुभाय प्रजायते ॥ ३९ ॥ वैद्यनाथः—विलग्नस्थोऽष्टमो राशिर्जन्मलग्नात्स्वजन्मभात्। न शुभः सर्वकार्येषु लग्नाच्चन्द्रस्तथाऽष्टमः ॥ ४० ॥ वराहः—स्वगृहात्रिकोणतुङ्गादिमसंस्थितमित्रभवनभावगतः। चेष्टादिबलयुतो वा यत्नाद्योज्यः शुभे स्थाने ॥ ४१ ॥ नेष्टः शुभो विलग्ने नीचारिगृहोपगस्तु शत्रुदिने। क्रूरोऽपि सुहृद्दिवसे स्वोच्चगतः शुभफलो लग्ने ॥ ४२ ॥ भृगुः—लग्नेशेऽस्तं गते रोगो रन्ध्रे मृत्युर्व्यये व्ययः। शत्रौ शत्रुभयं घोरं नीचे भङ्गोऽरिजं भयम् ॥ ४३ ॥ यवनः—ऋक्षसंधिगताः खेटा राशिसंधिगतास्तथा। एष्यराशेः फलं दद्युर्विपरीतं तु वक्रगाः ॥ ४४ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—प्रायो व्ययाष्टगाः सौम्या नेष्टा वृद्धिं विना खलाः। लग्नेशोऽष्टारिगो लुप्तश्चन्द्रो लग्नारिरन्ध्रगः ॥ ४५ ॥ त्याज्यो

---

१ क. °स्यौयुनिशा°। ख. °भांशोदिनिशा°।

लग्नेऽष्टमो मन्दः षष्ठे शुक्रेन्दुलग्नपाः । रन्ध्रेऽब्जात्पञ्च पापास्ते विवाहे पापकर्तरी ॥ ४६ ॥ चन्द्रनेत्रयुगमक्षदिक्तथा सूर्यषट्कवसुनन्दरुद्रकाः । रामबाणमितभानि जन्मभाद्घातलग्नमिति संत्यजेद्बुधः ॥ ४७ ॥

इति लग्नबलप्रकरणम् ।

---

## अथ षड्वर्गप्रकरणम् ।

ज्योतिष्प्रकाशे–गृहं होरा च द्रक्काणो नवांशो द्वादशांशकः । त्रिंशांशश्चेति षड्वर्गः स सौम्यग्रहजः शुभः ॥ १ ॥ भौमः शुक्रो बुधः सोमो रविः सौम्यो भृगुः कुजः । गुरुर्मन्दः शनिर्जीवो मेषादीनामधीश्वराः ॥ २ ॥ भास्करः–होरेशे विषमेऽर्केन्द्वोः समभे चन्द्रसूर्ययोः। स्वपञ्चनवमेशाःस्युर्द्रेक्काणा भवने त्रयः ॥३॥ सिंहाजधन्विनोऽजाद्याः कर्काद्याः कवर्यलिझषः। तुलाद्यास्तौलियुवकुम्भा मृगाद्या मृगगोवला: ॥ ४ ॥ भागास्त्रिघ्ना दशहृता लब्धा भुक्तनवांशकाः । द्विघ्नैः पञ्चहृतैर्भागैः स्वस्थानाद्द्वादशांशकाः ॥ ५ ॥ भागाः पञ्चेषुविभात्र्यक्षास्त्रिंशांशा विषमे गृहे । कुजार्कीज्यज्ञशुक्राणां व्यस्तास्ते समभे तथा ॥ ६ ॥ व्यासः–षड्वर्गं पञ्चवर्गं च चतुर्वर्गं शुभावहम् । त्रिवर्गं वाऽपि सद्योगे व्येकवर्गं तनुं त्यजेत् ॥ ७ ॥

इति षड्वर्गशुद्धिः ।

---

## अथानिष्टवर्गापवादः ।

वसिष्ठः––इष्टैश्च वेदाद्विवलोपपन्नैश्चतुर्भिरप्यन्यवर्गैर्विलग्नम् । अनिष्टषड्वर्गमयीष्टमाहुः स्वेशेक्षितं गौतमगालवाद्याः ॥ १ ॥ माण्डव्यः–षड्वर्गं पञ्चवर्गं च चतुर्वर्गं शुभावहम् । लग्नं नन्द्यादियोगेषु त्रिवर्गमपि शस्यते ॥ २ ॥ शुभवर्गैः शुभं लग्नं नेतरैश्चापि तत्र तु । स्वमित्रजः शुभः प्रोक्तो वर्गः शत्रुभवो न सन् ॥ ३ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे–जातिशक्राम्बुदव्यालधृत्यष्टिजिनभानवः । घनेन्द्रोत्कृतिनागांशा मेषादेः कार्यकारकाः ॥ ४ ॥ अत्यष्टिर्मनवश्चैव जिनाश्च मुनयस्तथा । मेषसिंहाश्वपूर्वाणां पुष्कलांशाः प्रकीर्तिताः ॥ ५ ॥

इत्यनिष्टवर्गापवादः ।

---

१ क. °ष्टपोमन्दात्पष्ठे । २ ग. °नेश्वराः । ३ ग. भुक्तान° । ४ ग. °श्चेष्विभाग्रशा । ५ ख. ग. °हुः स्वेशेक्षि° । ६ ग. °त्यष्टजि° । ७ ख. सिंहाश्वपू° । ग. सिंहश्वपु° ।

## अथ तिथ्यादीनां बलविचारः ।

संहिताप्रदीपे—शास्त्रार्थतत्त्वं प्रविचार्य पूर्वं सांवत्सराणां धुरमुद्दिधीर्षुः । समादिशन्सत्सु महत्त्वमेति लोके न विग्नालबलिप्तचिह्नैः ॥ १ ॥ लग्नं तिथिर्व्योमचरः शशाङ्को नक्षत्रयोगौ करणं तथैव । एतानि लोकव्यवहारसिद्ध्यै शास्त्रार्थशोध्यानि पदानि सप्त ॥ २ ॥ लग्नेन्दुतिथ्युद्गमतारकाणां दोषा गुणाश्चाभिहिता बुधैर्ये । विचार्य तेषां लघुतां गुरुत्वं विनिर्णयं शास्त्रपदानि ( श्रि )-धास्ये ॥ ३ ॥ तिथिः शरीरं मन इन्दुवीर्यं विलग्नमात्माऽवयवास्तु भाद्याः । शुद्धे शरीरे त्वपरेऽविचिन्त्यं न क्वापि कुड्येन विनाऽपि चित्रम् ॥ ४ ॥ सर्वत्र कार्येषु शुभाशुभेषु पृच्छन्ति लोकास्तिथिमेव पूर्वम् । न क्वापि योगं करणं ग्रहं वा तस्मात्तिथेर्मुख्यतरत्वमिष्टम् ॥ ५ ॥ ज्योतिर्विवरणे—तिथेः प्रशंसा या प्रोक्ता सदैव पितृकर्मणि । ज्ञेया बुधैस्तथोद्वाहप्रयाणादिषु चाल्पता ॥ ६ ॥ वारर्क्षचन्द्रोदयशुद्धिलाभे तिथिः सदोषोऽपि भवेददोषः । सौन्दर्यकान्त्यादिगुणैः सरोजं सकण्टकत्वेऽपि यतो गुणाढ्यम् ॥ ७ ॥ विशुद्धमृक्षं सबलं च लग्नं यथा प्रयत्नेन विलोकयन्ति । तथा न योगं करणं तिथिं वा दोषो गुणो वाऽपि तिथेर्यतोऽल्पः ॥ ८ ॥ इत्थं विरोधे वचसां मिथस्तु किं तु प्रमाणं कतरन्नृपेति । नाऽऽयाति वक्तुं मुनिभाषितत्वात्प्रामाण्यमेषां विषयाववोधात् ॥ ९ ॥ गुणस्य दोषस्य च तारतम्यं विचारणीयं विदुषा प्रयत्नात् । कश्चिद्गुणो दोषशतं निहन्ति दोषो गुणानामपि हन्ति लक्षम् ॥ १० ॥ पूर्वापराभ्यां सहितस्तिथिभ्यां निहन्ति दर्शो निचयं गुणानाम् । तमेव हित्वाऽमृतसिद्धियोगास्तिथेरशेषानपि घ्नन्ति दोषान् ॥ ११ ॥ स्यातामुभौ दोषगुणौ महान्तौ यदा तदा हीनतरो गुणः स्यात् । पुण्ये कृते पातकिताऽधिकेऽपि नापैति पापं हि जनापवादः ॥ १२ ॥ ज्योतिःसागरे—लग्नं जीवो मनश्चन्द्रः शरीरं च तिथिस्ततः । जीवे पुष्टे फलं पुष्टं नष्टे नष्टं विदुर्बुधाः ॥ १३ ॥ गर्गः—लग्नं केनापि दोषेण दूषितं चेत्तदा गुणाः । सर्वे दुष्टाः स्युरात्मानं विना यद्वत्कलेवरम् ॥ १४ ॥ संहिताप्रदीपे—केनापि दोषेण तनौ प्रदुष्टे दुष्यन्ति तिथ्यब्जबलर्क्षवाराः । सौवर्णकान्त्यादिगुणो मुखस्य नासाविहीनस्य भवत्यसारः ॥ १५ ॥ वल्लः—न तिथिं न च नक्षत्रं न योगं नैन्दवं बलम् । लग्नमेकं प्रशंसन्ति गर्गनारदकश्यपाः ॥ १६ ॥ ज्योतिर्विवरणे—लग्नवीर्यं विना यत्र यत्कर्म क्रियते बुधैः । तत्फलं विलयं याति ग्रीष्मे कुसरितो यथा ॥ १७ ॥ शुष्कमार्द्रं दहत्येधो महादीप्तो यथाऽनलः । तिथ्यादीनां फलं तद्वल्लग्नदोषो विनिर्दहेत् । यथा निर्वाणतां याति दीपः स्नेहक्षयात्तथा ।

लग्नवीर्यक्षयादेव तिथ्यादेः सदसत्फलम् ॥ १९ ॥ मन्त्रौषधवशाद्यद्वद्भक्षितं जीर्यते विषम् । तद्वद्ग्रहबलेनैव जीर्यते दोषसंचयः ॥ २० ॥ ज्योतिष्प्रकाशे— न लिप्यते यथाऽम्भोभिस्तत्रस्थं पद्मिनीदलम् । तथा तिथ्यादिजैर्दोषैर्लग्नं खेटबलान्वितम् ॥ २१ ॥ संहिताप्रदीपे——नक्षत्रलग्नतिथयः प्रथमार्धवीर्या वारश्च योगसहितो बलवानशेषः । ऋक्षं दिवा निशि तिथिर्विबलत्वमेति तिथ्यर्धमत्र तिथिवत्परिचिन्तनीयम् ॥ २२ ॥ वृद्धगर्गः—तिथिरेकगुणः प्रोक्तो बलेन द्विगुणः क्षणः । चतुर्गुणं तु नक्षत्रं वारश्चाष्टगुणः स्मृतः ॥ २३ ॥ चन्द्रः शतगुणो लग्नं सहस्रगुणमुच्यते । लग्नाद्धोरादयो भेदा बलिनः स्युर्यथोत्तरम् ॥ २४ ॥ राजमार्तण्डः—तिथिरेकगुणा प्रोक्ता नक्षत्रं च चतुर्गुणम् । वारश्चाष्टगुणश्चैव श्चन्द्रः शतगुणः स्मृतः ॥ २५ ॥ लग्नं कोटिगुणं विद्याद्ग्रहवीर्यसमन्वितम् । तस्मात्सर्वेषु कार्येषु लग्नवीर्यं विलोकयेत् ॥ २६ ॥ ज्योतिःसागरे—लग्नं पुष्पसमं ज्ञेयमंशः फलसमस्तथा । नष्टे पुष्पे फलं नास्ति तस्माल्लग्ने प्रधानता ॥ २७ ॥ तिथ्यादिकानामिति तारतम्यं शास्त्रार्थतत्त्वं मुनिभिः प्रदिष्टम् । तथैव लोकव्यवहारदृष्टं मतं बहूनामपि चिन्तनीयम् ॥ २८ ॥

इति तिथ्यादीनां बलविचारः ।

## अथ चन्द्रबलप्रशंसा ।

शार्ङ्गविवाहपटले—लग्नं देहोऽङ्गानि षड्वर्गकाश्च प्राणश्चन्द्रो धातवः खेचरेन्द्राः । प्राणे नष्टे देहधात्वङ्गनाशस्तस्मात्सर्वत्रेन्दुवीर्यं प्रधानम् ॥ १ ॥ संहिताप्रदीपे—आदौ हि चन्द्रस्य बलं विचिन्त्यं लग्नस्य पश्चादथ सप्तवर्गः । किं चन्द्रवीर्येण विनेतराणि कुर्वन्ति सत्यायुषि लक्षणानि ॥ २ ॥ श्रीपतिः-आधारमिन्दोर्बल-मुक्तमार्यैराधेयमन्यद्ग्रहजं च वीर्यम् । आधारशक्तौ परिनिष्ठितायामाधेयव-स्तूनि हि वीर्यवन्ति ॥३॥ अमृतकिरणवीर्योद्वीर्यमाश्रित्य सर्वे विदधति फलमेते खेचराः साध्वसाधु । निजनिजविषयेषु व्याप्रियन्ते यथाऽमी फलमिह मनसैवा-धिष्ठितानीन्द्रियाणि ॥ ४ ॥

इति चन्द्रबलप्रशंसा ।

---

## अथ चन्द्रलग्नयोर्बलनिर्णयः ।

इत्थं विवादे विदुषां बहूनां परस्परं भिन्नमतं वचोभिः । प्राधान्यमस्येति न वक्तुमेति शास्त्राणि विज्ञाय पुरातनानि ॥ १ ॥ संहिताप्रदीपे—प्रायेण सर्वत्र विलोकयन्ति चान्द्रं बलं गोचरतो विशुद्ध्य । लोकेषु यच्चन्द्रबलं प्रधानं शास्त्रेषु मुख्यं खलु लग्नमेव ॥ २ ॥ यत्रोदितं लग्नबलं प्रधानं विलोक्यमिन्दोरपि तत्र वीर्यं । दुष्टं फलं स्यादुभयोरभावे लग्नाब्जयोरन्यतमस्य मध्यम् ॥३॥ अत्राऽऽह माण्डव्यमुनिर्विशेषं प्रायेण चन्द्रस्य बलं विलोक्यम् । समुत्सुके कर्मणि लग्नवीर्यं तात्कालिकादप्यनयोरभावे ॥ ४ ॥ यदुक्तं कैश्चिदाचार्यैः प्राधान्यं शीतगोर्बले । लग्ने न सदसद्यस्मात्तद्वर्गादिसंमतम् ॥ ५ ॥ गर्गः—कल्पादावसृजत्स्रष्टा भचक्रं ग्रहसंयुतम् । मूर्तिमत्संनिबद्धं तद्राशिचक्रे त्वमूर्तके ॥ जातकतिलके—अमूर्तिरा-शिचक्रस्य स्थिरत्वं युज्यते पुनः । ज्योतिश्चक्रस्य मूर्तस्य स्थिरत्वे नैव कारणम् ॥ ७ ॥ सोमसिद्धान्ते—नित्योऽमूर्तो ह्यनाद्यन्तः कालो द्वादशधा भवेत् । स्वयं स्वाङ्गविभागेन राशयस्तेऽत्र कल्पिताः ॥ ८ ॥ ज्योतिर्विवरणे—अनित्यं मूर्तिमत्सर्वममूर्तं नित्यमुच्यते । तस्मादल्पफलं मूर्तं परं भूरिफलप्रदम् ॥ ९ ॥ अमूर्तमूर्तयोः क्वास्ति साम्यं नित्यादिभेदतः । तस्माल्लग्ने प्रधानत्वं निरुक्तं ज्ञैः किल स्मृतम् ॥ १० ॥ पितामहः—ज्योतिःशास्त्रफलं सर्वं लग्नाधीनं बुधैः स्मृतम् । स्फुटखेटाश्रयं तत्तु तस्मात्प्राधान्यमेतयोः ॥ ११ ॥ प्रधानं चिन्तये-त्पूर्वं ततोऽङ्गं च तयोर्यदि । मुख्याभावेऽङ्गनाशः स्यात्सर्वत्रैवं विनिश्चयः ॥१२॥ ज्योतिर्विवरणे—चन्द्रः प्राण इति प्रोक्तं यद्वच फलनिर्णयः । तद्धर्मार्थमीमांसा-विषयं न तु गोचरम् ॥१३॥ संहिताप्रदीपे-इत्थं पुराणमुनिनिर्मितसंहितार्थान्बुद्ध्वा-

दिते किल बलाबलमुद्रमेन्दोः । चन्द्रात्तनुर्बलवतीति हि शास्त्रतत्त्वं मायोऽभिधेयमधिगम्य मतं बहूनाम् ॥ १४ ॥ पञ्चादिभिः सत्फलदैर्विलग्नं पुष्टं भवेन्मध्यफलं चतुर्भिः । द्वाभ्यां त्रिभिर्वाऽप्यथ हीनमेव न कापि देयं विदुषा कदाचित् ॥१५॥ कश्यपः—पञ्चभिरिष्टैरिष्टं पुष्टमनिष्टैरनिष्टमादेश्यम् । स्थानादिबलसमृद्धैश्चतुर्भिरपि पठ्यते यवनैः ॥ १६ ॥ दैवज्ञवल्लभे—संपूर्णफलदं चाऽऽदौ मध्ये मध्यफलप्रदम् । अन्ते तुच्छफलं लग्नं यदि वर्गोत्तमं न चेत् ॥ १७ ॥ संहिताप्रदीपे—अन्त्ये स्मृतं तुच्छफलं विलग्नं न चेत्पडादिग्रहवीर्ययुक्तम् । वर्गोत्तमांशोपगतं गुणैर्वा प्रौढैस्तदा पुष्टफलप्रदं स्यात् ॥ १८ ॥ असत्फलस्थानगतो ग्रहः स्याच्छुभप्रदः सौम्यसितेज्यमित्रैः । बलान्वितो दुष्टयुतो न पापैर्गत्यन्तराभाव इदं विचिन्त्यम् ॥ १९ ॥ बादरायणः–निषिद्धभवनस्थोऽपि लग्नात्पादो न दोषकृत् । बुधभार्गवजीवैस्तु दृष्टः केन्द्रत्रिकोणगैः ॥ २० ॥ गर्गः—उच्चस्वगेहमित्रस्था उदिताः फलदा ग्रहाः । अस्तंगताश्च नीचारिराशिस्था विफलाः स्मृताः ॥२१॥ शौनकः—नीचस्था ग्रहविजिताः शिख्यभिभूता विरश्मयो ह्रस्वाः । भुजगा इव मन्त्रहता न स्युः कार्यक्षमा लग्ने ॥ २२ ॥ माठरः–लग्ने चन्द्रबलं बीजं फलपाककरा ग्रहाः । बीजे पुष्टे फलाप्तिः स्यात्तस्माद्बीजमिहेष्यते ॥ २३ ॥ लल्लः—सौम्यभावगतो मृदुतां क्रूरोऽपि याति संयोगात् । न हि चन्द्रकराश्लिष्टात्सूर्यमणेः संभवति वह्निः ॥ २४ ॥ क्रूरांशगतः सौम्यो न शुभं दातुं क्षमः प्रयुक्तोऽपि । न तु चन्द्रकान्तस्तावत्सूर्यकरालिङ्गितः स्रवति ॥२५॥ न सकलगुणसंपल्लभ्यतेऽल्पैरहोभिर्बहुतरगुणयुक्तं योजयेन्मङ्गलेषु । प्रभवति न हि दोषो भूरिभावे गुणानां सलिलमिव हि वह्नौ संप्रदीप्तेन्धनस्य ॥ २६ ॥ गुणशतमपि दोषः कश्चिदेकोऽपि वृद्धः क्षपयति यदि नान्यस्तद्विरोधी गुणोऽस्ति । घटमिव परिपूर्णं पञ्चगव्यस्य शक्त्या मलिनयति सुराया बिन्दुरेकोऽपि सर्वम् ॥ २७ ॥ श्रीपतिः—उच्चादिस्थोऽपि नो हन्ति फलं भावकृतं ग्रहः । अनिष्टं कुरुते पापी नीचादिस्थस्त्वशोभनम् ॥ २८ ॥ गर्गः—यद्येकभावगौ तुल्यशुभाशुभफलौ ग्रहौ । स्यात्तदा निष्फलो भावो यो बली स फलप्रदः ॥ २९ ॥ सप्तर्षिमते—तोयालयादिभिर्वृक्षा यथा भूरिफलप्रदाः । तथा स्थानादिवीर्याढ्या लग्ने कार्यक्षमा ग्रहाः ॥ ३० ॥ लल्लः—फलं वारस्य संपूर्णं स्वहोरायां जगुर्बुधाः । तथा लग्नफलं चांशे संपूर्णं मिश्रमन्यथा ॥ ३१ ॥ माण्डव्यः—लग्नं सर्वगुणोपेतं दिनैरल्पैर्न लभ्यते । ततो गुणाधिकं देयं दोषाल्पं बहु संमतम् ॥ ३२ ॥

इति चन्द्रलग्नयोर्बलनिर्णयः ।

———

## अथ लग्नांशयोर्विचारः ।

ज्योतिर्विवरणे—केचिल्लग्नं प्रशंसन्ति ग्रहवीर्येण संयुतम् । केचिल्लग्ननवांशं च केचिच्चन्द्रमसो बलम् ॥ १ ॥ लग्नं देहो विधुर्जीवो मनोंशः कर्मणः फलम् । ग्रहवीर्ये ततो देहे दृढे प्राणादिचिन्तना ॥ २ ॥ पितामहः—ज्योतिःशास्त्रफलं सर्वं लग्नाधीनं बुधैः स्मृतम् । स्फुटखेटाश्रयं तत्तु तस्मात्प्राधान्यमेतयोः ॥ ३ ॥ भृगुः—गुणयुक्तं यदा लग्नं नवांशो दुर्बलो भवेत् । शुभं नैव विरुध्येत शुभस्याप्यवलोकनात् ॥ ४ ॥ नवांशो गुणवान्यत्र लग्नं बलविवर्जितम् । तदा न मङ्गलं कार्यं यतो मुख्यं तनोर्बलम् ॥ ५ ॥ प्रधानं चिन्तयेत्पूर्वं ततोऽङ्गं च तयोर्यदि । मुख्याभावेऽङ्गनाशः स्यात्सर्वत्रैवं विनिर्णयः ॥ ६ ॥ माठरः—शुद्धौ लग्नांशयोः पूर्णं पादोनं केवलं तयोः । अंशशुद्धौ फलं त्वर्धमभावे निष्फलं तयोः ॥ ७ ॥ प्रश्नशास्त्रे-इन्दुः सर्वत्र बीजाभो लग्नं तु कुसुमप्रभम् । फलेन सदृशोंऽशश्च भावः स्वादुफलः स्मृतः ॥ ८ ॥ ज्योतिर्विवरणे—चन्द्रः प्राण इति प्रोक्तं यद्वचः फलनिर्णये । तल्लग्नवीर्यमीमांसाविषयं तु न गोचरम् ॥ ९ ॥

इति लग्नांशयोर्विचारः ।

---

## अथ लग्नस्थार्कप्राशस्त्यम् ।

अशुभोऽपि रविः शस्तो लग्नगः केचिदूचिरे । इति तद्धेतुना केन ब्रूहि शास्त्रानुसारतः ॥ १ ॥ यथोपाधिवशेनैव सन्मणिर्भाति तद्विधः । बाह्येऽथाऽऽभ्यन्तरे तस्य निर्मलत्वं न मुञ्चति ॥ २ ॥ तथा शापोपग्रहार्घदोषैर्व्याप्तोऽपि भास्करः । न जहाति गुणं व्यालावृतचन्दनवृक्षवत् ॥ ३ ॥ लल्लः—कुर्यान्मङ्गलपौष्टिकानि नृपतेर्यात्राभिषेकौ तथा सेवाभेषजधर्मवर्त्मकनकग्रावोग्रकर्माणि च । विद्याज्ञानचरव्रतानि हवनं शिल्पं रणं साहसं क्षिप्रालंकरणे दिने दिनकृतो लग्नस्थिरे वा रवौ ॥ ४ ॥ बृहस्पतिः—अर्कोदयः प्रशस्तः स्याद्विप्रराजन्ययोः सदा । चन्द्रोदयोऽङ्गनानां च वणिजां जलजीविनाम् ॥ ५ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—वर्णस्याधिपतौ केन्द्रे लग्नजन्मभयोस्तथा । सिध्यन्ति सर्वकार्याणि सबले च विशेषतः ॥ ६ ॥ कूर्मयामले—यात्रायामुदये भानोरस्ते चोद्वाहपूर्वकम् । विद्ध्यास्सर्वकर्माणि मध्याह्ने भृगुरब्रवीत् ॥ ७ ॥ मौञ्जीपटले—शुभगो बलवान्भानुर्लग्नगो दशमस्तथा । सर्वशाखाधिपो यस्मात्सर्वेषां व्रतबन्धने ॥ ८ ॥

इति लग्नस्थार्कप्राशस्त्यम् ।

---

१ प पंक्तौ । २ प. 'दृढे' ।

## अथ लग्नस्थचन्द्रनिषेधप्रश्नोत्तरम्।

ज्योतिष्प्रकाशे—चन्द्रः सौम्यतरस्तद्वत्फलपाककरो ग्रहः। कथं तर्हि विलग्नस्थो निन्द्यः पाणिग्रहादिषु ॥ १ ॥ गुरुभार्यानुगामित्वात्क्षयित्वं भास्वान्विधुः । तेन मूर्तौ निषिद्धः स्याद्यतः संसर्गजा रुजः ॥ २ ॥ आयुर्वेदशास्त्रे—यक्ष्मा कुष्ठं ज्वरश्चैव स्फोटको नयनामयः। संश्रयात्संचरन्त्यन्यं चन्द्रदोषो यथा तनुम् ॥३॥

इति लग्नस्थचन्द्रनिषेधः।

---

## अथ तात्कालिकविचारः ।

भूपालः—अहोरात्रस्य मध्ये तु समानं वत्सरो व्रजेत्। तन्मध्यमासतिथ्यृक्षवारयोगादिकं भवेत् ॥ १ ॥ चैत्रे चैत्रादयो मासा मासे मासेऽप्ययं क्रमः। पञ्चपञ्चघटीसंख्या मासानां परिकल्पना ॥ २ ॥ तत्र त्रिंशद्दिनानि स्युः पलैस्तु दशभिर्दिनम्। यस्मिन्काले तु यो मासस्तस्मिन्मासे तु या तिथिः ॥ ३ ॥ तस्यां वारर्क्षयोगादि स्वकार्याय विलोकयेत्। तात्कालिकमिदं सर्वं सर्वकार्येषु योजयेत् ॥ ४ ॥ संहिताप्रदीपे—सप्ताश्विनिघ्ना दिनयातनाड्यः षष्ट्या विहृत्याऽऽप्तफलं वियोज्यम्। वारे तिथौ भे च युतौ च ते स्युस्तात्कालिका वारतिथीन्दुसूर्याः ॥ ५ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—गतर्क्षाब्धिहतिर्यातघटीतिथ्यंशसंयुता। दिक्त्र्याप्ता[दि]लवादिन्दुः षड्गुणोऽष्टघटीयुतः ॥ ३ ॥ भूपालः—संवत्सरमहोरात्रं ये जानन्ति मनीषिणः। तेषां तिथ्युदयज्ञानमिदं मनसि वर्तते ॥ ७ ॥

इति तात्कालिकविचारः।

---

## अथ सूक्ष्मर्क्षानयनम् ।

शिरोमणौ—सूक्ष्मं प्रवक्ष्येऽथ मुनिप्रणीतं विवाहयात्रादिफलप्रसिद्ध्यै । अध्यर्धभोगानि षडत्र तज्ज्ञाः प्रोचुर्विशाखादितिभध्रुवाणि ॥ १ ॥ पौलिशः—भरण्यार्द्रा तथाऽऽश्लेषा मारुतं शक्रवारुणे । षडेतान्यर्धभोगानि संपूर्णानीतराणि च ॥ २ ॥ भमानाल्लिप्तिको द्विघ्नः स्वस्पृग्यंश्रयतो हतः। भसंख्यया फलैः स्थूलं भहीनं सूक्ष्मतामियात् ॥ ३ ॥ एवं विश्वर्क्षपर्यन्तं पौष्णे शून्यमुखान्यतः। कर्णाग्नं शाच्चद्रयस्थमुपान्त्यं श्रवणद्वयं ॥ ४ ॥ वैश्वर्क्षस्य चतुर्थांशस्तथा पञ्चदशांशकः। श्रवणस्य च तत्तुल्या अभिजिद्भोगनाडिकाः ॥ ५ ॥

इति सूक्ष्मर्क्षानयनम्।

---

१ क. °ध्यर्धभा°। २ ग. °प्रसशा.।

## अथ तिथ्यादिगुणप्रशंसा ।

पितामहः—मासशुद्धौ सुखं भोगो धनारोग्यं च सत्तिथौ । कार्यसिद्धिः सुनक्षत्रे करणे शोभने धनम् ॥ १ ॥ इष्टावाप्तिः शुभे योगे वाञ्छिताप्तिः शुभे विधौ । शुभे वारे सर्वसंपत्सौमनस्यं शुभे क्षणे ॥ २ ॥ लग्ने शस्ते महानन्दः स्वेशवीर्ये समुन्नतिः । लग्ने सग्रहवीर्ये स्युः सर्वे समुदिता गुणाः ॥ ३ ॥ वल्लः—सिद्धौ यात्रां प्रकुर्वीतामृतयोगे गृहादिकम् । अन्धभे स्थापयेद्द्रव्यं काणे चौर्यविधिक्रिया ॥ ४ ॥

इति तिथ्यादिविचाराध्यायः ।

---

## अथ त्याज्यप्रकरणम् ।

ज्योतिष्प्रकाशे—जन्माधिपविलग्नेशचन्द्रभार्गवमन्त्रिणाम् । विरश्मित्वं जन्ममासो जन्मभं जन्मवासरः ॥ १ ॥ दुर्निमित्तं मनोभङ्गः क्षयमासाधिमासकौ । मृतजातकयोश्चैव सूतकं ग्रहणस्य च ॥ २ ॥ ज्वरोत्पत्ती रजो मातृपित्रोः क्षयदिनं तथा । गण्डान्तत्रितयं कालः संधिर्भस्य तिथेस्तनोः ॥ ३ ॥ क्रान्तिपातो व्यतीपातो वैधृतिः परिघार्धकम् । भानोः संक्रान्तिभोगश्च कुलिकश्चार्धयामकः ॥ ४ ॥ क्रूरैर्मुक्तं युतं भोग्यं सराहुशिखिधूमितम् । धिष्ण्यं ग्रहणगं पापैर्विद्धं सौम्यैश्च पादतः ॥ ५ ॥ विष्टिः क्रूरयुतं लग्नं लग्नेशो रिपुमृत्युगः । जन्मतो दुःस्थितश्चन्द्रो लग्नस्थो निधनोपगः ॥ ६ ॥ जन्मभाज्जन्मलग्नाच्च लग्नलग्नांशकाष्टमौ । पापयोर्मध्यगं लग्नं क्षीणेन्दुः कुलवांशकः ॥ ७ ॥ क्रूरवारे पापहोरादुष्टयोगा ग्रहोद्भवाः । तिथिवृद्धिक्षयौ भानां नाडिका विषसंज्ञिताः ॥ ८ ॥ एते दोषाः समाख्याताः शुभकर्मणि गर्हिताः । दशारिष्टोद्भवाश्चान्ये गोचरस्थास्तथा परे ॥ ९ ॥ लत्तार्गलचण्डास्त्रकालवेलाश्च पञ्चकम् । मृत्युयोगोपग्रहाद्याः स्वे स्वे देशेऽतिनिन्दिताः ॥ १० ॥ माण्डव्यः—सिंहस्थिते सुरगुरावधिमासके च ज्येष्ठे तथाऽऽद्यतनयस्य च कन्यकायाः । कुर्वीत नास्तगतनीचगयोर्विलग्नजन्मेशयोश्च निखिलान्यपि मङ्गलानि ॥ ११ ॥

इति त्याज्यप्रकरणम् ।

---

## अथ दोषफलप्रकरणम् ।

वसिष्ठः—कुलिके मरणं विद्याद्बार्हस्पत्येऽर्थनाशनम् । यामार्धे नाशमाप्नोति

कालवेला भयप्रदा ॥ १ ॥ माण्डव्यः–सर्वमङ्गलविध्वंसी याने सर्वापहारकः । व्याकुली कुलिकेऽभ्यङ्गे भोजनेऽन्नं विषायते ॥ २ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे––कुलिकेन भवेन्मृत्युर्यामार्धेन यशःक्षयः । विष्टया भ्रंशोऽर्कसंक्रान्त्या वैरं पातेन बन्धनम् ॥ ३ ॥ कश्यपः–वत्सरायनमासर्तुसंधिर्दैन्यप्रदः शुभे । तिथिसंधौ मनस्तापो धिष्ण्यसंधौ महद्भयम् ॥ ४ ॥ योगसंधौ श्रमस्तीव्रो लग्नसंधौ सुखक्षयः । तिथिलग्नभगण्डान्ते कार्यनाशः क्षतिर्मृतिः ॥ ५ ॥ निषिद्धचरणे रोगो निन्द्ययोगे कलिर्भवेत् । वैधृतौ व्यतिपाते च हानिर्वा मृत्युरेव वा ॥ ६ ॥ मिथ्याभिदूषणं दुष्टयोगे तिथिभवारजे । चण्डायुधेऽस्त्रजं दुःखं वैरमेकार्गले महत् ॥ ७ ॥ लत्तायां वाहनात्पातः कलिर्दग्धतिथौ भवेत् । विषनाड्यां विषाद्भीतिरपमृत्युरथापि वा ॥ ८ ॥ विघ्नं स्यात्पापकर्तर्यां समांशे मरणं ध्रुवम् । पापविद्धे च नक्षत्रे व्याधिः शोको धनक्षयः ॥ ९ ॥ धूमिते भे भवेद्व्याधिर्दग्धे कार्यं न सिध्यति । ज्वलिते मृत्युरेव स्याद्विद्धे विघ्नं समादिशेत् ॥ १० ॥ रजोत्पत्तौ मृतिं विद्याद्रोगं पित्रोः क्षयेऽहनि । परिघे रोधबन्धौ च व्यतीपाते कुलक्षयः ॥ ११ ॥ वैधृतौ जीवहानिः स्याद्ग्रहणर्क्षे पराभवः । क्षीणेन्दौ दीर्घरोगश्च पापहोरा विरोधकृत् ॥ १२ ॥ तिथिक्षये मानहानिस्तिथिवृद्धौ पराद्भयम् । अस्तं गते लग्नपतौ व्याधिराधिर्धनक्षयः ॥ १३ ॥ लग्ने क्रूरयुते नाशश्चाष्टमे च तनुक्षयः । चतुर्थे जायते वैरं जन्मतो व्ययगे व्ययः ॥ १४ ॥ दुष्टस्थानस्थिते चन्द्रे राशेर्लग्नात्सुखक्षयः । मृत्युयोगे कालयोगे कर्तुर्नाशः प्रजायते ॥ १५ ॥ जन्मर्क्षे सुखहानिः स्यात्कलिर्जन्मतिथावपि । जन्ममासे भयं घोरं जन्मलग्नं शुभावहम् ॥ १६ ॥ गात्रभङ्गः क्षये मासे विग्रहस्त्वधिमासके । व्यसनं गोचरोत्थे च दशारिष्टे च बन्धनम् ॥ १७ ॥ षष्ठो लग्नाधिपो नूनं स्वयमेव रिपुर्भवेत् । अष्टमो मृत्युकृच्चैव व्ययगो व्ययकारकः ॥१८॥ महर्षिः–परिवेषं दिग्धूमं दिग्दाहं दुर्दिनं च नीहारम् । निर्घातं ग्रहयुद्धं प्रतिमायां स्वेदनं महीकम्पम् ॥१९॥ रात्रौ सुरेन्द्रचापं संध्यायामासुरं शिवारावम् । उल्कापतनं दिवसे देशादेर्नाशनं जगदुः ॥ २० ॥

इति दोषफलाध्यायः ।

---

## अथापवादप्रशंसा ।

फलप्रदीपे––कृते गुणाः स्युर्बलिनः फलं तु दोषाः समा मध्ययुगद्वयेऽपि । अतोऽपवादेन विना न दोषा गुणैः समं यान्ति युगे चतुर्थे ॥ १ ॥ ज्योति-

विवरणे—न दोषाः कार्यहन्तारो ह्यपवादैरपोहिताः । दिव्ये सत्यरतं नूनं न हि दग्धुं क्षमोऽनलः ॥ २ ॥ बृहस्पतिः—गुणो वा यदि वा दोषो दुर्बलो नष्टतां व्रजेत् । स एव पुनरुत्कृष्टवीर्यवान्स्वफलप्रदः ॥ ३ ॥ माण्डव्यः—दोषाणां च गुणानां च तारतम्यं विचार्यते । बलाबलविभागेन पश्चात्कालं समादिशेत् ॥४॥ गर्गः—यत्सामान्यं विशेषेण बाध्यते तद्विलुप्यति । यत्र नास्ति विशेषत्वं तत्र सामान्यमाचरेत् ॥५॥ ज्योतिर्विवेके—श्रूयते च महान्दोषः श्रूयते च महत्फलम् । फलं तत्र परित्याज्यं दोषो हि बलवान्भवेत् ॥६॥ बृहस्पतिः—दोषाश्च गणिताः सर्वे गुणेभ्यो बहवः कलौ । तथाऽपि दोषा नश्यन्ति स्वापवादैर्गुणैरपि ॥ ७ ॥ दोषाश्च स्वापवादैस्तु ह्यशुभाः शुभतां ययुः । यथा पापा ययुः सर्वे प्रायश्चित्तैरभावताम् ॥ ८ ॥ ज्योतिषप्रकाशे—यथाऽग्निर्मेघधाराभिस्तूलराशिस्तु मारुतैः । सदाचारेण पापानि व्याधयस्तु सदौषधैः ॥९॥ तथा दोषा विनश्यन्ति ह्यपवादैर्यथोदितैः । बलिभिर्वा गुणैः प्रौढैस्ताद्विना स्वफलं ददुः ॥ १० ॥

इत्यपवादप्रशंसा ।

---

## अथ महादोषनिरूपणम् ।

नारदः—पञ्चाङ्गशुद्धिरहितो दोषस्त्वाद्यः प्रकीर्तितः । उदयास्तशुद्धिरहितो द्वितीयः सूर्यसंक्रमः ॥१॥ तृतीयः पापषड्वर्गो भृगुः षष्ठः कुजोऽष्टमः । गण्डान्तं कर्तरी रिष्फः षडष्टेन्दुश्च सग्रहः ॥ २ ॥ दंपत्योरष्टमं लग्नं राशेर्विषघटी तथा । दुर्मुहूर्तो वारदोषः खार्जूरिकसमाङ्घ्रिभम् ॥ ३ ॥ ग्रहणोत्पातभं क्रूरविद्धर्क्षं क्रूरसंयुतम् । कुनवांशो महापातो वैधृतिश्चैकविंशतिः ॥ ४ ॥ फलप्रदीपे—महादोषा विवाहे च वैधव्यं भङ्ग आहवे । विद्यारम्भे च मूर्खत्वं यात्रायां मार्गरोधनम् ॥ ५ ॥ व्रते च कर्मत्राह्यत्वं रोगश्च क्षुरकर्मसु । नवान्नप्राशने भैक्ष्यं गृहारम्भे सुखक्षयः ॥ ६ ॥ दैन्यं गेहप्रवेशे च वन्ध्यात्वं गर्भशोभने । कृषिकर्मणि वैफल्यं ग्रामकार्ये नृपोऽपरः ॥७॥ राज्यनाशः प्रतिष्ठायामन्याधानेऽग्निनाशनम् । पट्टाभिषेके दारिद्र्यं हानिर्वाणिज्यकर्मणि ॥८॥ विरोधः स्वामिसेवायां हरणं च विभूषणे । दारिद्र्यं मरणं हानिं सर्वकार्ये विदुर्बुधाः ॥९॥ ज्योतिश्चिन्तामणौ—महादोषे कृतं कर्म महादोषकरं भवेत् । तस्माच्छुभेषु कार्येषु महादोषान्परित्यजेत् ॥१०॥

### एषां लक्षणानि ।

नारदः—तिथिवारर्क्षयोगाणां करणस्य च मेलनम् । पञ्चाङ्गमस्य शुद्धिस्तु

---

१ घ. °पोदिताः

पञ्चाङ्गशुद्धिरीरिता ॥ ११ ॥ यस्मिन्पञ्चाङ्गदोषोऽस्ति तस्मिल्लग्नं निरर्थकम् । त्यजेत्पञ्चेष्टिकं वाऽपि विषसंयुक्तदुग्धवत् ॥ १२ ॥ पञ्चाङ्गापवादः—योगस्य हेम करणस्य च धान्यमिन्दोः शङ्खं च तण्डुलमणी तिथिवारयोश्च । तारावलाय लवणं वसु गां च राशेर्दद्याद्द्विजाय कनकं शुचि नाडिकायाः ॥ १३ ॥ लग्न-लग्नांशकौ स्वस्वपतिना वीक्षितौ युतौ । नचेद्वाऽन्योन्यपतिना शुभमित्रेण वा तथा ॥ १४ ॥ वरस्य मृत्युः स्यात्ताभ्यां सप्तसप्तोदयांशकौ । एवं तौ न युतौ दृष्टौ मृत्युर्वध्वाः करग्रहे ॥ १५ ॥ कश्यपः–त्रिप्रकारेण सा शुद्धिर्न चेल्लग्नं च निन्दितम् । अपि पञ्चेष्टिकं लग्नमनेकगुणसंयुतम् ॥१६॥ त्यजेद्यथा शुना घ्रातं तथा हव्यं घृतप्लुतम् ॥ नारदः–त्याज्याः सूर्यस्य संक्रान्तेः पूर्वतः परतः सदा । विवाहादिषु कार्येषु नाड्यः षोडश षोडश ॥ १७ ॥ कश्यपः—यत्कृतं मङ्गलं तत्र नाशमायात्यसंशयम् ॥ १८ ॥ सापवादः षड्वर्गः षड्वर्गप्रकरणस्थो ज्ञेयः । नारदः–भृगुषष्ठाह्वयो दोषो लग्नात्षष्ठगते सिते । उच्चगे शुभसंयुक्ते तल्लग्नं सर्वदा त्यजेत् ॥ १९ ॥ कश्यपः–नीचगे तत्तुरीये वा शत्रुक्षेत्रगतेऽपि वा । भृगुषष्ठाह्वयो दोषो नास्ति तत्र न संशयः ॥ २० ॥ नारदः—कुजाष्टमो महादोषो लग्नादष्टमगे कुजे । शुभत्रययुतं लग्नं त्यजेत्तत्तुङ्गगे यदि ॥२१॥ कश्यपः–अस्तगे नीचगे भौमे शत्रुक्षेत्रगतेऽपि वा । कुजाष्टमोद्भवो दोषो न किंचिदपि विद्यते ॥ २२ ॥ गण्डान्तविचारः–पूर्णानन्दाख्ययोस्तिथ्योः संधिर्नाडीद्वयं सदा । गण्डान्तं मृत्युदं जन्मयात्रोद्वाहव्रतादिषु ॥२३॥ कुलीरसिंहयोः कीटचापयोर्मीनमेषयोः । गण्डान्तमन्तराले स्याद्घटिकार्धं मृतिप्रदम् ॥ २४ ॥ सार्पेन्द्रपौष्णभेष्वन्त्यषोडशांशाभसंधयः । तदग्रभेष्वाद्यपादा भानां गण्डान्तसंज्ञिताः ॥ २५ ॥ उग्रं च संधित्रितयं गण्डान्तत्रितयं महत् । मृत्युप्रदं जन्मयानविवाहस्थापनादिषु ॥२६॥ सूर्यसिद्धान्ते–सार्पेन्द्रपौष्णधिष्ण्यानामन्त्यपादाभसंधयः । तदग्रभेषु पादार्धं गण्डान्तं नाम कीर्त्यते ॥ २७ ॥ रत्नकोशे—आद्यः पितृमूलाश्विषु पौष्णेन्द्र-भुजङ्गभेषु चान्त्यभवः । षोडशभागो नेष्टस्तावत्कालस्तु गण्डान्तः ॥ २८ ॥ मूलाश्विनीमघानां प्रथमांशे संस्थिता तु यमदंष्ट्रा । भुजगेन्द्ररेवतीनामन्त्ये सैवापरा घोरा ॥ २९ ॥ वल्लः—अन्त्यः सार्पेन्द्रपौष्णानामाद्यः पित्र्याश्विमूलजः । जन्मोद्वाहप्रयाणे च मृत्यवेऽमी षडंशकाः ॥ ३० ॥ ज्योतिःसागरे–अश्विनीपौष्ण-मूलार्दा त्रिवेदनवनाडिकाः ३ । ४ । ९ । रेवतीशाक्रसार्पान्ते मासशक्रशिवा-स्त्यजेत् १२ । १४ । ११ ॥ ३१ ॥ राजमार्तण्डः—यामं यवनाधिपतिस्तदर्ध-भागं च मागुरिः प्राह । दण्डप्रमितं गण्डं पूर्वं परतोऽङ्गिरामीशः ॥ ३२ ॥ मूले

मघाश्विचरणे प्रथमे च नूनं पौष्णेन्द्रयोश्च फणिनश्चरणे चतुर्थे । मातुः पितुः स्ववपुषोऽपि करोति नाशं जातो यदा निशि दिनेऽप्यथ संध्ययोश्च ॥ ३३ ॥ रत्नमालायां—पौष्णाश्विन्योः सार्पपित्र्याख्ययोश्च यच्च ज्येष्ठामूलयोरन्तरालम् । तद्गण्डान्तं स्याच्चतुर्नाडिकं हि यात्राजन्मोद्वाहकालेष्वनिष्टम् ॥३४॥ ज्योतिर्विवरणे—इह सर्वत्र काल्यादेरपकर्षो य ईरितः । स एव दोषाधिकताकथनार्थस्तु केवलम् ॥ ३५ ॥ गर्गः—मघायाः प्रथमे पादे मूलस्य प्रथमे तथा । रेवत्याश्च चतुर्थेऽशे विवाहः प्राणनाशनः ॥ ३६ ॥ भिन्नवाक्यव्यवस्थावचनं ज्योतिःसागरे—कथयति वराहमिहिरो विलोक्य वाक्यानि गण्डविषये च । गण्डं दण्डप्रमितं पूर्वं पश्चात्तयोर्मध्यात् ॥ ३७ ॥

## अथ गण्डान्तापवादः ।

च्यवनः—तिथ्यादीनां संधिदोषं तथा गण्डान्तसंज्ञितम् । हन्ति लाभगतश्चन्द्रः केन्द्रगा वा शुभग्रहाः ॥ १ ॥

इति गण्डान्तापवादः ।

---

## अथ कर्तरीविचारः ।

ज्योतिःसागरे—पापमध्यगते चन्द्रे पापसंपर्कगेऽपि वा । शुभकर्म न कर्तव्यं तथा लग्ने कदाचन ॥ १ ॥ भवति यदा तुहिनांशुः क्रूरद्वयमध्यगो विलग्नं वा । यात्रादीनि तदानीं नोपदिशेदिष्टकर्माणि ॥ २ ॥ भास्करव्यवहारे—क्रूरयोः सौम्ययोर्वाऽन्तर्लग्नं वा यदि वा शशी । विवाहे कर्तरी ज्ञेया शुभक्रूरान्तरे तथा ॥ ३ ॥ फलप्रदीपे—क्रूरयोः कर्तरी नेष्टा महाविघ्नप्रदा ध्रुवम् । सौम्ययोर्नातिदुष्टा स्यान्मध्यमा पापसौम्ययोः ॥ ४ ॥ ल्लः—क्रूरयोरितरयोश्च कर्तरी नो शुभा तनुशशाङ्कयोर्न तत् । लग्नमाह शुभयोश्च कर्तरी पापयोश्च शुभमध्यवर्तिनी ॥ ५ ॥ नारदः—लग्नाभिमुखयोः पापग्रहयोर्ऋजुवक्रयोः । सा कर्तरीति विज्ञेया दंपत्योर्गलकर्तरी ॥६॥ कर्तरीदोषदुष्टं यल्लग्नं तत्परिवर्जयेत् । अपि सौम्यग्रहैर्युक्तं गुणैः सर्वैः समन्वितम् ॥ ७ ॥

## अथ कर्तर्यपवादः ।

विधौ धनोपगे शुभग्रहेऽथ चान्त्यगे गुरौ । न कर्तरी भवत्यहो जगाद बादरायणः ॥ १ ॥ क्रूरद्वयस्यान्तरगं विलग्नं मृतिप्रदं चन्द्रमसं च रोगदम् । शुभैर्धनस्थैरथ वाऽन्त्यगे गुरौ न कर्तरी स्यादिह भार्गवा विदुः ॥ २ ॥ बृहस्पतिः—लग्नद्विरिष्फगौ क्रूरौ त्र्यर्यमन्त्समांशगम् । तदा कर्तरिजो दोषो

नान्यथा भावजं फलम् ॥ ३ ॥ राजमार्तण्डे—लग्नस्य पृष्ठाग्रगयोरसाध्वोः सा कर्तरी स्यादृजुवक्रगत्योः । तावेव शीघ्रौ यदि वक्रचारौ न कर्तरी चेति वदन्ति गार्ग्याः ॥ ४ ॥ व्यये मार्गगतिः क्रूरो वक्री क्रूरो धने यदि । तौ च लग्नांशतुल्यौ चेत्तदा घोराख्यकर्तरी ॥ ५ ॥ महाविघ्नप्रदा ज्ञेया विवर्ज्या शुभकर्मणि। इति सत्यपि लग्नं चेच्छुभाढ्यं नैव दोषकृत् ॥ ६ ॥ क्रूरकर्तरिसंयुक्तं लग्नं चन्द्रं न च त्यजेत् । केन्द्रत्रिकोणसंस्थेषु गुरुभार्गववित्सु च ॥ ७ ॥ बादरायणः—न हि कर्तरिजो दोषः सौम्ययोर्यदि जायते । शुभग्रहयुतं लग्नं क्रूरयोर्नाऽस्ति कर्तरी । ८ ॥ पापयोः कर्तरीकर्त्रोर्नीचराशिगृहस्थयोः । यदा चास्तगयोर्वाऽपि कर्तरी नैव दोषदा ॥ ९ ॥ वसिष्ठः—एकार्गलोपग्रहपातलत्ताजामित्रकर्तर्युदयादिदोषाः । नश्यन्ति चन्द्रार्कबलोपपन्ने लग्ने यथाऽर्काभ्युदयेऽन्धकारः ॥ १० ॥

इति कर्तर्यपवादः ।

---

## अथ षडष्टरिष्फचन्द्रदोषः ।

नारदः—षडष्टरिष्फगे चन्द्रे लग्नाद्दोषः स्वसंज्ञकः । तल्लग्नं वर्जयेद्यत्नाज्जीवशुक्रसमन्वितम् ॥ १ ॥ उच्चगे नीचगे वाऽपि मित्रगे शत्रुराशिगे । अपि सर्वगुणोपेतं दंपत्योर्मृत्युदं यतः ॥ २ ॥

## अथ षडष्टरिष्फचन्द्रापवादः ।

मुहूर्तदर्पणे—कवौ गुरौ वा बलिनि स्थिते तनौ शुभेन दृष्टः शुभवर्गगः शशी । विवर्धमानः शुभकृच्च नो शुभं करोति तिष्ठन्नपि वाऽष्टरिष्फयोः ॥ १ ॥

## अथ संग्रहदोषः ।

नारदः—शशाङ्के ग्रहसंयुक्ते दोषः संग्रहसंज्ञकः । तस्मिन्संग्रहदोषे तु विवाहं नैव कारयेत् ॥ १ ॥ मुहूर्तदर्पणे—भूपाद्भयं रिपुभयं व्यसनं प्रवासं वित्तक्षयं विदरणं च शुभक्रियासु । कर्तुः करोति शशभृत्क्रमशोऽर्कपूर्वैरेवं ग्रहैः सह विशन्नुडुमेकराशौ ॥ २ ॥ दारिद्र्यं रविणा कुजेन मरणं सौम्येन न स्युः प्रजा दौर्भाग्यं गुरुणा सितेन सहिते चन्द्रे च सापत्नकम् । प्रव्रज्याऽर्कसुतेन सेन्दुजगुरौ वाञ्छन्ति केचिच्छुभं व्याद्यैर्मृत्युरसद्ग्रहैः शशियुतैर्दीर्घप्रवासः शुभैः ॥ ३ ॥ नारदः-प्रव्रज्या सूर्यपुत्रेण राहुणा कलहः सदा । केतुना संयुते चन्द्रे नित्यं कष्टदरिद्रता ॥ ४ ॥ स्वक्षेत्रगः स्वोच्चगो. वा मित्रक्षेत्रगतो यदि । पापद्वययुतश्चन्द्रः करोति मरणं तयोः ॥ ५ ॥

## अथ संग्रहापवादः ।

गुरुः स्वकीयवर्गस्थो बलवान्कण्टकस्थितः। पश्यन्स क्रूरशीतांशुं तं दोषं विलयं नयेत् ॥ १ ॥ नारदः—शुभग्रहयुते चन्द्रे स्वोच्चस्थे मित्रराशिगे । दोषाय न भवेद्धयं दंपत्योः श्रेयसे सदा ॥ २ ॥ संग्रहे प्रोक्तनक्षत्रे विवाहो नैव शोभनः । राशिभेदे न दोषः स्यादेकतारास्वपीन्द्र सः ॥ ३ ॥ एकस्मिन्नपि धिष्ण्ये भिन्ने राशौ खलग्रहे शशिनि । तच्चन्द्रर्क्षे कुर्याद्विवाहयात्रादिकं सर्वम् ॥ ४ ॥ बृहस्पतिः—विधौ शुभैरते सौम्यैर्दृष्टे वर्गे निजे सताम् । सक्रूरे दुस्थितं दोषं व्यपोहति विधुस्तदा ॥ ५ ॥

## अथाष्टमलग्नदोषः ।

शाकल्यसंहितायां—शान्तिकं पौष्टिकं विद्यादानभोजनपूर्वकम् । जीवितेच्छुर्न कुर्वीत जातु लग्नेऽष्टमे स्वभात् ॥ १ ॥ फलप्रदीपे—त्यजन्ति वै नैधनभं तथैके तदंशकं चोभयमेव चान्ये । तस्मात्स्वजन्मर्क्षविलग्नयोश्च लग्नांशको नैधनगो विवर्ज्यो ॥ २ ॥ वसिष्ठः—यस्याष्टलग्ने तदधीश्वरे वा राशौ तदंशेऽथ विलग्नगे वा । स मृत्युमाप्नोति तदा मनोजस्त्रिनेत्रभालाम्बकवह्निनेव ॥ ३ ॥ नारदः—दंपत्योर्द्वादशं लग्नं राशिर्वा यदि लग्नगः । अर्थहानिस्तयोरस्मात्तदंशस्वामिनं त्यजेत् ॥ ४ ॥ जन्मराश्युद्गमो नैव जन्मलग्नोदयः शुभः । तयोरुपचयस्थानं यदि लग्नगतं शुभम् ॥ ५ ॥ कश्यपः—दुष्टं स्वजन्मलग्नं तज्जन्मराशिरनिष्टदः । लग्नगानि तयोः स्थानाच्छुभान्युपचयानि वै ॥ ६ ॥ वसिष्ठः—जन्मोदयर्क्षे निधनं विलग्ने तदीश्वरेणापगतेऽथवा स्यात् । कृतो विवाहो भयमृत्युकारी त्रातुं विधाताऽपि न तान्समर्थः ॥ ७ ॥ तस्मात्स्वजन्मर्क्षनवांशयोश्च लग्नांशको नैधनगो विवर्ज्यः ॥ ८ ॥

## अथाष्टमलग्नापवादः ।

वसिष्ठः—जन्मेशाष्टमलग्नेशौ मिथो मित्रे व्यवस्थितौ । जन्मराश्यष्टमस्थोत्थदोषो नश्यति भावजः ॥ १ ॥ दोषविवेके—अन्योन्यमित्रे यदि जन्मरन्ध्रराशीश्वरौ चेदपि चैकदेशः । जन्मर्क्षतो रन्ध्रविलग्नदोषो नश्येत्तदा द्वादशतुर्यहोरा ॥ २ ॥ चूडामणौ—लग्नं चालिवृषं त्याज्यमष्टमं शुभकर्मसु । तत्रांप्येकेशताऽस्त्येव ततः शस्तं न दोषकृत् ॥ ३ ॥ न दोषोऽष्टमलग्नस्य यदि जन्मेशर-

---

१ क. मनेरेसो° । २ घ. °ऽेइंचिउतं । ३ क. घ. °दंशस्या° । ४ क. घ. °रेणोप° । ५ क. ख° धेक्रश° । ६ ख नव्रश° ।

न्ध्रपो । सुहृदो चेत्तदा कार्यं मङ्गलं मुनयो विदुः ॥ ४ ॥ बृहस्पतिः—चतुर्थं द्वादशं लग्नं शस्तं यदि गुणान्वितम् । अष्टमं तु न कर्तव्यं यदि सर्वगुणान्वितम् ॥ ५ ॥ अयं निषेधो जन्मेशरन्ध्रपौ वैरिणौ यदा । परस्परं ततो मित्रे तदा दुष्टफलं न हि ॥ ६ ॥ मुहूर्तदर्पणे—स्वकीयजन्माष्टमराशिपत्योर्मैत्र्यां न जन्माष्टमराशिदोषः । जन्मेशकर्मेश्वरमित्रभावः क्षिणोति वैनाशिकदोषमुग्रम् ॥ ७ ॥

## अथ विषनाडीदोषः ।

तिथीषुनागाद्रिगिरीशवारिधिगजाद्रिदिक्पावकदिक् च भास्कराः । मुनीभसंख्याः प्रथमातिथेः क्रमात्परं विषाख्यं घटिकाचतुष्टयम् ॥ ८ ॥ विंशचतुर्द्वादशदिक् च शैला बाणाश्च तत्त्वानि यथाक्रमेण । सूर्यादिवारेषु भवत्यनन्तरं नाड्यो विषाख्यं घटिकाचतुष्टयम् ॥ ९ ॥ नारदः—खमार्गणा ५० वेदपक्षाः २४ खरामा ३० व्योमसागराः ४० । वार्धिचन्द्रा १४ रूपदस्राः २१ खरामा ३० व्योमबाहवः २० ॥ १० ॥ द्विरामाः ३२ खाग्नयः ३० शून्यदस्रा २० कुञ्जरभूमयः १८। रूपपक्षा २१ व्योमदस्रा २० वेदचन्द्रा १४ श्चतुर्दश १४ ॥ ११ ॥ शून्यचन्द्रा १० वेदचन्द्राः १४ षडक्षा ५६ वेदवाहवः २४ । शून्यदस्राः २० शून्यचन्द्राः १० पूर्णचन्द्रा १० गजेन्दवः १८ ॥ १२ ॥ तर्कचन्द्रा १६ वेदपक्षाः १४ खरामा ३० श्चाश्विभात्क्रमात् । आभ्यः पराः स्युर्घटिकाश्चतस्रो विषसंज्ञिताः । विवाहादिषु कार्येषु विषनाडीस्तु वर्जयेत् ॥ १३ ॥ फलप्रदीपे—यात्राविवाहादिषु मङ्गलेषु सर्वेषु नूनं विषनाडिकाश्च । कुर्वन्ति कर्तुर्मरणं हि शीघ्रं कृतप्रमाणायुष एव धात्रा ॥ १४ ॥ विषघटिकोक्तध्रुवका नक्षत्रगैष्ययोगसंगुणिताः । खरसहृताः स्पष्टाः स्युस्ताभ्यो घटिकाचतुष्टयं च तथा ॥ १५ ॥ अन्यथा पञ्चपञ्चाशद्भोगपक्षे मूलस्य विषघटिकाभाव एव ।

## अथ विषनाड्यपवादः ।

फलप्रदीपे—विषनाड्युत्थितं दोषं हन्ति सौम्यर्क्षगः शशी । मित्रदृष्टोऽथ वा स्त्रीपवर्गस्थो लग्नगोऽपि वा ॥ १ ॥ बृहस्पतिः—चन्द्रो विषघटीदोषं हन्ति केन्द्रत्रिकोणगः । लग्नं विना शुभैर्दृष्टः केन्द्रे वा लग्नपस्तथा ॥ २ ॥

## अथ दुर्मुहूर्तदोषः ।

नारदः—भास्करादिषु वारेषु ये मुहूर्ताश्च निन्दिताः । अपि सर्वगुणोपेतास्ते वर्ज्याः सर्वमङ्गले ॥ १ ॥ एतत्सर्वं मुहूर्तप्रकरणस्थं ज्ञेयम् ।

---

१ क. भार्गी ।

## अथ वारदोषः ।

महेश्वरः—मार्तण्डोदयतः स्मृता दिनपतेर्यामार्धनाथा ग्रहा मार्तण्डात्मजभोगउत्तरलवस्तज्ज्ञैः शुभे कर्मणि । त्याज्योऽसौ कुलिकोऽथ सूर्यदिवसादन्यैश्च शक्राकैदिग्वस्वङ्गाब्धियमैः स्मृताः कुरहिते रात्रौ तु तिथ्यंशकः ॥ १ ॥ दीपके—दशेन्द्वौ रवौ नागसूर्यौ हिमांशौ दशर्तू कुजे वेदनागौ च सौम्ये । गुरौ द्व्यङ्गभूपा भृगौ वेदशक्रौ नृपार्काश्विनो मन्दवारे च कालः ॥ २ ॥ एतेऽपि सत्कर्मणि वर्जनीया दिवा निशायामपि षोडशांशाः । नृपांशकं पञ्चदशांशकं वा नान्यो गुणः कश्चिदपाकरोति ॥ ३ ॥ रत्नकोशे—ये शुवारास्ते नागा दिवा यथोक्तास्तथैव ते रात्रौ । कालः कुलिको ज्ञेयः सरोजशङ्खोक्तवेलायाम् ॥ ४ ॥ छायाघटीचतुर्भागो नाड्यर्धमुदयः स्मृतः । वेलानाडीत्रिभागस्तु शेषः कालः प्रकीर्तितः ॥ ५ ॥ छायोदयस्तु वेला कालश्चेति प्रकीर्तितो मुनिभिः । कुलिकश्चतुरङ्गोऽयं ज्ञेयः स्वयशोर्थिना विदुषा ॥ ६ ॥ महतीं पीडां क्लेशं मृत्युसमामापदं तथा मृत्युम् । कुलिकः करोति नियतं चतुर्विधोऽयं यथोद्दिष्टः ॥ ७ ॥ चूडारत्ने—वेदाद्रिद्विशराष्टाग्निरसा यामार्धकाः क्रमात् । आदित्यादौ शुभे त्याज्या दिवैव न तु निश्यपि ॥ ८ ॥ संहिताप्रदीपे—यथा दिवार्धप्रहरा न शस्तास्तथैव रात्रावपि केचिदूचुः । व्येको निशायां शुभदोऽथ वर्ज्यो दिवार्धयामस्तु मतं बहूनाम् ॥९॥ श्रीपतिः—अहनि निशि गजांशः स्वो दिनेशादिकानां भवति तु गुरुभौमज्ञार्किकाले क्रमेण । प्रभवति यमघण्टः कण्टकः कालवेलाकुलिक इति विरुद्धस्तत्परार्धं निषिद्धम् ॥ १० ॥

## अथ कुलिकाद्यपवादः ।

बृहस्पतिः—वारेशे सबले वाऽपि बलाढ्ये लग्नगे शुभे । कुलिकोदयदोषस्तु क्षिणत्याशु न संशयः ॥ १ ॥ लग्नपतौ बलोपेते दिवा वा बलसंयुते । अर्धप्रहरसंभूतो दोषो वै नात्र विद्यते ॥ २ ॥ शुभे केन्द्रगते चन्द्रे शुभांशे वा शुभेक्षिते । लग्नगे सबले वाऽपि कुलिकस्तु विलीयते ॥ ३ ॥ अर्धप्रहरपूर्वार्धे मध्यं तु यमघण्टके । कुलिकान्त्यघटीं त्यक्त्वा शेषेषु शुभमाचरेत् ॥ ४ ॥ नारदः—मुहूर्तपापषड्वर्गकुनवांशग्रहोत्थिताः । ये दोषास्तान्निहन्त्येव यत्रैकादशगः शशी ॥ ५ ॥ दुर्लग्नदुर्मुहूर्तोत्था दुर्निमित्तांशजातयः । ते सर्वे विलयं यान्ति केन्द्रस्थाने बृहस्पतौ ॥ ६ ॥

## अथैकार्गलादिदोषः ।

एकार्गलः समाङ्घ्रिश्चेत्तत्र लग्नं विवर्जयेत् । अपि शुक्रेज्यसंयुक्तं विषसंयुक्त-

१ क. 'राह्वाग्नि'। २ ख. घ. 'ऽभावितिके'। ३ क. ख. 'तेकेन्द्रे'। ४ ख. मध्येतु ।

दुग्धवत् ॥ १ ॥ ग्रहणोत्पातभं त्याज्यं मङ्गलेषु ऋतुत्रयम् । यावच्च रविणा भुक्त्वा मुक्तभं दग्धकाष्ठवत् ॥ २ ॥ एतत्सर्वं नक्षत्रप्रकरणस्थं ज्ञेयम् ।

## अथ कुनवांशः ।

तुलामिथुनकन्यांशा धनुरन्त्यार्धसंयुताः । एते नवांशाः शुभदा यदि नान्त्यांशकाः खलु ॥ १ ॥ अन्त्यांशास्तेऽपि शुभदा यदि वर्गोत्तमाख्याः । अन्ये नवांशा न ग्राह्या यतस्ते कुनवांशकाः ॥ २ ॥ कुनवांशकलग्नं यत्त्याज्यं सर्वगुणान्वितम् । एते नवांशा विवाहे । यस्मिन्यस्मिन्कार्ये ये नवांशा उक्तास्तेभ्योऽन्ये तस्मिंस्तस्मिन्कार्ये कुनवांशा इति ज्ञेयम् ।

## अथ नवांशापवादः ।

लग्नदोषांशदोषा ये दोषाः षड्वर्गजाश्च ये । हन्ति ताल्लँग्नगो जीवो मेघसंघमिवानिलः ॥ १ ॥

## अथ पातदोषनिर्णयः ।

संहिताप्रदीपे—ब्रह्मणोऽन्ते ध्रुवस्याऽऽदौ प्रायः पातस्य संभवः । स तु मङ्गलकार्याणि विनाशयति निश्चितम् ॥ १ ॥ भीमपराक्रमे—वैधृतिव्यतिपातौ यौ क्रान्तिसाम्येऽर्कचन्द्रयोः । सत्कर्मारम्भणं तत्र मरणं व्यसनं विदुः ॥ २ ॥ मार्तण्डे—एष्यो धनं क्षपयति व्यतिपातयोगो मृत्युं ददाति नचिरादथ वर्तमानः । संतापशोकगदविघ्नगदान्यतीतस्तस्माद्दिनत्रयमपि प्रजहीत विद्वान् ॥३॥ संहिताप्रदीपे—त्यजन्ति केचित्तिथिमृक्षमेके वारं तथा पातविदुग्रमन्ये । माङ्गल्यकार्येषु न शोभनं स्याद्दिनत्रयं केचिदपि ब्रुवन्ति॥४॥ शार्ङ्गधरः—विप्रमदाधेन हतस्य पत्रिणा मृगस्य मांसं शुभदं स्वतादृते । यथा तथैव व्यतिपातयोगे क्षणोऽत्र दुष्टो न तिथिर्न वारः ॥ ५ ॥ ज्योतिर्विवरणे—नो भं तिथिं च वारं च त्यजेत्पातविदूषितम् । त्यजेत्क्रान्त्यन्तरं यावत्तद्दोषस्तावदेव हि ॥६॥ ग्रहप्रदीपे—मानैक्यखण्डादयमान्तरेऽल्पे शुभानि कार्याणि निहन्ति पातः । स्नाने जपे होमविधौ च दाने करोत्यनन्तं फलमेव कर्तुः ॥ ७ ॥

इति श्रीज्योतिर्निबन्ध एकविंशतिदोषाध्यायः ।

---

## अथ भद्रापवादः ।

गर्गः—क्रमायाताऽक्रमायाता भद्रा त्याज्या प्रयत्नतः । गुणघ्नी भ्रंशदा यस्मात्र गुणैरपि हन्यते ॥ १ ॥ तथाऽप्युत्सुककार्येषु पराधीनेषु संकटे । भद्रायां विपरीतायां न दोषः कार्यसाधने ॥ २ ॥ मदनरत्ने—दिवा भद्रा यदा

रात्रौ रात्रौ भद्रा यदा दिवा । न त्याज्या शुभकार्येषु प्राहुरेवं पुरातनाः ॥ ३ ॥ बृहस्पतिः—विष्टिस्तु सर्वदा त्याज्या क्रमेणैवाऽऽगता तु या । अक्रमेणाऽऽगता भद्रा सर्वकार्येषु शोभना ॥ ४ ॥ माधवीये—विष्टिर्यदाऽह्नि तिथेरपरार्धजाता पूर्वार्धजा निशि तदा शुभदा च पुच्छे । तत्कालभूरपि निजोदययामबाह्या ग्राह्या शुभे बलिनि लग्नपतौ निजांशे ॥ ५ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—दिवा सर्पमुखी भद्रा रात्रौ वृश्चिकपुच्छिका । वृश्चिकस्य विषं पुच्छे सर्पस्य वदने विषम् ॥ ६ ॥ स्वकालजा महामारी कल्याणी भिन्नकालजा । महामारी दहेत्सर्वं कल्याणी मङ्गलप्रदा ॥ ७ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शुभकार्ये विषं त्यजेत् । मानार्धतोऽत्र विज्ञेयं मुखं पुच्छं बुधैः सदा ॥ ८ ॥ भूपालः—कीटकुम्भद्वये भूस्था कौर्प्याजद्वितये युगा । कन्याचापद्वये चन्द्रे भद्रा पातालवासिनी ॥ ९ ॥ कन्यातुलामकरधन्विषु नागलोके मेषालिवैणिकवृषेषु सुरालये स्यात् । पाठीनसिंहघटकर्कटकेषु मर्त्ये चन्द्रे वदन्ति मुनयस्त्रिविधां च विष्टिम् ॥ १० ॥ रुद्रयामले—दाने वाऽन्नाशने चैव घातपातादिकर्मसु । खराश्वप्रसवे भद्रा भद्राऽन्यत्र न शस्यते ॥ ११ ॥ रत्नकोशे—धन्या त्वधोमुखी भद्रा महामारी खरानना । कालरात्रिर्महारौद्री विष्टिश्चाकुलपुत्रिणी ॥ १२ ॥ भैरवी च महाकाली दैत्यानां च क्षयंकरी । द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ॥ १३ ॥ न तु व्याधिर्भवेत्तस्य रोगी रोगात्प्रमुच्यते । ग्रहाः सर्वेऽनुकूलाः स्युस्तस्य विघ्नं न जायते ॥ १४ ॥ रणे राजकुले द्यूते सर्वत्र विजयी भवेत् । सर्वार्थसिद्धयस्तस्य भवन्त्यत्र न संशयः ॥ १५ ॥ वल्लः—कराली नन्दिनी रौद्री सुमुखी दुर्मुखी तथा । त्रिशिरा वैष्णवी हंसीत्यष्टावेतासु विष्टयः ॥ १६ ॥ शुक्लपक्षादितो ज्ञेया नामसंज्ञा यथोदिताः । स्तोतव्याः पूजनीयास्ता नरैस्तद्दोषशान्तये ॥ १७ ॥

इति भद्रापवादः ।

---

## अथ कालहोरापवादः ।

गर्गः—क्रूरवारे क्रूरहोरा न शस्ता इति मङ्गले । नातिदुष्टा शुभे वारे रात्रौ स्वल्पफला मता ॥ १ ॥ वैद्यनाथः—न लग्नं सचतुर्वर्गं दृश्यते कालहोरया । अपि षड्वर्गसंशुद्धं कुलिकेन विहन्यते ॥ २ ॥

## अथ पञ्चकदोषः ।

रुद्रयामले—गततिथियुतलग्नं पञ्चधा कर्मभूमौ तिथिरविदशनागाम्भोधि-

युक्तं क्रमेण। नवहृतमिपुशेषं शोभने वर्जनीयं रुगनलनृपचोरमृत्युदं पञ्चकं स्यात् ॥ १ ॥ ज्योतिश्चिन्तामणौ—तिथिवारभलग्नाङ्को रसा ६ ग्न्य ३ ब्जा १ ष्ट ८ वेद ४ युक्। नन्दा ९ प्तः पञ्चशेषे रुग्वह्निराट्चोरमृत्युकृत् ॥ २ ॥ यद्वा गताहलग्नाङ्कः सदा मृत्युर्दिवाऽग्निराट्। रुक्चौरौ निशि शेषैवधे नवाप्ते नागपञ्चकम् ॥ ३ ॥ संक्रान्तिभाद्भवति येष्टविलग्नसंख्या मासादियाततिथिभिः सहिताङ्कभक्ता। स्याच्छेपके खलु शुभे कुसुमैः क्रमेण मृत्यग्निभूमिपतितस्कररोगभीतिः ॥ ४ ॥

## अथ पञ्चकापवादः।

रवौ रोगं कुजे वह्निं शनौ च नृपपञ्चकम्। वर्ज्यं पुनः कुजे चोरं बुधवारे च मृत्युदम् ॥ १ ॥ सदाऽर्कवारे त्यज रोगपञ्चकं सोमे नृपस्याऽऽरदिनेऽग्निपञ्चकम्। गुरौ तु चोरस्य भृगौ मृतिप्रदं बुधे शनौ पञ्चकदुष्टता न हि ॥ २ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे–रोगं चोरं त्यजेद्रात्रौ दिवा राजाग्निपञ्चकम्। उभयोः संध्ययोर्मृत्युमन्यकाले न निन्दितम् ॥ ३ ॥ नागमृत्यू सदा त्याज्ये संध्ययोर्वैह्लिकैर्जनैः। तत्रापि यत्र लग्नं चेद्बलाढ्यं तच्च निष्फलम् ॥ ४ ॥ बृहस्पतीन्दुभौमार्कशुक्रवारेषु पञ्चकम्। चोरे नाग्निरुजो मृत्युसंज्ञितं वर्जयेच्छुभे ॥ ५ ॥ नृपाख्यं नृपसेवायां गृहे गोपेऽग्निपञ्चकम्। याने चोरं व्रते रोगं त्यजेन्मृत्युं करग्रहे ॥ ६ ॥

इति पञ्चकापवादः।

---

## अथ संधिविचारः।

शौनकः–स्यात्संधिकालो वर्षादेः षष्ठ्यंशो मुनिभिः स्मृतः। अवसाने प्रवृत्तौ च तावन्मिश्रफलं भवेत् ॥ १ ॥ अब्दायनर्तुसंधौ दिनमेकं वर्जयेच्छुभे कार्ये। संध्यायां तिथिगण्डान्ते धिष्ण्ये नाडिद्वयं संधिः ॥ २ ॥ सिद्धान्तशिरोमणौ–शशितनुविकलाभ्यश्चन्द्रभुक्त्येन्दुभान्वोर्गतिविवरकलाभिर्भूय एताभिरेव। पृथगथ गतियुत्या नाडिकासंधिराप्ता भतिथिकरणयोगानां फलं तत्र मिश्रम् ॥ ३ ॥ बृहस्पतिः—प्राकृताऽब्दो गुरोरब्दः सौराब्दस्त्रिविधाः समाः। तेषामादौ तथा चान्त्ये ऽयहं चैव शुभे त्यजेत् ॥ ४ ॥ च्यवनः—तिथ्यादीनां संधिदोषं तथा गण्डान्तसंज्ञकम्। हन्ति लाभगतश्चन्द्रः केन्द्रगा वा शुभग्रहाः ॥५॥

इति संधिविचारः।

---

१ क. °हिके ज°। २ क. चेरिनाग्नि। घ. चौरैशाग्नि°। ३ घ. भवति क°।

## अथोक्तानुक्तदोषाणामपवादः ।

नारदः—अनुक्ताः स्वल्पदोषाः स्युर्विद्युन्नीहारवृष्टयः । प्रत्यर्कपरिवेषेन्द्रचापाम्बुधरगर्जनाः ॥ १ ॥ लत्तोपग्रहपाताख्या मासदग्धाह्वया तिथिः । दग्धलग्नान्धबधिरपङ्गुसंज्ञाश्च राशयः ॥ २ ॥ एवमाद्या यतस्तेषां व्यवस्था क्रियतेऽधुना । अकालजा भवन्त्येता विद्युन्नीहारवृष्टयः ॥ ३ ॥ प्रत्यर्कपरिवेषेन्द्रचापाभ्रध्वनयो यदि । दोषाय मङ्गले नूनमदोषायैव कालजाः ॥ ४ ॥ सौराष्ट्रशाल्वदेशेषु पतितं भमुपग्रहम् । बाह्लिके कुरुदेशे चान्यस्मिन्देशे न दूषणम् ॥ ५ ॥ तिथयो मासदग्धाख्या दग्धलग्नानि तान्यपि । मध्यदेशे विवर्ज्यानि न दूष्याणीतरेषु तु ॥ ६ ॥ पङ्ग्वन्धकाणलग्नानि मासशून्याश्च राशयः । गौडमागधयोस्त्याज्या अन्यदेशे न गर्हिताः ॥ ७ ॥ माण्डव्यः—ये दोषा ग्रहयोगदृष्टिजनिता ये मासपक्षोद्भवा ये जामित्रमुहूर्तवारविहिता येऽर्कोंकवक्रैः कृताः । ये चैव ग्रहलत्तयैव विहिता ये दुष्टलत्तोत्थितास्तान्हत्वा शुभदौ सुरासुरगुरू केन्द्रत्रिकोणस्थितौ ॥ ८ ॥ लग्नांशदोषा ग्रहजातदोषा वर्गोद्भवास्तिथ्युडुयोगजाताः । केन्द्रत्रिकोणेषु सितज्ञजीवैर्नश्यन्ति सिंहैरिव नागयूथम् ॥ ९ ॥ उल्कानिपातपरिवेषशिवाशनीनां विद्युद्विकालघनगर्जितदुर्दिनानाम् । नीहारवृष्टिकुचलप्रतिभास्कराणां दोषो विनश्यति सितेज्ययुते विलग्ने ॥ १० ॥ उत्पातपातपरिघप्रतिसूर्यविम्बोत्थाकालवृष्टिघनगर्जितमारुतानि । दिग्धूमदाहपरिवेषकुकम्पचापदोषाः क्षयं ययुरमर्त्यगुरौ विलग्ने ॥ ११ ॥ वसिष्ठः—ये लग्नदोषाः कुनवांशदोषाः पापैः कृता दृष्टिनिपातदोषाः । लग्ने गुरुस्तान्विमली करोति फलं यथाऽम्भः कतकद्रुमस्य ॥ १२ ॥ नक्षत्रदोषं कुनवांशदोषं गण्डान्तदोषं पञ्चमुहूर्तदोषम् । विरुद्धपञ्चांशविलग्नदोषं निशाकरो लाभगतो निहन्ति ॥ १३ ॥ लल्लः—लग्ने गुरुः सौम्ययुगीक्षितो वा लग्नाधिपो लाभगतो यथा स्यात् । कालाख्यहोरा तु यदा शुभा चेद्भवेच्च दोषस्य तदा हि भङ्गः ॥ १४ ॥ बृहस्पतिः—गुरुः सर्वगुणोपेतो लग्नात्केन्द्रे स्ववर्गगः । दोषाणां लक्षहन्ता स्याल्लग्नस्थः सर्वदोषहा ॥ १५ ॥ शुक्रो दशसहस्राणि बुधो दशशतानि च । लक्षमेकं च दोषाणां गुरुः केन्द्रे व्यपोहति ॥१५॥ केन्द्रगो वा त्रिकोणे वा ज्ञो वा शुक्रोऽथवा गुरुः । सर्वदोषान्हरत्येव पापं विष्णोः स्मृतिर्यथा ॥ १७ ॥ स्वोच्चे स्ववर्गे सद्भावे शुभः पापोऽपि वा भवेत् । उदितो दोषविच्छेत्ता हरिरेको यथा गजान् ॥ १८ ॥ आग्नेयाख्यगृहेष्वेको विक्रमायारिगो बली । स्वतुङ्गगः स्ववर्गस्थो दोषसंघविनाशनः ॥ १९ ॥ तिथिभग्रहवा-

१ ख. 'पुनाति' ।

रादौ ये दोषाश्चोदिताः परैः । ते सर्वे नाशमायान्ति जीवशुक्रेक्षणोदये ॥२०॥ नारदः–गुरुरेकोऽपि केन्द्रस्थः सकलं दोषसंचयम् । विनाशयति घर्मांशुरुदितस्तिमिरं यथा ॥ २१ ॥ एकोऽपि लग्नगः काव्यो गुरुर्वा यदि वा बुधः । नाशयत्यखिलान्दोषांस्तूलराशिमिवानलः ॥ २२ ॥ गुरुरेकोऽपि केन्द्रस्थः शुक्रो वा यदि वा बुधः । दोषसंघं निहन्त्येव केसरीवेभसंहतिम् ॥ २३ ॥ नाशयत्यखिलान्दोषान्यत्रैकादशगो रविः । गङ्गायां स्नानतो भक्त्या सर्वपापमिवाचिरात् ॥ २४ ॥ लग्नलग्नांशनाथौ द्वौ वाऽऽयगौ वाऽपि केन्द्रगौ । राशिं निहन्ति दोषाणामिन्धनानीव पावकः ॥ २५ ॥ उक्तानुक्ताश्च ये दोषास्तान्निहन्ति बली गुरुः । केन्द्रत्रिकोणगो वाऽपि शुक्रो विष्णुर्यथाऽसुरान् ॥ २६ ॥ बृहस्पतिः–लग्नाधिपो यदा केन्द्रे लग्नादुपचयेऽथवा । शुभो वाऽप्यथवा क्रूरस्तदा दोषा लयं ययुः ॥ २७ ॥ यस्य दोषस्य यः कर्ता स्ववर्गे स्वोच्चगोऽपि वा । शुभदृष्टः स एकस्थं दोषं संहरति स्फुटम् ॥ २८ ॥ नारदः–परित्यज्य महादोषान्शेषयोर्गुणदोषयोः । गुणाधिकः स्वल्पदोषः सकलो मङ्गलप्रदः ॥ २९ ॥ दोषो न प्रभवत्येको गुणानां परिसंचये । एको यथा तोयबिन्दुरुदर्चिषि हुताशने ॥३०॥ एवं संचिन्त्य गणितशास्त्रोक्तं लग्नमानयेत् । तल्लग्नं जलयन्त्रेण दद्याज्ज्योतिषिकोत्तमः ॥ ३१ ॥

इत्युक्तानुक्तदोषापवादः ।

## अथ दोषापवादभङ्गः ।

सामान्येनोदिता दोषा भङ्गास्तेषां तु तद्विदैः । यदि ते बलहीनाश्चेत्प्रध्वंसाभावतां ययुः ॥ १ ॥ जन्मर्क्षाज्जन्मलग्नर्क्षादपवादकरो ग्रहः । तत्काले यदि दुःस्थाने दोषभङ्गक्षमो न सः ॥ २ ॥

इति श्रीज्योतिर्निबन्धे दोषापवादाध्यायः ।

## अथ मौढ्यादिविचारः ।

वृत्तशते–बालः शुक्रो दिवसदशकं पञ्चकं चैव वृद्धः पश्चाद्धा त्रितयमुदितः पक्षमन्यां क्रमेण । जीवो वृद्धः शिशुरपि सदा पक्षमन्यः शिशू तौ वृद्धौ प्रोक्तौ दिवसदशकं चापरः सप्तरात्रम् ॥ १ ॥ माण्डव्यः—त्यजेद्दशाहं शिशुवृद्धयोश्च सितेज्ययोश्चेति वदन्ति गर्गाः । कालांशतुल्यानि दिनादि चैके सप्ताहमन्ये त्वपरे

---

१ ध. 'षा ; एम पश्यति चेत्तयो येग ऽप दोषनाशा ॥ य' । २ क. 'न्तिगार्ग्याः ।

त्रिरात्रम् ॥ २ ॥ संहिताप्रदीपे—स्यात्सप्तरात्रं गुरुशुक्रयोश्च बालत्वमह्नां दशकं च वार्धम् । वृद्धौ सितेज्यावशुभौ शिशुत्वे शस्तौ यतस्तावुपचीयमानौ ॥ ३ ॥ कालनिर्णये—वापीकूपतडागयानगमनं चौलं प्रतिष्ठां व्रतं विद्यामन्दिरकर्णवेधन-महीदुर्गं वनं सेवनम् । तीर्थस्नानविवाहशान्तिहवनं मन्त्राग्निदेवेक्षणं देवेज्ये च जिजीविषुः परिहरेदस्तं गते भार्गवे ॥ ४ ॥ ब्रह्मपुराणे—यथा रवेर्मण्डलमेति काव्यो विनष्टतेजा गुरुरप्ययैवम् । कालस्य दीक्षाव्रततीर्थयात्रायज्ञोत्सवानां च विनाशकृत्स्यात् ॥ ५ ॥ रत्नकोशे—अस्तमिते भृगुतनये नारी म्रियते बृहस्पतौ पुरुषः । दंपत्योः सह मरणं ह्युदिते केतौ करग्रहणे ॥ ६ ॥ नष्टे चन्द्रे तथा शुक्रे नष्टे चैव बृहस्पतौ । मङ्गलानि तथोद्वाहं त्वरितोऽपि न कारयेत् ॥ ७ ॥

## अथास्तापवादः ।

गर्गः—नित्ययाने गृहे जीर्णे प्राशने परिधानके । वधूप्रवेशमाङ्गल्ये न मौढ्यं गुरुशुक्रयोः ॥ १ ॥ भृगुः—उपाकर्मोपसर्जनं पवित्रं दमनार्पणम् । अवरोहः समेहन्तः सर्पाणां बलिरष्टका ॥ २ ॥ ईशानस्य बलिर्विष्णोः शयनं परिवर्तनम् । कुर्याच्छुक्रस्य च गुरोर्मौढ्येऽपीति विनिश्चयः ॥ ३ ॥ धर्मप्रदीपे—गोदावर्यां गयायां च श्रीशैले ग्रहणद्वये । अयने विषुवे चैव चातुर्मास्यव्रतेषु च ॥ ४ ॥ उत्सवेषु च सर्वेषु सीमन्तक्रतुकर्मसु । सुरासुरेज्ययोश्चैव मौढ्यदोषो न विद्यते ॥ ५ ॥ कालनिर्णये—नष्टे शुक्रे तथा जीवे सिंहस्थे च बृहस्पतौ । कार्या चैव स्वदेवार्चा प्रत्यब्दं कुलधर्मतः ॥ ६ ॥ कालविवेके—न शुक्रदोषो न सुरेज्यदोष-स्ताराबलं चन्द्रबलं न योज्यम् । उद्वाहिताया नवकन्यकाया दीपोत्सवो मङ्ग-लशोभनानि ॥ ७ ॥ मत्स्यपुराणे—मौढ्येऽपि च प्रकर्तव्या मिश्रजातिक्रियाः शुभाः । सुरेज्यशुक्रयोर्वर्णक्रियाश्चौलादिका न च ॥ ८ ॥ संहितासारे—यदाऽ-स्तमायाति गुरुर्भृगुर्वा वार्ध्ये च बालत्वमकीर्णजातेः । चौलादिकार्याणि शुभानि न स्युः संकीर्णजातेश्च शुभावहानि ॥ ९ ॥ गर्गः-गुरुभार्गवयोरस्तदोषो जाति-चतुष्टये । नैव संकरजातीनां शिशुत्वं वार्धकं तथा ॥ १० ॥

## अथ तीर्थयात्रानिषेधः ।

बाल्ये वा यदि वा वृद्धे शुक्रे चास्तमुपागते । मलमास इवैतानि वर्जयेद्देव-दर्शनम् ॥ १ ॥ आगमः—अधिमासे च जन्मर्क्षे नष्टयोर्गुरुशुक्रयोः । तीर्थयात्रा न कर्तव्या गयां गोदावरीं विना ॥ २ ॥

---

१ क. ख. °दशकम् ।

## अथ पर्वेशसाधनम् ।

* दिग्बाणभूमियुक्शाको दस्त्रघ्नः पञ्चसंयुतः । नगतष्टो भवेत्पर्वपतिर्ब्रह्मादिको गतः ॥ १ ॥ रविगुणिते शककाले माससमेतेऽक्षिसागरविभक्ते । यल्लभ्यन्ते भगणाः शेषे मुनिभाजिते च पर्वेशाः ॥ २ ॥

## अथ पर्वेशादिफलानि ।

वाराह्याम्—षण्मासोत्तरवृद्ध्या पर्वेशाः सप्त देवताः क्रमशः । ब्रह्मशशीन्द्रकुबेरा वरुणाग्नियमाश्च विज्ञेयाः ॥ १ ॥ ब्राह्मे द्विजपशुवृद्धिः क्षेमारोग्याणि सस्यसंपच्च । तद्वत्सौम्ये तस्मिन्पीडा विदुषामवृष्टिश्च ॥ २ ॥ ऐन्द्रे भूपविरोधः शारदसस्यक्षयो न च क्षेमम् । कौबेरेऽर्थपतीनामर्थविनाशः सुभिक्षं च ॥ ३ ॥ वारुणमवनीशानामन्येषां क्षेमसस्यवृद्धिकरम् । आग्नेयं मित्राख्यं सस्यारोग्याभयाम्बुकरम् ॥ ४ ॥ याम्यं करोत्यवृष्टिं दुर्भिक्षं संक्षयं च लोकानाम् । यदतः परं तदशुभं क्षुन्मारकावृष्टिदं पर्व ॥ ५ ॥ पूर्वाह्णे वाऽपराह्णे वा वेलाहीनं तदुच्यते । मध्याह्ने परवेलायां त्रयो वेलागुणाः फलम् ॥ ६ ॥ वेलाहीने पर्वणि गर्भविपत्तिश्च शस्त्रकोपश्च । अतिवेले कुसुमफलक्षयो भयं सस्यनाशश्च ॥ ७ ॥ हीनातिरिक्तकाले फलमुक्तं पूर्वशास्त्रदृष्टत्वात् । स्फुटगणितविदां कालः कथंचिदपि नान्यथा भवति ॥ ८ ॥ यद्येकस्मिन्मासे ग्रहणं रविसोमयोस्तदा क्षितिपाः । स्वबलक्षोभैः संक्षयमायान्त्यतिशस्त्रकोपश्च ॥ ९ ॥ ग्रस्तावुदितास्तमितौ शारदधान्यावनीश्वरक्षयदौ । सर्वग्रस्तौ दुर्भिक्षमरक(ण)दौ पापसंदृष्टौ ॥ १० ॥ अर्धोदितोपरक्तो नैर्ऋतिकान्हन्ति यज्ञांश्च । अग्न्युपजीविगुणाधिकविप्राश्रमिणो युगाभ्युदितः ॥ ११ ॥ कर्षकपाखण्डवणिक्क्षत्रियबलनायकान्द्वितीयेंऽशे । कारुकशूद्रम्लेच्छान्सतृतीयेंऽशे समन्त्रिगणान् ॥ १२ ॥ मध्याह्ने नरपतिमध्यदेशहाऽशोभनश्च धान्यार्घः । तृणभुगमात्यान्तःपुरवैश्यघ्नः पञ्चमे खांशे ॥ १३ ॥ स्त्रीशूद्रान्षष्ठेंऽशे दस्युप्रत्यन्तहाऽस्तमयकाले । यस्मिन्खांशे मोक्षस्तत्प्रोक्तानां शिवं भवति ॥ १४ ॥ द्विजनृपतीनुदगयने विट्शूद्रान्दक्षिणायने हन्ति । राहुरुदगादिदृष्टः प्रदक्षिणं हन्ति विप्रादीन् ॥ १५ ॥ म्लेच्छान्विदिक्स्थितो यायिनश्च हन्याद्धुताशसक्तांश्च । सलिलचरदन्तिघाती याम्येनोद्गवामशुभः ॥ १६ ॥ पूर्वेण सलिलपूर्णां करोति वसुधां समागतो दैत्यः । पश्चात्कर्षकसेवकबीजविनाशाय निर्दिष्टः ॥ १७ ॥ पाञ्चालकलिङ्गशूरसेनाः काम्बोजोड्रकिरातशस्त्रवार्ताः । जीवन्ति च ये हुताशवृत्त्या ते पीडामुपयान्ति

* श्लोकद्वयं कपुस्तकादन्यत्र नास्ति.

१ क. °नामशाभ° । २ ख. °स्तीसुभि° ।

मेषस्थे ॥ १८ ॥ गोपाः पशवोऽथ गोमिनो मनुजा ये च महत्त्वमागताः । ते पीडामुपयान्ति भास्करे ग्रस्ते शीतकरेऽपि वा वृषे ॥ १९ ॥ मिथुने प्रवराङ्गना नृपा नृपमात्रा बलिनः कलाविदः । यमुनातटजाः सवाह्लिका मत्स्याः सुह्मजनैः समन्विताः ॥ २० ॥ आभीराञ्छबरान्सपह्लवान्मल्लान्मत्स्यकुरूञ्छकानपि । पाञ्चालान्विकलांश्च पीडयत्यन्नं चापि निहन्ति कर्कटस्थे ॥ २१ ॥ सिंहे पुलिन्दगणमेकलसत्त्वयुक्तान्राजोपमान्नरपतीन्वनगोचरांश्च । षष्ठे तु सस्यकविलेखकगेयसक्तान्हन्त्यश्मकत्रिपुरशालियुतांश्च दोषान् ॥ २२ ॥ तुलाधरेऽवन्त्यपरान्त्यसाधून्वणिग्दशार्णान्मरुकच्छपांश्च । अलिन्यथोदुम्बरमद्रचोलान्द्रुमान्सयौधेयविषायुधीयान् ॥ २३ ॥ धन्विन्यमात्यवरवाजिविदेहमल्लान्पाञ्चालवैद्यवणिजो विषमायुधज्ञान् । हन्यान्मृगे तु झषमन्त्रिकुलानि नीचान्मन्त्रौषधीषु कुशलान्स्थविरायुधीयान् ॥ २४ ॥ कुम्भेऽन्तर्गिरिजान्सपश्चिमजनान्भारोद्वहांस्तस्करानाभीरान्दरदार्यसिंहपुरकान्हन्यात्तथा बर्बरान् । मीने सागरकूलसागरजलद्रव्याणि मान्याञ्जनान्प्राज्ञान्वायुपजीविनश्च भफलं कूर्मोपदेशाद्वदेत् ॥ २५ ॥ गर्गः–ज्येष्ठा ब्राह्मं तथा मैत्रं भार्गवेश्वं वासवं तथा । वैष्णवं वैश्वदेवं च पुरुहूतस्य मण्डलम् ॥ २६ ॥ मण्डलेऽस्मिन्समुत्पन्नं ग्रहणं जगतः शुभम् । आनन्दं सर्वजन्तूनां विदधाति विशेषतः ॥ २७ ॥ तिष्यमाजपदं चैव याम्यं भाग्यं च पैतृकम् । ऐन्द्राग्निदैवतं चैव सप्तैतान्यनलो गणः ॥२८॥ अनले मण्डले दृष्टं ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः । राज्ञां भयकरं विद्यात्प्रजानां बहुदोषकृत् ॥ २९ ॥ आहिर्बुध्न्यं तथा पौष्णं मूलमाप्यं च शाङ्करम् । वारुणं सार्पदैवत्यं वारुणं मण्डलं स्मृतम् ॥ ३० ॥ एतस्मिन्नुपरागः स्यान्मण्डले रविसोमयोः । दुर्भिक्षमथ नाशश्च प्रजानामिति निश्चयः ॥ ३१ ॥ ऋक्षाणि चार्यमादीनि चत्वारि च पुनर्वसुः । सौम्यं चैवाश्विदैवत्यं वायव्यं मण्डलं स्मृतम् ॥ ३२ ॥ समरस्य भयं चैव दुर्भिक्षं कुरुतेऽचिरात् । व्याधिशस्त्रादिकोपश्च मण्डलेऽस्मिन्नुपप्लवः ॥ ३३ ॥ कश्यपः— आग्नेये कारयेच्छान्तिं कुर्यात्सर्वत्र वारुणे । वायव्ये शान्तिरिष्येत माहेन्द्रे न तु कारयेत् ॥ ३४ ॥ होरायां गृह्यते यस्य नक्षत्रे वा निशाकरः । प्राणसंदेहमाप्नोति स वा मरणमृच्छति ॥ ३५ ॥ यस्य त्रिजन्मनक्षत्रे ग्रस्येते शशिभास्करौ । तज्जातानां भवेत्पीडा ये (ते) नराः शान्तिवर्जिताः ॥ ३६ ॥ वराहः—सव्यापसव्यलेहग्रसननिरोधावमर्दनारोहाः । आघ्रातं मध्यतमस्तमोऽन्त्य इति ते दश ग्रासाः ॥ ३७ ॥ सव्यगते तमसि जगज्जलप्लुतं भवति मुदितमभयं च । अप-

१ क. ख °षस्थे । २ ख. मूल्यार्घंच । घ. मूल्यार्घंच । ३ ख. घ. °भपना° । ४ ख. °पदूने । ५ घ. °नैगुरौ ।

सात्माग्यत्काम्यमसमापितम् । आगते मलमासेऽपि तत्समाप्यमसंशयम् ॥ १३ ॥ कालविवेके–चीर्णव्रतानामनिषिद्धकाल आकाङ्क्षितं तत्परिपूर्णभावम् । व्रतोपवासादिफलाप्तिहेतो निषिद्धकालेऽपि समाप्यमेतत् ॥ १४ ॥ मनुस्मृतौ–तीर्थश्राद्धं दर्शश्राद्धं प्रेतश्राद्धं सपिण्डनम् । चन्द्रसूर्यग्रहस्नानं मलमासे विधीयते ॥ १५ ॥

इत्यधिमासनिर्णयः ।

---

## अथ क्षयमासनिर्णयः ।

वृत्तगते—यत्र मासि रविसंक्रमद्वयं तत्र मासयुगलं क्षयाह्वयम् । व्योमरामदिवसैर्भवेच्छुभे यज्ञकर्मणि च वर्जयेत्तु तत् ॥ १ ॥ सिद्धान्तशिरोमणौ–गतोऽब्ध्यद्रिनन्दैर्मिते शाककाले ९७४ तिथीशै १११५ र्भविष्यत्यथाङ्गाक्षसूर्यैः १२५६ । गजाग्न्यक्षिभूमि १२७८ स्तथा प्रायशोऽयं कुवेदेन्दुवर्षैः १४१ क्वचिद्गोकुभिश्च १९ ॥ २ ॥ स्मृतिरत्नावल्याम्–एक एव यदा मासः संक्रान्तिद्वयसंयुतः । मासद्वयगतं श्राद्धं तस्मिन्नेव प्रशस्यते ॥ ३ ॥ बृहत्कालनिर्णये- तिथ्यर्धे प्रथमे पूर्वो द्वितीयेऽर्धे तथोत्तरः । मासाविति बुधैर्ज्ञेयौ क्षयमासस्य मध्यगौ ॥ ४ ॥ एतज्जन्ममासादिज्ञानार्थविषयम् । अन्यत्रापि स्वकालसंभवे योज्यम् । कालनिर्णये–यस्मिन्राशौ गते सूर्ये विपत्तिः स्याद्द्विजन्मनः । तद्राशावेव कर्तव्यं प्रत्यब्दं तु मृतेऽहनि ॥ ५ ॥ फलप्रदीपे—क्षयमासो भवेद्यस्मिंस्तस्मिन्वर्षेऽथ विग्रहः । दुर्भिक्षं वाऽथवा पीडां राष्ट्रभङ्गं करोति वै ॥ ६ ॥ पक्षस्य मध्ये द्वितिथी विनष्टे महाहवं रौरवविग्रहं च । पक्षे विनष्टे नृपतिर्विनश्येन्मासक्षये म्लेच्छवती वसुन्धरा ॥ ७ ॥

इति क्षयमासनिर्णयः ।

---

## अथ ग्रहणनिर्णयः ।

निर्णयदीपनिर्णये—दिवा चन्द्रग्रहो रात्रौ सूर्यपर्व न पुण्यदम् । संधिस्थं पुण्यदं ज्ञेयं यावद्दर्शनगोचरः ॥ १ ॥ मेघच्छन्ने ग्रहे स्नानाद्यधिकारो न विद्यते । इति यत्कीर्तितं तच्च निर्मूलत्वादुपेक्षितम् ॥२॥ यथा वृक्षादिभिश्छन्ने स्नानाद्यं क्रियते ग्रहे । घनेनाच्छादिते तद्वत्स्नानादौ नैव बाधकम् ॥ ३ ॥ स्पर्शमुक्तिनिमित्तं हि स्नानं न गणितागते । काले कुर्वीत सूर्येन्द्वोर्मेघाच्छादितयोर्ग्रहे ॥ ४ ॥ यावन्मुक्तं खेर्बिम्बं विधेर्यावऽपि न दृश्यते । तावन्न क्रियते स्नानं मौक्तिकं मनुरब्रवीत् ॥ ५ ॥ ग्रस्तोदिते ग्रहे ग्रस्तं दृष्ट्वा स्नानं समाचरेत् । ग्रस्तास्ते मौक्तिकं स्नानं [illegible] (नं:) दृष्ट्वा गई विधुम् ॥ ६ ॥

## अथ ग्रहणविधिः ।

स्पर्शे स्नानं जपं कुर्यान्मध्ये होमं सुरार्चनम् । मुच्यमाने सदा दानं विमुक्तौ स्नानमाचरेत् ॥ १ ॥ सूर्योदये—स्पर्शे स्नानं भवेद्धोमो ग्रस्तयोर्मुच्यमानयोः । दानं स्यान्मुक्तयोः स्नानं ग्रहे चन्द्रार्कयोर्विधिः ॥२॥ चतुर्विंशतिमते—मुक्तौ यस्तु न कुर्वीत स्नानं ग्रहणसूतके । स सूतकी भवेत्तावद्यावत्स्यादपरो ग्रहः ॥ ३ ॥ सूर्यग्रहे तु नाश्नीयात्पूर्वं यामचतुष्टयम् । चन्द्रग्रहे तु यामांस्त्रीन्बालवृद्धातुरैर्विना ॥ ४ ॥ सेनासूर्योदये—नाद्याच्चतुस्त्रीन्प्रग्यामात्रवीन्दुग्रहयामयोः । ग्रहकाले च नाश्नीयात्स्नात्वाऽश्नीयाच्च मुक्तयोः ॥५॥ ग्रस्तास्तेऽन्यदिने दृष्ट्वाऽश्नीयाद्वृद्धातुरैर्विना । वेधो वृद्धातुरग्चर्भपुत्रिणां यामयुग्मकम् ॥ ६ । चिन्तामणौ—सायाह्ने सङ्गवेऽश्नीयाच्छारदे संगवादध । मध्याह्ने परतोऽश्नीयान्नोपवासो रविग्रहे ॥ ७ ॥ सेनासूर्योदये—न सूतकादिदोषोऽत्र दानहोमजपादिषु । ग्रस्ते स्नायादुदक्याऽपि तीर्थादुद्धृतवारिणा ॥ ८ ॥ स्मृतिमहार्णवे—इन्दार्यां विनिवृत्तायां पाककर्म समारभेत् । श्राद्धे सूर्योदयादूर्ध्वं मुक्तयोः शशिसूर्ययोः ॥ ९ ॥ स्मृतिचन्द्रिकायां—स्मार्तकर्मपरित्यागो राहोरन्यत्र सूतके । श्रौतकर्मणि तत्कालं स्नातः शुद्धिमवाप्नुयात् ॥ १० ॥ मन्वर्थमुक्तावल्याम्—अन्नं पक्वमिह त्याज्यं स्नानं सवसनं ग्रहे । वारितक्रारनालादि तिलैर्दर्भैर्न दुष्यति ॥ ११ ॥ धर्मप्रदीपे—आरनालं पयस्तक्रं दधि स्नेहाज्यपाचितम् । मणिकस्थोदकं चैव न दुष्येद्राहुसूतके ॥ १२ ॥ मेधातिथिः—सूतकेऽपि च संप्राप्ते यदि स्याद्राहुसूतकम् । न सूतकं भवेत्तावद्यावद्राहुर्न मुञ्चति ॥ १३ ॥ सेनासूर्योदये—त्रयोदश्यास्तु माङ्गल्ये दिनानां नवकं त्यजेत् । खण्डग्रहे ग्रहदिनं तथा पूर्वापरं दिनम् ॥ १४ ॥ नारदः—उत्पातग्रहणादूर्ध्वं सप्ताहमखिलग्रहे । नाखिले त्रिदिनं नेष्टं नेष्टं तत्रमृतुत्रयम् ॥ १५ ॥ कालविशेषेण वर्जनीयदिनान्याह—*ग्रस्तास्ते त्रिदिनं पूर्वं पश्चाद्ग्रस्तोदिते तथा । संध्यायां त्रिदिनं नेष्टं निःशेषे सप्तमष्ट च ॥ १६ ॥ ज्योतिःप्रकाशे—खग्राससर्वपादोनखण्डाङ्घ्रयल्पे तु वासराः । गजाश्विप्वग्निरामाब्जा नेष्टाः प्राक्तद्दलग्रहे ॥ १७ ॥ ज्योतिःसागरे—एकरात्रं परित्यज्य कुर्यात्पाणिग्रहं ग्रहे । सप्तरात्रं प्रयाणं च त्रिरात्रं व्रतबन्धनम् ॥ १८ ॥ एतद्वचनमावश्यकविषयम् । कालविवेके—प्रागेकाहं त्र्यहं पश्चात्तद्दिनं ग्रहणस्य च । त्यजेद्व्यत्यन्तराभावे सर्वग्रासेऽपि कर्मणाम् ॥ १९ ॥

* सर्वग्रासे तु सप्ताहमर्धग्रासे दिनत्रयम् । त्रिविरक्ताद्दुग्धास दिनमेकं तु वर्जयेत् । प. पुस्तके ।

१ क. 'ध्यातुरैः' । ख. 'भावातुरैः' ।

## अस्यापवादः ।

भृगुः—मलमासेऽप्यनावृत्तं तीर्थस्नानं विवर्जयेत् । अनादिदेवतां द्रष्टुं शुचिः स्यान्नष्टभार्गवे ॥ १ ॥ तीर्थखण्डे—गुरुशुक्रास्तादिदोषः प्रोक्तो यस्तीर्थयातृणाम् । अपूर्वयायिनामेव न त्वसौ पूर्वगामिनाम् ॥ २ ॥ पितृखण्डे—शुक्रस्यास्तमने चैव देवेज्यस्य तथैव च । प्रेतकार्यं प्रदुष्येत प्रथमं वत्सरं विना ॥३॥ माण्डव्यः—मलिने जन्ममासे वा मौढ्ये वा गुरुशुक्रयोः । तीर्थयात्रा न कर्तव्या गयां गोदावरीं विना ॥ ४ ॥ गारुडे—न कुर्याद्गुरुशुक्रास्ते पुण्ये स्वापे मलिम्लुचे । विलम्बितं प्रेतकार्यं गयां गोदावरीं विना ॥ ५ ॥ गुरुभार्गवमौढ्ये च पुण्ये स्वापे मलिम्लुचे । प्रेतकार्यं न कुर्वीत गयां गोदावरीं विना ॥ ६ ॥ मेधातिथिः—अस्तं गते गुरौ शुक्रे पुष्यापाढाधिमासके । प्रेतकार्यं न कुर्वीत गयां गोदावरीं विना ॥ ७ ॥ प्रेतमञ्जर्यां—प्रेतकार्याणि सर्वाणि व्रतस्नानजपादिकम् । वर्ज्यं शुक्रेज्ययोरस्ते गयां गोदावरीं विना ॥ ८ ॥

इति गुरुशुक्रयोर्मौढ्यादिविचारः ।

---

## अथ प्रसङ्गाच्चन्द्रास्तदोषः ।

वृद्धत्वमिन्दोस्त्रिदिनं दिनार्धं बालत्वमस्तत्वमहर्द्वयं च । अस्ते विधौ मृत्युमुपैति कन्या बालेऽन्यसक्ता विधवा च वृद्धौ ॥ १ ॥

## अथ मलमासनिर्णयः ।

सिद्धान्तशिरोमणौ—असंक्रान्तिमासोऽधिमासः स्फुटः स्याद्द्विसंक्रान्तिमासः क्षयाख्यः कदाचित् । क्षयः कार्तिकादित्रये नान्यतः स्यात्तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वयं च ॥ १ ॥ पितामहः—अष्टाधिमासाः स्युर्नित्यं प्रोच्यन्ते फाल्गुनादयः । सौम्यपौषौ क्षयौ नित्यं भवेतामिति निश्चितम् ॥ २ ॥ क्षयो वाऽप्यधिमासो वा स्यादूर्जे इति निश्चितम् । न क्षयो नाधिमासः स्यान्माघो वै परिकीर्तितः ॥ ३ ॥ पञ्च मासास्तु वैशाखादधिमासा व्यवस्थिताः । भवन्ति चाष्टभिर्वर्षैर्भवर्षोऽङ्कनिशाकरैः ॥ ४ ॥ तथैव फाल्गुनश्चैत्र आश्विनः कार्तिकोऽधिकाः । एते किन्द्रैः १४१ शराङ्गै ६५ र्वा कदाचिल्लोकुवत्सरैः १९ ॥ ५ ॥ मार्गपौषौ क्षयौ स्यातां कदाचित्कार्तिको भवेत् । अधिमासस्तदा ज्येष्ठो भवेन्नित्यं क्षयो यदा ॥ ६ ॥ क्षयात्प्रागधिमासः स्यान्नित्यं भाद्रपदत्रये । आश्विनोर्जौ सदा स्यातामाद्यो भाद्रपदः सकृत् ॥ ७ ॥ पौलिशसिद्धान्ते—स्फुटगत्या यथा चन्द्रो रविमण्डलनेमिगः । तदूर्ध्वं संक्रमो भानोर्मासः स स्यान्मलिम्लुचः ॥८॥

कालनिर्णये—संक्रमो यदि भवेद्रवेस्ततो मण्डलाद्बहिरनिर्गते विधौ । उच्यते स रविसंक्रमो बुधैः शुद्धमास इतरो मलिम्लुचः ॥ ९ ॥ ल्लः—यदा शशी याति गभस्तिमण्डलं दिवाकरः संक्रमणं करोत्यनु । विवाहयज्ञोत्सवनाशहेतुस्तदाऽधिमासः कथितः स्वयंभुवा ॥ १० ॥ रत्नमालायां श्रीपतिः—सवितृमण्डलमेति यदा शशी तदनु संक्रमणं कुरुते रविः । मखमहोत्सवनाशकरस्तदा मुनिवरैः कथितोऽधिकमासकः ॥ ११ ॥ शार्ङ्गपद्धे—चन्द्रार्कयोस्तु विम्बैक्यं प्रतिपद्दर्शसंधिषु । तिथ्यन्तात्तदुभयतो रसनाड्योऽर्कमण्डलम् ॥ १२ ॥ तन्मण्डलाच्छशी गच्छेत्ततः सूर्यस्य संक्रमः । मासोऽसौ मलिनः प्रोक्तस्तच्छ्रीनोऽधिकः स्मृतः ॥१३॥ पितामहः—प्रतिपद्दर्शसंधौ तु विम्बैक्यं सूर्यचन्द्रयोः । जवान्तरार्धं परिघ्नं नाडिका अर्कमण्डलम् ॥ १४ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—दर्शान्त एकैः कथितोऽत्र मासः परैः प्रदिष्टो रविमण्डलान्तः । मतद्वये चेद्रविसंक्रमः स्यात्स एव पूर्वस्य न चापरस्य ॥१५॥ रत्नकोशे—प्रायशो न शुभश्चैव ज्येष्ठश्चाऽऽपाढ एव च । मध्यमौ चैत्रवैशाखावधिकोऽन्यः सुभिक्षकृत् ॥ १६ ॥

## अथ मलमासे कार्याकार्याणि ।

कश्यपः—शुद्धे दैवानि कर्माणि कर्तव्यानि शुभानि च । मलिनेऽन्यानि चोक्तानि मासि पैत्राणि चोभयोः ॥ १ ॥ गर्गः—अग्न्याधेयं प्रतिष्ठां च यज्ञदानव्रतानि च । देवव्रतवृषोत्सर्गचूडाकरणमेखलाः ॥ २ ॥ गमनं देवतीर्थानां विवाहमभिषेचनम् । यानं च गृहकर्माणि मलमासे विवर्जयेत् ॥३॥ सूर्यप्रदीपे—अवश्यकर्म मासाख्यं मलमासमृताब्दिकम् । तीर्थेभच्छाययोः श्राद्धं प्रेयानङ्गपितृक्रियाम् ॥ ४ ॥ कुर्यान्मलिम्लुचे वर्षमध्ये चेत्स तदाऽधिकः । तत्र स्यान्मासिकं मृत्युमासात्स द्वादशो यदि ॥ ५ ॥ प्रेतक्रियां समाप्यात्र कुर्वीताभ्युदयं तदा । श्यामाकाग्रयणं कृच्छ्रेऽन्नस्यावर्ष्यमतोऽन्यथा ॥ ६ ॥ काम्यारम्भं वृषोत्सर्गं पर्वोत्सवमुपाकृतिम् । मेखलाचौलमाङ्गल्याग्न्याधानोद्यापनक्रियाः ॥ ७ ॥ वेदव्रतमहादानाभिषेकान्त्वर्धमानकम् । इष्टं पूर्तं तथा यस्य विध्यलोपोऽन्यदा कृतौ ॥ ८ ॥ तत्सर्वमष्टकाद्यन्यदधिमासे विवर्जयेत् । सूतकेऽपि च कर्तव्यं स्नानाद्यं राहुदर्शने ॥ ९ ॥ पराशरस्मृतौ—गर्भे वार्धुषिके भृत्ये प्रेतकर्मणि मासिके । सपिण्डीकरणे नित्ये नाधिमासं विवर्जयेत् ॥ १० ॥ कात्यायनस्मृतौ—गर्भाधानादिका अन्नप्राशनान्ता मलिम्लुचे । आकर्णवेधाः स्युः क्रिया नान्या इत्याह भास्करः ॥ ११ ॥ आधानानन्तरं चान्वारम्भणीं चेष्टिमेव च । स्थालीपाकं च नो कुर्यात्पाकयज्ञान्मलिम्लुचे ॥ १२ ॥ स्मृतिरत्नावल्यां—प्रवृत्तं मलमा-

---

१ क. मयान° ।

## अथ ग्रहणविधिः ।

स्पर्शे स्नानं जपं कुर्यान्मध्ये होमं सुरार्चनम् । मुच्यमाने सदा दानं विमुक्तौ स्नानमाचरेत् ॥ १ ॥ सूर्योदये—स्पर्शे स्नानं भवेद्धोमो ग्रस्तयोर्मुच्यमानयोः । दानं स्यान्मुक्तयोः स्नानं ग्रहे चन्द्रार्कयोर्विधिः ॥२॥ चतुर्विंशतिमते—मुक्तौ यस्तु न कुर्वीत स्नानं ग्रहणसूतके । स सूतकी भवेत्तावद्यावत्स्यादपरो ग्रहः ॥ ३ ॥ सूर्यग्रहे तु नाश्नीयात्पूर्वं यामचतुष्टयम् । चन्द्रग्रहे तु यामांस्त्रीन्बालवृद्धातुरैर्विना ॥ ४ ॥ सेवासूर्योदये—नाद्याच्चतुस्त्रीन्भाग्यामात्रवीन्दुग्रहयामयोः । ग्रहकाले च नाश्नीयात्स्नात्वाऽश्नीयाच्च मुक्तयोः ॥ ५ ॥ ग्रस्तास्तेऽन्यदिने दृष्ट्वाऽश्नीयाद्वृद्धातुरैर्विना । वेधो वृद्धातुरक्षुधर्भपुत्रिणां यामयुग्मकम् ॥ ६ ॥ चिन्तामणौ—सायाह्ने सङ्गवेऽश्नीयाच्छारदे संगवादध: । मध्याह्ने परतोऽश्नीयान्नोपवासो रविग्रहे ॥ ७ ॥ सेवासूर्योदये—न सूतकादिदोषोऽत्र दानहोमजपादिषु । ग्रस्ते स्नायादुदक्याऽपि तीर्थादुद्धृतवारिणा ॥ ८ ॥ स्मृतिमहार्णवे—दशाम्यां विनिवृत्तायां पाककर्म समारभेत् । श्राद्धे सूर्योदयादूर्ध्वं मुक्तयोः शशिसूर्ययोः ॥ ९ ॥ स्मृतिचन्द्रिकायां—स्मार्तकर्मपरित्यागो राहोरन्यत्र सूतके । श्रौतकर्मणि तत्कालं स्नातः शुद्धिमवाप्नुयात् ॥ १० ॥ मन्वर्थमुक्तावल्याम्—अन्नं पक्वमिह त्याज्यं स्नानं सवसनं ग्रहे । वारितक्रारनालादि तिलैर्दर्भैर्न दुष्यति ॥ ११ ॥ धर्मप्रदीपे—आरनालं पयस्तक्रं दधि स्नेहाज्यपाचितम् । मणिकस्थोदकं चैव न दुष्येद्राहुसूतके ॥ १२ ॥ मेधातिथिः—सूतकेऽपि च संप्राप्ते यदि स्याद्राहुसूतकम् । न सूतकं भवेत्तावद्यावद्राहुर्न मुञ्चति ॥ १३ ॥ सेवासूर्योदये—त्रयोदश्यास्तु माङ्गल्ये पि दिनानां नवकं त्यजेत् । खण्डग्रहे ग्रहदिनं तथा पूर्वापरं दिनम् ॥ १४ ॥ सिनारदः—उत्पातग्रहणादूर्ध्वं सप्ताहमखिलग्रहे । नाखिले त्रिदिनं नेष्टं नेष्टं तद्ग्रमृतुतदत्ययम ॥ १५ ॥ कालविशेषेण वर्जनीयदिनान्याह—*ग्रस्तास्ते त्रिदिनं पूर्वं पश्चाद्ग्रस्तोदिते तथा । संध्यायां त्रिदिनं नेष्टं निःशेषे सप्तसप्त च ॥ १६ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—खग्रासः सर्वपादोनखण्डाङ्घ्र्यल्पे तु वासराः । गजाब्ध्यग्न्यब्धिरामाब्जा कुलोष्ठाः प्रावतद्दलग्रहे ॥ १७ ॥ ज्योतिःसागरे—एकरात्रं परित्यज्य कुर्यात्पाणिग्रहं स्त्रीहे । सप्तरात्रं प्रयाणं च त्रिरात्रं व्रतबन्धनम् ॥ १८ ॥ एतद्वचनमावश्यकमासिपयम् । कालविवेके—प्रागेकाहं त्र्यहं पश्चात्तद्दिनं ग्रहणस्य च । त्यजेद्गत्यन्तगर्भाभावे सर्वग्रासेऽपि कर्मणाम् ॥ १९ ॥

इ

* सर्वग्रासे तु सप्ताहमर्धग्रासे दिनत्रयम् । त्रिद्विपकाङ्गुल्यग्रासे दिनमेक तु वर्जयेत् । ध. पुस्तके ।

१ क. 'म्यातुमेत्रृ°' । ख. 'म्यासावित्रृ°' ।

## अथ पर्वेशसाधनम् ।

* दिग्बाणभूमियुक्शाको दस्रघ्नः पञ्चसंयुतः । नगतष्टो भवेत्पर्वपतिर्ब्रह्मादिको गतः ॥ १ ॥ रविगुणिते शककाले माससमेतेऽक्षिसागरविभक्ते । यल्लभ्यन्ते भगणाः शेषे मुनिभाजिते च पर्वेशाः ॥ २ ॥

## अथ पर्वेशादिफलानि ।

वाराहः—षण्मासोत्तरवृद्ध्या पर्वेशाः सप्त देवताः क्रमशः । ब्रह्मशशीन्द्रकुबेरा वरुणाग्नियमाश्च विज्ञेयाः ॥ १ ॥ ब्राह्मे द्विजपशुवृद्धिः क्षेमारोग्याणि सस्यसंपच्च । तद्वत्सौम्ये तस्मिन्पीडा विदुषामवृष्टिश्च ॥ २ ॥ ऐन्द्रे भूपविरोधः शारदसस्यक्षयो न च क्षेमम् । कौबेरेऽर्थपतीनामर्थविनाशः सुभिक्षं च ॥ ३ ॥ वारुणमवनीशानामन्येषां क्षेमसस्यवृद्धिकरम् । आग्नेयं मित्राख्यं सस्यारोग्याभयाम्बुकरम् ॥ ४ ॥ याम्यं करोत्यवृष्टिं दुर्भिक्षं संक्षयं च लोकानाम् । यदतः परं तदशुभं क्षुन्मारकावृष्टिदं पर्व ॥ ५ ॥ पूर्वाह्ले वाऽपराह्ले वा वेलाहीनं तदुच्यते । मध्याह्ले परवेलायां त्रयो वेलागुणाः फलम् ॥ ६ ॥ वेलाहीने पर्वणि गर्भविपत्तिश्च शस्त्रकोपश्च । अतिवेले कुसुमफलक्षयो भयं सस्यनाशश्च ॥ ७ ॥ हीनातिरिक्तकाले फलमुक्तं पूर्वशास्त्रदृष्टत्वात् । स्फुटगणितविदां कालः कथंचिदपि नान्यथा भवति ॥ ८ ॥ यद्येकस्मिन्मासे ग्रहणं रविसोमयोस्तदा क्षितिपाः । स्वबलक्षोभैः संक्षयमायान्त्यतिशस्त्रकोपश्च ॥ ९ ॥ ग्रस्तावुदितास्तमितौ शारदधान्यावनीश्वरक्षयदौ । सर्वग्रस्तौ दुर्भिक्षमरक(ण)दौ पापसंदृष्टौ ॥ १० ॥ अर्धोदितोपरक्तो नैकृतिकान्हन्ति यज्ञांश्च । अग्न्युपजीविगुणाधिकविप्राश्रमिणो युगाभ्युदितः ॥ ११ ॥ कर्षकपाखण्डवणिक्क्षत्रियबलनायकान्द्वितीयेंऽशे । कारुकशूद्रम्लेच्छान्स्वतृतीयेंऽशे समन्त्रिगणान् ॥ १२ ॥ मध्याह्ले नरपतिमध्यदेशहाऽशोभनश्च धान्यार्घः । तृणभुगमात्यान्तःपुरवैश्यघ्नः पञ्चमे स्वांशे ॥ १३ ॥ स्त्रीशूद्रान्षष्ठेंऽशे दस्युमत्यन्तहाऽस्तमयकाले । यस्मिन्स्वांशे मोक्षस्तन्मोक्तानां शिवं भवति ॥ १४ ॥ द्विजनृपतीनुदगयने विट्शूद्रान्दक्षिणायने हन्ति । राहुरुदगादिदृष्टः प्रदक्षिणं हन्ति विप्रादीन् ॥ १५ ॥ म्लेच्छान्विदिक्स्थितो यायिनश्च हन्याद्धुताशसक्तांश्च । सलिलचरदन्तिघाती याम्येनोद्गवामशुभः ॥ १६ ॥ पूर्वेण सलिलपूर्णां करोति वसुधां समागतो दैत्यः । पश्चात्कर्षकसेवकबीजविनाशाय निर्दिष्टः ॥ १७ ॥ पाञ्चालकलिङ्गशूरसेनाः काम्बोजोग्रकिरातशस्त्रवार्ताः । जीवन्ति च ये हुताशवृत्या ते पीडामुपयान्ति

* श्लोकद्वयं कपुस्तकादन्यत्र नास्ति।

१ क. 'नामशुभम्' । २ ग. 'स्तोशुभि' ।

मेषस्थे ॥ १८ ॥ गोपाः पशवोऽथ गोमिनो मनुजा ये च महत्त्वमागताः। ते पीडामुपयान्ति भास्करे ग्रस्ते शीतकरेऽपि वा वृषे ॥ १९ ॥ मिथुने प्रवराङ्गना नृपा नृपमात्रा बलिनः कलाविदः। यमुनातटजाः सबाह्लिका मत्स्याः सुह्मजनैः समन्विताः ॥ २० ॥ आभीराञ्छबरान्सपह्लवान्मल्लान्मत्स्यकुरूञ्छकानपि। पाञ्चालान्विकलांश्च पीडयत्यन्नं चापि निहन्ति कर्कटस्थे ॥ २१ ॥ सिंहे पुलिन्दगणमेकलसत्त्वयुक्तान्राजोपमान्नरपतीन्वनगोचरांश्च। षष्ठे तु सस्यकविलेखकगेयसक्तान्हन्त्यश्मकत्रिपुरशालियुतांश्च दोषान् ॥ २२ ॥ तुलाधरेऽवन्त्यपरान्त्यसाधून्वणिग्दशार्णान्मरुकच्छपांश्च। अलिन्यथोदुम्बरमद्रचोलान्द्रुमान्सयौधेयविषायुधीयान् ॥ २३ ॥ धन्विन्यमात्यवरवाजिविदेहमल्लान्पाञ्चालवैद्यवणिजो विषमायुधज्ञान्। हन्यान्मृगे तु झषमन्त्रिकुलानि नीचान्मन्त्रौषधीषु कुशलान्स्थविरायुधीयान् ॥ २४ ॥ कुम्भेऽन्तर्गिरिजान्सपश्चिमजनान्भारोद्वहांस्तस्करानाभीरान्दरदार्यसिंहपुरकान्हन्यात्तथा बर्बरान्। मीने सागरकूलसागरजलद्रव्याणि मान्याञ्जनान्प्राज्ञान्वार्युपजीविनश्च भफलं कूर्मोपदेशाद्वदेत् ॥ २५ ॥ गर्गः—ज्येष्ठा ब्राह्मं तथा मैत्रं भार्गवं वासवं तथा। वैष्णवं वैश्वदेवं च पुरुहूतस्य मण्डलम् ॥ २६ ॥ मण्डलेऽस्मिन्समुत्पन्नं ग्रहणं जगतः शुभम्। आनन्दं सर्वजन्तूनां विदधाति विशेषतः ॥ २७ ॥ तिष्यमाजपदं चैव याम्यं भाग्यं च पैतृकम्। ऐन्द्राग्निदैवतं चैव समेतान्यनलो गणः ॥२८॥ अनले मण्डले दृष्टं ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः। राज्ञां भयकरं विद्यात्प्रजानां बहुदोषकृत् ॥ २९ ॥ आहिर्बुध्न्यं तथा पौष्णं मूलमाप्यं च शाङ्करम्। वारुणं सार्पदैवत्यं वारुणं मण्डलं स्मृतम् ॥ ३० ॥ एतस्मिन्नुपरागः स्यान्मण्डले रविसोमयोः। दुर्भिक्षमथ नाशश्च प्रजानामिति निश्चयः ॥ ३१ ॥ ऋक्षाणि चार्यमादीनि चत्वारि च पुनर्वसुः। सौम्यं चैवाश्विदैवत्यं वायव्यं मण्डलं स्मृतम् ॥ ३२ ॥ समरस्य भयं चैव दुर्भिक्षं कुरुतेऽचिरात्। व्याधिशस्त्रादिकोपश्च मण्डलेऽस्मिन्नुपप्लवः ॥ ३३ ॥ कश्यपः—आग्नेये कारयेच्छान्तिं कुर्यात्सर्वत्र वारुणे। वायव्ये शान्तिरिष्येत माहेन्द्रे न तु कारयेत् ॥ ३४ ॥ होरायां गृह्यते यस्य नक्षत्रे वा निशाकरः। प्राणसंदेहमाप्नोति स वा मरणमृच्छति ॥ ३५ ॥ यस्य त्रिजन्मनक्षत्रे ग्रस्येते शशिभास्करौ। तज्जातानां भवेत्पीडा ये (ते) नराः शान्तिवर्जिताः ॥ ३६ ॥ वराहः—सव्यापसव्यलेह्यग्रसननिरोधावमर्दनारोहाः। आघ्रातं मध्यतमस्तमोऽन्त्य इति ते दश ग्रासाः ॥ ३७ ॥ सव्यगते तमसि जगज्जलप्लुतं भवति मुदितमभयं च। अप-

१ क. ख °पर्यस्थे। २ ख. मूलपार्यंच। घ. मूलमाप्यंच। ३ ख. घ. °मपना°। ४ ख. °पप्लुते। ५ घ. °नेगृह्यते।

सव्ये नरपतितस्करावमर्दः प्रजानाशः ॥ ३८ ॥ जिह्वोपलेढि परितस्तिमिरनुदो मण्डलं यदि स लेहः । प्रमुदितसमस्तभूपाः प्रभूततोया च तत्र मही ॥ ३९ ॥ ग्रसनमिति यदा त्र्यंशः पादो वा गृह्यतेऽथवाऽप्यर्धम् । स्फीतनृपवित्तहानिः पीडा च स्फीतदेशानाम् ॥ ४० ॥ पर्यन्तेषु गृहीत्वा मध्ये पिण्डीकृतं तमस्तिष्ठेत् । स निरोधो विज्ञेयः प्रमोदकृत्सर्वभूतानाम् ॥ ४१ ॥ अवमर्दनमिति निःशेषमेव संछाद्य यदि चिरं तिष्ठेत् । हन्यात्प्रधानदेशान्प्रधानभूपांश्च तिमिरमयः ॥ ४२ ॥ वृत्ते ग्रहे यदि तमस्तत्क्षणमाष्टत्य दृश्यते भूयः । आरोहणमित्यन्योन्यमर्दनैर्भयकरं राज्ञाम् ॥ ४३ ॥ दर्पण इवैकदेशे सबाष्पनिश्वासमारुतोपहतः । दृश्येताऽऽघ्रातं तत्सुवृष्टिवृद्ध्यावहं जगतः ॥ ४४ ॥ मध्ये तमः प्रविष्टं वितमस्कं मण्डलं च यदि परतः । तन्मध्यदेशनाशं करोति कुक्ष्यामयं भयं चैव॥४५॥ पर्यन्तेष्वतिबहलं स्वच्छं मध्ये तमस्तमोऽन्त्याख्ये । सस्यानामीतिभयं भयमस्मिंस्तस्कराणां च ॥ ४६ ॥ श्वेते क्षेमसुभिक्षं ब्राह्मणपीडां च निर्दिशेद्राहौ । अग्निभयमनलवर्णे पीडा च हुताशवृत्तीनाम् ॥ ४७ ॥ हरिते रोगोल्बणता सस्यानामीतिभिश्च विध्वंसः । कपिले शीघ्रगसत्वम्लेच्छध्वंसोऽथ दुर्भिक्षम् ॥ ४८ ॥ अरुणकिरणानुरूपे दुर्भिक्षावृष्टयो विहगपीडा । आधूम्रे च क्षेमं सुभिक्षमादिशेन्मन्दवृष्टिं च ॥ ४९ ॥ कापोतारुणकपिले श्यामाभे क्षुद्भयं विनिर्देश्यम् । शूद्राणां व्याधिकरः कापोतः कृष्णवर्णश्च ॥ ५० ॥ विमलकमणिपीताभो वैश्यध्वंसी भवेत्सुभिक्षाय । सार्चिष्मत्यग्निभयं गैरिकरूपे तु युद्धानि ॥ ५१ ॥ दूर्वाकाण्डश्यामे हारिद्रे चापि निर्दिशेन्मरणम् । अशनिभयसंप्रदायी पाटलकुसुमोपमो राहुः ॥ ५२ ॥ पांसुविलोहितरूपः क्षत्रध्वंसाय भवति वृष्टेश्च । बालरविकमलसुरचापभृच्छस्त्रकोपाय ॥ ५३ ॥ पश्यन्ग्रस्तं सौम्यो घृतमधुतैलक्षयाय राज्ञां च । भौमः समरविमर्दं शिखिकोपं तस्करभयं च ॥ ५४ ॥ शुक्रः सस्यविमर्दं नानाक्लेशांश्च जनयति धरित्र्याम् । रविजः करोत्यवृष्टिं दुर्भिक्षं तस्करभयं च ॥ ५५ ॥ यदशुभमवलोकनाभिरुक्तं ग्रहजनितं ग्रहणे प्रमोक्षणे वा । सुरपतिगुरुणाऽवलोकिते तत्क्षयमुपयाति जलैरिवाग्निरिद्धः ॥५६॥ ग्रस्ते क्रमा(?)न्निमित्तैः पुनर्ग्रहो मासषट्कपरिवृद्ध्या । पवनोल्कापातरजःक्षितिकम्पतमोशनिनिपातः ॥५७॥ आवन्तिका जनपदाः कावेरीनर्मदातटाश्रयिणः । दृप्ताश्च मनुजपतयः पीड्यन्ते क्षितिसुते ग्रस्ते ॥५८॥ अन्तर्वेदीं शरयूं नेपालं पूर्वसागरं शोणम् । स्त्रीनृपयोधकुमारान्सह विद्वद्भिर्बुधो हन्ति ॥ ५९ ॥ ग्रहणोपगते जीवे विद्वन्नृपमन्त्रिहयगजध्वंसः । सिन्धुतटवासिनामप्युदग्दिशं संश्रितानां च ॥ ६० ॥ भृगुतनये राहुगते

१ प. 'मार्गमित्रे. पु' ।

दशार्णकाः कैकयाः सयौधेयाः । आर्यावर्ताः शिबयः स्त्रीसचिवगणाश्च पीड्यन्ते ॥ ६१ ॥ सौरे मरुभवपुष्करसौराष्ट्रधातवोऽर्बुदान्त्यजनाः । गोमन्तपारियात्राश्रिताश्च नाशं व्रजन्त्याशु ॥ ६२ ॥ कार्तिक्यामनलोपजीविमगधान्प्राच्याधिपान्कोशलान्कल्माषानथ शूरसेनसहितान्काशींश्च संतापयेत् । हन्याच्चाऽऽशु कलिङ्गदेशनृपतिं सामात्यभृत्यं तमो दृष्टं क्षत्रियतापदं जनयति क्षेमं सुभिक्षान्वितम् ॥ ६३ ॥ काश्मीरकान्कोशलकान्सपुण्ड्रान्मृगांश्च हन्यादपरान्तकांश्च । ये सोमपास्तांश्च निहन्ति सौम्ये सुवृष्टिकृत्क्षेमसुभिक्षकृच्च ॥ ६४ ॥ पौषे द्विजक्षत्रजनोपरोधाः ससैन्धवाख्याः कुकुरा विदेहाः । ध्वंसं व्रजन्त्यत्र च मन्दवृष्टिं भयं च विद्यादसुभिक्षयुक्तम् ॥ ६५ ॥ माघे तु मातृपितृभक्तवसिष्ठगोत्रान्स्वाध्यायधर्मनिरतान्करिणस्तुरङ्गान् । वङ्गाङ्गकाशिमनुजांश्च दुनोति राहुर्वृष्टिं च कर्षकजनानुमतां करोति ॥ ६६ ॥ पीडाकरं फाल्गुनमासि पर्व वङ्गाश्मकावन्तकमेकलानाम् । नृत्यज्ञसस्यप्रवराङ्गनानां धनुर्धरक्षत्रतपस्विनां च ॥ ६७ ॥ चैत्रे तु चित्रकरलेखकमेयसक्तरूपोपजीविनिगमज्ञहिरण्यपण्यान् । पुण्ड्रौण्ड्रकैकयजनानथ चाऽश्मकांश्च तापः स्पृशत्यमरपोऽत्र विचित्रवर्षी ॥ ६८ ॥ वैशाखमासग्रहणे विनाशमायान्ति कार्पासतिलाः समुद्गाः । इक्ष्वाकुयौधेयशकाः कलिङ्गाः सोपद्रवाः किं तु सुभिक्षमत्र ॥ ६९ ॥ ज्येष्ठे नरेन्द्रद्विजराजपत्न्यः सस्यानि वृष्टिश्च महागणाश्च । प्रध्वंसमायान्ति नराश्च सौम्याः शाल्वैः समेताश्च निषादसंघाः ॥ ७० ॥ आषाढपर्वण्युडुपानवप्रनदीप्रवाहान्फलमूलवार्तान् । गान्धारकाश्मीरपुलिन्दचीनान्हन्ता वदेन्मण्डलवर्षमस्मिन् ॥ ७१ ॥ काश्मीरान्सपुलिन्दचीनयवनान्हन्यात्कुरुक्षेत्रजान्गान्धारानपि मध्यदेशसहितान्दृष्टो ग्रहः श्रावणे । काम्बोजैकशफांश्च शारदमपि त्यक्त्वा यथोक्तानिमानन्यत्र प्रचुरान्नहृष्टमनुजैर्धात्रीं करोत्यावृताम्॥७२॥कलिङ्गवङ्गान्मगधान्सुराष्ट्रान्म्लेच्छान्सुवीरान्दरदाश्मकांश्च । स्त्रीणां च गर्भानसुरो निहन्ति सुभिक्षकृद्भाद्रपदेऽभ्युपेतः ॥ ७३ ॥काम्बोजचीनयवनान्सह शल्यहृद्भिर्बाह्लीकसिन्धुतटवासिजनांश्च हन्यात्। आनर्तपौण्ड्रभिषजश्च तथा किरातान्दृष्टोऽसुरोऽश्वयुजि भूरिसुभिक्षकृच्च ॥ ७४ ॥ हनुकुक्षिपायुभेदाद्विध्वंसं छर्दनं च जरणं च । मध्यान्तयोश्च विदरणमिति दश शशिसूर्ययोर्मोक्षाः ॥ ७५ ॥ आग्नेय्यामथ गमनं दक्षिणहनुभेदसंज्ञितं शशिनः । सस्यविमर्दो मुखरुङ् नृपपीडा स्यात्सुवृष्टिश्च ॥ ७६॥ पूर्वोत्तरेण वामो हनुभेदो नृपकुमारभयदायी । मुखरोगः शस्त्रभयं तस्मिन्विद्यात्सुभिक्षं च ॥ ७७ ॥

---

१ ग. घ. 'ण्मण्डल' ।

दक्षिणकुक्षिविभेदो दक्षिणपार्श्वेन यदि भवेन्मोक्षः । पीडा नृपपुत्राणामभियोज्या दक्षिणा रिपवः ॥ ७८ ॥ वामस्तु कुक्षिभेदो यद्युत्तरपार्श्वमास्थितो राहुः । स्त्रीणां गर्भविपत्तिः सस्यानि च तत्र मध्यानि ॥ ७९ ॥ नैर्ऋतवायव्यस्थे दक्षिणवामौ तु पायुभेदौ द्वौ । गुह्यरुगल्पा वृष्टिर्द्वयोस्तु राज्ञीक्षयो वामे ॥ ८० ॥ पूर्वेण प्रग्रहणं कृत्वा प्रागेव चापसर्पेयत् । संछर्दनमिति तत्क्षेमसस्यहार्दिमदं जगतः ॥ ८१ ॥ प्राक्प्रग्रहणं यस्मिन्पश्चादपसर्पणं तु तज्जरणम् । क्षुच्छस्त्रभयोद्विग्ना न शरणमुपयान्ति तत्र जनाः ॥ ८२ ॥ मध्ये यदि प्रकाशः प्रथमं तन्मध्यविदरणं नाम । अन्तःप्रकोपकं स्यात्सुभिक्षदं नातिवृष्टिकरम् ॥८३॥ पर्यन्तेषु विमलता बहुलं मध्ये तमोऽन्तदरणाख्यम् । मध्याख्यदेशनाशः शारदसस्यक्षयश्चास्मिन् ॥ ८४ ॥ एते सर्वे मोक्षा वक्तव्या भास्करेऽपि किं त्वत्र । पूर्वा दिक् शशिनि यथा तथा रवौ पश्चिमा कल्प्या ॥ ८५ ॥ नारदः—दशैव ग्रासभेदाः स्युर्मोक्षभेदास्तथा दश । न शक्ता वेदितुं देवाः किं पुनस्ताम्बराधमाः ॥ ८६ ॥ मुक्तेः सप्ताहान्तः पांशुनिपातोऽन्नसंक्षयं कुरुते । नीहारो रोगभयं भूकम्पः प्रवरनृपमृत्युम् ॥ ८७ ॥ उल्का मन्त्रिविनाशं नानावर्णो घनाश्च भयमतुलम् । स्तनितं गर्भविपत्तिं विद्युन्नृपदंष्ट्रिपरिपीडाम् ॥ ८८ ॥ परिवेषो रुक्पीडां दिग्दाहो नृपभयं च साग्निभयम् । रूक्षो वायुः प्रबलश्चौरससुत्थं भयं दत्ते ॥ ८९ ॥ निर्घातः सुरचापं दण्डश्च क्षुद्भयं सपरिचक्रम् । ग्रहयुद्धे नृपयुद्धं केतुश्च तदेव संदृष्टः ॥ ९० ॥ अविकृतसलिलनिपातैः सप्ताहान्तः सुभिक्षमादेश्यम् । यच्चाशुभं ग्रहणजं तत्सर्वं नाशमुपयाति ॥ ९१ ॥ सोमग्रहे निवृत्ते पक्षान्ते यदि भवेद्ग्रहोऽर्कस्य । तत्रानयः प्रजानां दंपत्योर्वैरमन्योन्यम् ॥ ९२ ॥ अर्कग्रहात्तु शशिनो ग्रहणं यदि दृश्यते ततो विप्राः । नैकक्रतुफलभाजो भवन्ति मुदिताः प्रजाश्चैव ॥ ९३ ॥

इति पर्वेशादिफलानि ।

---

## अथ निजराशौ ग्रहणफलम् ।

माण्डव्यः—निजराशेर्ग्रहणदिने त्रिषड्दशैकादशे शुभो राहुः । अपरे राहुं प्राहुर्जन्मगमशुभं परं शशिवत् ॥ १ ॥ भृगुः—कष्टतरं जन्मभगं ग्रहणं पुंसां तथाऽष्टसप्तान्त्यम् । उपचयगं शुभदं स्यान्मध्यफलं द्वित्रिकोणबन्धुगतम् ॥ २ ॥ फ० प्रदीपे—ग्रहणं जन्मनक्षत्रे जायते चन्द्रसूर्ययोः । यस्य तस्याशुभं हानिर्वैरं रोगः

---

१ ग० 'वंगग्रह' । २ 'चंग्रह' ।

पराभवः ॥ ३ ॥ कालनिर्णये-यस्मिन्राशौ तपनशशिनोः सैंहिकेयोपमर्दस्तद्राशीनां भवति विषयग्रामपुंसां विनाशः। तस्माच्छान्ति मुनिभिरुदितां तत्पटालोकपूर्वां कुर्याद्दानादिभिरिह नृणां नाशमायात्यनिष्टम् ॥ ४ ॥

## अथ दानम् ।

सुवर्णनिर्मितं नागं सतिलं ताम्रभाजनम्। सदक्षिणं सवस्त्रं च श्रोत्रियाय निवेदयेत् ॥ १ सौवर्णं राजतं वाऽपि बिम्बं कृत्वा स्वशक्तितः। उपरागोद्भवक्लेशच्छिदे विप्राय कल्पयेत् ॥२॥ दानमन्त्रस्तु-तमोमय महाभीम सोमसूर्यविमर्दन। हेमनागप्रदानेन मम शान्तिप्रदो भव ॥ ३ ॥ स्कन्दपुराणे-गोदानं भूमिदानं च स्वर्णदानं विशेषतः। ग्रहणक्लेशनाशाय दैवज्ञाय समर्पयेत् ॥ ४ ॥

## अथ ग्रहणमाहात्म्यम् ।

दानखण्डे-सर्वं भूमिसमं दानं सर्वे ब्रह्मसमा द्विजाः। सर्वं गङ्गासमं तोयं ग्रहणे नात्र संशयः ॥ १ ॥ इन्दोर्लक्षगुणं पुण्यं रवेर्दशगुणं भवेत्। गङ्गादितीर्थसंप्राप्तौ प्रोक्तं कोटिगुणं भवेत् ॥ २ ॥ गङ्गायां पुण्यतीर्थे वा ग्रहणे स्नानमुत्तमम्। कूपे वाप्यां तडागे वा तथैवोद्धृतवारिणा ॥ ३ ॥

## अथ ग्रहणे वर्ज्यम् ।

हारीतस्मृतौ—सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने। सचैलं तु भवेत्स्नानं शृतमन्नं विवर्जयेत् ॥ १ ॥ निबन्धसारे-दर्शे पातेऽर्कसंक्रान्तावुपाकर्मण्युपप्लवे। न स्नायादुष्णतोयेनास्पृश्यस्पर्शेऽत्यये तथा ॥ २ ॥ आदित्येऽह्नि संक्रान्तौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। पारणं चोपवासं च न कुर्यात्पुत्रवान्गृही ॥ ३ ॥ स्मृतिरत्नावल्याम् अन्त्येष्टयां श्वचाण्डालस्पर्शने खरकाकयोः। राहुग्रस्ते विमुक्ते वा कुर्यात्स्नानममन्त्रकम् ॥ ४ ॥ चतुर्विंशतिमते-ग्रहे पर्युषितं चान्नं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्। पीत्वा तथोदकं विप्रः पादकृच्छ्रं समाचरेत् ॥ ५ ॥ पराशरः-नवश्राद्धे च यच्छेषं ग्रहपर्युषितं तथा। दंपत्योर्भुक्तशेषं च भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ ६ ॥ व्रतवाक्यसंग्रहे-चन्द्रसूर्यग्रहे यस्तु स्नानं दानं शिवार्चनम्। न करोति पितुः श्राद्धं स नरः पतितो भवेत् ॥ ७ ॥ चतुर्वर्गचिन्तामणौ-छेद्यं न पत्रं तृणदारुपुष्पं कार्यं न केशाम्बरपीडनं च। दन्ता न शोध्याः परुषं न वाच्यं भोज्यं च वर्ज्यं मदनो न सेव्यः ॥ ८ ॥ वाह्यं न वाजिद्विरदादि किंचिद्दोह्यो न गोजामहिषीसमूहः। यात्रां न कुर्याच्छयनं च तद्वद्ग्रहे निशाभर्तुरहर्पतेश्च ॥ ९ ॥ ज्योतिःप्रकाशे-न च्छेद्यं तृणपुष्पादि न केशाम्बरपीडनम्।

न भोगदोहयात्रादि न निद्रा भोजनं ग्रहे ॥ १० ॥ पैतामहसिद्धान्ते– सर्वैः पटस्थितं वीक्ष्यं खस्थं तैलाम्बुदर्पणे । गुर्विण्या ग्रहणं जातु नावलोक्यं पटं विना ॥ ११ ॥

इति सूर्येन्दुग्रहणनिर्णयः ।

---

## अथ सिंहस्थगुरुनिर्णयः ।

ब्रह्मपुराणे—यस्मिन्दिने सुरगुरुः सिंहराशिगतो भवेत् । तस्मिंस्तु गौतमीस्नानं कोटिजन्माघनाशनम् ॥ १ ॥ ब्रह्माण्डपुराणे—तीर्थानि नद्यश्च सरः समुद्राः क्षेत्राण्यरण्यानि तथाऽऽश्रमाश्च । वसन्ति सर्वाणि च वर्षमेकं गोदातटे सिंहगते सुरेज्ये ॥ २ ॥ ब्रह्मवैवर्ते–अश्वमेधफलं चैव लक्षगोदानजं फलम् । प्राप्नोति स्नानमात्रेण गोदायां सिंहगे गुरौ ॥ ३ ॥ कालनिर्णये–शान्तिकं पौष्टिकं यात्रां प्रतिष्ठोद्वाहपूर्वकम् । न कुर्यात्सर्वमाङ्गल्यं सिंहसंस्थे बृहस्पतौ ॥ ४ ॥ माण्डव्यः–इष्टापूर्तं च चौलादिसंस्कारा वास्तुकर्म च । अन्यानि शुभकर्माणि न कुर्यात्सिंहगे गुरौ ॥ ५ ॥ होराप्रकाशे–रविक्षेत्रगते जीवे जीवक्षेत्रगते गुरौ । न कुर्याच्छुभकर्माणि व्रतोद्वाहमुखानि च ॥६॥ रविक्षेत्रं तु पैत्रर्क्षं गुरुक्षेत्रं च रेवती । मिथः-क्षेत्रगतौ तौ च नश्येतां किल मङ्गलम् ॥ ७ ॥ गर्गः–भागीरथ्युत्तरे तीरे गोदावर्याश्च दक्षिणे । व्रतोद्वाहादिकर्मादि सिंहसंस्थे न दुष्यति ॥८॥ शौनकीयपटले–वरलाभातिकालाभ्यां दुर्भिक्षादेशविप्लवात् । विवाहोऽदक्षिणे तीरे भागीरथ्याश्च दक्षिणे ॥ ९ ॥ गोदावर्युत्तरे तीरे भागीरथ्याश्च दक्षिणे । विवाहादि न कुर्वीत सिंहसंस्थे च वाक्पतौ ॥ १० ॥ सिंहे गुरौ सिंहनवांशकोर्ध्वं गोदावरीदक्षिणकूलजातैः । उद्वाहकालात्ययदोषभीतैः कार्यो विवाहश्च्यवनो ब्रवीति ॥ ११ ॥ कालनिर्णये–सिंहस्थिते सुरगुरावधिमासके च ज्येष्ठे तथाऽऽद्यतनयस्य कुमारिकायाः । कुर्वीत नाकगतनीचगयोर्विलग्नजन्मेशयोश्च निखिलान्यपि मङ्गलानि ॥ १२ ॥ भृगु–सीमन्तजातकादीनि प्राशनान्तानि च क्रमात् । कर्तव्यानि न दोषोऽस्ति पञ्चाननगते गुरौ ॥ १३ ॥ कल्पतरौ—नष्टे शुक्रे तथा जीवे सिंहस्थे च बृहस्पतौ । कुर्याच्चैत्रे स्वदेव्यर्चां प्रत्यब्दं कुलधर्मतः ॥ १४ ॥ ब्रह्मपुराणे—स्नानं जपस्तपो होमः पितॄणां तर्पणादिकम् । गौतम्यामक्षयं विद्यात्सिंहयाते बृहस्पतौ ॥ १५ ॥ यात्राविधाने—स्वेष्टदेव्यर्चनं गेहे विधायाभ्युदयं व्रजेत् । तीर्थं दृष्ट्वा स्तुतिं स्नानं सौरं मृद्भूतिगोमयैः ॥ १६ ॥ शुद्धिः कृच्छ्रोपवासादिस्नानैर्नित्यं च वाक्पतेः । गङ्गायाश्चार्चनं श्राद्धं पिण्डदानं द्विजार्चनम् ॥ १७ ॥

## अथ संकटे प्रवृत्तिमाह ।

वृद्धगर्गः—वृत्रशत्रुसचिवेऽपि सिंहगे मेषगे च तपने करग्रहम् । या लभेत भवतीह साऽचला सौख्यमेति सुभगत्वमक्षयम् ॥ १ ॥ अन्यच्च—सिंहस्थे देवगुरौ मेषस्थे यदि भवेत्सहस्रांशुः । मङ्गलकार्यं कुर्यादिति नारदपराशरौ वदतः ॥ २ ॥ शौनकः—मेषस्थे दिवसकरे सिंहस्थे वज्रपाणिसचिवे च । यस्याः परिणयनमसौ साध्वी सुखसंपदोपेता ॥ ३ ॥ कारिकानिबन्धे—अतीव दुष्टे सुरराजपूज्ये सिंहस्थिते वा द्विजपुङ्गवानाम् । व्रतस्य बन्धः खलु मासि चैत्रे कृतश्चिरायुःसुखसंपदे स्यात् ॥ ४ ॥ मौञ्जीपटले—जन्मभाष्टगे सिंहे नीचे वा शत्रुगे गुरौ । मौञ्जीबन्धः शुभः प्रोक्तश्चैत्रे मीनगते रवौ ॥ ५ ॥ ज्योतिर्विवरणे कश्यपः—हरिनीचारिभागेऽपि व्रतोद्वाहादि मङ्गलम् । न निषिद्धं यदि स्वोच्चे स्वभे वा संस्थितो गुरुः ॥ ६ ॥ भृगुः—सिंहेऽपि भगदेवत्ये गुरौ पुत्रवती भवेत् । अत्यन्तं सुभगा साध्वी धनधान्यसमन्विता ॥ ७ ॥ सप्तर्षिपटले—मघां त्यक्त्वा यदा गच्छेत्फल्गुनीं च बृहस्पतिः । पुत्रिणी धनिनी कन्या सौभाग्यं सुखमेधते ॥ ८ ॥

इति सिंहस्थगुरुनिर्णयः ।

---

## अथ संक्रान्तिनिर्णयः ।

सूर्ये घोरा विधौ ध्वाङ्क्षी भौमवारे महोदरी । बुधे मन्दाकिनी ज्ञेया मन्दाख्या देवमन्त्रिणि ॥ १ ॥ मिश्राभिधा कवेर्वारे राक्षसी स्याद्दिनात्मजे । केचिदाहुरिने ध्वाङ्क्षी घोराऽऽरेऽब्जे महोदरी ॥ २ ॥ उग्रक्षिप्रचरैर्मैत्रध्रुवमिश्राख्यदारुणैः । धिष्ण्यैः संक्रान्तिरर्कस्य घोराद्या क्रमशो भवेत् ॥ ३ ॥ घोरा सुखाय शूद्राणां विशां ध्वाङ्क्षी शुभप्रदा । महोदरी च चोराणां राज्ञां मन्दाकिनी मता ॥ ४ ॥ विप्राणां शुभदा मन्दा पशूनां मिश्रका मुदे । चाण्डालशौण्डिकादीनां स्यादानन्दाय राक्षसी ॥ ५ ॥ पूर्वाह्णे पीडयेद्भूपान्मध्याह्ने तु द्विजोत्तमान् । विशोऽपराह्णेऽस्तमये शूद्रानुपसि गोपकान् ॥ ६ ॥ व्रतिनो हन्ति संध्यायां पिशाचान् रजनीमुखे । अर्धरात्रे रात्रिचरान्परतो नटनर्तकान् ॥ ७ ॥ दिवा चेन्मेषसंक्रान्तिरनर्थकलहप्रदा । रात्रौ सुभिक्षमतुलं संध्ययोर्वृष्टिरुत्तमा ॥ ८ ॥ मृगकर्कालिगोमीनसंक्रान्तिर्निशि सौख्यदा । शेषेषु सप्तसु दिवा व्यत्ययादशुभं भवेत् ॥ ९ ॥ संक्रान्तिर्जायते यत्र भास्करे भूसुते शनौ । तत्र

---

१ क. स वर्षादिषे ।

मासि भयं घोरं दुर्भिक्षावृष्टिगोचरम् ॥ १० ॥ स्यादुत्थितश्च किंस्तुघ्ने शकुनौ कौलवे रविः । संक्रान्तिस्तैतिले नागे प्रसुप्तस्य चतुष्पदे ॥ ११ ॥ निविष्टश्च गरे विष्ट्यां बवे वणिजबालवे । वृष्टयर्घादेः क्रमादिष्टमनिष्टं मध्यमं फलम् ॥ १२ ॥ राजमार्तण्डे–दुर्भिक्षं रोगबाहुल्यमूर्ध्वः संक्रमते रविः । सुप्तः करोति कल्याणमुपविष्टः समं फलम् ॥ १३ ॥ मेषं याति दिवा सूर्यो रात्रौ संक्रमते तुलाम् । तदा नन्दन्ति राजानो जनाश्च विविधोत्सवैः ॥ १४ ॥ प्रद्योतनस्य संक्रान्तिर्यादृशेनेन्दुना भवेत् । तन्मासि तादृशं प्राहुः शुभाशुभफलं नृणाम् ॥ १५ ॥ पन्था भोजनमग्रेर्भोर्मित्राणां दर्शनं तथा । फलानि सप्त संक्रान्तेर्विद्यावस्त्रधनागमाः ॥ १६ ॥ यां तिथिं समनुप्राप्य तुलां गच्छति भास्करः । तस्यामेवार्कसंक्रान्तिर्यावन्मेषं शुभप्रदा ॥ १७ ॥ न्यूनातिचारे दुर्भिक्षं राष्ट्रभङ्गो जनक्षयः । समसप्तैकमर्केन्द्वोः संक्रमे च महर्घता ॥१८॥ संक्रान्तिऋक्षं तिथिवारमिश्रं धान्याक्षराढ्यं त्रिहृतं च शेषम् । एकेन वृद्धिं युगलेन साम्यं शून्येन हानिं मुनयो वदन्ति ॥ १९ ॥ यत्र मासि कुजार्कार्किवारेषु रविसंक्रमः । दुर्भिक्षं जायते तत्र राज्ञां च कलहो मिथः ॥ २० ॥ सिंहो व्याघ्रो वराहश्च खरकुञ्जरमाहिषाः । अश्वोष्ट्रमेषवृषभा नृयानं वाहनं बवात् ॥ २१ ॥ मतान्तरे–गजो वाजिर्वृषो मेषः खरोष्ट्रहरयः क्रमात् । बवादौ वाहनं प्रोक्तं स्थिरेषु वृषभो रविः ॥२२॥ खशवाह्लीकवङ्गेषु संक्रान्तिर्धिष्ण्यवाहना । अन्यदेशेषु तिथ्यर्धवाहनं नारदोऽब्रवीत् ॥ २३ ॥ बवे गरे गजारूढो बालवे वणिजे वृषे । किंस्तुघ्ने शकुनौ कौले वाजिरूढस्तु संक्रमे ॥ २४ ॥ व्याघ्रे विष्ट्यां चतुष्पादे माहिषे नागतैतिले गजे लक्ष्मीर्वृषे स्वस्थं विड्वरं वाजिवाहने ॥ २५ ॥ माहिषे मारणं व्याघ्रे वाहने निश्चितं फलम्[1] । गर्गादिभाषितं चैव कुर्याच्छान्तिं तु बुद्धिमान् ॥ २६ ॥ गर्गः— तन्त्री खड्गः सितः केतुः कुन्तः पद्मं धनुस्तुला । पाशश्चक्रमलातं च कुलिशं चाऽऽयुधं रवेः ॥ २७ ॥ नारदः–भृशुण्डीभिन्दिपालासिदण्डकोदण्डतोमरान् । कुन्तपाशाङ्कुशास्त्रेषून्बिभर्ति करणेष्विनः ॥ २८ ॥ अन्नं च पायसं भैक्षमपूपं च पयो दधि । चित्रान्नं गुडमध्वाज्यं शर्करा बवतो रवेः ॥ २९ ॥ नटक्षत्रियविप्राणां विट्शूद्रयातियोषिताम् । प्रधानान्त्यजपाखण्डिह्लीबानां संक्षयो बवात् ॥ ३० ॥ श्वेतं रक्तं चित्रं पीतं नीलं च कम्बलं क्रमशः । पट्टमजिनं क्षौमं वल्कलमसितं बवाद्वसनम् ॥ ३१ ॥ कस्तूरिका चन्दनकुङ्कुमं मृद्गोरोचनं यावक ओतुघर्मः । निशाञ्जनं चागरुरिन्दुरेभिर्विलेपनं संक्रमणे बवाद्य ॥ ३२ ॥ पुन्नागजातीबकुल्यानि मल्लिका जपा च नीलोत्पलमर्कमाधवी । सचम्पकं पाटलिपुष्प-

१ प. °ग्रम° । प °समम° । २ प 'दनाय दृष्टादि°' । ३ प. °कामहवम° ।

चतुरं ववादिपुष्पाणि च धारणानि ॥ ३३ ॥ प्रवालमुक्तारजतं मणिस्तथा गोमेदकं नीलसुवर्णसीसम् । कांस्यं तथा पित्तलताम्रलोहं ववादिकानामिह भूषणानि ॥ ३४ ॥ आयुधं वाहनाहारौ यज्जातीयनरस्य यत् । विनाशो जायते तस्य वस्त्रादीनां महर्घता ॥ ३५ ॥ यदन्नं संक्रमे प्रोक्तं तदन्नैः प्रीणयेद्द्विजम् । आयुधं यच्च वस्त्राद्यं पूजनीयं जयार्थिना ॥ ३६ ॥

## अथ संक्रान्तिवाहनादिविचारः ।

*मुहूर्तचूडामणौ—ववे सिंहगा देवजातिर्निविष्टा भृशुण्ड्यायुधा शुभ्रवस्त्राऽन्नभक्ष्या । सुबाला च कस्तूरिकालिप्तभाला गले चंपपुन्नागमालां दधाना ॥ १॥ बालवे भिन्दिपालायुधा कुङ्कुमालिप्तभाला निविष्टा कुमारी तथा । जातीपुष्पं च पीतांशुकं बिभ्रती पायसं चात्ति शार्दूलिकाभौतिका ॥ २ ॥ कौलवे कोलगा व्यालजातिर्हरिद्वर्णवासा विकेशा सुभेक्षाशिनी । चन्दनालिप्तभालाऽसिहस्तोर्ध्वगा वाकुलां पुष्पमालां करे बिभ्रती ॥ ३ ॥ तैतिले पक्षिजातिः खरस्था भवेत्केतकीपुष्पमाला च दण्डायुधा । मृत्तिकालिप्तभाला च पीताम्बराऽपूपभक्ष्या च सुप्ता वयोमध्यमा ॥ ४ ॥ गरे निविष्टा सुधनुर्धरित्री प्रौढा पशुर्वारणवाहना च । सुरक्तवस्त्राऽत्ति पयो विरोचनाश्चिता युता बिल्वकपुष्पमालया ॥ ५ ॥ सतोमरा माहिषगा प्रगल्भा श्यामाम्बरा स्याद्वणिजे निविष्टा । दधिप्रिया यावकलिप्तभाला मृगी घृतार्कामलपुष्पमाला ॥ ६ ॥ विष्ट्यां वृद्धा विप्रजातिर्निविष्टा वाजिस्था स्याल्लोतुपर्माढ्यभाला । दूर्वामालाढ्या विचित्रान्नभक्ष्या हस्ते कुन्ताख्यायुधा कृष्णवस्त्रा ॥ ७ ॥ स्यात्क्षत्रिया कुक्कुरगाऽतिवृद्धा पाशायुधा रात्रिविलिप्तभाला । विचित्रवस्त्रा शकुनौ सपत्रा चोर्ध्वस्थिता सद्गुडराशिभक्ष्या ॥ ८ ॥ चतुष्पदे मेषगताऽतिवन्ध्या सकम्बला कज्जललिप्तभाला । वैश्या च सुप्ता मधु भक्षमाणाऽङ्कुशायुधा मल्लिकया समेता ॥ ९ ॥ अस्त्रं दधाना वृषवाहना च सुप्ता सुपुत्रा सितवस्त्रयुक्ता । सपाटला शूद्रभवाऽऽज्यभक्ष्या विलिप्तभालाऽगरुणा हि नागे ॥ १० ॥ बाणायुधा कुक्कुटगोर्ध्वगा सा कृष्णाम्बरा संकरजेन्दुलिप्ता । प्रवज्ययाऽऽढ्या जपया समेता किंस्तुघ्नके चात्ति सुशर्करां च ॥ ११ ॥ निष्यर्थजानि संक्रान्तिवाहनानि यथाक्रमात् । भयोनिवाहनं चङ्गवाह्लीके विषये खशे ॥ १२ ॥

## अथ पुण्यकालः ।

संक्रान्तिसमयः सूक्ष्मो दुर्लक्ष्यः पिशितेक्षणैः । तस्य योगादधश्चोर्ध्वं त्रिंश-

---

* इतो द्वादश श्लोकाः पुस्तकान्तरे न सन्ति ।

न्नाड्यस्तु कीर्तिताः ॥ १ ॥ अर्वाक्षोडश नाड्यस्तु परतश्चैव षोडश । पुण्यकालोऽर्कसंक्रान्तेः स्नानदानादिकर्मसु ॥ २ ॥ त्रिंशत्कर्कटसंक्रान्तौ पूर्वतः पुण्यनाडिकाः । मकरे तूत्तराः पुण्याश्चत्वारिंशच्च नाडिकाः ॥ ३ ॥ आसन्नं संक्रमे पुण्यं दिनार्धं स्नानदानयोः । नाड्यः संनिहितास्तत्र तास्ताः पुण्यतमाः स्मृताः ॥ ४ ॥ संपूर्णं चार्धरात्रे चेद्यदि संक्रमते रविः। तदा दिनद्वयं पुण्यं मुक्त्वा मकरकर्कटौ ॥ ५ ॥ स्थिरे विष्णुपदं कर्किदक्षिणायनमादितः । मृगे सौम्यायनं द्व्यङ्गे षडशीतिमुखं पुरः ॥ ६ ॥ घटेऽजे विषुवं मध्ये पुण्यदानाद्यनन्तकम् । प्रागर्धरात्रात्पूर्वेद्युः पुण्यं पश्चात्परं दिनम् ॥ ७ ॥ अहःसंक्रमणे कृत्स्नमहः पुण्यं प्रकीर्तितम् । रात्रौ संक्रमणे भानोर्व्यवस्था सर्वसंक्रमे ॥८॥ सूर्यास्तमनसंध्यायां यदि सौम्यायनं भवेत् । तदहः पुण्यकालः स्यात्परतश्चेत्परेऽहनि ॥ ९ ॥ सूर्यस्योदयसंध्यायां यदि याम्यायनं भवेत् । तदोदयादहः पुण्यं पूर्वतः पूर्वतो यदि ॥ १० ॥ यद्यर्धरात्र एव स्यात्संपूर्णः संक्रमो रवेः । तदा दिनद्वयं पुण्यं परतश्चेत्परेऽहनि ॥११॥ मनुस्मृतौ—*ग्रहणोद्वाहसंक्रान्तियात्रार्तिप्रसवेषु च । स्नानदानादिकं कार्यं रात्रावपि न दुष्यति ॥१२॥ ग्रहणेऽयनसंक्रान्तौ विवाहे पुत्रजन्मनि । काम्यव्रते च मरणे रात्रौ स्नानाद्यमुत्तमम् ॥१३॥ अर्धास्तमनात्संध्या स्याद्घटिकात्रयसंमिता । तथैवार्धोदयात्प्रातर्घटिकात्रयसंमिता ॥ १४ ॥ प्रागर्धरात्रात्पूर्वाह्नो विषुवद्विष्णुपादयोः । षडशीतिमुखे चैवं परतश्चेत्परेऽहनि । पश्चात्पराहः संक्रान्तिः षडशीतौ विपर्ययात् ॥ १५ ॥ कालविवेके—निशः प्राक्प्रहरात्पूर्वं यदि सौम्यायनं भवेत् । तदा तस्मिन्दिने पुण्यं परतश्चेत्परेऽहनि ॥ १६ ॥ यादृशेनेन्दुना भानोः संक्रान्तिस्तादृशं फलम् । नरः प्राप्नोति तद्राशौ शीतांशोः साध्वसाधु वा ॥ १७ ॥ रविसंक्रमणे पुण्ये यो न स्नातीह मानवः । सप्तजन्मान्तरं रोगी दुःखभाङ्निर्धनो भवेत् ॥ १८ ॥ स्मृतिचन्द्रिकायां—संक्रान्त्यां यानि दत्तानि हव्यकव्यानि मानवैः । तानि तस्य ददात्यर्कः सप्तजन्मसु निश्चितम् ॥ १९ ॥ भारते—दत्तानि यानि दानानि हव्यकव्यानि संक्रमे । अपामिव समुद्रस्य तेषामन्तो न विद्यते ॥ २० ॥ आदित्यपुराणे—शतमिन्दुक्षये दानमुपरागे त्वनन्तकम् । षडशीत्यां सहस्रं तु विषुवत्यां तथैव च ॥२१॥ विषुवे शतसाहस्रं कोटिघ्नं दक्षिणायने । शतकोटिगुणं पुण्यं जायते तूत्तरायणे॥२२॥

---

* घ. पुस्तके नायं श्लोकः ।

---

१ क. °मौदाना° । २ घ विष्णुपदा नृ° ।

## अथ पुण्यकालविशेषः ।

निरंशः सविता यत्र तद्दिने स्नानमाचरेत् । दानं चाप्यक्षयं प्रोक्तं रहस्यं मुनिभिः स्मृतम् ॥ १ ॥ पुण्यं बहुतरं सूर्ये निरंशे मुनयो विदुः । अंशकं प्राप्य दानानि नैव गृह्णाति भास्करः ॥ २ ॥ नारदः—आक्रान्तगतयो राश्यो-रन्तरालमहर्पतेः । विज्ञेयं बिम्बमध्यं तदहः सम्यङ्महत्फलम् ॥ ३ ॥ कालनिर्णये—कर्केऽतीतं मृगे पूर्वं रात्रौ चैव कदाचन । सौरव्रतं न कुर्वीत यदीच्छेत्सुतजीवितम् ॥ ४ ॥ यस्मिन्दिने निरंशः स्यात्संक्रुतोऽर्कोऽयनां-शकैः । तद्दिनं च महत्पुण्यं रहस्यं मुनिभिः स्मृतम् ॥ ५ ॥ संक्रान्त्युत्तरभो-गिन्यो यदि स्युर्यामिनीमुखे । सदा पूर्वदिनं पुण्यं स्नानदानादिकर्मसु ॥ ६ ॥ * संपूर्णे चार्धरात्रे चेद्यदा संक्रमते रविः । तदा दिनद्वयं पुण्यं स्नानदानादि-कर्मसु ॥ ७ ॥ कार्मुकं च परित्यज्य मृगं याति दिवाकरः । प्रदोषे चार्धरात्रे वा सदा भोगः परेऽहनि ॥ ८ ॥

## अथ पुण्यकालानयनम् ।

सिद्धान्तशिरोमणौ—षष्टिघ्नबिम्बं ग्रहभुक्तिभक्तं संक्रान्तिनाड्योऽखिलधर्मकृत्ये । रवेस्तु ताः पुण्यतमा ग्रहः स्वसंक्रान्तिगो मित्रफलं विधत्ते ॥ १ ॥ भानोर्गतिः स्वदशभागयुतोदिता स्याद्बिम्बं विधोस्त्रिगुणिता युगशैलभक्ताः । व्यङ्ग्वीपवः सखरणा ऋतवस्त्रिभागयुक्ताद्रयो नव कुजार्खिलबाधिकाशाः ॥ २ ॥ बिम्ब-कलाः—रवेः ३३, इन्दोः ३३, भौमस्य ४ । ४५, ज्ञस्य ६ । १५, गुरोः ७ । २०, कवेः ९ । ०, शनेः ५ । २० । ग्रहसंक्रान्तौ प्राकृतः पुण्यकाल उभयत्र । र० १६, चं० १ । १३, मं० ४, बु० ३, बृ० ४, शु० ४, श० ६, रा० ८, के० ८ । होलिकाग्रहणभानुकायने मेतदाहमिति पञ्चकं स्मृतम् । तत्परेऽहनि करोति मृत्युकृत्सर्वकर्मसु विगर्हिता ( तं ) बुधैः ॥ ३ ॥ गर्गः—यस्य जन्मर्क्षमासाद्य रविसंक्रमणं भवेत् । तन्मासाभ्यन्तरे तस्य वैरक्ले-शधनक्षयाः ॥ ४ ॥ तगरसरोरुहपत्रे रजनीसिद्धार्थलोध्रसंयुक्तैः । स्नानं जन्मर्क्षगते रविसंक्रमणे नृणां शुभदम् ॥ ५ ॥

## अथ संक्रान्तिस्नानम् ।

देवीपुराणे—कुङ्कुमं रोचनामांसीमुराचन्दनवालकम् । हरिद्राचन्द्रसंयुक्तं मेषे

---

* पद्यमिदं चतुर्थचरणव्यत्यासेनपूर्वमुक्तम् ( श्लो० ३८ )

---

१ ग. ग्रह.नां° । ग. ग्रह.नां° । २ क. °तार्धनाऽस्य बिम्ब ।

स्नानं महाफलम् ॥ १ ॥ कुङ्कुमैलासुसिद्धार्थरोचनाघनसारकैः । सितगोमूत्रसंयुक्तैर्वृषे स्नानं सुखार्थदम् ॥ २ ॥ उशीरं पद्मकं कुष्ठं रोचनाग्रन्थिपर्णकम् । कुङ्कुमागरुसंयुक्तं मिथुने राज्यदं मतम् ॥ ३ ॥ रोचना वालकं मुस्ता मुरा शैलेयचन्दनम् । हरिद्राकुष्ठसंयुक्तं कर्किसंक्रमणे शुभम् ॥ ४ ॥ पत्रकं रोचकं मुस्ता मांसीत्वगथ चन्दनम् । सिंहे स्नानं सुराध्यक्ष राज्यायुःपुत्रवर्धनम् ॥ ५ ॥ हरिद्रा वालकं कुष्ठमांसी चन्दनरोचना । कन्यास्नानं प्रकर्तव्यं रतिसंतानवर्धनम् ॥ ६ ॥ रोचना तगरुः कुष्ठं पद्मकोशीरपत्रकम् । हरिद्रावालसंयुक्तं तुलायां स्नानमुत्तमम् ॥ ७ ॥ प्रियङ्गुस्फटिकामांसीपत्रकं रोचनाऽगरुः । मुस्ताकुष्ठसमं स्नानं वृश्चिके राज्यदं मतम् ॥ ८ ॥ प्रवालमौक्तिकं कुष्ठं रोचना घनपद्मकम् । सुरामांसीसमं स्नानं धनुःसंक्रमणे शुभम् ॥ ९ ॥ रोचनावालकं कुष्ठं पद्मकोशीरपत्रकम् । हरिद्रावालसंयुक्तं मकरे सर्वकामदम् ॥ १० ॥ ग्रन्थिपर्णं तथैला च केसरं जातिपत्रकम् । रोचनासहितं स्नानं कुम्भे पुत्रायुराज्यदम् ॥ ११ ॥ कर्पूरं फलसूक्ष्मैलामांसीचन्दनपद्मकम् । वालकं सघनोशीरत्वचं मीने सुखावहम् ॥ १२ ॥ द्वादशैते समाख्याताः स्नानतः स्युः सुरार्चिताः । अलक्ष्मीनाशना धन्या महापातकनाशनाः (?) ॥ १३ ॥

## अथ संक्रान्तिफलम् ।

संक्रान्तेर्ग्रहणर्क्षं वा जन्मन्युभयपार्श्वयोः । नेष्टं ततः षट् च शुभाः पर्यायेण पुनः पुनः ॥ १ ॥ वसिष्ठः—हानिश्चेदर्कसंक्रान्तिजन्मपूर्वर्क्षतस्त्रिपु । अर्थलाभस्तथा षट्सु शेषेष्वेवमुपप्लवे ॥ २ ॥ त्रिकं षट्कं त्रिकं षट्कं त्रिकं षट्कं पुनः पुनः । पन्था भोगो व्यथा वस्त्रं हानिश्च विपुलं धनम् ॥ ३ ॥ दर्शान्तसूर्यमुक्तर्क्षाभिर्जीवाख्यं च भत्रयम् । एकादशर्क्षे विंशद्वं मङ्गले निधनप्रदम् ॥ ४ ॥ तिलोपरि लिखेच्चक्रं त्रिकोणं त्रित्रिशूलकम् । तत्र हेम विनिक्षिप्य दद्याद्दोषापनुत्तये ॥ ५ ॥ वसिष्ठः—शूलदोषापनुत्त्यर्थं विजीवस्यापनुत्तये । स्वर्णशूलं द्विजे दद्यात्तिलवस्त्रसमन्वितम् ॥ ६ ॥ पूर्वसंक्रान्तिनक्षत्रात्परसंक्रान्तिभं यदि । द्वित्रिसंख्यासमर्घं स्यात्तुर्यपञ्चमहर्घता । षष्ठे लोका भ्रमन्तीह गृहीत्वा खर्परं करे ॥ ७ ॥

## अथ दानानि ।

सौम्यायने नूतनभाण्डदानं गोग्रासमन्नं तिलपात्रमर्थम् । गुडाज्यतैलोर्णसुवर्णभूमिं गोवस्त्रवाजिप्रभृतींश्च दद्यात् ॥ १ ॥ फलभोजनपाथेयरूप्यालोकनदी-

पर्कः । नत्यर्यजपमालार्कस्नानैः सूर्यं व्रतैर्यजेत् ॥ २ ॥ तत्र भाण्डमन्त्रः—रविसंक्रमसंभूते संक्रान्ते पापहारिणि । नमस्ते सवितुः प्रीत्यै भाण्डानि प्रददाम्यहम् ॥ ३ ॥

इति सूर्यसंक्रान्तिनिर्णयः ।

## अथ जन्मराशिनिर्णयः ।

विवाहे सर्वमाङ्गल्ये यात्रादौ ग्रहगोचरे । जन्मराशेः प्रधानत्वं नामराशिं न चिन्तयेत् ॥ १ ॥ देशे ग्रामे ग्रहे युद्धे सेवायां व्यवहारके । नामराशेः प्रधानत्वं जन्मराशिं न चिन्तयेत् ॥ २ ॥ काकिण्यां वर्गशुद्धौ च वादे द्यूते स्वरोदये । मन्त्रे पुनर्भूवरणे नामराशेः प्रधानता ॥ ३ ॥ राजमार्तण्डः—विवाहघटनं चैव लग्नजं ग्रहजं फलम् । नामभाच्चिन्तयेत्सर्वं जन्म न ज्ञायते यदा ॥ ४ ॥ दीपिकायां—जन्म न ज्ञायते येषां तेषां नाम्नो गवेष्यते । चक्रेऽवकहडे भांशे तन्नाडी कैश्चिदग्निभात् ॥ ५ ॥ यदा स्त्रीजन्मसंपत्तिर्वरजन्म न लभ्यते । स्त्रियाः स्याज्जन्मतः शुद्धिर्नाम्नो मेलक्रिया तदा ॥ ६ ॥ पटलसारे—जन्मज्ञानेऽपि चैकस्य द्वयोर्नाम्नोर्भमेलकः । चिन्त्यस्तत्रैव जन्मर्क्षाद्वीक्ष्यं लग्नेन्दुजं बलम् ॥ ७ ॥

इति जन्मराशिनिर्णयः ।

## अथ नामविचारः ।

स्वरशास्त्रे—प्रसुप्तो येन जागर्ति येनाऽऽगच्छति शब्दितः । तन्नाम्नश्चाऽऽदिमो वर्णो ग्राह्यस्तस्मात्तन्निर्णयः ॥ १ ॥ न प्रोक्ता ङञणा वर्णा नामादौ सन्ति ते नहि । चेद्भवन्ति तथा ज्ञेया गजडास्ते यथाक्रमम् ॥ २ ॥ खपौ सशौ बवौ चैव ज्ञेयाविति परस्परम् । संयोगाक्षरजे नाम्नि ग्राह्यं तत्राऽऽदिमाक्षरम् ॥ ३ ॥ बहूनि यस्य नामानि नरस्य स्युः कथंचन । तस्य पश्चाद्भवं नाम ग्राह्यं स्वरविशारदैः ॥ ४ ॥ यवनमतं—यत्र स्थितः शीतकरो नराणां स्याज्जन्मराशिं तमुदाहरन्ति । यथायथा येषु खगा विलग्नाः स्थिता न ते सप्त कुतो भवन्ति ॥ ५ ॥ अतोऽष्टराशिर्मनुजोऽत्र सर्वः प्रोक्तानि तेभ्यश्च शुभाशुभानि । फलानि तेषां तु वियोगयोगाद्यदष्टवर्गोत्थफलं स्फुटं स्यात् ॥ ६ ॥ भौमादौ लग्नभं योज्यं राजकार्येऽर्कभं तथा । चन्द्रभं सर्वकार्येषु सङ्ग्रामादौ च भौमभम् ॥ ७ ॥

---

१ क. °तैर्भजे° । २ ख. घ. शार्ङ्गधरः । ३ क. °वाद्य° ।

विद्याभ्यासे बुधर्क्षं च विवाहे गुरुभं स्मृतम् । शुक्रयुग्भं प्रयाणे च दीक्षायां शनिभं बुधैः ॥ ८ ॥

इति नामविचारः ।

---

## अथ जन्ममासादीनां निर्णयः ।

श्रीपतिः–जन्ममासि न च जन्मभे तथा नैव जन्मदिवसेऽपि कारयेत् । आद्यगर्भदुहितुः सुतस्य वा ज्येष्ठमासि न तु जातु मङ्गलम् ॥ १ ॥ शार्ङ्गधरः—जन्मर्क्षे सति दारिद्र्यं वैरं जन्मतिथावपि । जन्ममासे च दौर्भाग्यं जन्मलग्नं शुभावहम् ॥ २ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे–केचिच्चान्द्रं वर्जयन्ति जन्ममासं महर्षयः । मङ्गले सावनं केचित्सौरमासं तु केचन ॥ ३ ॥ दर्शान्तो वैदिको मासो राकान्तः स्मार्त उच्यते । पौराणो हरिघस्राद्यः सौर उत्पत्तिपूर्वकः ॥ ४ ॥ तत्तत्कर्मणि स एव मासो ग्राह्यः ।

### अथ व्यवस्थाविकल्पः ।

दोषापवादे––तपतीकृष्णयोर्मध्ये मासश्चान्द्रः प्रकीर्तितः । कृष्णाया दक्षिणे तीरे जन्मतो जन्ममासकः ॥ १ ॥ अन्येषु सर्वदेशेषु सौरो व्रतविवाहयोः । अन्नाशादिषु सर्वत्र ग्राह्यो मासस्तु जन्मतः ॥ २ ॥ अर्धभोगजन्मभे विवाहकर्म शर्मदम् । मध्यदेशयाम्ययोर्जगाद बादरायणः ॥ ३ ॥

### अथ जन्ममासप्रवृत्तिः ।

गृहकौमुद्यां–जन्ममासि विपरीतपक्षके वासरे दिननिशोर्विपर्यये । जन्मभे च दलपर्यये तथा मङ्गलानि सकलानि कारयेत् ॥ १ ॥ भोजमार्तण्डे–जन्ममासि तिथौ भे च विपरीतदले सति । कार्यं मङ्गलमित्याहुर्गर्गभार्गवशौनकाः ॥ २ ॥ जन्ममासि निषेधेऽपि दिनानि दश वर्जयेत् । आरभ्य जन्मदिवसाच्छुभाः स्युस्तिथयः परे ॥३॥ संकीर्णत्वेऽपि कालस्य जन्ममासाद्युपस्थिते (तौ) । सद्यो विधाय तत्पूजां शुभं कुर्यादशङ्कितः ॥ ४ ॥

### अथ जन्मनक्षत्रविचारः ।

जन्मनक्षत्रगश्चन्द्रः प्रशस्तः सर्वकर्मसु । क्षौरभेषजउद्वाहकर्तनेषु च तं त्यजेत् ॥ १ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे–जन्मभं कृषिनृपाभिषेचने भूषणे नगरगेहकर्मणि । आधिपत्यभुजि मौञ्जिबन्धने पुंविवाह उदितं शुभं बुधैः ॥ २ ॥

---

१ स. प. °यः । स्तनपाल.यां—जन्म° ।

विवाहे जन्मभं स्त्रीणां वर्जनीयं प्रयत्नतः । नैव पुंसामिह प्राहुर्ज्योतिर्नयविदो बुधाः ॥ ३ ॥ नारदः—पट्टबन्धनचौलान्नप्राशने चोपनायने । शुभदं जन्मनक्षत्रमशुभं त्वन्यकर्मणि ॥ ४ ॥ चूडाबन्धनशब्देन केशबन्धो न तु क्षौरकर्म । राजमार्तण्डः—वसन्तसमये दद्याद्व्दे गर्भाष्टमेऽष्टमे । मेखलां जन्ममासेऽपि जन्मभे वा तिथौ तथा ॥ ५ ॥ जन्मकालोत्थिता त्याज्या शुभे चान्द्रमसी कला । नेतरेत्याहुराचार्या वराहमिहिरादयः ॥ ६ ॥ + शार्ङ्गधरः—मेधावी मेखलादाने जन्ममासेऽथ जन्मभे ॥ ७ ॥ वराहः—जन्मोदये जन्मानि तारकासु मासेऽथ वा जन्मदिनेऽथ भे वा । व्रतेन विप्रो न बहुश्रुतोऽपि विद्याविशेषैः प्रथितः पृथिव्याम् ॥ ८ ॥ भृगुः—वेदार्थपालनपरः खलु जन्ममासे ऋक्षेऽथ जन्मनि बहुक्रतुमान्बटुः स्यात् । इति । विवाहेऽपि फलं तथा—जन्मभे जन्मलग्ने वा मासे वा तारकेऽह्नि वा । जन्मांशकेऽपि वोढायाः सुखमाहुर्मुनीश्वराः ॥९॥ वसिष्ठः—जन्मर्क्षे जन्ममासे वा ऊढा कन्या पतिव्रता॥१०॥ भृगुः—जन्ममासेऽथ जन्मर्क्षे जन्मलग्नेऽथ जन्मनि । उद्वाहेषु च नारीणां प्रतिष्ठा महती भवेत् ॥ ११ ॥ यवनः—जन्ममासेऽथ पुत्राढ्या धनाढ्या जन्मभोदये । जन्मभे वा भवेदूढा वृद्धा संततिवर्धिनी ॥ १२ ॥ भागुरिः—जन्मोदये जन्मानि तारकासु मासे तथा जन्मनि जन्मभे वा । ऊढाऽङ्गना नैकविधानि धत्ते सौख्यानि भोगं खलु बान्धवानाम् ॥ १३ ॥ अतो बहुवाक्यपर्यालोचनया ज्येष्ठापत्यस्यैव जन्ममासादिवर्जनमुक्तम् । अत एव नारदः—न जन्ममासे जन्मर्क्षे न जन्मदिवसेऽपि च । नाऽऽद्यगर्भसुतस्याथ दुहितुर्वा करग्रहः ॥ १४ ॥ माण्डव्यः—ज्येष्ठे ज्येष्ठस्य गर्भस्य मासं चान्द्रं परित्यजेत् । दर्शावसानमखिलं सर्वमङ्गलकर्मसु ॥ १५ ॥ ज्येष्ठे न ज्येष्ठयोः कार्यं नूनार्योः पाणिपीडनम् । तयोरेकतरे ज्येष्ठे ज्येष्ठमासेऽपि कारयेत् ॥ १६ ॥ विवाहे स्थूलसूक्ष्माभ्यां जन्मर्क्षं यदि जायते । तत्त्याज्यं यदि चेद्भिन्नं तज्जन्मर्क्षं शुभावहम् ॥ १७ ॥

इति जन्मनक्षत्रविचारः ।

---

## अथ सिद्धान्तमीमांसाध्यायः ।

ज्योतिर्विवरणे—श्रौतस्मार्तानि कर्माणि पुराणोक्तानि यानि च । ज्योतिःप्रोक्ते स्फुटे काले कुर्युस्तत्फलकाङ्क्षिणः ॥ १ ॥ विवाहे जातके प्रश्ने यात्रा-

१ ख. घ. 'मिव प्रा°' ।

+ इतः परं त्रयोदशश्लोकपर्यन्त ग्रन्थो घ. पुस्तके नाऽस्ति ।

वस्तुव्रतादिषु । ज्योतिःशास्त्रफलं सर्वं प्रस्फुटं द्युचराश्रयम् ॥ २ ॥ तत्तु सम्यक्प्रकारेण प्रवक्तुं नैव शक्यते । सिद्धान्तानां तु सर्वेषां साम्यं नास्ति मिथो यतः ॥ ३ ॥ स्वयंभूरिनो रोमशः पौलिशाख्यो वसिष्ठश्च सिद्धान्तवक्तार एते । महान्तोऽत्र पाराशराख्यश्च तद्वद्बुधैरुच्यते सांप्रतं चाऽऽर्यसंज्ञः ॥ ४ ॥

## अथास्य निर्णयः ॥

योगा ग्रहाणां ग्रहणं रवीन्द्वोस्तिथेस्तु बीजं विधुदर्शनं च । नित्योदयास्तौ खलु खेटभानां युतिश्च तेषां खचरोदयास्तौ ॥ १ ॥ प्रत्यक्षसमया ह्येते येन पक्षेण यत्र वै । स्फुटं दृक्तुल्यतां यान्ति तेन सर्वविनिश्चयः ॥ २ ॥ ज्योतिर्विवरणे— यात्रोद्वाहप्रभृतिषु फलं स्पष्टखेटाश्रयं यत्तस्मात्तत्साधन इह बुधैर्भाषितेऽपि क्वचित्ते । स्पष्टा न स्युः परमपुरुषांशाश्चिराल्लक्ष्यचारास्तस्मात्साध्या बहुविधमतैर्नैकपक्षाभिमानः ॥ ३ ॥ यस्मिन्देशे यत्र काले येन दृग्गणितैक्यकम् । दृश्यते तेन पक्षेण कुर्यात्तिथ्यादिनिर्णयम् ॥ ४ ॥ तथा च पीयूषतरङ्गिण्याम् । अस्त्युच्चावचता क्षितेरत इमे स्वस्थानसंस्था ग्रहाः क्वापि क्वापि भवन्ति दूरनिकटे दृक्चक्रचारादपि । दृश्यन्ते न समास्ततो बहुविधोक्तानां मतानां भवेद्यः सिद्धान्तदृगैक्यतः स्वनगरे तेनाखिलं साधयेत् ॥ ५ ॥ सौरभाष्ये—संसाध्य स्पष्टतरं बीजं नलिकादियन्त्रेभ्यः । तत्संस्कृतास्तु सर्वे पक्षाः साम्यं भजन्त्येव ॥ ६ ॥ ब्रह्मसिद्धान्तभाष्ये—ध्यानग्रहोपदेशाद्बीजं ज्ञात्वा सुदैवज्ञः । तत्संस्कृतग्रहेभ्यः कर्तव्यौ निर्णयादेशौ ॥ ७ ॥

## अथ सामान्यत आधुनिकमतमुच्यते ।

साम्ये सौरः क्षये ब्रह्मा तिथिवृद्धौ पराशरः । सर्वकर्मसु कः श्रेयान्विष्णुधर्मे तु योऽधिकः ॥ १ ॥ ह्रासत्वाच्च विधेर्भुक्तेः शीघ्रत्वात्कालनिर्णयः । कपक्षेणान्यथाऽऽर्येण निर्णयोऽत्र विधीयते ॥ २ ॥ ज्योतिर्विवरणे—पितामहादयः पुण्याः क्रियाकालविनिर्णयः । स्मृतिरार्यभटो न स्यात्तस्माच्च तदुपेक्षितः(?) ॥ ३ ॥ ज्योतिःशास्त्रमिदं पुण्यं प्राहुर्नयविदो बुधाः । स्वतः प्रामाण्यमस्यास्ति सत्यं प्रत्यक्षतो यतः ॥ ४ ॥ आर्षेयं पौरुषं वाऽपि शास्त्रं दृक्सिद्धिमाश्रयेत् । यथोत्तमाज्जघन्याद्वा प्राप्तं रत्नं द्विजं भजेत् ॥ ५ ॥

---

१ प. °थाऽर्येन साम्येऽर्येण वि° । २ क. °भटो° ।

किं तेनापि सुवर्णेन कर्णघातं करोति यत् । तथा किं तेन शास्त्रेण यन्न प्रत्यक्षतः स्फुटम् ॥ ६ ॥

इति सिद्धान्तमीमांसाध्यायः ।

---

## अथ संदेहे विचारः ।

संहिताप्रदीपे— एकार्थरूढानि[१] वचांसि यानि मिथो विरुद्धार्थपराणि सन्ति । न तानि मिथ्या मुनिभाषितत्वाद्विद्वान्विदध्याद्विषयव्यवस्थाम् ॥ १ ॥ ज्योतिर्निबरणे—स्थविरत्वे च बालत्वे शुक्रगुर्वोर्न साम्यता । पक्षकालांशादिकृसप्तपञ्चत्रिदिवसैर्मता ॥ २ ॥ सप्ताहं त्र्यहमेकाहं वर्ज्यं ग्रहणतः शुभे । गण्डान्ते पादवस्वब्धिद्विनाडिकमिति स्मृतम् ॥ ३ ॥ पाते त्र्यहमथैकाहं वर्जयेत्स्थितिनाडिकाः। श्राद्धे त्रिदिनमेकाहं निरंशेऽर्केऽष्ट नाडिकाः ॥ ४ ॥ जन्ममासि तिथौ भे च विपरीतदलादिकम् । कृष्णपक्षे दशाहं च पक्षार्धं पञ्चकं द्व्यहम् ॥ ५ ॥ केचिद्वदन्ति जन्मर्क्षं व्रतोद्वाहादिके शुभम् । अशुभं केचिदाचार्याः प्राहुश्चन्द्रमसं तथा ॥६॥ कालहोरा त्रिधा प्रोक्ता लग्नहोरा द्विधा तथा । त्रिप्रकारस्तु द्रेष्काणो द्विभेदस्तु नवांशकः ॥ ७ ॥ द्विविधः कुलिकः प्रोक्तो वामवेधस्तथैव च । एते चान्ये विकल्पाः स्युः कीर्तिता मुनिसत्तमैः ॥ ८ ॥ तत्संदेहनिरासार्थं व्यवस्था क्रियतेऽधुना । यतो वाक्यानि सर्वाणि प्रमाणान्येव नो मृषा ॥ ९ ॥ ज्योतिर्विवरणे - दीर्घव्यापी विवाहादौ योज्यो मध्यो गमादिषु । आशुकार्ये पराधीने लघुपक्षोऽपि शोभनः ॥ १० ॥ संकीर्णत्वेऽपि कालस्य लग्ने ग्रहबलान्विते । चित्तोत्साहे नृपाज्ञायां जघन्योऽपि शुभायते ॥ ११ ॥ तिथ्यंशं वा नृपांशं वा कुलिकं सर्वथा त्यजेत् । श्राद्धे त्र्यहं प्रयाणादावेकाहं करपीडने ॥ १२ ॥ त्र्यहं पाते विवाहादौ यात्रादौ तद्दिनं त्यजेत् । अन्येषु स्वल्पकार्येषु विवर्ज्यास्तिथिनाडिकाः ॥ १३ ॥ समस्तः कृष्णपक्षस्तु त्याज्यो मौञ्जीनिबन्धने । दलं जन्मफलादेशे विवाहादौ च पञ्चकम् ॥ १४ ॥ अनन्यगतिकत्वे च सर्वकार्येऽपि च द्व्यहम् । संभवे सकलं त्याज्यं लघुपक्षमसंभवे ॥ १५ ॥ जातके कालहोरा च ग्राह्यार्कसंभवा । अन्येषु सर्वकार्येषु तिस्रो ग्राह्या यथासुखम् ॥१६॥ गर्गः—समस्तगुणदोषाणां विकल्पा ये प्रकीर्तिताः । प्रमाणमेव ते सर्वे नोपेक्ष्या हेतुभिर्बुधैः ॥ १७ ॥ विकल्पोक्तगुणो ग्राह्यो दोषस्त्याज्यः प्रयत्नतः । युगपद्गुणदोषौ चेत्तदा मिश्रफलं भवेत् ॥ १८ ॥ ज्योतिर्विवरणे—दीर्घव्यापिनि काले तु स्वल्प-

---

१ क. °ढानि पदानि स°

कालः पुनः स्मृतः । स एवोत्कृष्टफलदो ज्ञेयो नैवाऽव्यवाधकः ॥ १९ ॥ न्यायमीमांसायां--न हिंस्यात्सर्वभूतानि व्यापकोऽयं निषेधकः । न जातु ब्राह्मणं हन्यादुत्कृष्टधर्मसूचकम् ॥२०॥तथातथाऽत्र विज्ञेया विकल्पेष्वखिलेष्वपि । व्यवस्था प्रोक्तदोषाणां फलनिर्देशकैर्बुधैः ॥ २१ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे--बहुव्यापकमाचार्यैः सामान्यं समुदाहृतम् । अल्पव्यापी विशेषस्तु स एव बलवानिह ॥ २२ ॥ यद्विशेषेण सामान्यं हन्यते तद्विलुप्यते । नास्ति यत्र विशेषत्वं सामान्यं तत्र संश्रयेत् ॥ २३ ॥

इति संदेहे विचारः ।

---

## अथ जातकलग्नयोः प्राधान्यविचारः ।

संहिताप्रदीपे—प्रायेण वारर्क्षतिथीन्दुवीर्यैर्माङ्गल्यकर्माणि समाचरन्ति । विवाहमेकं तु विलग्नशुद्ध्या महत्त्वमस्यैव हि शोभनेषु ॥ १ ॥ सुखानि दुःखानि च सर्वदेहिनां भवन्ति पूर्वाचरितैः स्वकर्मभिः । विलग्नशुद्धिः किमितीह मृग्यते न केनचित्पूर्वकृतं निवार्यते ॥ २ ॥ यज्जातकेन प्रसवेन दृष्टं तावत्प्रमाणं किमिहोदयेन। लग्नप्रमाणं यदि जातकं किं न निश्चयोऽस्माद्द्वयमप्यकिंचित् ॥३॥ सर्वाणि कार्याणि शुभाशुभानि करोतु दैवात्तु फलस्य सिद्धिः । संपद्यते तस्य तथोदयाय शुद्धिर्यथा यस्य सदैव संपत् ॥ ४ ॥ नारदः—स्वस्थे नरे सुखासीने यावत्स्यन्दति लोचनम् । तस्य त्रिंशत्तमो भागस्त्रुटिरित्यभिधीयते ॥ ५ ॥ त्रुटेः सहस्रभागोऽयं लग्नकालः स उच्यते । ब्रह्माऽपि तं न जानाति किं पुनः प्राकृतो जनः॥ ६ ॥ स कालोऽप्यन्यकालो वा पूर्वकर्मवशाद्भवेत् । निमित्तमात्रं दैवज्ञस्तद्वशान्न शुभाशुभम् ॥ ७ ॥ संहिताप्रदीपे—इत्युक्तिरेषाऽऽगमनिन्दकानां न श्रद्धेया(?) विदुषा कदाचित् । शास्त्राणि पूर्वं रचितानि यानि महर्षिभिस्तानि कथं मृषा स्युः ॥ ८ ॥ यथा पुराणागमसंहिताः स्युर्धर्मादिसिद्धयै बहवः प्रकाराः । प्रकारभेदोऽयमपीति किंचिद्वदन्ति पृच्छा जननोदयादि (देः)॥९॥न देशकालव्यवसायदर्जं भवेत्फलाप्तिः सति चापि दैवे । तथा फले सत्यपि जातकस्य भवेत्फलाप्तिस्तिथिभोदयाद्यैः ॥ १० ॥ यद्यत्फलं जन्मनि जातकोक्तं विरोधिना तस्य फलेन युक्ता । निहन्ति लग्नेन्दुविशुद्धिराद्यं फलाविरोधेऽपि फलद्वयाप्तिः ॥ ११ ॥ यथाऽऽप्तवाक्यादपहाय दुष्टं मार्गं गतः साधु यथा सुखी स्यात् । तथा विरुद्धेऽपि च जातकोक्ते फले शुभाप्तिस्तनुभादिवीर्यात् ॥ १२ ॥ यत्पूर्वजन्मनि कृतं सदसच्च कर्म होरा तदीयफलपाकमिह व्यनक्ति । यज्जात-

र्कोदितफलादपरे सदादि तत्प्रत्ययः शकुनलग्ननिमित्तभावैः ॥ १३ ॥ श्रेष्ठं फलं शस्तदशाविपाके संशोधिते मध्यममष्टवर्गे । तिथीन्दुलग्नादिबले कनिष्ठं माङ्गल्यकार्येष्विति गर्ग आह ॥ १४ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—दुष्टं जन्मफलं यत्र कर्मलग्नं शुभं भवेत् । मिश्रं तत्र समादेश्यं बुधैर्मृत्युफलं विना ॥ १५ ॥ प्रस्तुतस्य विरोधेन ग्राम्यः सर्वोऽप्युपक्रमः । वीणायां वाद्यमानायां वेदोद्गारो न जायते ॥ १६ ॥ यथा तथैव दैवज्ञा जनाश्च स्वार्थमोहिताः । कर्मलग्ने प्रवर्तन्ते जन्मभ्रपराङ्मुखाः ॥ १७ ॥ ज्योतिर्विवरणे—प्रमाणे जन्मकालोत्थं फलं सर्वत्र सर्वदा । कर्मलग्नफलं तत्र तदधीनं समादिशेत् ॥ १८ ॥ जन्मजे कर्मजे वाऽपि फले दुष्टे प्रकुर्वते । कार्यान्ते दुःखमायान्ति शकुन्ता इव पाशगाः ॥ १९ ॥ दैवं जन्मफलं ज्ञेयं कर्माङ्ग्. फलमुद्यमः । उभयोः सानुकूलत्वे सर्वं सिध्यति नान्यथा ॥ २० ॥ केचिद्दैवात्स्वभावाच्च कालात्पुरुषकारतः । तथेदं जातकं सम्यग्भाग्यज्ञानप्रकाशकम् ॥ २१ ॥

इति जन्मलग्नकर्मलग्नयोः प्राधान्यविचारः ।

---

## अथ शास्त्रार्थशिष्टाचारप्रामाण्यविचारः ।

शास्त्रार्थाद्बलवाञ्छिष्टाचारोऽत्र बहुसंमतम् । शिष्टाचारस्य कालेन विलुप्ताः श्रुतयो यतः ॥ १ ॥ श्रीपतिः—न शास्त्रदृष्ट्या विदुषा कदाचिदुल्लङ्घनीयाः कुलदेशधर्माः । मूलं हि तेषां च्युतवेदशाखाधुयानधर्मः स्थितिभङ्गदोषः ॥२॥ कारिकायां—प्रमाणं ग्रामवचनं विवाहादौ तथाऽत्यये । यतः परम्परायातं धर्मं विदन्ति ते खलु ॥ ३ ॥ गृह्यसूत्रे—ग्रामवचनं च कुर्युरिति सकलवृद्धाः स्त्रियः पूर्वं पुरुषानुष्ठीयमानं परम्परायातं सदाचारं स्मरन्ति । संहिताप्रदीपे—शास्त्रोत्थितोऽर्थोऽपि न च प्रमाणं स्त्रीशूद्रगोपा अपि यं वदन्ति । यथा हि भाण्डोत्कपणेन रात्रौ भवेत्पशूनां किल मूर्ध्नि पीडा ॥ ४ ॥ स्मृत्यन्तरे—सोऽनुष्ठेयो भवेद्धर्मो यो लोकश्रुतिसंमतः । शास्त्रशिष्टविरुद्धस्तु धर्मस्त्याज्यो बुधैः सदा ॥ ५ ॥ कुलस्य देशस्य च चित्तवृत्तिर्न खण्डनीया विदुषा कदाचित् । यो लोकशास्त्रानुमतः स धर्मो लोको बलीयाननयोर्विरोधे ॥ ६ ॥ न्यायमीमांसायां भट्टाचार्यैरुक्तं—तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना नासावृषिर्यस्य मतं न भिन्नम् । धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः

---

१ ख °र्वोऽप्ययः क्रमात् । घ. °र्वो पजन्मनः । २ घ. प्रवर्तते । ३ क. °यैत्र स्वयः प्रमाणम् ।

॥ ७ ॥ लोकविद्विष्टमस्वर्ग्यं धर्ममप्याचरेन्न तु । शिष्टाचारविरुद्धत्वादातिथ्ये गोवधो यथा ॥ ८ ॥

इति शास्त्रार्थशिष्टाचारप्रामाण्यविचारः ।

---

## अथ प्रथमार्तवप्रकरणम् ।

नारदः—अमारिक्ताष्टमीषष्ठीद्वादशीप्रतिपत्स्वपि । परिघस्य तु पूर्वार्धे व्यतीपाते च वैधृतौ ॥ १ ॥ संध्यासूपप्लवे विष्टयामशुभं प्रथमार्तवम् । एकार्गले मृतिं विद्यात्संध्याकाले तु पुंश्चली ॥ २ ॥ आद्यर्तौ सुभगा नारी प्रतिपत्सु रजस्वला । द्वितीया भाग्यजननी तृतीयायां सुतान्विता ॥ ३ ॥ चतुर्थ्यां विधवा नारी पञ्चम्यां धनदायिनी । षष्ठयां च क्लेशभाक् चैव सप्तम्यां धनवर्धिनी ॥ ४ ॥ अष्टम्यां राक्षसी नारी नवम्यां पापवर्धिनी । दशम्यां प्रीतिकरी स्यादेकादश्यां सुतान्विता ॥ ५ ॥ द्वादश्यां दुर्भगा नारी त्रयोदश्यां हिरण्यदा । चतुर्दश्यां पुंश्चली स्यात्पौर्णमास्यां सुपुत्रिका ॥ ६ ॥ यदि भद्रा न जायेत दर्शे स्याच्चौरिका ध्रुवम् । आदित्ये विधवा नारी सोमे चैव मृतप्रजा ॥ ७ ॥ अङ्गारे चाऽऽत्महानिश्च बुधे कन्यां प्रसूयते । पुत्रिणी गुरुवारे च कन्यां शुक्रे प्रसूयते । शनौ तु पुंश्चली नारी प्रथमर्तौ विदुर्बुधाः ॥ ८ ॥ त्रयस्त्रीणि त्रिकं त्रीणि पञ्चकं सप्तकं त्रिकम् । उत्तराषाढामारभ्य प्रथमं त्वृतुलक्षणम् ॥ ९ ॥

### अथ पृथक्फलानि ।

सहिता धनपुत्राभ्यामश्विन्यां चेद्रजस्वला । दोषयुक्ता भरण्यां तु कृत्तिकायां सुपुत्रिणी ॥ १ ॥ रोहिण्यां धनसंयुक्ता मृगे स्यात्सुतशालिनी । आर्द्रायां भर्तृनिरता निर्वैरा च भवेत्सती ॥ २ ॥ पतिव्रता पुनर्वसौ पुष्ये च व्यालभद्वये । पूर्वाद्वये च युवती मारिका च करद्वये ॥ ३ ॥ स्वातीद्वये धनवती विधवा स्यात्परद्वये । मूलद्वये नित्ययुक्ता सुभगा स्यात्परद्वये ॥ ४ ॥ धनिष्ठायां स्वैरिणी च सती शतभिषग्द्वये । अहिर्बुध्न्यद्वये नारी सुभगा भर्तृतत्परा ॥ ५ ॥ पूर्वाह्णे चाशुभं स्यादशुभमपरतो मध्यमं मध्यभागे रात्रौ चैव द्विपक्षे शुभमिति कथयन्त्युत्तराषाढभाद्रौ । सप्तस्वार्द्रादिषु स्यादशुभमिति वदन्त्येव हस्तादिकेषु मैत्राद्यौ भर्तृहीना प्रथमरजसि यद्भावि तत्सर्वमुक्तम् ॥ ६ ॥ रोहिण्यार्द्राग्निमित्रामरपतिदिनकृत्सौम्यभाग्याहिर्बुध्न्यपौष्णाप्याश्विष्ठार्यमनिर्ऋतिमघावारुणेष्वङ्गनायाः । माङ्गल्यं सर्वसौख्यं भवति नवरजोदर्शने त्वन्यथात्वं

मेष्वन्येष्वेव दीना पतिविरहवती सर्वसौभाग्यहीना ॥ ७ ॥ आद्यतौं दुर्भगा नारी विष्कम्भे चेद्रजस्वला । वन्ध्या चैवातिगण्डे च शूले शूलवती भवेत् ॥ ८ ॥ गण्डे तु पुंश्चली नारी व्याघाते चाऽऽत्मघातिनी । वज्रे च स्वैरिणी प्रोक्ता पाते च पतिघातिनी ॥ ९ ॥ परिघे मृतवन्ध्या च वैधृतौ पतिमारिणी । शेषाः शुभावहा योगा यथानामफलप्रदाः ॥ १० ॥ पुत्रवती शुभं प्राप्ता पूर्वाह्णे तु रजस्वला । मध्याह्ने तु शुभप्राप्तिः स्वैरिणी चापराह्णके ॥ ११ ॥ संध्ययोरुभयोर्वेश्या निशायां विधवा तथा । पूर्वरात्रौ च वन्ध्या स्याद्दुर्भगा सर्वसंधिषु ॥ १२ ॥ बवे पुष्पवती नारी वन्ध्या वा विधवा भवेत् । बालवे सुत्रिणी नारी कौलवे प्रमदा भवेत् ॥ १३ ॥ तैतिले संमतवती गरे नारी विनश्यति । नष्टप्रजा वणिक्संज्ञे विष्ट्यां वन्ध्या धनोज्झिता ॥ १४ ॥ शकुनौ च चतुष्पादे नारी वैधव्यमाप्नुयात् । नागे न रमते नारी किंस्तुघ्ने विधवा भवेत् ॥ १५ ॥ प्रथमर्तौ मधौ नारी विधवा भवति ध्रुवम् । वैशाखे धनपुत्राढ्या ज्येष्ठे रोगान्विता भवेत् ॥ १६ ॥ आषाढे च मृतापत्या श्रावणे च धनान्विता । भाद्रे तु दुर्भगा नारी आश्विने च तपस्विनी ॥ १७ ॥ ऊर्जेऽप्यायुष्मती नारी मार्गशीर्षे बहुप्रजा । पुष्ये तु पुंश्चली नारी माघे पुत्रसुतान्विता ॥ १८ ॥ फाल्गुने श्रीमती साध्वी क्रमान्मासफलं स्मृतम् । आत्मघ्नी भ्रूणहा मेषे वृषे पुत्रवती भवेत् । द्वन्द्वे कन्याप्रसूर्नारी मृतापत्या च कर्किणि ॥ १९ ॥ सिंहे वैधव्यमायाति कन्यायां स्त्रीप्रसूर्भवेत् । तुलायां बहुपुत्राढ्या दुष्कर्मरताऽलिनि ॥ २० ॥ चापे पुत्रधनाढ्या स्यान्मकरे सुखिनी भवेत् । सकृत्प्रजावती कुम्भे मीने चाल्पप्रजा भवेत् ॥ २१ ॥ सुभगा श्वेतवस्त्रा च रोगिणी रक्तवाससा । नीलाम्बरधरा नारी विधवा प्रथमार्तवे ॥ २२ ॥ भोगिनी पीतवस्त्रा च दृढवस्त्रा पतिव्रता । दुर्भगा शीर्णवस्त्रा च सुभगा चारुवस्त्रिणी ॥ २३ ॥ देवस्थाने पितृस्थाने निन्द्यस्थानेऽन्यवेश्मनि । पुष्पवत्याः फलं न स्यान्मार्गे चाण्डालवेश्मनि ॥ २४ ॥ प्रथमर्तौ फलं स्त्रीणामुच्यते रजसा तु तत् । सुभगा पुत्रसंयुक्ता शुक्लवर्णे सदार्तवे ॥ २५ ॥ शशशोणितसंकाशे यद्वा रक्तकसंनिभे । पुत्रकन्याप्रसूतिः स्यान्नीले तु स्यान्मृतप्रजा ॥ २६ ॥ कर्बुरे म्रियते सा च पिङ्गले च मृतप्रजा । कृष्णे तु विधवा नारी रजस्येवं विनिर्दिशेत् ॥ २७ ॥ शोणिते बिन्दुमात्रे तु स्वैरिणी चाल्पशोणिता । वरा मधुस्रवा स्यात्तु दुर्भगा बहुशोणिता ॥ २८ ॥ रक्ते, रक्तो भवेत्पुत्रः कृष्णे च बहुपुत्रिका । पिच्छिले च भवेद्वन्ध्या काकवन्ध्या च

पाण्डुरे ॥ २९ ॥ पीते च स्वैरिणी प्रोक्ता गुञ्जाभे सुभगा भवेत् । सिन्दुराभे भवेत्कन्या रजःशोणितलक्षणम् ॥ ३० ॥ गुरुशुक्रयुते ऋक्षे प्रेक्षिते चात्र पुष्पजे। निघ्नं फलं समस्तं तु नाशमेति शुभं भवेत् ॥ ३१ ॥ आरोग्यसौभाग्यवती च सौम्यवर्गेषु सा पुष्पवती च कन्या । दुःखामयानर्थविवादशीला वर्गेष्वसौम्येषु च दुर्मतिः स्यात् ॥ ३२ ॥ पुष्पं दृष्टं निन्दिते भे यदि स्याच्छान्तिं कुर्यादङ्गनानां च पूर्वम् । तत्संयोगं वल्लभा वर्जयेयुर्यावद्भूयः शस्तभे चैव दृष्टम् ॥ ३३ ॥ शेषं विवाहवत्सर्वं पुष्पे लग्नादि चिन्तयेत् ॥ ३४ ॥ अलंकृतामार्तवसंयुतां च गेहे शुभे दीपयुते निवेशयेत् । तिलान्गुडापूपयुतं च पूगं स्त्रीभिश्च दद्याद्द्विजसत्र पूजयेत् ॥ ३५ ॥ आरोपयेदिमां तत्र पादुके शोभने ततः । पुण्याहं वाचयित्वा तु ब्राह्मणान्पूजयेत्सुधीः ॥ ३६ ॥ त्रिरात्रं तु सकृद्भुक्त्वा स्मृतिप्रोक्तैर्व्रतैर्युता । चतुर्थे संगवेऽतीते स्नात्वा स्त्री धर्ममाचरेत् ॥ ३७ ॥

इति प्रथमरजोदर्शनफलम् ।

---

## अथ रजस्वलाशान्तिः ।

निन्द्यर्क्षतिथिवारादौ यत्र पुष्पं प्रदृश्यते । शान्तिं समाचरेत्तत्र वक्ष्यमाणां शुभाप्तये ॥ १ ॥ गोमयेनोपलिप्ते तु स्थण्डिले समलंकृते । ग्रहाणां मण्डलं तत्र तद्वर्णेन कारयेत् ॥ २ ॥ मण्डलस्येशदिग्भागे व्रीहिराशिं विनिक्षिपेत् । भाराचलप्रमाणं तु वस्त्रेण परिवेष्टयेत् ॥ ३ ॥ तस्योपरि न्यसेत्पद्मं दले काद्यष्टवर्गकम् । स्वराणां विन्यसेत्तत्र द्वे द्वे कोणे यथाक्रमम् ॥ ४ ॥ कर्णिकायां न्यसेद्बीजं हृल्लेखामन्त्रसंयुतम् । तस्योपरि न्यसेत्कुम्भं वस्त्रेण परिवेष्टितम् ॥ ५ ॥ गुडूचीबिल्वापामार्गपत्रपालाशसर्षपान् । दूर्वापल्लवसंयुक्तां सर्वौषधिशतावरीम् ॥ ६ ॥ सहदेवीं विष्णुक्रान्तां हरिद्राचूर्णसंयुताम् । पञ्चपल्लवसंयुक्ते पञ्चरत्नसमन्विते ॥ ७ ॥ तस्मिन्कुम्भे समावेश्य इन्द्राणीं मन्त्रमेव च । सवस्त्रप्रतिमां चैव तस्मिन्नावाहयेत्सुधीः ॥ ८ ॥ सर्वान्देवान्समभ्यर्च्य ह्युपचारैश्च शोभनैः । आपोहिष्ठादिभिर्मन्त्रैरब्लिङ्गैर्मन्त्रयेत्ततः ॥ ९ ॥ समुद्रज्येष्ठां त्र्यम्बकं च विष्णुं रुद्रं जपेत्पुनः । नमस्कारं ततः कृत्वा ह्याचार्यं सम्यगर्चयेत् ॥ १० ॥ ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्यात्तत्कुम्भेनाभिषेचयेत् । सवस्त्रप्रतिमां गां च ह्याचार्याय निवेदयेत् ॥ ११ ॥ प्रच्छादनपटं दद्यात्ततः शान्तिमपच्छति । यावच्छान्तिं प्रकुर्वीत तावत्तां नावलोकयेत् ॥१२॥ नारदः—निन्द्य-

---

१ क. 'क्षितं' स्थाने पुष्पजम् ।

र्क्षतिथिवारेषु यस्याः पुष्पं प्रदृश्यते। तत्र शान्तिं प्रकुर्वीत घृतदूर्वातिलाक्षतैः ॥ १३ ॥ प्रत्येकमष्टशतं [तु] गायत्र्या जुहुयात्ततः। स्वर्णगोभूतिलान्दद्यात्सर्वदोषापनुत्तये। भर्ता तत्राभिगमनं वर्जयेच्छुभदर्शनात् ॥ १४ ॥

इति रजस्वलाशान्तिः।

---

## अथ गर्भाधानम्।

नारदः—रजोदर्शनतोऽस्पृश्या नार्यो दिनचतुष्टयम्। ततः शुद्धाः क्रियास्वेताः सर्ववर्णेष्वयं विधिः ॥ १ ॥ वसिष्ठः—पौष्णद्वये दुष्टभसार्पपैत्र्यशक्रद्वये नैधनजन्मभेषु। उत्पातपापग्रहदूषितेषु न कार्यमाधानमनिष्टलग्ने ॥ २ ॥ उपप्लवे वैधृतिपातयोश्च विष्टयां दिवा पारिघपूर्वभागे। संध्यासु सर्वास्वपि मातृपित्रोर्मृतेऽह्नि पत्नीगमनं विवर्ज्यम् ॥ ३ ॥ दिनेषु युग्मेषु च वक्ष्यमाणयोगैः सुतार्थी स्वसतीमुपेयात्। दिनेष्वयुग्मेषु च कन्यकार्थी हित्वा च गण्डासितथिलग्नभागान् ॥ ४ ॥ ओजर्क्षांशे लग्नगे वीर्ययुक्ते जीवेन्द्वर्के राजराश्यंशसंस्थैः। पुंजन्म स्याद्व्यत्यये कन्यका स्यान्मिश्रैः षण्ढो द्व्यङ्गगैर्द्वित्रिजन्म ॥ ५ ॥ ओजांशकर्क्षाद्विषमर्क्षसंस्थः पुंजन्मकारी रविसूनुरेकः। विचार्य कार्यं पुरुषो ग्रहाणां वाच्योऽथ पुनस्त्वथ कन्यका वा ॥ ६ ॥ चन्द्रार्कशुक्रक्षितिजैः स्ववर्गगैर्बृहस्पतौ धर्मविलग्नपुत्रगे। योगेष्वपत्यं भवतीति निश्चयादमी च योगा विफला विजीविनाम् ॥ ७ ॥

इति गर्भाधानम्।

---

## अथ पुंसवनम्।

नारदः—प्रसिद्धविषये गर्भे तृतीये वाऽथ मासि च। कुर्यात्पुंसवनं कर्म सीमन्तं च यथा तथा ॥ १ ॥ जातूकर्ण्यः—द्वितीये वा तृतीये वा मासि पुंसवनं भवेत्। व्यक्ते गर्भे भवेत्कार्यं सीमन्तेन सहाथवा ॥ २ ॥ मासप्राधान्येन विहितत्वात्सुरगुरुशुक्रमौढ्ये मलमासेऽपि कर्तव्यम्। तदाह बृहस्पतिः—मासप्रयुक्तकार्येषु मूढत्वं गुरुशुक्रयोः। न दोषकृत्तदा मासो लक्षणैर्बलवानिति ॥ ३ ॥ यमः—गर्भे वार्धुषिके भृत्ये श्राद्धकर्मणि मासिके। सपिण्डीकरणे नित्ये नाधिमासं विवर्जयेत् ॥ ४ ॥ वराहः—हस्तो मूलः श्रवणः पुनर्वसुर्मृगशिरस्तथा पुष्यः। पुंसंज्ञ-

---

१ ख. घ. 'ष्पातिरुद्र'। २ क. 'मेषु'। ३ क. विजीविनाम्।

केपु कार्येष्वेतानि शुभानि धिष्ण्यानि ॥ ५ ॥ *कारिकायां–पुंनक्षत्राणि चैतानि तिष्यो हस्तः पुनर्वसुः । अभिजित्प्रोष्ठपाचैव अनूराधाश्वियुक्श्रुतिः ॥६॥ वसिष्ठः–सार्पाञ्चतुष्कं वसुवारिरुद्रत्वाष्ट्रत्रयं विश्वयमान्त्यशक्राः । स्त्रीलिङ्गताराः श्रवणेन्दुमूलतारा न पुंसः पुरुषाः परे स्युः ॥ ७ ॥ बृहस्पतिः—कुलीरं मिथुनं कन्यां हित्वा शेषाः शुभावहाः । अनुक्तमपि राशौ तु शुभं स्याच्छुभवीक्षिते ॥ ८ ॥ कन्यायां न प्रशंसन्ति शुभदृष्टे युतेऽपि वा॥९॥नृसिंहः–रिक्तां च पर्व नवमीं त्यक्त्वा पुंसवने शुभाः॥१०॥वसिष्ठः–अष्टमस्थानगाः सर्वे नेष्टाः स्युस्ते शुभावहाः । एवं सम्यङ् निरीक्ष्यैव कुर्यात्पुंसवनक्रियाः ॥ ११ ॥ बृहस्पतिः—गुरुशुक्रबुधेन्दूनां द्रेष्काणदिवसांशकाः । तेपामुदयहोरा च पुंसवेऽतिशुभावहा ॥ १२ ॥ कारिकायां–तृतीये गर्भसंस्कारो मासि पुंसवनं भवेत् । आद्यगर्भो न विज्ञातस्तृतीये मासि वै यदि । चतुर्थे मासि कर्तव्यमाद्यगर्भे स्मृतो विधिः ॥ १३ ॥

इति पुंसवनम् ।

---

## अथ सीमन्तोन्नयनम् ।

नारदः—चतुर्थे मासि षष्ठे वाऽप्यष्टमे वा तदीश्वरे । बलोपपन्ने दंपत्योश्चन्द्रताराबलान्विते ॥ १ ॥ कार्ष्णाजिनिः–गर्भलम्भनमारभ्य यावता प्रसवस्तदा । सीमन्तोन्नयनं कुर्याच्छङ्खस्य वचनं यथा ॥ २ ॥ मासश्चात्र सौरसावनयोरन्यतरो गृह्यते । कालविधाने–चतुर्थपष्ठाष्टममासभाजि सौरेण गर्भे प्रथमं विधेयम् । सीमन्तकर्म द्विजभामिनीनां मासेऽष्टमे विष्णुबलिं च कुर्यात् ॥३॥ वसिष्ठः–चतुर्थे सावने मासि षष्ठे वाऽप्यथवाऽष्टमे ॥ ४ ॥ नारदः–अरिक्तापर्वदिवसे कुजजीवार्कवासरे । तीक्ष्णमिश्रोग्रवर्ज्येपु पुंलग्ने पुंनवांशके ॥ ५ ॥ शुद्धेऽष्टमे जन्मलग्नात्तयोर्लग्ने न नैधने । शुभग्रहयुते दृष्टे पापखेटयुतेक्षिते ॥ ६ ॥ पञ्चेष्टिके चतुर्भिर्वा ईष्टेऽर्केन्द्वीज्यपूजकैः । स्त्रीणां तु प्रथमे गर्भे सीमन्तोन्नयनं शुभम् ॥७॥ कारिकायां–पुंनक्षत्रे सिते पक्षे त्वन्वाधानादि पूर्ववत् । पुंनक्षत्राणि चैतानि तिष्यो हस्तः पुनर्वसुः ॥ ८ ॥ अभिजित्प्रोष्ठपाचैव ह्यनुराधाश्वयुक् तथा । ऋक्षस्य मध्यमे पादद्वये कर्मेदमिष्यते ॥ ९ ॥ नारदः–शुभग्रहेषु धीधर्मकेन्द्रेष्वरिभवत्रिपु । पापेपु सत्सु चन्द्रेऽन्त्यनिधनाद्यरिवर्जिते ॥ १० ॥ क्रूरग्रहाणामेकोऽपि लग्नाद्न्त्यात्मजाष्टगः । सीमन्तिनीं वा तद्गर्भं बली हन्ति न संशयः ॥ ११ ॥ नृसिंहः–

---

* श्लोकद्वयं खपुस्तकयोर्नास्ति ।

---

१ प. विष्टिव° । २ ल. °इष्टेर्केंद्विजपू°

लग्नादष्टमराशीशः केन्द्रगः शुभवीक्षितः । यद्यदष्टमभस्योक्तं दोषमाशु व्यपोहति ॥ १२ ॥ वसिष्ठः—मासे मासे मासपादिग्रहाणां शान्तिं कुर्याच्छान्तिवाक्यैर्जपैश्च । होमैर्दानैः सज्जनानां च वाक्यैर्गर्भं सम्यग्रक्षयेत्पुत्रकामी ॥१३॥ दीपिकायां—चतुर्थाद्यष्टपर्यन्तं मासि पुंनामभे सकृत् । सीमन्तोन्नयनं स्त्रीणां गर्भस्य प्रतिगर्भकम् ॥ १४ ॥ हारीतः—सकृत्संस्कृतसंस्काराः सीमन्तेन द्विजैः स्त्रियः । यं यं गर्भं प्रसूयन्ते स सर्वः संस्कृतो भवेत् ॥ १५ ॥

इति सीमन्तोन्नयनम् ।

## अथ जातकर्म ।

तस्मिञ्जन्ममुहूर्तेऽपि सूतकान्तेऽथवा शिशोः । जातकर्म च कर्तव्यं पितृपूजनपूर्वकम् ॥ १ ॥ वसिष्ठः—संतर्प्य देवान्सपितृद्विजांश्च सुवर्णगोभूतिलधान्यवस्त्रैः । गुडाज्यरौप्यैर्लवणैश्च होमैः रक्षोघ्नमन्त्रैः सह जातकर्म ॥ २ ॥ अतीतकार्याण्यखिलानि तानि कार्याणि सौम्यायनगे दिनेशे । सिते गुरौ वाऽप्यथ दृश्यमाने तदुक्तपश्चाङ्गदिनेऽप्यखण्डे ॥ ३ ॥ क्षिप्रैश्चरैर्ध्रुवैर्मित्रैर्द्वादशे प्रथमेऽह्नि वा । केन्द्रे गुरौ भृगौ कार्यं जातकर्म सनातनम् ॥ ४ ॥ वसिष्ठः—जातमात्रकुमारस्य मुखमस्यावलोकयेत् । पिता ऋणाद्विमुच्येत पुत्रस्य मुखदर्शनात् ॥ ५ ॥ जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचैलं च विधीयते ॥६॥ तच्च शीतोदकेन कार्यम् । जाबालिः—कुर्यान्नैमित्तिकं स्नानं शीताद्भिः काम्यमेव च ॥ ७ ॥ एतद्रात्रावपि कार्यम् । वसिष्ठः—पुत्रजन्मनि यज्ञे च तथा संक्रमणे रवेः । राहोश्च दर्शने स्नानं प्रशस्तं नान्यथा निशि ॥ ८ ॥ सूतके च समुत्पन्ने पुत्रजन्म यदा भवेत् । कर्तुस्तात्कालिकी शुद्धिः पूर्वाशौचेन शुध्यति ॥९॥ वसिष्ठः—श्रुत्वा जातं पिता पुत्रं सचैलं स्नानमाचरेत् । उत्तराभिमुखो भूत्वा नद्यां वा देवखातके ॥ १० ॥ रात्रावुदकादिगमनाशक्तौ विशेषमाह सांख्यायनः—दिवा यदाहृतं तोयं कृत्वा स्वर्णयुतं तु तत् । रात्रिस्नाने तु संप्राप्ते स्नायादनलसंनिधौ ॥ ११ ॥

इति जातकर्म ।

## अथ नामकर्म ।

नारदः—सूतकान्ते नामकर्म विधेयं स्वकुलोचितम् । नाम पूर्वं प्रशस्तं स्यान्मङ्गल्यैः सुसमाक्षरैः ॥ १ ॥ व्यासः—नामधेयं दशम्यां तु केचिदिच्छन्ति सूरयः । द्वादश्यामाहुरन्ये तु मासे पूर्णे तथा परे ॥ २ ॥ अष्टादशेऽहनि तथा

वदन्त्यन्ये मनीषिणः ॥२॥ बृहस्पतिः—द्वादशे दिवसे वाऽपि जन्मतो दिवसे शुभे । षोडशे विंशतौ चैव द्वाविंशे वर्णतः क्रमात् ॥ ३ ॥ प्राप्तकालेऽपि विशेषमाह गर्गः—व्यतीपाते च संक्रान्तौ ग्रहणे वैधृतावपि । श्राद्धं विना शुभं नैव प्राप्तकालेऽपि मानवः ॥ ४ ॥ अमासंक्रान्तिविष्ट्यादौ प्राप्तकालेऽपि नाऽऽचरेत् ॥ ५ ॥ अत्राहनीति दिवसविधाने नामकर्मणि गुरुशुक्रयोर्मूढता नास्ति । बृहस्पतिः—यस्यां क्रियायां सर्वोक्तः कालो मासैर्दिनैरपि । तस्यां न दोषो मूढत्वं वक्रं वा ( मौढ्यं वा वक्रत्वं ) जीवशुक्रयोः ॥ ६ ॥ पूर्वाह्णः श्रेष्ठ इत्युक्तो मध्याह्नो मध्यमः स्मृतः । अपराह्णं च रात्रिं च वर्जयेन्नामकर्मणि ॥ ७ ॥ नारदः—देशकालोपघाताद्यैः कालातिक्रमणं यदि । अनस्तगे भृगावीज्ये तत्कार्यं चोत्तरायणे ॥ ८ ॥ चरस्थिरमृदुक्षिप्रनक्षत्रे शुभवासरे । चन्द्रतारावलोपेते दिवसेऽपि शिशोः पितुः ॥ ९ ॥ नृसिंहः—सायाह्ने दुष्टयोगे च शनिभूमिजवारयोः । रिक्ता पर्वाष्टमी विष्टिः किंस्तुघ्नं च विशेषतः ॥ १० ॥ एतद्दोषैर्युते काले रात्रावपि न कारयेत् । छिद्रां पूर्णिमां नवमीं हित्वा शेषाः शुभावहाः ॥ ११ ॥ शकुन्यादीनि विष्टिं च नामकर्मणि वर्जयेत् । शुभनक्षत्रयोगेषु शुभेषु शुभमीरितम् ॥ १२ ॥ बृहस्पतिः—शुभवारे च षड्वर्गे शुभानां नामसंपदे । राशयश्च स्थिराः श्रेष्ठा द्विस्वभावाः शुभैर्युताः ॥ १३ ॥ नृसिंहः—लग्नाद्व्ययाष्टमे सर्वे न शुभा नामकर्मणि । केन्द्रत्रिकोणगाः सौम्या व्यये सर्वे त्वशोभनाः ॥ १४ ॥ शुभलग्ने शुभांशे च नैधने शुद्धिसंयुते । लग्ने त्वनैधने सौम्यैः संयुते वा निरीक्षिते ॥ १५ ॥ संग्रहकारः—देवालयगजाश्वानां वृक्षाणां वापीकूपयोः । सर्वोपकरणानां च चिह्नानां योषितां नृणाम् ॥ १६ ॥ काव्यादीनां कवीनां च पश्वादीनां विशेषतः । राजप्रसादसंज्ञानां नामकर्म विशिष्यते ॥१७॥ गर्गः—मासनाम गुरोर्नाम दद्याद्बालस्य वै पिता । कृष्णोऽनन्तोऽच्युतश्चक्री वैकुण्ठोऽथ जनार्दनः ॥१८॥ उपेन्द्रो यज्ञपुरुषो वासुदेवस्तथा हरिः । योगीशः पुण्डरीकाक्षो मासनामान्यनुक्रमात् ॥ १९ ॥

इति नामकर्म ।

---

## अथ खट्वारोहविधिः ।

बृहस्पतिः—खट्वारोहस्तु कर्तव्यो दशमे द्वादशेऽपि वा । षोडशे दिवसे वाऽपि द्वाविंशे दिवसेऽपि वा ॥ १ ॥ भविष्ये—अभीष्टपुण्यदिवसे चन्द्रतारावलान्विते । मृदुध्रुवक्षिप्रभे तु माता वा कुलयोषितः ॥ २ ॥ योगशायिहरिं स्मृत्वा प्राक्शीर्षं

---

१ क. 'भ्रऽन्त्वर्नं' ।

विन्यसेच्छिशुम् ॥ ३ ॥ करत्रये वैष्णवरोहिणीषु दितिद्वये चाऽऽश्विनकध्रुवेषु । कुर्याच्छिशूनां नृपतेश्च तद्वदान्दोलनं वै सुखिनो भवन्ति ॥ ४ ॥ *त्रयोदशस्तु कन्याया न नक्षत्रविचारणा । अन्यस्मिन्दिवसे चेत्स्यात्तिर्यगास्ये प्रशस्यते ॥५॥

इति खट्वारोहणविधिः ।

## अथ दुग्धपानविधिः ।

नृसिंहः—एकत्रिंशे दिने चैव पयः शङ्खेन पाययेत् । अन्नप्राशननक्षत्रे दिवसोदयराशिषु ॥ १ ॥ नक्षत्रे मासि संपूर्णे जातर्क्षे तु विशेषतः । मासान्ते दुग्धपानं स्यात्पश्चात्काले सुशोभने ॥ २ ॥ उत्तरात्रयहस्ताश्च त्वाष्ट्रवैष्णववासवाः । पौष्णाश्विन्यौ मघा स्वातिर्वारुणादितिजीवभम् ॥ ३ ॥ रोहिण्यन्दवमैत्राश्च दुग्धपाने शिशोः शुभाः । षष्ठी रिक्ताऽष्टमी दर्शवर्ज्या विष्टिः स्थिराणि च ॥ ४ ॥ वर्ज्यास्त्वशुभयोगाश्च कृष्णे चान्त्यत्रिकं विना । अधोमुखानि वर्ज्यानि मीनाजालिगृहाणि च ॥ ५ ॥ जीवशुक्रेन्दुसौम्यानां वारवर्गे क्षणाः शुभाः । शुभानां राशयः श्रेष्ठा विशेषाच्छुभकर्मणि ॥ ६ ॥ आया ११ रि ६ भ्रातृगाः ३ पापा विशेषेण शिशोः शुभाः । पूर्वाह्णे चापि मध्याह्ने कुर्याद्रात्रिं विवर्जयेत् ॥ ७ ॥ योगिनीराहुरुद्रादिमुखं चैव विवर्जयेत् ॥ ८ ॥ योगिनीलक्षणं तु प्रागेवोक्तम् ।

### अथ चरयोगिनी ।

इन्द्रवायुयमशूलपाशिनां वह्निपश्रवणरक्षसां क्रमात् । अर्धयाममनुवासरादितो दिक्षु संभ्रमति योगिनी चरा ॥ १ ॥

### अथ राहुलक्षणम् ।

गुरुभान्वोर्वसेत्प्राच्यामिन्द्वौ शुक्रे च दक्षिणे । कालराहुः कुजे प्रत्यगुत्तरे बुधमन्दयोः ॥ १ ॥

### अथ रुद्रलक्षणम् ।

हरिसोमवह्निराक्षसयमवरुणानिलहरालयेष्वेवम् । उदयादि भ्रमति सदा घटिकारुद्रो महाप्रबलः ॥ १ ॥

इति दुग्धपानम् ।

---

* पद्यमिदं धपुस्तके ।

१ ध. °वरेष्वीषु । २ क. ध. °न्दोलितारे° ।

## अथ कर्णवेधविधिः।

गर्गः—* मासे षष्ठे सप्तमे वाऽष्टमेऽपि द्वादशेऽपि वा। कर्णवेधं प्रशंसन्ति पुष्ट्यायुःश्रीविवृद्धये ॥ १ ॥ बृहस्पतिः—जन्मतो दशमे वाऽह्नि द्वादशे वाऽथ षोडशे। सप्तमे मासि वा कुर्यादष्टमे मासि वा पुनः ॥ २ ॥ गर्गः—कार्तिके पौषमासे वा चैत्रे वा फाल्गुनेऽपि वा। कर्णवेधं प्रशंसन्ति शुक्लपक्षे शुभे दिने ॥३॥ अगस्त्यः—द्वयोश्च संध्ययोर्लग्ने न कुर्यात्कर्णवेधनम्। रात्रावपि तथा लग्ने नक्षत्रतिथिसंधिषु। कर्णवेधं न कुर्वीत कुर्याच्चेच्छेदनं भवेत् ॥ ४ ॥ नृसिंहः—एकादश्यष्टमीपर्वरिक्ता वर्ज्याः शुभावहाः। शिष्टाश्च तिथयः सर्वाः कृष्णे चान्त्यत्रिकं विना ॥ ५ ॥ शकुन्यादीनि विष्टिं च विशेषेण विवर्जयेत्। शुभयोगेषु सर्वेषु कर्णवेधः शुभावहः ॥ ६ ॥ कर्णद्वयादितितिक्षिप्रमृदुभिस्त्र्यायगैः शुभैः। गुरौ लग्नेऽथ केऽप्याहुरुत्तरासु श्रुतिव्यधम् ॥ ७ ॥ वेध्यौ कर्णावदन्तस्य विषमेऽब्देऽपि वा शिशोः। शुक्लपक्षे शुभे वारे चैत्रे पौषोर्जफाल्गुने ॥ ८ ॥ बृहन्नारदः—वृषभे मिथुने मीने कुलीरे कन्यकासु च। तुलाचापे च कुर्वीत कर्णवेधं शुभर्क्षये ॥ ९ ॥ मेषश्च मकरश्चैव मध्यमौ गुरुचोदितौ। सिंहवृश्चिककुम्भाश्च ह्यधमत्वाद्विवर्जिताः ॥ १० ॥ बृहस्पतिः—मन्दारार्कांशवाराः स्युर्वर्ज्याः कर्णस्य वेधने। गुरुशुक्रेन्दुजेन्दूनां पूज्या वारांशकोदयाः ॥ ११ ॥ वागीशशुक्रेन्दुजवासरेषु शस्तः शिशूनामपि कर्णवेधः। वदन्ति तज्ज्ञाः सरवीन्दुभौममन्दे कृते त्रुट्यति कर्णयुग्मम् ॥ १२ ॥ रन्ध्रारिव्ययगो नेष्टो गुरुः शेषेषु शोभनः। चतुरस्रगतः सौम्यो नेष्टः शेषेषु शोभनः ॥ १३ ॥ सप्ताष्टमगतः शुक्रो न शुभोऽन्यत्र शोभनः। चन्द्रो द्विविसुतस्त्रीषु धर्मकर्मगतः शुभः ॥ १४ ॥ त्रिषडायगताः पापाः शुभाः कर्णस्य वेधने। अष्टमस्थानगाः सर्वे नेष्टाः कर्णस्य वेधने। कर्णवेधे त्रिलाभस्थौ क्रूरौ नेष्टौ शुभाशुभौ ॥ १५ ॥ संग्रहे—शिशोरजातदन्तस्य मातुरुत्सङ्गसर्पिणः। सूचिको वेधयेत्कर्णौ सूच्या द्विगुणसूत्रया ॥ १६ ॥ शातकुम्भमयी सूची वेधने तु शुभप्रदा। राजती चाऽऽयसी वाऽपि यथाविभवतः शुभा ॥ १७ ॥ सुभूमौ प्राङ्गणे रम्ये शुचौ देशेऽम्बरे रवौ। संनिधौ वेधयेत्कर्णौ स्त्रीपुंसोर्वामदक्षिणौ ॥ १८ ॥ शुक्लसूत्रसमायुक्तताम्रसूच्याऽथ वेधयेत्। वेधात्तृतीये नक्षत्रे क्षालयेदुष्णवारिणा ॥ १९ ॥ देवलः—कर्णरन्ध्रे रवेश्छाया न विशेदग्रजन्मनः। तं

* मासे षष्ठे सप्तमे वाऽष्टमे वा वेध्यौ कर्णौ द्वादशे षोडशे वा। मध्येनाह्न पूर्वभागे न रात्रौ नक्षत्रे [ च ] दे तिथौ वर्जनीये ॥ चपुस्तके।

१ क. °श्च पुंयोर्न°।

दृष्ट्वा विलयं यान्ति पुण्यौघाश्च पुरातनाः ॥ २० ॥ शङ्खः—अङ्गुष्ठमात्रसुषिरौ कर्णौ न भवतो यदि । तस्मै श्राद्धं न दातव्यं यदि चेदासुरं व्रजेत् ॥ २१ ॥

इति कर्णवेधविधिः ।

---

## अथ निष्क्रमणम् ।

बृहस्पतिः—अथ निष्क्रमणं नाम गृहात्प्रथमनिर्गमः । अकृतायां क्रियायां स्यादायुःश्रीनाशनं शिशोः । कृते संपद्विवृद्धिः स्यादायुर्वर्धनमेव च ॥ १ ॥ यमः—तृतीये मासि कर्तव्यमहःसूर्यस्य दर्शनम् । चतुर्थे मासि कर्तव्यमग्नेश्चन्द्रस्य दर्शनम् । उपनिष्क्रमणं कुर्याच्चतुर्थे मासि सावने ॥ २ ॥ संग्रहे—चत्वार्येर्यम्णविश्वर्क्षाणि त्रीण्यहिर्बुध्न्यभाद्विदुः । मैत्रमादित्यपुष्यौ च रोहिणी च शुभावहाः ॥ ३ ॥ पूर्वपादाः शुभाः प्रोक्ताः कृष्णे चान्त्यत्रिकं विना । रिक्तापष्ठ्यष्टमीदर्शद्वादशीश्च विवर्जयेत् ॥ ४ ॥ वर्ज्यास्त्वशुभयोगाः स्युर्विष्टिश्च शकुनादि च । नृपालिमेषा वर्ज्याः स्युस्तथैवाधोमुखानि च ॥ ५ ॥ सतां तु वारवर्गाश्च शुभदास्तूदयास्तथा । चान्द्रं सर्वं विवर्ज्यं स्यात्सर्वेऽशस्ता विनाशदाः ॥ ६ ॥ केन्द्रत्रिकोणगाः सौम्याः पापाः षष्ठत्रिलाभगाः । उपनिष्क्रमणे शस्ताः शिशोरायुष्यवर्धनाः ॥ ७ ॥ कारिकायाम्—चतुर्थे मासि पुण्यर्क्षे शुक्ले निष्क्रमणं भवेत् । स्नातं स्वलङ्कृतं चाभिहतं स्वस्त्ययनं शिशुम् ॥ ८ ॥ आदाय गेहान्निष्क्रम्य गच्छेयुर्देवतालयम् । अभ्यर्च्य देवतां सम्यगाशिषो वाचयेदथ ॥ ९ ॥ दत्त्वा प्रदक्षिणं गेहमानयन्ति ततः स्वकम् । मातृस्वसृगृहं गत्वा मातुलादेर्गृहं नयेत् ॥ १० ॥ तदाशीर्वचनाद्यैः स्याद्दीर्घायुरभिनन्दितः । जयन्तस्य मतेनायं लिखितः शिशुनिष्क्रमः ॥ ११ ॥

इति निष्क्रमणम् ।

---

## अथ भूम्युपवेशनम् ।

पद्मपुराणे—पञ्चमे च तथा मासि भूमौ तमुपवेशयेत् । तत्र सर्वग्रहाः शस्ता भौमोऽप्यत्र विशेषतः ॥ १ ॥ तिथिं विवर्जयेद्रिक्तां शस्तान्याशृणु भामिनि । उत्तराश्रितयं सौम्यं पुष्यर्क्षं शक्रदैवतम् ॥ २ ॥ प्राजापत्यं च हस्तश्च शस्तमाश्विनमित्रभम् । वराहं पूजयेद्देवं पृथिवीं च तथा द्विजः ॥ ३ ॥ पूजनं पूर्ववत्कृत्वा गुरुदेवद्विजन्मनाम् । भूभागमुपलिप्याथ तत्र कृत्वा तु मण्डलम् । शङ्खपुण्याह-

शब्देन भूमौ तमुपवेशयेत् ॥ ४ ॥ तत्र मन्त्रः–ईमेनं वसुधे देवि सदा सर्वगतं शुभे । आयुष्प्रमाणं सकलं निक्षिपस्व हरिप्रिये ॥ ५ ॥

इति भूम्युपवेशनम् ।

---

## अथ जीविकापरीक्षणम् ।

मुहूर्तचिन्तामणौ—तस्मिन्काले स्थापयेत्तत्पुरस्ताद्वस्त्रं शस्त्रं पुस्तकं लेखनीयम् । स्वर्णं रौप्यं यच्च गृह्णाति बालस्तैराजीवैस्तस्य वृत्तिः प्रदिष्टा ॥ १ ॥

## अथान्नप्राशनम् ।

नारदः—षष्ठे मास्यष्टमे वाऽपि पुंसां स्त्रीणां तु पञ्चमे । सप्तमे मासि वा कार्यं नवान्नप्राशनं शुभम् ॥ १ ॥ रिक्तादिनत्रयं नन्दां द्वादशीमष्टमीममाम् । त्यक्त्वाऽन्यतिथयः श्रेष्ठाः प्राशने शुभवासरे ॥ २ ॥ विधिरत्ने—बालान्नभोजनविधौ गुरुशुक्रमौढ्यं मासप्रयुक्तमशुभं त्वधिमासदोषः । नास्त्येव सावनविधाविह मासि षष्ठे युग्मे च मासि परतः शुभचन्द्रपक्षे ॥ ३ ॥ नारदः—चरस्थिरमृदुक्षिप्रनक्षत्रेषु न नैधने । दशमे शुद्धिसंयुक्ते शुभलग्ने शुभांशके ॥ ४ ॥ ज्योतिर्विवरणे—जन्मर्क्षे श्रीक्षयं विद्यात्कर्मर्क्षे चापि सौख्यकृत् । आधानर्क्षे च बालानां भोजनं रोगनाशनम् ॥ ५ ॥ विधिरत्ने—अन्नप्राशनकार्ये तु जन्मभं मृत्युदं भवेत् । शुभं कर्मर्क्षमाधाने विवाहे चान्नभोजने ॥ ६ ॥ वसिष्ठः—चौलान्नभुक्तौ व्रतबन्धने च राज्ञोऽभिषेके खलु जन्मधिष्ण्यम् । शुभं त्वनिष्टं सततं विवाहसीमन्तयात्रादिषु मङ्गलेषु ॥ ७ ॥ वृद्धनारदः–बुधशुक्रगुरूणां तु वारा बालान्नभोजने । चन्द्रवारं प्रशंसन्ति कृष्णे चान्त्यत्रिकं विना ॥ ८ ॥ मिष्टान्नभुग्जीवनिशाकराभ्यां शुक्रेण वाग्मी रविणा दरिद्री । कुजेन रोगी शशिजेन भोगी क्षीणायुरादित्यसुतेऽह्नि कुर्यात् ॥ ९ ॥ अर्काङ्गारकमन्दानां वाराश्चापि शुभप्रदाः । यदा वाराधिपस्तिष्ठेत्स्वोच्चमित्रगृहे तदा ॥ १० ॥ गुरुणा बलिना वाऽपि वीक्षितश्च बलान्वितः । जीवसौम्यसितानां तु द्रेष्काणदिवसांशकाः ॥ ११ ॥ बालान्नप्राशने शस्ता न चन्द्रार्कार्किजासृजाम् ॥ १२ ॥ मदनमहार्णवे–मीन[1]श्चकुम्भास्तुला कन्या सिंहकर्किमृगा यमः । एताश्च राशयः शस्ता न मेषझषवृश्चिकाः ॥ १३ ॥ नारदः— पूर्वाह्णे सौम्यखेटेन संयुक्ते वीक्षितेऽथवा । त्रिषष्ठलाभगैः क्रूरैः केन्द्रधीधर्मगैः परैः ॥ १४ ॥ अन्त्यारिनिधनस्थेन चन्द्रेण प्राशनं शुभम् । अन्नप्राशनं लग्नस्थे क्षीणेन्दौ वा स्वनीचगे । नित्ये भोक्तुश्च दारिद्र्यं रिष्फषष्ठाष्टगेऽपि वा ॥१५॥ श्रीपतिः–

---

१ ख. घ. मोक्ष कु°।

रवौ लग्ने कुष्ठी धरणितनये पित्तगदभाक् शनौ वातव्याधिः कृशशशिनि भिक्षाटनकरः। बुधे ज्ञानी भोगी भृशनसि चिरायुः सुरगुरौ विधौ पूर्णे यज्वा भवति च नरः सत्रद इह ॥ १६ ॥ कण्टकान्त्यनिधनत्रिकोणगास्तत्फलं ददति यत्तनावमी। षष्ठ इन्दुरशुभस्तथाऽष्टमः केन्द्रकोणगतसौरिरश्नहृत् ॥ १७ ॥

इत्यन्नप्राशनम्।

## अथ चूडाकरणम्।

नारदः—पञ्चमे वा तृतीयेऽब्दे स्वकुलाचारतोऽपि वा। बालानां जन्मतः कार्यं चौलमावत्सरत्रयात् ॥ १ ॥ मघादिपञ्चके चौलं हित्वा क्षीणविधुं मधुम्। क्रूरवारं निशां रिक्तां षष्ठीं संध्यां च जन्मभम् ॥ २ ॥ षड्गुरुशिष्यः—आद्येऽब्दे कुर्वते केचित्पञ्चमेऽन्ये, द्वितीयके। उपनीत्या सहैवेति विकल्पाः कुलधर्मतः ॥ ३ ॥ आचार्यः—तृतीये पञ्चमेऽब्दे वा चौलकर्म प्रशस्यते। प्राग्वा समे सप्तमे वा सहोपनयनेन च ॥ ४ ॥ वृद्धनारदः—जन्मतस्तु तृतीयेऽब्दे श्रेष्ठमिच्छन्ति पण्डिताः। पञ्चमे सप्तमे वर्षे जन्मतो मध्यमं भवेत्। अधमं गर्भतः स्याद्वा दशमैकादशेऽपि वा ॥ ५ ॥ नारदः—सौम्यायने नास्तगयोरसुरासुरमन्त्रिणोः। अपर्वरिक्तातिथिषु शुक्रेज्यज्ञेन्दुवासरे ॥ ६ ॥ बृहस्पतिः—सोमवारः सिते पक्षे कृष्णपक्षेऽतिगर्हितः। बुधवारः शुभः प्रोक्तः पापग्रहयुते बुधे ॥ ७ ॥ पापग्रहाणां वारादौ विप्राणां तु शुभो रविः। क्षत्रियाणां क्षमासुनुर्विट्शूद्राणां शनिः शुभः ॥ ८ ॥ नारदः-दस्रादितीज्यचन्द्रेन्द्रपूषभानि शुभान्यतः। चौलकर्मणि हस्तर्क्षात्त्रीणि त्रीणि च विष्णुभात् ॥ ९ ॥ श्रीपतिः—पद्कृत्तिकः पञ्चमघास्त्रिमैत्रो ब्राह्माष्टको यश्चतुरुत्तरश्च। क्षौरी स वर्षं चतुराननोऽपि न प्राणितीति प्रकटः प्रवादः ॥ १० ॥ बृहस्पतिः—संपदि क्षेमभे मैत्रे साधके भेऽतिमित्रभे। चौलकर्म प्रशस्तं स्याच्छोभनांशगते विधौ ॥ ११ ॥ आद्यंशो विपदि त्याज्यः प्रत्यरे चरमोऽशकः। वधे त्याज्यस्तृतीयोंऽशः शेषांशा अपि शोभनाः ॥ १२ ॥ नारदः—अष्टमे शुद्धिसंयुक्ते शुभलग्ने शुभांशके। न नैधने भे शीतांशौ षष्ठाष्टान्त्य-६। ८।१२। विवर्जिते ॥ १३ ॥ धन २ त्रिकोण ९। ५ केन्द्रस्थैः १। ४। ७। १० शुभैस्त्र्यायारि ३। ११। ६ गैः परैः। चौलान्नप्राशने शस्ताः सौम्या रन्ध्रव्ययोपगाः ॥ १४ ॥ वसिष्ठः—वृषभश्च कुलीरश्च यमकन्यातुलाधराः। मकरश्चैव मीनश्च क्षुरकर्मणि वर्जिताः ॥ १५ ॥ मेषे दुःखं मृगेन्द्रे च

---

१ क. केन्द्रेषु शु°।

वृश्चिके व्यसनं महत् । राजबाधा च धनुषि शुभयुक्ते न दुष्यति ॥ १६ ॥ विशेषस्तु जलैर्घोरैः पीड्यते मरणान्वितः । क्षौरी मर्त्यो घटे लग्ने शुभयुक्ते प्रशस्यते ॥ १७ ॥ गर्गः— आत्मराश्युदये षष्ठे द्वादशे निधने तथा । शत्रुक्षेत्रे च मीने च क्षौरं नैव च कारयेत् ॥ १८ ॥ बृहस्पतिः—अष्टमस्था ग्रहाः सर्वे नेष्टाः शुक्रविवर्जिताः । शुक्रस्तु निधने क्षौरे सर्वसंपत्प्रदः शिशोः ॥ १९॥ अष्टमग्रहस्यापवादः । बृहस्पतिः— लग्नादष्टमराशीशः केन्द्रगः शुभवीक्षितः । यस्याप्यष्टमगस्योक्तं दोषमाशु व्यपोहति ॥ २० ॥ स्वांशगः स्वोच्चगो वाऽपि स्वक्षेत्रोपचयक्षेगः । अष्टमस्थानदोषोऽयं विनश्यति न संशयः ॥ २१ ॥ बृहन्नारदः— लग्नाष्टमेशयोर्मध्ये लग्नेशे बलसंयुते । अस्तगे निधनेशे वा निधनेऽपि शुभो ग्रहः ॥ २२ ॥ वसिष्ठः- जामित्रे भास्करे क्षौरे मृत्युः स्याद्भूमिजे तथा । शुक्रे सौख्यविनाशः स्यान्मन्दभाग्यं शनैश्चरे ॥ २३ ॥ त्रिकोणकण्टके वाऽपि सत्कर्मनिरते विधौ । गुरुर्वाऽतिबलः प्रोक्तः क्षौरयोगः शुभावहः ॥ २४ ॥ लग्नेन्दुराशिगौ द्वौ द्वौ भावनाथयुतेक्षितौ । भवेत्कश्चित्प्रभ्रष्टः स्याच्चूडायोगोऽयमुत्तमः ॥ २५ ॥ मीने शुक्रे च लग्नस्थे भवे भानौ चतुष्टये । गुरौ यातेऽथवा योगः शुभदः क्षुरकर्मणि ॥ २६ ॥ यमे कर्किणि सिंहे च सहिते भृगुजे बुधे । भानौ भवे व्यये चापि योगः क्षौरे शुभावहः ॥ २७ ॥ भवव्ययोदये भानुबुधशुक्रा यदा स्थिताः । चन्द्रे शुभांशके केन्द्रे चूडायोगः शुभावहः ॥ २८ ॥ अनिष्टस्थानगो यः स्याद्ग्रहो लग्नेशवीक्षितः । गुरुणा बलिना दृष्टो यदीष्टस्थानगो भवेत् ॥२९॥ नारद –अभ्यक्तं संध्ययोर्नान्ते निशि भोक्तुर्नवाऽऽहवे । नोत्कटे भूषिते नैव याने न नवमेऽह्नि च ॥ ३० ॥ क्षौरकर्म महीशानां पञ्चमे पञ्चमेऽहनि । कर्तव्यं क्षौरनक्षत्रेऽप्यथवाऽस्योदयेष्टदम् ॥ ३१ ॥ नृपविप्राज्ञया यज्ञे मरणे बन्धमोक्षणे । उद्वाहेऽखिलवारर्क्षतिथिषु क्षौरमिष्टदम् ॥ ३२ ॥

इति चूडाकरणम् ।

---

## अथ चौलनिषेधः ।

षष्ठेऽब्दे षोडशे वर्षे विवाहाब्दे तथैव च । अन्तर्वत्न्यां तु जायायां नेष्यते केशवापनम् ॥ १ ॥ चूडाकर्म न कर्तव्यं यस्य माताऽस्ति गुर्विणी । करोति यदि मूढात्मा तदा गर्भस्य नाशनम् ॥ २ ॥ पारिशिष्टे— माता कुमारमादायेत्युक्तं कात्यायनादिभिः । सा चेद्यदि सगर्भा स्यात्तदा चौलं न कारयेत् ॥३॥ गर्ग.- उक्तकालातिक्रमे च जनित्री यस्य गर्भिणी । ऊर्ध्वं मासात्पञ्चमतश्चौलं

कार्ये व्रते तथा ॥ ४ ॥ पुत्रचूडामणौ माता यदि सा गर्भिणी भवेत् । शस्त्रेण मृत्युमाप्नोति तस्मात्क्षौरं विवर्जयेत् ॥ ५ ॥ नारदः—सूनोर्मातरि गर्भिण्यां चूडाकर्म न कारयेत् । पञ्चाब्दात्प्रागथोर्ध्वं तु गर्भिण्यामपि कारयेत् ॥ ६ ॥ यदि गर्भविपत्तिः स्याच्छिशोर्वा मरणं भवेत् । सहोपनीतया कुर्याच्च तदा दोषो न विद्यते ॥ ७ ॥ मेधातिथिः—चौले च व्रतबन्धे च विवाहे यज्ञकर्मणि । भार्या रजस्वला यस्य प्रायस्तस्य न शोभनम् ॥ ८ ॥ वधूवरान्यतरयोर्जननी चेद्रजस्वला । तस्याः शुद्धौ परं कार्यं माङ्गल्यं गुरुरब्रवीत् ॥ ९ ॥ मनुस्मृतौ—उद्वाहव्रतचूडासु माता यदि रजस्वला । तदा न मङ्गलं कार्यं शुद्धौ कार्यं शुभेच्छुभिः ॥ १० ॥ गर्गः—यस्योद्वाहादिमाङ्गल्यं माता तस्य रजस्वला । तदा न तत्प्रकर्तव्यमायुःक्षयकरं यतः ॥ ११ ॥ बृहस्पतिः—वैधव्यं च विवाहे स्याज्जडत्वं व्रतबन्धने । चूडायां च शिशोर्मृत्युर्विघ्नं यात्राप्रवेशयोः ॥ १२ ॥ रजस्वलाविषयमेतत् । कारिकानिबन्धे—सूतिकोदक्ययोः शुद्ध्यै गां दद्याद्धेमपूर्विकाम् । प्राप्ते कर्मणि शुद्धा स्यादितरस्मिन्न शुध्यति ॥ १३ ॥ अलाभे सुमुहूर्तस्य रजोदोषे तु संस्थिते । श्रियं संपूज्य तत्कुर्याद्वृत्रहत्याभयंकरीम् ॥ १४ ॥ हेर्मी माषमितां पद्मां श्रीसूक्तविधिनाऽर्चयेत् । प्रत्यृचं पायसं हुत्वाऽभिषिच्य शुभमाचरेत् ॥ १५ ॥ गर्गः—न गुरौ सिंहराशिस्थे सिंहांशकगतेऽपि वा । क्षौरकर्म प्रकुर्वीत विवाहं गृहकर्म वा ॥ १६ ॥ नर्मदोत्तरदेशस्थे सिंहस्थे देवमन्त्रिणि । शुभकर्म न कुर्वीत निषेधो नास्ति दक्षिणे ॥ १७ ॥

इति चौलनिषेधः ।

---

## अथ क्षौरनिषेधः ।

उदन्वतोऽम्भसि स्नानं नखकेशनिकृन्तनम् । नान्तर्वल्न्याः पतिः कुर्यादप्रजो भवति ध्रुवम् ॥ १ ॥ स्मृत्यन्तरे—सिन्धुस्नानं द्रुमच्छेदं वपनं प्रेतवाहनम् । विदेशगमनं चैव न कुर्याद्गर्भिणीपतिः ॥ २ ॥ क्षौरं नैमित्तिकं कुर्यान्निषेधे सत्यपि ध्रुवम् । पित्रोः प्रेतविधानं च दोषस्तत्र न विद्यते ॥ ३ ॥ गङ्गायां भास्करक्षेत्रे मातापित्रोर्मृतेऽहनि । आधाने सोमपाने च षट्सु क्षौरं विधीयते ॥ ४ ॥ पञ्चाशद्वायनात्पूर्वं क्षौरं नैमित्तिकं विना । न कुर्यात्तत्तदूर्ध्वं तु स्वेच्छया वपनं चरेत् ॥ ५ ॥ मुण्डनस्य निषेधेऽपि कर्तव्यं च विधीयते । छेदनं हपदा वाऽपि न क्षुरेण कदाचन ॥ ६ ॥ राजा योगी पुरन्ध्री च माता-

---

१ क. ख. 'रमर्घं न कु'।

पित्रोश्च जीवतोः । मुण्डनं सर्वतीर्थेषु न कुर्याद्गुर्विणीपतिः ॥ ७ ॥ अन्तर्वत्न्यां तु जायायां तीर्थे क्षौरं न कारयेत् । भेतवाह्यादिकं चैव सीमन्तोन्नयनादनु ॥८॥ बृहस्पतिः—राजकार्ये नियुक्तानां नराणां भूपसेविनाम् । श्मश्रुलोमनखच्छेदे नास्ति कालविशोधनम् ॥ ९ ॥

इति क्षौरनिषेधः ।

## अथाक्षरारम्भविधिः ।

श्रीधरीये—उदगते भास्वति पञ्चमेऽब्दे प्राप्तेऽक्षरस्वीकरणं शिशूनाम् । सरस्वतीं विघ्नविनायकं च गुडौदनाद्यैरभिपूज्य कुर्यात् ॥ १ ॥ विधिरत्ने—बालस्य पञ्चमे वर्षे प्राप्ते भानौ मृगादिके । आरभेताक्षरविधिं शुभे काले यथोदिते ॥ २ ॥ बृहस्पतिः—द्वितीयजन्मतः पूर्वमारभेताक्षरान्सुधीः ॥३॥ नृसिंहः—अक्षरस्वीकृतिः प्रोक्ता प्राप्ते पञ्चमहायने । उत्तरायणगे सूर्ये कुम्भमासं विवर्जयेत् ॥४॥ विश्वामित्रः—प्राप्ते तु पञ्चमे वर्षे त्वसुप्ते च जनार्दने । विद्यारम्भस्तु कर्तव्यो यथोक्तविधिवासरे ॥ ५ ॥ आषाढशुक्लद्वादश्यां शयनं कुरुते हरिः । निद्रां त्यजति कार्तिक्यां तयोः संपूज्यते हरिः ॥ ६ ॥ हस्तादित्यसमीरमित्रपुरुजित्पौष्णाश्विचित्रायुतेष्वारार्कशदिनोदयादिरहिते चांशस्थिते चोभये । पक्षे पूर्णनिशाकरे प्रतिपदं रिक्तां विहायाष्टमीं पष्ठीमष्टमशुद्धभाजि भवने प्रोक्ताऽक्षरस्वीकृतिः ॥ ७ ॥

इत्यक्षरारम्भविधिः ।

## अथाङ्कुरार्पणम् ।

नारदः—कर्तव्यं मङ्गलेष्वादौ मङ्गलायाङ्कुरार्पणम् । नवमे सप्तमे वाऽपि पञ्चमे दिवसेऽपि वा ॥ १ ॥ तृतीये बीजनक्षत्रे शुभवारे शुभोदये । सम्यग्गृहाण्यलंकृत्य वितानध्वजतोरणैः ॥ २ ॥ आशिषो वाचनं कुर्यात्पुण्यं पुण्याङ्गनादिभिः । सह वादित्रनृत्याद्यैर्गत्वा प्रागुत्तरां दिशम् ॥ ३ ॥ तत्र मृत्सिकतां श्लक्ष्णां गृहीत्वा पुनरागतः । मृन्मयेष्वथ वा वैणवेषु पात्रेषु पूरयेत् । अनेकबीजसंयुक्तं तोयपुष्पोपशोभितम् ॥ ४ ॥

इत्यङ्कुरार्पणम् ।

१ ख. ध. 'ग्राच्युते' ।

## अथोपनयनम् ।

अथोपनयने वक्ष्ये द्विजानां शुभकाङ्क्षिणाम् । त्यजेत्तत्र महादोषांस्त्याज्यप्रकरणोदितान् ॥ १ ॥ ज्योतिर्विदुक्तसमये कुमारमुखदर्शनम् । तच्चूपनयनं प्राहुर्याज्ञिकास्तत्त्वदर्शिनः ॥ २ ॥ जाताधिकाराज्जन्मादावष्टमेऽब्दे भवेदिदम् । कुमाराधिकृतेश्चापि न स्त्रीणामिदमुच्यते ॥ ३ ॥ वैवाहिको विधिः स्त्रीणामौपनायनिकः स्मृतः । पतिसेवा गुरौ वासो गृहस्थाग्निपरिक्रिया ॥ ४ ॥ नारदः—आधानादष्टमे वर्षे जन्मतो वाऽग्रजन्मनाम् । राज्ञामेकादशे मौञ्जीबन्धनं द्वादशे विशाम् ॥ ५ ॥ अत्राऽऽचार्यः स्मृतिरूपेणाऽऽह—गर्भाष्टमेऽष्टमे वाऽब्दे पञ्चमे सप्तमेऽपि वा । द्विजत्वं प्राप्नुयाद्विप्रो वर्षे त्वेकादशे नृपः । वैश्यश्च द्वादशे वर्षे विप्राणां षोडशावधि ॥ ६ ॥ यस्मिन्वर्षे गर्भो भूत्वा शेते स गर्भ इति हरदत्तः । गर्भसहचरितो गर्भशब्देनोच्यत इति भारुचिः । सोऽष्टमो यस्येति बहुव्रीहिः । षष्ठीसमासस्य पूरणप्रत्ययान्तेन निषेधात् । जन्मतः पञ्चमे वर्षे वेदशास्त्रविशारदः । उपनीतो यतः श्रीमान्कार्यं तत्रोपनायनम् ॥ ७ ॥ * संग्रहे—ब्रह्मवर्चसमोजश्च विद्याऽऽयुः श्रीर्यशः सुखम् । विप्रादेरुपनीतस्य पञ्चमादब्दतः फलम् ॥ ८ ॥ नृपजातिजिना १६ । १८ । २४ ब्दान्तं नातिकालस्ततः परम् । पातित्यं स्यादग्रजादेर्व्रात्यस्तोमो विशोधनम् ॥ ९ ॥ अग्रजा बाहुजा वैश्याः स्वावधेरूर्ध्वमब्दतः । अकृतोपनयाः सर्वे वृषला इव ते स्मृताः ॥ १० ॥ नारदः—बालस्य बलहीनोऽपि शान्त्या जीवो बलप्रदः । यथोक्तवत्सरे कार्यमनुक्ते नोपनायनम् ॥ ११ ॥ बृहस्पतिः—झषचापकुलीरस्थो जीवोऽप्यशुभगोचरः । अतिशोभनतां दद्याद्विवाहोपनयादिषु ॥ १२ ॥ व्रते जन्मत्रिखारिस्थो जीवोऽप्यष्टोऽर्कनास्त्सक्षत् । शुभोऽतिकाले तुर्याष्टव्ययस्थो द्विगुणार्चनात् ॥ १३ ॥ अशुभेऽब्दे ग्रहाः सर्वे शुभगोचरगा अपि । शान्तिभावाच्छुभं नैव यान्त्यब्दः कालमृत्युवत् ॥ १४ ॥ तस्माद्ग्रहेभ्यः कालत्वाद्बली संवत्सरः स्मृतः । शान्तिर्ग्रहाणां कर्तव्या न तु संवत्सरस्य सा ॥ १५ ॥ संग्रहे—व्रतकाले तु संप्राप्ते यस्य शुद्धिर्न लभ्यते । कृत्वाऽर्चां शक्तितः पश्चाद्विधेयं मौञ्जिबन्धनम् ॥ १६ ॥ शुद्धिर्न विद्यते यस्य वर्षे मासेऽष्टमे यदि । चैत्रे मीनगते भानौ

---

* घपुस्तक इदमधिकम् । विष्णुः—षष्ठे तु धनकामस्य विद्याकामस्य सप्तमे । अष्टमे सर्वकामस्य नवमे कान्तिमिच्छतः ॥ मनुः—ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे । सप्तमे चाष्टमे वर्षे नवमे दशमे तथा । एकादशे द्वादशे वा ह्युपनेया द्विजातयः । ब्रह्मवर्चसमायुष्यं तेजोमाद्यं तथैन्द्रियम् । पशून्कामयमाना वै प्राप्नुवन्ति यथाक्रमम् ।

तस्योपनयनं शुभम् ॥ १७ ॥ जन्मभाङ्गुष्टगे सिंहे नीचे वा शत्रुभे गुरौ । मौञ्जीबन्धः शुभः प्रोक्तश्चैत्रे मीनगते रवौ ॥ १८ ॥ हरिनीचारिभागेऽपि व्रतोद्वाहादि मङ्गलम् । न निषिद्धं यदि स्वोच्चे स्वभे वा संस्थितो गुरुः ॥ १९ ॥ गोचरेऽपि सुराचार्यो वेदवर्णेश्वरोऽथवा । अशुभोऽपि शुभो ज्ञेयो यदि स्वोच्चे स्वभे स्थितः ॥ २० ॥ मुख्यकालस्तु बलवान्व्रते गोचरशुद्धितः । यतो निषिद्धवर्षस्य शान्तिर्नो दृश्यते क्वचित् ॥ २१ ॥ मीनस्थे पद्मिनीमित्रे नीचेऽरिभे च वाक्पतौ । व्रतादिषु निरोधः स्याद्विन्ध्यस्योत्तरवासिनाम् ॥ २२ ॥ नारदः—दृश्यमाने गुरौ शुक्रे शाखेशे चोत्तरायणे । वेदानामधिपा जीवशुक्रभौमबुधाः क्रमात् ॥ २३ ॥ शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु व्युत्क्रमात्तु द्विजन्मनाम् । मुख्यं साधारणं तेषां तपोमासादिपञ्चसु ॥ २४ ॥ वसिष्ठः—वसन्तश्चैत्रवैशाखौ ग्रीष्मः शुक्रः शुचिस्तथा । इषोर्जौ च शरत्विन्द्रमासाः श्रौतादिकर्मणि ॥ २५ ॥ नारदः—स्वकुलाचारधर्मज्ञो माघमासेऽथ फाल्गुने । विधिज्ञश्चार्थवांश्चैत्रे वेदवेदाङ्गपारगः ॥ २६ ॥ वैशाखे धनवान्वेदशास्त्रविद्याविशारदः । उपनीतः फलाढ्यश्च ज्येष्ठे विधिविदां वरः ॥ २७ ॥ गर्गः—ज्येष्ठे मासे विशेषेण सर्वज्येष्ठस्य चैव हि । उपनीतस्य च शिशोर्जडत्वं मृत्युरेव च ॥ २८ ॥ संग्रहकारः—विवाहे चोपनयने जन्ममासं विवर्जयेत् । विशेषाज्जन्मपक्षं तु वसिष्ठाद्यैरुदाहृतम् ॥ २९ ॥ नारदः—शुक्लपक्षे द्वितीया च तृतीया पञ्चमी तथा । त्रयोदशी च दशमी सप्तमी व्रतबन्धने ॥ ३० ॥ श्रेष्ठा त्वेकादशी षष्ठी द्वादश्येतास्तु मध्यमाः । एकां चतुर्थीं संत्यक्त्वा ( क्त्य ) कृष्णपक्षेऽपि मध्यमाः । आपञ्चम्यस्तु तिथयः पराः स्युरतिनिन्दिताः ॥ ३१ ॥ ज्योतिर्नृसिंहः—तृतीया पञ्चमी षष्ठी द्वितीया चापि सप्तमी । पक्षयोरुभयोश्चैव विशेषेण सुपूजिताः ॥ ३२ ॥ धर्मकामौ सिते पक्षे कृष्णे च प्रथमा तथा । कृष्णत्रयोदशीं केचिदिच्छन्ति मुनयस्तथा । द्वादश्येकादशी चैव मध्यमे च प्रचक्षते ॥ ३३ ॥ बृहस्पतिरपि—शुक्लपक्षे शुभः प्रोक्तः कृष्णे चान्त्यत्रिकं विना ॥३४॥ संग्रहकारः—चन्द्रे जीवे च वेदेशे वर्णेशे च बलान्विते । कृष्णपक्षे व्रतं शस्तं द्विनिपञ्चमिते तिथौ ॥ ३५ ॥ कृष्णे कामद्वये देशे शुभा मौञ्जीति यद्वचः । तत्पुनःप्राप्तसंस्कारविषयं संकटादते ॥ ३६ ॥ अजिनं मेखला दण्डो भैक्ष्यचर्याव्रतानि । निवर्तन्ते द्विजातीनां पुनःसंस्कारकर्मणि ॥ ३७ ॥ प्रदोषे निश्यनध्याये मन्दे कृष्णे गलग्रहे । मधुं विना चोपनीतः पुनःसंस्कारमर्हति ॥ ३८ ॥ यो न मन्त्रैः स्वशाखोक्तैः संस्कृतो नाधिकारिणा । नासौ द्विजत्वमाप्नोति पुनःसंस्करणं विना ॥ ३९ ॥ व्रतं शुक्रे त्रिपञ्चाङ्गदनेशार्कमिते तिथौ । देयं द्विसप्तकामेषु

कुमारे वयसाऽधिके ॥ ४० ॥ कृष्णे भूनेत्रवह्नीपुतिथौ स्वेशे बले सति। संकटादौ व्रतं कार्यमिति माह बृहस्पतिः ॥ ४१ ॥ नारदः—आचार्यसौम्यकाव्यानां वाराः शस्ताः शशीनयोः। वारौ तौ मध्यफलदावितरौ निन्दितौ व्रते ॥ ४२ ॥ सर्वेषां जीवशुक्रज्ञवाराः[1] शस्ता व्रते तथा। चन्द्राकौं मध्यमौ ज्ञेयौ साम्यबाहुजयोः कुजः ॥ ४३ ॥ वारौ मन्दारयोर्वर्ज्यौ कृष्णे वर्ज्यो निशापतिः। अस्तंगतस्य सौम्यस्य वारो वर्ज्यो द्विजन्मनि ॥ ४४ ॥ त्रिधा विभज्य दिवसं तत्राऽऽदौ कर्म दैविकम्। द्वितीये मानुषं कार्यं तृतीयेंऽशे च पैतृकम् ॥ ४५ ॥ चतुर्दशीद्वयं चैव प्रतिपच्चाष्टमी तथा। पक्षयोरुभयोरेवमनध्यायाष्टकं विदुः ॥ ४६ ॥ पूर्वापरतिथिभ्यां तु तदुक्तं मौञ्जिबन्धने। त्याज्या अन्येऽप्यनध्यायाः परित्यक्तास्तु केवलाः ॥ ४७ ॥ अष्टकासु च सर्वासु युग्मन्वन्तरादिषु। अनध्यायं प्रकुर्वीत तथा सोपपदास्वपि ॥ ४८ ॥ अयने विषुवे चैव सूतके मृतके तथा। तात्कालिकेऽप्यनध्याये प्रदोषेऽध्ययनं त्यजेत् ॥ ४९ ॥ ज्ञेयो गलग्रहः कन्धी कामाद्रिभ्यां तिथित्रये। मौञ्जीबन्धे च विद्यायां षष्ठी विद्यासु न व्रते ॥ ५० ॥ तृतीया प्रहरान्न्यूना द्वादशी प्रहरद्वयात्। षष्ठी रात्रेः सार्धयामात्प्रदोषो जायते सदा ॥ ५१ ॥ कारिकानिबन्धे—अनध्यायस्य पूर्वेद्युरनध्यायात्परेऽहनि। व्रतबन्धं विसर्गं च विद्यारम्भं न कारयेत् ॥ ५२ ॥ रोमशसंहितायां—व्रतस्य पूर्वेद्युरनिष्टकालो ह्यनिष्टकारी यजुषां बटूनाम्। तदह्नि दौष्ट्यं खलु सामगानामाथर्वणानामपरेऽह्नि दौष्ट्यम् ॥ ५३ ॥ तद्दिनगतैप्यदिवसाप्युशुद्धानध्यायकर्मणि प्राहुः। बह्वृचबटूपनीत्यां कात्यायनशौनकात्रेयाः ॥ ५४ ॥ वेदव्रतोपनयने स्वाध्यायाध्ययने तथा। न दोषो यजुषां सोपपदास्वध्ययनेषु च ॥ ५५ ॥ प्रारम्भे सर्वविद्यानामनध्यायं विवर्जयेत्। नष्टं बुधं च विक्लं क्लमं क्षीणं विधुं तथा ॥५६॥ मनुः—या चैत्रवैशाखसिता तृतीया माघेऽपि सप्तम्यथ फाल्गुनस्य। कृष्णद्वितीयोपनये प्रशस्ताः प्रोक्ता भरद्वाजमुनीन्द्रवर्यैः ॥ ५७ ॥ एतन्नित्यानध्यायाविषयम्। अन्यथा माघे पञ्चम्यादिनिषेधः प्रसज्येत। माघस्याऽऽद्या द्वादशी च द्वितीया वर्ज्या कृष्णा फाल्गुनस्य द्वितीया। चैत्रे वैशाखे [ च ] शुद्धा तृतीया ज्येष्ठे वर्ज्या शुक्लपक्षद्वितीया ॥ ५८ ॥ नान्दीश्राद्धे कृते चेत्स्यादनध्यायस्त्वकालिकः। तदोपनयनं कार्यं विद्यारम्भं न कारयेत् ॥ ५९ ॥ नारदः—श्रेष्ठान्यर्कत्रयांत्येज्यचन्द्रादित्युत्तराणि च। विष्णुत्रयाश्विमित्राब्जयोनिभान्युपनायने ॥ ६० ॥ जन्मभाद्दशमं कर्म संघातर्क्षं च षोडशम्। अष्टादशं सामुदायं त्रयोविंशं

[1] क. 'वास चैव यो'।

विनाशभम् । मानसं पञ्चविंशर्क्षे नाऽऽचरेच्छुभमेषु तु ॥ ६१ ॥ संग्रहे—पूर्वो-हस्तत्रयार्द्रेशश्रुतिमूलेषु वह्वृचाम् । यजुषां पौष्णमैत्रार्कादित्यपुष्यमृदुध्रुवैः॥६२॥ सामगानां हरीशार्कवसुपुष्योत्तराश्विभैः । धनिष्ठादितिमैत्रार्केश्विन्दुपौष्णेष्वथर्व-णाम् ॥ ६३ ॥ नारदः—स्वनीचगे तदंशे वा स्वारिभे वा तदंशके । गुरौ भृगौ वा शाखेशे कलाशीलविवर्जित ॥ ६४ ॥ स्वाधिशत्रुगृहस्थे वा तदंशे वाऽथवा व्रती । शाखेशे वा गुरौ शुक्रे महापातककृद्भवेत् ॥ ६५ ॥ स्वोच्चसंस्थे तदंशे वा स्वराशौ वा त्रिकोणगे । शाखेशे वा गुरौ शुक्रे केन्द्रगे वा त्रिकोणगे । अतीव धनयांश्चैव वेदवेदाङ्गपारगः ॥ ६६ ॥ परमोच्चगते जीवे शाखेशे वाऽथवा सिते । व्रती शिशुर्धनाढ्यश्च वेदशास्त्रविशारदः॥ ६७ ॥ मित्रराशिगते जीवे तदंशे वा स्वशाखपे । शुक्रे वा चारसंयुक्ते तदा तत्र व्रती शिशुः ॥ ६८ ॥ स्वाधिमित्रगृहस्थे वा तस्योच्चस्थे तदंशके । गुरौ भृगौ वा शाखेशे विद्याधनसमन्वितः ॥ ६९ ॥ शाखाधिपतिवारश्च शाखाधिपबलं शिशोः । शाखाधिपतिलग्नं च दुर्लभं त्रितयं व्रते ॥ ७० ॥ तस्माद्वेदांशगे चन्द्रे व्रती विद्याविशारदः । पापांशगे स्वांशगे वा दरिद्रो नित्यदुःखितः ॥ ७१ ॥ वाक्कुण्ठः श्रुतिमान्यक्ता जडः क्रूरोऽर्थवान्गुणी । क्रूरः पूज्यः खरः प्रेष्यो धीमान्मेषाद्य-वेदवदुः ॥ ७२ ॥ रव्याद्यंशैः क्रमात्क्रूरो जडः पापरतः पटुः । यज्वा च दीक्षितो मूर्खः षड्वर्गेणापि तत्फलम् ॥ ७३ ॥ नारदः—श्रवणादितिनक्षत्रे कर्कयंशस्थे निशाकरे । तदा व्रती वेदशास्त्रधनधान्यसमृद्धिमान् ॥ ७४ ॥ शुभलग्ने शुभांशे च नैधने शुद्धिसंयुते । लग्ने त्वनैधने सौम्यैः संयुक्ते वा निरी-क्षिते ॥ ७५ ॥ इष्टैर्जीवार्कचन्द्राद्यैः पञ्चभिर्बलिभिर्ग्रहैः । स्थानादिबलसंपूर्णै-श्चतुर्भिर्वा शुभान्वितैः ॥ ७६ ॥ ईक्षिते वाऽत्रैकविंशन्महादोषविवर्जिते । राशयः सकलाः श्रेष्ठाः शुभग्रहयुतेक्षिताः ॥ ७७ ॥ शुभा नवांशा न तथा ग्राह्यास्ते शुभराशयः । न कदाचित्कर्कटांशः शुभेक्षितयुतोऽपि वा ॥ ७८ ॥ तस्माद्गो-मिथुनान्त्याश्चतुलाकन्यांशकाः शुभाः । एवंविधे लग्नगते नवांशे व्रतमीरितम् ॥ ७९ ॥ त्रिषडायगतैः पापैः षडष्टान्त्यविवर्जितैः । शुभैः षष्ठाष्टलग्नान्त्यव-र्जितेन हिमांशुना ॥ ८० ॥ संग्रहे—केन्द्रस्थितैरिनाद्यैर्नृपसेवी विट्क्रियोऽस्त्रवृ-त्तिश्च । वेदाभ्यासी यज्वा क्रतुकर्ता हीनसेवको भवति ॥ ८१ ॥ सिते त्रिको-णगे चन्द्रे शुक्रांशे लग्नगे गुरौ । उपनीतो भवेद्विप्रो वेदशास्त्रार्थपारगः ॥ ८२ ॥ चन्द्रक्रूरास्तनौ नेष्टाः सर्वे रन्ध्रे व्यये कविः। सितेन्दुल्यपाः षष्ठे मौञ्जीविद्यादि-कर्मसु ॥ ८३ ॥ रविः खायगतः १० । ११ श्रेयान् व्ययाष्टतनुगः १२।८।१। शशी । कुजार्किराहुशिखिनस्त्रिषडायगताः शुभाः ॥ ८४ ॥ अनिष्टस्थानगोऽ-

ष्यत्र ग्रहः कोऽपि न दोषकृत् । शुभदृष्टः शुभो यस्मात्सौम्यवर्गे यदि स्थितः ॥ ८५ ॥ व्ययस्थोऽर्कः कुजार्किभ्यां दृष्टो विद्यां हरेद्बटोः। शुभदृष्टो न दोषाय तथेन्दुर्गुरुरब्रवीत् ॥ ८६ ॥ श्रीपतिः—त्रिपट्खगोऽर्कस्त्रिधनास्तकर्मगश्चन्द्रस्त्रिषष्ठाः शनिराहुभौमाः । सर्वे च लाभे द्वित्रिकोणकेन्द्रगाः शुभाः शुभाः स्युर्व्रतबन्धकाले ॥ ८७ ॥ रन्ध्रान्त्यारिगतः शुक्रो लग्नेशो वा षडष्टगः । चन्द्रो लग्नारिरन्ध्रस्थो बटोः प्राणापहारकः ॥ ८८ ॥ शुक्रश्च सर्वभावस्थः सर्वसंपत्समृद्धिदः । षष्ठाष्टमस्मरान्मुक्त्वा शिशोर्लग्नाद्विजन्मनः ॥८९॥ मौञ्जीबन्धे विशेषेण प्राग्लग्नं पञ्चमं तथा । भाव्यं क्रूरग्रहैर्भुक्तं भृगुराह तथाऽष्टमम् ॥ ९० ॥ मौञ्जीपटले—शुभदो बलवान् भानुर्लग्नगो दशमस्तथा । सर्वशाखाधिपो यस्मात्सर्वेषां व्रतबन्धने ॥९१॥ सर्वशाखाधिपो भानुः केचिदूचुर्महर्षयः । तस्माद्गत्यन्तराभावे लग्नस्थोऽर्कः प्रशस्यते ॥ ९२ ॥ नारदः—स्वोच्चसंस्थोऽपि शीतांशुर्व्रतिनो यदि लग्नगः । तं करोति शिशुं निःस्वं सततं क्षयरोगिणम् ॥ ९३ ॥ बृहस्पतिः—चन्द्रोदयेऽभिशस्तः स्यात्क्षयरोगी सितेतरे । सिते पक्षे भवेद्यज्वा स्वभे तुङ्गे विशेषतः ॥९४॥ लग्ने हिमांशुर्यदि शुक्लपक्षे स्तम्भप्रतिष्ठाव्रतबन्धकाले । आयुःसहस्रं हि निकेतनानां नृणां सदावृत्तिविवृद्धिहेतुः ॥ ९५ ॥ संग्रहे—लग्नस्थितेषु रन्ध्रेषु पापेषु मरणं बटोः । सौख्यं स्यात्त्रिषडायेषु जडत्वमितरेषु च ॥ ९६ ॥ अरन्ध्रारिगताः श्रेष्ठाः शुभाः सर्वत्रगा व्रते । व्ययेऽपि न शुभः शुक्रस्तथाऽब्जोऽप्यष्टलग्नगः॥९७॥ अनिष्टस्थानगोऽप्यत्र ग्रहः कोऽपि न दोषकृत् । सद्वर्गे शुभदृष्टो वा स्वोच्चे स्वस्थे विशेषतः ॥ ९८ ॥ स्फूर्जितं केन्द्रगे भानौ व्रतिनो वंशनाशनम् । कूजितं केन्द्रगे भौमे शिष्याचार्यविनाशनम् ॥ ९९ ॥ करोति रुदितं केन्द्रसंस्थे मन्देऽतुलान्गदान् । लग्नात्केन्द्रगते राहौ रन्ध्रं मातृविनाशनम् ॥ १०० ॥ उग्रकेन्द्रगते केतौ वृत्तवित्तविनाशनम् । पञ्चदोषेतरल्लग्नं शुभदं चोपनायने ॥ १०१ ॥ विद्यां प्राज्ञां नाशयेतां मन्दभौमौ द्वितीयगौ । अन्योन्यमथवा दृष्टौ द्वादशस्थौ तु बन्धदौ ॥ १०२ ॥ यथोक्तसमयालाभे योगान्वच्मि शुभप्रदान् । द्विजन्मकालसंभूतान्वसिष्ठाङ्गिरसोक्तितः ॥ १०३ ॥ जीवे केन्द्रे त्रिकोणे वा भानौ शुक्रेऽथवा व्यये । धने ज्ञे चोपनीतस्तु वेदविद्याविशारदः ॥ १०४ ॥ लग्नार्थभ्रातृगे शुक्रे जीवे कोणार्थकण्टके । त्रिषडेकादशे क्रूरे व्रती भवति धार्मिकः ॥ १०५ ॥ गुरौ केन्द्रे भवे भानौ चन्द्रे शुभनवांशगे । शुभग्रहदृगायुक्ते चिरायुर्धनवान्भवेत् ॥ १०६ ॥ भृगौ मीने वृषे वाऽपि जीवे केन्द्रत्रिकोणगे । कर्किचापझषस्थेऽ-

---

१ क. °दृष्टोऽ° । २ क. °धाधिपे° । ३ ख. °दा वृत्तिवृत्तिवि°। ४ ख ग. °केन्द्रगे°

स्मिन्व्रती वेदार्थविद्भवेत् ॥ १०७ ॥ दशमायोदये याताः शुक्रभानुबुधाः क्रमात् । चन्द्रे शुभांशगे शुद्धे रन्ध्रे विद्यार्थवान्वटुः ॥ १०८ ॥ बुधार्किशुक्राः कर्मायलग्नगाः क्रमशो यदि । जीवशुक्रबुधाः केन्द्रे बलिनोऽर्केन्दुवेदपाः ॥१०९॥ उपनीतस्तदा शिष्यो दीर्घायुर्यज्ञकृद्भवेत् । एकोदरप्रसूतानामेकस्मिन्मण्डपेऽहनि । एकलग्नेऽपि भिन्नांशे व्रतं महति संकटे ॥ ११० ॥ वसन्तसमये दद्यादब्दे गर्भाष्टमेऽष्टमे । मेखलां जन्ममासेऽपि जन्मभे च तिथौ तथा ॥१११॥ विधिनाऽऽचार्यसामीप्यनयनं तूपनायनम् । एतत्प्रधानं सावित्रीवाचनं वाऽन्यदङ्गकम् ॥ ११२॥ मुहूर्तसमये मैषः स्वसूत्रोक्तो विधीयते । पुनरंशे शुभे ब्रूयाद्गायत्रीं सति संभवे ॥ ११३ ॥ भाष्यकारैः स्मृतेर्वाक्यान्मुख्यत्वं गुरुदर्शने । उक्तं तस्मान्मुहूर्तोऽस्य युक्त एव न संशयः ॥ ११४ ॥

इत्युपनयनम् ।

---

## अथोपाकरणम् ।

प्रयोगपारिजाते—अध्यायानामुपाकर्म श्रावण्यां श्रवणेन तु । तन्मासे हस्तयुक्तायां पञ्चम्यां वा तदिष्यते ॥ १ ॥ अवृष्ट्यौषधयस्तस्मिन्मासे तु न भवन्ति चेत् । तदा भाद्रपदे मासि श्रवणेन तु कारयेत् ॥ २ ॥ इदमत्र गृह्यम्—अथातोऽध्यायोपाकरणमोषधीनां प्रादुर्भावे श्रवणेन श्रावणस्य पञ्चम्यां हस्तेन वेति । अस्यार्थः—अध्ययनमध्यायस्तस्योपाकरणं प्रारम्भो येन कर्मणा तदध्यायोपाकरणम् । अतःशब्दो हेत्वर्थः । यस्माद्ब्रह्मयज्ञो नित्योऽतोऽध्यायोपाकरणं ब्रूम इति । तस्य कालमाह—ओषधीनामिति । श्रावणमासस्य श्रवणेन कर्तव्यम् । ओषधीनां प्रादुर्भाव इति वचनं यदा श्रावणे प्रादुर्भावो न स्यात् तदा भाद्रपदे श्रवणेन कर्तव्यमित्येवमर्थम् । वृष्ट्यपकर्षे कर्मापकर्षशङ्कैव नास्ति । यदा भाद्रपदादुत्कर्षो भवति तदाऽपि कर्मोत्कर्षशङ्का नैव कार्या । तद्वार्षिकमित्याचक्षत इतिवक्ष्यमाणसमाख्याबलात् । वर्षासु क्रियत इति वार्षिकम् । श्रावणभाद्रपदौ हि मासौ वर्षर्तुः । श्रावणे प्रादुर्भावाभावे कर्माकरणशङ्काऽप्यनेनैव निरस्ता । श्रवणेनेति श्रवणेन युक्ते काल इत्यर्थः । 'नक्षत्रेण युक्तः कालः' इत्यनेनाण् । 'लुबविशेषे' इति तस्य लुप् । 'नक्षत्रे च लुपि' इति सप्तम्यर्थे तृतीया । नक्षत्रशब्देषु सर्वत्रैवं योज्यम् । पञ्चम्यामित्यत्रापि श्रावणस्येति संबध्यते । मध्यगतस्य विशेषाभावात्प्रयोजनवत्त्वाच्च । श्रावणस्य मासस्य

---

१ ख. तस्मात्संप्रदयु° ।

पञ्चमी यदा हस्तेन युज्यते तदा वेत्यर्थः । एवंच कालत्रयमुक्तं भवति । अत्र भगवान्—अथातः श्रावणे मासे श्रवणर्क्षयुते दिने । श्रावण्यां श्रावणे मासि पञ्चम्यां हस्तसंयुते ॥ ३ ॥ दिवसे विदधीतैतदुपाकर्म यथोदितम् । अध्यायोपाकृतिं कुर्यात्तत्रौपासनवह्निना ॥ ४ ॥ अत्रोक्तश्रवणनक्षत्रे काशीखण्डे विशेषमाह व्यासः—धनिष्ठासंयुते कुर्याच्छ्रावणं कर्म यद्भवेत् । तत्कर्म सफलं ज्ञेयमुपाकरणसंज्ञितम् ॥ ५ ॥ श्रवणेन तु यत्कर्म तूत्तराषाढसंयुतम् । संवत्सरकृतोऽध्यायस्तत्क्षणादेव नश्यति ॥ ६ ॥ तत्र विरोधमाह गार्ग्यः—पर्वण्यौदयिके कुर्युः श्रावणे तैत्तिरीयकाः । बह्वृचाः श्रवणे कुर्युर्ग्रहसंक्रान्तिवर्जिते ॥ इति ॥७॥ अत्र कालविरोधमाह बृहन्मनुः—अत्रार्धरात्रादर्वाक्चेद्ग्रहः संक्रमणे (ए) व वा । नोपाकर्म तदा कुर्याच्छ्रावण्यां श्रवणेन वा ॥ इति ॥ ८ ॥ कात्यायनोऽपि—अर्धरात्रादधस्ताच्चेत्संक्रान्तिग्रहणे तदा । उपाकर्म न कुर्वीत परतश्चेन्न दोषकृत् ॥ ९ ॥ भृगुस्तु—अंते राजनि राष्ट्रे वा परचक्रादिपीडिते । अनुप्तबीजेऽनावृष्ट्या नोपाकुर्याद्विचक्षणः ॥ इति ॥ १० ॥ वसिष्ठोऽपि—अनुप्तबीजे नृपतौ विनष्टे शुभे मृते राष्ट्रसमाकुले च । उत्सर्जनोपाकरणे न कार्ये ग्रस्तेन्दुसूर्ये गुरुरस्तयाते ॥ ११ ॥ गुराविस्त्यर्थः । यत्तु वचनं वेदोपाकरणे प्राप्ते कुलीरे संस्थिते रवौ । उपाकर्म न कर्तव्यं कर्तव्यं सिंहयुक्तके । कर्कटे संस्थिते भानावुपाकुर्यात्तु दक्षिणे ॥ १२ ॥ एतत्सर्वं विचार्य श्रावणभाद्रपदयोरन्यतरस्मिन्मासे कर्तव्यम् । तदुक्तं स्मृत्यर्थसारे—श्रवण आदौ घटिकाचतुष्टयमभिजिन्नक्षत्रांशं (शो) वर्ज्यं (र्ज्यो) वा । श्रवणखण्डे सति—धनिष्ठासंयुतं ग्राह्यं नोत्तराषाढसंयुतम् । हस्तनक्षत्रं प्रयोगपर्याप्तं ग्राह्यम् । सूतकादिविघ्नसंभव ओषध्युत्पत्त्यभावेऽपि च । श्रावणभाद्रपदयोरेकस्मिन्दिने ग्रहसंक्रान्तिवर्जिते कार्यम् । कर्मणो न लोपो नोत्कर्षश्चेति । यत्तु सायणीयकारवचनं—श्रावणस्य तु मासस्य पूर्णिमायां द्विजन्मनाम् । आषाढ्यां प्रौष्ठपद्यां वा वेदोपाकरणं स्मृतम् ॥ इति ॥ १३ ॥ तदेतच्छाखान्तरविषयम् । तद्वार्षिकमित्याचक्षत इति गृह्योक्तसमाख्याबलात् । शुक्रे मूढेऽप्युपाकृत्य विद्याविक्तविनाशनम् । आयुःक्षयमवाप्नोति तस्मात्कर्म विवर्जयेत् ॥ १४ ॥ कश्यपोऽपि—गुरुशुक्रतिरोधाने वर्जयेच्छ्रुतिचोदितान् । इत्याह भगवानत्रिः श्रवणं तु विशेषतः ॥ १५ ॥ इत्येतत्प्रथमोपाकर्मविषयम् । तथोक्तं संग्रहे—गुरुभार्गवयोर्मौढ्ये वक्रे वा वार्धकेऽपि वा । तथाऽधिमाससंस्पर्शे मलमासादिषु द्विजः ॥ १६ ॥ प्रथमोपाकृतिर्न स्यात्कृतं कर्म विनाशकृत् ॥ इति ॥ १७ ॥ स्मृतिसारसमुच्चयेऽपि—यज्ञोपवीतं कर्तव्यं श्रावणे गुरुशुक्रयोः ।

---

१ क. ख. °स्मिन्दिने क्रा° । २ घ. °गुःशेषम° ।

मौढ्येऽपि वार्धके बाल्ये नित्यकर्म प्रचोदितम् ॥ १८ ॥ स्मृतिभास्करेऽपि– चण्डांशोर्मण्डलं प्राप्तौ यदा शुक्रबृहस्पती । सर्वकर्मनिवृत्तिः स्यान्नित्यं नैमित्तिकं विना ॥ १९ ॥ स्मृत्यन्तरेऽपि – नित्ये नैमित्तिके जप्ये होमयज्ञक्रियासु च । उपाकर्मणि चोत्सर्गे ग्रहवेधो न विद्यते ॥ २० ॥ एतदधिमासे कर्तव्यमित्याह चन्द्रिकायां ज्योतिष्पराशरः–उपाकर्म तथोत्सर्गमसवाहोत्सवाब्दिकाः । मासवृद्धौ परे कार्या वर्जयित्वा तु पैतृकम् ॥२१॥ उत्तरे मासि कार्यमित्यर्थः । प्रसवाहोत्सवशब्देन जातेष्टिरेव गृह्यते । एतच्च मध्याह्नादूर्ध्वमेव कर्तव्यम् । तथाचोक्तं हेमाद्रौ– उपाकर्मापराह्णे स्यादुत्सर्गः प्रातरेव च॥इति॥२२॥गोभिलोऽपि–अध्यायानामुपाकर्म कुर्यात्कालेऽपराह्णिके । पूर्वाह्णे तु विसर्गः स्यादिति वेदविदो विदुः ॥इति॥२३॥

इत्युपाकरणम् ।

---

## अथ केशान्तकर्म ।

केशान्तं षोडशे वर्षे कुर्याच्चौलोक्तभादिके । गुरुशुद्धिं विना काले व्रतोक्ते व्रतमोक्षणम् ॥ १ ॥ अथवा वक्ष्यनक्षत्रवारलग्नेषु शस्यते । गुरोर्गेहान्निवृत्तानां समावर्तनमण्डनम् ॥ २ ॥ नारदः–अथोत्तरायणे शुक्रजीवयोर्दृश्यमानयोः । द्विजातीनां गुरोर्गेहान्निवृत्तानां यतात्मनाम् ॥ ३ ॥ चित्रोत्तरादितीज्यान्त्यहरिमित्रविधातृषु । भेष्वर्केन्दुज्ञार्यशुक्रवारलग्नांशकेष्वपि ॥ ४ ॥ अथवा वक्ष्यनक्षत्रवारलग्नांशकेषु च । प्रतिपत्पर्वरिक्तामा अष्टमीं च दिनक्षयम् । हित्वाऽन्यदिवसे कार्यं समावर्तनमण्डनम् ॥ ५ ॥

इति केशान्तकर्म ।

---

## अथ विद्यारम्भः ।

विद्यया लुप्यते पापं विद्ययाऽऽयुः प्रवर्धते । विद्यया सर्वसिद्धिः स्याद्विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥ १ ॥ द्वितीयजन्मतः पूर्वमक्षराभ्यासमारभेत् । मौञ्जीबन्धनतः पश्चाद्विद्यारम्भः प्रशस्यते ॥ २ ॥ कन्यार्के सबले सौम्ये योगे सारस्वताभिधे । गणेशं गिरमभ्यर्च्य सर्वा विद्याः समारभेत् ॥ ३ ॥ बृहस्पतिमतं चैव तदभावेऽधुनोच्यते । सौम्यायने प्रदोषादि चिन्तयेद्व्रतबन्धवत् ॥ ४ ॥ मघायाम्यध्रुवाग्नीन्द्रद्वीशानिन्दुकुजार्कजान् । अनध्यायं तदाद्यन्तं त्यक्त्वा विद्यां समारभेत्॥५॥ आदित्यादिषु वारेषु विद्यारम्भे फलं क्रमात् । आयुर्जाड्यं मृतिर्मेधा सुधीः प्रज्ञा ननुक्षयः ॥ ६ ॥ हस्तत्रिके त्रिके कर्णात्पूर्वासु मृगपञ्चके । मूलाश्विमित्रपौष्णेषु

सुवसंस्कारमि(इ)ष्यते ॥ ७ ॥ शुक्लपक्षे शुभाः सर्वे विद्यारम्भे दिनं तथा । विहायार्धं त्रिभागं वा परं कृष्णेऽपि शस्यते ॥ ८ ॥ यदा चन्द्रो बुधांशस्थो बुधजीवसितेक्षितः । निषिद्धेऽपि च मासादौ विद्या शस्तेति केचन ॥ ९ ॥ लग्नवारदशा वर्ज्या विद्यारम्भेऽर्कभौमयोः । लग्ने द्वयङ्गे सुविद्याप्तिः स्थिरे जाड्यं चरे भ्रमः ॥ १० ॥ बृहस्पतिः—प्रथमा च द्वितीया च तृतीया पञ्चमी तथा । दशमी द्वादशी चैव एकादश्यस्तु पूजिताः ॥ ११ ॥ त्रयोदशी सप्तमी च कदाचिच्छुभदे तिथी । यदा चन्द्रो बुधांशस्थो बुधजीवसितेक्षितः ॥ १२ ॥ त्रिषडायगताः पापास्त्रिकोणे कण्टके शुभाः । विद्यारम्भे शुभाः प्रोक्ताः सक्रूरं पञ्चमं त्यजेत् ॥ १३ ॥ विशेषाद्बुधवर्गेषु बुधदृष्टे बुधोदये । बुधवारे च होरायां विद्या शस्तोदिते विदि ॥ १४ ॥ एषु सर्वेषु शस्तेषु शुभं स्यादितरेषु च । अपवादो न चेत्तत्र योगान्वक्ष्याम्यभीष्टदान् ॥१५॥ हस्ते बुधांशके युक्ता यदि भान्विन्दुसोमजाः । सोमवारे रवौ लग्ने योगः सारस्वतो भवेत् ॥१६॥ अत्युच्चस्थे बुधे लग्नेऽपार्थो नाऽद्यत्रिभागके । भानौ तत्सौम्यवारे च योगो वागीश्वराह्वयः ॥ १७ ॥ हस्ते बुधांशकस्थौ चेद्बुधेन्दू लग्नगौ यदा । बुधवारे च होरायां योगः सारस्वताभिधः ॥ १८ ॥ इन्द्वर्कज्ञदिने वारे नाथलग्ने बुधांशके । हस्तर्क्षे च गता ह्येते योगः सारस्वताह्वयः ॥ १९ ॥ बुधोत्तमे गुरोरंशे केन्द्रगा ज्ञार्कभार्गवाः । त्रयोदश्यां यमे लग्ने योगः सारस्वताह्वयः ॥ २० ॥ कर्किणः पञ्चमे भागे गुरावुदयगे सति । गुरोर्वारे च होरायां विद्यायोगोऽयमुत्तमः॥२१॥ प्रारम्भे सर्वविद्यानामनध्यायं विवर्जयेत् । नष्टं बुधं च विबलं लग्नं क्षीणं विधुं तथा ॥ २२ ॥

इति विद्यारम्भः ।

---

## अथानध्यायाः ।

प्रतिपत्पूर्णिमाऽष्टा च चतुर्दश्यष्टमी तथा । अनध्यायाः सोपपदा युगमन्वादयस्तथा ॥ १ ॥ नारदः—अयने विषुवे चैव शयने बोधने हरेः । अनध्यायस्तु कर्तव्यो मन्वादिषु युगादिषु ॥ २ ॥ कार्तिके शुक्लनवमी त्वादिः कृतयुगस्य च । त्रेतादिर्माधवे शुक्ला तृतीया पुण्यसंज्ञिता ॥ ३ ॥ कृष्णा पञ्चदशी माघे द्वापरादिरुदाहृता । कल्पादिः स्यात्कृष्णपक्षे नभस्ये च त्रयोदशी ॥ ४ ॥ द्वादश्यूर्जे शुक्लपक्षे नवम्याश्वयुजे सिते । चैत्रे भाद्रपदे चैव तृतीया शुक्लसंज्ञिता ॥ ५ ॥ एकादशी सिता पौषेऽप्याषाढे दशमी सिता । माघे च सप्तमी शुक्ला नभस्येऽ-

प्यसिताष्टमी ॥ ६ ॥ श्रावणे मास्यमावास्या फाल्गुने मासि पूर्णिमा । आषाढे कार्तिके मासि चैत्रे ज्येष्ठे च पूर्णिमा । मन्वादयः स्नानदानश्राद्धेष्वत्यन्तपुण्यदाः ॥७॥ संग्रहे-मार्गशीर्षे तथा पौषे माघमासे तथैव च । तिस्रोऽष्टकाः समाख्याताः कृष्णपक्षे तु सूरिभिः ॥ ८ ॥ सिता ज्येष्ठे द्वितीया तु आश्विने दशमी सिता । चतुर्थी द्वादशी माघ एताः सप्तपदाः स्मृताः ॥ ९ ॥ चातुर्मास्यद्वितीया गर्गेणोक्ताः-शुचावूर्जे तपस्ये च द्वितीया च विधुक्षये । चातुर्मास्यद्वितीयास्ताः प्रवदन्ति महर्षयः ॥ १० ॥

इत्यनध्यायाः ।

----

## अथ च्छुरिकाबन्धनम् ।

नारदः-छुरिकाबन्धनं वक्ष्ये नृपाणां प्राक्करग्रहात् । विवाहोक्तेषु मासेषु शुक्लपक्षेऽप्यनस्तगे ॥ १ ॥ जीवे शुक्रे च भूपुत्रे चन्द्रताराबलान्विते । मौञ्जीबन्धर्क्षतिथिषु कुजवर्जितवासरे ॥ २ ॥ संग्रहे-शूद्राणां राजपुत्राणां मौञ्जीभावेऽस्त्रबन्धनम् । मौञ्जीबन्धोक्ततिथ्यादौ कार्यं भौमदिनं विना ॥ ३ ॥ नारदः-धनत्रिकोणकेन्द्रस्थैः शुभैस्त्र्यायारिगैः परैः । छुरिकाबन्धनं कार्यमर्चयित्वा सुरान्पितॄन् ॥ ४ ॥ अर्चयेच्छुरिकां सम्यग्देवतानां च संनिधौ । ततः सुलग्ने बध्नीयात्कट्यां लक्षणसंयुताम् ॥ ५ ॥ तस्यास्तु लक्षणं वक्ष्ये यदुक्तं ब्रह्मणा पुरा । संमितं छुरिकायामं विस्तारेणैव ताडयेत् ॥ ६ ॥ भाजितं गजसंख्यैश्च अङ्गुलान्प(लीः प)रिकल्पयेत् । शेषं चैव फलं वक्ष्ये ध्वजाये धनवान्भवेत् ॥७॥ धूमाये मरणं सिंहे जयः श्वायेऽतिरोगिता । धनलाभो वृषेऽत्यन्तं दुःखी भवति गर्दभे ॥ ८ ॥ गजायेऽत्यन्तसंप्रीतिर्ध्वाङ्क्षे वित्तविनाशनम् । आयामाधोग्रविस्तारप्रमाणेनैव ताडयेत् ॥ ९ ॥ तच्छेदखण्डान्यायाः स्युर्ध्वजाये रिपुनाशनम् । खड्गपुत्रिकयोर्मानं गणयेत्स्वाङ्गुलेन तु ॥ १० ॥ मानाङ्गुलेषु पर्यायैनैकादशमितांस्त्यजेत् । स्वामिनोऽङ्गुलिभिर्गुण्यं शस्त्रं मुष्टिं विहाय तु ॥ ११ ॥ तन्मानं विभजेद्रुद्रैः शेषाङ्कस्य फलं क्रमात् । पुत्रलाभः शत्रुवृद्धिः स्त्रीलाभो गमनं शुभम् ॥ १२ ॥ अर्थहानिश्चार्थवृद्धिः प्रीतिः सिद्धिर्जयः क्षितिः । स्थितो ध्वजे वृषाये वा मध्ये चेत्पूर्वतो व्रणी ॥ १३ ॥ सिंहे गजे मध्यभागे त्वन्त्यभागे श्वकाकयोः । धूमगर्दभयोर्नैव व्रणं श्रेयोऽन्त्यभागजम् ॥ १४ ॥

इति च्छुरिकाबन्धनम् ।

## अथ विवाहप्रकरणम् ।

वराहः—स्त्रीरत्नभोगोऽस्ति नरस्य यस्य निःस्वोऽपि सों प्रत्यवनीश्वरोऽसौ । राज्यस्य सारोऽशनमङ्गनाश्च तृष्णानलोद्दीपनदारु शेषम् ॥ १ ॥ रत्नहेमाद्यलंकारा भोगा मृगमदादयः । व्यर्थाः सर्वे न राजन्ते इन्द्रियाणि स्त्रियमन्तरा ॥२॥ नारदः—सर्वाश्रमाणामाश्रयो गृहस्थाश्रम उत्तमः । यतस्तदपि योषायां शीलवत्यां स्थितस्ततः ॥ ३ ॥ तस्याः सच्छीललब्धिस्तु सुलग्नवशतः खलु । पितामहोक्तां संवीक्ष्य लग्नशुद्धिं प्रवच्म्यहम् ॥ ४ ॥ शौनकः—प्रमदाफलस्य सदसज्जातकविहितस्य यदि न नाशोऽस्ति । तत्किमनेन बहुना पुनरप्युद्वाहलग्नेन ॥ ५ ॥ अथ तु विलग्नाधीना सिद्धिर्नियमेन भवति दंपत्योः । प्राक्तनकृतसंचयफलं तच्च नृणां चैव वक्तव्यम् ॥ ६ ॥ येन तु यत्प्राप्तव्यं तस्य विधानं सुरेश इन्द्रोऽपि । यः प्राक्षाचीतिज्ञः सोऽपि न शक्तोऽन्यथा कर्तुम् ॥ ७ ॥ ननु जन्मकाले शुभाशुभफलं गदितं तच्चेत्प्रमाणं ततो यदि जन्मफलमशुभमस्ति तत्कथं विवाहलग्नेन शुभं भवति चेद्विवाहलग्नप्राबल्यं तज्जातकादीनामानर्थक्यप्रसङ्गः । सत्यं यज्जातके फलमुक्तं तस्य विवाहे तत्कालग्रहवशेनाऽऽधिक्यं न्यूनता च भवति । तथाचोक्तं बृहज्जातके—पाकस्वामिनि लग्नगे सुहृदि वा वर्गेऽथ सौम्येऽपि वा प्रारब्धा शुभदा दशा त्रिदशपड्लाभेषु वा पाकपे । मित्रोच्चोपचयत्रिकोणमदने पाकेश्वरस्य स्थितश्चन्द्रः सत्फलबोधनानि कुरुते पापानि चातोऽन्यथा ॥ ८ ॥ अत्र जन्मफलं शुभमपि दशाप्रवेशकालचन्द्रस्य स्थानवशाच्छुभतरमुक्तम् । पापदृष्टतत्कालचन्द्रवशाज्जन्मफलं दुष्टमशुभतरमुक्तम् । एवं जन्मफलमशुभमपि विवाहलग्नवशाच्छुभम् । शुभं तु जन्मफलं विवाहलग्नशुभग्रहसंस्थानवशादतीव शुभमिति सर्वमनवद्यम् ॥

इति लग्नप्रामाण्यम् ।

---

## अथ विवाहे कुलविचारः ।

साषिण्ड्यं गोत्रशुद्धिं च शीलं सामुद्रिकाणि च । जातकादिभमेलं च वीक्ष्यं वाग्दानतः पुरा ॥ १ ॥ तत्र कुलपरीक्षा मिताक्षरायां—वध्वा वरस्य वा तातः कूटस्थाद्यदि सप्तमः । पञ्चमी चेत्तयोर्माता तत्साषिण्ड्यं निवर्तते ॥ २ ॥ मनुः—लेपभाजश्चतुर्थाद्याः पित्राद्याः पिण्डभागिनः । पिण्डदः सप्तमस्तेषां साषिण्ड्यं साप्तपौरुषम् ॥ ३ ॥ संतानं भिद्यते यस्मात्पूर्वजाद्भयश्च च । तमादाय गणये-

---

१ क. ख. चतुर्वेदी[१] ।

द्धीमान्वरं यावच्च कन्यकाम् ॥ ४ ॥ धर्मप्रदीपे—असपिण्डां च पितृतः सप्तमात्पुरुषात्परम् । मातृतः पञ्चमादूर्ध्वमसमानार्षगोत्रजाम् ॥ ५ ॥ स्मृतिचन्द्रिकायां निर्णयवचनं—मूलगोत्रादन्यगोत्रामुद्वहेदष्टमोऽष्टमीम् । अन्यगोत्रादन्यगोत्रां षष्ठः षष्ठीं समुद्वहेत् ॥ ६ ॥ तृतीयां वा चतुर्थीं वा पक्षयोरुभयोरपि । विवाहयेन्मनुः प्राह पाराशर्योऽङ्गिरा यमः ॥ ७ ॥ मातुलस्य सुतामूढां मातृगोत्रां तथैव च । समानप्रवरामूढां परित्यज्य प्रपालयेत् ॥ ८ ॥ पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा । उभयोर्मातृतश्चैव षष्ठः षष्ठीं समुद्वहेत् ॥ ९ ॥ लिङ्गपुराणे—वाक्संबन्धकृतानां तु स्नेहसंबन्धभागिनाम् । विवाहोऽत्र न कर्तव्यो लोकगर्हा प्रसज्यते ॥ १० ॥ स्मृतिमहार्णवे—या दुष्प्रतीतसंबन्धा मातृगोत्रद्वये च या । सगोत्रा च सपिण्डा च वर्ज्या सोद्वाहकर्मणि ॥ १० ॥

इति विवाहे कुलविचारः ।

---

## अथ गोत्रप्रवरनिर्णयः ।

समानप्रवरां कन्यां सपिण्डां चैकगोत्रजाम् । नैव तां वरयेत्प्राज्ञो मातृवत्परिकीर्तिता ॥ १ ॥ एक एव ऋषिर्यत्र प्रवरेष्वनुवर्तते । तावत्समानगोत्रत्वमृते भृग्वङ्गिरोगणात् ॥ २ ॥ प्रवरमञ्जर्यां—पञ्चानां त्रिषु सामान्यादविवाहस्त्रिषु द्वयोः । भृग्वङ्गिरोगणेष्वेवं शेषेष्वेकोऽपि वारयेत् ॥ ३ ॥ समानप्रवरो भिन्नो मातृगोत्रे वरस्य च । विवाहो नैव कर्तव्यः सा कन्या भगिनी भवेत् ॥ ४ ॥ प्रवरप्रदीपे—पैत्रे प्रवराभिन्नत्वं चिन्तनीयं न मातृके । केवलं मातृकं गोत्रं वर्ज्यं कात्यायनोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥ गोत्रं मातुरपुत्राया वर्जयेत्प्रवरान्न तु । सपुत्रायास्तु नो गोत्रं प्रवरांश्च न चिन्तयेत् ॥ ६ ॥ प्रयोगपारिजाते—असमानार्षगोत्रजामिति । ऋषेरिदमार्षं प्रवरगोत्रप्रवर्तकस्य मुनेर्व्यावर्तको मुनिगण इत्यर्थः । तद्यथा गोत्रप्रवर्तकस्य भारद्वाजस्य व्यावर्तकावङ्गिरोबृहस्पती । अत एवाऽऽङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजगोत्रामिति प्रयुञ्जते । एवमन्यत्राप्युदाहार्यम् । गोत्रं तु वंशपरम्पराप्रसिद्धम् । यस्या वध्वा वरेण सह प्रवरैक्यं गोत्रैक्यं वा नास्ति सा वधूर्विवाहमर्हेति । क्वचिद्गोत्रभेदेऽपि प्रवरैक्यमस्ति । याज्ञवल्क्यवाधूलमौनमौकानां भिन्नगोत्राणां भार्गववैतहव्यसावेतसेति प्रवरैक्याद्-तस्त्र विवाहप्रसक्तौ तद्व्यवच्छेदायासमानार्षामित्युक्तम् । क्वचित्प्रवरभेदेऽपि गोत्रैक्यम् । तद्यथा—आङ्गिरसाम्बरीषयौवनाश्वेति । मान्धात्राम्बरीषयौवनाश्वेति ।

१ क. °र्षगोत्रे° । २ घ. °शाखेत° ।

अत्राऽऽङ्गिरसमान्धातृप्रवरभेदेऽपि यौवनाश्वगोत्रमेकम्। अतस्तत्र विवाहो मा भूदित्यसमानगोत्रग्रहणम्। अत्र विशेषमाह सूत्रकारः—एक एव ऋषिर्यावत्प्रवरेष्वनुवर्तते। तावत्समानगोत्रत्वमन्यत्र भृग्वङ्गिरसां गणात् इति ॥७॥ गोत्रप्रवर्तकाः प्राधान्येनाष्टौ मुनयः। ते च—अगस्त्याष्टमाः सप्तर्षयः। तथा च बौधायनः—विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोऽथ गौतमः। अत्रिर्वसिष्ठः कश्यप इत्येते सप्तर्षयः। सप्तानामृषीणामगस्त्याष्टमानां यदपत्यं तद्गोत्रमित्याचक्षत इति। अत्र संग्रहकारस्त्वष्टादश गणानाह—जामदग्न्यो वीतहव्यो वैन्यो गृत्समदाह्वयः। वाध्र्यश्वो गौतमाख्यश्च भरद्वाजाह्वयः कपिः ॥८॥ हरितो मौद्गलः कण्वो विरूपो विष्णुवृद्धयः (द्धः)। अत्रिर्विश्वामित्रकौ च वसिष्ठः कश्यपाह्वयः। अगस्त्यश्चेति मुनयो ह्यष्टादश गणाः स्मृताः ॥९॥ जामदग्न्यः—जामदग्न्यश्च वत्सश्च श्रीवत्सश्चानवाह्वयः। आप्नवानौर्वसार्वर्णी जीवन्तो देवरातकः। शीतशायनशारवाख्यो वैरोहित्यो वटाह्वयः ॥ १० ॥ मण्डः प्राचीनयोग्यः स्यादार्ष्टिषेणस्त्वरूपकः। एतानि भार्गवाख्यानि दशसप्तोत्तराणि च। जामदग्न्यगणे तस्मिन्न विवाहः परस्परम् ॥ ११ ॥ वीतहव्यः—वीतहव्ययस्कमौनमौकवाधूलसंज्ञकाः। सावेदश्च षडेतानि भार्गवाख्यान्वये गणः। वीतहव्यस्य वाऽन्योन्यं न कार्यं पाणिपीडनम् ॥ १२ ॥ वैन्यः—वैन्यः पार्थश्च गोत्रे द्वे भवतो भार्गवाह्वयः। एष वैन्यगणस्तत्र अन्योन्यं न करग्रहः ॥ १३ ॥ गृत्समदः—उभे गोत्रे गृत्समदः शौनको भार्गवाह्वयः। गणो गृत्समदस्तस्मिन्नान्योन्यं पाणिपीडनम् ॥ १४ ॥ वाध्र्यश्वः—द्वे वाध्र्यश्वो मित्रयुग्मो गोत्रे भार्गवनामकः। वाध्र्यश्वस्य गणस्तस्मिन्नुद्वाहो न परस्परम् ॥ १५ ॥ जामदग्न्यादयः पञ्च गणा भृगुगणाः स्मृताः। न चैतेषां गणानां तु विवाहः स्यात्परस्परम् ॥ १६ ॥ गोतमः—गौतमो यस्य औतथ्यः कक्षीवानौशिजस्तथा। बृहदुक्थो वामदेवो गोत्राणीमानि सप्त च। गौतमस्य गणस्तस्मिन्विवाहो न परस्परम् ॥ १७ ॥ भारद्वाजः—भारद्वाजः कुशः क्षग्निर्वेश्य ऊर्जयमः कृतः। शैशिरः शीरशुङ्गश्च चदनश्च बृहस्पतिः ॥ १८ ॥ सर्वेतम्बः कपिर्नीतवचसो गार्ग्यसैन्यकौ। भारद्वाजगणः सप्तदशगोत्रमिति स्मृतम्। तस्मिन्परस्परं कार्यं न कन्यापाणिपीडनम् ॥ १९ ॥ कपिः—कपिश्च महदक्षीयो रुक्षीयस्त्रीणि केवलम्। अयं कपिगणोऽन्योन्यं तस्मिन्न हि करग्रहः ॥ २० ॥ हरितः—हरितो यौवनाश्वश्च मान्धाता कुत्सनामकः। पिङ्गलः शङ्खदर्भौ च भीमश्च गवनायकः ॥ २१ ॥ अम्बरीषो दर्भ-

१ ध. 'मित्र: कौश्रव'। २ घ. 'र्शिर्जी'। ३ क. 'स्वरूप'। ४ घ. वैन्याश्रयाश्च। ५ छ. 'नौंचय'।

तानि हारितस्य गणः स्मृतः । तस्मिन्परस्परं पाणिग्रहणं न हि शोभनम् ॥२२॥ मौद्गल्यः—मौद्गल्यतार्क्ष्यभार्म्याश्वाश्त्रीणि गोत्राण्यमूनि हि । मौद्गल्यस्य गणस्तत्र न मिथः पाणिपीडनम् ॥ २३ ॥ कण्वः—कण्वोऽजमीढ इत्येते गोत्रे कण्वगणः स्मृतः । तस्मिन्परस्परं पाणिग्रहणं न शुभं मतम् ॥ २४ ॥ विरूपः—विरूपोऽष्टादंष्ट्रिनामा पृषदश्वश्च मौद्गलः । चत्वारीमानि गोत्राणि विश्वरूपगणः स्मृतः । परस्परं विवाहोऽस्मिन्न विधेय इतीरितः ॥ २५ ॥ विष्णुवृद्धः—विष्णुवृद्धः पौरुकुत्सस्त्रसदस्युः कतस्तथा । मापणो भद्रणाख्यश्च बादरायणसंज्ञकः ॥२६॥ सत्यकामौपमित्यौ च गविः सात्यकितालुकी । नितुन्दश्चेति गोत्राणि त्रयोदशमितानि च ॥ २७ ॥ विष्णुवृद्धगणस्तस्मिन्न विवाहः परस्परम् । गौतमस्य गणा ह्यष्टौ यस्तथाऽङ्गिरसो गणः । तथाऽप्येषां गणानां तु विवाहः स्यात्परस्परम् ॥ २८ ॥ अत्रिः—तदेतद्गोत्रनवकमत्रिः स्यान्मर्चनानसः । श्यावाश्वो धामरन्ध्रश्च गविष्ठिरधनञ्जयौ ॥ २९ ॥ सुमङ्गलस्तिथिर्बजिवापश्चात्रिगणो ह्ययम् । आत्रेयाख्ये विवाहोऽस्मिन्न विधेयो मिथः शुभम् ॥ ३० ॥ विश्वामित्रः—विश्वामित्रो देवरातो मनुस्तन्तुश्च औलकिः । बालकिर्थिकितोलूकौ याज्ञवल्किश्च नारदः ॥३१॥ बृहदग्निः कालवर्वौ शवलीवहुलोहितौ । शालङ्कायनवावर्ण्यकामकायनपूरणौ ॥३२॥ शालवातोऽग्निदेवश्च मदनः कौशिकोष्टकौ । आज्यो मधुच्छन्दसश्च देवश्चवधनञ्जयौ ॥ ३३ ॥ शुङ्गः कतः शैशिनश्च वारिधारोऽघमर्षणः । सुनुः पनश्च धूम्राख्यो जठरस्त्वेकहव्यकः ॥ ३४ ॥ अष्टात्रिंशच्च गोत्राणि विश्वामित्रगणः स्मृतः । एतस्मिन्नपि चान्योन्यं न कुर्यात्पाणिपीडनम् ॥ ३५ ॥ कश्यपः—कश्यपो रेभरौभौ च शाण्डिल्यो देवलोहितः । सांकृतिः पूतिमापश्च वत्सरो नैध्रुवो दश । गोत्राणि कश्यपगणस्तत्रान्योन्यं न दोग्रहः ॥ ३६ ॥ वसिष्ठः—वसिष्ठ इन्द्रप्रमदस्त्वाभरद्वसुसंकृतिः । कौण्डिन्यः पूतिमापश्च गौरवीतिः पराशरः ॥ ३७ ॥ मैत्रावरुणसविधश्च उपमन्युगणः स्मृतः । एकादश वसिष्ठस्य गोत्रस्यास्मिन्न दोर्ग्रहः ॥ ३८ ॥ अगस्त्यः—त्रीण्यगस्त्यो वीतवाहो दार्ढ्यच्युत इति स्मृतः । एषोऽगस्त्यगणस्तस्मिन्न विवाहः परस्परम् ॥ ३९ ॥ जमदग्निगणस्यापि विश्वामित्रगणस्य च । न देवरातगोत्रेण विवाहः स्यात्परस्परम् ॥४०॥ भरद्वाजगणस्यापि विश्वामित्रगणस्य च । कतशैशिरशुङ्गैश्च नान्योन्यं पाणिपीडनम् ॥४१॥ काश्यपेयगणस्यापि विश्वामित्रगणस्य च । संकृतिपूतिमापाभ्यां विवाहो न परस्परम् ॥ ४२ ॥ आत्रेयस्य गणस्यापि विश्वामित्रगणस्य च । धनंजयाख्यगोत्रेण नान्योन्यं पाणिपीडनम् ॥ ४३ ॥ भरद्वाजगणस्यापि

तथा कपिगणस्य च । विवाहो न विधेयः स्यादन्योन्यं तु कदाचन ॥ ४४ ॥ मौद्गलस्य गणस्यापि विरूपस्य गणस्य च । परस्परं न कुर्वीत पाणिपीडनसत्क्रियाम् ॥ ४६ ॥ अनाप्तृयोराकुलयः श्यातयो राजचारयः । सरश्चावाहिजाश्चैव वाहत्रस्तदनन्तरम् ॥ ४७ ॥ तथाचाशुशयः प्रोक्ताः सैरन्ध्यो राजसेवकाः । स्वापलिङ्कश्च लौगाक्षिस्तथैव शरवन्दकाः ॥ ४८ ॥ एते त्रयोदश प्रातर्वसिष्ठा निशि कश्यपाः । गायत्रीयोनिसंबन्धावङ्गीकृत्य प्रवर्तकाः ॥ ४९ ॥ अहर्वसिष्ठत्वं रात्रौ कश्यपत्वमपि स्वयम् । तेषां गोत्रत्रयं मुक्त्वा वासिष्ठं काश्यपं तथा । सर्वत्रापि विवाह्याः स्युरिति वेदविदो विदुः ॥ ५० ॥ यत्तु स्मृत्यन्तरं— सावित्रीं यस्य यो दद्यात्तत्कन्यां न विवाहयेत् । तद्गोत्रे तत्कुले वाऽपि विवाहो नैव दोषकृत् ॥ ५१ ॥ इति तत्स्वगोत्र(त्रा)ज्ञातृविषयम् । गुरोः सगोत्रप्रवरा नोद्वाह्याः क्षत्रवैश्ययोः । स्वगोत्रख( स्या ) नभिज्ञश्च विप्राचार्यगोत्रजाः ॥ ५२ ॥ द्व्यामुष्यायणकाः सर्वे दत्तक्रीतकादयः । गोत्रद्वयेऽप्यनुद्वाहः शुङ्गशैशिरयोस्तथा ॥ ५३ ॥ असंप्रज्ञातबन्धूनामाचार्यप्रवराः स्मृताः । पक्षे चास्मिन्विवाहोऽपि सगोत्रैः सह नेष्यते ॥५४॥ येऽत्र समप्रवरां विवहेयुस्तेषां निष्कृतिरुच्यते । संग्रहे—सगोत्रां समानप्रवरां कामतः परिणीय प्रजामुत्पाद्य गुरुतल्पगव्रतं चरेत् । प्रजां चाण्डालेषु निक्षिपेत् । अकामतस्त्वब्दकृच्छ्रं प्रजाया भारद्वाजगोत्रान्तर्भा॰ः । प्रजानुत्पादे चान्द्रायणम् । विवाहमात्रे कृच्छ्रं चरेत् । सर्वत्र व्रतान्तेऽष्टोत्तरशतं समिधां होमः । परित्यक्तां तां जननीवद्रक्षेदिति ।

इति गोत्रप्रवरनिर्णयः ।

---

## अथ वरगुणाः ।

कुलं शीलं वपुर्विद्या वयो वित्तं सनाथता । गुणाः सप्त वरे यस्मिंस्तस्मै कन्या प्रदीयते ॥ १ ॥ ब्राह्मणस्य कुलं ग्राह्यं न वेदाः सपदक्रमाः । कन्यादाने तथा श्राद्धे न विद्या तत्र कारणम् ॥२ ॥ कारिकानिबन्धे—अन्धो मूकः क्रियाहीनश्चापस्मारी नपुंसकः । दूरस्थः पतितः कुष्ठी दीर्घरोगी वरो न सन् ॥ ३ ॥ नात्यासन्ने नातिदूरे नात्याढ्ये नातिदुर्बले । वृत्तिहीने च मूर्खे च षट्सु कन्या न दीयते ॥ ४ ॥ मूर्खनिर्धनदूरस्थशूरमोक्षाभिलाषिणाम् । त्रिगुणाधिकवर्षाणां न देया जातु कन्यका ॥ ५ ॥ यस्यास्य प्लवते बीजं हादि मूत्रं च फेनिलम् ।

---

१ प. 'नाम्नुगो'।

पुमान्स्याल्लक्षणैरेतैर्विपरीतस्तु पण्डकः ॥ ६ ॥ अपरीक्ष्य वरं कन्यां निर्गुणाय ददाति यः । कुलं तस्यैव तच्छोकसंतप्तोर्वी निकृन्तति ॥ ७ ॥

इति वरगुणाः ।

---

## अथ कन्यागुणाः ।

वधूं सुलक्षणोपेतां प्रसन्नाख्यां कुलोद्भवाम् । कन्यकां वरयेद्रूपवतीमव्यङ्गवि-ग्रहाम् ॥१॥ अपुत्रा ह्यक्रिया त्याज्या निश्छेदा रोमशीर्षका । दुर्भगा त्वथापस्मारी कुष्ठी कुरया कुलस्त्रियः ॥ २ ॥ कारिकानिबन्धे–ज्योतिःसागरेच–भुजगविहङ्गमभी-षणपादपनाम्नी लकाररेफान्ता । ऋक्षनदीनदसंज्ञा न विवाह्या कन्यका सद्भिः ॥ ३ ॥ अत्रान्तशब्देनोपान्तो लक्षितः । धन्या पर्वतपुष्पाख्या पुष्प-नाम्नी च कन्यका । अतिदीर्घा च कपिला वर्ज्या कृष्णाऽतिरोमशा ॥ ४ ॥ ठान्तं भीषणमाख्यातं नद्याप्यं वारुणं नदः । पक्षिद्वीशं तरुमूलं सार्पाश्लेपार्क्षकं मघा ॥ ५ ॥ इति केचिन्मतं प्रोक्तं परैः प्रोक्तमथोच्यते । भुजङ्गादिप्रसिद्धार्थ-नाम्नीं कन्यां विवर्जयेत् ॥ ६ ॥

इति कन्यागुणाः ।

---

## अथ सामुद्रिकलक्षणानि ।

अर्चितं वचनमुन्नतं मनो निर्विशेषसुखदं दृशां वपुः । अस्ति चेदथ परा-ङ्मुखी मतिर्लक्षणैः किमपरैर्नृयोषिताम् ॥ १ ॥ मनसश्चक्षुषो यस्मिन्वरे यस्यां च योषिति । संतोषो जायते तत्र नान्यत्किंचिद्विचिन्तयेत् ॥ २ ॥ तत्रापि किंचिदुच्यते–पञ्चदीर्घं चतुर्ह्रस्वं पञ्चसूक्ष्मं पडुन्नतम् । सप्तरक्तं त्रिगम्भीरं त्रिवि-स्तीर्णं प्रशस्यते ॥ ३ ॥ हनुलोचनबाहुनासिकाः स्तनयोरन्तरमत्र पञ्चमम् । इति दीर्घमिदं तु पञ्चकं न भवत्येव नृणामभूभृताम् ॥४॥ नाभिः स्वरः सत्त्व-मिति प्रशस्तं गम्भीरमेतत्त्रितयं नराणाम् । उरो ललाटं वदनं च पुंसां विस्ती-र्णमेतत्त्रितयं प्रशस्तम् ॥ ५ ॥ वक्षोऽथ कक्षाद्वयनासिकास्यकृकाटिकाश्चेति पडु-न्नतानि । ह्रस्वाणि चत्वार्यथ लिङ्गपृष्ठे ग्रीवा च जङ्घे च हितप्रदानि ॥ ६ ॥ नेत्रान्तपादकरतालवधरोष्ठजिह्वा रक्ता नखाश्च खलु सप्त सुखावहानि । सूक्ष्माणि पञ्च दशनाङ्गुलिपर्वकेशाः सार्कं त्वचा कररुहाश्च न दुःखितानाम् ॥ ७ ॥ यवोऽङ्गुष्ठोदरे यस्य यशस्वी च नरो भवेत् । अनामिकया मूलजा स्याद्रेखा

---

१ प.निष्ठ-दो । २ प. °रिणर्ही ।

यस्य स पुण्यवान् ॥ ८ ॥ उरोविशालो धनवान्हनो शौर्येऽपराजितः । बहुपुत्रः कटिस्थूलो विशालचरणो धनी ॥ ९ ॥ चक्षुःस्नेहे च सौभाग्यं दन्तस्नेहेन भोजनम् । वपुःस्नेहेन सौभाग्यं पादस्नेहेन वाहनम् ॥ १० ॥ उलूकाक्षाश्च काकाक्षा मण्डूकाक्षाश्च ये नराः । अल्परोमकपोलाश्च ते सर्वे पापबुद्धयः ॥११॥ विस्वराः काकनादाश्च केकरा वक्रनासिकाः । शिराला रोमशा ह्रस्वोत्तरोष्ठास्ते हि पापिनः ॥ १२ ॥ पितृशीलोत्तमा कन्या मातृशीलो वरस्तथा । समपृष्ठस्तुल्यरूपो विवाहः सुखदो भवेत् ॥ १३ ॥ शङ्खपद्मयवच्छत्रमालामत्स्यध्वजादयः । पादे पाणौ भवन्त्येव राज्ञां तद्योषितां तथा ॥ १४ ॥ व्यासः— मार्जारपिङ्गला नारी विषकन्येति कीर्तिता । सुवर्णपिङ्गला नारी नातिदुष्टा परे जगुः ॥ १५ ॥ कृष्णजिह्वा च लम्बोष्ठी पिङ्गाक्षी घर्घरस्वरा । त्याज्या यस्याश्च पादौ च कुचावोष्ठौ च रोमशौ ॥ १६ ॥ विरलाङ्गुलिदन्ता च कुचगण्डवृहत्त्वचा । कृष्णतालुः परित्याज्या व्यङ्गाङ्गी पितृमातृतः ॥ १७ ॥ कनिष्ठाऽनामिका यस्याः पादे मध्यमिका तथा । भूमिं न स्पृशते सा स्त्री विज्ञेया व्यभिचारिणी ॥ १८ ॥ पादप्रदेशिनी यस्या अङ्गुष्ठं समतिक्रमेत् । न सा भर्तृगृहे तिष्ठेत्स्वच्छन्दा कामचारिणी ॥ १९ ॥ उदरे श्वशुरं हन्ति ललाटे हन्ति देवरम् । स्फिचौ पतिं लम्बमाने धनं कूर्मोदरी हरेत् ॥ २० ॥ पृष्ठावर्ता पतिं हन्ति नाभ्यावर्ता पतिव्रता । कट्यावर्ता तु स्वच्छन्दा स्कन्धावर्ताऽर्थभागिनी ॥ २१ ॥ सुखचारा सुवेषा च मृद्वङ्गी चारुभाषिणी । प्रशस्ता सुगतिः कन्या या च दृङ्मनसोः प्रिया ॥ २२ ॥ मण्डूककुक्षिका नारी न्यग्रोधपरिमण्डला । एकं जनयते पुत्रं स तु राजा भविष्यति ॥२३॥ वराहः—मध्याङ्गुलीया मणिबन्धनोत्था रेखा गता पाणितलेऽङ्गनानाम् । ऊर्ध्वं गता पाणितलेऽथवा या पुंसोऽथवा राज्यसुखाय सा स्यात् ॥ २४ ॥ कनिष्ठिकामूलभवा गता या प्रादेशिनीमध्यमिकान्तरालम् । करोति रेखा परमायुषं तं प्रमाणहीनाऽर्थतं ऊनमायुः ॥ २५ ॥ कलत्रकान्तयोः संख्यां जीवितान्यकनिष्ठयोः । मध्यं विचिन्तयेद्दक्षे वामहस्ते नरास्त्रियोः ॥ २६ ॥ अङ्गुष्ठमूले प्रसवस्य रेखाः पुत्रा बृहत्यः प्रमदाश्च तन्व्यः । अच्छिन्नदीर्घाश्च चिरायुषः स्युः स्वल्पायुषश्छिन्नलघुप्रमाणाः ॥ २७ ॥ अरेखं बहुरेखं वा येषां पाणितलं नृणाम् । ते स्युरल्पायुषो निःस्वा दुःखिता नात्र संशयः ॥ २८ ॥ क्रमसंपद्भवा रेखा कुर्याच्छिन्नायुषः क्षयम् । मणिबन्धोन्मुखा वृद्धये त्रिपदेऽङ्गुष्ठसंमुखा ॥ २९ ॥ मत्स्यः करतले यस्य स नरो बहुकोशवान् । भाग्यरेखा सुनीक्ष्णाग्रा शुभा छत्राकृति-

स्तथा ॥३०॥ मिलद्भ्रूयुग्मिका काणा लम्बोष्ठी शूर्पकर्णिका । वक्रास्यनासिका चातिमोना त्याज्याऽतिभीषणा ॥ ३१ ॥ श्लिष्टान्यङ्गुलिमध्यानि द्रव्यसंचयहेतवे । तानि चेच्छिद्रयुक्तानि त्यागशीलकराणि च ॥३२॥ यस्याः केशांशुकस्पर्शान्म्लायन्ति कुसुमस्रजः । स्नानाम्भसि विपद्यन्ते बहवः क्षुद्रजन्तवः॥ ३३ ॥ धीयन्ते मत्कुणास्तल्पे तथा यूकाश्च वाससि । चौर्यान्नभक्षिणी शौचहीना त्याज्या नितम्बिनी ॥ ३४ ॥

इति सामुद्रिकलक्षणानि ।

---

## अथ प्रसङ्गेन स्वस्थारिष्टानि ।

पूर्वमायुः परीक्षेत पश्चाल्लक्षणमादिशेत् । आयुर्हीननराणां च लक्षणैः किं प्रयोजनम् ॥ १ ॥ स्वप्नो निमित्तं शकुनः स्वकर्म शारीरमागन्तुकमद्भुतानि । दोषाभिचारग्रहचारकालाः काम्यानि दैवं विविधं फलानि ॥ २ ॥ फलं यदि भाक्तनमेव तत्किं कृष्याद्युपायेषु परः प्रयत्नः । श्रुतिः स्मृतिश्चापि न वा निषेधविचारमके कर्मणि किं निषण्णा ॥३॥ अरुन्धतीं ध्रुवं चैव विष्णोस्त्रीणि पदानि च । आयुर्हीना न पश्यन्ति चतुर्थं मातृमण्डलम् ॥ ४ ॥ देहेऽप्यरुन्धती जिह्वा ध्रुवो नासाग्रमुच्यते । भ्रुवोर्विष्णोः पदं मध्यं तारका मातृमण्डलम् ॥ ५ ॥ आकीर्णश्रवणो यस्तु न घोषं शृणुयात्तथा । नभोमन्दाकिनीमिन्दोश्छायां नेक्षेद्गतायुषः ॥ ६ ॥ हकारः शीतलो यस्य सकारोऽग्निसमप्रभः । लक्षणं त्वीदृशं दृष्टं तस्याऽऽयुः स्यात्समार्धकम् ॥ ७ ॥ स्थूलो वाऽपि कृशोऽकस्माद्दरिद्रो वा धनी भवेत् । यो भुक्त्वा न धृतिं लेभे स याति यममन्दिरम् ॥ ८ ॥ पांसुपङ्कादिषु न्यस्तं खण्डं यस्य पदं भवेत् । पुरतः पृष्ठतो वाऽपि सोऽष्टौ मासान्न जीवति ॥ ९ ॥ संसृज्यते न सलिलैर्नलिनीदलवत्तनुः । स्नानमाचरतो यस्य षण्मासाच्च स जीवति ॥ १० ॥ स्नानान्नुलिप्तमात्रस्य यस्योरः प्राक् प्रशुष्यति। गात्रेष्वार्द्रेषु सर्वेषु सोऽर्धमासं न जीवति ॥ ११ ॥ जलादर्शादिषु च्छायां विकृतां यः प्रपश्यति । संस्विद्यते ललाटं वा तस्य मृत्युरुपस्थितः॥ १२ ॥ न मान्त्यङ्गुल्यस्तिस्रो मुखे यस्य स नश्यति।ऊर्ध्वं तिर्यगधो दृष्टिर्यस्य स्यात्सोऽपि मृत्युभाक् ॥ १३ ॥ नयनान्ते विनिष्पीड्य यस्तु तेजो न पश्यति । मयूरचन्द्रिकाकारं स सप्ताहाद्विपद्यते ॥ १४ ॥ गन्धर्वनगरं पश्येद्दिवा नक्षत्रमण्डलम्। परनेत्रेषु चाऽऽत्मानं न पश्येन्न स जीवति ॥ १५ ॥ सरटः कङ्ककाकाद्या गोधाद्या यदि मध्यमाः । जीवाः शीर्षे पतन्त्येर नरा जीवितसंक्षयः ॥ १६ ॥

कपोतः प्रविशेद्यस्य गृहं घूको गृहोपरि । शब्दं कुर्यात्स नश्येच्च यः पश्येत्काकमैथुनम् ॥ १७ ॥ स्वप्ने मुण्डितमात्मानं षण्मासायुर्निरीक्षते । कर्णनासाकरादीनां छेदनं पङ्कमज्जनम् ॥ १८ ॥ पतनं दन्तकेशानां पक्वमांसस्य भक्षणम् । खरोष्ट्रमहिषैर्यानं तैलाभ्यङ्गं च मृत्यवे ॥ १९ ॥

इति स्वस्थारिष्टानि ।

---

## अथ दैवज्ञं प्रति पृच्छा ।

पुण्येऽह्नि लक्षणोपेतं सुखासीनं सुचेतनम् । प्रणम्य देववत्पृच्छेद्दैवज्ञं भक्तिपूर्वकम् ॥ १ ॥ ताम्बूलफलपुष्पाद्यैः पूर्णाञ्जलिरुपागतः । कर्ता निवेद्य दंपत्योर्जन्मराशिं स्वजन्मभम् ॥ २ ॥ पुण्यैर्निमित्तशकुनैः प्रश्नकाले तु मङ्गलम् । दंपत्योरशुभैस्तैस्तु विरुद्धं सर्वथा भवेत् ॥ ३ ॥ सप्तर्षयः—पृथक्समयनिमित्तान्यवलोक्य च शास्त्रमार्गविदा । प्राक् सुकृतदुष्कृतभवं फलमिह वाच्यं प्रयत्नेन ॥ ४ ॥ वृद्ध.—प्रश्ने यदि शुभशकुनस्तदा शुभं कन्यकावरयोः । अशुभेषु भवत्यशुभं शकुनेषु न संशयस्तत्र ॥ ५ ॥ शौनकः—जन्मसमये यदुक्तं शुभाशुभं दिव्यदृग्भिराचार्यैः । पृच्छापरिणयनाभ्यां तदेव युक्त्या प्रयोक्तव्यम् ॥ ६ ॥

तत्राऽऽदौ विवाहपृच्छा ।

व्ययेशो यदि लग्नस्थो लग्नेशो व्ययगो भवेत् । तदा विवाहपृच्छायां विवाहो भवति ध्रुवम् ॥ १ ॥ लग्ने स्थिरे पापयुते नृनार्योरुद्वाहसिद्धिर्न भवेत्कदाचित् । जीवेन दृष्टोऽथ शशी त्रिपञ्चसप्तायखस्थः कुरुते विवाहम् ॥ २ ॥ चन्द्रो लग्नपतिर्वाऽपि कन्यालाभाय कामगः । द्यूनपो लग्नगः शीघ्रं कन्यालाभाय जायते ॥ ३ ॥ कर्कतुलावृषभाः शुक्रेन्दुयुता निरीक्षिता वाऽपि । संपृच्छतां नराणां कन्यालाभोऽस्ति नियमेन ॥ ४ ॥ युग्मलग्नेऽब्जशुक्राभ्यां कन्याप्तिस्तद्युतेक्षिते । तथा वराप्तिः पुंल्लग्ने पुंग्रहैर्वोजगेऽर्कजे(?) ॥ ५ ॥ कृष्णपक्षे प्रश्नलग्नाद्युग्मराशौ शशी यदि । पापदृष्टोऽथवा रन्ध्रे न संबन्धो भवेत्तदा ॥ ६ ॥

इति विवाहपृच्छा ।

---

## अथ शुभाशुभज्ञानम् ।

पृच्छा विलग्ने यदि राशिसंस्थे दाक्षायणीशे मरणं वरस्य । वर्षेऽष्टमे स्यादथ लग्नगेऽब्जे धरासुते सप्तमगे च शीघ्रम् ॥ १ ॥ क्षीणेन्दुभौमार्किदिवाकराणामेकोऽपि लग्ने मरणाय खेटः । भवेद्ध्रुवं वत्सरपञ्चकेन क्रूरग्रहे सप्तमगे वरस्य ॥ २ ॥ सप्तमगोऽर्कः कन्यां मृतप्रजां पुंश्चलीं करोत्युदये । कथितं यच्चोद्वाहे योज्यं तत्प्रश्नकालेऽपि ॥ ३ ॥ शौनक –क्रूरग्रहो विलग्ने सप्तमसंस्थो यदि भवेत्क्रूरः । सप्तभिरब्दैर्मरणं शशिभौमौ सप्तभिर्मासैः ॥ ४ ॥ पृच्छाविलग्नसंस्थौ गुरुसौम्यौ दीर्घजीविनीं कुरुतः । पञ्चमसंस्थौ पुत्राज्ञामित्रे गोधनं विपुलम् ॥ ५ ॥ नारदः—पृच्छकस्य भवेल्लग्नादिन्दुः षष्ठाष्टगोऽपि वा । दंपत्योर्मरणं वाच्यमष्टमाब्दान्तरे यदि ॥ ६ ॥ यदि लग्नगतः क्रूरस्तस्मात्सप्तमगः कुजः । विज्ञेयं भर्तृमरणं सप्तमाब्दान्तरे तदा ॥ ७ ॥ यदि लग्नगतश्चन्द्रस्तस्मात्सप्तमगः कुजः । विवाहात्परतो भर्ता त्वष्टमाब्दे न जीवति ॥ ८ ॥ लग्नात्पञ्चमगः पापः शत्रुदृष्टः स्वनीचगः । मृतपुत्रा तदा कन्या कुलटा वा न संशयः ॥ ९ ॥ विवाहे जन्मपृच्छोक्ता जन्मन्युद्वाहप्रश्नजाः । जन्मोद्वाहोदिताः प्रश्ने योगा योज्या धिया बुधैः ॥ १० ॥ विषाङ्गनामूलजादिजन्मोत्थं च शुभाशुभम् । विलोकनीयमत्रैव तत्तत्प्रकरणोदितम् ॥ ११ ॥ शौनकः–एतद्बुध्वा शास्त्रं मन्दमतिर्यः प्रयच्छति विवाहम् । अयशोंऽबुधौ स मज्जति तस्माद्विज्ञाय वै दद्यात् ॥ १२ ॥

इति शुभाशुभज्ञानम् ।

---

## अथ राशिकूटविचारः ।

अथ भकूटे लग्नस्योपेक्षा ज्योतिष्प्रकाशे–जन्मलग्नात्फलं सर्वमायुर्दायदशादिकम् । कीर्तितं मुनिभिस्तत्तु भमेलेऽनादृतं कथम् ॥ १ ॥ विवाहवृन्दावने–जन्मलग्नमिदमङ्गसञ्ज्ञितं मेनिरे मन इतीन्दुमन्दिरम् । सौहृदं हि मनसोर्न देहयोर्मेलकस्तदयमिन्दुगेहयोः ॥ २ ॥

इति भकूटे लग्नानादरः ।

---

## अथ षडष्टभेदाः ।

बृहस्पतिः–दंपत्योर्जन्मताराभ्यां नामर्क्षाभ्यामथापि वा । भमेलं चिन्तयेत्प्राज्ञः

सुखसंतानवृद्धये ॥ १ ॥ पटलसारे—यद्भकूटं विपक्षाभ्यां सगुणं स्यात्तदुत्तमम् । एकेन मध्यमं हीनं केऽप्याहुस्तदभावतः ॥ २ ॥ वर्णश्च वश्यं च मिथश्च तारा योनिश्च मैत्री खगयोर्गणश्च । भमेलको नाडिकशुद्धिरेते यथोत्तरं स्युर्बलिनोऽष्ट भेदाः ॥ ३ ॥ एतदष्टभेदं षट्त्रिंशद्गुणं सद्राशिकूटं ज्ञेयम् । वर्णश्च वश्यं वरदूरतारा योनिर्गणः खेटसुहृत्त्वमेव । राशिश्च नाडी नवभेदकं स्यादसद्भकूटे च विलोकनीयम् ॥ ४ ॥ असद्राशिकूटे नवभेदं पञ्चचत्वारिंशद्गुणं ज्ञेयम् । पुनरन्येषां मतं—विप्राणां दशकूटं स्यात्क्षत्रियाणां तथाऽष्टकम् । वैश्यानामपि षड्भेदं शूद्राणां च चतुष्टयम् ॥ ५ ॥ वर्णो वश्यं नृदूरं च वल्लभत्वं च तारकाः। योनिर्मित्रं गणो राशिर्नाडिकेति क्रमाद्दश ॥ ६ ॥ तत्र दूरद्वयं हित्वा कूटं भेदाष्टकं भवेत् । तारादिषट्कं षड्भेदं परं योनिचतुष्टयम् ॥ ७ ॥ तत्रापि मुख्यभेदानाह—नाडीमैत्रे वर्णगणौ राशिभे वश्ययोनिके । वर्णेष्वीक्ष्यं तु मुख्यत्वाच्छेषाणां दूरवर्गकौ ॥ ८ ॥

इति राशिकूटभेदाः ।

---

## अथ वर्णविचारः ॥

स्वराशिसंख्या दंपत्योर्वेदाप्ता शेषतः फलम् । उत्तमं स्यान्नृशेषेऽल्पे मध्यं तुल्येऽधिकेऽधमम् ॥ १ ॥ मीनालिकर्कटा विप्रा नृपाः सिंहाजधन्विनः । कन्यानक्रवृषा वैश्याः शूद्रा युग्मतुलाघटाः ॥ २ ॥ वरे वर्णाधिके प्रीतिरुत्तमा स्त्री वरानुगा । समवर्णे मिथः सख्यं हीने स्नेहो न जायते ॥ ३ ॥

## अथ वश्यम् ॥

तत्र राशिस्वरूपं—मत्स्यो घटी नृयुगलं सगदं सवीणं चापी नरोऽश्वजघनो मकरो मृगास्यः । तौली ससस्यदहना प्लवगा च कन्या शेषाः स्वनामसदृशाः समसंचराः स्युः ॥ १ ॥ सर्वे वश्या नृजातेस्तु भक्ष्यस्थाने जलोद्भवाः । सिंहं हित्वाऽथ सिंहस्य वश्यास्ते वृश्चिकं विना ॥ २ ॥ मुहूर्तदर्पणे—अलिमृगपती तौलीन्दूर्क्षे वधूमलिधन्विनौ वणिगधिपतिं वीणामीनौ मृगं युवतीन्दुभे । पुनरनिमिषं मेषोपान्त्यामजं मकरं क्रमात्पदपरिमितान्राशीन्वश्यानजादिषु मन्वते ॥ ३ ॥ गर्गः—सिंहाली कर्कजूकौ च कन्या वृश्चिककार्मुकौ । तुला मीनयमौ नक्रः कन्याकर्कटकौ तिमिः ॥ ४ ॥ मेषकुम्भावजो नक्रो मेषादेर्वश्यराशयः । एतानि वश्यकूटानि दंपत्योः शुभसंपदे ॥ ५ ॥

---

१ क. प. वर्णकौ ।

## अथ ताराः ।

वरभाद्गणयेद्यावत्कन्यर्क्षं कन्यभादपि । वरभं नवहृच्छेषं ताराः सन्ति परस्परम् ॥ १ ॥ शुभदा जन्मतारा स्यादृद्वयोरेकर्क्षवर्जिता । निन्द्यास्त्रिपञ्चसप्त स्युः शेषाः श्रेष्ठा भकूटके ॥ २ ॥

## अथ योनिः ।

वारुणाश्विनयोरश्वयोनिर्याम्यान्त्ययोर्गजः । पुष्यकृत्तिकयोर्मेषः सर्पो रोहिणिसौम्ययोः ॥ १ ॥ मूलार्द्रयोः शुनो योनिर्बिडालो दितिसार्पयोः । मघाभगर्क्षयोराखुरर्यमोपान्त्ययोः पशुः ॥ २ ॥ चित्राविशाखयोर्व्याघ्रो महिषः स्वातिहस्तयोः । कर्णाप्ययोर्वानरश्च ज्येष्ठानूराधयोर्मृगः ॥ ३ ॥ विश्वर्क्षाभिजितोर्वभ्रुः सिंहोऽजाङ्घ्रिधनिष्ठयोः । पशुपालकयोर्वीक्ष्यं दंपत्योर्नृपभृत्ययोः ॥ ४ ॥ गोव्याघ्रमश्वमहिषं श्वैणं गजसिंहमाखुमार्जारम् । अहिवभ्रु वानरजं महत्त्यजेत्पुंस्त्रियोर्वैरम् ॥ ५ ॥ महद्वैरं सदा त्याज्यं लोकतोऽन्यच्च चिन्तयेत् । तद्ग्रन्थान्तरतो ज्ञेयं न लोकव्यवहारतः ॥ ६ ॥ तद्यथा गर्गसंहितायाम्—एकयोनिषु कलहो गजयोः सिंहयोः शुनोः । महद्वैरेऽपि समता महिषस्य कपेस्तथा ॥ ७ ॥ केचित्स्वभावतः क्रूराः केचिच्छान्तास्तथा समाः । योनिसत्त्वा भजन्त्यत्र स्वस्वशीलं तथा मिथः ॥ ८ ॥ सद्भकूटे योनिवैरं मृत्युदं च परित्यजेत् । तत्र चेद्ग्रहयोः सख्यं नातिदुष्टं विदुर्बुधाः ॥ ९ ॥ ज्योतिःप्रकाशे—आश्रेयं मृत्युभं पूफा तथोपान्त्यद्वयं पृथक् । मैत्रोऽप्याभिजिदेषु स्त्री योनिः शेषेषु ना स्मृतः ॥ १० ॥ सदसद्राशिकूटेऽपि योनिवैरं न दोषकृत् । यदि स्यादबलायोनिः पुंसो योनिर्बलीयसी ॥ ११ ॥ योनिवैरं सदा त्याज्यं स्त्रीपुंसोर्मित्रलिङ्गयोः । एकलिङ्गजयोः प्रोक्तं मध्यमं नातिदोषदम् ॥ १२ ॥

## अथ ग्रहसख्यम् ।

भौमः शुक्रो बुधश्चन्द्रो भानुसौम्यौ भृगुः कुजः । गुरुर्मन्दः शनिर्जीवो मेषादीनामधीश्वराः ॥ १ ॥ यवनसंहितायां—मित्राण्यर्कादुरुर्ज्ञेज्यौ ज्ञसितौ च त्रिभानवः । ज्यारा ज्यर्केन्दवो ज्यर्कचंद्रारास्तु परेऽरयः ॥ २ ॥ सत्यमतं—शत्रू मन्दसितौ समश्च शशिजो मित्राणि शेषा रवेस्तीक्ष्णांशुर्हिमरश्मिजश्च सुहृदौ शेषाः समाः शीतगोः । जीवेन्दूष्णकराः कुजस्य सुहृदो ज्ञोऽरिः सितार्की समौ मित्रे

---

१ क. दंपत्यो°।

सूर्यसितौ बुधस्य हिमगुः शत्रुः समाश्चापरे ॥ ३ ॥ सूरेः सौम्यसितावरी रविसुतो मध्यौ परे चान्यथा सौम्यार्की सुहृदौ समौ कुजगुरू शुक्रस्य शेषावरी । शुक्रज्ञौ सुहृदौ समः सुरगुरुः सौरस्य चान्येऽरयस्तत्कालेन दशायबन्धुसहजस्वान्त्येषु मित्रं स्थिताः ॥ ४ ॥ ययोर्ग्रहयोर्मिथो भावो दंपत्योस्तादृशो भवेत् । दुष्टं कूटं शुभं मैत्र्या सद्भावैरपि शस्यते ॥ ५ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे— राशीशौ सुहृदौ स्यातां जन्मकाले यदा तदा । ग्रहवैरेऽपि कर्तव्यं भकूटं मुनयो जगुः ॥ ६ ॥ विवाहवृन्दावने—आपार्श्वकेन्द्रद्वयगाः प्रसूतौ तत्कालमित्राणि मिथः खपान्थाः । न्यूनामपि स्त्रीनरभृत्यराज्ञां तत्कालसंख्यां विशिनष्टि मैत्रीम् ॥ ७ ॥

## अथ गणशुद्धिः ।

देमरामदमंदेदेराराममदरादराः । देराराममदेराराममदेति गणत्रयम् ॥ १ ॥ पटलसारे—स्वगणे चोत्तमा प्रीतिर्मध्यमा देवमर्त्ययोः । असुरासुरयोर्वैरं मृत्युर्मानुषरक्षसोः ॥ २ ॥ रक्षोगणा यदा नारी नरो नरगणो भवेत् । तदोद्वाहो न कर्तव्यो यस्माद्वैधव्यदो ध्रुवम् ॥ ३ ॥ वरस्तीव्रगणश्चापि कन्या च नृगणा भवेत् । दुष्टकूटे गुणाढ्येऽपि तत्र मृत्युर्न संशयः ॥ ४ ॥ वराहपटले—रक्षोगणो यदि नरो नृगणा कुमारी सद्राशिकूटखगमैत्रभयोनिशुद्धिः । यद्यस्ति तत्र भयदं करपीडनं स्याद्वामभ्रुवां खलु यदा नहि नाडियोगः ॥ ५ ॥ सद्भकूटं योनिशुद्धिर्ग्रहसख्यं गुणत्रयम् । एष्वेकतमसद्भावे कन्या रक्षोगणा शुभा ॥ ६ ॥

## अथ भमेलः ।

एकराशौ पृथग्धिष्ण्ये पृथग्राशौ तथैकभे । एकांशेऽपि कृतोद्वाहः श्रेष्ठो मध्योऽधमः क्रमात् ॥ १ ॥ एकराशौ शुभोद्वाह एकभांशे मृतिप्रदः । यदि स्याद्भिन्ननक्षत्रे शुभदः शौनकोऽब्रवीत् ॥ २ ॥ दंपत्योरेकराशिः स्याद्भिन्नमृक्षं यदा तदा । गणदोषेऽप्येकनाड्यां विवाहः शुभदः स्मृतः ॥ ३ ॥ नाडीगणौ नैकराशौ चिन्त्यौ भिन्नभयोर्यथा । कृत्तिकाकभयोर्द्वीशस्वात्योः पूभाजलेशयोः ॥ ४ ॥ एकभे भिन्ननक्षत्रे न नाडीगणदुष्टता । वह्निभब्राह्मवत्प्रीतिः शततारजपादवत् ॥ ५ ॥ व्यवहितराश्योर्ऋक्षं यद्येकं जायते तत्र । नाडीदोषो चान्यो मरणकरः सोऽपि दंपत्योः ॥ ६ ॥ एकराशौ द्विनक्षत्रे पुंस्तारा प्रथमा भवेत् । अतीव शोभना प्रोक्ता स्त्रीतारा चेद्विनश्यति ॥ ७ ॥ भयनद्वययुक्तर्क्षे पूर्वं पुंसां शुभावहम् । पश्चाद्भागं तथा स्त्रीणां व्यत्ययस्तु विनाशकृत् ॥ ८ ॥ रत्न घर्ष्यनक्षत्राण्युच्यन्ते गर्गेण—एकराशौ द्विनक्षत्रे कृत्तिकायान्यतारके ।

धनिष्ठाशततारे च पुष्याश्लेषे च वर्जयेत् ॥ ९ ॥ पृथग्राशावेकभे प्रवृत्तिमाह विवाहवृन्दावने—नक्षत्रमेकं यदि भिन्नराश्योरभिन्नराश्योर्यदि भिन्नमृक्षम् । प्रीतिस्तदानीं निविडा नृनार्योश्चेत्कृत्तिकारोहिणिवन्न नाडी ॥ १० ॥ वैद्यनाथः—एकभे च पृथग्राशौ पृथग्भे चैकराशिके । अंशान्न दूरता त्याज्या कन्यादूरं शुभावहम् ॥ ११ ॥ भीमः—राशियुग्मे चैकराशौ भयोरैक्ये युगे तथा । पुमंशः पुरतः श्रेयान्प्रतीपस्तु न मे मतः ॥ १२ ॥ कालार्णवः—सद्भकूटे तथाऽन्यस्मिन्नंशाद्वा राशितोऽथवा । संभवे वरदूरत्वं त्याज्यस्तत्राधिको गुणः ॥ १३ ॥ बृहस्पतिः—एकराशौ पृथग्धिष्ण्ये पृथग्राशौ तथैकभे । गणनाडीं नृदूरत्वं ग्रहवैरं न चिन्तयेत् ॥ १४ ॥ वराहः—भमेलं चिन्तयेत्प्रीत्यै दंपत्योस्तत्र निर्णयः । तयोर्भराश्योरेकत्वे स्वान्तैक्यात्सा गरीयसी ॥ १५ ॥ द्विर्द्वादशं नृदूरत्वं नाडीगणभयोनिता । न चिन्त्या खगवैरं च राशिकूटोत्तमं द्वयोः ॥ १६ ॥ एकनक्षत्रे विशेषमाह भृगुः—रोहिण्यार्द्रा मघेन्द्राग्नितिष्यश्रवणपौष्णभम् । उत्तरा प्रोष्ठपाच्चैव नक्षत्रैक्येऽपि शोभना ॥ १७ ॥ विधिरत्ने—रोहिण्यार्द्रा मघेन्द्राग्नितिष्यश्रवणपौष्णभम् । आहिर्बुध्न्यं तथाऽष्टौ च शुभं भवति नान्यथा ॥ १८ ॥ कालनिर्णये—विशाखिकार्द्राश्रवणप्रजेशतिष्यान्त्यतत्पूर्वमघाः प्रशस्ताः । स्त्रीपुंसताऽऽरैक्यपरिग्रहे तु शेषा विवर्ज्या इति संगिरन्ते ॥ १९ ॥ अजैकपान्मित्रवसुद्विदैवमभञ्जनान्त्यार्कभुजङ्गभानि । मुकुन्दजीवान्तकभानि नूनं शुभानि योषिन्नरजन्मभैक्ये ॥ २० ॥ दंपत्योरेकनक्षत्रे भिन्नपादे शुभावहम् । दंपत्योरेकपादे तु वर्षान्ते मरणं ध्रुवम् ॥ २१ ॥ अथैकांशकत्वेऽपि प्रवृत्तिमाह—पराशरः प्राह नवांशभेदादेकर्क्षराश्योरपि सौमनस्यम् । एकांशकत्वेऽपि वसिष्ठशिष्यो नैकत्र पिण्डे किल नाडिवेधः ॥ २२ ॥ नाग्निर्दहत्यात्मतनुं तथाहि द्रष्टा स्वदृष्टेर्नहि दर्शनीयः । एकांशकत्वेऽपि समप्रभावान्न भर्तृभार्याव्यवहारसिद्धिः ॥२३॥ ज्योतिष्प्रकाशे—केचिन्नेच्छन्ति चैकांशं केचिदिच्छन्ति मेलकम् । तत्राप्यङ्घ्रेर्घटीसाम्यं त्यजेन्नो भिन्ननाडिकम् ॥ २४ ॥ एकराशौ महाप्रीतिश्चतुर्थदशमे सुखम् । तृतीयैकादशे वित्तं सुप्रजाः समसप्तके ॥ २५ ॥ समसप्तकेऽप्यशुभदौ घटसिंहौ पाणिपीडने कथितौ ॥२६॥ अन्यच्च—मकरे कर्कटे चैव कुम्भे सिंहे तथैव च । परस्परं सप्तमे च वैधव्यं तु विनिर्दिशेत् ॥ २७ ॥ निर्धनत्वं वियोगो वा मेले द्विर्द्वादशे भवेत् । त्रिकोणे त्वनपत्यत्वमपमृत्युः षडष्टके ॥ २८ ॥ योनिनाडीगणानां च शुद्ध्या तद्राशिकूटकम् । युक्तं श्रेष्ठं गुणाभावे खेटमैत्र्या भवेच्छुभम् ॥ २९ ॥ गर्गः—न खेटमैत्रं नो राश्यं न वर्णो न च तारकाः । सद्भकूटे परा प्रीतिर्न सा वज्रेण भिद्यते ॥ ३० ॥ सद्राशिकूटं ग्रहमैत्रयुक्तं शुभं भवेद्य-

अपि योनिवैरम् । योनौ गणे चेत्त्वनुकूलता स्याच्छुभो विवाहो ह्यपि खेटवैरम् ॥ ३१ ॥ ग्रहमैत्रं शुभा तारा राशिवश्यं त्रिभिः शुभम् । षडष्टकं बुधाः प्राहुर्द्वाभ्यां द्व्यर्कत्रिकोणकम् ॥ ३२ ॥ शार्ङ्गधरः—मीनालिभ्यां युते कीटे कुम्भे मिथुनसंयुते । मकरे कन्यकायुक्ते न कुर्यान्नवपञ्चकम् ॥ ३३ ॥ वरवध्वोर्मातृपित्रोर्जीवतोस्तद्विनाशकृत् । त्रिकोणं मीनकीटाद्यं न स्यादन्यत्र दूषणम् ॥ ३४ ॥ वैद्यनाथः—द्विपष्ठाभ्यां समो राशिर्विषमोऽष्टव्ययान्वितः । शुभो विलोमतो नेष्टः सिंहोऽपीष्टो बलान्वितः ॥ ३५ ॥ संहितादीपके—यदा तु कन्याभवनं द्वितीयं षट्पञ्चमं स्यात्पुरुषस्य राशेः । तद्राशिनाथौ सुहृदौ समौ वा सुहृत्समौ वा तदतीव शस्तम् ॥ ३६ ॥ द्विर्द्वादशेऽप्यदोषः स्यादंशकाद्दूरतः स्त्रियाः । धृत्यंशोऽप्यष्टिकांशो वा पुंसोंऽशः कन्यकांशकात् ॥ ३७ ॥ न भौगारिभावं हरेत्सद्भकूटं तथा खेटमैत्रीविरुद्धं भकूटम् । सदा नाशयत्येकनाडीसमाजो भकूटादिकान्सम भेदान्प्रशस्तान् ॥ ३८ ॥ भेशारिभावे गणवृत्त्यभावे नाडीसमोऽजेऽपि कृतो विवाहः । भवेत्सुतप्रीतिसुखायुराप्त्यै सद्राशिकूटे जगुरेवमन्ये ॥३९॥ श्रूयमाणगुणमात्रलाभे नाडीसमाजे सति बोद्धव्यम् । मित्रत्वाभावेऽपि शुभं षट्काष्टकम् । नारदः—मित्रषट्काष्टके मेषकन्ययोर्घटमीनयोः । चापोक्षयोर्नृयुक्कीटभयोः कुम्भकुलीरयोः । पञ्चास्यमृगयोः स्त्रीणां जन्मराशेः शुभावहम् ॥ ४० ॥ कश्यपः—नृराशितोऽष्टमं षष्ठे पञ्चमे नवमे तथा । द्वादशे च द्वितीये च विवाहः पुत्रपौत्रदः ॥ ४१ ॥ नृयुक्कुलाश्वकुम्भालिसिंहाः कुर्वन्ति मित्रताम् । स्वषष्ठभवनेऽस्तोऽपि स्वाष्टभिः प्रीतिमुत्तमाम् ॥ ४२ ॥ वसिष्ठः—नृयुक्कुलामेषघटाश्वसिंहाः कुर्वन्त्यजस्रं खलु मित्रभावम् । स्वषष्ठसंख्याभवनैश्च तेऽपि स्वस्वाष्टसंख्याभवनैस्तथैव ॥ ४३ ॥ श्रीधरीये—मेषेण कन्या धनुषा कुम्भस्तौल्यं मीनः कुम्भभृता कुलीरः । सिंहेन नक्रो नृयुगेण कीर्पः षट्काष्टके चापि शुभाय योगः ॥ ४४ ॥ संग्रहेऽपि—कन्याजवृश्चिकतुलाकर्कटमकराः शुभावहाः प्रोक्ताः । स्वैः स्वैरष्टमभवनैस्तेऽप्येभिर्विदधति प्रीतिम् ॥ ४५ ॥

## अथ नाडीविचारः ।

अश्विन्यार्द्रा शतभिषक्फल्गुनी चोत्तरा तथा । पूर्वा भाद्रपदा मूलं ज्येष्ठा हस्तः पुनर्वसुः ॥ १ ॥ पूर्वा फल्गुनिका चित्रा धनिष्ठा भरणी मृगः । पूर्वाषाढाऽनुराधा च पुष्योऽहिर्बुध्न्यमेव च ॥ २ ॥ कृत्तिका रोहिणी स्वाती मघाऽऽश्लेषा च रेवती । श्रवणश्चोत्तराषाढा विशाखा चैकनाडिकाः ॥ ३ ॥ रत्नकोशे—आद्यनाडीव्यधे भर्ता मध्यनाडीव्यधे द्वयम् । पृष्ठनाडीव्यधे कन्या म्रियते नात्र

संशयः ॥ ४ ॥ समासन्ने व्यधे शीघ्रं दूरवेधे चिरेण तु । व्यधान्तरभमानेन वर्षं दुष्टं प्रजायते ॥ ५ ॥ एतन्मुख्यत्वाद्ब्राह्मणविषयम् । जठरे निधनत्वं च गर्भे मरणमेव च । पृष्ठे दौर्भाग्यमाप्नोति यस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ ६ ॥ एत-त्क्षत्रिय*यादिविषयममुख्यत्वात् । तथाचोक्तं—नाडीमैत्रे वर्णगणौ राशिभे वश्ययोनिके । वर्णेष्वीक्ष्यं तु मुख्यत्वाच्छेषाणां दूरवर्गकौ ॥ ७ ॥ ज्योतिष्प्र-काशे—निधनं मध्यमनाड्यां दंपत्योर्नैव पार्श्वयोर्नाड्योः । केऽप्याहुर्मध्य-गस्ते ( ध्यायाः ) पादविभेदे न दोषाय ॥ ८ ॥ करग्रहे पृष्ठनाड्यौ [ वि ] निन्द्ये इति यद्वचः । तत्क्षत्रियादिविषयं गौतम्या याम्यतस्तथा ॥ ९ ॥ बुध-वल्लभे नारदः—चतुस्त्रिद्व्यङ्घ्रिभोत्थायाः कन्यायाः क्रमशोऽश्विभात् । वह्निभा-दिन्दुभान्नाडी त्रिचतुःपञ्चपर्वसु ॥ १० ॥ जाङ्गले तु चतुर्माला पाञ्चाले पञ्चमा-लिका । त्रिमालाऽन्येषु देशेषु विवाहे मुनिसंमतम् ॥ ११ ॥ वृद्धगर्गः—एकनाडीस्थिता यत्र गुरुर्मन्त्राश्च देवताः । तत्र द्वेषं रुजं मृत्युं क्रमेण फलमादिशेत् ॥ १२ ॥ प्रभुः पण्याङ्गना मित्रं देशो ग्रामः पुरं गृहम् । एकनाडीस्थितं भव्यं विरुद्धं वेधवर्जितम् ॥ १३ ॥

## अथ नाड्यपवादः ।

ज्योतिश्चिन्तामणौ—रोहिण्यार्द्रा मृगेन्द्राग्निपुष्यश्रवणपौष्णभम् । अहिर्बुध्न्यर्क्ष-मेतेषां नाडीदोषो न विद्यते ॥ १ ॥ ध्रुवद्वितीयादौ संकीर्णविषयम् । बुधव-ल्लभे—ग्रहवैरं दुष्टकूटे सन्मेले योनिवैरकम् । त्याज्यं वैरं राशिवैरे तारादौष्ट्यं षडष्टके ॥ २ ॥ गणवैरं वल्लभत्वाद्वर्गाद्व्यर्के त्रिकोणकम् । स्त्रीदूराद्दुष्टकूटश्च मैत्राः सर्वे गुणाः शुभाः ॥ ३ ॥ न वर्णवर्गो न गणो न. योनिर्द्विर्द्वादशे चैव षडष्टके वा । वरेऽपि दूरे नवपञ्चमे वा मैत्री यदि स्याच्छुभदो विवाहः ॥ ४ ॥

## अथ पुञ्जी ।

रत्नमालायां—षट् पौष्णतो द्वादश शांकराच्च पौरन्दराद्दानि नव क्रमेण । पूर्वार्धमध्यापरभागयुञ्जि चिरंतनज्योतिषिकैः स्मृतानि ॥ १ ॥ पूर्वभागयुजि भे पतिः प्रियो योषितामपरभागयोगिनि । स्त्री नृणां भवति मध्ययोगिनि प्रेम नूनमुभयोः परस्परम् ॥ २ ॥

---

* क्षत्रियविषयम् । वसिष्ठः—आद्यैकनाडी कुरुते वियोगं मध्यैकनाडी उभयोर्विनाशम् । अन्ते च दारिद्र्यकरी च दुःखं तास्मिंश्च तिस्रः परिवर्जनीयाः । नाडी कूटे कन्यका कण्ठसूत्रं यस्मि-न्भैः पीडितैः पूर्वभैः । मध्या वर्ग्याः सर्वदेशेषु कथितास्त्वं यात्रा पौष्णमीशाग्यभागे । अथ मुख्य० व्युत्क्रम इदमधिकम्° ।

## अथ वर्गः ।

वर्गेशास्ताक्ष्यमार्जारसिंहश्वसर्पमूषकाः । मृगश्च शशकस्तत्र स्ववर्गात्पञ्चमो. रिपुः ॥ १ ॥

## अथ दूरविचारः ।

स्त्रीराशेर्वरभं दूरं कन्यादूरं शुभावहम् । व्यस्तं नृदूरमशुभं वश्यत्वात्तदपीष्टदम् ॥ १ ॥ शौनकः—वर्गवैरं योनिवैरं गणवैरं नृदूरकम् । दुष्टकूटफलं सर्वं ग्रहमैत्रेण नश्यति ॥ २ ॥

## अथ धिष्ण्यदूरम् ।

नारदः—स्त्रीधिष्ण्याद्यनवके स्त्रीदूरमतिनिन्दितम् । द्वितीये मध्यमं श्रेष्ठं, तृतीये नवके नृभम् ॥ १ ॥

## अथ दुष्टफलपरिहारः ।

राजमार्तण्डे—षडष्टके गोमिथुनं भद्यात्कांस्यं सरौप्यं नवपञ्चमे (के)[1] च । देयं च वस्त्रं कनकाश्वयुक्तं द्विर्द्वादशे ब्राह्मणभोजनं च ॥ १ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—निषिद्धमेलके शान्तिं कृत्वा दानं यथोदितम् । दत्त्वोद्वाहं प्रकुर्वीत प्रशस्तशकुनादिषु ॥ २ ॥ विवाहदीपिकायाम्—आर्जो जिता संधिलब्धा भीत्या दत्ता तथाऽध्वरे । स्वयमेवाऽऽगता कन्या नैवाऽऽस्तां शुद्धिमेलकौ ॥ ३ ॥ बहूनामेकजातानां कन्यकानां करग्रहे । ज्येष्ठाया मेलकं वीक्ष्य लघ्वीनां नैव चिन्तयेत् ॥ ४ ॥ आसुरादिविवाहेषु राशिकूटं न चिन्तयेत् । तथा व्यङ्गातिवृद्धानां दुर्भगाणां पुनर्भुवाम् ॥ ५ ॥

## अथ गुणविचारः ।

एको गुणः सदृग्वर्णे तथा वर्णोत्तमे वरे । हीने वरेऽधिके शून्यं केऽप्याहुः सदृशे दलम् ॥ १ ॥ सख्यं वैरं तु भक्ष्यं च वश्यमाहुस्त्रिधा बुधाः । वैरे भक्ष्ये गुणाभावो द्वयोः सख्ये गुणद्वयम् ॥ २ ॥ वश्यवैरे गुणश्चैको वश्यभक्ष्ये गुणार्धकम् । एकतो लभ्यते तारा शुभा चैवाशुभाऽन्यतः ॥ ३ ॥ तदा सार्धो गुणश्चैकस्ताराशुद्धो मिथस्त्रय । उभयोर्न शुभा तारा तदा शून्यं समादिशेत् ॥ ४ ॥ अष्टविंशतिताराणां योनयश्च चतुर्दश । तत्र वैरं महद्वैरं सत्त्वानां स्वस्वभावतः ॥ ५ ॥ मैत्रं वै चातिमैत्रं च विवाहे सत्त्वसादृशम् । महावैरे च वैरे च स्वभावे च यथाक्रमम् ॥ ६ ॥ मैत्रे चैवातिमैत्रे च खेन्दुद्वित्रिचतुर्गुणाः । ग्रहमैत्रं सप्तभेदं गुणाः पञ्च प्रकीर्तिताः ॥ ७ ॥ तत्रैकाधिपतित्वे च मित्रत्वे गुणपञ्चकम् ।

१ घ सिंहाश्व०।

चत्वारः सममित्रत्वे द्वयोः साम्ये त्रयो गुणाः ॥ ८ ॥ मित्रवैरे गुणश्चैकः समवैरे गुणार्धकम् । परस्परं खेटवैरे गुणशून्यं विनिर्दिशेत् ॥ ९ ॥ अस्तद्रे सममित्रादौ ह्येको ग्राह्यो यथोदितः । गुणभेदः सप्तविधो गुणाः षट्प्रमिता मताः ॥ १० ॥ षड् गुणा गुणसादृश्ये षड् गुणाः सुरमानुषे । देवराक्षसयोः शून्यं शून्यं च नरराक्षसोः ॥ ११ ॥ नार्यां देवो नरः पुंसस्तत्र पञ्च गुणाः स्मृताः । पुंसो रक्षोगणो यत्र नार्यां देवोऽथवा नरः ॥ १२ ॥ गुणवानापि तत्रैको गुणो ग्राह्योऽन्यथा नहि । सद्भकूटत्रयं मोक्तं दुष्टकूटत्रयं तथा ॥ १३ ॥ सप्तमं चैकराश्याख्यं गुणस्तेषामथोच्यते । शून्यमेकांशके चैकराशौ सप्तैव भिन्नभे ॥ १४ ॥ एकराश्यृक्षके सप्त भिन्नराश्येकभे शराः । सद्भकूटेऽवलादूरे सप्त चापि नृदूरके ॥ १५ ॥ सद्भमैत्रेषु ते सप्त मैत्रहीने तु षड्गुणाः । दुष्टकूटे च मित्राख्ये स्त्रीदूरेऽब्धिमिता गुणाः ॥ १६ ॥ नृदूरे दुष्टकूटे च मित्रसंज्ञे गुणान्विते । एको गुणोऽन्यथा शून्यं शून्यं निन्द्ये तु दुष्टभे ॥ १७ ॥ वाक्यान्तरे शुभं यत्र ग्राह्यं स्यात्तद्गुणेषु खम् । नाडीदोषे गुणाभावः पूर्वाचार्यैरुदाहृतः ॥ १८ ॥ पृष्ठनाड्यंशभेदादिग्राह्यपक्षेऽपि खं गुणाः । गुणवैरे च भक्ष्ये च तथा योन्यां च वैरके ॥ १९ ॥ नैव ग्राह्या गुणास्तत्र शून्यं चैव विदुर्बुधाः । गुणैः षोडशभिर्निन्द्यं मध्यमा विंशतेस्तथा ॥ २० ॥ श्रेष्ठं त्रिंशद्गुणे यावत्परतस्तूत्तमोत्तमम् । सद्भकूट इति ज्ञेयं दुष्टकूटेऽथ कथ्यते ॥ २१ ॥ निन्द्यं गुणैर्विंशतिभिर्मध्यमं पञ्चभिस्तथा । तत्परैः पञ्चभिः श्रेष्ठं ततः श्रेष्ठतरं गुणैः ॥ २२ ॥

इति राशिकूटविचारः ।

---

## अथ निश्चयः ।

पुण्याहे च विवाहर्क्षे चित्रावस्वश्विविष्णुभे । लब्ध्वा चन्द्रबलं कुर्यान्निश्चयं सत्यया गिरा ॥ १ ॥ शुभलग्नेऽग्निसांनिध्ये स्नातां पुण्यामरोगिणीम् । तत्कालोपस्थिते कन्यां पिता तुभ्यं प्रयच्छति ॥ २ ॥ यदि त्वं पतितो न स्या दशदोषविवर्जितः । तुभ्यं कन्यां प्रदास्यामि द्विजदेवाग्निसंनिधौ ॥ ३ ॥ तुभ्यं कन्यार्थिने वाचा कन्यादानं प्रयच्छति । तन्निश्चयार्थं मद्दत्तं गृह्यतां साक्षताफलम् ॥ ४ ॥ निश्चये प्राङ्मुखायाऽऽदौ वरपित्रे ददाति च । फलं कन्यापिता दद्यात्ततो वरपिता तथा । वाग्दाने वरणे मौढ्यं न त्यजेद्गुरुशुक्रयोः ॥ ५ ॥

इति निश्चयः ।

---

## अथ कन्यावरणम् ।

पञ्चाङ्गशुद्धिदिवसे चन्द्रताराबलान्विते । विवाहभस्योदये वा कन्यावरणमान्वयैः ॥ १ ॥ विश्वर्क्षपूर्णात्रयकर्णयुग्मस्वात्यग्निमैत्रैश्च विवाहभैर्वा । मत्यङ्मुखः सन्वरयेत्कुमारीं फलादिभिः प्राग्वदनीं सुवेषाम् ॥ २ ॥ धीधर्मकेन्द्रगैः सौम्यैः पापैः शत्रुत्रिलाभगैः । कन्याया वरणं कार्यं जीवे चोपचयस्थिते ॥ ३ ॥ कन्याप्रदानमपरे विवाहतुल्यं वदन्ति कालज्ञाः । लग्नं विना वसिष्ठः प्राह मुनिर्नारदर्थंवम् ॥ ४ ॥ नारदः—भूषणैःफल(पुष्प)ताम्बूलफलगन्धाक्षतादिभिः । शुक्लाम्बरैर्गीतवाद्यैर्विप्राशीर्वचनैः सह ॥ ५ ॥ कारयेत्कन्यकागेहे वरः प्रणवपूर्वकम् । तदा कुर्यात्पिता तस्याः प्रदानं प्रीतिपूर्वकम् ॥ ६ ॥ कुलशीलवयोरूपवित्तविद्यायुताय च । वराय रूपसंपन्नां दद्यात्कन्यां यवीयसीम् ॥ ७ ॥ संपूज्य संप्रार्थ्य च तां शचीदेवीं गुणाश्रयाम् । त्रैलोक्यसुन्दरीं दिव्यगन्धमाल्याम्बरान्विताम् ॥ ८ ॥ सर्वलक्षणसंयुक्तां सर्वाभरणभूषिताम् । अनर्घ्यमणिमालाभिर्भासयन्तीं दिगन्तरान् ॥ ९ ॥ विलासिनीसहस्राद्यैः सेव्यमानामहर्निशम् । एवंविधां कुमारी तां पूजान्ते प्रार्थयेदिति ॥ १० ॥ देवेन्द्राणि नमस्तुभ्यं देवेन्द्रप्रियभामिनि । विवाहभाग्यमारोग्यं पुत्रलाभं च देहि मे ॥ ११ ॥ श्वेताम्बरं नारिकेलं भक्ष्याद्यफलमर्पयेत् । प्रदाने यद्दुकूलादि कर्णकण्ठादिभूषणम् ॥ १२ ॥ उभे वा युगपत्कार्ये तत्र तद्वस्त्रमण्डने । आदौ संपादयेत्पश्चाद्विन्यसेत्फलमञ्जलौ ॥ १३ ॥ हरिद्रामधुपुष्पाणि गुडजीरकतण्डुलाः । धान्यकं मुद्रिकावल्ली सौभाग्याष्टकमुच्यते ॥ १४ ॥ लग्नशब्दो विवाहे स्याद्वरणं फललग्नयोः । पाणिपीडनशब्दस्तु कन्यादाने करग्रहे ॥ १५ ॥ विवाहर्क्षेषु यः प्रोक्तो मयाऽङ्घ्रिशालनोत्सवः । कन्याया वरणात्पूर्वं देशाचारः स केवलम् ॥ १६ ॥

इति कन्यावरणम् ।

---

## अथ विवाहकालविचारः ।

नारदः—युग्मेऽब्दे जन्मतः स्त्रीणां प्रीतिदं पाणिपीडनम् । एतत्पुंसामयुग्मेऽब्दे व्यत्यये नाशनं तयोः ॥ १ ॥ सर्वत्र—अष्टवर्षा भवेद्गौरी नवमे रोहिणी भवेत् । दशमे कन्यका प्रोक्ता द्वादशे वृषली मता ॥ २ ॥ गौरीं ददन्नाकपृष्ठं वैकुण्ठं रोहिणीं ददत् । कन्यां ददद्ब्रह्मलोकं रौरवं तु रजस्वलाम् ॥ ३ ॥

इति विवाहकालः ।

---

## अथ गुरुशुक्रास्तापवादः।

लल्लः—अस्तमिते भृगुतनये नारी म्रियते बृहस्पतौ पुरुषः। दंपत्योः सह मरणं पाणिग्रहणोदिते केतौ ॥ १ ॥ अगस्त्यः—एको मूढो भवेदन्त्यः स्वोच्चमित्रांशको यदि। स्वराशिमूर्तिगश्चैव मूढदोपो विनश्यति ॥ २ ॥ बृहस्पतिः—यद्येकस्यापि मूढत्वे शुभकर्म न दोषकृत्। तयोर्मूढत्वमेवोक्तं दोषदं गुरुशुक्रयोः ॥३॥ द्विजन्मादिशुभे कार्ये शुक्रमौढ्यं न दोपदम्। त्रैवर्णिकानामेवोक्तं दोपदं गुरुशुक्रयोः ॥ ४ ॥ क्षत्रियाणां विशेषेण भृत्यानां राजसेविनाम्। मौढ्यदोपं न पश्येत्तु दीक्षणामेव कारयेत् ॥ ५ ॥ अतिपातिपु कार्येषु राज्ञां तत्कर्मकारिणाम्। विवाहादीनि कार्याणि मौढ्येऽपि गुरुशुक्रयोः ॥ ६ ॥ शान्तिं कृत्वा तयोस्तद्वच्छुक्रदेवेन्द्रमन्त्रिणोः। होमैर्दीपैर्जपैर्वाऽपि तयोरुदितमन्त्रकैः ॥ ७ ॥ यदा जीवसितौ चक्रे परस्परनिरीक्षकौ। समभस्थौ तदा दोपो मूढत्वादतिरिच्यते ॥ ८ ॥ सग्रहे—समदृष्टिर्गुरोः शुक्रे नर्मदोत्तरतो भवेत्। नर्मदायाम्यभागे तु समदृष्टिर्न विद्यते ॥ ९ ॥

इति गुरुशुक्रास्तापवादः।

---

## अथ रविगुर्वोर्बलविचारः।

नारदः—विवाहे बलमावश्यं दंपत्योर्गुरुसूर्ययोः। तत्पूजा यत्नतः कार्या दुर्बलप्रदयोस्तयोः ॥१॥ गर्गः—स्त्रीणां गुरुबलं श्रेष्ठं पुरुषाणां रवेर्बलम्। तयोश्चन्द्रबलं श्रेष्ठमिति गर्गेण निश्चितम् ॥ २ ॥ जन्मत्रिदशमारिस्थः पूजया शुभदो गुरुः। विवाहेऽथ चतुर्थाष्टद्वादशस्थो मृतिप्रदः ॥ ३ ॥ बृहस्पतिः—झषचापकुलीरस्थजीवोऽप्यशुभगोचरः। अतिशोभनतां दद्याद्विवाहोपनयादिषु ॥ ४ ॥ सर्वत्रापि शुभं दद्याद्द्वादशाब्दात्परं गुरुः। पञ्चषष्ठाब्दयोरेव शुभगोचरता मता ॥५॥ सप्ताब्दात्पञ्चवर्षेषु स्वोच्चस्वर्क्षगतो यदि। अशुभोऽपि शुभं दद्याच्छुभदर्क्षेषु किं पुनः ॥ ६ ॥ रजस्वला यदा कन्या गुरुशुद्धिं न चिन्तयेत्। अष्टमेऽपि प्रकर्तव्यो विवाहस्त्रिगुणार्चनात् ॥ ७ ॥ अर्कगुर्वोर्बलं गौर्याः रोहिण्यर्कबला स्मृता। कन्या चन्द्रबला प्रोक्ता वृषली लग्नतोबला ॥ ८ ॥ केचिदाहुर्गुरोः शुद्धिर्नान्वेष्या गणकोत्तमैः। विवाहे त्वन्त्यजादीनां चाण्डालानां च पुल्कसाम् ॥ ९ ॥ चारेऽतिचारे वक्रे वा यस्मिन्भे संस्थितो गुरुः। शुद्धिं कुर्यात्स तत्रैव योषितां करपीडने ॥ १० ॥ कन्योद्वाहे गुरुदिने गुरुः पूज्यो द्विजातिभिः। पुनोद्वाहे व्रतत्वाच्च शूद्राद्यैः पूज्यते क्वचित् ॥ ११ ॥ वसिष्ठः—यत्रार्कगुर्वोरपि नैधनान्त्य-

जन्मादिदुःस्थानगयोर्द्वयोर्वा । एकस्य पूजामपि तत्र कृत्वा पाणिग्रहं कार्यमतः सुसम्यक् ॥ १२ ॥

## अत्रापेक्षितबृहस्पतिशान्तिरभिधीयते ।

तत्र शौनकः—कन्यकोद्वाहकाले तु आनुकूल्यं न विद्यते । ब्राह्मणस्योपनयने गुरोर्विधिरुदाहृतः ॥ १ ॥ सुवर्णेन गुरुं कृत्वा पीतवस्त्रेण वेष्टयेत् । ऐशाने धवलं कुम्भं धान्योपरि निधाय च ॥ २ ॥ दमनं मधुपुष्पं च तथा पालाशसर्षपान् । मांसी गुडूच्यपामार्गविडङ्गी शङ्खिनी वचा ॥ ३ ॥ सहदेवी हरिक्रान्ता सर्वौषधी शतावरी । कृत्वाऽऽज्यभागपर्यन्तं स्वशाखोक्तविधानतः ॥ ४ ॥ गृह्योक्तमण्डलेऽभ्यर्च्य पीतपुष्पाक्षतादिभिः । देवपूजोत्तरे काले ततः कुम्भानुमन्त्रणम् ॥ ५ ॥ अश्वत्थसमिधश्चाऽऽज्यं पायसं सर्पिरन्वितम् । यवव्रीहितिलाः साज्या मन्त्रेणैव बृहस्पतेः ॥ ६ ॥ अष्टोत्तरशतं सर्वं होमशेषं समापयेत् । दारपुत्रसमेतस्य अभिषेकं समाचरेत् ॥ ७ ॥ कुम्भाभिमन्त्रणोक्तैश्च समुद्रज्येष्ठमन्त्रतः । प्रतिमां कुम्भवस्त्रं च ह्याचार्याय प्रदापयेत् । ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाच्छुभदः स्यान्न संशयः ॥ ८ ॥

इति शौनकोक्तबृहस्पतिशान्तिविधिः ।

---

## अथाऽऽदित्यशान्तिः ।

शौनकः—ब्राह्मणस्योपनयने नानुकूलो भवेद्रविः । तस्य शान्तिं प्रवक्ष्यामि मन्त्रौषधिविधानतः ॥ १ ॥ अत्रोपनयनग्रहणं विवाहादीनामप्युपलक्षणम् । उपनयनात्पूर्वेद्युः कृत्वा पुण्याहवाचनम् । गृहस्येशानदिग्भागे गोमयेनोपलेपयेत् ॥ २ ॥ कुङ्कुमेनोल्लिखेत्पद्ममष्टपत्रं सकेसरम् । सुवर्णेन रविं कृत्वा द्विभुजं पद्मधारिणम् ॥३॥ कृत्वाऽऽज्यभागपर्यन्तं तत्र कृत्वा तु पूर्ववत् । स्वशाखोक्तविधानेन ह्याचार्यो होममाचरेत् ॥ ४ ॥ आकृष्णेनेतिमन्त्रेण समिदाज्यचरूञ्जुहेत् । अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा ॥ ५ ॥ तिलव्रीहींश्च हुत्वाऽथ होमशेषं समापयेत् । दारपुत्रसमेतस्य ह्यभिषेकं समाचरेत् ॥ ६ ॥ कुम्भाभिमन्त्रणोक्तैश्च समुद्रज्येष्ठमन्त्रकैः । ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्यादन्येभ्यश्च स्वशक्तितः ॥ ७ ॥ प्रतिमां वस्त्रकुम्भं च ह्याचार्याय प्रदापयेत् । एवं यः पूजयेत्सूर्यं सर्वदोषोऽस्य नश्यति ॥ ८ ॥

इत्यादित्यशान्तिः ।

---

## अथ मासनिर्णयः ।

माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासाः शुभावहाः । विवाहे मार्गशीर्षोऽपि देवलस्य मतेन च ॥ १ ॥ नारदः–माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासाः शुभप्रदाः । मध्यमः कार्तिको मार्गशीर्षो वै निन्दिताः परे ॥ २ ॥ न कदाचिद्दशर्क्षेषु भानोरार्द्राप्रवेशनात् । विवाहं दैवतानां च प्रतिष्ठां चोपनायनम् ॥ ३ ॥ पौषेऽपि मकरस्थेऽर्के चैत्रे मेषगते रवौ । आषाढे मिथुनादित्ये केऽप्याहुः करपीडनम् ॥ ४ ॥ चान्द्रो दैवो मानुषो वा सौरो देशानुसारतः । शुचिः शुक्लनवम्यन्तो ग्राह्यो लग्ने च कार्तिकः ॥ ५ ॥ ज्येष्ठे न ज्येष्ठयोः कार्यं नृनार्योः पाणिपीडनम् । तयोरेकतरे ज्येष्ठे ज्येष्ठमासेऽपि कारयेत् ॥ ६ ॥ नारदः—अप्रबुद्धो हृषीकेशो यावत्तावन्न मङ्गलम् । उत्सवे वासुदेवस्य दिवसे नान्यमङ्गलम् ॥ ७ ॥ न जन्ममासे जन्मर्क्षे न जन्मदिवसेऽपि च । नाऽऽद्यगर्भसुतस्याथ दुहितुर्वा करग्रहः ॥ ८ ॥ नैवोद्वाहो ज्येष्ठपुत्रीपुत्रयोश्च परस्परम् । ज्येष्ठमासे तयोरेको ज्येष्ठः श्रेष्ठश्च नान्यथा ॥ ९ ॥ शुक्ले तु सुभगा मान्या कृष्णपक्षेऽनृतप्रिया । दिवा भर्तुः प्रिया रात्रौ पित्रर्चनरता च सा ॥ १० ॥

इति मासनिर्णयः ।

---

## अथ तिथ्यादिशुद्धिः ।

नारदः—मासान्ते पञ्च दिवसांस्त्यजेद्रिक्तामथाष्टमीम् । विष्टिं च परिघस्यार्धं व्यतीपातं च वैधृतिम् ॥ १ ॥ विधिरत्ने—पञ्चदश्यष्टमी रिक्ता वर्ज्याश्चान्याः शुभावहाः । केचित्कृष्णाष्टमीं प्राहुर्विवाहेषु वयोत्यये ॥ २ ॥ नारदः—पौष्णध्रात्र्युत्तरामैत्रमरुच्चन्द्रार्कपैतृभैः । समूलभैरविद्धैस्तैः स्त्रीकरग्रह इष्यते ॥ ३ ॥ गर्गः–मघायाः प्रथमे पादे मूलस्य प्रथमे तथा । रेवत्याश्च चतुर्थांशे विवाहः प्राणनाशनः ॥ ४ ॥ एतल्लग्नबलाभावे ज्ञेयम् । भगर्क्षं सर्वसौभाग्यकरं स्त्रीणां विशेषतः । कुतस्तर्हि वराहाद्यैर्गर्हितं पाणिपीडनम् ॥ ५ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे–कीर्तितो मुनिभिः सर्वैः पुष्यः सर्वार्थसाधकः । इति सत्यपि चोद्वाहे निन्दितः केन हेतुना ॥ ६ ॥ अनयोरुत्तरं वृन्दावने–प्राचेतसः प्राह शुभं भगर्क्षं सीता तदूढा न सुखं सिषेवे । पुष्यस्तु पुष्यत्यतिकाममेव प्रजापतेराप स शापमस्मात् ॥ ७ ॥ वेधादिसर्वनक्षत्रशुद्धिस्तत्तत्प्रकरणस्था ज्ञातव्या ।

इति तिथ्यादिशुद्धिः ।

---

१ घ. 'हे विपुलस्य'

## अथ जामित्रशुद्धिः ।

नारदः—जामित्रशुद्ध्यैकविंशन्महादोषविवर्जनम् । एकविंशतिदोषाणां नामरूपफलानि च ॥ १ ॥ तत्रैकविंशतिर्दोषा दोषाध्याय उक्ताः । विवाहे मुख्यत्वाज्जामित्रशुद्धिरत्रोच्यते । क्रूरो वा यदि वा सौम्यो लग्नाच्चन्द्राच्च खेचरः । एकोऽपि यदि जामित्रे समांशे शोकदो भवेत् ॥ २ ॥ विधवा ससपत्न्यर्काद्वन्ध्या जामित्रगं फलम् । दुष्टाऽमान्या दुर्भगा वा वेश्या गर्भस्रवा क्रमात् ॥ ३ ॥ जामित्रं न प्रशंसन्ति गर्गदेवलकश्यपाः । यदि ते बलहीनाः स्युः सर्वसाम्यावतां ययुः ॥ ४ ॥ जामित्रगा यदि खगा उशना बुधो वा गीर्वाणनाथसितपक्षशशीतरश्मी । कन्याविवाहसमये परिहृत्य दोषं पुत्रान्वितं शुभकराः सुखमाशु दद्युः ॥ ५ ॥ लग्नाच्छीतकराद्ग्रहा द्युनगता नेष्टा विवाहे स्मृताः केचित्त्वाद्यनवांशकादिषु शरैस्तुल्ये नवांशे स्थिताः । लग्नात्रिकोणसहजायगतं च ( तथ )रद्विर्जामित्रदोषगणनां भृगुराशु हन्यात् । धीधर्मकण्टकगतः स्फुरदंशुजालो जीवोऽतिजीवयति लग्नगुणान्स धत्ते ॥ ६ ॥ वसिष्ठः—लग्नेन्दुजामित्रघनप्रचारनीहारविद्युत्परिवेषजांश्च । दोषानशेषानमृताख्ययोगो निहन्ति लोभो गुणवृन्दमेकः ॥ ७ ॥ एकार्गलोपग्रहपातलत्ताजामित्रकर्तर्युदयादिदोषाः । नश्यन्ति चन्द्रार्कबलोपपन्ने लग्ने यथाऽर्काभ्युदयेऽन्धकारः ॥ ८ ॥

इति जामित्रशुद्धिः ।

---

## अथांशशुद्धिः ।

तुलामिथुनकन्यांशा धन्वंशोऽपि शुभप्रदः । विवाहेऽस्तगतस्यांशो वर्ज्यः पापेन्दुयुक्तथा ॥ १ ॥ तनुपेऽस्तंगते नाशो दंपत्योरंशपे तथा । सक्रूरेंऽशे च हानिः स्यादंशे चन्द्रयुते मृतिः ॥ २ ॥ धनुः सिंहश्च मेषादिर्नृपकन्ये मृगादिके । कुम्भमीनौ तुलाद्ये च कर्क्याद्यौ मीनवृश्चिकौ ॥ ३ ॥ वर्गोत्तमादृते देयाश्चरमे न नवांशकाः । चरलग्ने चरांशे च तुलामकरगे त्रिधा ॥ ४ ॥ चरमांशोऽपि गोमेषहरितौलिघटेषु च । सबलेषु च सद्योगे देय इत्यपरे जगुः ॥ ५ ॥

इत्यंशशुद्धिः ।

---

## अथ लग्नशुद्धिः ।

सुखघ्नं तुर्यमुद्वाहे द्वादशं वित्तनाशकृत् । जन्मभाज्जन्मलग्नाच्च मृत्युदं लग्न-

मष्टमम् ॥ १ ॥ चतुर्थं सगुणं देयं द्वादशं च गुणाधिकम् । सगुणं चाष्टमं लग्नं त्याज्यमंशस्तथाऽष्टमः ॥ २ ॥ जन्मर्क्षजन्मलग्नाभ्यां रन्ध्रेशावष्टमौ च यौ । विलग्नसंस्थितानेतांस्तद्राश्यंशानपि त्यजेत् ॥ ३ ॥ नारदः—चतुर्थमभिजिल्लग्नमुदयर्क्षात्तु सप्तमम् । गोधूलिकं तदुभयं विवाहे पुत्रपौत्रदम् ॥ ४ ॥ प्राच्यानां च कलिङ्गानां मुख्यं साधारणं स्मृतम् । अभिजित्सर्वदेशेषु मुख्यं दोषविनाशकृत् ॥ ५ ॥ मध्यंदिनगते भानौ मुहूर्तोऽभिजिदाह्वयः । नाशयत्यखिलं दोषं पिनाकी त्रिपुरं यथा ॥ ६ ॥ मध्यंदिनगते भानौ सकलं दोषसंचयम् । करोति नाशमभिजित्तूलसंघमिवानलः ॥ ७ ॥

इति लग्नशुद्धिः ।

---

## अथ लग्नगोचरम् ।

आपद्युतः खनवमायगताश्च सौम्याः शस्ताः षडायसहजाष्टमभेषु पापाः । पाणिग्रहे त्रिसुखलाभधनेषु चन्द्रः षष्ठः सितो निधनगो न शुभो महीजः ॥ १ ॥ रन्ध्रे कुजे सौम्यखगे च मृत्युः षष्ठाष्टगे लग्नपतौ च मृत्युः । तृतीयगे देवरगा च शुक्रे केऽप्याहुरन्ते शुभदो सितेज्यौ ॥ २ ॥ त्रिकोणसप्तमाम्बरव्ययोपगो विलग्नतः । हिमद्युतिः शुभर्क्षगः शुभेक्षितश्च शोभनः ॥ ३ ॥ नेष्टौ षष्ठाष्टमौ लग्नांशनाथविलग्नपौ । तथा द्रेष्काणनाथश्च चन्द्रश्च मरणप्रदः ॥ ४ ॥ नातिदुष्टाः शुभा द्यूने तथा लग्नेश्वरो व्यये । द्रेष्काणेशस्तथा रन्ध्रे क्षीणेन्दुर्मध्यमे धने ॥५॥ निधनचतुष्टयसंस्थे पापद्वयमध्यगे क्षपानाथे । निधनं प्रयाति नियतं देवैरपि रक्षिता कन्या ॥ ६ ॥ वैरिवारे शुभः खेटो लग्नगोऽप्यशुभायते । मित्रवारे तु पापेऽपि शुभदः स्यान्न संशयः ॥७॥ अश्विनीचर्क्षगे शुक्रे श्वश्र्वाऽर्के श्वशुरेण च । कलत्रेंऽशे च पत्या हि स्याद्विरोधो मृगीदृशाम् ॥८॥ पञ्चभिरिष्टैरिष्टं पुष्टमनिष्टैरनिष्टमादेश्यम् । स्थानादिबलसमृद्धैश्चतुर्भिरपि पठ्यते यवनैः ॥ ९ ॥ नारदः—धनात्रिबन्धुतनयाधर्माज्ञायेषु चन्द्रमाः । करोति सुतसौभाग्यभोगयुक्तां विवाहिताम् ॥ १० ॥ वसिष्ठः—मृत्युर्नैःस्वं बहुविधधनं भ्रातृहानिः प्रजानां व्याधिर्मान्यैरतिशयधनं भ्रातृहानिश्चिरायुः । श्रेयोहानिर्भवति हृदयव्याधिरर्थागमत्वं भानौ स्त्रीणामतिशयरुजा लग्नभावादिसंस्थे ॥ ११ ॥ नाशः संपद्बहुविधयशो बन्धुवृद्धिः प्रजाप्तिः शस्त्रान्मृत्युर्भवति च चिराद्दीर्घसापत्न्यबाधा । प्रव्रज्यात्वं दुहितृजनितृत्वं धनं

१ क. ध. 'था द्रक्र.ण'। २ क.र. 'ये । द्रक्रणे'।

भोगभावत्वं दास्यं स्त्रीणां तुहिनकिरणे लग्नभावादिसंस्थे ॥ १२ ॥ मृत्युः शोको बहुविधधनं भ्रातृवैरं कुबुद्धिर्लक्ष्मीप्राप्तिर्भवति मरणं चोभयोर्वशनाशः । स्त्रीणां द्रैण्यं (पो) व्यसननिरतिः पुत्रपौत्रार्थसिद्धिर्भीतिर्भूमेर्धिषणे तनये लग्नभावादिसंस्थे ॥ १३ ॥ प्रीतिर्वृद्धिः सुगुणनिरतिर्बन्धुपूजा सुताप्तिर्निर्वैपक्षं तनयरहितत्वं तत्सुत्यागचिन्ता । धर्मे बुद्धिर्भवति धरणीलाभम (प्राप्तिर) त्यन्तवृद्धिर्हानिः स्त्रीणां हिमकरसुते लग्नभावादिसंस्थे ॥ १४ ॥ लक्ष्मीप्राप्तिर्भवति सुयशःप्रीतिरन्योन्यवृद्धिरिष्टप्राप्तिर्बहुविधभयं चाऽऽश्रमाणां विरक्तिः । पापासक्तिः सुकृतनिरतिर्भूरिलाभः सुरेज्ये स्त्रीणां सौख्यं रिपुकुलभयं लग्नभावादिसंस्थे ॥ १५ ॥ भोगावाप्तिर्विविधविभवः स्वैरवृत्तिर्महत्त्वं द्युम्नाधिक्यं भवति निधनं सर्वनाशो व्ययित्वम् । तथ्यप्रीतिर्बहुविधगुणः सर्वसंपत्समृद्धिरस्त्वं स्त्रीणामुशनसि तथा लग्नभावादिसंस्थे ॥ १६ ॥ स्वच्छन्दत्वं कदशनरतिर्वल्लभत्वं विशीलं व्याधिः सुश्रीर्मृतिरथ सुखं गर्भपातप्रवृत्तिः । द्यूतासक्तिर्भवति रविजे वैभवं वक्ररोगः स्वर्भानौ वा शिखिनि च तथा लग्नभावादिसंस्थे ॥ १७ ॥

इति लग्नगोचरम् ।

---

## अथ भावशुद्धिः ।

लग्नांशतुल्या विज्ञेया भावा द्वादश ते पुनः । तिथ्यंशेन युतास्ते स्युः प्राक्परा: संधयः क्रमात् ॥ १ ॥ भावतुल्ये ग्रहे पूर्णं न्यूनं न्यूनाधिके फलम् । अफलं संधिषु ज्ञेयं त्रैराशिकमथान्तरे ॥ २ ॥ ग्राह्या न भावोत्थगुणा विलग्ने त्याज्याश्च दोषा जगदुः स्विदेके । लग्नांशकेभ्योऽभ्यधिकोऽपि धीस्थः शुक्रोऽरिगः स्यान्न [illegible] सूर्यजस्तु ॥ ३ ॥ सप्तमस्थो यदा चन्द्रो भवेद्भावफलाष्टमः । न तदा दीयते लग्नं शुभैः सर्वग्रहैरपि ॥ ४ ॥ एतत्स्थूलं भावानयनं सूक्ष्मं तु जातकपद्धतेरवगन्तव्यम् ।

इति भावशुद्धिः ।

---

## अथ गोरजःशुद्धिः ।

घटीलग्नं यदा नास्ति तदा गोधूलिकं स्मृतम् । शूद्रादीनां बुधाः प्राहुर्न द्विजानां कदाचन ॥ १ ॥ महादोषान्परित्यज्य प्रोक्तधिष्ण्यादिकेषु च । कारयेद्गोरजौ यावत्तावल्लग्नं शुभावहम् ॥ २ ॥ कुलिकं क्रान्तिसाम्यं च मूर्तौ षष्ठा-

## अथ विवाहाङ्गादीनां शुद्धिः।

दलनं कण्डनं चैव व्यञ्जनं मोदकानि च। यवारमण्डपौ वेदी कुङ्कुमं वर्णकं तथा ॥ १ ॥ कार्यं विवाहाङ्गमिदं विवाहभैर्युञ्जन्ति नात्रेन्दुबलाबलं बुधाः। षष्ठे तृतीये नवमेऽह्नि लग्नतः पूर्वं न वर्णो न यवारमण्डपौ ॥ २ ॥ व्रते देवमतिष्ठायां विवाहे पुरुषस्त्रियोः। तैलं तन्मन्त्रतो धार्यं त्रिमलं प्राङ्मुखस्वकैः ॥ ३ ॥ रजनिजनितरागा मालिनी पूर्ववका प्रथमरजनियामेऽलंकृताभ्योऽङ्गनाभ्यः। शिरसि विमलतैलं धारयेत्सत्कुमारी निशि सुललितगीतैर्नागवल्लीदलेन ॥ ४ ॥ रजकी तैलमादाय कन्यकामभिषिञ्चति। निशायाः प्रथमे यामे नागवल्लीदलेन तु ॥ ५ ॥ घटाकारमृदा देवी निर्मिता वसुधा शची। वरणानन्तरं पूज्या यावत्पाणिग्रहो भवेत् ॥ ६ ॥ शचीं संपूज्य विधिवत्ततस्तैलाभिषेचनम्। कन्यायाश्च तदुच्छिष्टतैलेनापि वरस्य च ॥ ७ ॥ सुमुहूर्तो यदा न स्याल्लग्नात्पूर्वं तदा निशि। तैलं कृत्वा ततः कार्यं वरणं लग्नवासरे ॥ ८ ॥ रक्षार्थं दक्षिणे हस्ते बध्नीयात्कङ्कणं तयोः। बन्धनं कन्यकापूर्वं वरपूर्वं विमोचनम्॥९॥ कन्यकासूत्रकार्पासं पञ्चकेनैव निर्मितम्। त्रिगुणं कुङ्कुमार्क्तं च तन्मन्त्रेण निबन्धयेत् ॥ १० ॥ आदौ स्त्रीवरणं दानं तैलं वेदिश्च मण्डपः। वृद्धिः केलवणं लोणं गौरिण्याः पाणिपीडनम् ॥ ११ ॥ देशे देशे च आचारः स्थाने स्थाने च या स्थितिः। तथैवं व्यवहर्तव्यं पारम्पर्यवशादिभिः ॥ १२ ॥ अङ्गानि वरणादीनि प्रधानं पाणिपीडनम्। तस्माल्लग्नदिने सर्वं वरणाद्यं तु कारयेत् ॥ १३ ॥

इति विवाहाङ्गादीनां शुद्धिः।

---

## अथ विवाहभेदाः।

ब्राह्मो विवाह आहूय दीयते शक्त्यलंकृता। दैवो विवाहः कन्याया ऋत्विजे दानमुच्यते ॥ १ ॥ आर्षो गोमिथुने दत्ते कन्यादानं यदा तदा। प्राजापत्यः सह धर्मं चरतामिति दानतः ॥ २ ॥ आसुरो द्रविणादानाद्गान्धर्वः समयान्मिथः। राक्षसो युद्धहरणात्पैशाचः कन्यकाछलात् ॥ ३ ॥ अतो निन्द्यो विवाहोऽयं द्रविणादानभेदतः। आसुरः प्रोच्यते तेन तेषां शस्तोऽणुरत्रिजः ॥४॥ रत्नमालायां—प्राजापत्यब्राह्मदैवार्षसंज्ञाः कालेपूक्तेष्वेव कार्या विवाहाः। गान्धर्वाख्यश्चाऽऽसुरो राक्षसश्च पैशाचो वा सर्वकाले विधेयाः ॥ ५ ॥

इति विवाहभेदाः।

---

१ क. 'सुगास्तर्नी। २ क. दिचन्दिशू'। ३ क. अतः स्त्राव.।

## अथ दातृनिर्णयः ।

पिता पितामहो भ्राता पितृव्यो गोत्रजो गुरुः । मातामहो मातुलो वा कन्यादा बान्धवाः क्रमात् ॥ १ ॥ याज्ञवल्क्यः—पिता पितामहो भ्राता स्वकुलो जननी तथा । कन्याप्रदः पूर्वनाशे प्रकृतिस्थः परः परः ॥ २ ॥ यदाऽत्र नैव कश्चित्स्यात्कन्या राजानमाव्रजेत् । पित्राद्यभावे कर्तव्यः कन्यायाश्च स्वयंवरः ॥ ३ ॥ बलादुद्वाहिता कन्या देयाऽन्यस्मै वराय च । सुसमस्तगुणा कन्या कस्मै देयेति संशयः ॥ ४ ॥ तदा स्वयंवरं कुर्यादपणं सपणं तु वा । महादोषे सुविज्ञाते पूर्वं सप्तपदीविधेः । मरणादौ समुत्पन्ने देयाऽन्यस्मै न दोषभाक् । ॥ ५ ॥ अपत्नीकस्तु धर्मार्थे कौशी हैमी च राजती । ताम्री विप्रादिभिभार्या धार्या हैमीऽथवाऽखिलैः ॥ ६ ॥

इति दातृनिर्णयः ।

---

## अथ विषकन्यकाज्ञानम् ।

जातकोत्तमे—इलात्मजः सूर्यसुतो दिनेशो भद्रा तिथिर्वारुणमग्निधिष्ण्यम् । सार्पं च योगे भवतीह कन्या विषाङ्गना सा परिवर्जनीया ॥ १ ॥ यवनः—भद्रा तिथिर्यदाऽऽश्लेषा शतभि[ प ] क् कृत्तिका तथा । मन्दाररविवारेषु विषकन्या प्रजायते ॥ २ ॥ द्वादशी वारुणं सूर्यो विशाखा सप्तमी कुजः । मन्दाश्लेषा द्वितीया च विषकन्या प्रसूयते ॥ ३ ॥ त्रैलोक्यप्रकाशे—रिपुक्षेत्रस्थितौ द्वौ तु लग्ने यत्र शुभग्रहौ । क्रूरश्चैकस्तदा जाता भवेत्स्त्री विषकन्यका ॥ ४ ॥ योगजातके-लग्ने सौरी रवेः पुत्रो धर्मस्थो धरणीसुतः । अस्मिन्योगे तु जाता स्त्री सा भवेद्विषकन्यका ॥ ५ ॥

इति विषकन्याज्ञानम् ।

---

## अथ मूलजादीनां फलम् ।

गर्गः—मूलजा श्वशुरं हन्ति सार्पजा च तदङ्गनाम् । ज्येष्ठाजा तु पतिज्येष्ठं देवरं तु द्विदैवजा ॥ १ ॥ वृद्धनारदः—कन्यका देवरं हन्ति विशाखायां समुद्भवा । पैत्रगण्डोद्भवा कन्या श्वशुरघ्नीति केचन ॥ २ ॥ न हन्ति देवरं कन्या तुलामिश्रद्विदैवजा । तदन्त्यपादजा त्याज्या दुष्टा वृश्चिकपुच्छजा ॥ ३ ॥ करपपटले—पत्न्यग्रजामग्रजं वा हन्ति ज्येष्ठर्क्षजः पुमान् । तथा भार्यास्वसारं च

## अथ विवाहाङ्गादीनां शुद्धिः।

दलनं कण्डनं चैव व्यञ्जनं मोदकानि च । यवारमण्डपौ वेदी कुङ्कुमं वर्णकं तथा ॥ १ ॥ कार्यं विवाहाङ्गमिदं विवाहभैर्युञ्जन्ति नात्रेन्दुबलाबलं बुधाः । षष्ठे तृतीये नवमेऽह्नि लग्नतः पूर्वं न वर्णो न यवारमण्डपौ ॥ २ ॥ व्रते देवमातिष्ठायां विवाहे पुरुषस्त्रियोः । तैलं तन्मन्त्रतो धार्यं विमलं प्राङ्मुखस्वकैः ॥ ३ ॥ रजनिजनितरागा मालिनी पूर्ववक्त्रा प्रथमरजनियामेऽलंकृताभ्योऽङ्गनाभ्यः । शिरसि विमलतैलं धारयेत्तत्कुमारी निशि सुललितगीतैर्नागवल्लीदलेन ॥ ४ ॥ रजकी तैलमादाय कन्यकामभिषिञ्चति । निशायाः प्रथमे यामे नागवल्लीदलेन तु ॥ ५ ॥ घटाकारमृदा देवी निर्मिता वसुधा शची । वरणानन्तरं पूज्या यावत्पाणिग्रहो भवेत् ॥ ६ ॥ शचीं संपूज्य विधिवत्ततस्तैलाभिषेचनम् । कन्यायाश्च तदुच्छिष्टतैलेनापि वरस्य च ॥ ७ ॥ सुमुहूर्तो यदा न स्याल्लग्नात्पूर्वं तदा निशि । तैलं कृत्वा ततः कार्यं वरणं लग्नवासरे ॥ ८ ॥ रक्षार्थं दक्षिणे हस्ते बध्नीयात्कङ्कणं तयोः । बन्धनं कन्यकापूर्वं वरपूर्वं विमोचनम्॥९॥ कन्यकासूत्रकार्पासं पञ्चकेनैव निर्मितम् । त्रिगुणं कुङ्कुमार्क्तं च तन्मन्त्रेण निबन्धयेत् ॥ १० ॥ आदौ स्त्रीवरणं दानं तैलं वेदिश्च मण्डपः । वृद्धिः केलवणं लोणं गौरिण्याः पाणिपीडनम् ॥ ११ ॥ देशे देशे च आचारः स्थाने स्थाने च या स्थितिः । तथैव व्यवहर्तव्यं पारम्पर्यवशादिभिः ॥ १२ ॥ अङ्गानि वरणादीनि प्रधानं पाणिपीडनम् । तस्माल्लग्नदिने सर्वं वरणाद्यं तु कारयेत् ॥ १३ ॥

इति विवाहाङ्गादीनां शुद्धिः ।

---

## अथ विवाहभेदाः ।

ब्राह्मो विवाह आहूय दीयते शक्त्यलंकृता । दैवो विवाहः कन्याया ऋत्विजे दानमुच्यते ॥ १ ॥ आर्षो गोमिथुने दत्ते कन्यादानं यदा तदा । प्राजापत्यः सह धर्मं चरतामिति दानतः ॥ २ ॥ आसुरो द्रविणादानाद्गान्धर्वः समान्मिथः । राक्षसो युद्धहरणात्पैशाचः कन्यकाछलात् ॥ ३ ॥ अतो निन्द्यो त्मोऽयं द्रविणादानभेदतः । आसुरः मोच्यते तेन तेषां शस्तोऽप्युरत्रिजः ॥४॥ तथा—प्राजापत्यब्राह्मदैवार्षसंज्ञाः कालेपूक्तेष्वेव कार्या विवाहाः । गान्धर्वश्चाऽऽसुरो राक्षसश्च पैशाचो वा सर्वकाले विधेयाः ॥ ५ ॥

इति विवाहभेदाः ।

अपमृत्युरुजान्विता । भर्तृप्रिया च वेश्या च मान्या वित्तसुतान्विता ॥ १० ॥ उत्तरेशानपूर्वासु घटी पूर्णा शुभप्रदा । दिक्षु शेषासु कन्याया मग्ना वैधव्यदायिनी ॥ ११ ॥ अथवा साधयेत्कालं द्वाशाङ्गुलशङ्कुना । व्यासत्रिगुणपरिधिः परिधेः सममायतम् ॥ १२ ॥ व्यासाष्ट्यंशोऽङ्गुलं प्रोक्तमिति शङ्कुप्रमाणकम् । अन्ययन्त्रप्रयोगा ये दुर्लभाः कालसाधने ॥ १३ ॥ एवं सुलग्ने दंपत्योः कारयेत्सम्यगीक्षणम् ॥ १४ ॥

इति घटिकालक्षणं प्रतिष्ठा च ।

## अथ वेदिकालक्षणम् ।

केचिदूचुर्व्वजायेन रचयेद्वारिणाऽथवा[1] । करोच्छ्रितां सप्तहस्तदीर्घां वा पञ्चविस्तृताम् ॥ १ ॥ नारदः—हस्तोच्छ्रितां चतुर्हस्तैश्चतुरस्रां समन्ततः । स्तम्भैश्चतुर्भिः सुश्लक्ष्णैर्वामभागे स्वसद्मनः॥२॥ समण्डपां चतुर्दिक्षु सोपानैरतिशोभिताम् । प्रागुदक्प्रवणां रम्भास्तम्भहंसशुकादिभिः ॥ ३ ॥ विचित्रितां चित्रकुम्भैर्विविधैस्तोरणाङ्कुरैः । शृङ्गारपुष्पनिकरैर्वर्णकैः समलंकृताम् ॥ ४ ॥ विप्राशीर्वचनैः पुण्यस्त्रीभिर्दीपैर्मनोरमाम् ॥ ५ ॥ वादित्रनृत्यगीताद्यैर्हृदयानन्दिनीं शुभाम् । एवंविधां तामारोहेन्मिथुनं साग्निवेदिकाम् ॥ ६ ॥

इति वेदिकालक्षणम् ।

## अथ गान्धर्वविवाहशुद्धिः ।

पुनर्भूवरणं प्रोक्तं शूद्रादीनां शुभाप्तये । पट्टे शुद्धे विवाहर्क्षे सुवेलायां बलेऽधिके ॥ १ ॥ न शुक्रास्तादिकं चिन्त्यं शुद्धिवेधादिकं तथा । पुनर्भुवां सवरणे न मासतिथिशोधनम् ॥ २ ॥ त्रीण्यृक्षमर्कादि कुलक्षयश्च पूर्वादिलक्ष्मीर्मृतिदुर्बलत्वे । सौभाग्यवन्ध्या विधवा च नारी पुत्रप्रसूतिर्धनपट्टकाले ॥ ३ ॥ सूर्यभात्त्रिपदे शुद्धे धिष्ण्यं शाक्रं तिथिर्मितम् । आकृतिर्विकृतिर्विश्वं गन्धर्वादौ विचिन्तयेत् ॥ ४ ॥ पञ्च पाणिग्रहे दोषा वर्जनीयाः प्रयत्नतः । दारिद्र्यं मृतिर्वैधव्ये पौंश्चल्यमनपत्यता ॥ ५ ॥

इति गान्धर्वविवाहशुद्धिः ।

---

१ ग. न. 'येद्वारि' ।

ष्टगः शशी । पञ्च गोधूलिके त्याज्या अन्ये दोषाः शुभावहाः ॥ ३ ॥ मन्दवारे न कर्तव्यं बुधैर्लग्नं निशामुखे । गुरोर्वारेऽपि कर्तव्यमस्तं याते दिवाकरे ॥ ४ ॥ क्रूरमुक्तं च भोग्यं च भं विद्धं कुदिनादिकम् । लग्नं क्रूरयुतं चांशं संध्यालग्ने न चिन्तयेत् ॥ ५ ॥ ग्रहाल्लग्नादिभावस्थाज्ञामित्रं नैव चिन्तयेत् । द्विजानामपि संध्यायामंशशुद्धिं विलोकयेत् ॥ ६ ॥ लग्नशुद्धिर्यदा न स्याद्यौवने समुपस्थिते । तदा वै सर्ववर्णानां लग्नं गोधूलिकं शुभम् ॥ ७ ॥ दिनान्ते सूर्यबिम्बार्धे पूर्वभेऽत्र घटीदलम् । कालार्गले च वेलायां धात्रोद्वाहाय निर्मिता( तम् ) ॥ ८ ॥ अनागतेऽर्केऽर्कदिने शनौ च त्रिभागनष्टे शशिशुक्रयोश्च । सूर्यार्धबिम्बे शुभदं च जीवे लग्नं कुजे ज्ञे च मुखं रजन्याः ॥ ९ ॥ भानोः कुङ्कुमसंकाशाद्यावत्ताराप्रकाशनम् । यावच्च गोरजो व्योम्नि तावल्लग्नं स्मृतं परैः ॥ १० ॥ कालं हित्वा सर्वदेशे लग्ने शस्तोऽभिजित्क्षणः । अम्भोधिमथनोत्पन्नां यतोऽत्र कमलां हरिः । उद्ववाह तदाद्यं तल्लग्नं गोधूलिकं स्मृतम् ॥ ११ ॥ केऽप्याहुर्गोरजो नेष्टं तनौ कामेऽष्टमे कुजे । रिपौ शुक्रे गुरोर्वारे न चैतद्बहुसंमतम् ॥ १२ ॥

इति गोरजःशुद्धिः ।

---

## अथ घटीलक्षणं प्रतिष्ठा च ।

नारदः—एवं संचिन्त्य गणितशास्त्रोक्तं लग्नमानयेत् । तल्लग्नं जलयन्त्रेण दद्याज्ज्यौतिषिकोत्तमः ॥ १ ॥ षडङ्गुलमितोत्सेधं द्वादशाङ्गुलमायतम् । कुर्यात्कपालवत्ताम्रपात्रं तद्दशभिः पलैः ॥ २ ॥ पूर्णं षष्ट्या जलपलैः षष्टिर्मज्जति वासरात् । माषमात्रत्र्यंशयुतस्वर्णवृत्तशलाकया ॥ ३ ॥ चतुर्भिरङ्गुलैरायतया विद्धमतिस्फुटम् । ताम्रपात्रे जलैः पूर्णे मृत्पात्रे वाऽथवा शुभे ॥ ४ ॥ गन्धपुष्पाक्षतैः साद्रैरलंकृत्य प्रयत्नतः । तण्डुलस्थे स्वर्णयुते वस्त्रयुग्मेण वेष्टिते ॥ ५॥ मण्डलार्धोदयं वीक्ष्य रवेस्तत्र विनिक्षिपेत् । मन्त्रेणानेन पूर्वोक्तलक्षणं यन्त्रमुत्तमम् ॥ ६ ॥ एकान्तपक्षेऽनिलवर्जितेऽस्मिन्दध्यक्षतैः पूजितमण्डले च । कुण्डे च पूर्णे घटिका प्रदाद्या सूर्यार्धबिम्बे ह्युदितेऽस्तगे वा ॥ ७ ॥ मुख्यं त्वमसि यन्त्राणां ब्रह्मणा निर्मितं पुरा । भावभावाय दंपत्योः कालसाधनकारणम् ॥ ८ ॥ संस्तुत्यैवं घटी तोये यां दिशं प्रति गच्छति । पूर्वाशादिफलं कुर्यात्स्थिता मध्ये धनप्रदा ॥ ९ ॥ सौभाग्यं निर्धनं ( निःस्वता ) नार्या

---

१ क. °द्या यन्त्र° ।

## अथ दातृनिर्णयः ।

पिता पितामहो भ्राता पितृव्यो गोत्रजो गुरुः । मातामहो मातुलो वा कन्यादा बान्धवाः क्रमात् ॥ १ ॥ याज्ञवल्क्यः—पिता पितामहो भ्राता स्वकुलो जननी तथा । कन्याप्रदः पूर्वनाशे प्रकृतिस्थः परः परः ॥ २ ॥ यदाऽत्र नैव कश्चित्स्यात्कन्या राजानमाव्रजेत् । पित्राद्यभावे कर्तव्यः कन्यायाश्च स्वयंवरः ॥ ३ ॥ बलादुद्वाहिता कन्या देयाऽन्यस्मै वराय च । सुसमस्तगुणा कन्या कस्मै देयेति संशयः ॥ ४ ॥ तदा स्वयंवरं कुर्यादपणं सपणं तु वा । महादोषे सुविज्ञाते पूर्वं सप्तपदीविधेः । मरणादौ समुत्पन्ने देयाऽन्यस्मै न दोषभाक् । ॥ ५ ॥ अपत्नीकैस्तु धर्मार्थं कौशी हैमी च राजती । ताम्री विप्रादिभिर्भार्या धार्या हैमीऽथवाऽखिलैः ॥ ६ ॥

इति दातृनिर्णयः ।

---

## अथ विषकन्यकाज्ञानम् ।

जातकोत्तमे—इलात्मजः सूर्यसुतो दिनेशो भद्रा तिथिर्वारुणमग्निधिष्ण्यम् । सार्पं च योगे भवतीह कन्या विषाङ्गना सा परिवर्जनीया ॥ १ ॥ यवनः—भद्रा तिथिर्यदाऽऽश्लेषा शतभि[ ष ]क् कृत्तिका तथा । मन्दाररविवारेषु विषकन्या प्रजायते ॥ २ ॥ द्वादशी वारुणं सूर्यो विशाखा सप्तमी कुजः । मन्दाश्लेषा द्वितीया च विषकन्या प्रसूयते ॥ ३ ॥ त्रैलोक्यप्रकाशे—रिपुक्षेत्रस्थितौ द्वौ तु लग्ने यत्र शुभग्रहौ । क्रूरश्चैकस्तदा जाता भवेत्स्त्री विषकन्यका ॥ ४ ॥ योगजातके—लग्ने सौरी रवेः पुत्रो धर्मस्थो धरणीसुतः । अस्मिन्योगे तु जाता स्त्री सा भवेद्विषकन्यका ॥ ५ ॥

इति विषकन्याज्ञानम् ।

---

## अथ मूलजादीनां फलम् ।

गर्गः—मूलजा श्वशुरं हन्ति सार्पजा च तदङ्गनाम् । ज्येष्ठाजा तु पतिज्येष्ठं देवरं तु द्विदैवजा ॥ १ ॥ वृद्धनारदः—कन्यका देवरं हन्ति विशाखायां समुद्भवा । पैत्रगण्डोद्भवा कन्या श्वशुरघ्नीति केचन ॥ २ ॥ न हन्ति देवरं कन्या तुलामिश्रद्विदैवजा । तदन्त्यपादजा त्याज्या दुष्टा वृश्चिकपुच्छजा ॥ ३ ॥ कश्यपपटले—पत्न्यग्रजामग्रजं वा हन्ति ज्येष्ठर्क्षजः पुमान् । तथा भार्यास्वसारं च

## अथ विवाहाङ्गादीनां शुद्धिः।

दलनं कण्डनं चैव व्यञ्जनं मोदकानि च। यवारमण्डपौ वेदी कुङ्कुमं वर्णकं तथा ॥ १ ॥ कार्यं विवाहाङ्गमिदं विवाहभैर्युञ्जन्ति नात्रेन्दुबलाबलं बुधाः। षष्ठे तृतीये नवमेऽह्नि लग्नतः पूर्वं न वर्णो न यवारमण्डपौ ॥ २ ॥ व्रते देवप्रतिष्ठायां विवाहे पुरुषस्त्रियोः। तैलं तन्मन्त्रतो धार्यं विमलं प्राङ्मुखस्वकैः ॥ ३ ॥ रजनिजनितरागा मालिनी पूर्ववक्त्रा प्रथमरजनियामेऽलंकृताभ्योऽङ्गनाभ्यः। शिरसि विमलतैलं धारयेत्तत्कुमारी निशि सुललितगीतैर्नागवल्लीदलेन ॥ ४ ॥ रजकी तैलमादाय कन्यकामभिषिञ्चति। निशायाः प्रथमे यामे नागवल्लीदलेन तु ॥ ५ ॥ घटाकारमृदा देवी निर्मिता वसुधा शची। वरणानन्तरं पूज्या यावत्पाणिग्रहो भवेत् ॥ ६ ॥ शचीं संपूज्य विधिवत्ततस्तैलाभिषेचनम्। कन्यायाश्च तदुच्छिष्टतैलेनापि वरस्य च ॥ ७ ॥ सुमुहूर्तो यदा न स्याल्लग्नात्पूर्वं तदा निशि। तैलं कृत्वा ततः कार्यं वरणं लग्नवासरे ॥ ८ ॥ रक्षार्थं दक्षिणे हस्ते बध्नीयात्कङ्कणं तयोः। बन्धनं कन्यकापूर्वं वरपूर्वं विमोचनम्॥९॥ धन्यकासूत्रकार्पासं पञ्चकेनैव निर्मितम्। त्रिगुणं कुङ्कुमाक्तं च तन्मन्त्रेण निबन्धयेत् ॥ १० ॥ आदौ स्त्रीवरणं दानं तैलं वेदिश्च मण्डपः। वृद्धिः केलवणं लोणं गौरिण्याः पाणिपीडनम् ॥ ११ ॥ देशे देशे य आचारः स्थाने स्थाने च या स्थितिः। तथैवं व्यवहर्तव्यं पारम्पर्यवशादिभिः ॥ १२ ॥ अङ्गानि वरणादीनि प्रधानं पाणिपीडनम्। तस्माल्लग्नदिने सर्वं वरणाद्यं तु कारयेत् ॥ १३ ॥

इति विवाहाङ्गादीनां शुद्धिः।

---

## अथ विवाहभेदाः।

ब्राह्मो विवाह आहूय दीयते शक्त्यलंकृता। दैवो विवाहः कन्याया ऋत्विजे दानमुच्यते ॥ १ ॥ आर्षो गोमिथुने दत्ते कन्यादानं यदा तदा। प्राजापत्यः सह धर्मं चरतामिति दानतः ॥ २ ॥ आसुरो द्रविणादानाद्गान्धर्वः समयान्मिथः। राक्षसो युद्धहरणात्पैशाचः कन्यकाछलात् ॥ ३ ॥ अतो निन्द्यो विवाहोऽयं द्रविणादानभेदतः। आसुरः प्रोच्यते तेन तेषां शस्तोऽणुरत्रिजः ॥४॥ रत्नमालायां—प्राजापत्यब्राह्मदैवार्षसंज्ञाः कालेपूक्तेष्वेव कार्या विवाहाः। गान्धर्वाख्यश्चाऽऽसुरो राक्षसश्च पैशाचो वा सर्वकाले विधेयाः ॥ ५ ॥

इति विवाहभेदाः।

---

१ क. 'सुणातनी। २ क. द्विचन्द्रिसू°। ३ क. अतः श्काव.।

## अथ दातृनिर्णयः ।

पिता पितामहो भ्राता पितृव्यो गोत्रजो गुरुः । मातामहो मातुलो वा कन्यादा बान्धवाः क्रमात् ॥ १ ॥ याज्ञवल्क्यः—पिता पितामहो भ्राता स्वकुलो जननी तथा । कन्याप्रदः पूर्वनाशे प्रकृतिस्थः परः परः ॥ २ ॥ यदाऽत्र नैव कश्चित्स्यात्कन्या राजानमाव्रजेत् । पित्राद्यभावे कर्तव्यः कन्यायाश्च स्वयंवरः ॥ ३ ॥ बलादुद्वाहिता कन्या देयाऽन्यस्मै वराय च । सुसमस्तगुणा कन्या कस्मै देयेति संशयः ॥ ४ ॥ तदा स्वयंवरं कुर्यादपणं सपणं तु वा । महादोषे सुविज्ञाते पूर्वं सप्तपदीविधेः । मरणादौ समुत्पन्ने देयाऽन्यस्मै न दोषभाक् । ॥ ५ ॥ अपत्नीकैस्तु धर्मार्थं कौशी हैमी च राजती । ताम्री विप्रादिभिर्भार्या धार्या हैमीऽथवाऽखिलैः ॥ ६ ॥

इति दातृनिर्णयः ।

---

## अथ विषकन्यकाज्ञानम् ।

जातकोत्तमे—इलात्मजः सूर्यसुतो दिनेशो भद्रा तिथिर्वारुणमग्निधिष्ण्यम् । सार्पं च योगे भवतीह कन्या विषाङ्गना सा परिवर्जनीया ॥ १ ॥ यवनः—भद्रा तिथिर्यदाऽऽश्लेषा शतभि[ ष ] क् कृत्तिका तथा । मन्दाररविवारेषु विषकन्या प्रजायते ॥ २ ॥ द्वादशी वारुणं सूर्यो विशाखा सप्तमी कुजः । मन्दाश्लेषा द्वितीया च विषकन्या प्रसूयते ॥ ३ ॥ त्रैलोक्यप्रकाशे—रिपुक्षेत्रस्थितौ द्वौ तु लग्ने यत्र शुभग्रहौ । क्रूरश्चैकस्तदा जाता भवेत्स्त्री विषकन्यका ॥ ४ ॥ योगजातके—लग्ने सौरी रवेः पुत्रो धर्मस्थो धरणीसुतः । अस्मिन्योगे तु जाता स्त्री सा भवेद्विषकन्यका ॥ ५ ॥

इति विषकन्याज्ञानम् ।

---

## अथ मूलजादीनां फलम् ।

गर्गः—मूलजा श्वशुरं हन्ति सार्पजा च तदङ्गनाम् । ज्येष्ठाजा तु पतिज्येष्ठं देवरं तु द्विदैवजा ॥ १ ॥ वृद्धनारदः—कन्यका देवरं हन्ति विशाखायां समुद्भवा । पैत्रगण्डोद्भवा कन्या श्वशुरघ्नीति केचन ॥ २ ॥ न हन्ति देवरं कन्या तुलामिश्रद्विदैवजा । तदन्त्यपादजा त्याज्या दुष्टा वृश्चिकपुच्छजा ॥ ३ ॥ कश्यपपटले—पत्न्यग्रजामग्रजं वा हन्ति ज्येष्ठर्क्षजः पुमान् । तथा भार्यास्वसारं च

शालकं च द्विदैवजः ॥ ४ ॥ व्यालजा श्वशुरं हन्ति मूलजा स्त्री तथा नरः । हन्ति सार्पोद्भवा कन्या पुमांश्च श्वशुरं स्त्रियम् ॥ ५ ॥ मूलान्त्यपादजौ श्रेष्ठौ तथाऽऽश्लेषाद्यपादजौ । द्वीशान्त्यपादजौ दुष्टौ तद्वज्ज्येष्ठान्त्यपादजौ ॥ ६ ॥ ज्योतिःसंग्रहे–ऊढायाः पितरं हन्ति मातरं च यथाक्रमम् । यदि वा पादसंख्या-वृद्धैर्मूलसार्पोद्भवः पुमान् ॥ ७ ॥ मूलजां नोद्वहेज्जीवत्पितृको व्यालजां तथा । कन्यां जीवन्मातृकस्तु न निषेधोऽयमन्यथा ॥ ८ ॥ नारदः–सुतः सुता वा नियतं श्वशुरं हन्ति मूलजः । तदन्त्यपादजो नापि हन्त्याश्लेषाद्यपादजः ॥ ९ ॥ वरयेन्न वरं मूलजातं पितरि जीवति । तथैव विद्यमानायां मातरि व्यालजं नरम् ॥१०॥ तिथ्यंशे पञ्चमे जातौ श्वशुरघ्नौ नरस्त्रियौ । श्वश्रूघ्नौ चाष्टमे मूल-स्यैवं व्यस्तं तु सार्पभे ॥ ११ ॥ मूलव्यालभवो दोषो विवाहे य उदाहृतः । स मौञ्जीबन्धनादूर्ध्वं पुंसां नैवेति केचन ॥ १२ ॥ वसिष्ठः–मूले सार्पे विशाखा-यामैन्द्रभे चोद्भवः पुमान् । न दोषकृद्विवाहेषु स्त्रियः सर्वत्र गर्हिताः ॥ १३ ॥ अस्यापवादो जातकोत्तमे–मूलसार्पोद्भवं दौष्ट्यं न स्यान्मित्रादयो ग्रहाः । उक्तस्था-नस्थिताः सौम्यदृष्टाश्च बलिनो यदि ॥ १४ ॥ भावे भावाधिपे चैव चन्द्रे च बलशालिनि । उक्तदोषा विनश्यन्ति शुभग्रहयुतेक्षिते ॥ १५ ॥ जन्मलग्नात्पि-तृस्थानं १० मातुः ४ भार्यायाः ७ भर्तुः ७ श्वशुरस्य ४ श्वश्रूस्थानं १० ज्येष्ठ-देवरशालकस्थानम् (?) ।

इति मूलजादीनां फलम् ।

---

## अथ वैधव्यादियोगे विवाहः ।

वैधव्यादिषु योगेषु जन्मकाले मृगीदृशाम् । ब्रूहि वैवाहिकं कर्म कथं तासां विधीयते ॥ १ ॥ अस्य परिहारः संहितासारे–अवैधव्यकरैर्योगैर्विवाहपटलोदितैः । वरायाऽऽयुष्मते देया कन्या वैधव्ययोगजा ॥ २ ॥ प्रारब्धानामनारब्धकर्मणां विरतिर्यथा । आत्मज्ञानात्तथा दोषा नन्दाद्यैर्विलयं ययुः ॥ ३ ॥ व्रतखण्डे सावि-त्र्यादिव्रतानीह भक्त्या कुर्वन्ति याः स्त्रियः । सौभाग्यं सुभगत्वं च भवेत्तासां सुसंततिः ॥ ४ ॥ पुराणान्तरे–बालवैधव्ययोगेऽपि कुम्भद्रुमप्रतिमादिभिः । कृत्वा लग्नं रहः पश्चात्कन्योद्वाहेति चापरे ॥ ५ ॥ यथैव रससंस्कारात्ताम्रं काञ्चनतां व्रजेत् । तथा दुष्टफला कन्या विमला स्याद्विधानतः ॥ ६ ॥

इति वैधव्यादियोगे विवाहः ।

---

## अथ समानक्रियाविचारः ।

एकमातृजयोरेकवत्सरे पुरुषस्त्रियोः । एकक्रिया न कर्तव्या क्रियाभेदो विधीयते ॥ १ ॥ नारदः—पुत्रोद्वाहात्परं पुत्रीविवाहो न ऋतुत्रये । न तयोर्व्रतमुद्वाहान्मङ्गले नान्यमङ्गलम् ॥ २ ॥ विवाहश्चैकजन्यानां षण्मासाभ्यन्तरे यदि । असंशयं त्रिभिर्वर्षैस्तत्रैका विधवा भवेत् ॥ ३ ॥ संहितादीपके—ऊर्ध्वं विवाहात्तनयस्य नैव कार्यो विवाहो दुहितुः समार्धम् । अप्राप्य कन्यां श्वशुरालयं तु वधूः प्रवेश्या स्वगृहे न चाऽऽर्दा ॥ ४ ॥ कात्यायनः—कुले ऋतुत्रयादर्वाङ् मण्डनान्न तु मुण्डनम् । प्रवेशान्निर्गमो नेष्टो न कुर्यान्मङ्गलत्रयम् ॥ ५ ॥ पुत्रोद्वाहाच्चैव पुत्रीविवाहस्तु ऋतुत्रये । अब्दान्तरान्मुण्डनं च नैकदा मुण्डनद्वयम् ॥ ६ ॥ मातृयज्ञक्रियापूर्वं ज्येष्ठं कृत्वा तु मङ्गलम् । ऋतुत्रयं पुनर्यावन्न कुर्याल्लघुमङ्गलम् ॥ ७ ॥ कुर्वन्ति मुनयः केचिदन्यस्मिन्वत्सरे लघु । लघु वा गुरु वा कार्यं प्राप्तं नैमित्तिकं तु यत् ॥ ८ ॥ पुत्रोद्वाहः प्रवेशाख्यः कन्योद्वाहस्तु निर्गमः । मुण्डनं चौलमित्युक्तं व्रतोद्वाहौ तु मङ्गलम् ॥ ९ ॥ चौलं मुण्डनमेवोक्तं वर्जयेद्वरणात्परम् । मौञ्जी चोभयतः कार्या ततो मौञ्जी न मुण्डनम् ॥१०॥ अभिन्ने वत्सरे यस्य तदहस्तत्र भेदयेत् । अभेदेऽपि दिनस्यापि न कुर्यादेकमण्डपे ॥११॥ अथ देशकालभयादौ प्रवृत्तिमाह कपर्दिकायाम्—उद्वाह्य पुत्रीं न पिता विदध्यात्पुत्रान्तरस्योद्वहनं हि जातु । यावच्चतुर्थीदिनमत्र सर्वं समाप्य चान्योद्वहनं विदध्यात् ॥ १२ ॥ स्मृतिसारावल्या—स्वसृयुगे भ्रातृयुगे भ्रातृस्वसृयुगे तथा । एकस्मिन्मण्डपे चैव न कुर्यान्मङ्गलद्वयम् ॥ १३ ॥ पुत्रीपरिणयादूर्ध्वं यावद्दिनचतुष्टयम् । पुत्र्यन्तरस्य कुर्वीत नोद्वाहमिति सूरयः ॥ १४ ॥ एतद्वचनद्वयं भिन्नमातृकविषयम् । तथाचोक्तम्—एकोदरप्रसूतानामेकस्मिन्वासरे पुनः । विवाहं नैव कुर्वीत मण्डनोपरि मुण्डनम् ॥ १५ ॥ ज्योतिर्विवरणे—एकोदरयोर्वरयोरेकदिनोद्वाहतो भवेन्नाशः । नद्यन्तर एकदिने केऽप्याहुः संकटे च शुभम् ॥ १६ ॥ न प्रतिषिद्धं लग्नं संप्राप्ते संकटे महति । एकोदरसंभवयोरेकाहे भिन्नमण्डपे काले ॥ १७ ॥ प्रवृत्तिमात्रमेतत् । शार्ङ्गधरः—ऊर्ध्वं विवाहाच्छुभदो नरस्य नारीविवाहो न ऋतुत्रये स्यात् । नारीविवाहात्तदहेऽपि शस्तं नरस्य पाणिग्रहमेव मार्याः ॥ १८ ॥ एकोदरीकरतलग्रहणं यदि स्यादेकोदरस्थवरयोः कुलनाशनं च । एकाब्दिके तु विधवा भवतीति कन्या नद्यन्तरेऽपि शुभदं पृथुशैलरोधे ॥१९॥ संहितासारावल्यां—फाल्गुने चैत्रमासे तु पुत्रोद्वाहोपनायने । भेदादब्दस्य कुर्वीत न ऋतुत्रयलङ्घनम् ॥ २० ॥

## अथ यमलविशेषः ।

एकस्मिन्वत्सरे चैकवासरे मण्डपे तथा । कर्तव्यं मङ्गलं स्वस्रोर्भ्रात्रोर्यमलजातयोः ॥ १ ॥ मेधातिथि–पृथङ्मातृजयोः कार्यो विवाहश्चैकवासरे । एकस्मिन्मण्डपे कार्यः पृथग्वेदिक्रियोस्तथा ॥ २ ॥ पुष्पपट्टिकयोः कार्यं दर्शनं न शिरस्थयोः । भगिनीभ्यामुभाभ्यां च यावत्सप्तपदी भवेत् ॥ ३ ॥

इति समानक्रियाविचारः ।

---

## अथ मत्युद्वाहनिषेधः ।

नारदः—प्रत्युद्वाहो नैव कार्यो नैकस्मै दुहितृद्वयम् । नचैकजन्ययोः पुंसोरेकजन्ये तु कन्यके । नैवं कदाचिदुद्वाहो नैकदा मुण्डनद्वयम् ॥ १ ॥ अन्यच्च—एकजन्ये तु कन्ये द्वे पुत्रयोर्नैकजन्ययोः । न पुत्रीद्वयमेकस्मै मदद्यात्तु कदाचन ॥ २ ॥

इति मत्युद्वाहनिषेधः ।

---

## अथ प्रतिकूलविचारः ।

गर्ग –कृतेऽपि निश्चये पश्चान्मृत्युर्मर्त्यस्य कस्यचित् । तदा न मङ्गलं कुर्यात्कृते वैधव्यमाप्नुयात् ॥ १ ॥ मेधातिथि –वधूवरार्थं घटिते सुनिश्चिते वरस्य गेहे त्वथ कन्यकायाः । मृतिर्भवेत्तन्मनुजस्य कस्यचित्तदा न कार्यं खलु जातु मङ्गलम् ॥ २ ॥ अत्र मङ्गलशब्देन विवाहः । स्मृतिचन्द्रिकाया—कृते वाङ्निश्चयेऽपि स्यान्मृत्युर्मर्त्यस्य गोत्रिणः । तदा न मङ्गलं कार्यं नारीवैधव्यदं ध्रुवम् ॥ ३ ॥ भृगु –वाग्दानानन्तरं यत्र कुलयोः कस्यचिन्मृतिः । तदोद्वाहो नैव कार्यः स्वपक्षक्षयदो यतः ॥ ४ ॥ वृद्धशौनक –वरवध्वोः पिता माता पितृव्यश्च सहोदरः । एतेषां प्रतिकूलं चेन्महाविघ्नप्रदं भवेत् ॥ ५ ॥ पिता मातामहश्चैव माता चैव पितामही । पितृव्यस्त्रीसुता भ्राता भगिनी वा विवाहिता ॥६॥ एभिरेव विपन्नैश्च प्रतिकूलं बुधैः स्मृतम् । अन्यैरपि विपन्नैस्तु केचिदूचुर्न तद्भवेत् ॥ ७ ॥ माण्डव्य –वाग्दानानन्तरं माता पिता भ्राता विपद्यते । विवाहो नैव कर्तव्य स्वयं स्वहितमिच्छता ॥ ८ ॥ अथ सकटादौ प्रवृत्तिमाह मेधातिथि —वाग्दानानन्तरं यत्र कुलयोः कस्यचिन्मृतिः । तदा

संवत्सरादूर्ध्वं विवाहः शुभदो भवेत् ॥ ९ ॥ स्मृतिरत्नावल्यां—पितुरब्दमिहाशौचं तदर्धं मातुरेव च । मासत्रयं तु भार्यायास्तदर्धं भ्रातृपुत्रयोः ॥ १० ॥ अन्येषां तु सपिण्डानामाशौचं माससंमितम् । तदा तु शान्तिकं कृत्वा ततो लग्नं विधीयते ॥ ११ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—प्रतिकूलेऽपि कर्तव्यो विवाहो मासमन्तरा । शान्तिं विधाय गां दत्त्वा वाग्दानादि चरेत्पुनः ॥ १२ ॥ स्मृत्यन्तरे—प्रतिकूले न कर्तव्यं लग्नं यावदृतुत्रयम् । प्रतिकूलेऽपि केऽप्याहुः कर्तव्यं बहुविघ्नत्रे ॥ १३ ॥ प्रतिकूले सपिण्डस्य मासमेकं विवर्जयेत् । विवाहं तु ततः पश्चात्तयोरेव विधीयते ॥ १४ ॥ ज्योतिःसागरे—दुर्भिक्षे राष्ट्रभङ्गे च पित्रोर्वा प्राणसंशये । प्रौढायामपि कन्यायां नाऽऽनुकूल्यं प्रतीक्ष्यते ॥ १५ ॥ मेधातिथिः—पुरुषत्रयपर्यन्तं प्रतिकूलं स्वगोत्रिणाम् । प्रवेशनिर्गमौ तद्वत्तथा मण्डनमुण्डने ॥ १६ ॥ प्रेतकर्माण्यनिर्वर्त्य चरेन्नाभ्युदयक्रियाम् । आचतुर्थे ततः पुंसि पञ्चमे तु शुभं भवेत् ॥ १७ ॥ स्मृत्यन्तरेऽपि—दीर्घरोगाभिभूतस्य दूरदेशस्थितस्य च । उदासवर्तिनश्चैव प्रतिकूलं न विद्यते ॥ १८ ॥ संकटे समनुप्राप्ते याज्ञवल्क्येन योगिना । शान्तिरुक्ता गणेशस्य कृत्वा तां शुभमाचरेत् ॥ १९ ॥ अकृत्वा शान्तिकं यस्तु निषेधे सति दारुणे । करोति हि शुभं गर्वाद्विघ्नस्तस्य पदे पदे ॥ २० ॥ प्रतिकूलविधानं च शान्तिका(कमला)करे द्रष्टव्यम् ।

इति प्रतिकूलविचारः ।

---

## अथ सूतकादौ शान्तिः ।

संकटे समनुप्राप्ते सूतके समुपागते । कूष्माण्डीभिर्घृतं हुत्वा गां च दद्यात्पयस्विनीम् ॥ १ ॥ चूडोपनयनोद्वाहप्रतिष्ठादिकमाचरेत् । यदैव सूतकप्राप्तिस्तदैवाभ्युदयक्रियाम् ॥ २ ॥ कृत्वा नार्भं वर्धयित्वा काले मङ्गलमारभेत् । अनारम्भेऽप्यवार्यत्वादनुज्ञा विष्णुनोदिता ॥ ३ ॥ अनारब्धविशुद्ध्यर्थं कूष्माण्डैर्जुहुयाद्घृतम् । गां दद्यात्पञ्चगव्याशी ततः शुध्यति सूतकी ॥ ४ ॥ कौमुद्यां—विवाहोत्सवयज्ञादावारब्धे सूतकं यदि । साङ्गं तत्कर्म कर्तव्यमन्नदानादिकं परैः ॥ ५ ॥ प्रारम्भो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतसत्रयोः । नान्दीश्राद्धं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया ॥ ६ ॥ एकविंशत्यहर्यज्ञे विवाहे दशवासरे । त्र्यहे चूडोपनयने नान्दीश्राद्धं विधीयते ॥ ७ ॥ देशान्तरे विवाहश्चेन्मध्येऽद्रिर्वा महानदी । गव्यूतित्रयपर्यन्तं स्वगृहे देवतार्चनम् ॥ ८ ॥ गर्गः—ज्वरस्योत्पादनं यस्य शुभं तस्य न कारयेत् । दोषनिर्गमनात्पश्चात्स्वस्थो धर्मं समाचरेत् ॥९॥

शल्यज्ञानं–यस्मिन्भागे सौम्या गृहस्य तद्द्रव्यमादिशेत्तत्र । पापा यस्मिन्भागे तस्मिञ्छल्यं विनिर्दिश्यम् ॥ १४ ॥ स्मृत्वेष्टदेवतां प्रष्टुर्वचनस्याऽऽद्यमक्षरम् । गृहीत्वा तु ततः शल्याशल्यं सम्यग्विचार्यते ॥ १५ ॥ अकचटतपयहया वर्णाः पूर्वादिमध्यान्ताः । शल्यकरा इह नान्ये शल्यगृहे निवसतां नाशः ॥१६॥ पृच्छायां यदि अः प्राच्यां नरशल्यं तदा भवेत् । सार्धहस्तप्रमाणेन तच्च मानुषमृत्युकृत् ॥ १७ ॥ आग्नेय्यां दिशि कः प्रश्ने खरशल्यं करद्वये । राजदण्डो भवेत्तत्र भयं नैव निवर्तते ॥ १८ ॥ याम्यायां दिशि चः प्रश्ने कुर्यादाकटि संस्थितम् । नरशल्यं गृहेशस्य मरणं चिररोगतः ॥ १९ ॥ नैर्ऋत्यां दिशि टः प्रश्ने सार्धहस्तादधस्तले । शुनोऽस्थि जायते तच्च बालानां जनयेन्मृतिम् ॥ २० ॥ तः प्रश्ने पश्चिमायां तु शिशोः शल्यं प्रजायते । सार्धहस्ते गृहस्वामी न तिष्ठति सदा गृहे ॥ २१ ॥ वायव्यां दिशि पः प्रश्ने तुषाङ्गाराश्चतुष्करे । कुर्वन्ति मित्रनाशं च दुःस्वप्नदर्शनं सदा ॥२२॥ उदीच्यां दिशि यः प्रश्ने विप्रशल्यं कटेरधः । तच्छीघ्रं निर्धनत्वाय कुबेरसदृशस्य हि ॥ २३ ॥ ऐशान्यां दिशि हः प्रश्ने गोशल्यं सार्धहस्ततः । तद्गोधनस्य नाशाय जायते गृहमेधिनः ॥२४॥ हैंपया मध्यमे कोष्ठे वक्षोमात्रे भवेदधः । नृकपालं कचा भस्म लोहं तत्कुलनाशकृत् ॥ २५ ॥

इति शल्यज्ञानपूर्विका भूमिशुद्धिः ।

## अथ दिक्साधनम् ।

मत्स्यपुराणे–कपिशीर्षप्रमाणैश्च ग्रावभिः पूरयेद्दृढम् । खातं तत्तु समं कृत्वा ततः प्राचीं प्रसाधयेत् ॥१॥ वृद्धनारदः–प्रासादे सदनेऽलिन्दे द्वारे कुण्डे विशेषतः । दिङ्मूढे कुलनाशः स्यात्तस्मात्संसाधयेद्दिशः ॥२॥ वास्तुशास्त्रे–प्रथमं सुसमे क्षेत्रे प्राचीं संसाधयेत्स्फुटम् । सिद्धान्तोक्तप्रकारेण ततो निष्पादयेद्गृहम् ॥ ३ ॥ स्फुटकारणे–ध्रुवलम्बकरेखाया रेखान्तः सौम्ययाम्यहरितौ स्तः । तन्मत्स्यपुच्छमुखतः पश्चिमपूर्वाभिधे विद्यात् ॥ ४ ॥ शिरोमणौ–वृत्तेऽम्भःसुसमीकृताक्षितिगते केन्द्रस्थशङ्कोः क्रमाद्भागं यत्र विशत्यपैति च यवस्तत्रापरेऽङ्घ्रौ दिशौ । तत्कालोपमजीवयोस्तु विवराद्भात्कर्णमित्याहताल्लम्बज्याप्तमिताङ्गुलैरयनादिश्चैन्द्री स्फुटा चालिता ॥ ५ ॥

इति दिक्साधनम् ।

---

१ क. 'पश्च°' । २ ख. ग. 'शिसः प्र°' । ३ ख. ग. यःप्रश्न°' ।

## अथ शङ्कुन्यासः ।

शिल्पशास्त्रे—भाद्रत्रये शिरः प्राच्यां याम्यां मार्गशिरत्रये । फाल्गुनत्रितये पश्चादुदग्ज्येष्ठत्रये तथा ॥ १ ॥ वास्तोः शिरसि पुच्छे च वाम्यकुक्षौ च पृष्ठतः। आयुष्कामः खनेन्नैव वामकुक्षौ खनिः शुभा ॥ २ ॥ वास्तुक्षेत्रप्रमाणं च कल्पयित्वाऽस्य वामके। कुक्षौ खातं विधायाऽऽदौ ग्रावभिः पूरयेत्ततः ॥३॥ नारदः—नभस्यादिषु मासेषु त्रिषु त्रिषु यथाक्रमम् । पूर्वादिदिक्शिरा वामपार्श्वशायी प्रदक्षिणम् ॥ ४ ॥ वास्त्वायामदलं नाभिस्तस्मादङ्ग्यङ्गुलत्रयम् । कुक्षिस्तस्मिन्न्यसेच्छङ्कुं पुत्रपौत्रप्रवर्धनम् ॥ ५ ॥ छलः—त्यजेदग्र शिरोभागे ह्यग्रेः सप्तदशांशकान् । मध्ये कुक्षिं विजानीयात्तत्र शङ्कुं प्रतिष्ठयेत् ॥ ६ ॥ अस्थिरस्य शिरो यत्र वास्तोस्तद्गणयेत्करी । दैर्घ्यं वा विस्तृतिं तत्र कृत्वाऽष्टाभिमितांशकान् ॥७॥ राजमार्तण्डे—ऊर्ध्वं भागत्रयं त्यक्त्वा ह्यधोभागद्वयं तथा । मध्ये नाभिं विजानीयादिति प्राह पराशरः ॥ ८ ॥ यदा वामपार्श्वेन पूर्वशिराः शेते तदा पश्चिमे पुच्छं दक्षिणे क्रोडमुत्तरे पृष्ठमेवं सर्वत्र । चतुर्विंशत्र्योविंशत्षोडशद्वादशाङ्गुलैः । विप्रादीनां शङ्कुमानं स्वर्णवस्त्राद्यलंकृतम् ॥९॥ खदिरार्जुनशालोत्थं युगं यत्र तरूद्भवम् । रक्तचन्दनपालाशरक्तशालविशालजम् ॥ १० ॥ नीपकारञ्जकुटजवैणवं बिल्ववृक्षजम् । शङ्कुं त्रिधा विभज्याऽऽद्यं चतुरस्रं ततः परम् ॥ ११ ॥ अष्टास्रं च तृतीयांशमनसमृदुमव्रणम् । एवंलक्षणसंयुक्तं परिकल्प्य शुभे दिने॥१२॥

इति शङ्कुन्यासः ।

---

## अथ दुर्निमित्तानि ।

वराहः—कृष्णां प्ररूढबीजां गोध्युषितां ब्राह्मणैः प्रशस्तां च । गत्वा महीं गृहपतिः काले सांवत्सरोदिते[तु शुभे]॥१॥भक्ष्यैर्नानाकारैर्दध्यक्षतसुरभिकुसुमधूपैश्च । दैवतपूजां कृत्वा स्थपतीनभ्यर्च्य विप्रांश्च ॥ २ ॥ छल—कुर्यात्सूत्रनिपातं मध्याङ्गुल्याऽथवा प्रदेशिन्या । अङ्गुष्ठेन वा मणिकेन कक्षान्तरजातमुक्ताभिः ॥ ३ ॥ भृगुः—विप्रः शीर्षे नृपो वक्षो वैश्यश्चोरू परः पदौ । स्पृष्ट्वा रेखां गृहारम्भे कुर्यादग्नेः प्रदक्षिणाम् ॥ ४ ॥ विश्वकर्माणि—सूत्रच्छेदे मृतिः कीलेऽवाङ्मुखे व्याधिपीडनम् । गृहेशस्थपतीनां च स्मृतिलोपतनुक्षयाः ॥ ५ ॥ कुम्भे करच्युते मृत्युरुपसर्गोपवर्जिते । स्कन्धभ्रष्टे शिरोरोगो भग्ने दुर्वचने वधः ॥ ६ ॥

इति दुर्निमित्तानि ।

---

केचिदूचुर्गृहस्थस्य कस्यचिद्दारुणो ज्वरः । तावन्मङ्गलकृत्यं च न कार्यं निश्चितं बुधैः ॥ १० ॥

इति सूतकादौ शान्तिः ।

---

## अथ नववधूप्रवेशः ।

वधूप्रवेशनं कार्यं पञ्चमे सप्तमे दिने । नवमे च शुभे वारे सुलग्ने शशिनो बले ॥ १ ॥ एतद्ग्रन्थान्तरमिति ज्ञेयम् । नारदः—आरभ्योद्वाहदिवसात्षष्ठे वाऽप्यष्टमे दिने । वधूप्रवेशः संपत्त्यै दशमेऽथ समे दिने ॥ २ ॥ एतद्युग्मदिनप्रवेशः षोडशदिवसादर्वाक् द्रष्टव्यः । तदूर्ध्वं विषमे मासे संवत्सरे वा कार्यः । वृद्धनारदः—समे वर्षे समे मासि यदि नारी गृहं व्रजेत् । आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी मरणं व्रजेत् ॥ ३ ॥ संग्रहे–विवाहमारभ्य वधूप्रवेशो युग्मे तथा षोडशवासरान्तात् । तदूर्ध्वमब्दे युजि पञ्चमान्तादतः परस्तान्नियमो न चास्ति ॥ ४ ॥ भास्करव्यवहारे––रात्रौ विवाहभे शस्तः सन्मुहूर्ते स्थिरोदये । वधूप्रवेशो नैवात्र प्रतिशुक्राद्भयं विदुः ॥ ५ ॥ ऋक्षैर्वैवाहिकैः शुद्धैर्दंपत्योश्च शुभप्रदम् । वधूप्रवेशनं कार्यं पञ्चमे ह्यकृतं यदि ॥ ६ ॥ धान्यहानिः सुखं नाशो भोगो वैरं ततः शुभम् । प्रथमाब्दात्फलं ज्ञेयं क्रमाद्वध्वाः प्रवेशने ॥ ७ ॥ मार्गफाल्गुनवैशाखे शुक्लपक्षे शुभे दिने । गुर्वादित्यविशुद्धौ स्यान्नित्यं पत्नीद्विरागमः ॥ ८ ॥ संमुखस्तु सुखं हन्ति दक्षिणे हानिकारकः । पृष्ठतो वामतश्चैव शुक्रः प्रोक्तः शुभावहः ॥ ९ ॥ मूलपुष्यमृदुस्वातिस्थिराश्विश्रुतिवासवे । पितृभे च करे नारी प्रविष्टा पुत्रिणी भवेत् ॥ १० ॥ देवतोत्थापनं कार्यं समे तु दिवसे शुभैः । षष्ठं च विषमं नेष्टं मुक्त्वा पञ्चमसप्तमम् ॥ ११ ॥ नैकस्मिन्वासरे कार्यौ गृहोद्वाहौ कथंचन । नवीनमन्दिरे कन्यां नवोढां न प्रवेशयेत् ॥ १२ ॥ क्षयदर्शौ शीतस्नानं सीमानदीविलङ्घनम् । आमश्राद्धगमो नास्ति प्राङ्निवीतं तु केचन (?) ॥ १३ ॥ शेषं सर्वं नवगृहप्रवेशप्रकरणस्थं ज्ञेयम् ।

इति नववधूप्रवेशः ।

---

इति ज्योतिर्निबन्धे विवाहप्रकरणम् ।

---

## अथाग्न्याधानप्रकरणम् ।

अग्न्याधानं दारकाले विधेयं कैश्चित्प्रोक्तं तच्च दायाद(द्य)काले । शक्राग्न्योर्भे

शक्रभे कृत्तिकायां सौम्ये ब्राह्मे पुष्यपौष्णोत्तरासु ॥ १ ॥ कर्किनक्रघटमीनविलग्ने वांऽऽशके तनुगतेऽथ तदीये। लग्नगे कुमुदिनीदयिते वा नाशमेति जनितोऽपि हुताशः ॥ २ ॥ केन्द्रर्क्षोपचयत्रिकोणभगताः सूर्यारजीवेन्दवः शेषाश्चोपचयस्थिता यदि तदाऽग्न्याधानमुक्तं शुभम् । चन्द्रे नैधनगे म्रियेत युवती भौमे पुमानष्टमे शेषैर्मृत्युगतै रुजा च सहितोऽग्न्याधानकर्ता भवेत् ॥ ३ ॥ नो कुर्याद्धुतभुक्परिग्रहमिह क्ष्मापुत्रजीवेन्दुभिर्नीचस्थैर्विजितै रिपोर्भवनगैरस्तं गतैर्वा द्विजः । चापस्थे तनुगे गुरौ क्रियगते सप्ताम्बरस्थे कुजे शीतांशौ त्रिषडायगे दिनकरे वा स्यात्तदा दीक्षितः ॥ ४ ॥ अग्न्याधानं न कुर्वीत कर्किनक्रत्रये विधौ । लग्नगे धनगे पापे तथा रन्ध्रे ग्रहान्विते ॥ ५ ॥

इत्यग्न्याधानप्रकरणम् ।

---

## अथ गृहारम्भप्रकरणम् ।

मत्स्यपुराणे—गृहस्थस्य क्रियाः सर्वा न सिध्यन्ति गृहं विना । यतस्तस्माद्गृहारम्भप्रवेशसमयं ब्रुवे ॥ १ ॥ श्रीपतिः—आयव्ययर्क्षांशकचन्द्रताराबलानि शास्त्रादवगम्य सम्यक् । आयुर्धनारोग्ययशोभिवृद्ध्यै गृहं गृहस्थोऽपि विधापयीत ॥ २ ॥ नारदः—निर्माणे पत्तनग्रामगृहादीनां समासतः । क्षेत्रमादौ परीक्षेत गन्धवर्णरसप्लवैः ॥ ३ ॥ वसिष्ठः—श्वेता शस्ता द्विजेन्द्राणां रक्ता भूमिर्महीभुजाम् । विशां पीता च शूद्राणां कृष्णाऽन्येषां च मिश्रिता ॥ ४ ॥ नारदः—मधुपेरान्नपिशितगन्धवर्णानुपूर्वकम् । मधुरं कटुकं तिक्तं कषायश्च रसाः क्रमात् ॥ ५ ॥ अत्यन्तवृद्धिदं नृणामीशानप्रागुदक्प्लवम् । अन्यादिक्षु प्लवस्तेषां शश्वदत्यन्तहानिदः ॥ ६ ॥ भृगुः—उदगादिप्लवमिष्टं विप्रादीनां प्रदक्षिणेनैव । विप्रः सर्वत्र वसेदनुवर्णमथेष्टमन्येषाम् ॥ ७ ॥ वास्तुशास्त्रे—मनसश्चक्षुषो यत्र संतोषो जायते भुवि । तस्यां कार्यं गृहं सर्वैरिति गर्गादिसंमतम् ॥ ८ ॥ लल्लः—गृहमध्ये हस्तमितं खात्वा श्वभ्रं प्रपूरितं च पुनः । यद्यूनमनिष्टं तत्समे समं धन्यमधिकं यत् ॥ ९ ॥ अवटमथवाऽम्बुपूर्णं पदशतमित्वा गतस्य यदि नोनम् । तद्धन्यं यत्र भवेत्पलानि पांस्वादिकं चतुःषष्टिः ॥ १० ॥ रत्नकोशे—आमे वा मृत्पात्रे श्वभ्रस्थे दीपवर्तिरभ्यधिकम् । ज्वलति दिशि यस्य शस्ता सा भूमिस्तस्य वर्णस्य ॥ ११ ॥ नारदः—तथा निशादौ तत्कृत्वा पानीयेन प्रपूरयेत् । प्रातर्दृष्टे जले वृद्धिः समं पङ्के व्रणे क्षयः ॥ १२ ॥ माण्डव्यः—जलान्तं प्रस्तरान्तं वा पुरुषान्तमथापि वा । क्षेत्रं संशोध्य चोद्धृत्य शल्यं सदनमारभेत् ॥ १३ ॥

## अथ स्तम्भाः ।

ब्रह्मशम्भुः—सूत्रभित्तिशिलान्यासं स्तम्भस्याऽऽरोपणं सदा । पूर्वदक्षिणयोर्मध्ये कुर्यादित्याह कश्यपः ॥ १ ॥ शार्ङ्गधरः—प्रासादेषु च हर्म्येषु गेहेष्वन्येषु सर्वदा । आग्नेय्यां प्रथमं स्तम्भं स्थापयेद्विधिना ततः ॥ २ ॥ वराहः—दक्षिणपूर्वे कोणे कृत्वा पूजां शिलां न्यसेत्प्रथमाम् । शेषाः प्रदक्षिणेन स्तम्भाश्चैवं प्रतिष्ठाप्याः ॥ ३ ॥ अग्निर्वसति वै काष्ठे तद्दिशि प्रथमं सदा । न्यसेत्काष्ठमयं स्तम्भं काष्ठकृत्स्वेष्वयं विधिः ॥ ४ ॥ छत्रस्रग्गन्धयुतः कृतधूपविलेपनः समुत्थाप्यः । स्तम्भस्तथैव कार्यो द्वारोच्छ्रायः प्रयत्नेन ॥ ५ ॥ उत्पलः–स्तम्भोपरि यदा घूककाकगृध्रादिपक्षिणः । व्यालादयश्च तिष्ठन्ति तदा कर्तुर्न शोभनम् ॥६॥ तस्मात्स्तम्भोपरि च्छत्रं शाखां फलवतीं तु वा । धारयेदथवा वस्त्रं बुध्ने रत्नानि निक्षिपेत् ॥ ७ ॥

इति स्तम्भः ।

---

## अथाऽऽयाः ।

नारदः—ध्वजो धूमोऽथ सिंहः श्वा सौरभेयः खरो गजः । उष्ट्रश्चेति क्रमेणैतद्दायाष्टकमुदाहृतम् ॥ १ ॥ दैवज्ञवल्लभः—पूर्वादितः स्युर्ध्वजधूमसिंहश्वगोखराख्यद्विरदाः क्रमेण । उष्ट्रस्तथाऽऽयाः स्वपदे विधेयाश्चत्वार एषां विषमाः प्रशस्ताः ॥ २ ॥ ध्वजः पदे केसरिणो विधेयो ध्वजो मृगारिश्च पदे गजस्य । पदे गजस्य ध्वजकेसरीभा वृषस्तु नान्यत्र पदात्स्वकीयात् ॥ ३ ॥ गर्गः—सर्वद्वारे ध्वजो देयः पश्चिमास्यं विना हरिः । प्राङ्मुखे दक्षिणस्यैव गजः पूर्वमुखे वृषः ॥४॥ वास्तुप्रदीपे–खेटकर्पटकोटेषु वृषः सिंहो गजः शुभः । वापीकूपतडागादौ गजो देयो विचक्षणैः ॥ ५ ॥ आसने योजयेत्सिंहं शयने चैव कुञ्जरम् । वृषं भोजनपात्रे च दद्याच्छत्रादिषु ध्वजम् ॥ ६ ॥ महानसेऽग्निशालायां गृहे चाग्न्युपजीवनम् । धूमं दद्यात्तथा श्वानं यवनान्त्यजकगृहे ॥ ७ ॥ खरो वेश्यागृहे योज्यो ध्वाङ्क्षः पक्षिपतेर्गृहे । वृषं सिंहं गजं दद्यात्प्रासादे पुरमन्दिरे ॥ ८ ॥ शिल्पशास्त्रे-वस्त्रजे धर्मशालायां कुम्भे स्तम्भे ध्वजे ध्वजः । गोगजौ भूगृहे चैव साधारणगृहे शुभौ ॥९॥ गाने शस्त्रे रथे सिंहो भाण्डागारे शुभो गजः। धान्याम्बुस्नानगोश्वेभशालायां वृषभः शुभः॥ १०॥ नाग्र(व्य)भोगोद्वाहवेद्यां गजसिंहवृषाः शुभाः । सर्वे स्वाभिमुखाः श्रेष्ठा मध्यगेहे पराङ्मुखाः ॥११॥ ध्वजे परास्यं विप्राणां राज्ञां सिंहेऽप्यु-

---

१ व. यंनेश ।

दङ्मुखम् । गजे शूद्रस्य याम्यास्यं वृषे पूर्वमुखं विशः ॥ १२ ॥ गर्गः—कीर्तिः शोको जयो वैरं धनं निर्धनता सुखम् । रोगश्चेति गृहारम्भे ध्वजादीनां फलं क्रमात् ॥ १३ ॥ ज्योतिष्कल्पद्रुमे—अग्रजानां ध्वजायः स्याद्ध्वजकुञ्जरगोमृगाः । क्षत्रस्य ध्वजसिंहेभा वैश्यस्य शुभदाः स्मृताः ॥ १४ ॥ ध्वजो मृगादिः शूद्राणां सर्वेषां वृषभः शुभः । हीनजातेः समा देयाः सूक्ष्मकृत्येऽङ्गुलात्मकः ॥ १५ ॥ कर्कवृश्चिकमीनानां ध्वजायः शुभदो मतः । वृषभायः शुभः प्रोक्तो मेषसिंहधनुर्भृताम् ॥ १६ ॥ तुलामिथुनकुम्भानां गजायो वाञ्छितप्रदः । वृषकन्यामृगाणां च सिंहायः शुभदो भवेत् ॥ १७ ॥ बादरायणः—विस्तारगुणितं दैर्घ्यं गृहक्षेत्रफलं भवेत् । तत्पृथग्वसुभिर्भक्तं शेषमायो ध्वजादिकः ॥ १८ ॥ अष्टनिघ्ने क्षेत्रफले भहृते शेषमत्र भम् । मेषभक्ते व्ययः शेषमायादल्पो व्ययः शुभः ॥ १९ ॥ भूपालः—शान्तिः पौरोद्यातहर्षः कान्तिः श्रीश्चाविसंज्ञकाः । व्ययनामान्यथाशेषाः क्रमादिन्द्रो यमो नृपः ॥ २० ॥ गर्गः—गृहनामाक्षरक्षेत्रफलव्यययुतीर्हरेत् । त्रिभिः शेषांशको ज्ञेयो मध्यमोऽत्र मृतिप्रदः ॥ २१ ॥ निजभाद्गृहभं यावद्गृहभाग्निजभं तथा । वेदघ्नं विभजेच्छैलैः क्रमाच्छेषे धनव्ययौ ॥ २२ ॥ ज्योतिःसागरे—तारा स्यात्सप्तभस्वामिधिष्ण्यैक्यं नवभाजितम् । उद्वाहवद्राशिकूटं विचार्यं स्वामिगेहयोः ॥ २३ ॥ गर्गः—अश्विन्यादित्रयं मेषे सिंहे प्रोक्तं मघात्रयम् । मूलादित्रितयं चापे शेषभेषु द्वयं द्वयम् ॥ २४ ॥ वृत्तशते—कार्या धिष्ण्यगृहेशगेहयोरुद्वाहवत्कल्पना नीडं यद्विपमायगं शशिबले तारावले संयुतम् । कार्यं तच्छुभदं फलैर्यदि गुणाः सर्वेऽपि न स्युस्तदा कुर्याज्ज्यौतिषिकोऽङ्गुलादिकमिह क्षिप्त्वा विहायाथवा ॥ २५ ॥ इष्टायनक्षत्रानयने लल्लुगिदैवज्ञस्य सूत्रं—व्येकेष्टर्क्षहता द्विबाणशशिनो १५२ त्वष्टा १७ युतास्तेऽपि च व्येकेष्टायहतैकनाग ८१ सहिताः षण्मूर्च्छनाभि २१६ र्हृताः । शेषं क्षेत्रफलं भवेदभिमतं स्वेष्टायनक्षत्रजं स्याद्दैर्घ्यं तदपीष्टविस्तृतिहृतं दैर्घ्योद्धृतं विस्तृतिः ॥ २६ ॥ भिक्कनाथदैवज्ञस्य सूत्रम्—इष्टभांतर्षष्टिघाते च आयस्तेनोनितेऽष्टकः । त्रिहल्लघ्नाद्दतागाभियुते चेष्टायभं भवेत् ॥ २७ ॥ रत्नकोशे—क्षेत्रफले गजगुणिते खयम २० भाजिते भवत्यायुः । आयुषि पञ्चविभक्ते क्रमान्महाभूतविश्लेषः ॥ २८ ॥ बादरायणः—द्वारादेकं द्वितयं वेदा वसवः प्रदक्षिणं दिक्षु । शालादिकाङ्कयोगः सैको वेश्म ध्रुवादि भवेत् ॥ २९ ॥ ध्रुवं धान्यं जयं नन्दं खरं कान्तं मनोरमम् । सुमुखं दुर्मुखं क्रूरं सुपक्षं धनदं क्षयम् ॥ ३० ॥ आक्रन्दं विपुलं चैव विजयं चेति षोडश ।

---

१ प. अग्रभं । २ प. शेरैतिह । ३ ब. 'अतम' । ४ प. 'रंगनुष्टर्मा:क्ष' ।

गृहनामाक्षराण्यष्ट गोभवार्कैपनुत्रये ॥ ३१ ॥ शेषे त्रीणि नगे वेदाः शिष्टाङ्केष्व-क्षरद्वयम् । चतुर्भिर्गुणितं क्षेत्रफलं षोडशभिर्भजेत् । शेषं ध्रुवादिकं ज्ञेयं सद्मनाम यथाक्रमम् ॥ ३२ ॥ ब्रह्मशंभुः—श्रीर्धान्यं विजयो वृद्धिः पुष्टिः सन्मान्यता यशः । गोत्रवृद्धिः समस्तार्थैर्नवानां क्रमतः फलम् ॥ ३३ ॥ आयासो मनसः शोकः कलहो व्याधिपीडनम् । भयं ज्ञातेर्मृतिर्नाशः सप्तानामधमं फलम् ॥३४॥ चिन्तामणौ—भूर्भूद्वौ द्वौ कृता वेदा अष्टावष्टौ गुरुर्लघुः । स्थाप्यः सद्ममुखाच्छाला-लघुस्थानेऽष्ट वेश्मसु ॥ ३५ ॥ नारदः—गुरोरधो लघुः स्थाप्यः पुरस्तादूर्ध्वव-न्न्यसेत् । गुरुभिः पूरयेत्पश्चात्सर्वलघ्वविधिर्विधिः ॥ ३६ ॥ कुर्याल्लघुपदेऽ-लिन्दं गृहद्वारात्प्रदक्षिणम् । मुखादिगेष्वलिन्देषु गृहभेदास्तु षोडश ॥ ३७ ॥ ग्रन्थविस्तरभीत्याऽत्र नन्द्यावर्तादिकानि च । घातविस्मरकारीणि नोक्ता-न्यत्र गृहाणि च ॥ ३८ ॥ वास्तुप्रदीपे—गृहेषु कर्महस्तेन मानं स्वामिकरेण वा । देवादीनां तु धिष्ण्येषु कर्महस्तेन केवलम् ॥ ३९ ॥ कर्महस्तश्चतुर्विंशत्य-ङ्गुलो मुनिभिः स्मृतः । धातुजो देशदैवत्यो यद्वा यज्ञीयवृक्षकः ॥ ४० ॥ दैवज्ञवल्लभः——न हस्तपातेन गुणान्वितं स्याद्यदा तदा तद्गुणितोक्तयुक्त्या । दत्त्वाऽथ हित्वा यदि चाङ्गुलानि प्रसाधयेत्क्षेत्रफलं शुभाय ॥ ४१ ॥ रत्नकोशे—करमानेन सर्वे न यदि स्युस्ततोऽङ्गुलयवादि । दत्त्वाऽथवा विहाय क्षेत्रफलं साधयेद्गणितवत्॥४२॥वास्तुतन्त्रे यवोदरैरष्टभिरङ्गुलं स्याद्यद्वा कराऽङ्गुष्ठकवृत्त-खण्डम् । कर्तुः कराब्ध्यभिलवोन्मितं वा ग्राह्यं किलैष्वन्यतमं गृहेऽत्र ॥ ४३ ॥ क्षेत्रस्य चतुरस्रस्य समस्याप्यसमस्य च । फलं प्रसाधयेत्प्राग्वद्वृत्ताद्ये आय उच्यते ॥ ४४ ॥ श्रीधराचार्यः—वृत्तव्यासस्य कृतेर्मूलं परिधिर्भवेद्दशगुणायाः । व्यासार्धवर्गवर्गात्क्षेत्रफलं दशगुणान्मूलम् ॥ ४५ ॥ लीलावत्यां—व्यासस्य वर्गे भनवाग्निनिघ्ने सूक्ष्मं फलं पञ्चसहस्र ५००० भक्ते । रुद्राहते शक्र १४ हृतेऽ-थवा स्यात्स्थूलं फलं तद्व्यवहारयोग्यम् ॥ ४६ ॥ रत्नकोशे—विस्तारषोडशांशः सचतुर्हस्तो भवेद्गृहेष्वायः । द्वादश वा गृहमाने भूमौ भूमौ समस्तानाम् ॥ ४७ ॥ व्यासस्य षोडशांशः सर्वेषां सद्मनां भवति । पक्वेष्टकाकृतानां दारुमयाणां तु नैः कल्प्योऽसौ॥४८॥ व्यासगृहाणि च विप्राद्विप्रादीनामुदग्दिशाद्यानि । विशतां यथा भवनं भवन्ति तान्येव दक्षिणतः ॥ ४९ ॥ दैवज्ञवल्लभे—अलिन्दनिर्व्यूह-विनिर्गमाद्याश्चतुर्दिशं ये गृहभूषणाय । आयादिकं तेषु न चिन्तनीयं यतो न ते

१ क. 'ष्टिःसन्यासना । २ घ. ख. व. 'ष्टाना मध्यमं । ३ क. लघ्वत्रवि° । ४ घ. °श ॥ ३७ ॥ अथहस्तलक्षणं-ग्र° । ५ घ. °लंगृहाय । ६ क. °कृहते । ७ ध. °द्गृहेच्छ्रायः ।

वास्तुपरिग्रहाः स्युः ॥ ५० ॥ क्षेत्रे पादतले पीठे भित्तौ स्तम्भतलोच्छ्रये । द्वारादौ चैकमेवाऽऽयं यथैवोक्तं निवेशयेत् ॥ ५१ ॥ वसिष्ठः—एकादशयवादूर्ध्वं यावत्त्रत्रिंशहस्तकम् । यावदायादिकं चिन्त्यं तदूर्ध्वं नैव चिन्तयेत् ॥ ५२ ॥ चिन्तामणौ—यत्र दैर्घ्यं गृहादीनां द्वात्रिंशद्धस्ततोऽधिकम् । न तत्र चिन्तयेद्धीमान्गणनायां व्ययाधिकान् ॥ ५३ ॥ राजमार्तण्डे—आयव्ययौ मासशुद्धिं चिन्तयेन्न तृणगृहे । शिलान्यासादि नो कुर्यात्तथाऽगारे पुरातने ॥ ५४ ॥

इत्यायादिनिर्णयः ।

---

## अथ निषिद्धग्राह्यकाष्ठानि ।

व्यासः—अन्यवेश्मस्थितं दारु नैवान्यस्मिन्प्रयोजयेत् । न तत्र वसते कर्ता वसन्नपि न जीवति ॥ १ ॥ समराङ्गणे—इष्टकालोष्टपाषाणमृत्तिका जीर्णमायसम् । तृणं पत्रं बुधैः प्रोक्तं दारु नूत्नं गृहाय वै ॥ २ ॥ शार्ङ्गधरः—नूतने नूतनं काष्ठं जीर्णे जीर्णं प्रशस्यते । जीर्णे च नूतनं श्रेष्ठं नो जीर्णं नूतने शुभम् ॥ ३ ॥ वास्तुशास्त्रे—श्रीपर्णी रोहिणी शाकं सर्जश्च सरलाः शुभाः । पतङ्गलोध्रशालाख्यास्तालार्जुनकशिंशपाः ॥ ४ ॥ चन्दनाशोकबदरीमधूकाश्च कदम्बकाः । प्रशस्ताश्च शमीनिम्बबिल्ववर्जे गृहान्तिके ॥ ५ ॥ गृहे दारुगुणैर्युक्ते गृहकर्माणि (ति) युज्यते । गृहे काष्ठं समं श्रेष्ठमलिन्दे विषमं शुभम् ॥ ६ ॥ नारदः—प्लक्षोदुम्बरचूताख्या निम्बस्नुहिबिभीतकाः । दग्धाः कण्टकिनो वृक्षा वटाश्वत्थकपित्थकाः ॥ ७ ॥ अगस्तिशिग्रुतालाख्यास्तिन्तिणीकाश्च निन्दिताः । अन्ये च गृहनिर्माणे योजनीयाः समा द्रुमाः ॥ ८ ॥ वराहः—पितृवनमार्गसुरालयवल्मीकोद्यानतापसाश्रमजाः । चैत्यसरित्संगमसंभवाश्च घटतोयसिक्ताश्च ॥ ९ ॥ कुब्जानुजातवल्लीनिपीडिता वज्रमारुतोपहताः । स्वपतितहस्तिनिपीडितशुष्काग्निप्लुष्टमधुनिलयाः ॥ १० ॥ तरवो वर्जयितव्याः शुभदाः स्युः स्निग्धपत्रकुसुमफलाः । सुरदारुचन्दनसमा मधूकतरवः शुभा द्विजातीनाम् ॥ ११ ॥ क्षत्रस्यारिष्टास्त्वश्वत्थखदिरबिल्वा वृद्धिकराः । वैश्यानां जीवखदिरकसिन्धूकचन्दनाश्च शुभफलदाः ॥ १२ ॥ तिन्दुककेसरसर्जार्जुनोत्थशालाश्च शूद्राणाम् । सर्वेषां वा शस्ताः सर्वे वृक्षाश्च निन्दिता ये च ॥ १३ ॥ वृक्षच्छेदने प्रार्थना—यानीह भूतानि वसन्ति तानि बलिं गृहीत्वा विधिवत्प्रयुक्तम् । अन्यत्र वासं परिकल्पयन्तु क्षमन्तु तान्यद्य नमोऽस्तु तेभ्यः ॥ १४ ॥

इति निषिद्धग्राह्यकाष्ठानि ।

---

१ प. °वद्धग्रानित ।

## अथ द्वारनिर्णयः ।

नारदः-नभस्यादिषु मासेषु त्रिषु त्रिषु यथाक्रमम् । पूर्वादिदिक्शिरो वास्तु कुर्यात्ताद्दिङ्मुखं गृहम् ॥ १ ॥ प्रतिकूलमुखं गेहं दुःखशोकभयप्रदम् । सर्वतोमुखगेहानामेष दोषो न विद्यते ॥ २ ॥ आयामेषु चतुर्दिक्षु प्रागादिषु च सत्स्वपि । अष्टावष्टौ प्रतिदिशं द्वाराणि स्युर्यथाक्रमात् ॥ ३ ॥ प्रदक्षिणक्रमात्तेषाममूनि च फलानि वै । हानिर्निःस्वत्वमर्थाप्तिर्नृपपूजा महद्धनम् ॥ ४ ॥ अतिचौर्यमतिक्रोधो भीतिर्दिशि शचीपतेः । निधनं बन्धनं भीतिरर्थाप्तिर्धनवर्धनम् ॥५॥ अनातङ्कं व्याधिभयं निःस्वत्वं दक्षिणादिशि । पुत्रहानिः शत्रुवृद्धिर्लक्ष्मीप्राप्तिर्धनागमः ॥६॥ सौभाग्यमतिदौर्भाग्यं दुःखं शोकश्च पश्चिमे । कलत्रहानिर्निःस्वत्वं हानिर्धान्यधनागमः॥७॥ संपद्वृद्धिर्महाभीतिरामयो दिशि शीतगोः॥ एवं गृहादिषु द्वारं विस्ताराद्द्विगुणोच्छ्रितम् ॥ ८ ॥ इति प्रदक्षिणद्वारफलमीशानकोणतः । मूलद्वारस्य चोक्तानि तान्यत्रैतानि योजयेत् । पश्चिमे दक्षिणे वाऽपि कपाटं स्थापयेद्गृहे ॥ ९ ॥ मण्डव्यः-नवभागं गृहं कुर्यात्पञ्चभागं तु दक्षिणे । त्रिभागं वामतः कृत्वा शेषे द्वारं प्रकल्पयेत् ॥ १० ॥ वराहः-दैर्घ्ये नवांशाः पदमत्र सव्याद्द्वारं शुभं प्राक्त्रिचतुर्थभागे । चतुर्थषष्ठे दिशि दक्षिणस्यां पश्चाच्चतुष्पञ्चमके तथोदक् ॥ ११ ॥ ज्योतिष्फलोदये-कुलीरालिझषाणां च पूर्वद्वारं शुभावहम् । कन्यामकरयुग्माणां दक्षिणद्वारमिष्टदम् ॥ १२ ॥ तुलाकुम्भवृषाणां च पश्चिमाभिमुखं स्मृतम् । सौम्यद्वारं शुभाय स्यान्मेषसिंहधनुर्भृताम् ॥ १३ ॥ मार्गतरुकोणकूपस्तम्भभ्रमविद्धमशुभं द्वारम् । सद्मोच्छ्रायाद्द्विगुणं त्यक्त्वा भूमिं न दोषाय ॥ १४ ॥ च्यवनः-स्वयमुद्घाटिते रोगः पिहिते च कुलक्षयः । मानाधिके न दिग्भ्रान्तिर्द्वारे नीचे सुखक्षयः ॥ १५ ॥ शार्ङ्गधरः-द्वारस्योपरि यद्द्वारं द्वारं द्वारस्य संमुखम् । न कार्यं व्ययदं यच्च संकटं तद्दरिद्रकृत् ॥१६॥ वराहः-याम्यादिष्वशुभफला जातास्तरवः प्रदक्षिणेनैते । उदगादिषु प्रशस्ताः प्लक्षवटोदुम्बराश्वत्थाः ॥ १७ ॥ आसन्नाः कण्टकिनो रिपुभयदाः क्षीरिणोऽथ नाशाय । फलिनः प्रजाक्षयकरा दारूण्यपि वर्जयेत्तेषाम् ॥१८॥ छिन्द्याद्यदि न तरूंस्तांस्तदन्तरे पूजितान्न्यसेदन्यान् । पुन्नागाशोकारिष्टबकुलपनसाञ्छमीप्लक्षान् ॥ १९ ॥ संवर्धयेद्यदि गृहं ततः समन्ताद्धि वर्धयेत्तुल्यम् ।

एकदेशे न दोषः प्रागथ वाऽप्युत्तरे कुर्यात् ॥ २० ॥ वास्तुशास्त्रे–द्वारं चतुर्विधं प्रोक्तं वास्तुसंक्रान्तिभावजम् । कृत्वा चान्यतमं मुख्यं गवाक्षाद्यैः पराणि च ॥ २१ ॥ बृहद्द्वारेष्वलिन्देषु न द्वारनियमः स्मृतः । तथोपसदने जीर्णे द्वारे संधारणेऽपि च ॥ २२ ॥ रत्नकोशे–अल्पदोषं गुणज्येष्ठं दोषाय न भवेद्गृहम् । आयव्ययौ प्रयत्नेन विरुद्धं भं च वर्जयेत् ॥ २३ ॥ कर्किनक्रहरिकुम्भगतेऽर्के पूर्वपश्चिममुखानि गृहाणि । तौलिमेषवृषवृश्चिकयाते दक्षिणोत्तरमुखाणि गृहाणि ॥ २४ ॥

इति द्वारनिर्णयः ।

## अथ गृहनियमः ।

नारदः–स्नानागारं दिशि प्राच्यामाग्नेय्यां पचनालयम् । याम्यायां शयनागारं नैर्ऋत्यां वस्त्रमन्दिरम् ॥ १ ॥ प्रतीच्यां भोजनगृहं वायव्यां पशुमन्दिरम् । भाण्डकोशं तूत्तरस्यामैशान्यां देवमन्दिरम् ॥२॥ अन्यच्च–देवकुट्टनसंस्थानक्षीरपानाद्यशालिकाः । शय्यामूत्राम्रतद्विद्याभोजना मङ्गलाश्रयाः ॥ ३ ॥ धान्यस्त्रीभोगवित्तं च ( संपत्ति ) शृङ्गारायतनानि च । ऐशान्यादिक्रमात्तेषां गृहनिर्माणकं शुभम् ॥ ४ ॥ वस्लः—पूर्वस्यां श्रीभवनं याम्यायां रतिगृहं विधातव्यम् । भोजनभवनं पश्चादुत्तरतश्चापि धनभवनम् ॥ ५ ॥ ऐशान्यां देवगृहं महानसं चापि कार्यमाग्नेय्याम् । नैर्ऋत्यां भाण्डोपस्करार्थभवनानि मारुत्याम् ॥ ६ ॥ प्राच्यादिस्थे सलिले सुतहानिः शिखिभयं रिपुभयं च । स्त्रीकलहः स्त्रीदौष्ट्यं नैःस्व्यं चिन्ताऽऽत्मजविवृद्धिः॥७॥ नात्युच्छ्रितं नातिनीचं कुड्योत्सेधं यथारुचि । गृहोपरिगृहादीनामेवं सर्वं विचिन्तयेत् ॥ ८ ॥

इति गृहनियमः ।

## अथ ग्रामदिङ्नियमः ।

व्यवहारसारे–अलिमीनाङ्गनाः कर्किधनुस्तौलिः क्रियो घटः । पूर्वतो न वसेन्मध्ये युग्मं सिंहो वृषो मृगः ॥ १ ॥ नृपालः–वर्गेशास्ताक्ष्यमार्जारसिंहाश्वाः सर्वमूषकाः । इभैणौ पूर्वतस्तेषां स्ववर्गात्पञ्चमो रिपुः ॥ २ ॥ स्वं वर्गं द्विगुणं कृत्वा परवर्गं नियोजयेत् । अष्टाभिस्तु हरेद्भागं योऽधिकः स ऋणी भवेत् ॥३॥ ज्योतिःसागरे–द्वारं सपञ्चधर्मस्य मीनादेरप्रदक्षिणम् । केऽप्याहुरथ वर्गाणां स्वस्थाने शुभदं गृहम् ॥ ४ ॥ एकभे सप्तमे ग्रामे वैरं हानिस्त्रिषष्ठगे । तुर्याष्टद्वा॰

दशे रोगः शेषस्थाने भवेत्सुखम् ॥ ५ ॥ पञ्चमो नवमो ग्रामो द्वितीयो वा यदा भवेत् । दशमैकादशौ श्रेष्ठौ मनुष्याणां शुभावहौ ॥ ६ ॥ चतुर्थस्त्वष्टमो ग्रामो द्वादशो वा यदा भवेत् । यत्रैवोत्पद्यते ह्यर्थस्तत्रैव विलयं व्रजेत् ॥ ७ ॥ जन्मराशिस्थितो ग्रामस्त्रिषट्सप्ताष्टमो भवेत् । स्वकीयार्थविनाशाय संतापोऽस्ति पदे पदे ॥ ८ ॥ भवनपुरग्रामाणां ये कोणास्तेषु निवसतां दोषाः । श्वपचाद्योऽन्त्यजाद्यास्तेष्वेव विवृद्धिमायान्ति ॥ ९ ॥

इति ग्रामदिङ्नियमः ।

---

## अथ वास्तुनिवेशमुहूर्तविचारः ।

रत्नमालायां—कर्मसिद्धिसुखायूंषि निमित्तशकुनादिभिः । ज्ञात्वा प्रष्टुर्गृहारम्भे कीर्तयेत्समयं बुधः ॥ १ ॥ लल्लः—कालनरस्य यदङ्गं सौम्यग्रहवीक्षितं युतं वाऽपि । तच्चेत्स्पृशति प्रष्टा तदाऽस्य निर्माणमादेश्यम् ॥ २ ॥ बादरायणः—वैशाखे फाल्गुने पौषे श्रावणे मार्गशीर्षके । सूत्रारम्भः शिलान्यासः स्तम्भारम्भः प्रशस्यते ॥ ३ ॥ ज्योतिस्तत्त्वे—पूर्वापरास्यं तु नभोन्त्यपौषे याम्योत्तरास्यं सहसि द्वितीये । कार्यं गृहं जीवबुधर्क्षगार्के नीचास्तगौ जीवसितौ च हित्वा ॥ ४ ॥ रत्नमालायाम्—आषाढचैत्राश्वयुजोर्जमाघज्येष्ठेषु समौष्ठपदेषु नूनम् । निकेतनानां घटनं नृपाणां योगेश्वराचार्यमते निषिद्धम् ॥ ५ ॥ दैवज्ञवल्लभे—शोको धान्यं पञ्चता निष्पशुत्वं स्वाप्तिर्निःस्वं संगरे भृत्यनाशः । स्वश्रीप्राप्तिं वह्निभीतिं च लक्ष्मीं कुर्युश्चैत्राद्या गृहारम्भकाले ॥ ६ ॥ नारदः—सौम्यफाल्गुनवैशाखमाघश्रावणकार्तिकाः । मासाः स्युर्गृहनिर्माणे पुत्रपौत्रधनप्रदाः ॥ ७ ॥ वृद्धनारदः—आरम्भं च समाप्तिं वा प्रासादपुरसद्मनाम् । उत्थिते केशवे कुर्यान्न प्रसुप्ते कदाचन ॥ ८ ॥ विश्वंभरशास्त्रे—शस्तं पशुगृहं ज्येष्ठेऽप्याश्विने धान्यनीडकम् । पानीयशालिका माघे चैत्रे धारागृहं तथा ॥ ९ ॥ गर्गः—ह्युत्तरामृगरोहिण्यां पुष्ये मैत्रे करत्रये । धनिष्ठाद्वितये पौष्णे गृहारम्भः प्रशस्यते ॥ १० ॥ रत्नकोशे—पुष्यध्रुवमृदुहस्तस्वातीधनिष्ठासु वारुणे चैव । सूत्रारम्भादिविधिः कर्तव्यश्चोक्तगुणलग्ने ॥११॥ नारदः—मृदुध्रुवक्षिप्रभेषु रिक्तामार्कारवर्जिते। दिने शुद्धेऽष्टमे लग्ने शुभे शङ्कुं विनिक्षिपेत् ॥१२॥ सूर्याङ्गारकवारांशा वैश्वानरभयप्रदाः । इतरग्रहवारांशाः सर्वकामार्थसिद्धिदाः ॥ १३ ॥ शार्ङ्गधरः—मृदुध्रुवकरस्वातीपुष्यवासववारुणैः । सूत्रारम्भो गृहादीनां स्थाप्यः स्तम्भो न पञ्चके ॥ १४ ॥ माण्डव्यः—पञ्चकेषु च धिष्ण्येषु न कुर्यात्स्तम्भमुच्छ्रयम् । क्षेत्रसूत्रशिलान्यासप्राकारादि

समारभेत् ॥ १५ ॥ रत्नमालायां–पुष्यध्रुवमृदुस्वातीहस्तवासववारुणैः । प्रथमो वेश्मनां तत्र प्रारम्भः सद्भिरिष्यते ॥ १६ ॥ व्यवहारसारे–शिलान्यासः प्रकर्तव्यो गृहाणां श्रवणे मृगे । पौष्णे हस्ते च रोहिण्यां पुष्याश्विन्युत्तरात्रये ॥१७॥ वास्तुप्रदीपे–अधोमुखैर्भैर्विदधीत खातं शिलास्तथैवोर्ध्वमुखैश्च पट्टम् । तिर्यङ्मुखैर्द्वारकपाटयानं गृहप्रवेशो मृदुभिर्ध्रुवैस्तु॥ १८ ॥ अधोमुखैश्च नक्षत्रैः कर्तव्यं भूमिशोधनम् । मृदुध्रुवैः शुभं कुड्यमित्युक्तं विश्वकर्मणा ॥१९॥ सूत्रशङ्कुशिलाद्वारतुलाच्छादनपूर्वकम् । कार्यं शस्तं प्रतिष्ठोक्तैर्यथासंभवमादिके ॥ २० ॥ ज्योतिष्प्रकाशे–पातादिकान्महादोषान्हित्वा प्रोक्तेऽत्र भादिके । कर्तव्यं शिल्पनिर्माणं योगैरायुष्प्रदैः शुभैः ॥२१॥ दैवज्ञवल्लभे–राशौ द्व्यङ्गे स्थिरे लग्ने शुभयुक्ते विलोकिते । निर्माणं भवनस्याऽऽहुः शस्तं कर्मस्थितैः शुभैः ॥ २२ ॥ त्रिषडायगतैः क्रूरैः शुभैः केन्द्रत्रिकोणगैः । शुभदं गृहनिर्माणं क्रूरो मृत्युकरोऽष्टमः ॥ २३ ॥ रत्नमालायां–शुद्धकेन्द्रनिधनस्थिरोदये सौम्यवर्गमनुजोद्गमेऽपि च । संनिवेश उदितो हि वास्तुनः सूरिभिर्न तु चरोदये क्वचित् ॥ २४ ॥ चक्रे सप्तशलाकाख्ये कृत्तिकाद्यानि विन्यसेत् । ऋक्षं चन्द्रस्य वास्तोश्च पुरः पृष्ठे च नो शुभम् ॥ २५ ॥ ब्रह्मशंभुः—धनलाभः प्रवासः स्यादायुश्चोरभयं क्रमात् । दक्षेऽग्रवामपृष्ठस्थो गृहकर्तुर्निशाकरः ॥ २६ ॥ रवौ गृहस्थो गृहिणी शशाङ्के सिते धनं देवगुरौ च सौख्यम् । विनाशमायाति बलेन हीने नीचस्थिते वाऽस्तमुपागते वा ॥ २७ ॥ रत्नमालाटीकायाम्–अस्तदोषोऽत्र नो ग्राह्यः प्रतिदैवसि ( ति ) को बुधैः । नास्तदोषः सदा भानोर्भैमे चेन्दोर्न नीचता ॥ २८ ॥ विशाखायाश्चतुर्थेऽशे यावत्तिष्ठति शीतगुः । तावन्नीचगतो ज्ञेयः परतो नैव दोषभाक् ॥ २९ ॥ एकोऽपि परभागस्थः स्वस्वरस्थः समान्तरे । धामान्यहस्तगं कुर्याद्वर्णनाथे च दुर्बले ॥ ३० ॥ वल्लः—मित्रस्वोच्चगृहांशस्थैस्तद्वेश्याश्चिरमासते । स्वगैरन्यगतैरन्यैर्नीचगैश्चापि निर्धनः ॥ ३१ ॥ वृद्धनारदः—चरलग्ने चरांशे वा रिक्तायारार्कवासरे । लग्नान्त्याष्टारिगे चन्द्रे रन्ध्रे क्रूरे प्रभोः क्षयः ॥ ३२ ॥ स्वरशास्त्रे-त्रिवेदाब्धित्रिवेदाब्धिद्वित्रिभेष्वर्कतः शशी । अर्केन्दुः संस्थितिर्न्याधिर्नैःस्व्यं श्रीः श्रीमृतिर्नृपे॥३३॥

इति वास्तुनिवेशमुहूर्तविचारः ।

---

## अथ गृहायुर्दायप्रयोगाः ।

बादरायणः –लग्ने जीवे सुखे शुक्रे बुधः कामे रिपौ रविः । रविजः सहजे

---

१ क. °तः क्रमात् । श्री° ।

नूनं शतायुः स्यात्तदा गृहम् ॥ १ ॥ जीवे वन्यौ विधौ व्योम्नि लाभगौ भानुभूमिजौ । प्रारम्भे यस्य तस्याऽऽयुः समाशीतिः सह श्रिया ॥ २ ॥ दैवज्ञवल्लभे—व्योम्नि चन्द्रः सुखे जीवो लाभे भौमशनैश्चरौ । यस्य धाम्नः समाशीतिस्तस्य सार्धं स्थितिः श्रिया ॥ ३ ॥ रत्नमालायां–स्वोच्चवर्तिनि भृगौ विलग्नगे देवमन्त्रिणि रसातलेऽथवा । स्वोच्चगे रविसुतेऽथवाऽऽयगे स्यात्स्थितिश्च सुचिरं सह श्रिया ॥ ४ ॥ स्वर्क्षगे हिमगौ लग्ने सुरेज्ये केन्द्रसंस्थिते । धनधान्यसुखारोग्ययुतं धाम चिरं भवेत् ॥ ५ ॥ भूपालः–भृगुर्लग्ने बुधो व्योम्नि लाभेऽर्कः केन्द्रगो गुरुः । यस्याऽऽरम्भेऽस्ति तस्याऽऽयुर्वत्सराणां शतद्वयम् ॥६॥ स्वोच्चगो भार्गवो लग्ने गुरुः स्वोच्चगतः सुखे । शनिः स्वोच्चगतो लाभे सश्रीका वसतिश्चिरम् ॥७॥ लल्लः—शशधरसुरगुरुभृगुजेष्वनस्तगेषु नभौ च लग्नभयोः । स्वक्षेत्रोच्चांशगतैः खचरैः श्रीसौख्यदा भवति ॥ ८ ॥

इति गृहायुर्दाययोगाः ।

---

## अथ गृहप्रवेशः ।

श्रीपतिः–अथ प्रवेशो नवमन्दिरस्य यात्रानिवृत्तावथ भूपतीनाम् । सौम्यायने पूर्वदिने विधेयं वास्त्वर्चनं भूतबलिश्च सम्यक् ॥ १ ॥ व्यवहारतत्त्वे—सौम्यायने श्रावणमार्गपौषे जन्मर्क्षलग्नोपचयोदयांशे । वामं गतेऽर्के गृहवास्तुपूजां कृत्वा विशेद्वेश्म भकूटशुद्धम् ॥ २ ॥ नारदः—प्रवेशो मध्यमो ज्ञेयः सौम्यकार्तिकमासयोः । माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासेषु शोभनः ॥ ३ ॥ शुभः प्रवेशो देवेज्यशुक्रयोर्दृश्यमानयोः । वस्त्विज्यवारुणस्वातीदस्रमैत्रस्थिरोडुषु ॥ ४ ॥ लल्लः—यद्दिङ्मुखं गृहद्वारं तद्द्वारर्क्षे गृहं विशेत् । सूर्यारवारौ रिक्ताख्याकुयोगानपि वर्जयेत् ॥ ५ ॥ नारदः–व्यर्कारवारे तिथिषु रिक्तामावर्जितेषु च । दिवा वा यदि वा रात्रौ प्रवेशो मङ्गलप्रदः ॥ ६ ॥ रात्रौ विशेषमाह वसिष्ठः–दिवा प्रवेशः शुभदः सपुत्रपौत्राभिवृद्ध्यै निशि भास्करेन्द्वोः । बलेन मत्स्यध्वजवासरस्य रात्रिं विना सूर्यतिथेश्च रात्रिम् ॥७॥दग्धतेऽत्र विशतां च मन्दिरं वह्निनेन्द्रशिखिवह्निभयोश्च । ग्रभ्रभूमिसुतवासरे च तच्छीतरश्मिदिवसे तु वृद्धिदम् ॥ ८ ॥ चन्द्रार्यसितवासरेषु तु श्रीकरं सुतमहार्थलाभदम् । सूर्यसूनुदिवसे स्थिरप्रदं किं तु चोरभयमत्र विद्यते ॥ ९ ॥ शार्ङ्गधरः– पुष्ये मैत्रे मृगे स्वात्यां ध्रुवे त्वाष्ट्रेऽर्कपूषभे । वासवे वारुणे शस्तं गृहग्रामप्रवेशनम् ॥ १० ॥ मित्रैर्भृतनं हर्म्यं ध्रुवमैत्रैः मृदुलाह्वये । पुष्यस्वातियुतैस्तैश्च जीर्णं तु वासवद्वये ॥ ११ ॥

ज्योतिष्प्रकाशे—गृहारम्भोदितैर्मासैर्धिष्ण्यैर्वारैर्विशेद्गृहम् । विशेत्सौम्यायने हर्म्यं तृणागारं तु सर्वदा ॥ १२ ॥ राजमार्तण्डे—प्रवेशो नूतने गेहे अपूर्व इति कथ्यते । सपूर्वस्तु प्रयाणान्ते पूर्वापूर्वोऽन्य उच्यते ॥ १३ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—अपूर्वसंज्ञं प्रथमं प्रवेशं यात्रावसाने च सपूर्वमेतम् । द्वन्द्वाह्वयं चाग्निभयादिजातं गृहप्रवेशं त्रिविधं वदन्ति ॥ १४ ॥ अपूर्वः प्रवेशो गृहारम्भधिष्ण्ये विधेयः करो मध्यमोऽत्रेति केचित् । सपूर्वः स्थिरैर्मित्रभैरेव शुद्धैरतोऽन्योऽश्विमूलाच्युतारम्भधिष्ण्यैः ॥ १५ ॥ वृत्तशते—भूपानां मृदुभिर्ध्रुवैः प्रविशनं यात्रानिवृत्तौ शुभं स्याद्भूयो गमनं चरर्क्षलघुभैरुग्रैर्मतिर्भूपतेः । तीक्ष्णैर्भूपकुमारकस्य नृपतेः पत्न्या विशाखाद्वये धिष्ण्ये हव्यभुजो गृहे प्रविशतां संदह्यते वह्निना ॥ १६ ॥ रत्नकोशे—पुष्ये धनिष्ठामृदुवारुणेषु स्वायंभुवर्क्षे त्रिषु चोत्तरासु । अक्षीणचन्द्रे शुभदो नृपस्य तिथावरिक्ते च गृहप्रवेशः ॥ १७ ॥ वैद्यनाथः—द्व्युत्तरे रोहिणीयुग्मे रेवत्या वासवद्वये । पुष्ये त्वाष्ट्रद्वये मैत्रे प्रवेशोऽत्र मतः करे ॥ १८ ॥ रत्नमालायां—पुष्ये धनिष्ठामृदुवायुमूलस्थिराश्विनीविष्णुजलेशहस्ते । एषु प्रवेशो बहुपुत्रपौत्रैश्चिरं वसेद्भूरिसमागमैश्च ॥ १९ ॥ रत्नकोशे—सर्वग्रहैर्विमुक्तं प्रवेशभं शस्यते प्रयत्नेन । कैश्चित्सौम्यसमेतं शुभप्रदं कीर्तितं मुनिभिः ॥ २० ॥ भूपालः—मेषे यानं घटे व्याधिर्धान्यहानिर्मृगे गृहम् । विशतां कर्कटे नाशः शेषलग्नेषु शोभनम् ॥ २१ ॥ दैवज्ञवल्लभे—निन्दिता अपि शुभांशसमेतास्तौलिमेषमकराः सकुलीराः । कर्तुरापचयगाश्च विलग्ने राशयः शुभफलाश्च भवन्ति ॥२२॥ छल—व्याधिहा धनहा चैव वित्तदो बन्धुनाशकृत् । पुत्रहा शत्रुहा स्त्रीघ्नः प्राणहा पितृकप्रदः ॥ २३ ॥ सिद्धिदो धनदश्चैव भवेत्तज्जन्मराशिगः । लग्नस्थः क्रमशो राशिर्जन्मलग्नात्प्रवेशने ॥ २४ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—भूवेदपञ्चकं त्रित्रिः प्रवेशे कलशेऽर्कभात् । मृतिर्गतिर्धनं श्रीः स्याद्वैरं सुस्थिरता सुखम् ॥ २५ ॥ अथोच्यतेऽर्कपूर्वाणां पूर्वाचार्यैरुदाहृतम् । फलं लग्नादिसंस्थानां गृहारम्भप्रवेशयोः ॥ २६ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—सौदामिन्यादिभिर्भङ्गं कुर्याद्भानुर्विलग्नगः । धनेऽन्नकार्श्यबाहुल्यं सहजे श्रीसुखोदयम् ॥ २७ ॥ सुखसंस्थः सुहृद्वैरं सुतपीडां सुतस्थितः । षष्ठः कुर्यात्सुखारोग्यं कान्तां वैरं च सप्तगः ॥ २८ ॥ रन्ध्रस्थोऽर्को मृतिं कुर्याद्धर्मे धर्मक्षयं रविः । खस्थो मध्यः सुखं कुर्यादायगो व्ययगः क्षतिम् ॥ २९ ॥ आपण्यामाद्विपुर्लग्ने नाशं कुर्याज्ज्वलादिभिः । धनस्थोऽर्थं तृतीयस्थः सौभाग्यं बन्धुगः सुखम् ॥ ३० ॥ धीस्थो धियं कृशो भ्रान्ति षष्ठः

१ ब °भिर्दहे कु° ।

क्षीणोऽरिभङ्गकृत् । कामगस्तनुते भोगाञ्छिद्रस्थो मृत्युमाशु च ॥ ३१ ॥ अक्षीणो नवमः सौख्यं दद्यात्खस्थः पदं तथा । लाभगो रत्नवस्त्राप्तिं दारिद्र्यं व्ययगः शशी ॥ ३२ ॥ सधनाशं कुजः कुर्याल्लग्नगो ज्वलनादिना । द्रव्यरोगं स्वेऽथ भूलाभं सहजेऽरिभयं सुखे ॥ ३३ ॥ विषशत्रुभयं पुत्रे यशोवृद्धिं रिपौ कुजः । भार्यानाशं स्मरे कुर्याद्रन्ध्रे शस्त्रात्कुलक्षयः ॥ ३४ ॥ विघ्नं धर्मस्थितः कुर्यात्कर्मनाशं च कर्मगः । लाभगोऽम्बरहेमाप्तिं राजदण्डं व्यये कुजः ॥ ३५ ॥ आरोग्यं लग्नगे सौम्ये कोशेऽर्थः सहजे सुखम् । सुखे भोगः सुते विद्या रिपौ शत्रुक्षयो भवेत् ॥ ३६ ॥ द्यूने सौभाग्यमायासो रन्ध्रे धर्मे महद्यशः । खगे ज्ञे राजसन्मानो लाभे द्रव्यं व्यये व्ययः ॥ ३७ ॥ आयुर्धनं तनौ जीवे धने श्रीरनुजे सुखम् । सुखे स्थैर्यं चिरं पुत्रे पुत्रवृद्धिर्यशो रिपौ ॥ ३८ ॥ स्मरे भोगोऽष्टमे मध्यो धर्मगः सिद्धिदो गुरुः । व्योम्नि राज्यं धनं लाभे व्यये भवति सिद्धिदः ॥ ३९ ॥ लग्ने शुक्रो निधिं दद्यात्कोशे वित्तमथानुजे । मानोन्नतिं सुखे स्थैर्यं वंशवृद्धिं सुते स्थितः ॥ ४० ॥ रिपौ मध्योऽस्तगः कुर्यात्स्त्रीलाभं मध्यमोऽष्टमः । तपस्यन्नं पदे राज्यं लाभे श्रीः सद्व्ययो व्यये ॥ ४१ ॥ गृह-भङ्गस्तनौ मन्दे नृपकोपाद्रुकादिभिः । धने बन्धुजनाद्धानिः सहजस्थे धनागमः ॥ ४२ ॥ सुखे सीमोद्भवं वैरं पुत्रे पुत्रात्पराभवः । षष्ठे शत्रुजनाद्ध्वंसः कलत्रे दारदूषणम् ॥ ४३ ॥ छिद्रेऽस्त्रादिभयं घोरं धर्मे प्रीतिः कुकर्मणि । मध्ये मन्दो गृहं शून्यं श्रीराये व्यसनं व्यये ॥ ४४ ॥ अहेर्वासोऽङ्गगे राहौ केतौ भूतादिभिर्गृहे । शेषभावफलं ज्ञेयं राहुकेत्वोरिनारवत् ॥ ४५ ॥ जामित्रशुद्धिमुद्वाहे व्रते भाव्यं तु पञ्चमम् । यात्रायामष्टमं तद्वत्पातालं च प्रवेशने ॥ ४६ ॥ चतुर्दशी चतुर्थी च नवमी च तथाऽष्टमी । षष्ठी च द्वादशी चैव शुभकार्ये न शोभनाः ॥ ४७ ॥ भूताङ्कतत्त्वशक्राङ्कदशनाडयः क्रमेण तु । तासां वर्ज्याः शुभे कार्ये शेषनाडयः शुभाय हि ॥ ४८ ॥ बृहन्मार्तण्डे—केन्द्रत्रिकोणगृहगै-र्बुधजीवशुक्रैः पापैश्च मुक्तिनिधनव्ययकर्मगैश्च । ग्राम्ये स्थिरेऽप्युपचये स्वभजन्मलग्ने लग्नाच्छशी ह्युपचये प्रविशेत्स्ववेश्म ॥ ४९ ॥ श्रीपतिः त्रिकोणकेन्द्रगैः शुभै-रकण्टकाष्टमान्त्यगैः । असद्ग्रहैः स्थिरोदये गृहं विशेद्बले विधौ ॥ ५० ॥ केन्द्र-च्छिद्रव्ययैः शुद्धैः क्रूरैः षट्त्र्यायगैर्गुरौ । लग्ने भृगौ च केन्द्रे वा स्थिरग्राम्यो-दये विशेत् ॥ ५१ ॥ रत्नमालायां—कृत्वा विमान्सजलकलशं चाग्रतो वाम-तोऽर्कं स्नातः स्रग्वी विमलवसनो मङ्गलैर्वेदघोषैः । व्यस्तैर्यात्राकथितशकुनै-

१ ख. द्रव्ययोगं स्तोत्रभृ° ।

द्वारमार्गेण राजा: हर्म्यं पुष्पप्रकररचितं तोरणाढ्यं विशेच ॥ ५२ ॥ वास्तुशास्त्रे—लग्नात्भागादितो दिक्षु द्वौ द्वौ राशी नियोजितौ । एकमेकं न्यसेत्कोणे सूर्यं वामे विचिन्तयेत् ॥ ५३ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—रन्ध्रात्पुत्राद्धनादायात्पञ्चस्वर्के स्थिते क्रमात् । पूर्वाशाभिमुखं गेहं विशेद्वामो भवेद्यतः ॥ ५४ ॥ विवाहे व्रतबन्धेऽन्नप्राशने चाभिषेचने । सीमन्तेऽप्यारिगश्चन्द्रो नेष्टः शेषेष्वगर्हितः ॥ ५५ ॥ ज्योतिषार्णवे—केन्द्रत्रिकोणद्विपदेषु पापाः कुर्वन्ति भीतिं बहुधा क्षतिं च । हानिं व्ययस्था मरणं मृतिस्था रोगं स्वदेशाद्गमनं च मूर्तौ ॥५६॥ लाभारिविक्रमगता धनकीर्तिदाः खलाः. सौम्यास्त्रिकोणधनविक्रमकेन्द्रलाभगाः । सौख्यार्थलाभजनसख्यसदन्नमानदाः षष्ठे शुभः शुभकरोऽन्यमते न मध्यः ॥ ५७ ॥ श्रीपतिः—ततो नृपो विप्रसुहृत्पुरोधसः शिल्पज्ञभूगोलविदश्च भागिनः । धनैश्च रत्नैः पशुभिः समर्चयेत्सदाऽन्धदीनान्पुरवासिनस्तथा ॥ ५८ ॥ कश्यपः—एवं यः प्रविशेद्राजा योगे दैवज्ञकीर्तिते । काले शास्त्रोक्तविधिना शरीरं सुखमश्नुते ॥ ५९ ॥ नारदः—अकपाटमनाच्छन्नमदत्तबलिभोजनम् । गृहं न प्रविशेदेवं विपदामाकरं हि तत् ॥ ६० ॥

इति गृहप्रवेशः ।

---

## अथ वास्तुपूजाविधानम् ।

अकृत्वा वास्तुपूजां यः प्रविशेन्नवमन्दिरम् । रोगान्नानाविधान्क्लेशानश्नुते सर्वसंकटान् ॥ १ ॥ वास्तुपूजाविधिं वक्ष्ये नववास्तुप्रवेशने । हस्तमात्रा लिखेद्रेखा दशपूर्वा दशोत्तराः ॥ २ ॥ गृहमध्ये तण्डुलोपर्येकाशीतिपदं भवेत् । पञ्चोत्तरान्वक्ष्यमाणांश्चत्वारिंश ४५ त्सुरान्न्यसेत् ॥ ३ ॥ द्वात्रिंश ३२ द्बाह्यतः पूज्यास्तत्रान्तःस्यास्त्रयोदश १३ ॥ तेषां स्थानानि नामानि वक्ष्यामि क्रमशोऽधुना ॥ ४ ॥ ईशानकोणतो बाह्या द्वात्रिंश ३२ त्रिदशा अमी । कृपीटयोनिः पर्जन्यो जयन्तः पाकशासनः ॥ ५ ॥ सूर्यसत्यौ भृशाकाशौ वायुः पूषा च नैर्ऋतः । गृहक्षतो दण्डधरो गन्धर्वो भृगुराजकः ॥ ६ ॥ मृगः पितृगणाधीशस्ततो दौवारिकाह्वयः । सुग्रीवः पुष्पदन्तश्च जलाधीशस्तथाऽसुरः ॥ ७ ॥ शेषः पापश्च रोगश्च भोगिमुख्यो निशाचरः । सोमः सर्पो दित्यदिती द्वात्रिंशत्त्रिदशा अमी ॥ ८ ॥ अथेशानादिकोणस्थाश्चत्वारस्तत्समीपगाः । आपः सावित्रसंज्ञश्च जयो रुद्रः क्रमादमी ॥ ९ ॥ मध्ये नवपदो ब्रह्मा तस्याष्टौ

च समीपगाः । एकान्तराः स्युः भागाद्याः परितो ब्रह्मणः स्मृताः ॥ १० ॥ अर्यमा सविता चैव विवस्वान्वसुधाधिपः । मित्रोऽथ राजयक्ष्मा च तथा पृथ्वीधरः क्रमात् ॥ ११ ॥ आपवत्सोऽष्टमः पञ्चचत्वारिंशत्सुरा अमी । आपश्चैवाऽऽपवत्सश्च पर्जन्योऽग्निर्दितिः क्रमात् ॥ १२ ॥ पदिकानां च वर्गोऽयमेवं कोणेष्वशेषतः । तन्मध्ये विंशतिर्बाह्या द्विपदास्ते तु सर्वदा ॥ १३ ॥ अर्यमा च विवस्वांश्च मित्रः पृथ्वीधरादयः । ब्रह्मणः परितो दिक्षु चत्वारस्त्रिपदाः स्मृताः ॥ १४ ॥ ब्रह्माणं च तथैकद्वित्रिपदानर्चयेत्सुरान् । वास्तुमन्त्रेण वास्तुज्ञो दूर्वादध्यक्षतादिभिः ॥ १५ ॥ ब्रह्ममन्त्रेण वा श्वेतवस्त्रयुग्मं प्रदापयेत् । आवाहनादिसर्वोपचारांश्च क्रमशस्तथा ॥ १६ ॥ नैवेद्यं विविधान्नेन वाद्यैः सह समर्पयेत् । ताम्बूलं च ततः कर्ता प्रार्थयेद्वास्तुपूरुषम् ॥ १७ ॥ ॐवास्तुपुरुष नमस्तेऽस्तु भूशय्याभिरत प्रभो । मद्गृहं धनधान्यादिसमृद्धं कुरु सर्वदा ॥ १८ ॥ इति प्रार्थ्य यथाशक्त्या (क्ति) दक्षिणामर्चकाय च । दद्यात्तत्रैव विप्रेभ्यो भोजनं च स्वशक्तितः ॥ १९ ॥ अनेन विधिना सम्यग्वास्तुपूजां करोति यः । आरोग्यं पुत्रलाभं च धनं धान्यं लभेन्नरः ॥ २० ॥ वराहः–किमपि किल भूतमभवद्रुन्धानं रोदसी शरीरेण । तदमरगणेन सहसा विनिगृह्याधोमुखं न्यस्तम् ॥ २१ ॥ येन च यत्र गृहीतं विबुधेनाधिष्ठितं तु तत्रैव । तस्य समयं विधाता वास्तुरिति कल्पयामास ॥ २२ ॥

इति वास्तुपूजाविधानम् ।

---

## अथ सूतिकागृहनिर्माणविधिः ।

गर्गः–वारेऽनुकूले राशौ तु दग्धदोषादिवर्जिते । स्वानुकूलदिशि प्रोक्तं सूतिकाभवनं बुधैः ॥ १ ॥ रत्नकोशे–आसन्नप्रसवे मासि कुर्याच्चैव विशेषतः । सद्यःप्रसवकाले स्यादिति शास्त्रेषु निश्चयः ॥ २ ॥ लल्लः–पुनर्वसौ नृपादीनां कर्तव्यं सूतिकागृहम् । श्रवणाभिजितोर्मध्ये प्रवेशं तत्र कारयेत् ॥ ३ ॥ वसिष्ठः–अथातः संप्रवक्ष्यामि सूतिकागृहवेशनम् । मासे तु नवमे प्राप्ते पूर्वपक्षे शुभे दिने । प्रसूतिसंभवे काले सद्य एव प्रवेशयेत् ॥ ४ ॥ गर्गः–रोहिण्यैन्दवपौष्णेषु स्वातीवारुणयोरपि । पुनर्वसौ पुष्यहस्तधनिष्ठास्वुत्तरासु च ॥ ५ ॥ मैत्रे त्वाष्ट्रे तथाऽश्विन्यां सूतिकागारवेशनम् । स्मृत्यर्थनाशौ मृत्युश्च वृद्धिः पुष्ट्यायुरीप्सितम् ॥ ६ ॥ मृत्युश्च मरणं पित्रोर्मरणं तु ततस्त्रिषु । मेषादिक्रमशो विद्यात्सूतिकागारवेशनम् ॥ ७ ॥ गृहेऽनुकूले राशौ तु रिष्फषष्ठाष्टवर्जिते ।

सर्वे चाथ शुभाः केन्द्रे पापाश्च त्रिषडायगाः । शुभांशे शुभदृष्टौ तु सूतिकावेशनं शुभम् ॥ ८ ॥ विष्णुधर्मे पुष्करः—प्रविशेत्सूतिकासंज्ञं कृतरक्षं समन्ततः । सुभूमौ निर्मितं सम्यग्वास्तुविद्याविशारदैः ॥ ९ ॥ प्राग्द्वारमुत्तरद्वारमथवा सुदृढं शुभम् । देवानां ब्राह्मणानां च गवां कृत्वा च पूजनम् ॥ १० ॥ विप्रपुण्याहशब्देन शङ्खवेणुरवेण च । प्रसूता वहवस्तत्र तथा क्लेशक्षमाश्च याः ॥ ११ ॥ विश्वसनीया विप्राश्च प्रविशेयुः स्त्रियश्च तत् । तथाऽनुलेपनैर्धूपैस्तथैवमुपचारयेत् ॥ १२ ॥ आहारैश्च विहारैश्च प्रसवाय सुखं द्विजाः । एरण्डमूलचूर्णेन सभृतेन तथा घृतम् । सुखप्रसवनार्थाय पश्चात्काये तु तत्क्षिपेत् ॥ १३ ॥

इति सूतिकागृहनिर्माणविधिः ।

---

## अथ प्रसङ्गेन शय्यालक्षणम् ।

तत्राङ्गुलमानं—पराणुरेणुवालाग्रलिक्षायूका यथाक्रमम् । एकैकमष्टगुणितं यवमध्यं प्रकल्पितम् ॥ १ ॥ श्रेष्ठमष्टयवं सप्तयवं मध्यममङ्गुलम् । हीनं पञ्चयवमेतेषु यथायोग्यं नियोजयेत् ॥ २ ॥ स्वामिहस्तप्रमाणस्य दलार्धार्धत्रिभागकम् । कर्तुरेवाङ्गुलं तस्याः प्रशस्तं मानकर्मणि ॥ ३ ॥ शिल्पशास्त्रे—सपञ्चाशीतिपर्वाणि दैर्घ्येण परिकल्पयेत् । सैकपष्टयेव विस्तृत्या मञ्चकः पञ्चविंशतिः ॥४॥ एवं शय्या विधातव्या सर्वेषां शयनोचिता । चतुरशीतिपर्वाणि केचिद्दैर्घ्यं प्रचक्षते ॥ ५ ॥ षष्ट्यङ्गुलानि विस्तारं मञ्चकं हस्तसंमितम् । नवाष्टाऽऽयविशुद्धिः स्यात्तस्मादन्यदुपेक्षितम् ॥ ६ ॥ चतुरशीतिकं मानं शय्यायास्तु शतत्रयम् । भूभृतां सुखभोगार्थं कीर्तितं विश्वकर्मणा ॥ ७ ॥ आयशुद्धा तथा कार्या यथा गोहरिकुञ्जराः । तथैव दोलिकामानं यथाशोभं विधीयते ॥८॥ अस्य विवरणम्-३८४ एतान्यङ्गुलानि शय्यामानम् । अस्या हस्ताः १६ । तत्रोर्ध्वगात्रमानं सार्धहस्तत्रयम् । उभयोर्गात्रयोः सप्त ७ हस्ताः । तिर्यग्गात्रस्यैकस्य मानं सार्धहस्तद्वयम् २ । द्वयोर्मानं पञ्चहस्तकम् ५ । एकस्य मञ्चकस्योर्ध्वमानं हस्तः १ । चतुर्णां हस्तचतुष्टयम् ४ । एवं षोडशहस्ता शय्या राज्ञां सुखभोगप्रदा भवति । गात्रन्यस्तपटस्यात्र संख्या व्याप्ता खकुद्विके । शेषे तद्देवता ब्रह्मा विष्णू रुद्रोऽन्तिमो न सन्॥ ९ ॥ मानाधिक्ये दरिद्रं स्यान्मानहीने सुखक्षयः । अज्ञात्वा कुरुते शिल्पं शिल्पी दोषमवाप्नुयात् ॥ १० ॥

इति शय्यालक्षणम् ।

---

१ ख. 'स्त्यर्ध निशि' ।

## अथ शयनविधिः ।

शुचिर्लक्ष्मीनृपश्चास्यं स्मृत्वाऽगस्त्यशिराः स्वपेत् । न प्रतीच्युत्तराशिरा न नग्नो नाऽऽर्द्रपात्स्वपेत् ॥ १ ॥ धान्यगोगुरुदेवाग्निफलकोपरि न स्वपेत् । नहि क्षताजिनकुशकूलच्छायासु पांसुषु ॥ २ ॥ वराहः–धान्यगोगुरुहुताशसुराणां न स्वपेदुपरि नाप्यनुवंशम् । नोत्तरापराशिरा न च नग्नो नैव चाऽऽर्द्रचरणः श्रियमिच्छन् ॥ ३ ॥ स्वगृहे प्राक्शिराः शेते श्वाशुर्ये दक्षिणाशिराः । प्रत्यक्शिराः प्रवासे तु न कदाचिदुदक्शिराः ॥ ४ ॥ सुतल्पे वैदिकैस्तार्क्ष्यमन्त्रैः संरक्ष्य च स्मरेत् । संकटेऽपि च याम्याङ्घ्रिः स्वपेत्सुग्रीवमुच्चरन् ॥ ५ ॥ माधवोऽगस्तिरास्तीकः कपिलो मुचकुन्दकः । स्मृत्वैताञ्छ्रीनृसिंहाङ्घ्रिं स्मरन्नुच्छीर्षकं स्वपेत् ॥ ६ ॥

इति शयनविधिः ।

---

इति ज्योतिर्निबन्धे गृहारम्भप्रकरणम् ।

---

## अथ राज्याभिषेकप्रकरणम् ।

वसिष्ठः–आधानजन्मेशदशाधिनाथरवीन्दुसौम्येज्यसितैर्बलिष्ठैः । उत्पातदोषादिकवर्जितेषु धराधिपानामभिषेकमाहुः ॥ १ ॥ भूपाभिषेचनं ज्येष्ठाश्रुतिक्षिप्रमृदुध्रुवैः । रिक्ताक्रूरोज्झितैः शस्तं स्थिरोपचयकृत्तनौ ॥२॥ मूलत्रिकोणस्वगृहोच्चमित्रगृहस्थितैर्वाऽथ तदंशसंस्थैः । शुभे विलग्ने सततं ग्रहेन्द्रा दिशन्ति लक्ष्मीं विपुलां च कीर्तिम् ॥ ३ ॥ स्वनीचवैरिगृहगैस्तदंशैरस्तंगतैर्वक्रमुपागतैर्वा । पापोदये शोकभयं विकीर्तिं दिशन्ति राज्ञां भृशमम्बराटाः ॥ ४ ॥ शीर्षोदये चोपचये गृहे वा स्वजन्मलग्नादथ लग्नगेऽपि । शुभैर्ग्रहैर्युक्तनिरीक्षितैर्वा पदं स्थिरं स्यात्सततं हि राज्ञाम् ॥ ५ ॥ रिक्ताव(याम)मायामथ भौमवारे वर्ज्येषु वारेषु दिनेषु चैवम् । बलेर्दिने ऋक्षनिशेशयोश्च न नैधने मे त्वभिषेक इष्टः ॥ ६ ॥ पापग्रहैः स्वान्त्यगतैश्च निःस्वो रोगी विलग्नोपगतैर्भवेत्सः । पदच्युतः सप्तचतुर्थगैस्तैः पुत्रस्थितैः सर्वसुखैर्विहीनः॥७॥ भ्रष्टोत्सुकः कर्मगतैरनायुर्मृत्युस्थितैर्वीर्ययुतैः सपापैः । नूनं व्ययाष्टारिगतः शशाङ्कः क्षितीश्वरं हन्ति तदा बली चेत् ॥ ८ ॥ त्रिकोणकेन्द्रत्रिधनायसंस्थैस्त्रिषष्ठलाभारिगतैश्च पापैः । षष्ठाष्टलग्नव्ययवर्जितेन चन्द्रेण राज्ञां शुभदोऽभिषेकः ॥ ९ ॥ यस्याभिषेके सुरराजमन्त्री लग्ने त्रिकोणे यदि वा भवेत्सः । षष्ठे कुजः कर्मगतश्च शुक्रः स मोदते विक्रमराज्यलक्ष्म्या ॥ १० ॥

दुश्चिक्यलाभारिगताविनार्की खस्थोऽमरेज्यो यदि बन्धुगो ज्ञः । यस्यात्र योगे क्रियतेऽभिषेकश्चिरायुषस्तस्य पदं स्थिरं स्यात् ॥ ११ ॥

इति राज्याभिषेकप्रकरणम् ।

---

## अथ यात्राप्रकरणम् ।

नारदः—अथो यात्रा यथा नृणामभीष्टफलसिद्धये । स्यात्तथा तां प्रवक्ष्यामि सम्यग्विज्ञातजन्मनाम् ॥ १ ॥ अज्ञातजन्मनां नृणां फलाप्तिर्घुणवर्णवत् । प्रश्नोदयनिमित्ताद्यैस्तेषामपि फलोदयः ॥ २ ॥ यात्राविधानं कथयाम्यथातः सर्वैरुपेतस्य गुणैर्जिगीषोः । अतर्किते जन्मनि तस्य यानं फलाप्तिरुक्ता घुणवर्णतुल्या ॥ ३ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—ज्ञात्वाऽऽयुः कार्यसिद्धिं च निवृत्त्यादि ततो वदेत् । यात्रायाः समयं सम्यग्दृष्ट्वा जन्मदशादिकम् ॥ ४ ॥ गर्गः—सद्दशायां शुभा यात्रा ह्यष्टवर्गे शुभा समा । न्यूना तत्काललग्नादौ तिथ्यादावधमा मता ॥ ५ ॥ रत्नमालायाम्—अज्ञातजन्मनोऽप्यन्यैर्यानं योज्यमिति स्मृतम् । प्रश्नोदयनिमित्ताद्यैर्विज्ञाते सदसत्फले ॥ ६ ॥ विद्वज्जनवल्लभे—संप्रेर्यमाणो ह्यवशः शरीरी प्रसह्य दैवेन शुभाशुभेन । ज्योतिर्विदः संनिधिमेत्य तस्मात्प्रश्नोऽप्यतो जन्मसमः फलेन ॥ ७ ॥ भूपवल्लभे—सुभूमौ फलहस्तः सन्सुवेषः सुवचा नृपः । पृच्छेच्छुभं तदा वाच्यमन्यथा न शुभावहम् ॥ ८ ॥ माण्डव्यः—हस्तास्यस्तनकण्ठोष्ठनासागण्डकटिश्रुतीः । अङ्गुष्ठाङ्घ्रयंसगुह्यानि स्पृशन्पृच्छेच्छुभं वदेत् ॥ ९ ॥ भृगुः—याताऽर्कपृष्ठतःपार्ष्णिग्राहोऽग्रगः पुरः स्थितः । आक्रन्दोऽर्कात्सप्तमस्थस्तत्रत्याः शक्तितस्तु ते ॥ १० ॥ श्रीपतिः— जन्मराशिरुत जन्मविलग्नं तत्पती उदयगौ यदि वाऽस्तः । त्र्यायकर्मरिपुभान्युत ताभ्यां शत्रुसंक्षयमवेहि तदानीम् ॥ ११ ॥ इदमप्यरिसंभवं यदाऽऽस्ते हिबुके वा विजयस्तथाऽपि यातुः । शिरसोदयमेति यत्र राशिर्जयकृत्सोऽभ्युदये तथेष्टवर्गः ॥ १२ ॥ करोति राशिर्गमनं फलं च चरो विलग्ने शुभदृष्टियुक्तः । स्थिरोदये स्याद्गमनं न यातुः शुभं शुभैर्दृष्टयुतेऽत्र वाच्यम् ॥ १३ ॥ द्विमूर्तिराशावुदयं प्रपन्ने क्रूरग्रहैर्युक्तनिरीक्षिते च । प्रयाति यद्यप्यनुधस्तदानीं निवर्तते शत्रुजनाभिभूतः ॥ १४ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—वाच्यं सभायां सदिति भाति यद्यप्यसत्फलम् । भूभुजे मन्त्रिणे वाऽपि कथनीयं रहः स्फुटम् ॥ १५ ॥ भृगुः—दीप्तः स्वोच्चे स्वभे स्वस्थो

---

१ क- °न्मफले स्थिते ।

मुषितोऽर्कयुतो ग्रहः । नीचो दीने मित्रभे तु हृष्टः पीडायुतो जितः ॥ १६ ॥ रिपुराशिगतस्तप्तः स्वांशे सौम्येक्षितो बली । भग्नूर्ध्ववीर्यः स्वोच्चाभिमुखो नीचाद्विनिर्गतः ॥ १७ ॥ जन्मपो लग्नपश्चैव यात्रेशः स्वदशाधिपः । चिन्तनीयो नृपो यस्मात्तद्बलेन बलान्वितः ॥ १८ ॥ कश्यपः—त्रिकोणोच्चैः शुभैः श्रेष्ठा यात्रा मध्या स्वमित्रभे । नीचेऽरिभेऽधमा प्रोक्ता श्रेष्ठाऽरिव्यसनेऽथवा ॥ १९ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—चरे शीर्षोदये यानं शुभस्वामियुतेक्षिते । पूर्णनाड्यां तथा ज्ञेयं विपरीतं न शोभनम् ॥ २० ॥

इति यात्रायां शुभाशुभम् ।

## अथ यात्रानिवृत्तिकालः ।

बादरायणः—उद्गतकलासमूहं परमायुस्ताडितं समुद्धृत्य । मण्डलकलाभिराप्तो वर्षादिरथाऽऽयुषः कालः ॥ १ ॥ रत्नावल्यां—षष्टिः षष्टिरथाष्टौ विंशतिरेकाधिकं च वर्षाणाम् । त्रिंशदधिकं च शतं विंशत्या समधिकं चैव ॥ २ ॥ * उदयोपगतराशेस्तत्कलाकृत्यलिप्तिकां गुणयेत् । छायाङ्गुलैः पृथक्स्थां हृत्वा मुनिभिः शेषम् (?) ॥ ३ ॥ ग्रहगुणकारो ज्ञेयो दैवविदा पञ्चविंशतिः सैका । मनवोऽष्टौ त्रितयं भावाश्च सूर्यादितो ज्ञेयाः ॥ ४ ॥ गुणयित्वैवं भाग्यद्धृत्वा सौम्यस्य यदि भवेदुदयः । कार्यप्राप्तिः प्रष्टुर्वक्तव्या नेतरे भवति ॥ ५ ॥ गुणकारैरयविभक्तः शेषोऽर्कादेर्विशोधयेद्गुणकान् । यस्य न शुध्यति लग्नं न ज्ञेयस्तद्दशात्कालः ॥ ६ ॥ भौमदिवाकरशेषे दिवसाः पक्षाश्च भृगुशशिनोः । गुरुवशेषे मासा ऋतवः सौम्ये शनैश्चरेऽब्दाः स्युः ॥ ७ ॥ पृथुयशाः—ग्रहः सर्वोत्तमबलो लग्नाद्यस्मिन्गृहे स्थितः । मासैस्तत्तुल्यसंख्याकैर्निवृत्तिं यातुरादिशेत् ॥ ८ ॥ चरांशस्थे ग्रहे तस्मिन्कालमेनं विनिर्दिशेत् । द्विगुणं स्थिरभागस्थे त्रिगुणं द्व्यात्मकांशके ॥ ९ ॥ गर्गः—यातुर्विलग्नजामित्रभवनाधिपतिर्यदा । करोति वक्रमावृत्तिं कालं तं ब्रुवते परे ॥ १० ॥

इति यात्रानिवृत्तिकालः ।

## अथ यात्रायां पञ्चाङ्गशुद्धिः ।

श्रीपतिः—निहन्त्युलूको निशि काकमह्नि काकोऽप्युलूकं हरिमप्सु नक्रः । स्थले मृगारिर्मकरं यतोऽतो देशस्य कालस्य बलं विचिन्त्यम् ॥ १ ॥

* श्लोकोऽयं ए. प पुस्तकयोर्नास्ति ।

गर्गः—श्रेष्ठाः सिंहाजचापेऽर्के मध्या ज्ञार्कांशिनो भगे । मीनकन्यालिगे दीर्घा मार्गेऽर्कः पृष्ठतः शुभः ॥ २ ॥ लल्लः—अथ भवति विजयसमयश्चैत्रे ज्येष्ठे च मार्गशीर्षे च । सद्योऽरिव्यसनेऽपि च महीपतेः शक्तियुक्तस्य ॥३॥ भृगुः—याने सूर्योदये वारा दद्युर्हानिं बलक्षयम् । रोगं सौख्यं श्रियं भोगान्सैन्यनाशं क्रमात्फलम् ॥ ४ ॥ लल्लः—उपचयकरे ग्रहदिने सिद्धिः क्रूरेऽपि यायिनां भवति । सौम्येऽप्यनुपचयस्थे न भवति यात्रा शुभा यातुः ॥ ५ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—जलयात्रा शुभा सोमे युद्धयात्रा शुभा रवौ । पशोर्यानं बुधे त्याज्यं सौमे लोम न चालयेत् ॥ ६ ॥ रत्नकोशे—एकादशी द्वितीया त्रयोदशी पूर्णिमा तृतीया च । श्रेष्ठा प्रतिपद्दशमी सप्तमी पञ्चमी याने ॥ ७ ॥ बृहस्पतिः—सर्वाः स्युस्तिथयः शस्ताः शुक्ले स्वाद्यद्वयं विना । कृष्णे त्वन्त्यत्रयं चैव षष्ठीं रिक्तां परित्यजेत् ॥ ८ ॥ नारदः—षष्ठ्यष्टमीद्वादशीषु रिक्तामावर्जितासु च । यात्रा शुक्ले प्रतिपदि निधनायाधनाय च ॥ ९ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—श्रुत्यादित्यान्त्यपुष्यार्कमृगभैत्रैर्गतिः शुभा । मध्यमा वारुणं ज्येष्ठात्रयं भाग्यं स्थिरैर्भवेत् ॥ १० ॥ विशात्रयाजपादार्द्रायमाग्निपितृसार्पभम् । रिक्तामाद्वादशीः षष्ठीं जन्मभं गमने त्यजेत् ॥ ११ ॥ रत्नमालायां—हस्तेन्दुमैत्रश्रवणाश्वितिष्यपौष्णधनिष्ठाश्च पुनर्वसुश्च । श्रेष्ठानि धिष्ण्यानि नव प्रयाणे त्यक्त्वा त्रिपञ्चादिमसप्तताराः ॥ १२ ॥ दैवज्ञवल्लभे—आर्द्राविशाखाबहुलाजयाम्यचित्रामघास्वातिभुजङ्गभानि । प्रोक्तानि याने न शुभप्रदानि शेषाणि नेष्टानि न निन्दितानि ॥ १३ ॥ शूलं ज्येष्ठेन्दुमन्दाः प्राक् प्रत्यग्ब्राह्मार्कभार्गवाः । याम्येऽन्त्यपञ्चधिष्ण्येज्या ज्ञारार्यमभमुत्तरे ॥ १४ ॥ चन्द्रे मन्दे न च प्राचीं न गच्छेद्दक्षिणां गुरौ । न प्रतीचीं रवौ शुक्रे बुधे भौमे न चोत्तराम् ॥ १५ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—नोल्लङ्घ्या वायुवह्निस्था रेखाः सप्तारिकेऽग्निभात् । यदि लग्नविशुद्धिः स्यान्न दुष्टं परिघादिकम् ॥ १६ ॥ गर्गः—प्रागादि सप्त सप्त स्युः कृत्तिकादीनि भानि तु । तत्राग्न्यनिलदिग्रेखां परिघाख्यां न लङ्घयेत् ॥ १७ ॥ श्रीपति —प्रयोजनेष्वात्ययिकेषु भूपतिर्विलङ्घ्य रेखामपि पारिघीं व्रजेत् । विहाय दिक्शूलसमाह्वयान्युडून्यदि स्यादिग्लग्नविशुद्धिराप्यते ॥ १८ ॥ नारद —आग्नेय्यां पूर्वदिग्धिष्ण्यैर्विदिक्ष्वेवमेव हि । दिग्राशयः स्युः क्रमशो मेषाद्याश्च पुनः पुनः ॥ १९ ॥ व्यास.—ध्रुवैर्मिश्रैर्न पूर्वाह्णे वासरार्धे न तीक्ष्णभैः । नापरार्धे तथा क्षिप्रैर्वदन्ति गमनं शुभम् ॥ २० ॥ मृदुभिर्नरजन्यादौ निशामध्ये चरोग्रभैः । न चरैः शर्वरीशेषे कुर्वीत गमनं

१ ग. घ. "शे स्पर्शा°" ।

सुधीः ॥ २१ ॥ गर्गः—पुष्ये मैत्रे करेऽश्विन्यां सर्वाशागमनं शुभम् । सर्वकाले हिता यात्रा हस्ते पुष्ये मृगे श्रुतौ ॥ २२ ॥ त्याज्यप्रकरणे दोषा ये प्रोक्तास्तान्विवर्जयेत् । भद्रा याने परित्याज्या क्षणाश्च निन्दिताह्वयाः ॥ २३ ॥ बादरायणः—मध्याह्ने सर्वदा ज्ञेयो मुहूर्तोऽभिजिदाह्वयः । तस्मिन्यानं सर्वदिक्षु शुभं याम्यदिशं विना ॥ २४ ॥ रत्नकोशे—अभिजित्संज्ञे धिष्ण्ये श्रवणाषाढान्तरे भवति। तस्मिंश्च संप्रपातः सर्वार्थान्साधयेन्नित्यम् ॥ २५ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—भद्राकुलिकपाताद्या दोषास्त्याज्याः प्रयत्नतः । लब्ध्वा चन्द्रबलं शुद्धे धिष्ण्ये लग्ने गमः शुभः ॥ २६ ॥ क्रान्तिपाते भवेन्मृत्युः कुलिके च महद्भयम् । यामार्धे सति शोकः स्याद्भद्रायां भङ्गमादिशेत् ॥ २७ ॥ व्यसनं मरणं चापि व्यतीपाते च वैधृतौ । दिनक्षये युद्धदौ वा संक्रमे च पराभवः ॥ २८ ॥ हानिः क्रूरयुते भे स्याद्भयं दग्धे च धूमिते । यातुश्चन्द्रबलाभावे यात्रा शस्ताऽप्यनर्थदा ॥ २९ ॥ यात्राशिरोमणौ—ऋते चन्द्रबले पुंसां यात्रा शस्ताऽप्यनर्थदा । व्याख्या गम्भीरशास्त्राणां संप्रदायं विना यथा ॥ ३० ॥ कलहः सूतिकाशौचे रोगः स्याद्राहुसूतके । तिथिदोषेण संतुष्टिर्वारदोषे मनश्चलम् ॥ ३१ ॥ गर्गः—रवीन्द्वयनयोर्यानमनुकूलं शुभप्रदम् । तदभावे दिवा रात्रौ यायाद्यातुर्वधोऽन्यथा ॥ ३२ ॥ पूउआनैदपवाईदिक्षु प्रतिपदादितः । योगिनी संमुखा त्याज्या याने वा दक्षिणे सदा ॥ ३३ ॥ प्राच्यां याने कुजे लाभो मन्देन्द्वोर्दक्षिणे सुखम् । ज्ञे गुरौ पश्चिमे सिद्धिः शुक्रेऽर्के चोत्तरे शुभम् ॥ ३४ ॥ रत्नावल्यां—तिथ्यां यात्रासिद्धिः करणे न सुखं धनं मुहूर्तवशात् । नक्षत्रेणावश्यं यातुरथाऽऽयुस्तथा वित्तम् ॥ ३५ ॥ वारेण सौमनस्यं शुभेन चन्द्रेण मित्रसंप्राप्तिः । सर्वे गुणाः समुदिता लग्नेनैकेन लभ्यन्ते ॥ ३६ ॥ यात्राप्रदीपे—लग्नदोषे तु संप्राप्ते ये कुर्वन्ति प्रयाणकम् । प्रत्यावृत्तिर्भवेत्तेषां यदा खे पुष्यदर्शनम् ॥ ३७ ॥ रविभाद्दिनभं नगहृदङ्गगुणैर्विडालाडलाद्विनगैः । तन्नक्षत्रे यानं विवर्ज्यमिति देवलः प्राह ॥ वर्ज्या यात्रा युद्धे रोगारम्भे च मङ्गले नैव ॥ ३८ ॥ तथा च—रत्नकोशे—दिनकरकरप्रतप्तां मकरादावुत्तरां च पूर्वां च । यायाच्च कर्कटाद्यौ याम्यामाशां प्रतीचीं च ॥ ३९॥ नक्षत्रसमुच्चये—यात्रायन्त्रहलप्रवाहसमरे चौर्ये च संधौ तथा कूपारामतडागबन्धनविधौ पापर्धिदुर्गग्रहे । अश्वेभोष्ट्ररथादिरोहणकृतौ त्याज्यं सदैवाऽऽडलं तेनान्यत्र शुभेषु मङ्गलविधौ दोषो न तस्य क्वचित् ॥ ४० ॥ बादरायणः—तिथयः पक्षगुणिताः सप्तभिर्भाजितास्तथा । स्युर्वारा वह्निगुणिता वसुभिश्चैव भाजिताः॥४१॥

---

१ क. 'गगुदह'।

चतुर्गुणानि भान्यङ्गभाजितानि यथाक्रमम् । पीडा स्यात्प्रथमे शून्ये मध्ये शून्ये महद्भयम् ॥ ४२ ॥ अन्त्ये शून्ये तु मरणं त्रिशून्यरहितं शुभम् । तिथिवासरनक्षत्रमंकैकं स्थापयेत्त्रिधा ॥ ४३ ॥ अस्मिन्पक्षे वारे शून्यं नाऽऽयात्येव । पक्षान्तरं–तिथिवासरऋक्षाणां योगं कृत्वा त्रिधा लिखेत् । द्वित्रिवेदैः संगुणितं सप्ताष्टरसभाजितम् ॥ ४४ ॥

## अथ पन्था राहुः ।

धर्मेऽर्के शशिनस्तदादि तु फलं वैरं जयो भङ्गता लाभश्चेति तथाऽर्थतः क्षयसमत्वे लाभवस्त्रागमौ । तद्वत्कामगते रवौ भयधने सौख्यं जयः कीर्तितो मोक्षेऽर्के मृतिलाभनिष्फलसमत्वे राहुपन्था इति ॥ १ ॥

इति यात्रायां पञ्चाङ्गशुद्धिः ।

---

## अथ यात्रायां दोहदप्रकरणम् ।

तिथिवारर्क्षचन्द्रेभ्यो लग्नं कोटिगुणं स्मृतम् । तस्मान्निषिद्धतिथ्यादेर्दोषः स्वल्पतरो मतः ॥ १ ॥ तथाऽपि निन्द्यतिथ्यादौ कृत्वा दोहदकं विधिम् । केवलं लग्नवीर्येण गतो राजा क्षितिं जयेत् ॥ २ ॥ तिथिप्वर्कजलं माश्यं तण्डुलोदकसर्पिषी । हविष्यं दधि सस्वर्णं तिलाम्भोबीजपूरकम् ॥३॥ माषा विश्वंभरामूत्रं पिष्टकं तिलपिष्टकम् । कन्दो मूलं तथा शाकं शस्तवृक्षदलानि च ॥ ४ ॥ मज्जिका पायसं साज्यं सौवीरं क्वथितं पयः । दधि क्षीरमतप्तं च वारेष्वद्यात्तिलौदनम् ॥ ५ ॥ क्रमाद्दस्रगुणाः ३२ षष्टिः ६० खाङ्काः ९० खाक्षाः ५० खसागराः ४० । खाष्टौ ८० खागाः ७० परे माहुर्मन्दादेर्भोगनाडिकाः ॥ ६ ॥ अर्कादौ धारयेत्काले कुङ्कुमं चन्दनं मृदम् । यवान्दधि घृतं तैलं वारशूलापनुत्तये ॥ ७ ॥ ताम्बूलं चन्दनं मृच्च पुष्पं दधि घृतं तैलम् । वारशूलहराण्यर्कादानाद्धारणतोऽदनात् ॥ ८ ॥ बृहस्पतिः—सूर्यवारे घृतं प्राश्यं सोमवारे पयस्तथा । गुडमङ्गारवारे च बुधवारे तिलानपि ॥ ९ ॥ गुरुवारे दधि प्राश्यं शुक्रवारे यवानपि । माषान्भुक्त्वा शनेर्वारे शूले गच्छन्न दोषकृत् ॥ १० ॥ भक्ष्यान्भुक्तोदितान्कृत्वा यात्रायोगेण गच्छता । प्रियं वदन्रवेर्वारे शय्यामध्युष्य शीतगोः ॥ ११ ॥ गयावृत्तो धरासूनोर्वारे ग्रस्य तु हारधृक् । भस्मधृग्जीववारे स्याच्छित्त्वा पर्हि भृगोर्दिने ॥ १२ ॥ कलही मन्दवारे च यातुः कृत्यान्यमी,

---

१ । क. °र्कदलं । २ घ. 'माद्भयम्° । ३ ख. घ. सला । वा° ।

( नु ) क्रमात् । भक्ष्यैश्च तिलकैः कृत्यैर्वारदोषो विलीयते ॥ १३ ॥ दैवज्ञवल्लभे—स्विन्नाः स्युः साक्षता माषास्तण्डुलास्तिलसंयुताः । दधि गोपायसं मांसं मृगमांसमसृक्ततः ॥ १४ ॥ विलापनं पायसं च वैहङ्गं पिशितं तथा । तिलौदनं पष्टिकान्नं पष्टिकान्नं प्रियङ्गवः ॥ १५ ॥ चित्रान्नममलं यावं कुलित्था मधुसर्पिषी । मूलाम्बु सक्तवः शालिः शाकं मांसं बिडालजम् ॥ १६ ॥ आजं यथेष्टमांसं च सक्तवो माषमिश्रिताः । अश्विन्यादिषु धिष्ण्येषु प्राश्यं वाञ्छितसिद्धये ॥ १७ ॥ नारदः—कुल्माषांश्च तिलान्नं च दधि क्षौद्रं पयः स्मृतम् । मृगमांसं च तत्सारं पायसं चापथं मृगम् ॥ १८ ॥ शशमांसं च पष्टिक्यं प्रियङ्गुकमपूपकम् । चित्राणुजफलं कूर्मश्वाविद्गोधां च शल्यकम् ॥ १९ ॥ हविष्यं कृसरान्नं च मुद्गान्नं यवपिष्टकम् । मत्स्यान्नं चित्रितान्नं च दध्यन्नं दस्रभात्क्रमात् ॥ २० ॥ ज्योतिश्चिन्तामणौ—यमाग्न्यजपदा ह्यार्द्रा पैत्रत्वाष्ट्रत्रये गतिः । त्याज्याऽद्रिविश्वभूपेन्द्रेन्द्रेशभूपेन्द्रजिष्णवः ॥ ७ । १३ । १६ । १४ । १४ । ११ । १६ । १४ । १४ ॥ २१ ॥ ज्योतिःसागरे—विवर्जयेत्त्वाष्ट्रयमोरगाणामर्धं द्वितीयं गमने जयेच्छुः । पूर्वार्धमाग्नेयमघाद्विदैवे स्वातीमतेनोशनसः प्रशस्तम् ॥ २२ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—स्वास्तास्त्रुलग्नगे सूर्ये भुक्त्वा यायाद्घृतं तिलान् । क्षीरं च शर्करां शीघ्रं कार्याप्त्यै पूर्वतः क्रमात् ॥ २३ ॥ बृहन्नारदः—गच्छेत्प्राचीं घृतं प्राश्य दक्षिणाशां तिलौदनम् । प्रतीचीं मत्स्यमांसानि शुभार्थी क्षीरमुत्तराम् ॥ २४ ॥ बृहस्पतिः—अभक्ष्यालभ्यभक्ष्या ये स्मृत्वा स्पृष्ट्वाऽथ तान्व्रजेत् । दत्त्वा वा सिद्धिमाप्नोति दुष्टभादिषु भूपतिः ॥ २५ ॥ उक्तभक्ष्यैश्च नक्षत्रतिथितिथ्यर्धवारजाः । शुभाशुभग्रहोत्थाश्च सर्वे दोषाः शमं ययुः ॥ २६ ॥

इति यात्रायां दोहदप्रकरणम् ।

---

## अथ लग्नबलविचारः ।

दैवज्ञवल्लभे—शीर्षोदये यातुरभीष्टसिद्धिः पृष्ठोदये वाञ्छितकार्यनाशः । यातव्यकाष्ठामुखमिष्टदं स्यादनिष्टदं दिक्प्रतिलोमलग्नम् ॥ १ ॥ जन्मोदये सिद्धिकरं प्रयाणं न जन्मराशेरुदये नृपस्य । स्थानान्त्ययोश्चोपचयोदयेषु शुभं फलं स्यादितरेषु नाशः ॥ २ ॥ जन्मर्क्षलग्नाष्टमराशिलग्ने पष्ठोदये शत्रुभलप्रनो

वा । तद्राशिनार्थैरथवोदयस्थैः करोति यानं विषभक्षणं वा ॥३॥ रत्नमालायां— वक्रः पन्था मीनलग्नेंऽशके वा कार्यासिद्धिः स्यान्निवृत्तिश्च तत्र । नेष्टः कुम्भोऽप्युद्गमेंऽशस्थितो वा लग्ने चाप्येंऽशे च नौयानमिष्टम् ॥ ४ ॥ गर्ग.—दिवा दिनबले लग्ने रात्रौ रात्रिबले तथा । गन्तव्यं वा चरेद्व्यङ्गे शुभयुक्ते स्थिरेऽपि वा ॥ ५ ॥ दैवज्ञवल्लभे—शुभग्रहैर्जन्मनि संयुता ये ये चार्कतः सौम्ययुता द्वितीयाः । ते राशयो लग्नगताः प्रशस्ता ये क्रूरयुक्ता न शुभावहास्ते । ६ ॥ सौम्योऽपि यो जन्मनि नेष्टदाता स्थानं न लग्ने शुभकारि तस्य । पापोऽपि यः शस्तफलं तदीयं स्थानं विलग्ने शुभदं प्रयातुः ॥ ७ ॥ शस्तं न कीटालिवृषोदयेषु यानं तदंशेष्वथ वा प्रयातुः । लग्नानि शस्तानि शुभग्रहाणां यन्नौप्रयाणं जलभोदये तत् ॥ ८ ॥ चतुष्पदा द्व्यङ्घ्रिवशा विसिंहाः सरीसृपाश्चाम्बुचराश्च भक्ष्याः । सिंहस्य वश्या विसरीसृपाः स्युरुक्तं जनोक्तं व्यवहारतोऽन्यत् ॥ ९ ॥ स्थलाम्बुसंभूतसरीसृपाख्या भवन्ति वश्या बलिनां स्वकानाम् । समा द्युसंस्था विषमा भजन्ते वश्या रजन्यां विषमाः समानाम् ॥ १० ॥ स्याद्विद्विषो जन्मगृहोदयाभ्यां लग्नेऽष्टमे शत्रुवधः प्रयातुः । वधः प्रयातुस्त्वरिभे प्रसूतौ रन्ध्रारिभे क्रूरशुभान्विते च ॥ ११ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—सौम्यक्रूरेषु ये खेटास्तत्कालोपचयावहाः । तेषां वारांशवर्गाः स्युर्याने योज्यास्तनावपि ॥ १२ ॥ रत्नमालाया— मूर्तिः कोशो धन्विनो वाहनानि मित्रं शत्रुर्मार्ग आयुर्मदश्च । व्यापारश्च प्राप्तिरप्राप्तिरेवं लग्नाद्भावा द्वादशैते विचिन्त्याः ॥ १३ ॥ घ्नन्ति क्रूरास्त्र्यायवर्जं हि भावान्निर्व्यापारं निर्हतः सूर्यभौमौ । सौम्याः पुष्णन्त्येव हित्वाऽरिभावं शुक्रश्चास्तं मृत्युमूर्तिस्तथेन्दुः ॥ १४ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—सर्वत्रगाः शुभाः सौम्याः पापास्त्र्यायारिकर्मगाः । चन्द्रो नेष्टस्तनौ रन्ध्रे याने स्वार्किः सितोऽस्तगः॥१५॥ धनधीधर्मगं सूर्यं शुभमिच्छन्ति केचन । प्रयाणे तद्वदक्रूरं प्रशस्तं सर्वगं बुधम् ॥ १६ ॥ केचिद्दुर्व्ययेे चन्द्रं रिष्फे रन्ध्रे गुरुं त्यजेत् । षष्ठे शुक्रे च यात्रायां दिगीशे केन्द्रगे शुभम् ॥ १७ ॥ राज्यश्रीजयधीमानलाभारोग्यफलोदयान् । पुष्णन्ति घ्नन्ति सूर्याद्याः सदसद्भावगाः क्रमात् ॥ १८ ॥ लग्नपो मृत्युपो याने रन्ध्रास्तारिव्ययोपगः । केऽप्याहुर्भयदो धर्मे शेषस्थाने यशोर्थदः ॥ १९ ॥ रत्नकोशे—स्वोच्चगते विजिते रिपौ बलवति लग्नाधिपे कृतागमः । निर्जित्य सार्वभौमं समुपैति गृहं समग्रबलम् ॥ २० ॥ माण्डव्य.—जन्मराशिं त्यजेल्लग्ने तथा भं नष्टवक्रिणोः । अष्टमं तत्पतिं जन्मलग्नं लग्ने यदागमः ॥ २१ ॥ प्रसूतौ

---

१ ख. तत्यजेज्जन्मल° । २ घ 'न्मपतिर्लग्ने' । ३ क. °ग्ने यदोदयः° ।

बलहीनो यो यो विरोधी दशापतेः। सांप्रतं विलग्नवासी लग्ने सौम्योऽपि नेष्टदः ॥ २२ ॥ बलवाञ्जन्मकाले यो दशापालस्य यः सुहृत्। फलदः सांप्रतं खेटो मूर्तौ पापोऽप्यभीष्टदः ॥ २३ ॥ दैवज्ञवल्लभे—जन्मर्क्षजन्मलग्नपयोः शत्रुर्लग्नगः स सौम्योऽपि। कुरुते नृणां विपत्तिं क्रूरोऽपि शुभस्तयोर्मित्रम् ॥ २४ ॥ जन्मर्क्षजन्मलग्नेशरिपुः सौम्योऽपि लग्नगः। विनाशदो भवेन्मित्रं तयोः पापोऽप्यभीष्टद ॥२५॥ वसिष्ठः—न तानकारकाख्यो यो जन्मलग्नभयोर्भवेत्। सौम्योऽपि स विलग्नस्थो याने यातुर्विरोधकृत् ॥ २६ ॥ अथ यात्रोपयोगित्वाद्वेशिवर्धकरक्षकनापकतानकादीनां लक्ष्मोच्यते—सूर्याद्द्वितीयमृक्षं वेशिस्थानं प्रकीर्तितं यवनैः। तद्वेट्ग्रहयुक्ते जन्मनि चेष्टासु च विलग्नम् ॥ २७ ॥ वेशिर्विलग्नोपगतो यियासोर्विनाऽपि यत्नात्कुरुते फलाप्तिम्। शुभग्रहैर्जन्मनि संयुता ये ते राशयो लग्नगताः प्रशस्ताः ॥ २८ ॥ यश्चापि पणफरस्थः स भवति रक्षोपगो यस्य। तस्येति ग्रहस्य कारको भवति। यो यस्य च दशस्थस्तस्यहि वश्योपगो ग्रहो ज्ञेयः ॥२९॥ जन्मसमये शशाङ्कादुपचयसंस्था ग्रहाः केचित्। ते सर्वे तानसंज्ञाः क्रूरा अपि चात्र सौम्यसमाः ॥ ३० ॥ जन्मन्युपचयसंस्थाः परस्परं खेचरा ये च। ते नापका मुनीन्द्रैस्तानसमानाः स्मृता नूनम् ॥ ३१ ॥ लग्नस्थः सुखसंस्थो दशमस्थश्चापि कारकः प्रोक्तः। एकादशेऽपि केचिद्वाञ्छन्त्यार्याः प्रसवकाले ॥ ३२ ॥ तुङ्गसुहृत्स्वगृहांशे स्थिता ग्रहाः कारकाः समाख्याताः। अन्यस्माद्दशमस्थः स कारकश्चापि निर्दिष्टः ॥ ३३ ॥ अत्र कारको वर्धकः। स्वोच्चत्रिकोणसंस्था अपि केन्द्रगता ग्रहाश्चिन्त्याः। ज्ञेया नापकसंज्ञास्तुपतायकसंज्ञिता भाग्ये ॥ ३४ ॥ यवनः—स्वक्षेत्रे रजनिकरो बुधभवने भार्गवो बुधः स्वगृहे। सौरश्चैव तुलायां नापकविधिरेष निर्दिष्टः ॥ ३५ ॥ रक्षका वर्धकाश्चैव ये स्युर्जन्मनि नापकाः। तान्पापानपि निःशङ्को यात्रालग्ने नियोजयेत् ॥ ३६ ॥ अशस्तोऽपि भवेच्छस्तः शस्तोऽपि विफलायते। ग्रहो राशिश्च लग्नस्थो रक्षकादिप्रभेदतः ॥ ३७ ॥ राज्यं श्रियं सैन्यसुखं प्रियशब्दं सुभाग्यताम्। जयं हानिं भास्कराद्या दद्युः सन्द्रवनं ग्रहाः ॥ ३८ ॥ सौरिस्थानगते सूर्ये शुभो लग्नगतः कुजः। बुधकोणार्कशुक्राणां बुधस्थानस्थितः सितः ॥ ३९ ॥ मन्दः सूर्यग्रहे शस्तः शशी सर्वत्रगः शुभः। चन्द्रास्फुजित्स्थानगतो गुरुर्नैव शुभो भवेत् ॥ ४० ॥ एकोऽपि केन्द्रगो वक्री क्रूरः सौम्योऽथवा ग्रहः। वर्गो वा तस्य लग्नस्थो भवेद्यातुर्विनाशदः॥४१॥ ज्योतिष्प्रकाशे—केन्द्रे वक्री मृतिं कुर्यात्तस्य वर्गोदितं तथा। सुखेऽस्तजन्मभेऽङ्गे च भङ्गः पापयुतेक्षिते ॥ ४२ ॥ बादरायणः—जन्मपौ केन्द्रगौ ग्राह्यौ तयोः

---

१ ख. °शिष्पक्ष° ।

शत्रुर्विलग्नगः । सौम्योऽपि नाशकृद्याने सुहृत्पापोऽपि कार्यकृत् ॥ ४३ ॥ श्रीपति —विशाखा कृत्तिकाऽऽप्यानि श्रवणो भाग्यमैज्यभम् । रेवती याम्यमाश्लेपा जननर्क्षाणि सूर्यतः ॥ ४४ ॥ उत्पाताभिहतं यस्य क्रूरग्रहनिपीडितम् । जन्मभं सोऽनुकूलोऽपि न शस्तो लग्नगो ग्रहः ॥ ४५ ॥ वृद्धनारद — यदेवोदयसंस्थस्य ग्रहस्य कथितं फलम् । तदेव तस्य वारेऽपि वर्गे वाऽपि विलग्नगे ॥ ४६ ॥ दिगीश्वरो ललाटस्थो यदि वा दिग्बलान्वितः । वधबन्धप्रदो यातुः केन्द्रगः सुजयार्थदः ॥ ४७ ॥ नारद —दिगीशाः सूर्यशुक्रारराह्वार्कीन्दुजसूरयः । दिगीश्वरे ललाटस्थे यातुर्न पुनरागमः ॥ ४८ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—ललाटेऽर्कस्तनौ मान्या वह्नौ लाभान्त्यगो भृगुः । याने याम्ये खगो भौमो नैर्ऋत्यां गोष्ठगोऽन्त्यगुः ॥४९॥ प्रतीच्यां सप्तमो मन्दो वायौ चन्द्रः सुतारिगः । नैष्ठोऽम्बुगो बुधः सौम्यो गुरुरीशे धनत्रिगः ॥ ५० ॥ वसिष्ठ —राशीनेकं द्वाविनाक्रान्तराशेर(शेः)प्रादक्षिण्यं दिग्विदिक्षु क्रमेण। यद्दिग्राशौ लग्नगे संमुखत्वं तद्दिग्यातुर्मृत्युदस्तद्दिगीशः ॥ ५१ ॥ रत्नकोशे—ललाटेऽग्निभयं करोति दिनकृत्कोशक्षयं लोहितः शत्रूणां विजयं शशाङ्कतनयः सेवाविमर्दं गुरुः । मृत्युं भास्करनन्दनो नरपतेर्व्याधिं तथा विभराहेतान्येव समस्तखेचरफलान्येकः सितो यच्छति ॥ ५२ ॥ दैवज्ञवल्लभे - केन्द्रोपचयगौ शस्तौ जन्मराशिविलग्नपौ । बलिनौ यद्यपि क्रूरौ तज्ज्ञैः सौम्यसमौ स्मृतौ ॥ ५३ ॥ सौम्योऽपि न शुभं धत्ते रिपोर्वारे विलग्नगः । वारे मित्रस्य पापोऽपि भवेच्छुभफलप्रदः ॥ ५४ ॥ रत्नमालायां—यात्रादिगीशादपि पञ्चमेऽन्यो गृहे ग्रहो वीर्ययुतोऽधितिष्ठेत् । समुद्यताशाकथितानि भुक्त्वा फलानि वीर्याश्रयति स्वकाष्ठाम् ॥ ५५ ॥ परस्परं त्रिकोणस्थौ मन्दारौ भास्कराह्वपौ । शुक्रारौ नयतः स्वाशां विनाऽप्योक्तं फलं मलात् ॥ ५६ ॥ गर्गे —साम्नो जीवसितौ नाथौ दण्डस्य कुजभास्करौ । चन्द्रो दानस्य भेदस्य राहुकेतुबुधार्कजाः ॥ ५७॥ यान्ति सामादयः सिद्धिं केन्द्रोपचयसंस्थितैः । स्वनाथैर्वीर्यसंयुक्तैस्तद्दृद्वारैर्वा तदंशकैः ॥ ५८ ॥

इति लग्नबलविचारः ।

---

## अथ पृथग्भावफलम् ।

---

### अथ रविफलम् ।

बृहस्पति —अर्कोदये च संतापं शोकं विघ्नं लभेत्ततः । कोशार्थमानहा भानुर्द्वितीये बलनाशनः ॥ १ ॥ हेमार्थं विभ्रमं दद्यात्तृतीये भूमिदो रविः । वैराग्यं बन्धुविद्वेषं कुर्यात्पातालगो रविः ॥२॥ पञ्चमो मन्त्रिविद्वेषं कुर्याद्वा दुर्मतिं रविः ।

षष्ठोऽर्को वाञ्छितं दद्याच्छत्रुनाशं करोति वै ॥३॥ सप्तमः स्त्रीविरोधं च कुर्याद्भक्ष्यं रविः । मृत्युभावगतो दद्यान्नानारोगान्दिवाकरः ॥ ४ ॥ धर्महा नवमो यातुर्धनदश्च दिवाकरः ॥५॥ दशमोऽभिमतान्दद्यात्संमानं चैव भास्करः। लाभगो बहुलाभांश्च रत्नाद्यर्थान्ददेद्रविः । व्ययगो व्ययकृद्यातुरन्यायांश्च प्रयच्छति ॥६॥

---

अथ चन्द्रफलम् ।

इन्दुर्लग्नगतो दद्याच्छोकं कलहमेव च । स्त्रीराज्यपुत्रधर्मार्थान्दद्यात्सोमो द्वितीयगः ॥ १ ॥ धनरत्नाङ्गना दद्याद्यातुरिन्दुस्तृतीयगः । बन्धुगो बन्धुदश्चन्द्रः कृशो बन्धुविनाशनः ॥ २ ॥ पञ्चमोऽर्थप्रदश्चन्द्रः पुत्रशोककरः कृशः । षष्ठो मित्रान्रिपून्कुर्याद्दुःखितानपि शीतगुः ॥ ३ ॥ सप्तमो धनभूमिस्त्रीलाभदोऽणुर्विनाशकृत् । अष्टमे शोकदश्चन्द्रो ह्यपमृत्युं करोति वा ॥ ४ ॥ निहन्तिमाशु धर्मेषु तनुते महतीं श्रियम् । दशमोऽब्जोऽर्थहा क्षीणो वर्धनो राज्यवृद्धिदः ॥ ५ ॥ लाभे स्वैश्वर्यदश्चन्द्रः सख्यवित्तयशःप्रदः । क्लेशं वाऽर्थव्ययं कुर्याद्भयं द्वादशगः शशी ॥ ६ ॥ अपूर्णः शोकदश्चन्द्रो लग्ने क्षीणस्तथा रिपौ । कर्किगोऽजस्थितः पुष्टो निजदुष्टफलापहः ॥ ७ ॥ सूर्यो राजभयं करोति शशिना युक्तोऽर्थहानिं भृगुः स्थानभ्रंशकरो गुरुः शशिसुतः संतापदोषं महत् । मृत्युं सूर्यसुतो ददाति नियतं शस्त्रात्तथा भूसुतस्तस्माच्चन्द्रयुतिं विहाय मतिमान्यात्रां प्रकुर्यात्सदा ॥ ८ ॥

---

अथ भौमफलम् ।

रुधिरो रुधिरात्सर्पाच्छस्त्राद्वा लग्नगो भयम् । कुरुतेऽथ द्वितीयस्थः सैन्यभेदं च भूमिजः ॥ १ ॥ तृतीये धनरत्नस्त्रीवस्त्राणि कुरुते कुजः । चतुर्थे बन्धुहानिः स्याच्छत्रुबाधां च भूमिजः ॥ २ ॥ शत्रुपीडा सुतस्थाने सुतापदच-लासुतः । शत्रूणां नाशदः षष्ठः शीघ्रं जयकरः कुजः ॥ ३ ॥ सप्तमोऽर्थक्षयं रोगान्करोति धरणीसुतः । बह्वर्थनाशरोगैश्च मृत्युदो मृत्युगः कुजः ॥ ४ ॥ धर्मगो धर्मविच्छेत्ता यात्रायां धरणीसुतः । दशमेऽतीव शस्तः स्यादभीष्टफलदः कुजः ॥ ५ ॥ महाविभवदो भौमो भवगो भोगसौख्यदः । भूसुतो व्ययकृद्यातुर्द्वादशोऽर्थविनाशदः ॥ ६ ॥

---

१ न. °तः षष्ठो नि° ।

अथ बुधफलम् ।

सुखार्थकीर्तिदः सौम्यो जयदश्चोदये स्थितः । धनगो धनदश्चाद्रिः प्रयातुर्विजयप्रदः ॥ १ ॥ तृतीयगे बुधे कामाल्लँभेतोत्कटतामियात् । चतुर्थे शयनान्नाद्यविभवान्प्रददो बुधः ॥ २ ॥ पञ्चमे पुत्रवित्तर्धिं दत्त्वा विजयदो बुधः । शत्रूणां वश्यतां दद्यात्षष्ठे किंचिद्रुजं च वित् ॥ ३ ॥ पराङ्गना बुधो दद्यात्सप्तमस्थो धनं तथा । मृत्युगश्चन्द्रजो दद्यादायुरर्थं यशः श्रियम् ॥ ४ ॥ धर्मस्थोऽपि बुधो यातुर्धर्मायुःपुष्टिवृद्धिदः । ईप्सितार्थप्रदो यातुः कर्मगश्चन्द्रनन्दनः ॥ ५ ॥ विद्यार्थाप्तिमयत्नेन दद्यादायगतो बुधः । द्वादशे धनहा लुप्तो धनदश्चोदितो बुधः ॥ ६ ॥

अथ गुरुफलम् ।

लग्नगोऽतीव संपत्त्यै भवेज्जीवो जयाय च । द्वितीयो धनलाभाय भवेच्च श्रीविवृद्धये ॥१॥ तृतीयस्थो गुरुर्योधांस्तनुते चारिजं श्रमम् । राज्यसंमानदो जीवश्चतुर्थस्थो बलप्रदः ॥ २ ॥ यातुरीप्सितदो जीवः पञ्चमो राज्यवृद्धिदः । प्रयातुर्वशगं कुर्यादरातिं षष्ठगोऽङ्गिराः ॥३॥ सप्तमः शत्रुवित्तस्त्रीकीर्तिराष्ट्रप्रदो गुरुः । अष्टमस्थो गुरुर्यातुः प्राणहा धनहा भवेत् ॥ ४ ॥ नवमे धर्मकीर्त्यर्थराज्यमानप्रदो गुरुः । दशमस्थोऽर्थकीर्तिश्रीप्रदाताऽमरपूजितः ॥५॥ एकादशगतो जीवः प्रदद्यादखिलां श्रियम् । प्रयाणे देवपूज्यः स्याद्द्वादशे सुखदुःखदः ॥ ६ ॥

अथ शुक्रफलम् ।

लग्ने शुक्रो विलासस्त्रीपूर्वां दद्याच्छ्रियं भृशम् । द्वितीये भृगुजो दद्याद्यातुरर्थं श्रियं सुतान् ॥ १ ॥ तृतीयस्थे सिते याताऽन्वसीदति कदाचन । चतुर्थगः सितो दद्याद्बहूनर्थाञ्छ्रियं यशः ॥ २ ॥ पञ्चमे स्थानमानाद्यान्दद्यादर्थान्भृगोः सुतः । षष्ठगे शत्रवो यान्ति वश्यतां दुर्मदाः सिते ॥ ३ ॥ शुक्रे सप्तमगे याता स्वराज्यात्प्रच्युतो भवेत् । अष्टमस्थे सिते याता साधयेदीप्सितं द्रुतम् ॥ ४ ॥ पञ्चमे साधयेत्कामान्याता शुक्रे धनान्यपि । दशमस्थे भृगौ याता प्रभूतं धनमाप्नुयात् ॥ ५ ॥ एकादशे धनं दद्याद्यातुः शुक्रो गतो जयम् । द्वादशस्थः सितो दद्यादभीष्टं पुनराहरेत् ॥ ६ ॥

अथ शनिफलम् ।

वधं बन्धं रवेः सूनुर्यातुर्दद्याद्विलग्नगः । धनगो धनहानिं च शुभं कुर्याद्रवेः सुतः ॥ १ ॥ तृतीयगो रिपून्हन्याच्छनिः कुर्याद्धनादिकम् । चतुर्थगो विनाशाय बन्धूनां स्थाननाशनः ॥ २ ॥ पञ्चमेऽर्थविनाशाय गतो रविसुतो भवेत् । षष्ठ

षष्ठोऽर्को वाञ्छितं दद्याच्छत्रुनाशं करोति वै ॥३॥ सप्तमः स्त्रीविरोधं च कुर्याद्धर्मक्षयं रविः। मृत्युभावगतो दद्यान्नानारोगान्दिवाकरः ॥ ४ ॥ धर्महा नवमो यातुर्धनदश्च दिवाकरः ॥५॥ दशमोऽभिमतान्दद्यात्संमानं चैव भास्करः। लाभगो बहुलाभांश्च रत्नाद्यर्थान्ददेद्रविः। व्ययगो व्ययकृद्यातुरन्यायांश्च प्रयच्छति ॥६॥

---

अथ चन्द्रफलम्।

इन्दुर्लग्नगतो दद्याच्छोकं कलहमेव च। स्त्रीराज्यपुत्रधर्मार्थान्दद्यात्सोमो द्वितीयगः ॥ १ ॥ धनरत्नाङ्गना दद्याद्यातुरिन्दुस्तृतीयगः। बन्धुगो बन्धुदश्चन्द्रः कृशो बन्धुविनाशन ॥ २ ॥ पञ्चमोऽर्थप्रदश्चन्द्रः पुत्रशोककरः कृशः। षष्ठो मित्रान्रिपून्कुर्याद्दुःखितानपि शीतगुः ॥ ३ ॥ सप्तमो धनभूमिस्त्रीलाभदोऽणुर्विनाशकृत्। अष्टमे शोकदश्चन्द्रो ह्यपमृत्युं करोति वा ॥ ४ ॥ निहन्ति माशु धर्मेषु तनुते महतीं श्रियम्। दशमोऽञ्जोऽर्थहा क्षीणो वर्धनो राज्यवृद्धिदः ॥ ५ ॥ लाभे त्वैश्वर्यदश्चन्द्रः सख्यवित्तयशःप्रदः। क्लेशं वाऽर्थव्ययं कुर्याद्व्ययं द्वादशगः शशी ॥ ६ ॥ अपूर्णः शोकदश्चन्द्रो लग्ने क्षीणस्तथा रिपौ। कर्किगोऽजस्थितः पुष्टो निजदुष्टफलापहः ॥ ७ ॥ सूर्यो राजभयं करोति शशिना युक्तोऽर्थहानिं भृगुः स्थानभ्रंशकरो गुरुः शशिसुतः संतापदोषं महत्। मृत्युं सूर्यसुतो ददाति नियतं शस्त्रात्तथा भूसुतस्तस्माच्चन्द्रयुतिं विहाय मतिमान्यात्रां प्रकुर्यात्सदा ॥ ८ ॥

---

अथ भौमफलम्।

रुधिरो रुधिरात्सर्पाच्छस्त्राद्वा लग्नगो भयम्। कुरुतेऽथ द्वितीयस्थः सैन्यभेदं च भूमिजः ॥ १ ॥ तृतीये धनरत्नस्त्रीवस्त्राणि कुरुते कुजः। चतुर्थे बन्धुहानिः स्याच्छत्रुबाधा च भूमिजः ॥ २ ॥ शत्रुपीडा सुतस्थाने सुतापदच[1]लासुतः। शत्रूणां नाशदः षष्ठः शीघ्रं जयकरः कुजः ॥ ३ ॥ सप्तमोऽर्थक्षयं रोगान्करोति धरणीसुतः। बह्वर्थनाशरोगैश्च मृत्युदो मृत्युगः कुजः ॥ ४ ॥ धर्मगो धर्मविच्छेत्ता यात्रायां धरणीसुतः। दशमेऽतीव शस्तः स्यादभीष्टफलदः कुजः ॥ ५ ॥ महाविभवदो भौमो भवगो भोगसौख्यदः। भूसुतो व्ययगः कुर्यात्तुर्द्वादशोऽर्थविनाशदः ॥ ६ ॥

---

१ क. °तः षष्ठो नि°।

अथ बुधफलम् ।

सुखार्थकीर्तिदः सौम्यो जयदश्चोदये स्थितः । धनगो धनदश्चाऽद्रिः प्रयातुर्विजयप्रदः ॥ १ ॥ तृतीयगे बुधे कामाल्लिभेतोत्कटतामियात् । चतुर्थे शयनान्नाद्यविभवान्यददो बुधः ॥ २ ॥ पञ्चमे पुत्रवित्तर्द्धिं दत्त्वा विजयदो बुधः । शत्रूणां वध्यतां दद्यात्षष्ठे किंचिद्रुजं च वित् ॥ ३ ॥ वराङ्गना बुधो दद्यात्सप्तमस्थो धनं तथा । मृत्युगश्चन्द्रजो दद्यादायुरर्थं यशः श्रियम् ॥ ४ ॥ धर्मस्थोऽपि बुधो यातुर्धर्मायुःपुष्टिवृद्धिदः । ईप्सितार्थप्रदो यातुः कर्मगश्चन्द्रनन्दनः ॥ ५ ॥ विद्यार्थाप्तिप्रयत्नेन दद्यादायगतो बुधः । द्वादशे धनहा लुप्तो धनदश्चोदितो बुधः ॥ ६ ॥

अथ गुरुफलम् ।

लग्नगोऽतीव संपत्त्यै भवेज्जीवो जयाय च । द्वितीयो धनलाभाय भवेच्च श्रीविवृद्धये ॥१॥ तृतीयस्थो गुरुर्यातुस्तनुते चारिजं श्रमम् । राज्यसंमानदो जीवश्चतुर्थस्थो बलप्रदः ॥ २ ॥ यातुरीप्सितदो जीवः पञ्चमो राज्यवृद्धिदः । प्रयातुर्वैरिसर्गं कुर्यादराति पष्ठगोऽङ्गिराः ॥३॥ सप्तमः शत्रुवित्तस्त्रीकीर्तिराज्यप्रदो गुरुः । अष्टमस्थो गुरुर्यातुः प्राणहा धनहा भवेत् ॥ ४ ॥ नवमे धर्मकीर्त्यर्थराज्यमानप्रदो गुरुः । दशमस्थोऽर्थकीर्तिश्रीप्रदाताऽमरपूजितः ॥५॥ एकादशगतो जीवः प्रदद्यादखिलां श्रियम् । प्रयाणे देवपूज्यः स्याद्द्वादशे सुखदुःखदः ॥ ६ ॥

अथ शुक्रफलम् ।

लग्ने शुक्रो विलासस्त्रीपूर्वां दद्याच्छ्रियं भृशम् । द्वितीये भृगुजो दद्याद्यातुरर्थं श्रियं सुतान् ॥ १ ॥ तृतीयस्थे सिते याताऽन्त्रसीदति कदाचन । चतुर्थगः सितो दद्याद्बहूनर्थाञ्छ्रियं यशः ॥ २ ॥ पञ्चमे स्थानमानान्नान्दद्यादर्थान्भृगोः सुतः । षष्ठगे शत्रवो यान्ति वश्यतां दुर्मदाः सिते ॥ ३ ॥ शुक्रे सप्तमगे याता स्वराज्यात्प्रच्युतो भवेत् । अष्टमस्थे सिते याता साधयेदीप्सितं द्रुतम् ॥ ४ ॥ पञ्चमे साधयेत्कामान्याता शुक्रे धनान्यपि । दशमस्थे भृगौ याता प्रभूतं धनमाप्नुयात् ॥ ५ ॥ एकादशे धनं दद्याद्यातुः शुक्रो गतो जयम् । द्वादशस्थः सितो दद्यादभीष्टं पुनराहरेत् ॥ ६ ॥

अथ शनिफलम् ।

वधं बन्धं रवेः सूनुर्यातुर्दद्याद्विलग्नगः । धनगो धनहानिं च शुचं कुर्याद्रवेः सुतः ॥ १ ॥ तृतीयगो रिपून्हन्याच्छनिः कुर्याद्धनादिकम् । चतुर्थगो विनाशाय बन्धूनां स्थाननाशनः ॥ २ ॥ पञ्चमेऽर्थविनाशाय गतो रविसुतो भवेत् । षष्ठ

शत्रुविनाशाय भवेद्यातुरिनात्मजः ॥ ३ ॥ उत्साहभङ्गदः कामे स्त्रीप्रसादकरो यमः । विपाग्निशस्त्रजं कोपं नेत्ररोगं च मृत्युगः ॥ ४ ॥ कुर्यान्नवमगः सौरिः सुखधर्मविनाशनम् । न निवृत्तिकरः खस्थो यमः कर्म विनाशयेत् ॥ ५ ॥ एकादशगतो मन्दो यातुर्विजयवित्तदः । द्वादशेऽनर्थदो यातुः शीघ्रं दिनकरात्मजः ॥ ६ ॥

---

अथ राहुकेतुफलम् ।

राहुकेत्वोर्भावफलं शनिवद्दशमं विना । खस्थौ तौ शुभदौ ज्ञेयौ षष्ठे शीघ्रफलप्रदौ ॥ १ ॥ श्रीपतिः-त्रिकर्मायोपगो राहुः प्रयाणे सत्फलप्रदः । केतुर्यातव्यकाष्ठायां संनताग्रशुभप्रदः ॥ २ ॥ बृहस्पतिः-एवं भावफलं प्रोक्तं यातुर्यात्रोदयर्क्षतः । अनर्थप्रोक्तभावेऽपि किंचिद्दद्युः शुभग्रहाः ॥ ३ ॥ तानद्य संप्रवक्ष्यामि यथा प्रोक्तं स्वयंभुवा । शुभवर्गे शुभैर्दृष्टा मित्रदृष्टाः शुभप्रदाः ॥ ४ ॥ स्वकीयाष्टकवर्गे ये बहुलक्षगता ग्रहाः । ते चाऽप्यशुभभावस्था अपि शोभनदाः स्मृताः ॥ ५ । यातुरायार्थपुत्रर्क्षत्रिधर्मदशमस्थितः । शुभदः शुभदांशेषु भवनेषु निशाकरः ॥ ६॥ भृगुः-इष्टैः पञ्चभिरिष्टं स्यात्तथाऽनिष्टैरशोभनम् । स्थानादिबलसंपन्नैश्चतुर्भिरपि खेचरैः ॥ ७ ॥ रत्नमालायाम्-अस्तं गता ग्रहजिता रिपुदृष्टदेहा नीचस्थिता विरुचयोऽरिगृहं प्रयाताः । रूक्षाणवश्च किमपि स्वफलं विलग्ने दातुं क्षमाः खलु भवन्ति न खेचरेन्द्राः ॥ ८ ॥

इति यात्रायां पृथग्भावफलम् ।

---

## अथ यात्रायां समुदायेन पृथक्फलानि ।

राहुभौमदिवाकरेन्दुरविजाः संप्रस्थिता लग्नगाः क्षुच्छस्त्राग्निविपज्वरारिजभयं रोगांश्च नानाविधान् । जीवः सोमसुतस्तथैव भृगुजो यात्रोदयस्थो नृणां सा यात्रा धनधान्यभोगसुखदा पुण्यैः कृतैर्लभ्यते ॥ १ ॥ कोशस्थाने नराणामसुरगुरुबुधौ धर्मकामार्थलाभं पुत्रोत्पत्तिं च जीवो धनसुखमतुलं शत्रुपक्षक्षयं च । मन्दो बन्धं च दीर्घं क्षितिसुतमरणं नागहानिं च भानुश्चन्द्रः कुर्यान्नरेन्द्रं प्रियजनसहितं मित्रसंयुक्तभूतम् ॥ २ ॥ प्रस्थाने भूमिपस्य क्षितिसुतसहितो भानुजो भानुरेवं शुक्रश्चन्द्रात्मजो वा सुरगुरुरथवा शीतरश्मिश्च राहुः । भ्रातृस्थाने गताः स्युर्नरगजतुरगान्प्राप्य सर्वार्थसिद्धिं जित्वा शत्रूनशेषान्वितरति च सुखं गोकुले गोपवेषः ॥ ३ ॥ बन्धुस्थानगतो ददाति विपुलान्भोगान्भृगोरात्मजो जीवः शत्रुविनाशमृच्छति महालाभं करोतीन्दुजः । हानिं बन्धुगतः करोति रविजो बुद्धि-

---

१ ख. ९ 'हृत्स्थिताङ्गाभिशोभाष्टाभहामयुभ.'स्थ' । २ क. ख. 'संयुक्त' ।

क्षयं चन्द्रमा राहुर्भूमिसुतस्तथोष्णकिरणः कुर्वन्ति दुःखं महत् ॥ ४ ॥ कुर्याद्-र्थस्य सिद्धिं सुतभवनगतो वाक्पतिः शत्रुनाशं शुक्रः शीतांशुपुत्रः सुरपतिसदृशं युद्धकाले करोति । सूर्यश्चन्द्रश्च भौमो दिनकरतनयः सिंहिकानन्दनाख्यः सर्वे ते पञ्चमस्था विविधभयकराः पार्थिवानां रणे च ॥ ५ ॥ शत्रुस्थाने नराणां दिन-करतनयो भूमिपुत्रोऽथवाऽर्कः शीतांशुर्दैत्यमन्त्री रजनिकरसुतः सैंहिकेयोऽथ जीवः । कुर्वन्त्येवार्थलाभं परबलमथनं सिध्यते सर्वकार्यमित्येवं भूमिपानां भवति च गमने धर्मकामार्थसिद्धिः ॥ ६ ॥ नाशं शुक्रदिवाकरार्कतनया राहु-स्तथा भूमिजः क्षिप्रं शत्रुवशं नयन्ति पथिकं स्थाने स्थिताः सप्तमे । सौम्यो मित्रसमागमं सुरगुरुः स्त्रीवित्तलाभं नृणां चन्द्रोऽभीष्टसुखं ददाति च धनं यात्रासु जामित्रगः ॥ ७ ॥ आरोग्यं चन्द्रपुत्रो जनयति भृगुजः सर्वकार्यार्थसिद्धिं जीवो रक्षत्यशेषं सुतमिव जननी यातृकं नैधनस्थः । चन्द्रार्कौ द्वौ तमो वा जनयति नियतं शत्रुपक्षस्य वृद्धिं भौमश्चार्कात्मजो वा जनयति सततं तस्कराणां भयं च ॥ ८ ॥ शुक्रोऽतिसौख्यं नवमो बुधश्च जीवो यशःश्रीधनधान्यलाभम् । चन्द्रार्कसौरा नवमाः सभौमाः कुर्वन्त्यनेकान्पुरुषस्य दोषान् ॥ ९ ॥ कर्मस्थाने स्थितोऽर्कः प्रचुरभयकरः पुष्टिदः शीतरश्मिर्जीवः सङ्ग्रामकाले भवति शुभकरः सर्वकार्यप्रदो ज्ञः । शुक्रः साम्राज्यलक्ष्मीं वितरति च महीनन्दनः प्राज्यकीर्तिं राहुर्वैरानुवृत्तिं जनयति सततं दीर्घरोगं तथाऽऽर्किः ॥ १० ॥ शशिबुध-गुरुशुक्राश्चार्कराह्वार्किभौमा व्रजति हि नरनाथे क्षिप्रमेकादशस्थाः । हृतमिह रिपुवर्गं घ्नन्ति नूनं भयातुर्विचरतु मृगराजो यूथमध्ये यथा सः ॥ ११ ॥ रवि-सुतकुजसूर्या बुद्धिनाशं नराणां जनयति कुमुदेशो व्याधिपीडां तमश्च । सुरगुरु-बुधशुक्रा द्वादशस्था नराणां नियतमरिसमूहं कुर्वते नष्टवीर्यम् ॥ १२ ॥

इति यात्रायां समुदायेन पृथक्फलानि ।

---

## अथ यात्रायां लग्नांशफलम् ।

योगयात्रायां–दिनकृद्दिवसे तथांऽशके यात्रालग्नगतेऽथवा रवौ । संतापयति स्मरातुरं वेश्येवार्थविवर्जितं नरम् ॥ १ ॥ उदये शशिनोंऽशकेऽह्नि वा भवति गतो नचिरेण दुर्मनाः । प्रमदामिव यातयौवनां रत्यर्थं समवाप्य कर्कशाम् ॥ २ ॥ भौमोदयेंऽशेऽह्नि वाऽस्य यात्रा करोति वन्धं धनमर्थनाशम् । संसे-विता पापपराङ्मुखेन मनोभवार्तेन पराङ्गनेव ॥ ३ ॥ बुधस्य लग्नांशकवासरेषु

१ घ. 'वो जयश्री' ।

यात्रा नरं प्रीणयति प्रकामम् । मानानुरक्ता प्रमदाङ्गनेव विदग्धचेष्टामदनाभितप्ता ॥ ४ ॥ गुरोर्विलग्नांशदिनेषु यात्रा हितानुबन्धेप्सितकामदा च । जायेव भक्ता मनसोऽनुकूला कुलाभिवृद्ध्यै रतिदा हिता च ॥ ५ ॥ यात्रा भृगोरंशदिनोदयेषु प्रीणाति कामैर्विविधैर्यियासुम् । विलासिनी कामवशेन यातं भोगैरनेकैर्मदनातुरेव ॥ ६ ॥ द्युलग्नभागेषु शनैश्च यात्रा प्राणच्छिदादीन्प्रचिनोति दोषान् । अन्यत्र सक्ता वनितेव मोहाभिषेविता मन्मथमोहितेन ॥ ७ ॥

इति यात्रायां लग्नांशफलम् ।

## अथ यात्रायां प्रतिशुक्रविचारः ।

ज्योतिष्प्रकाशे—न कुर्यात्संमुखे शुक्रे यात्रां राजा कदाचन । करोति चेत्तदा नूनं बहुधाऽर्थक्षयो भवेत् ॥ १ ॥ रत्नमालायाम्—उदयति दिशि यस्यां याति यत्र भ्रमाद्वा विचरति च भचक्रे येषु दिग्द्वारभेषु । त्रिविधमिह सितस्य प्रोच्यते संमुखत्वं मुनिभिरुदय एव त्यज्यते तत्र यस्मात् ॥ २ ॥ वसिष्ठः—प्रतिशुक्रं प्रतिबुधं प्रतिभौमे गतो नृपः । बलेन शक्रतुल्योऽपि हतसैन्यो निवर्तते ॥ ३ ॥ संमुखे चन्द्रजे यत्र मार्गमध्योदिते यदि । यावदस्तंगते तस्मिंस्तावत्तत्रैव संवसेत् ॥ ४ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—संमुखं वर्जयेच्छुक्रं विदेशगमने सदा । प्रतिग्रामप्रवेशे च कुलदेव्यर्चने तथा ॥ ५ ॥ संमुखे भृगुजे बालापत्याया म्रियतेऽर्भकम् । गर्भस्रावस्तु गर्भिण्या नवोढायाश्च वन्ध्यता ॥ ६ ॥ वामे शुक्रे नवोढायाः सुख हानिश्च दक्षिणे । धनं धान्यं च पृष्ठस्थे सर्वनाशः पुरःस्थिते ॥ ७ ॥

इति यात्रायां प्रतिशुक्रविचारः ।

## अथ प्रतिशुक्रापवादः ।

नवोढायास्तु वन्ध्यत्वं यदुक्तं संमुखे भृगौ । तदत्र विबुधैर्ज्ञेयं केवलं तु द्विरागमे ॥१॥ लल्ल—स्वभवनपुरप्रवेशे देशानां विग्रहे तथोद्वाहे । नववध्वा गृहगमने प्रतिशुक्रविचारणा नास्ति ॥ २ ॥ एकग्रामे पुरे वाऽपि दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे । उद्वाहे तीर्थयात्रायां प्रतिशुक्रो न विद्यते ॥ ३ ॥ भीमपराक्रमे—एकग्रामे चतुःशाले दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे । स्वामिना नीयमानानां प्रतिशुक्रो न विद्यते ॥ ४ ॥ मत्स्यपुराणे—चतुःशालं चतुर्द्वारमलिन्दैः सर्वतो युतम् । नाम्ना तत्सर्वतोभद्रं न तत्र प्रतिशुक्रता ॥ ५ ॥ वसिष्ठः—कश्यपेषु वसिष्ठेषु भृग्वत्र्यङ्गिरसेषु च । भरद्वाजेषु वात्स्येषु प्रतिशुक्रो न विद्यते ॥ ६ ॥ गर्गः—पौष्णाद्विवह्निभाद्यङ्घ्रौ यावत्तिष्ठति चन्द्रमाः । तावदन्धो भवेच्छुक्रः प्रवेशे निर्गमे शुभे ॥ ७ ॥ रेवत्याद्य-

ग्निपादे च यावत्तिष्ठति चन्द्रमाः । तावच्छुक्रो भवेदन्धः संमुखं गमनं शुभम् ॥ ८ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—अत्युत्सुकेषु यावत्पाकपालस्थो भृगुर्भवेत् । तावत्पाशिदिशं गच्छेत्प्राचीं प्रत्यक्स्थितस्तथा ॥ ९ ॥

इति प्रतिशुक्रापवादः ।

## अथ शुक्रस्तोत्रम् ।

वसिष्ठः—दैत्यमन्त्री दिवादर्शी चोशना भार्गवः कविः । श्वेतोऽथ मण्डली काव्यो विधिमान्निर्नेऽतिस्तथा ॥ १ ॥ एतानि भृगुनामानि यः कीर्तयति नित्यशः । प्रतिशुक्रो न तस्यास्ति लक्ष्मीमायुश्च विन्दति ॥ २ ॥ महाभारते—नमस्ते सर्वलोकेश नमस्ते भृगुनन्दन । कवे सर्वार्थसिद्ध्यर्थं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥ ३ ॥ दत्त्वेत्यर्घ्यं प्रयत्नेन प्रार्थयेच्चैव भक्तितः । अनेनैव च मन्त्रेण प्राञ्जलिः प्रणतः स्थितः ॥ ४ ॥

इति शुक्रस्तोत्रम् ।

## अथ प्रतिशुक्रपूजाविधानम् ।

वसिष्ठः—इदमर्थमनुक्तत्वाच्छास्त्रे पैतामहे क्वचित् । तस्मात्संमुखदोषोऽस्ति प्रतिशुक्रस्य सर्वदा ॥ १ ॥ तद्दोषशमनार्थाय शान्तिं वक्ष्ये समासतः । कृत्वा शान्तिं प्रयत्नेन पश्चात्सर्वं समाचरेत् ॥ २ ॥ प्रतिशुक्रे प्रदातव्या धेनवो हेमसंयुताः । अनड्वाहं कुजे दद्याद्धेमवस्त्रसमन्वितम् ॥३॥ कृष्णां गां सूर्यतनये सुवर्णं लोहमुत्तमम् । प्रभूतं काञ्चनं दद्याद्यायात्सोमसुतं प्रति ॥ ४ ॥ पट्टवस्त्रयुगं जीवे दद्यात्काञ्चनसंयुतम् । पूजिता गच्छतां कुर्युः संमुखा अपि सत्फलम् ॥ ५ ॥ भृगोर्लग्ने भृगोर्वर्गे भृगुवारे भृगूदये । उपोष्य भृगुवारेऽपि यावच्छुक्रोदयं व्रती ॥६॥ राजतेन सुशुद्धेन कारयेत्प्रतिमां भृगोः । लिखेदष्टदलं पद्मं कांस्यपात्रे च तण्डुलैः ॥ ७ ॥ शुक्लसूक्ष्माम्बरैर्वेष्ट्य प्रतिमां तत्र पूजयेत् । शुक्लपुष्पाक्षतैर्गन्धैर्मुक्ताहारैर्विचित्रितैः ॥ ८ ॥ उपचाराणि कार्याणि शुक्रं ते अन्यादित्यृचा । तन्मन्त्रेण जपं कुर्यात्सम्यगष्टोत्तरं शतम् ॥ ९ ॥ कर्मान्तेऽनेन मन्त्रेण भक्त्या चार्घ्यं प्रदापयेत् । श्वेतगन्धाक्षतैः पुष्पैः क्षीरमिश्रेण वारिणा ॥ १० ॥ त्वत्पूजयाऽनया शुक्र ते संमुखसमुद्भवम् । दोषं विनाशय क्षिप्रं रक्ष मां तेजसां निधे ॥ ११ ॥ इति प्रार्थ्य प्रयत्नेन प्रतिमा भूषणान्विता । दैवज्ञायैव दातव्या

श्वेताश्वसहितेन च ॥१२॥ शिष्टेभ्यो दक्षिणां दद्याद्यथाविचानुसारतः । ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्स्वयं भुञ्जीत बन्धुभिः ॥ १३ ॥ एवं यः कुरुते सम्यक्प्रतिशुक्रप्रपूजनम् । न तस्य संमुखो दोषो विजयी चार्थवान्भवेत् ॥ १४ ॥ इतरेषां ग्रहाणां च पूजां कृत्वा प्रयत्नतः । तत्तत्संमुखजो दोषस्तत्क्षणादेव नश्यति ॥ १५ ॥

इति प्रतिशुक्रपूजाविधानम् ।

---

## अथ प्रतिशुक्रदानम् ।

सितमश्वं सितं वस्त्रं तारमौक्तिकहेमयुक् । दत्त्वा द्विजातये यायात्प्रतिशुक्रेऽप्यशङ्कितः ॥ १ ॥ विधाय राजतं शुक्रं शुचिमुक्ताफलान्वितम् । महाश्वेन समायुक्तं सामगाय निवेदयेत् ॥ २ ॥ एवं शुक्रोदये कुर्वन्यात्रादिषु च भारत । सर्वान्कामानवाप्नोति विष्णुलोके महीयते ॥ ३ ॥ अतिसंकटे विधानं केषांचिन्मते—वृषात्पञ्चकमादाय स्वसीमायां ततो व्रजेत् । प्रतिशुक्रेऽपि संपूज्य सानुकूले जले क्षिपेत् ॥ ४ ॥

इति प्रतिशुक्रदानम् ।

---

## अथ योगप्रशंसा ।

बृहस्पतिः—एवं कथितकालोऽयं दुर्लभो यातुरञ्जसा । स्वल्पकालो यतस्तस्माद्योगान्वक्ष्याम्यभीष्टदान् ॥ १ ॥ नारदः—पञ्चाङ्गशुद्धिरहिते दिवसेऽपि फलप्रदा । यात्रा योगैर्विचित्रांस्तान्योगान्वक्ष्येऽधुना ततः ॥ २ ॥ रत्नावल्याम्—आत्ययिककार्ययाने दैवेन निपीडिते च यातव्यम् । केवलविलग्नयोगादपि याता सिद्धिमाप्नोति ॥३॥ श्रीपतिः—तिथौ क्षणे भे करणे च वारे योगे विलग्ने हिमगौ नृपाणाम् । पापेऽपि यात्रा शुभदाऽत्र योगैर्यतस्ततस्तान्क्रियतोऽपि वक्ष्ये ॥ ४ ॥ लल्लः—यातव्ये व्यसनगते हानिप्रदे च भूपतिस्त्वरया । लग्नैरभीष्टफलदैर्व्रजति तिथौ भेषु चरमेषु ॥ ५ ॥ दैवज्ञवल्लभे—सुधांशुतिथ्युद्गमवारधिष्ण्यक्षणेषु पापेष्वपि भूपतीनाम् । अभीष्टसिद्धौ कथयामि यात्रां प्रयोजनेष्वात्ययिकेषु सत्सु ॥ ६ ॥ ज्योतिःसागरे—योगैः फलं क्षितीशानां द्विजानां भगुणैर्भवेत् । शकुनैश्चारचोराणामितरेषां मुहूर्ततः ॥७॥

---

१ घ. °श्वं श्व ।

माठरः—योगश्च मोक्तकालश्च याने तुल्यफलावुभौ । योगो वा प्राप्तकालो वा न्यूनाङ्गो न फलप्रदः ॥ ८ ॥ मुहूर्तवल्लभे—यथा योगाद्विषं पथ्यं मध्वाज्यमुदितं भवेत् । तथा योगात्फलं दद्युस्त्यक्त्वा खेटाः स्वकं फलम् ॥ ९ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—निन्द्यातिथ्यर्क्षवारेषु पातवैधृतिविष्टिषु । ग्रहयोगं प्रशंसन्ति वसिष्ठात्रिपराशराः ॥१०॥ तिथ्याद्यावेव यत्साध्यं तद्योगेन प्रसिध्यति । अतः सर्वप्रयत्नेन ग्रहयोगान्विचिन्तयेत् ॥ ११ ॥ तस्माद्विवाहयात्रायामाधाने जातके तथा । ग्रहयोगात्फलं वाच्यं सर्वमेकत्र दुर्लभम् ॥ १२ ॥ निषेकप्रसवप्रश्नविवाहगमनादिषु । ग्रहयोगोद्भवं सत्यं फलमन्यत्र पुष्कलम् ॥ १३ ॥ पक्षाश्वमेधयात्रायां—न तिथिं न च नक्षत्रं न योगं नेन्दवं बलम् । न तारां वैधृतिं विष्टिं व्यतीपातादिकं तथा ॥ १४ ॥ योगमेकं प्रशंसन्ति वसिष्ठात्रिपराशराः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन याने योगान्विलोकयेत् ॥ १५ ॥ वसिष्ठः—उक्त्वा साधारणां यात्रां युद्धयात्रां ब्रवीमि ताम् । व्रजन्ति ये नृपाः सूक्ष्मलग्ने ते जयिनः सदा ॥ १६ ॥

इति योगप्रशंसा ।

---

## अथ यात्रायां योगाः ।

रत्नमालायाम्—एकेनापि ज्ञा(?)स्फुजिद्वाक्पतीनां योगः प्रोक्तः केन्द्रधर्मात्मजेषु । द्वाभ्यामेषां चाधियोगाभिधानो नूनं सर्वैरेव योगाधियोगः ॥ १ ॥ योगेन ये नृपतयोऽरिपुरं व्रजन्ति क्षेमेण ते गमनमागमनं च कुर्युः । क्षेमं यशो रिपुविनाशमथाधियोगे योगाधियोगगमने च जयेद्धरित्रीम् ॥ २ ॥ योगयात्रायां—सौम्यैश्च पापैश्च चतुष्टयस्थैः कृच्छ्रेण संसिद्धिमुपैति नूनम् । प्रयाति यातप्रतियातचक्रैर्नदीव धात्रीधरकन्धरेषु ॥ ३ ॥ रत्नमालायाम्—उदयादिनभस्तलगैर्दिनकृत्प्रमशीतकरैः । न भवन्त्यपरयोऽभिमुखा हरिणा इव केसरिणः ॥ ४ ॥ रत्नमालायां—यमज्ञशुक्रेज्यमहीसुतेषु त्रिबन्धुलग्नास्तारिपुस्थितेषु । विलीयते वैरिचमू रणाग्रे लाक्षेव वह्नौ नृपतेर्गतस्य ॥ ५ ॥ शशिनि चतुर्थे सविदि सितेऽस्ते जयति गतोऽरीन्हरिरिव युद्धे ॥ ६ ॥ दैवज्ञवल्लभे—ज्ञे सितेन सहितेऽस्तगे विधौ बन्धुगे प्रव्रसता महीभुजा । संगरेण रिपुणा विकीर्यते तूलराशिरिव मातरिश्वना ॥७॥ लग्नेऽर्के सप्तमे चन्द्रे वित्ते सौम्ये गतो नृपः । सद्योऽरिपृतनां हन्ति पूतनामिव

---

१ घ. °चातियो° । २ घ. °गातियो° ।

केशवः ॥ ८ ॥ योगयात्रायां—शुक्रवाक्पतिविदां धन एकः सप्तमे शशिनि लग्नगतेऽर्के । निर्गतो नरपतिर्न कृतार्थो वैनतेयवदरीन्विनिगृह्य ॥ ९ ॥ रत्नमालाया–त्रिकोणकेन्द्रेषु भवन्ति सौम्या दुश्चिक्यलाभारिगताश्च पापाः । यस्य प्रयाणे तमुपैति रागाद्विपक्षलक्ष्मीरभिसारिकेव ॥ १० ॥ गुरुर्लग्ने रविः षष्ठे रन्ध्रे नेन्दुश्च गच्छतः । यस्य तस्यारिसेनाग्रे खलमैत्रीव न स्थिता ॥ ११ ॥ लल्लः–गुरुरुदये रिपुराशिगतोऽर्को यदि निधने न च शीतमयूखः । भवति गतोऽत्र वशी च नरेन्द्रो रिपुवनिताननतामरसानाम् ॥ १२ ॥ श्रीपतिः–त्र्यायारिपु यमारौ चेच्छक्तिभाजः शुभग्रहाः । प्रयाणे नृपतेर्यस्य हस्तस्था तस्य मेदिनी ॥ १३ ॥ रत्नकोशे – मूर्तिवित्तसहजेषु संस्थिताः शुक्रचन्द्रसुततिग्मरश्मयः । यस्य यानसमये रणानले तस्य यान्ति शलभा इवारयः ॥ १४ ॥ रत्नमालायां—प्रयाति यो विलग्नगे गुरौ मृतिस्थिते विधौ । सितेऽरिगे स शास्त्यरीन्दिवस्पतिर्यथा सुरान् ॥ १५ ॥ दैवज्ञवल्लभे–गुरौ विलग्ने भृगुजेऽस्तसंस्थे चन्द्रेऽष्टमे हन्ति गतोऽरिसेनाम् । वृष्टिं यथा दक्षिणमार्गचारी ह्रस्वो यथा रूक्षतनुश्च शुक्रः ॥ १६ ॥ बृहद्यात्रायां–चन्द्रजे कविद्युते सुखस्थिते कामगे शशिनि भूपतिर्गतः । घातयत्यरिबलं रणाङ्गणे तोयवेग इव सैकतं बलात् ॥ १७ ॥ दैवज्ञवल्लभे-दृष्टे शुभैस्तनुनभोहिबुकारिगे ज्ञे त्यक्तव्ययस्मरतनुष्वशुभेषु याता । शौर्योत्थकीर्तिसुधया भुवनालयस्य दिग्भित्तिचक्रमखिलं धवली करोति ॥१८॥ रत्नमालायां–एकान्तरस्थे भृगुजात्कुजाद्वा सौम्ये स्थिते सूर्यसुताद्गुरोर्वा । प्रध्वस्यतेऽरिर्न चिरोद्धतस्य वेपाधिको भृत्य इवेश्वरस्य ॥१९॥ श्रीपतिः–मध्यगे शशिनि सौम्ययुक्तयोर्बन्धुवर्तिनि च भूपतिर्गतः । वासवस्य ककुभं यमस्य वा वासवान्तक इव क्षमो भवेत् ॥ २० ॥ यात्राशिरोमणौ-यो याति जीवे तनुगे महीशः क्रूरैः स्थितैर्योन्यथवाऽऽयसंस्थितैः । तस्याग्रतः संयति वैरिसेना प्रीतिः खलानामिव न स्थिरा स्यात् ॥ २१ ॥ लल्लः-त्रिषण्णवान्त्येशबली शशाङ्कश्चान्द्रिर्बली यस्य गुरुश्च केन्द्रे । तस्यारियोषाभरणैः प्रियाणि प्रियाप्रियाणां जनयन्ति सैन्ये ॥ २२ ॥ राजमार्तण्डे–त्र्यायारिदुश्चिक्यगतौ यमारौ बलान्विता भार्गवजीवसौम्याः । यस्य प्रयाणे विलयं प्रयान्ति तस्य द्विपः सत्त्वरसो यथाऽप्सु ॥ २३ ॥ फलप्रदीपे–लाभविक्रमसुखस्थिते कवौ कण्टकस्थगुरुणा निरीक्षिते । घूनरन्ध्रनववर्जितैः खलैः स्याद्गतोऽभिमतसिद्धिभाङ्नृपः ॥ २४ ॥ ज्योतिःसागरे–सौम्यग्रहैः केन्द्रतपःसुखस्थैः क्रूर-

---

१ प. 'प्र चेन्दु' ।

खिलाभारिगतेगेता ये । कोपानलः शान्तिमुपैति तेषां विरोधिनारीनयनाम्बुपातैः ॥ २५ ॥ योगयात्रायाम्—एकोऽपि जीवार्ककुजार्कजानां स्वोच्चे विलग्ने स्वगृहे यदीन्दुः । यातस्य यान्त्यत्र परे प्रणाशं महाकुलानीव कुटुम्बभेदैः ॥२६॥ रत्नावल्यां—लग्नाच्चतुर्थो बलवाञ्छशाङ्को योगाद्विना चन्द्रबलेन याता । लब्ध्वाऽपि पृथ्वीं बहुरत्नपूर्णां क्षिप्रं क्षयं याति बली शशाङ्कः ॥ २७ ॥ पापास्तृतीये हिबुके सितज्ञौ जीवो विलग्ने मृगलाञ्छनोऽस्ति । यस्योद्गमे तस्य बलं रिपूणां यथा कृतघ्नेष्विव याति नाशम् ॥ २८ ॥ वराहः—चन्द्रेऽस्तगे देवगुरौ विलग्ने ज्ञशुक्रयोः कर्मणि लाभगेऽर्के । सौरारयोर्भ्रातृगमोश्च याता नृपः स्वभृत्यानिव शास्ति शत्रून् ॥ २९ ॥ राजमार्तण्डे—रविकुजयुतेऽरिभे गतानां जलसहजोपगतैः सितार्कनीवैः । परबलमुपयाति नाशमाशु श्रुतमधनस्य कुटुम्बचिन्तयेव ॥ ३० ॥ योगयात्रायां-स्वोच्चोपगैर्जीवकुजार्कजार्केरेभिस्त्रिभिर्वा कथितैकलग्ने । राज्ञः प्रणाशं समुपैति शत्रुः सौख्यं द्विभार्यस्य यथाऽधनस्य ॥ ३१ ॥ योगार्णवे—लग्नायधर्मानुजखारिगेषु शुक्रेन्दुजीवार्ककुजार्कजेषु । सार्केन्दुजे चारिबलं प्रयाति कलत्रहीनालयवद्विनाशम् ॥ ३२ ॥ योगयात्रायां—गुरौ विलग्ने यदि वा शशाङ्के षष्ठे रवौ कर्मगतेऽर्कपुत्रे । सितज्ञयोर्बन्धुसुतस्थयोश्च यात्रा जनित्रीव हितानि धत्ते ॥ ३३ ॥ परया गिरा लग्नगते च शेषैरेकादशार्थोपगतैर्यियासोः । विद्रायते शत्रुबलं समन्ताद्धर्मो यथा हेतुशतैर्युगेऽन्त्ये ॥ ३४ ॥ सूर्यादयोऽरिमदनाम्बरशत्रुलग्नबन्धायगाः सुरगुरोर्दिवसश्च यस्य । यानेऽरिसैन्यमुपगच्छति तस्य नाशं दुष्टप्रतिग्रहवशादिव तीर्थपुण्यम् ॥ ३५ ॥ ऋक्षे गुरुज्ञौ बुधभार्गवौ वा यत्र प्रविष्टौ युगपत्समेतौ । अर्थानवाप्नोति यथा विचित्राञ्छात्रः सुकामान्गुरुपूजयेव ॥ ३६ ॥ वराहः—नक्षत्रमेकं युगपत्प्रविष्टौ यदा धरित्रीतनयामरेज्यौ । कुर्यात्तदन्तं द्विषतां बलानां यथैनसां विप्र अयाच्यवृत्त्या ॥ ३७ ॥ योगयात्रायां—सिंहाजतौलिमिथुना मृगकर्कटौ च स्वेशान्विता भवति यस्य शनिश्च लाभे । तत्सैनिकाः परबलं क्षपयन्ति यातुर्मूर्खस्य वित्तमिव चारणचाटुदक्षाः ॥ ३८ ॥ शुक्रांशकादूर्ध्वमधः स्थिते बुधे यमारयोस्तत्र गतस्य भूपतेः । प्रयाति नाशं समरे द्विषां बलं यथाऽर्थिभावोपगतस्य गौरवम् ॥ ३९ ॥ ऌल्लः—क्षितितनययुतान्नवांशकाद्यदि दशमे भृगुजोऽथवा गुरुः । शतगुणमपि हन्त्यरेर्बलं विषमिव कायमसत्पथं गतम् ॥४०॥ बृहस्पतिः—लग्ने केन्द्रे गुरौ याते चाऽऽपोक्लिमे निशाकरे । शुक्रे कर्मगते योगो यात्रायां कार्यसिद्धिकृत् ॥ ४१ ॥ बल्युक्ते गुरौ शुक्रे त्वथवा लग्नकेन्द्रगे । निशाकरोदये यातुर्यात्रायोगोऽयमुत्तमः ॥ ४२ ॥ तृतीयेऽर्के गुरौ लग्ने रिपौ वारे यमेऽपि वा । हिबुकस्थे सुते ज्ञे वा खेऽब्जे

यात्राऽर्थलाभदा ॥ ४३ ॥ आयारिभ्रातृलग्नस्था अब्जारार्केन्द्रमन्त्रिणः । क्रमात्सितेऽनुकूले च यात्रा सर्वार्थसिद्धिदा ॥ ४४ ॥ लग्ने वा सप्तमे चन्द्रे जीवज्ञभृगुबोधने । यदि स्थिता शुभा यात्रा यातुरिष्टार्थसिद्धिदा ॥ ४५ ॥ त्रिषण्नवान्त्यगे चन्द्रे विवले सवले बुधे । गुरौ केन्द्रे तदा याता श्रियमायुश्च विन्दति ॥ ४६ ॥ कुजजीवार्कशुक्रज्ञास्त्रिसुतार्थाष्टसप्तगाः । यदि यात्रा [१]शुभा यातुः सर्वसंपत्समृद्धिदा ॥ ४७ ॥ * लग्नत्रितोयगा जीवरविशुक्राः क्रमादिमे । कुजो यदि यमो वाऽपि यात्रायोगः शुभावहः ॥४८॥ अर्कवर्ज्या ग्रहाः सर्वे पञ्चराशौ यदि स्थिताः । निरन्तरग्रहैर्योगो यात्रायां स्वार्थसिद्धिदः ॥ ४९ ॥ एकान्तरे ग्रहाः सर्वे षड्राशिषु यदि स्थिताः । शुक्रश्च पृष्ठतो यातुर्यात्रा सर्वार्थदा भवेत् ॥ ५० ॥ चन्द्रे ज्ञसितयोर्मध्ये जलगे लग्नगेऽपि वा । प्रयाता श्रियमाप्नोति जित्वाऽरीन्सवलानपि ॥५१॥ शुक्रज्ञौ जलगौ चन्द्रः स्मरगो यदि गच्छति । यात्राऽपि शुभदा लग्नं यदि पश्येत्सुरार्चितः ॥ ५२ ॥ एकान्तरगतौ भौमामरेज्यौ केन्द्रगौ यदा । तदा यातुः शुभा यात्रा लग्ने शुभदृशा युते ॥ ५३ ॥ + यदा सितगुरू तारामेकां यातौ तदा गतः । अभिप्रेतमवाप्याऽऽशु सुखी यायात्स्वमन्दिरम् ॥५४॥ बुधजीवौ ज्ञशुक्रौ वा तारामेकां गतौ यदा । तदाऽभ्युपैति क्षेमेण स्वगृहं प्राप्य चेप्सितान् ॥ ५५ ॥ मन्दारार्कामराचार्येष्वेकः स्वोच्चे तु लग्नगः । कर्कटस्थे निशानाथे यात्रा नृणां फलप्रदा ॥ ५६ ॥ चन्द्रात्स्मरारिरन्ध्रेषु शुभा यदि गता ग्रहाः । यातुर्यात्रा शुभा राज्ञो रिपुघ्नी विजयावहा ॥ ५७ ॥ चन्द्रस्य द्वादशे कश्चिद्रविवर्जं ग्रहः शुभः । द्वितीये चोभयत्रापि यात्रायोगास्त्रयः शुभाः ॥ ५८ ॥ अङ्गिराः—लग्नचन्द्रर्क्षयोः षष्ठराशीशौ यदि लग्नगौ । तदा नाऽऽगमनं नृणां तुल्यं स्याद्विषभक्षणैः ॥ ५९ ॥ नारदः—व्यापारशत्रुमूर्तिस्थैश्चन्द्रमन्ददिवाकरैः । रणे गतस्य भूपस्य जयलक्ष्मीर्वितन्यते ॥ ६० ॥ लग्ने शुक्रेऽथवा लाभे चन्द्रे बन्धुस्थिते सदा । गतो राजा रिपून्हन्ति पुण्यराशिमिवानृतम् ॥६१॥ स्वोच्चसंस्थे सिते केन्द्रे स्वोच्चे चन्द्रे च लाभगे । गतो राजा रिपून्हन्ति मञ्जलद्वह्लयपुर्यथा ॥६२॥ स्वोच्चस्थे लग्नगे जीवे चन्द्रे वाऽऽयगते यदि । गतो राजा रिपून्हन्ति पिनाकी त्रिपुरं यथा ॥ ६३ ॥ मस्तकोदयगे शुक्रे लग्नस्थे लाभगे गुरौ । गतो राजा रिपून्हन्ति कुमारस्तारकं यथा ॥ ६४ ॥ शुभैः केन्द्रत्रिकोणस्थैर्लग्ने चन्द्रेऽथवा रवौ । शत्रून्हन्ति गतो राजा ब्रह्मद्विषो यथा कुलम् ॥ ६५ ॥ स्वक्षेत्रगे शुभे केन्द्रे त्रिकोणायगते गतः । विनाशयत्यरीन्राजा शान्तिर्दुष्टभयं यथा ॥ ६६ ॥ इन्दौ

* श्लोकद्वयं पपुस्तके नास्ति । + इतः परं नव श्लोका नपुस्तके न सन्ति ।

१ प॰ दा ॥ ४५ ॥ वानन्वा॰ ।

खस्थे गुरौ केन्द्रे सबले च विशेषतः । नृपो हन्ति रिपून्सर्वान्कर्म ज्ञानोदयो यथा ॥६७॥ वर्गोत्तमगते शुक्रे जीवे वाऽपि विलग्नगे । रसत्यागो यथा पापं हन्ति शत्रून्गतो नृपः ॥ ६८ ॥ जन्मेशो वाऽपि लग्नेशो यात्रालग्नेश्वरोऽपि वा । पूर्णेन्दुर्वा दिगीशो वा केन्द्रे गन्ता श्रियं लभेत् ॥ ६९ ॥ बृहद्यात्रायां–यद्वद्विद्याध्ययनं द्रव्यलोभाद्रस्मीकुर्यात्पुण्यराशिं गुरुं च । वेशिस्थानं लग्नगं यानकाले शत्रून्हत्वाऽभ्येति गेहं कृतार्थः ॥ ७० ॥ ये जातकोक्तक्षितिपालयोगैर्महीभृतो यान्ति रिपून्विजेतुम् । तेषां प्रकोपाग्निरुपैति शान्तिं विद्वेषियोपाश्रुजलप्रवाहैः ॥ ७१ ॥ बृहज्जातके-वक्रार्कजार्कगुरुभिः सकलैस्त्रिभिर्वा स्वोच्चेषु षोडश नृपाः कथितैकलग्ने । द्व्येकाश्रितेषु च तथैकतमे विलग्ने स्वक्षेत्रगे शशिनि षोडश भूमिपाः स्युः ॥ ७२ ॥ पितामहः–वर्गोत्तमगते लग्ने केन्द्रे वा चन्द्रवर्जिते । चतुराद्यैर्ग्रहैर्दृष्टे नृपा द्वाविंशतिः स्मृताः ॥७३॥ मेषादौ राशौ स्थिरतर्निरूप्यमाणे वेदाङ्गयमाः २६४ । एवं विलग्नेऽपि २६४ । उभयम् ५२८ । आद्याः सर्वे ५६० । अन्येऽपि जातकोक्ता विलोक्याः । नारदः–ये नृपा यान्त्यरीञ्जेतुं तेषां योगैर्नृपाह्वयैः । उपैति शान्तिं कोपाग्निः शत्रुयोपाश्रुवारिभिः ॥ ७४ ॥

इति यात्रायां योगाः ।

---

## अथ राजयोगभङ्गः ।

ज्योतिर्विवरणे–ये योगा ग्रहलग्नाभ्यां चोक्तास्ते चोत्तमोत्तमाः । केवलं द्युचरैर्मध्या जघन्या विबलैश्च तैः ॥ १ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे–विबलग्रहयोगेण यः प्रयाति स संगरे । व्रीडां प्राप्नोति किंचिज्ज्ञो यथा सदसि भूभृतः ॥ २ ॥ जातके–पञ्चभिर्नीचगैः खेटैरस्तं यातैरथापि वा । प्रयान्ति विलयं योगा भूभुजां ये प्रकीर्तिताः ॥ ३ ॥ परनीचगते चन्द्रे क्षीणे योगे महीपतिः । नाशमायाति राजेव दैवज्ञप्रतिलोमगः ॥ ४ ॥ त्रिविधे तु महोत्पाते त्रिशङ्कुनृपभोदये । राजयोगा लयं यान्ति दम्भे धर्मफलं यथा ॥ ५ ॥ जातकोत्तमे–केमद्रुमेण यो याता यात्रा स्यात्तस्य निष्फला । राजयोगा लयं यान्ति क्षिप्रं भिक्षोर्विलासवत् ॥ ६ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे–न केमद्रुमजो याता सम्यग्यात्राफलं लभेत् । विरक्तिं संगते यान्ति वृद्धे मुग्धामनोरथाः ॥ ७ ॥

इति राजयोगभङ्गः ।

---

## अथ यात्रायामनिष्टयोगाः ।

रत्नावल्यां-जन्मोदयर्क्षे हिबुकास्तसंस्थं यस्याशुभैर्दृष्टयुतं न सौम्यैः । स शाण्डिलीं प्राप्य यथा गरुत्मान्दैन्यं गतोऽभ्येति हतस्वपक्षः ॥ १ ॥ श्रीपतिः—यदीयजन्मोदयगे सुखास्तगे खलग्रहैर्दृष्टयुते न शोभनैः । स गोग्रहे पार्थजितः सुयोधनो यथा तथाऽभ्येति गृहं त्रयान्वितः ॥२॥ दैवज्ञवल्लभे-लग्ने वितीर्यैर्विबलैश्च सौम्यैः शून्येषु सर्वेष्वपि कण्टकेषु । कृतप्रयाणो भ्रमति क्षितीशो यष्टया विहीनोऽन्ध इवाकृतार्थः ॥ ३ ॥ रत्नकोशे-शून्येषु केन्द्रेष्वबले च लग्ने सौम्यग्रहवीर्यविवर्जितैश्च । दत्ता गयायामिव जारजातैः पिण्डाः पितॄणां क्षितिपा भ्रमन्ति ॥ ४ ॥ केन्द्रत्रिकोणेषु शुभाः प्रशस्तास्तेष्वेव पापा न शुभप्रदाः स्युः । पापोऽपि कामं बलवान्नियोज्यः शून्यं हि केन्द्रं न शुभाय वाच्यम् ॥ ५ ॥ लल्लः—क्रूरग्रहयुते लग्ने क्रूरेणैव निरीक्षिते । योगानामधमो योगः सर्वकार्यार्थनाशकः ॥६॥ बादरायणः-नष्टस्य वक्रस्य तनुः शुभस्य क्रूरस्य वा हन्ति शुभं प्रयातुः । यथाऽग्रजन्मी पतिताऽमला वा श्रेयोहरा दास्यविधौ न युक्ता ॥ ७ ॥

इति यात्रायामनिष्टयोगाः।

---

## अथ यात्रायां मनोविशुद्ध्यादि।

श्रीपतिः-शकुननिमित्तमनोभिरनिन्द्यैरुदयविशुद्धिमिह प्रतिपद्य। रिपुविषयं प्रति यो विजिगीषुर्व्रजति तमेत्यचिराद्विजयश्रीः ॥ १ ॥ शकुनो वक्ष्यमाणः । निमित्तमङ्गस्फुरणादि । मनश्चित्तम् । उदयशुद्धिर्लग्नशुद्धिः । रत्नावल्या-शुभाशुभानि सर्वाणि निमित्तानि स्युरेकतः । एकतश्च मनो यातुस्तद्विशुद्धिरिहेष्यते ॥ २ ॥ च्यवनः-एकैव मनःशुद्ध्या यत्कर्म क्रियते बुधैः । तत्सर्वं सिद्धिमाप्नोति तद्विना निष्फलं भवेत् ॥ ३ ॥ श्रीपतिः-निमित्तराशिरेकतो नृणां मनस्तथैकतः । अतो यियासतां नृणां मनोविशुद्धिरिष्यते ॥ ४ ॥ भृगुः-चित्तोत्साहो निमित्तं च सुस्वप्नः शकुनस्तथा । एतान्येव विलोक्यानि यात्राकाले विशेषतः ॥ ५ ॥ ब्रह्मयामले—चित्तोत्साहो निमित्तं च शुभलग्नं बलं तथा । यस्यैतान्यनुकूलानि तस्य सिद्धिः करे स्थिता ॥ ६ ॥ दैवज्ञवल्लभे-स्पन्दनं दक्षिणे पार्श्वे विपृष्ठे उदये हितम् । वामपार्श्वे तु नारीणां शकुनश्चानुकूलता ॥ ७ ॥

इति यात्रायां मनोविशुद्ध्यादि ।

---

१ क. 'ष्टद्द॰ । २ क. °थे स्थित॰ ।

## अथाऽऽवश्यके यात्रा ।

रत्नकोशे—कार्येषु पराधीनेष्वनेकसाधारणेषु सर्वेषु । प्रायेण गमनमिदं सदैव न सूक्ष्मचिन्ताऽस्ति ॥ १ ॥ बृहद्यात्रायाम्—अवश्यमेव यातव्यं कार्येष्वात्ययिकेषु च । सौम्योदये विलग्ने च कार्यसिद्धिं विनिर्दिशेत् ॥ २ ॥ रत्नावल्याम्—आवश्यके तथा याने सौम्येऽस्ते निधनेऽथवा । व्रजेदस्तोदयेऽर्के वा मध्याह्ने वाऽविशङ्कितः ॥ ३ ॥ पूर्वाह्ने नोत्तरां गच्छेन्मध्याह्ने पूर्वतो व्रजेत् । अपराह्ने व्रजेद्याम्यां मध्यरात्रे न पश्चिमे ॥ ४ ॥ न तस्याङ्गारको विघ्नैर्न शनैश्चरजं भयम् । व्यतीपातो न दुष्येत यस्यार्को दक्षिणे स्थितः ॥ ५ ॥ पृष्ठतो वा रविं कृत्वा गच्छेद्दक्षिणतस्तथा । उत्तानपादपुत्रस्य शेखरे चोर्ध्वसंस्थिते ॥ ६ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—आवश्यकगमे मूर्तौ सौम्येऽस्ते निधनेऽथवा । व्रजेत्सूर्योदयेऽस्ते वा मध्याह्ने कार्यसिद्धये ॥ ७ ॥ यात्रासारे—उषः प्रशस्यते गर्गः शकुनं च बृहस्पतिः । अङ्गिरा मनउत्साहं विप्रवाक्यं जनार्दनः ॥ ८ ॥ अष्टौ पादा बुधे स्युर्नव धरणिसुते सप्त जीवे पदानि ज्ञेयान्येकादशार्के शशिशनिभृगुजे सार्धचत्वारि पादाः । तस्मिन्काले मुहूर्तः सकलगुणयुतः सर्वकार्यार्थसिद्ध्यै नास्मिन्पश्चाङ्गशुद्धिं न च खचरबलं भाषितं गर्गमुख्यैः ॥ ९ ॥ बृहस्पतिः—कृतनृपमुनितिथिपक्षद्वादशरुद्राङ्गुलानि ४ । १६ । ७ । १५ । २ । १२ । ११ वै कथित् । सिद्धा छाया क्रमशो रव्यादिषु सर्वकार्यसिद्धिकरी ॥ १० ॥

इत्यावश्यके यात्रा ।

---

## अथ यात्रोपयोगि मिश्रकम् ।

रत्नकोशे—रक्तासिताद्या हि यथाऽम्बरस्य वर्णाः सितस्यैव भवन्ति सम्यक् । विलग्नतिथ्यादिगुणास्तथैव विशुद्धदोषस्य भवन्ति यातुः ॥ १ ॥ योगयात्रायाः—गुणान्वितस्यैव गुणान्करोति यात्रा शुभर्क्षग्रहलग्नयोगा । व्यर्था सदोषस्य गुणान्विताऽपि वीणेव शब्दाश्रयवर्जितस्य ॥ २ ॥ श्रीपतिः—गुणैः समस्तैरपि संप्रयुक्ता कन्येव यात्रा विगुणाय दत्ता । करोत्यकीर्तिं सुखवित्तहानिं यात्रान्तरज्ञानजडस्य दातुः ॥ ३ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—दैवी च मानुषी यस्मिन्संपत्तस्य गमादिकम् । तपोविद्यान्विते पात्रे दानवत्सफलं भवेत् ॥ ४ ॥ असंतुष्टे शठे धूर्ते प्रत्ययं पश्यतां तथा । ज्योतिषोक्तफलादेशो व्यर्थो दैवोज्झिते जने ॥ ५ ॥ बृहद्यात्रायां—प्रकृतिविशुद्धा छाया मनोविशुद्धिर्जनानुकूल्यं च । औत्पातिकं च न स्यात्संपद्दैवी स्मृता पुंसाम् ॥६॥ मित्राणि कोशदण्डौ भृत्यामात्यौ स्वजन्मदो

दुर्गम् । संपद्येषां तेषां विज्ञेया मानुषी सा तु ॥ ७ ॥ यात्रा विशुद्धाऽपि समं प्रवृत्ता यात्रानुरूपाणि फलानि धत्ते । जगत्युदीर्णाऽपि हि कौशिकस्य भा भानवी नैव तमः प्रमार्ष्टि ॥ ८ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे–यथोपाधिवशेनैव भिन्ना स्यात्स्फटिकद्युतिः । तथा यात्राऽनुरूपैषा भिन्नं यात्राफलं भवेत् ॥ ९ ॥ यादृशी वचनव्यक्तिस्तादृशी वदने भवेत् । यथा तथा स्मृता यात्रा बुधैर्देवोद्यमानुगा ॥ १० ॥ यात्रा शुद्धाऽपि सर्वेषां न समं तनुते फलम् । ज्योत्स्नाव-द्विरहार्तानां शुचेऽन्येषां सुखावहा ॥ ११ ॥ सुमुहूर्तेऽपि नो कार्यं कुमुहूर्तेऽपि शोभनम् । कुत्रचिद्दृश्यते किंचित्कारणं ब्रूहि शास्त्रतः ॥ १२ ॥ गर्गः—तिथिवारर्क्षलग्नादेर्यदुक्तं सदसत्फलम् । तत्सर्वं जातकाधीनं न स्वतः फलदक्षम(दं मत)म् ॥ १३ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—यत्र जन्मफलं शस्तं दुष्टं तात्कालिकं भवेत् । कार्यं सिध्यति कृच्छ्रेण सिद्धौ सौख्यार्थसंपदाम् (दः) ॥१४॥ कर्मकालफलं शस्तं दुष्टं स्याज्जन्मजं फलम् । कार्यं भूत्वाऽपि तत्पश्चाद्विघ्नं त(घ्नस्त)त्र प्रजायते ॥ १५ ॥ शुभयोरुभयोः शस्तं फलं संपूर्णमाप्यते । द्वयोर्मध्यमयोर्मध्यमशुभं च जघन्ययोः ॥ १६ ॥ बृहद्यात्रायां—यात्रादौ सदसत्पाकं कारकादि शुभं स्फुटम् । ततो यात्रां वदेद्राज्ञां यशोलाभसुखाप्तये ॥१७॥ भूपालवल्लभे—प्रवरासदृशा पाकेऽष्टवर्गे मध्यमा शुभे । न्यूना तत्कालदिवसा चन्द्रलग्नबलादिना ॥ १८ ॥ विद्वज्जनवल्लभे—जन्मसमयोत्थफलतो यात्राकालोत्थितं न बलवत् । यात्राकालोत्थं च प्रश्नफलं दुर्बलमुशन्ति ॥ १९ ॥ एषां तु फलविरोधे विमृश्य सम्यग्बलाबलं स्वधिया । पौर्वापर्यं फलयोर्वाऽऽप्यत्वं वा फलं वाच्यम् ॥ २० ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—एके: वदन्ति यात्रोत्थफलात्प्रश्नफलं लघु । अनयोर्बलवत्सर्वैरुक्तं जन्मफलं स्फुटम् ॥ २१ ॥ फलग्रन्थेषु या यात्रा प्रोक्ता सा शुभकर्मसु । सङ्ग्रामे स्वरशास्त्रोक्तजययोगैः फलप्रदा ॥२२॥ यात्रारत्नावल्याम्—आक्षेपशीलः परुषाभिभाषी परापवादी परदारगामी । लुब्धोऽसहायो व्यसनी कृतघ्नः स्थितिप्रभेत्ता करशीर्णराष्ट्रः ॥ २३ ॥ विस्रम्भहा क्रोधपरो नृशंसः क्षुद्रः प्रमादी न बहुश्रुतश्च । दिव्यान्तरिक्षक्षितिजैर्विकारैर्निपीडितो यश्च स दैवहीनः ॥ २४ ॥ बृहद्यात्रायाम्–अदैवलक्ष्म्यन्यगुणेन राज्ञा तादृग्विधोऽरिस्त्वनुयुक्तमात्रः । तरुर्घुणैर्जग्ध इवाल्पवीर्यो महानपि क्षिप्रमुपैति भङ्गम् ॥२५॥ यस्मिन्देशे पुरे गेहे त्रिविधोत्पातपूर्वकम् । दृश्यते तत्र भङ्गः स्यादित्युक्तं ब्रह्मयामले ॥ २६ ॥ रत्नमालायाम्—उद्वाहमङ्गलोत्सवकल्याणाभ्युदयसूतिकाशौचे । असमाप्ते तु न यात्रां कुर्वीत जिजीविषुः पुरुषः ॥ २७ ॥ मङ्गलं पुत्रान्नप्राश-

१ ख. °योर्याप्य° ।

नादि । उत्सवः कौमुदीप्रभृतिः कल्याणाभ्युदयो रोगमुक्तस्य शुभकृत्यम् । गर्गः—प्रवेशान्निर्गमश्चैव निर्गमाच्च प्रवेशनम् । नवमे जातु नो कुर्याद्धिष्ण्ये वारे तिथावपि ॥ २८ ॥ भृगुः—प्रवेशनिर्गमौ स्यातामेकस्मिन्दिवसे यदि । तदा प्रावेशिकं कार्यं चिन्तयेन्न तु यात्रिकम् ॥ २९ ॥ दवज्ञवल्लभे—यायात्राकालसंभूतैर्विद्युद्गर्जितवर्षणैः । त्रिविधैरपि चोत्पातैर्दृष्टैरासप्तरात्रतः ॥ ३० ॥ रत्नमालायां—सौदामिनीवर्षणगर्जितेषु नाकालजेषु प्रवसेन्नरेन्द्रः । आसप्तरात्राद्भुतदर्शनेषु दिव्यान्तरिक्षक्षितिजेषु चैवम् ॥ ३१ ॥

इति यात्रोपयोगि मिश्रकम् ।

## अथ प्रयाणे कर्तव्यानि ।

रत्नमालायां—हुत्वा वह्निं देवताश्च प्रणम्य श्रद्धायुक्तः स्वस्ति वाच्य द्विजेन्द्रान् । ध्यायन्नाशाधीश्वरं हृष्टचेताः क्षोणीपालो निर्विकल्पं प्रयायात् ॥ १ ॥ लल्लः—हुत्वाऽनलं नमस्कृत्य देवताः स्वस्ति वाच्य विप्रांश्च । ध्यायन्दिगीशमविलम्बितं व्रजेद्भूपतिः सुमनाः ॥ २ ॥ रत्नमालायां—स्वनिकेतात्सुरभवनात्प्रधानादाश्रयाद्गुरुगृहाद्वा । यायात्कृताग्निकार्यः प्राश्य हविष्यं द्विजानुमतम् ॥ ३ ॥ वैन्यं पृथुं हैहयमर्जुनं च शाकुन्तलेयं भरतं नलं च । रामं च यो वै स्मरति प्रयाणे तस्यार्थलाभो विजयश्च सिद्धिः ॥ ४ ॥ तिथ्यादिकालावयवाविलग्नं सूर्यादिखेटाः कुलदेवताश्च । भूतानि विघ्नेश्वरविप्रकेशाः कुर्वन्तु कल्याणमिह प्रयाणे ॥ ५ ॥ बृहद्यात्रायाम्—अथ शङ्खवेणुवीणादुन्दुभिनिर्घोषवर्धितोत्साहः । ध्वजचामरातपत्रः सिताङ्गरागाम्बरोष्णीषः ॥ ६ ॥ रत्नकोशे—प्राचीं गजेन यायाच्छुचिर्जपञ्छाकुनं सूक्तम् । याम्यां च कृष्णवासा रथेन विधिवज्जपन्दौर्गम् ॥ ७ ॥ मानस्तोकं जपित्वा दिशं प्रतीचीं हयेन निर्यायात् । अप्रतिरथं च जप्त्वा यायात्सौम्यां नृयानेन ॥ ८ ॥ बृहस्पतिः—शुक्लमाल्याम्बरः शुद्धो मुक्तादिसितभूषणः । वारेशसमवर्णो वा वालग्रहसमोऽपि वा ॥ ९ ॥ दृष्ट्वाऽष्टौ मङ्गलान्गच्छेन्नृपतिर्मङ्गलां गिरम् । श्रुत्वा तूर्यजशब्दांश्च निजधाम्नः पुरादपि ॥ १० ॥ पूर्णकुम्भं ध्वजं छत्रं दीपं शङ्खं च चामरम् । हिरण्यं शस्त्रमादित्यं प्राहुर्मङ्गलमष्टकम् ॥ ११ ॥ दधिदूर्वाक्षतागन्धहेमरुक्ममणींस्तथा । दृष्ट्वास्पृष्ट्वा व्रजेद्राजा दक्षिणेनाङ्घ्रिणा ततः ॥ १२ ॥ गर्गः—नत्वेष्टदेवतां विप्रान्देवतं च दिगीश्वरम् । सम्यक्संपूज्य दैवज्ञं श्रद्धायुक्तो नृपो व्रजेत् ॥ १३ ॥

१ घ. अप्त्वादि॰ ।

बृहस्पतिः—दैवज्ञं पूजयित्वा तु विदुषः पूज्य शक्तितः। प्रदक्षिणानिमान्कृत्वा तिष्ठन्ध्यायेदुमापतिम् ॥ १४ ॥ कश्यपः—यात्रासमये वृद्धानुपरागे[वा] ग्रहस्य वैषम्ये। गोभूहिरण्यवस्त्रैः संपूज्य श्रद्धया च दैवज्ञम् ॥ १५॥ चिन्तामणौ—कुलीनः सत्यवादी च जितवर्गस्तु भाग्यवान्। संतोषी चारुवेषश्च श्रौतस्मार्तोक्तकर्मकृत् ॥१६॥ प्रगल्भो देशकालज्ञः स्वस्थारिष्टादिहेतुवित्। त्रिस्कन्धाभ्यासनिरतो राज्ञां सांवत्सरो मतः ॥ १७ ॥ भूपालवल्लभे—गजाश्वरथपत्तीनां लक्षणेषु विशारदः। युद्धव्यूहादिकुशलः शास्त्रज्ञानाभिचारवित् ॥ १८ ॥ चतुरङ्गेण सैन्येन यत्कार्यं नैव सिध्यति। तत्साधयति दैवज्ञो हेलयैव नृपेप्सितम् ॥ १९ ॥ जयार्णवे—तथा न माता हितकृन्न पिता न सुहृद्गुरुः। यथा सांवत्सरो राज्ञां स्वयशोधर्मवृद्धये ॥ २० ॥ यः पूजयति दैवज्ञं स्वधर्मरतमग्रजम्। तस्य श्रीर्विजयः कीर्तिश्चिरं राज्यं च नन्दति ॥ २१ ॥ लल्लः— श्रद्धायुक्तः शुचिः स्नातः प्रसन्नेन्द्रियमानसः। पूजितो बन्धुवर्गेण यात्रा तस्य फलप्रदा ॥ २२ ॥ बृहद्यात्रायां—स्नातो भुक्तोऽनुलिप्तश्च सर्वालङ्कारभूषितः। शुक्लाम्बरधरः श्रीमानध्वगः सुखमेधते ॥ २३ ॥ मक्षिकाकचसिकतानुविद्धं दुर्गन्धि क्षयकृदभूरि यच्च दग्धम्। स्वस्विन्नं सुचिरं मनोनुकूलं स्वाद्वन्नं बहु च जयाय यानकाले ॥ २४ ॥ फलप्रदीपे—विप्रान्प्रदक्षिणीकृत्य पूजयित्वा तु शक्तितः। दैवज्ञं देवताश्चैव बद्धाञ्जलिं मोच्य सुखं व्रजेत् ॥ २५ ॥ लल्लः—ताम्रपात्रे तिलान्कृत्वा सघृतान्हेमसंयुतान्। निवेद्य विप्रमुख्याय दैवज्ञाय ततो व्रजेत् ॥ २६ ॥ गर्गः—मुहूर्तसमये प्राप्ते हंसचाराङ्घ्रिणा व्रजेत्। दैवज्ञामात्यविप्राद्यपुरोगैः स्वजनैर्वृतः ॥ २७ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—ततो निरीक्ष्य वै सम्यक्शकुनांश्च शुभाशुभान्। तथैव सदसच्छब्दान्निमित्तानि च वै व्रजेत् ॥ २८ ॥

इति प्रयाणे कर्तव्यानि।

---

## अथ नियमाः।

ज्योतिष्प्रकाशे—संतोष्य स्वाङ्गना विप्रांञ्जप्त्वाऽप्रतिरथादिकम्। शुचिः शुक्लाम्बरोष्णीषो नत्वेष्टं सुमना व्रजेत् ॥ १ ॥ गर्गः—क्रोधं क्षौरं रतिं वान्तिं तैलाभ्यङ्गाश्रुमोक्षणे। द्यूतं मांसं गुडं तैलं याने मद्यं परित्यजेत् ॥ २ ॥ रत्नकोशे-कालीयकं हिङ्गुलकः कुङ्कुमं रक्तचन्दनम्। पीतं रक्तं च वसनं यातुर्नेष्टं निरीक्षणात् ॥ ३ ॥ बृहद्यात्रायां—कटुतैलगुडक्षारपक्वमांसाशनं तथा।

---

१ ग. °भिधानवि°। २ ग. °ग। सुवि°।

भुक्त्वा यो याति मोहेन व्याधितः सन्निवर्तते ॥ ४ ॥ ल्लः—प्रस्थानकाले मनुजो वर्जयेन्मैथुनं सदा । वपनं छेदनं चैव तैलाभ्यङ्गाश्रुमोक्षणे ॥ ५ ॥ प्रमत्तो व्याधितो भीतः श्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः । अध्वानं न प्रपद्येत क्लीबवेषस्तथैव च ॥६॥ रत्नावल्या—स्वकीयां परकीयां वा स्त्रियं पुरुषमेव च । ताडयित्वा तु यो गच्छेत्तदन्तं तस्य जीवितम् ॥७॥ भूपालवल्लभे—ब्राह्मणान्नावमन्येत कोपयेन्न निजाङ्गनाम् । यात्रां कृत्वा गृहं नैव सिद्धिकामो विशेत्पुनः ॥ ८ ॥ ल्ल—यात्रायां प्रस्थितो यश्च ब्राह्मणानवमन्यते । तदन्तं जीवितं तस्य नासौ प्रतिनिवर्तते ॥ ९ ॥ बृहद्यात्रायां—यस्तु संप्रस्थितो यात्रां स्वभार्यां नाभिनन्दति । भार्या वा नाभिनन्देत नास्य प्रतिनिवर्तनम् ॥ १० ॥ यात्राकाले तु संप्राप्ते मैथुनं यो निषेवते । रोगार्तः क्षीणकोशश्च स निवर्तेत वा न वा ॥११॥ रत्नावल्या—कृत्वा तु मैथुनं रात्रौ प्रभाते योऽभिगच्छति । नासौ फलमवाप्नोति कृच्छ्रेणापि निवर्तते ॥ १२ ॥ यस्तु संप्रस्थितो यात्रां निवर्तेत पुनर्गृहम् । कामाद्वा यदि वा मोहान्न स सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ १३ ॥ ल्ल —न कुर्यात्स्वगृहे गच्छन्प्रस्थानं तु कदाचन । भूतिकामस्तु कुर्वीत गृहान्निष्क्रम्य दूरतः ॥ १४ ॥ भृगुः—त्रिरात्रं वर्जयेत्क्षीरं पञ्चाहं क्षुरकर्म च । तदहश्चावशेषाणि सप्ताहं मैथुनं त्यजेत् ॥ १५ ॥ बादरायण—यावद्व्रजति चाध्वानं यावत्कार्यं न सिध्यति । यावद्वा न निवर्तेत तावद्वर्ज्यं हि मैथुनम् ॥ १६ ॥ रत्नावल्या—योधानामविरोधेन यवसौदनमेव च । पञ्चरात्रोषितः सेनां पुनर्भद्रेण योजयेत् ॥ १७ ॥ क्रोशो वा यदि वाऽप्यर्धं प्रथमेऽहनि शस्यते । द्वितीये योजनं गत्वा निवसेत महीपतिः ॥ १८ ॥ तृतीये योजनं सार्धं वसेदाक्रम्य दूरतः । ततः परं यथेष्टं तु यायान्मार्गे महीपतिः ॥ १९ ॥ बृहद्यात्रायां—स्निग्धा स्थिरा सुरभिगुल्मलता सुगन्धा शस्ता प्रदक्षिणजला च निवासभूमिः । नेष्टा निपर्ययगुणा कचशर्करास्थिवल्मीककीटकविभीतकसंकुला च ॥ २० ॥

इति प्रयाणे नियमाः ।

---

## अथ यात्रायां प्रस्थानविधिः ।

रत्नकोशे—कार्यवशात्स्वयमगमे भूभर्तुः केचिदाचार्याः । छत्रायुधाद्यमिष्टं वैजयिकं निर्गमे कुर्यात् ॥१॥ श्रीपति —अपेक्ष्य कार्यं स्वयमप्रयाणे महीभृतां निर्गममाहुरार्याः । छत्रायुधाद्यं मनसस्त्वभीष्टं प्रचालयेद्वैजयिकं जयार्थी ॥ २ ॥

गन्धपुष्पान्वितं कृत्वा निर्गमे पूर्वमातृकम् । शुचौ देशे निदध्याच्च यस्मिन्बाधा न विद्यते ॥ ३ ॥ छत्रशस्त्राक्षमालाग्निकमण्डल्वजिनाम्बरम् । विप्राणां ब्रह्मसूत्रं च निर्गमे कार्यसाधनम् ॥ ४ ॥ वरयष्टिध्वजैभार्ग्वैश्छत्रवाद्यायुधांशुकैः । दोलार्थरथसंनाहैर्निर्गमो भूभृतां हितः ॥ ५ ॥ गर्गः— यानवाहनसंनाहकार्योपकरणानि च । निर्गमे तु प्रशंसन्ति पश्चाद्गच्छेद्यथासुखम् ॥ ६ ॥ छत्राद्यं ध्वजमक्षसूत्रवलयं यज्ञोपवीतं द्विजैर्वैश्यैश्च स्वकदेहवस्त्रतुरगाः क्षत्रस्य खड्गो धनुः । ग्रामोपान्तनदीतटामरगृहोद्याने सुवापीतटे प्रस्थानं सुबुधैः प्रयाणसमये कार्यं सदा मानवैः ॥ ७ ॥ यस्य लोकस्य यद्वस्तु स्वामीष्टं वसनादिकम् । मुहूर्तसाधनायैव प्रचाल्यं तन्मुदान्वितैः ॥ ८ ॥ स्वशरीरेण यः कश्चिन्निर्गच्छेच्छ्रद्धयाऽन्वितः । तस्य यात्राफलं सर्वं संपूर्णं पथि सिध्यति ॥ ९ ॥ प्रस्थानं चालयेद्वाऽपि गृहात्प्राकारतोऽपि च । क्रोशार्धं वा तदर्धं वा चत्वारिंशत्कराववधि ॥१०॥ गृहाद्गृहान्तरं गर्ग आह सीमान्तरं भृगुः । शरक्षेपाद्भरद्वाजो वसिष्ठो नगराद्बहिः ॥ ११ ॥ अथ प्रस्थाने स्थितो राजा प्रास्थानिकं वा वस्तु यावद्दिनानि मुहूर्तं नोपेक्षते तदुच्यते रत्नमालायाम्—वसेन्न चैकत्र दश क्षितीशो दिनानि नो सप्त च माण्डलीकः । यः प्राकृतः सोऽपि च पञ्चरात्रं भद्रेण यात्रा परतः प्रयोज्या ॥ १२ ॥ समन्ततः षोडश योजनानि भुङ्क्ते महामाण्डलिकाभिधानः । भूपालसंज्ञः शतयोजनानि स सार्वभौमः सकलां धरित्रीम् ॥ १३ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे— स्वेष्टं वस्त्रादि सुस्थाने शुचि प्रास्थानिकं न्यसेत् । प्रस्थानं पञ्चवेदत्रिद्विदिनं पूर्वतः क्रमात् ॥ १४ ॥ प्राच्यां दिनानि मुनयः प्रवदन्ति सप्त याम्यामतीव शुभदानि दिनानि पञ्च । त्रीण्येव पश्चिमदिशि क्षितिनायकानां प्रास्थानिकेषु दिवसद्वयमुत्तरस्याम् ॥ १५ ॥ एकत्राध्युषितस्य जगुर्यात्रामत्रात्रिगौतमच्यवनाः । पञ्चत्रिसप्तदिवसा भूयो भद्रेण संयोज्याः ॥१६॥ ज्योतिष्प्रकाशे—कार्यान्तरवशात्प्राप्तः परदेशगतस्य चेत् । यानमन्यत्र तत्स्थानात्सुमुहूर्ते तदा व्रजेत् ॥१७॥ रत्नावल्याम्— श्रवणे तदहः पुष्ये पौष्णे वसुभे विनिर्गतोऽन्येद्युः । मृगमैत्रयोस्तृतीये हस्ते यायाच्चतुर्थर्क्षे ॥ १८ ॥ अथ राजा कार्यवशादेकत्र प्रदेशे दशदिनानि वसेत् । माण्डलिकः [सप्त] दिनानि । अन्यो जनः पञ्च दिनानि तिष्ठेत्प्रास्थानिकं वा स्थापयेत् । तदाऽन्येन सुमुहूर्तेन यात्रां कुर्यात् । न शुभं तेनैव मुहूर्तेनेत्यर्थः । अथ कश्चिदाह—अयुक्तमेतत्प्रतिभाति नूनं होराविदां युक्तिमतां बहूनाम् । यात्रासमाप्तिः खलु वाञ्छितार्थफलस्य सिद्धौ नियतं प्रदिष्टा ॥ १९ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—प्रस्थानेऽपि कृते नेयान्महादोषान्विते दिने । गर्गयोगं विना कालवृष्ट्यादौ वाञ्छुते

तथा ॥ २० ॥ जन्मर्क्षे चाऽष्टमे चन्द्रे वारे भौमे शनैश्चरे । प्रस्थितोऽपि न वै गच्छेदत्यन्तं गर्हिते दिने ॥ २१ ॥

इति यात्रायां प्रस्थानविधिः ।

---

## अथ यात्रायां शकुनाः ।

तिथिधिष्ण्यं च वारश्च लग्नं ग्रहबलं तथा । पञ्चानामपि सर्वेषां शकुनो दण्डनायकः ॥ १ ॥ वसन्तराजः—चूडामणिज्योतिषशास्त्रहोरास्वरोदयाद्यैर्विषमैर्जनस्य । जडीकृतस्यौषधमेतदुक्तं स्फुटं चमत्कारिरसातिरेकम् ॥२॥ नक्षत्रवारैस्तिथिभिश्च लग्नैः कार्यं न किंचिच्छकुने विरुद्धे । दोषेऽपि तेषां शकुनेऽनुकूले सदैव सिध्यन्ति समीहितार्थाः ॥ ३ ॥ रत्नकोशे—नक्षत्रस्य मुहूर्तस्य तिथेश्च करणस्य च । लग्नस्य ग्रहवीर्यस्य शकुनो दण्डनायकः ॥ ४ ॥ वसन्तराजः—लोकेऽमुना शाकुनसंज्ञकेन ज्ञानेन विज्ञाय समस्तकार्यम् । नापायकूपे पतति प्रसर्पञ्छास्त्रं हि दिव्या दृगतीन्द्रियेषु ॥ ५ ॥ पूर्वजन्मकृतकर्मणः फलं पाकमेति नियमेन देहिनाम् । तत्प्रकाशयति दैवचोदितः प्रस्थितस्य शकुनस्थितस्य च ॥ ६ ॥ बृहद्यात्रायाम्—अन्यजन्मान्तरकृतं कर्म पुंसां शुभाशुभम् । यत्तस्य शकुनः पाकं निवेदयति गच्छतः ॥ ७ ॥ गर्गः—तत्रापशकुने शीघ्रं कार्यं परिहरेद्बुधः । शुभे तु शकुने नूनं स्वाभीष्टं च समारभेत् ॥८॥ वसन्तराजः—नन्ववश्यमुपभुज्यते नृभिः प्राक्तनस्य निजकर्मणः फलम् । तेन किं शकुनसंविदा जनो यत्र दैवमतिवर्तितुं क्षमः ॥ ९ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—नैतद्दैवं हि तत्पाकोऽकाले नैव व्यवस्थितः । तद्विना भुज्यते नैव सोऽप्युपायानुगः स्मृतः ॥ १० ॥ सर्पवह्निविषकण्टकादिकान्येन दैवशरणोऽपि मानवः । दूरतस्त्यजति पौरुषं सदा तेन तत्स्फुरति दैवतोऽधिकम् ॥ ११ ॥ पौरुषेण हृदयेप्सितां गतिं प्राप्नुवन्ति पुरुषाः सुमेधसः । यान्ति दैवशरणा लयं यथा पादपोज्ज्वलति दावपावके ॥ १२ ॥ दैवमेव यदि कारणं भवेन्नीतिशास्त्रमुपयुज्यते कथम् । यद्बलेन सुधियो महोद्यमाः पालयन्ति जगतीं क्षितीश्वराः ॥ १३ ॥ पूर्वजन्मजनितं पुराविदः कर्म दैवमिति संप्रचक्षते । उद्यमेन तदुपार्जितं तदा दैवमुद्यमवशं न तत्कथम् ॥ १४ ॥ वेत्ति मामयमयं न वेत्ति मां मन्यते यदवमन्यतेऽथवा । यत्नवानयमुपेक्षतेऽन्वयं नेदृशेषु शकुनो विशिष्यते ॥ १५ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—बहूनां व्रजतां पुंसां शकुनस्य फलं कथम् । स्वयं भोक्तं यतस्तेषां प्राक्कर्माणि पृथक्पृथक् ॥ १६ ॥ वसन्तराजः—एकत्र सार्धं व्रजतां बहूनां यो यादृशं पश्यति दैवयोगात् । श्यामादिकानां शकुनेन तादृक्फलं

नरो विन्दति निर्विकल्पम् ॥ १७ ॥ शकुनसंग्रहे–एकत्र सार्थे व्रजतां बहूनां तुल्येऽपि जाते शकुने फलानि । नानाप्रकाराणि भवन्ति येन तं हंसचारं प्रविचारयामः ॥१८॥ वसन्तराजः–भवेदिडायां परिपूरितायां सर्वोऽपि वामः शकुनः प्रशस्तः । स्यात्पिङ्गलायां परिपूरितायां सर्वोऽप्यसव्यः शकुनः प्रशस्तः ॥१९॥ साधारणे कर्मणि च प्रवेशे शुभग्रहे नष्टविलोकने च । व्याधौ सरिद्दुर्गभयादिकेषु शस्तः प्रयाणाद्विपरीतभावः ॥ २० ॥ नद्युत्तारे भये युद्धे प्रवेशे नष्टवीक्षणे । शकुना व्यस्तगाः शस्ता नृपालोके प्रयाणवत् ॥ २१ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—शुद्धे शान्तः शुभाय स्याद्दीप्तो भीतिहरोऽशुभे । द्वावप्यशस्तौ व्यत्यासादस्तिनास्तिफलौ यतः ॥ २२ ॥ वसन्तराजः–दग्धा दिगुक्ता दिननाथमुक्ता विवस्वदाशा भवति प्रदीप्ता । सा धूमिता यां सविता प्रयातः शेषा दिगन्ताः किल पञ्च शान्ताः ॥२३॥ दग्धा दिगैशी ज्वलिता दिगैन्द्री धूमान्विता चानलदिक्प्रभाते । प्रत्येकमेवं प्रहराष्टकेन भुङ्क्ते दिशोऽष्टौ सविता क्रमेण ॥ २४ ॥ दग्धेषु दग्धं ज्वलितं ज्वलत्सु फलं ज्वलिष्यत्यथ धूमितेषु । शेषेषु शान्तेषु सदा नराणां सिध्यन्ति कार्याणि सुखेन सम्यक् ॥ २५ ॥ प्रवर्तको यो गमनस्य पूर्वं स एव पश्चात्प्रतिषेधकश्चेत् । मृत्युं रिपुभ्यो डमरं रुजं च गन्तुस्तदाऽन्यांश्च करोत्यनर्थान् ॥ २६ ॥ वरं श्रयेद्दुर्जनकृष्णसर्पौ वरं क्षिपेत्सिंहमुखे स्वमङ्गम् । वरं तरेद्वारिनिधिं भुजाभ्यां नोल्लङ्घयेद्दुःशकुनं कदाऽपि ॥ २७ ॥ दध्याज्यदूर्वाक्षतपूर्णकुम्भाः सिद्धान्नसिद्धार्थकचन्दनानि । आदर्शशङ्खामिषमीनमद्यगोरोचना गोमयमुद्धृतं गाः ॥ २८ ॥ भारद्वाजः—राजविप्रौ सुहृद्वेश्या सपुत्रा स्त्री कुमारिका । अभिरूपो नरोऽस्त्री वा गजो वाजी वृषः सितः ॥२९॥ रज्ज्वा धृताऽन्यवर्णा गौः सवत्सा च विशेषतः । उद्धृतं गोमयं मीनो मृत्तिका चोद्धृता तथा ॥ ३० ॥ रजको धौतवस्त्रश्च वेश्या तौर्यत्रिकध्वनिः । जयमङ्गलशब्दश्च शान्तिपाठः प्रदीपकः ॥३१॥ दीपो वा प्रज्वलद्वह्निः पूर्णकुम्भो नृपासनम् । मद्यं मांसं च रुचिरं भक्ष्याणि च फलानि च ॥ ३२ ॥ इक्षवो मधु ताम्बूलं वस्त्रालंकरणानि च । रौप्यं ताम्रं मणिः स्वर्णद्रव्यं दर्पणमक्षताः ॥३३॥ वितानं चामरं छत्रं दूर्वा वर्धापनं ध्वजः । दोला चारुरथो वृद्धः पुत्रपौत्रार्थयुक् शुचिः ॥ ३४ ॥ चन्दनानि सुगन्धीनि तथा पुष्पाणि रोचना । घृतं दधि पयः पेयं सिद्धमन्नं वचः शुभम् ॥ ३५ ॥ देवज्ञः स्वगुरुर्देवश्चित्तोत्साहकराणि च । दृष्ट्वैतानि नरो यायात्सर्वार्थाँल्लभते हि सः ॥ ३६ ॥ भोगाद्भोगान्तरं यावच्छकुनाच्छकुनान्तरम् । तावत्पूर्वफलं ज्ञेयं गमनाद्गमनान्तरम् ॥ ३७ ॥ प्रापय गच्छ विसर्जय निर्गच्छ विमुञ्च याहीति । सिद्धिकराः खल्वेते प्रमोदजयजी-

यशब्दाश्च ॥ ३८ ॥ माण्डव्यः—यात्रोत्थितस्य शस्तं स्याज्जयमङ्गलपूर्वकम् । वाक्यं चान्यत्तथा सर्वं चित्तोत्साहकरं हितम् ॥ ३९ ॥ सितकुसुमचन्दनांशुकगन्धाम्बुरुहातपत्ररत्नानि । चन्द्रांशुनिकरगौराः स्तनतटपरिसर्पिणो हाराः ॥४०॥ दधिमधुघृतसिद्धार्थाः पिञ्जरतिलपिष्टरोचनादर्शाः । पूर्णोत्सङ्गप्रमदावेश्यायोषित्कुमार्यश्च ॥ ४१ ॥ हयहेषितगीतरवास्तदादिवृषभेभगर्जितनिनादाः । मुनिनृपदेवतकीर्तनमङ्गलपुण्याहशब्दाश्च ॥ ४२ ॥ एवंविधास्तथाऽन्ये श्रोत्रसुखाः सामवेदऋग्यजुषाम् । सिद्धिकरा यातॄणां तत्कालमुपस्थिताः सर्वे ॥ ४३ ॥ संमुखं सिद्धिदं नृणां शवं रोदनवर्जितम् । वामभागे क्षुतं चापि सर्वकार्येषु सिद्धिदम् ॥ ४४ ॥ जलार्थी रिक्तकुम्भस्तु पथिकेन सह व्रजेत् । निवर्तते, यथा पूर्णः कृतार्थः पथिकस्तथा ॥ ४५ ॥ दृष्ट्वा कुरङ्गं शशि १ बाण ५ लाभं षष्ठश्चतुर्थः प्रियसंगमाय। सप्त ७ तृतीये ३ श्रूयते च वार्ता वसु ८ द्वितीये २ गमने च मृत्युः ॥ ४६ ॥ श्रीपतिः—छुच्छुका भवनगोधिका रला पिङ्गला कपिवधूश्च पोतकी । शूकरी पुरुषसंज्ञिता शिवा वामतः खलु यियासतां जयः ॥ ४७ ॥ ऋक्षो भासश्छिक्करो वानरः श्वा श्रीकण्ठाख्यः पिप्पलाख्यो रुरुश्च । ये स्त्रीसंज्ञा दक्षिणाः स्युः प्रशस्ताः प्रोक्ताः पूर्वैः सूरिभिस्ते प्रयाणे ॥ ४८ ॥ भारद्वाजो नाकुलश्चापसंज्ञश्छागो बर्ही दृष्टमात्रः शुभः स्यात् । गोधा सर्पः शशको जाहकश्च याने दृष्टः कृकलासोऽपि नेष्टः ॥४९॥ जाहिकाहिशशिसूकरगोधाकीर्तनं शुभमुदाहृतमार्यैः । नो रुतं न च विलोकनमेषामन्यथा गदितमृक्षकपीनाम् ॥ ५० ॥ हंसस्य दर्शनं शब्दस्तन्नामश्रवणं शुभम् । वामो राजशुको याने प्रपठन्सर्वसिद्धिदः ॥ ५१ ॥ पुरो व्रजन्तः शुभदाश्चकोरा लावातित्तिराः । पुरस्तान्न शुभः श्येनः काकारिर्दक्षिणः शुभः ॥ ५२ ॥ अवामः कुक्कुटः शस्तो वृश्चिको वामगः शुभः । गणेशी वामगो नेष्टो द्रोणः शस्तः प्रदक्षिणः ॥ ५३ ॥ अजाऽश्ववद्य शकुने गोवद्य महिषी स्मृता। छुच्छुन्दरीमूषिकोष्ट्रा नरिवनो वामतः शुभाः॥५४॥ पृष्ठे वामे शुभा पल्ली याने नेष्टाऽग्रयाम्यगा । मार्गं बध्नाति सूत्रेण ऊर्णनाभो न शोभनः ॥५५॥ सिद्धान्नपिण्याकफलमांसवस्त्रो लाभाय यक्षोऽभिमुखः सदैव । धुन्वञ्छिरःकर्णकलेवराणि यात्रानिषेधं कपिन्दः करोति ॥ ५६॥ श्वा वामोऽभिमुखः शस्तो भृङ्गो वामगतः शुभः । मार्जारस्याऽऽरवं युद्धं दर्शनं च न शोभनम् ॥ ५७ ॥ भूमेः प्रदेशं शिरसा स्पृशञ्छ्वा यदि वीक्षते । ध्रुवं महानिधानं च तत्रास्तीति निगद्यते ॥ ५८ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—प्रदक्षिणगतः काकमृगराजेभ्गमः शुभः । खरशब्दः शुभो वामे पृष्ठे चापि यियासताम् ॥ ५९ ॥ भूपाः शस्त-

---

१ ग. 'कःश्रीकरो' ।

युताः समानमनुजा गौः पद्मनाथेऽङ्गना युक्ता पूर्णघटेन शीतकिरणे श्वा ब्रह्मचारी मृगः । सौम्ये शस्त्रयुता नराः क्षितिसुते देवार्चिते ब्राह्मणाः शुक्रे सुन्दरिबालिकाहयमृगा मन्दे चराः कौरवाः । स्थाने वीर्ययुतार्कशीतकिरणादीनां वदेदादिमं पश्चाज्ज्ञः शकुनान्प्रयाणसमये भूपादिकानां नृणाम् ॥ ६० ॥

इति यात्रायां शकुनाः ।

---

## अथापशकुनाः ।

तृणतैलारिकार्पासभस्मचर्मतुषोपधम् । सामर्द्रं गुडपङ्काहिमत्तं वान्तं बुभुक्षितम् ॥ १ ॥ क्लीबास्थिव्याधिताभ्यक्तक्रमुण्डेन्धनान्तकाः । काषायिमुक्तकेशाश्च याने दृष्टा न शोभनाः ॥ २ ॥ कुटुम्बकलहो गेहज्वलनं स्त्री रजस्वला । संन्यासी गुर्विणी वन्ध्या धूमाङ्गारा न शोभनाः ॥ ३ ॥ कृष्णधान्यानि विष्ठा च जटिलः पतितः खलः । व्यङ्गाः खञ्जाश्च नग्नाश्च याने दृष्टा न शोभनाः ॥४॥ युद्धं मार्जारयोर्नेष्टं याने महिषयोस्तथा । क्षुतं सर्वत्र विज्ञाय मरणायैव गोक्षुतम् ॥ ५ ॥ द्वारघातो दृशा सङ्गः स्खलनं पाणिपादयोः । रोदनं न शुभं याने वाहनस्य पलायनम् ॥६॥ नारदः-यात्रासिद्धिर्भवेद्दृष्टे शवे रोदनवर्जिते । प्रवेशे रोदनयुतः शवः शिवप्रदस्तथा ॥ ७ ॥ सर्वदिक्षु क्षुतं नेष्टं गोक्षुतं निधनप्रदम् । अफलं यद्बालवृद्धरोगिपीनसिकैः कृतम् ॥ ८ ॥ भिन्नं रिक्तं न सद्भाण्डं केशपाशार्गलायसम् । अश्मावस्करपिण्याकं दुर्वाक्यं पथि हानिदम् ॥ ९ ॥ खरोष्ट्रमहिषारूढो याने दृष्टो न शोभनः । सर्वं शुभं दक्षिणतः कार्यं निन्द्यं तु वामतः ॥ १० ॥ मार्गे तिष्ठति निवर्त गम्यारोहेति मूढ दुर्बुद्धे । यातुर्नेच्छन्ति बुधाः क्षुतकाकृष्टभीतशब्दाश्च । तैलावसक्तगात्रा नग्नाश्च विमुक्तकेशाश्च ॥ ११ ॥ वागुरिमत्स्यबन्धकशशमहिषा बन्धनादिकृताः । रक्ताम्बरमाल्यधरास्तुषभस्मकपायकेशनिचयाश्च ॥ १२ ॥ जडकुब्जमूकबधिरा व्याधितमलिनाम्बरा विकृतवेषाः । भिक्षाचाराश्च नरा दृष्टा यातुर्न सिद्धिकराः ॥ १३ ॥ गर्गः—शङ्खमद्यौपधस्नेहलवणोपानहौ गुडः । निर्गमे न प्रशंसन्ति यद्वाऽप्युपहतं भवेत् ॥ १४ ॥ श्वकाकनकुलव्यालशिखिमार्जारमूषकैः । खण्डिते नेष्यते किंचिद्यायिनः पूर्वनिर्गमे ॥ १५ ॥ उद्धूलितपुरोवक्षो भेकस्तस्करभीतिकृत् । दक्षिणाङ्गं स्पृशन्हस्तो वामाङ्गं च स्पृशन्न सन् ॥ १६ ॥

इत्यपशकुनाः ।

---

## अथाऽपशकुनविधानम् ।

आर्ष्टिषेणिः—विघ्ने विधाय शान्त्यर्थं श्रोत्रियाय निवेदयेत् । दुर्दिने गर्जिते दृष्टयां सूर्याचन्द्रमसोर्द्वयोः ॥ १ ॥ दुःस्वप्नदुर्निमित्तापशकुना विलयं ययुः । स्नानदानजपैः पुण्यैरित्याह भगवान्भृगुः ॥ २ ॥ यदाऽपशकुनं पश्येद्विपरीतमुपस्थितम् । सघृतं काञ्चनं दत्त्वा निर्विशङ्कः सुखं व्रजेत् ॥ ३ ॥ वसन्तराजः—जाते विरुद्धे शकुनेऽध्वनीनो विवृत्य कृत्वा करपादशौचम् । आचम्य च क्षीरतरोरधस्तात्तिष्ठन्प्रपश्येच्छकुनान्तराणि ॥४॥ विरुद्धे शकुने पूर्वे प्राणायामाष्टकं चरेत् । द्वितीये द्विगुणान्कुर्यात्तृतीये न व्रजेत्कचित् ॥ ५ ॥ नारदः—आद्ये विरुद्धशकुनं दृष्ट्वा यायीष्टदेवताम् । स्मृत्वा द्वितीये विप्राणां कृत्वा पूजां निवर्तयेत् ॥ ६ ॥ वाराणस्यां दक्षिणे भागे कुक्कुटो नाम वै द्विजः । तस्य स्मरणमात्रेणाशकुनः शकुनो भवेत् ॥ ७ ॥ अविमुक्तचरणयुगुलं दक्षिणामूर्तेश्च कुक्कुटचतुष्टयम् । स्मरणादपि वाराणस्या निहन्ति दुःस्वप्नमथ शकुनं च ॥ ८ ॥ बृहद्यात्रायाम्—अपि महीशस्य समस्तलक्षणैः क्रियाविहीनस्य निकृष्टजन्मनः । प्रदक्षिणीकृत्य शशाङ्कशेखरं प्रयास्यतः कस्य न सिद्धिरिष्यते ॥ ९ ॥ श्रीपतिः—आद्ये विरुद्धे शकुने प्रतीक्ष्य प्राणान्नृपः पञ्च च षट् च यायात् । अष्टौ द्वितीये द्विगुणस्तृतीये व्याहृत्य नूनं गृहमभ्युपेयात् ॥ १० ॥

इत्यपशकुनविधानम् ।

---

## अथ क्षुतम् ।

अथ क्षुताख्यं शकुनं क्रमेण महाप्रभावं परिभावयामः । त्रस्यन्ति यस्माच्छकुनाः समस्ता मृगाधिनाथादिव वन्यसत्त्वाः ॥ १ ॥ क्षुतं निषिद्धं सर्वत्र गोक्षुतं निधनप्रदम् । वामे पृष्ठे शुभं तच्च दक्षिणेऽग्रे न शोभनम् ॥२॥ प्रतियामं तु पूर्वाद्यौ क्रमात्क्षुतफलं विदुः । विघ्नः शोकः क्षतिर्लाभो भोज्यं वार्ता कलिः सुखम् ॥ ३ ॥ इन्दिरा मरणं सिद्धिः पीडा भोगाः सुरासुरे । निष्फलं चोपविष्टस्य पूर्वतः क्षुतजं फलम् ॥ ४ ॥ प्रागन्यपुंसः परतस्तथैव च पुनः पुनः । हठात्कफाच्छिशोर्वृद्धात्क्षुतं जातं वृथा जगुः ॥ ५ ॥ स्वप्नस्याऽऽद्यन्तयोः शस्तं क्षुतं नो भोजनाग्रतः । भोजनान्ते यदि भवेल्लाभोऽन्यत्राभः परेऽहनि ॥ ६ ॥ अन्तर्वत्नी कुमारी च किंनरी मद्यकारिका । मुण्डी चर्मकारी च नित्यमाशां

क्षुतं सदा ॥ ७ ॥ प्रयोजने यत्र कृतेऽपि जातं क्षुतं क्षणात्तद्विनिहन्त्यवश्यम् । कार्योत्सुको नापि मनागपीदं तस्मादवेक्ष्यं न विचक्षणेन ॥ ८ ॥

इति क्षुतम् ।

---

## अथाश्वेङ्गितम् ।

मुहुर्मुहुर्मूत्रमलं करोति न ताड्यमानोऽप्यनुलोमयायी । अकार्यभीतोऽश्रुविलोचनश्च शिवं न भर्तुस्तुरगोऽभिधत्ते ॥ १ ॥ आरोहति क्षितिपतौ विनयोपपन्नो यात्रानुगोऽन्यतुरगं प्रति हेषितश्च । वक्त्रेण वा स्पृशति दक्षिणमात्मपार्श्वं योऽश्वः स भर्तुरचिरात्प्रतनोति लक्ष्मीम् ॥ २ ॥

इत्यश्वेङ्गितम् ।

---

## अथ गजेङ्गितम् ।

भूमौ न्यस्तकरः स्तब्धकर्णो मुकुलितेक्षणः । भीतः श्वसन्गजो याने भङ्गकृत्स्खलितस्तथा ॥ १ ॥ अनुलोमगतिर्दृप्तो वक्त्रमुन्नम्य याति च । वल्मीकस्थानगुल्मादिमथनः सिद्धिदो गजः ॥ २ ॥ प्रशस्तैः शकुनैः कार्यं कृत्वाऽभ्येति गृहं तथा । अकृतार्थोऽपशकुनैर्मिश्रैर्मिश्रफलं भवेत् ॥ ३ ॥

इति गजेङ्गितम् ।

---

## अथ स्वस्थानकृत्यम् ।

वैप्रप्राकारयन्त्रप्रहरणपरिखातोयधान्येन्धनाढ्यं दुर्गं कृत्वाऽतिगूढं द्विपतुरगभिषग्शिल्पविप्राभ्युपेतम् । लुब्धत्रस्ताऽढितारिप्रकुपितकुभृताज्ञानशीलैर्विहीनं युक्तं शूराप्तवृद्धैः परविषयमियान्मन्त्रपार्ष्णिर्नरेन्द्रः ॥ १ ॥ नारदः–परस्त्रीद्विजदेवांश्च न स्पृशेद्धि गजाश्वकान् । हन्यात्परपुरं प्राप्तो नार्तान्भीतान्निरायुधान् ॥ २ ॥
इति शूरमहाठश्रीशिवदासविनिर्मिते । ज्योतिर्निबन्धसर्वस्वे यात्राप्रकरणं स्फुटम् ।

---

१ क. पश्यत° ।

## अथ नानाविधमुहूर्तप्रकरणम् ।

### तत्र सुरप्रतिष्ठा ।

नारदः—श्रीप्रदं सर्वगीर्वाणस्थापनं चोत्तरायणे । गीर्वाणपूर्वगीर्वाणमन्त्रिणो-र्दृश्यमानयोः ॥ १ ॥ विचैत्रेष्वेव मासेषु माघादिषु च पञ्चसु । शुक्लपक्षेषु कृष्णेषु तदादित्र्यष्टसु स्मृतम् ॥ २ ॥ वसिष्ठः—मासे तपस्ये तपसि प्रतिष्ठा धनायुरारोग्यकरी च कर्तुः । चैत्रे महारुग्भयदा च शुक्रे समाधवे पुत्रधनप्रदात्री ॥ ३ ॥ आषाढमासादिचतुष्टये च कलत्रसंतानविनाशदा च । ऊर्जे च कर्तुर्निधनप्रदा प्राक् सौम्ये सपौषेऽखिलदुःखदा सा ॥ ४ ॥ वलक्षपक्षः शुभदः समस्तः सदैव तत्राऽऽद्यदिनं विहाय । अन्त्यं त्रिभागं परिहृत्य कृष्णपक्षोऽपि शस्तः खलु पक्षयोश्च ॥५॥ रिक्तामर्मा त्यक्तदिनेषु निन्द्ययोगेषु वैनाशिकवर्जितेषु । दिने महादोषविदूषिते च शशाङ्कताराबलसंयुतेऽपि ॥ ६ ॥ देवस्य यस्योडुतिथी प्रशस्ते संस्थापने कर्मणि वासरश्च । कर्तुर्दिनेशस्य बलं सदैव ग्रामाधिपग्रामबलं विचार्यम् ॥७॥ * हस्तत्रये मित्रहरित्रये च पौष्णद्वयादित्यसुरेज्यभेषु । तिस्रोत्तराधातृशशाङ्कभेषु सर्वामरस्थापनमुत्तमं तत् ॥ ८ ॥ कीर्तिप्रदं क्षेमकरं कृशानोर्भयप्रदं वृद्धिकरं नराणाम् । लक्ष्मीकरं सुस्थिरदं त्विनादिवारेषु संस्थापनमामनन्ति ॥ ९ ॥ नारदः—चन्द्रताराबलोपेते पूर्वाह्णे शोभने दिने । शुभे लग्ने शुभांशे च कर्तुर्न निधनोदये ॥ १० ॥ राशयः सकलाः श्रेष्ठाः शुभग्रहयुतेक्षिताः । शुभग्रहयुते लग्ने शुभग्रहनिरीक्षिते ॥ ११ ॥ राशिस्वभावजं हित्वा फलं ग्रहजमाश्रयेत् । अनिष्टफलदः सोऽपि प्रशस्तफलदः शशी ॥१२॥ सौम्यर्क्षगोऽधिमित्रेण गुरुणा वा विलोकितः । पञ्चेष्टिके शुभे लग्ने नैधने शुद्धिसंस्थिते ॥१३॥ वसिष्ठः—पञ्चेष्टिके जीवशशाङ्कसूर्यमुख्यैर्ग्रहैः सौम्यनवांशयुक्ते । लग्ने स्थिरे चोभयराशिलग्ने नवांशके चोभयभेऽस्थिरे वा ॥ १४ ॥ चरोदये लग्नगते न कार्यं संस्थापनं नैव चरांशकेऽपि । चरोऽपि मुख्यः सतुलांशकश्च सदा मृदुत्वात्सुरसंनिवेशे ॥ १५ ॥ वृत्तशते—आदित्यश्रुतिवासवध्रुवमृदुक्षिप्रैः सुरस्थापनं कार्यं रिक्ततिथिं कुजस्य दिवसं पक्षं च हित्वा सितम् । स्थाप्योऽर्कश्च हरो शिवश्च मिथुने कन्याविलग्ने हरिः क्षुद्राख्याश्चरभे द्विमूर्तिभवने देव्यः स्थिरर्क्षेऽखिलाः ॥ १६ ॥ नारदः—लग्नस्थाः सूर्यचन्द्रारराहुकेत्वर्कसूनवः । कर्तुर्मृत्युप्रदाश्चान्ये धनधान्य-

* पुस्तकेऽधिकोऽयं श्लोकः—नैर्ऋत्यवृद्धिक्षेमप्रदाग्निरुग्याशानाकारागुणप्रसादादाच । आचन्द्रार्कं स्थापना स्थानिनाम्नां सूर्यादीनां वासरेषु प्रतिष्ठा ।

१ प. कुजार्कदिवसं प॰।

सुखप्रदाः ॥ १७ ॥ द्वितीये नेष्टदाः पापाः शुभाश्चन्द्रश्च वित्तदाः। तृतीये निखिलाः खेटाः पुत्रपौत्रसुखप्रदाः ॥ १८ ॥ चतुर्थे सुखदाः सौम्याः क्रूराश्चन्द्रश्च दुःखदा । ग्लानिदाः पञ्चमे क्रूराः सौम्याः पुत्रसुखप्रदाः ॥ १९ ॥ पूर्णः क्षीणः शशी तत्र पुत्रदः पुत्रनाशदः । षष्ठे शुभाः शत्रुदाः स्युः पापाः शत्रुक्षयप्रदाः ॥ २० ॥ पूर्णः क्षीणोऽपि वा चन्द्रः षष्ठेऽखिलरिपुक्षयम् । करोति कर्तुरचिरादायुष्पुत्रधनप्रदः ॥ २१ ॥ व्याधिदाः सप्तमे पापाः सौम्याः सौम्यफलप्रदाः । अष्टमस्थानगाः सर्वे कर्तुर्मृत्युप्रदा ग्रहाः ॥ २२ ॥ धर्मे पापा घ्नन्ति सौम्याः शुभदाः शुभदः शशी । भङ्गदाः कर्मदाः पापाः सौम्याश्चन्द्रश्च कीर्तिदा ॥ २३ ॥ लाभस्थानगताः सर्वे भूरिलाभप्रदा ग्रहाः । व्ययस्थानगताः शश्वद्बहुव्ययकरा ग्रहाः ॥ २४ ॥ गुणाधिकतरे लग्ने दोषात्यल्पतरे यदि । सुराणां स्थापनं तत्र कर्तुरिष्टार्थसिद्धिदम् ॥ २५ ॥ हन्त्यर्थहीना कर्तारं मन्त्रहीना तु ऋत्विजम् । स्त्रियं लक्षणहीना तु न प्रतिष्ठासमो रिपुः ॥ २६ ॥ सग्रहे—रन्ध्रान्त्यवर्जितैः सौम्यैः पापैः षट्त्र्यायगैः शुभैः । प्रतिष्ठा वाऽरिगोऽपीन्दुः शुभोऽसौ लग्नगो न सन् ॥ २७ ॥ श्रीपति—रोहिण्युत्तरपौष्णवैष्णवकरादित्याश्विनीवासवानूराधैन्दवजीवभेषु कथितं विष्णोः प्रतिष्ठापनम् । पुष्यश्रुत्यभिजित्सुरेश्वरकयोर्वित्ताधिपस्कन्दयोर्मैत्रे तिग्मरुचेः करे निर्ऋतिभे दुर्गादिकानां स्मृतम् ॥ २८ ॥ गणपरिवृढरक्षोयक्षभूतासुराणां प्रमथफणिसरस्वत्यादिकानां च पौष्णे । श्रवसि सुगतनाम्नो वासवे लोकपानां निगदितमखिलानां स्थापनं च स्थिरेषु ॥ २९ ॥ सप्तर्षयो यत्र वसन्ति धिष्ण्ये कार्या प्रतिष्ठा खलु तत्र तेषाम् । श्रीव्यासवाल्मीकिभवोद्भवाख्यतद्देवतावाच्यनिभग्रहाणाम् ॥ ३० ॥ बलान्विते गुरौ भौमे सबले सुतधर्मगे । गुरौ लाभगते स्थाप्यः शंकरः शंकरो भवेत् ॥ ३१ ॥ जीवे चतुष्टयस्थे विष्णोः केन्द्रे बुधे गुरौ हिबुके । कार्या विधिवत्प्रतिष्ठा कुमारयक्षेन्दुसूर्याणाम् ॥ ३२ ॥ शुक्रे लग्ने नवम्यां तु स्वबलेन्दौ कुजे खगे । बृहस्पतौ च सबले देवीनां स्थापनं हितम् ॥ ३३ ॥ शनौ बलान्विते वीर्यहीनौ भौमशशाङ्कजौ । मृगे मेषे रवौ केन्द्रौ मूर्तिं जिनवर्तीं न्यसेत् ॥३४॥ केन्द्रारिरिपुधर्मस्था जीवभौमशनैश्चराः । प्रासादभेदं कुर्वन्ति कर्तुर्दुःखामयप्रदाः ॥ ३५ ॥

इति सुरप्रतिष्ठा ।

---

## अथ वस्त्रधारणम् ।

धार्यं वस्त्रं नवं श्वेतं रोहिण्यां हस्तपञ्चके । वासवे दितिभेऽश्विन्यां पुष्ये पौष्णोत्तरात्रये ॥ १ ॥ रवौ जीर्णं विधौ स्तोकं जलार्द्रं दुःखदं कुजे । बुधे

धनं गुरौ ज्ञानं शुक्रे सौख्यं शनौ मलम् ॥२॥ हेम रक्ताम्बरं रौप्यं रक्तदन्ताश्च विद्रुमम् । धारयेद्वासवेऽश्विन्यां रेवत्यां हस्तपञ्चके ॥ ३ ॥ पुष्यादित्यध्रुवैर्धिष्ण्यैः स्वर्णरक्ताम्बरादिकम् । नवं न भूषणं धार्यं नार्या दयितुरायुषे ॥ ४ ॥ श्रीपतिः—पौष्णाश्विनीवसुकरादिषु पञ्चकेषु कौसुम्भहेममणिविद्रुमकाचशङ्खाः। नार्या धृताः सुतसुखार्थकरा भवन्ति ब्राह्मोत्तरादितिगुरुष्वसुखाय भर्तुः ॥ ५ ॥ ज्योति.शास्त्रे-शङ्खादिवररत्नानि पुष्यादित्युत्तरासु च । रोहिण्यां नैव युञ्जीत भर्तुर्जीवनकाङ्क्षिणी ॥ ६ ॥ माञ्जिष्ठेऽर्कः कुजः स्वर्णे काचे रौप्याब्जयोर्विधुः । शस्तोऽथ वसनं मध्यत्र्यंशेऽन्यादिहतं न सत् ॥ ७ ॥ व्यासः—भरण्यार्द्रा तथाऽऽश्लेषा वह्निभत्रितयं तथा । जिजीविषुर्न कुर्वीत प्रीत्या चाम्बरधारणम् ॥ ८ ॥ शुभैः केन्द्रत्रिकोणस्थैः पापैस्त्र्यायारिगैः शुभैः । अक्षीणाब्जे दुकूलादिवस्त्रसंधारणं मतम् ॥ ९ ॥ लब्धं राजप्रसादेन विप्रादेशात्करग्रहे । प्रीत्याऽऽप्तं चोत्सवे वस्त्रं धार्यं निन्द्येऽपि भादिके ॥ १० ॥

## अथ पृथक्फलानि ।

रत्नमालायां—वस्त्रप्राप्तिस्तदभिहरणं वह्निदाहोऽर्थसिद्धी राज्ञो भीतिर्मृतिरथ धनं प्राप्तिरर्थागमश्च । शोको मृत्युर्नरपतिभयं संपदः कर्मसिद्धिरिष्टावाप्तिः सदशनमथो वल्लभत्वं जनानाम् ॥ १ ॥ मित्राप्तिरम्बरहृतिः सलिलप्लुतिश्च रोगोऽथ मिष्टमशनं नयनामयश्च । धान्यं विषोद्भवभयं जलभीर्धनं च रत्नाप्तिरम्बरधृतः फलमश्विभात्स्यात् ॥ २ ॥ निवसन्त्यमरा हि वस्त्रकोणे मनुजाः पार्श्वदशान्त्यमध्ययोश्च । अपरेऽपि च रक्षसां त्रयोंऽशाः शयने चासनपादुकासु चैवम् ॥३॥ भोगप्राप्तिर्देवतांशे नरांशे मित्राप्तिः स्याद्राक्षसांशे च मृत्युः । प्रान्ते सर्वांशेष्वनिष्टं फलं स्याज्जुष्टं वस्त्रे नूतने साध्वसाधु ॥ ४ ॥ छत्रस्वस्तिकवर्धमानकलशश्रीवत्समात्स्यध्वजाम्भोजादर्शसुतोरणैश्च सदृशश्छेदोऽशुभांशेः शुभः । काकोलूकखरोष्ट्रयानफणिभृद्गोमायुभिः शोभने भाग्येऽप्याऽऽशु करोति शोकमरणं दग्धाकृतिर्वाससि ॥ ५ ॥ कज्जलकर्दमगोमयलिप्ते वाससि दग्धवति स्फुटिते वा । चिन्त्यमिदं नवधा विहितेऽस्मिञ्छिष्टकनिष्टफलानि सुधीभिः ॥ ६ ॥ विप्रादेशाद्द्वाहे वा क्ष्मापालेन प्रीत्या दत्तम् । भ वारे कनिष्ठेऽप्याहुर्नूनं नूतनवस्त्रं धार्यम् ॥ ७ ॥

इति वस्त्रधारणम् ।

---

१ प. °ता नवासाः ।

## अथ वस्त्रक्षालनम् ।

वस्त्रहेमाद्यलंकारधारणोक्तेश्च मादिकैः । तत्संग्रहणनिर्माणं विदध्यात्क्षालनादिकम् ॥ १ ॥ शनौ सोमसुते श्राद्धे षष्ठ्यमावास्ययोस्तथा । वस्त्राणां क्षालनं चैव दहत्यासप्तमं कुलम् ॥ २ ॥

## अथ दग्धस्फुटितवस्त्रफलम् ।

प्राग्जन्मोपार्जितं कर्म सदसच्च शुभाशुभम् । विपाकं व्यञ्जयत्येव वस्त्रं वह्न्यादिदूषितम् ॥ १ ॥ वस्त्रकोणे सुरा भोगा नराः पाददशेऽसुराः । रक्षेशास्त्वपरे मृत्युः पादशय्यासनेष्वपि ॥ २ ॥ अग्निदग्धे नवे वस्त्रे खण्डितं गोवृषादिभिः । मषीगोमयपङ्कासृग्लिप्तं कण्टकपाटितम् ॥ ३ ॥ तीर्थधौतं तु तद्वस्त्रं द्विगुणं धारयेद्यथा । प्रागन्त्याञ्चलमूर्ध्वस्थं पश्चादाद्याञ्चलं त्वधः ॥ ४ ॥ मध्ये त्र्यंशे च मध्ये च कोष्ठे चोर्ध्वाधरे मृतिः । प्राच्यां तत्र भवेल्लक्ष्मीराग्नेय्यामग्निजं भयम् ॥ ५ ॥ याम्यायां जायते व्याधिर्नैर्ऋत्यां पुत्रवर्धनम् । वारुण्यां धनसंप्राप्तिर्वायव्यां वस्त्रलब्धये ॥ ६ ॥ उदीच्यां तु महोद्वेग ऐशान्यां धर्मवृद्धिकृत् । नववैतत्फलं ज्ञेयं कोष्ठसंधौ फलद्वयम् ॥ ७ ॥ ध्वजपद्माङ्कुशच्छत्रचन्द्रदीपाकृतिः शुभा । निन्द्या त्रिकोणसूर्यादिक्रव्यादविकृताकृतिः ॥ ८ ॥ कोष्ठे शुभे शुभं चिह्नमतीव फलदं भवेत् । निन्द्ये निन्द्यं तथा दुष्टमन्यथा मध्यमं फलम् ॥ ९ ॥ षण्मासाभ्यन्तरे वस्त्रे प्रथमाच्छादनात्परम् । एतत्फलं विजानीयादस्ति नाऽऽद्यदिने फलम् ॥ १० ॥ वर्षादावृतुमासेन पक्षाहोभ्यां फलं वदेत् । एकाद्यङ्गुलमानेन निन्द्यं षट्पर्वतोऽधिकम् ॥ ११ ॥ वधे धूमावलीढस्य विरन्ध्रस्याल्पकं फलम् । धार्यं चाणुतरं दग्धं पेटिकायां समृद्धये ॥ १२ ॥ वारंवारं यस्य वस्त्रं दूषितं दहनादिभिः । तस्य विघ्नो भवेदाशु तत्त्याज्यं शुभमिच्छता ॥ १३ ॥ दग्धमात्रं त्यजेद्वस्त्रं स्नात्वा विघ्नेश्वरं यजेत् । ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्सुखी स्यादविशङ्कितः ॥ १४ ॥ स्वयं खण्डीकृतं वस्त्रं मञ्जिष्ठादिसुरञ्जितम् । दुर्लभं नित्यधौतं च जीर्णं दग्धं न संत्यजेत् ॥ १५ ॥ न दोषो रक्तवस्त्रे स्यादौर्णकौशेयपट्टजे । भूषणे हेम्नि रत्नादौ नित्यधौतेऽतिदुर्लभे ॥१६॥ नृपतिः–मषीगोमयताम्बूलपङ्कान्याद्यादिदूषितम् । तद्वासस्त्रिगुणीकृत्य प्रारम्भे नूर्ध्वपश्चिमे ॥ १७ ॥ अधोवसानं प्राच्यां तु भूमौ संत्यज्य तत्पुनः । मेषादिग्रहचक्रेऽपि यत्र वस्त्रवतो ग्रहात् ॥ १८ ॥ द्वादशाष्टमषष्ठेषु यदि पापग्रहेण तु ।

दृष्टे तु वृश्चिके तस्य नागमारः शुभप्रदः ॥ १९ ॥ अन्यत्र सद्ग्रहैः सार्धच्छिन्नं शोभनदं भवेत् । मध्यमे सर्वनाशः स्यादन्तेप्वपि न शोभनम् ॥ २० ॥ वस्त्रस्य जन्मराशेस्तु भावैर्भावफलैरपि । शुभाशुभफलस्यार्धच्छेदे तद्वत्फलं वदेत् ॥२१॥ यद्वस्त्रं त्वशुभाकारं देयं तद्ब्राह्मणाय च । दैवतेभ्यो द्विजेभ्यो वा तद्दोषस्य प्रशान्तये ॥ २२ ॥ क्षौमादिकमहार्घेषु त्रिपद्वाब्दादधः फलम् । कम्बलादिषु सर्वेषु त्रिभिर्वर्षैरधः फलम् ॥ २३ ॥ एवं शय्यासनादौ तु कौतुके वाहनेऽपि च । राशिचक्रोक्तमार्गेण शुभाशुभफलं भवेत् ॥ २४ ॥ नवभागीकृते वस्त्रे चत्वारस्तु त्रिकोणकाः । कर्णवर्तिद्वयं द्वौ च लवौ मध्यं तथैककम् ॥ २५ ॥ चत्वारो देवताभागा द्वौ भागौ दैवनायकौ । उभौ तु मानुषौ लाभमेको भागश्च राक्षसः ॥ २६ ॥ पङ्काञ्जनादिभिर्लिप्तं कुट्टितं मूषकादिभिः । तुणितं पाटितं दग्धं दृष्ट्वा वस्त्रं विचारयेत् ॥ २७ ॥ उत्तमं दैवते भागे दानवे रोगसंभवः । मध्यमे मानुषे लाभो राक्षसे मरणं पुनः ॥ २८ ॥

## अथ वस्त्रारम्भणम् ।

सुदिने वस्त्रनिर्माणं ग्रहणं च शुभोदये । सचन्द्रव्ययं रन्ध्रधनं क्रूरयुतं न सत् ॥ १ ॥

## अथ तूलिका ।

तूलिका चोपधानानि वितानादि विधीयते । वस्त्रभे सुदिने शुद्धे रन्ध्रान्त्य-केन्द्रगैः शुभैः ॥ १ ॥

## अथालंकृतिः ।

बादरायणः—हस्तानुराधगुरुपूषधनिष्ठयुक्तचित्रोत्तरात्रयपुनर्वसुरोहिणीषु । लग्ने स्थिरे रविसितेन्दुजजीववारे हेमादिधारणविधिः कथितो नराणाम् ॥ १ ॥ हारीतः—पौष्णवसुतुरङ्गेषु रोहिण्यामुत्तरायणे । पतिजीवितमिच्छन्ती नैव हेमादिकं स्पृशेत् ॥ २ ॥ व्यासः—चित्राविशाखापवनानुराधावस्वश्विनीभास्कररेवतीषु । आदित्यशुक्रेन्दुजजीववारे लग्ने स्थिरे स्त्री कनकादि दध्यात् ॥ ३ ॥ पूनर्वसूत्तराण्यरोहिण्यर्काश्विनीषु च । पतिजीवितमिच्छन्ती नैव स्त्री कनकं वहेत् ॥ ४ ॥ हेमरत्नाद्यलंकारघटनं धारणं तथा । स्वाङ्गभावजुभैर्युक्ते चित्रो-

१ प. °तं कुर्दं° ।

त्साहेऽष्टमेऽमले ॥ ५ ॥ लब्धं राजप्रसादेन विप्रादेशात्करग्रहे । भीत्याऽऽप्तं चोत्सवे धार्यं भूषणं निन्द्यमादिके ॥ ६ ॥

## अथ धननिक्षेपः ।

साधारणोग्रतीक्ष्णेषु स्वात्यां द्रव्यं न लभ्यते । दत्तं प्रयुक्तं निक्षिप्तं नष्टं चेत्याह नारदः ॥ १ ॥ मृदुपुष्याश्विनीपौष्णादित्यद्वीशश्रुतित्रयम् । निधाने संग्रहे द्वंद्वौ भूयात्स्थापनमन्धभे ॥ २ ॥ द्रव्यादिस्थापने लग्नं सुखं च स्वं शुभान्वितम् । भव्यं पापग्रहैर्मुक्तं धिष्ण्यमन्धमधोमुखम् ॥ ३ ॥ स्थापने तु धनादीनां पातालं शुभसंयुतम् । हितप्रदं विशेषेण पापयुक्तं हि हानिकृत् ॥ ४ ॥ धनकेन्द्रत्रिकोणस्थैः सौम्यैः पापोज्झिते व्यये। मञ्जूषायां वसनादौ द्रव्यादेर्धारणं शुभम् ॥५॥

## अथ विपणिः ।

विपणिः स्यात्तनौ खेन्दुसिते पापैर्व्ययोज्झितैः । द्रव्यकर्मायमूर्तिस्थैः शुभैः कुम्भोदयं विना ॥ १ ॥

## अथ सेवा ।

रोहिण्युत्तरपौष्णेषु वसुवारुणयोरपि । सेवयेत्स्वामिनं भृत्यः शुभराश्युदये सदा ॥ १ ॥ दशायगे कुजेऽर्के वा सुलग्ने योनिवश्यताम् । विधायुभाभ्यां सुरतः सेवकः प्रभुमाश्रयेत् ॥ २ ॥

## अथ व्यभिचारः ।

सक्रूरे क्रूरलग्नस्थे चन्द्रे वलिनि वोधने । रिष्टयोगेषु कर्तव्यो व्यभिचारोऽरिनैधने ॥ १ ॥

## अथाऽऽयुष्पुष्टिकर्म ।

पूर्णेन्दुसुखगे खेऽर्के जीवे लग्ने गुरोर्दिने । श्रीमन्त्यायुष्यकार्याण्यभिषेको वा नृपस्य च ॥ १ ॥

## अथ रससंग्रहादि ।

लग्नेऽब्जे तद्दिने केन्द्रे गुरौ स्याद्रससंग्रहः । वापीकूपतडागादिसेतोद्यानादि शस्यते ॥ १ ॥

## अथ संन्यासः ।

तत्र मौञ्जीनक्षत्राणि ग्राह्याणि । मुमुक्षुः प्रव्रजेत्पापे विवले व्यष्टमे विधौ । धर्मे खे वा गुरौ लग्ने भे स्थिरेऽर्केज्यवासरे ॥ १ ॥ त्रिषडेकादशे सौरे व्यये षष्ठे च भार्गवे । सबले धर्मगे जीवे केन्द्रे दीक्षा विरक्तिकृत् ॥ २ ॥

## अथ ग्रहज्ञानोपदेशः ।

शीतांशौ बुधराशिस्थे शुभेषूदयवर्तिषु । ज्ञानस्य ग्रहणं कार्यं हित्वा पापग्रहोदयम् ॥ १ ॥

## अथ दीक्षा ।

मृदुध्रुवचरक्षिप्रैर्वारेऽर्के धर्मसत्क्रिया । कार्या विद्योक्तभैर्दीक्षा स्वदेवतिथिभेषु च ॥ १ ॥ वीर्यहीनैः खलैर्धर्मस्थितैः कर्माणि मन्त्रिणि । सुस्थिरे च शुभा दीक्षा प्रव्रज्यायोगसंभवैः ॥ २ ॥

## अथ श्रुतिस्मृतिप्रारम्भः ।

श्रुतिस्मृतिपुराणादिप्रोक्तानां धर्मकर्मणाम् । गुरुज्ञलग्नवर्गेषु प्रारम्भस्तद्बले सति ॥ १ ॥

## अथ शिल्पविद्यारम्भः ।

लग्नकर्मगते सौम्ये जीवे वाऽमृतदीधितौ । तयोर्वर्गस्थितौ शिल्पविद्यारम्भः प्रशस्यते ॥ १ ॥

## अथ नाट्यम् ।

हस्तः पुष्यो वासवं चानुराधा ज्येष्ठा पौष्णं वारुणं त्र्युत्तराश्च । पूर्वाचार्यैः कीर्तितश्चन्द्रवृत्त्या नृत्यारम्भे शोभनोऽयं भवर्गः ॥ १ ॥ बुधे विलग्ने शशिनि ज्ञराशौ गुरुवीक्षिते । हिबुकस्थैः शुभैर्नाट्यप्रारम्भः सद्भिरिष्यते ॥ २ ॥ वाद्ययन्त्राणि कार्याणि शिल्पभैश्चाश्वभैरपि । संगीतमभ्यसेत्प्राज्ञः सबले ज्ञे त्रये विधौ ॥ ३ ॥

## अथ राज्योपकरणादीनि ।

वाद्याद्यायातयन्त्राणि राज्योपकरणानि च । कुर्यात्पट्टाभिषेकोक्तैर्याश्वायोगैर्जयावहैः । कुर्याद्दस्त्वालयं तत्र प्रवेशं तु प्रवेशभैः ॥ १ ॥

## अथ पण्यक्रयविक्रयः ।

भाद्रद्वयं त्रिदशमं त्रिदिवाकरेषु मूलानिलोत्तरतुरङ्गमरेवतीषु । सारङ्गपाणिरजनीकरमित्रभेषु लाभः सदैव भवति क्रयविक्रयाभ्याम् ॥ १ ॥ दशमैकादशे लग्ने वित्तकेन्द्रत्रिकोणकैः । शुभैः पण्यस्य कर्मोक्तं वर्जयित्वा घटोदयम् ॥ २ ॥

## अथ धर्मारम्भोऽभिचारश्च ।

मृदुध्रुवचरक्षिप्रैर्वारैर्भैर्धर्मसत्क्रिया । हिबुकेऽर्के गुरौ लग्ने धर्मारम्भो रवेर्दिने । माङ्गल्यमभिचारश्च खस्थे सूर्ये गुरूदये ॥ १ ॥

## अथ संधिः ।

तैतिले करणे भाग्ये मैत्रे पुष्येऽष्टमीदिने । द्वादश्यां शुक्रसंदृष्टे लग्ने संधिर्विधीयते ॥ १ ॥

## अथ वेतालसिद्धिः ।

पैत्रेशयाम्यमूलेन्द्रभेषु शुद्धेऽष्टमेऽपि च । वेतालसिद्धिः पाताले भृगौ ज्ञे घटलग्नगे ॥ १ ॥

## अथवापीकूपाद्यारम्भः ।

चित्रास्वातिपुनर्वसुमृगशिरोमूलाश्विनीरोहिणीहस्ताः पुष्यधनिष्ठर्क्षं शतभिषङ्मित्रोत्तरा रेवती । एतेषु श्रवणान्वितेषु मकरे लग्ने च कुम्भे झषे वापीकूपजलाशयादिखननं शस्तं प्रशस्ते दिने ॥ १ ॥ रेवतीरोहिणीमैत्रपूर्वाषाढोत्तरात्रये । सौम्यवारुणपुष्येषु तोयारम्भः शुभावहः ॥ २ ॥ सर्वतोयाश्रयारम्भः कर्तव्यो विबलैः खलैः । लग्नस्थे ज्ञेऽथवा जीवे लग्नभेऽब्जे सिते खगे ॥ ३ ॥ ध्रुववासवयुग्मार्कपुष्यमैत्रमघासु च । वापीकूपतडागादिवारिबन्धनमोक्षणम् ॥ ४ ॥ * भूतिं पुष्टिं पुत्रहानिं पुरन्ध्रीनाशं मृत्युं संपदः शस्त्रबाधाम् । किंचित्सौख्यं दिक्षु पूर्वासु कुर्यात्कूपो मध्ये वास्तुनोऽर्थक्षयं च ॥ ५ ॥ वृद्धवसिष्ठः—ऐश्वर्यं पुत्रहानिश्च स्त्रीभङ्गो निधनं भवेत् । संपच्छत्रुभयं सौख्यं पुष्टिः प्राच्यादितः क्रमात् ॥ ६ ॥ कूपे कृते मध्यमे तु धनहानिश्च वास्तुनः । तस्मात्सम्यग्विचार्यैवं कूपं कुर्याच्च बुद्धिमान् ॥ ७ ॥

## अथ वृक्षादिरोपः ।

लतागुल्मवृक्षरोपो हस्तपुष्याश्विनीध्रुवैः । विशाखामृदुमूलाख्यवारुणैश्च प्रशस्यते ॥ १ ॥ गुरौ कन्द्रे त्रिषाके खे विधौ वारिविधूदये । शुभयुक्तेक्षिते बन्धौ सद्वारे वा शुभोदये ॥ २ ॥

## अथ कृषिः ।

मैत्राश्विनीगुरुकरादितिधातृमूलशाक्रोत्तरापितृशशाङ्कविशाखपौष्णम् । शस्तं प्रवर्तनविधौ कथितं हलस्य बीजप्रवापणविरोपणसंग्रहेषु ॥ १ ॥ चन्द्रे शुभे शुभतिथौ शुभवारयोगे वारे गुरौ शशिजशुक्रगभस्तिसोमे । लग्ने वृषे मिथुनके झषकन्यकायां शस्तं कृषिप्रकरणं प्रवपेच्च धान्यम् ॥ २ ॥ दशम्येकादशी चैव तृतीया च त्रयोदशी । सप्तमी पञ्चमी चैव प्रतिपच्च सुखावहा ॥ ३ ॥ हन्त्यष्टमी

---

* श्लोकत्रयं कपुस्तके ऽस्ति ।

बलीवर्दान्नवमी सस्यघातिनी। चतुर्थी कीटजननी पतिं हन्ति चतुर्दशी ॥ ४ ॥ रवौ बृहस्पतौ चन्द्रे शुक्रे चैव विशेषतः । बुधार्कभूमिपुत्राश्च न भवन्ति फलप्रदाः ॥ ५ ॥ शस्तासु चन्द्रतारासु शुचिः शुक्लेन वाससा । स्नात्वा गन्धैश्च पुष्पैश्च पूजयित्वा विधानतः ॥ ६ ॥ पृथिवीं ग्रहसंयुक्तां पूजयित्वा प्रजापतिम् । अग्निं प्रदक्षिणीकृत्य दीयते च प्रदक्षिणम् ॥ ७ ॥ शुक्लौ वृषौ नियोक्तव्यौ नवनीतेन घृतेन वा । हेमनिर्घृष्टफालाग्रं छिन्नरेखं न कारयेत् ॥ ८ ॥ उत्तराभिमुखो भूत्वा क्षीरेणार्घ्यं प्रदापयेत् । विबलं छिन्नलाङ्गूलं कपिलं वृषभं त्यजेत् ॥९॥ हलप्रवाहणं कार्यं निरग्निवृषकर्षकैः । हलादिभिर्दृढैः क्षेमं कुट्टने शुभं वदेत् ॥१०॥ वृषभा यदि युध्येरंस्तस्य विघ्नः सदा भवेत् । तस्मात्सर्वप्रकारेण निर्विघ्नं कारयेत्सदा ॥११॥ एका जयकरी रेषा तृतीया चार्थवृद्धिदा । पञ्चमी च भवेद्रेखा बहुसस्यफलप्रदा ॥ १२ ॥ अत ऊर्ध्वं न कर्तव्या महादोषस्ततो भवेत् । स्मर्तव्या वसवः शुक्रः पृथू रामः सचन्द्रमाः ॥ १३ ॥ पराशरो हली चैव सर्वविघ्नोपशान्तये । हले प्रवाह्यमाणे तु कूर्म उत्पद्यते यदि ॥ १४ ॥ गृहिणी म्रियते तस्य ततोऽग्नेश्च भयं वदेत् । ईषाभङ्गे यदा क्रुष्टुः संशयो जीवितस्य च ॥१५॥ सुतनाशो युगे भग्ने समाने म्रियते शिशुः । योक्त्रच्छेदे तु व्यासङ्गः सस्यहानिश्च जायते ॥ १६ ॥ हले प्रवाह्यमाणे तु गौरेकः प्रपतेद्यदि । प्रपतेद्युक्तमात्रस्तु बन्धनं च प्रयच्छति ॥ १७ ॥ ज्वरातिसारयोगेण कृपिभङ्गं विनिर्दिशेत् । प्रवहेद्युक्तमात्रस्तु ततो गौः खनते यदि ॥१८॥ न वेद युक्तमात्रस्तु तदा सस्यं चतुर्गुणम् । सबलेऽब्जे सिते पार्पर्विवर्लेऽग्नगे गुरौ ॥ १९ ॥ सद्दिने जलभे चन्द्रे कृषिकर्म शुभावहम् । त्रित्रित्रिपञ्चरामेषुत्रित्रिभान्यर्कभुक्तभात् । अशुभं च शुभं ज्ञेयं कृषिकर्मण्यनुक्रमात् ॥ २० ॥ *नारदः*-हलभृद्वृषनाशाय भत्रयं सूर्यभुक्तभात् । अग्रेवृद्ध्यै त्रयं लक्ष्म्यै सौम्यपार्श्वे च पञ्चकम् ॥ २१ ॥ शूलत्रयेऽपि नवकं मरणायान्यपञ्चकम् । श्रियै पुच्छद्वयं श्रेष्ठं स्याच्चक्रे लाङ्गले शुभम् ॥ २२ ॥

## अथ बीजोप्तिः ।

रोहिणीरेवतीहस्तपुष्यमैत्रोत्तरासु च । बीजं तु वापयेत्तस्माद्यदीच्छेत्सस्यसंपदः ॥ १ ॥ *मूषकाणां भयं मौमे मन्दे शलभकीटयोः । न वपेच्च तिथौ रिक्ते हीने* सोमे विशेषतः ॥ २ ॥ वृषलग्नेऽथवा मीने कन्यायां मिथुनेऽथवा । वापयेत्सर्वसस्यानि यदीच्छेत्सस्यसंपदः ॥ ३ ॥ *श्रीपतिः*--मूर्ध्नि त्रीणि गले त्रयं च जठरे धिष्ण्यानि च द्वादश स्यात्पुच्छे च चतुष्टयं पदिरतो भार्गा स्थितं पञ्चकम् ।

कीटः कज्जलमन्नवृद्धिरधिका निस्तण्डुलत्वं क्रमात्स्यादीतिभयं भयं न फणितो बीजोप्तिकालेऽर्कभात् ॥ ४ ॥ नारदः–भवेद्भत्रितयं मूर्ध्नि धान्यनाशाय राहुभात् । गले त्रयं कज्जलाय वृद्ध्यै च द्वादशोदरे ॥ ५ ॥ निस्तण्डुलत्वं लाङ्गूले भचतुष्टयमीरितम् । नाभौ बहिः पञ्चकं च बीजोप्ताविति चिन्तयेत् ॥ ६ ॥ कुर्वीत रेखात्रयमूर्ध्वगामि पश्चात्त्रिभिस्तत्सहितं त्रिशूलैः । पट्तिर्यगन्यद्द्वितयं विदिक्स्थं बीजोप्तिचक्रं स्मृतमेतदार्यैः ॥ ७ ॥ मूर्ध्न्यर्कयुक्तं सगतागतं भं न शोभनं कोणगतानि सन्ति । तिर्यक्स्थितं मध्यफलं भपट्कं फलं न यच्छन्ति नवापराणि ॥ ८ ॥ न व्यतिपाते विष्टयां वैधृतिशूलादिदुष्टयोगेषु । दर्शं रिक्तां हित्वा बीजोप्तिः सस्यवृद्धये भवति ॥ ९ ॥ स्नातैर्विगतक्रोधैर्वृद्धैः शुभवाग्भिरव्यग्रैः । शकुननिमित्तबले सति वृषैरकृष्णैर्वपेद्बीजम् ॥ १० ॥ बीजोप्तिर्लग्नगे चन्द्रे तद्दिने च विशेषतः । गुरौ केन्द्रे शुभैर्युक्ते दृष्टयोः कर्मलग्नयोः ॥ ११ ॥ त्वं वै वसुंधरे देवि सितपुष्पफलप्रदे । नमस्ते मे शुभं कृत्वा कृषिवृद्धिकरी शुभे ॥ १२ ॥ रोहन्तु सर्वसस्यानि काले देवः प्रवर्षतु । कर्षकस्तु वदेदेवं धनधान्येन युज्यते ॥ १३ ॥

इति बीजोप्तिः ।

---

## अथ धान्यच्छेदनम् ।

धान्यानां लवनं कुर्याद्गुरौ शुक्रे च सर्वदा । रिक्तावर्जं तु शेषाश्च तिथयः स्युः शुभावहाः ॥ १ ॥ रेवतीहस्तमूलेषु श्रवणे भाग्यमैत्रयोः । पितृदैवे तथा सौम्ये धान्यच्छेदे भृगूदये ॥ २ ॥ अनूराधा तथा ज्येष्ठा रेवती धान्यकर्तने । केवले सिंहलग्ने च तथैव च गुरूदये ॥ ३ ॥ धान्यानां लवनं कुर्यात्तथा लग्नेन्दुसंगमे । सर्वेषामपि वृक्षाणां प्राह श्रेष्ठतमं मुनिः ॥ ४ ॥ सपत्रौ मापमुद्गौ च यवधान्ये सकञ्चुकं । छिन्द्यात्तिलं च निष्पन्नमेतत्पाराशरं मतम् ॥ ५ ॥

## अथ धान्यसंग्रहः ।

रोहिण्युत्तरपुष्येषु भरणीशक्रनैर्ऋते । पौष्णार्काश्विविशाखासु हरिमित्रपुनर्वसौ ॥ १ ॥ चित्रासु च मघायां च जीवार्केन्दुभृगोर्दिने । अरिक्तायां तिथौ चैव सस्यानां संग्रहो हितः ॥२॥ रोहिण्यार्द्रामघाहस्तरेवतीश्रवणेषु च । मन्ददृष्टिस्थिरे लग्ने धान्यसंग्रह इष्यते ॥ ३ ॥

## अथ बीजसंग्रहः ।

हस्तचित्रादितिस्वातीरेवतीश्रवणद्वये । स्थिरे लग्ने गुरोर्वारे बीजं धार्यं

न्शुक्रयोः ॥ १ ॥ माघे वा फाल्गुने वाऽपि सर्वबीजानि संग्रहेत् । शोषयेत्ता- पयेद्रौद्रे रात्रावुपनिपातयेत् ॥ २॥ दीपाग्निधूमसंस्पृष्टं वृष्ट्या चोपहतं च यत्। वर्जनीयं सदा बीजं कुरुण्डेनान्वितं च यत् ॥ ३ ॥

## अथ मेथी ।

रोहिणी रेवती मूलं स्वाती हस्तो मृगस्तथा । आषाढोत्तरयुक्ता च तथा भाद्रपदा मता ॥ १ ॥ वेधने सर्वबीजानां तथा शालप्रवेशने । दुःखदा धनदा चैवानुराधोत्तरफल्गुनी ॥ २ ॥ वटश्च सप्तपर्णश्च गम्भारी शाल्मली तथा । औदुम्बरी तथा धात्री या चान्या क्षीरवाहिनी ॥ ३ ॥ स्त्रीनाम्नी कर्षकैर्नित्यं मेथी कार्या फलप्रदा ॥ ४ ॥

## अथ धान्यस्थापनम् ।

यमादितिमघाज्येष्ठात्र्युत्तरासु च कारयेत् । मीनलग्ने शुभे ऋक्षे निधने क्रूरवर्जिते । निक्षेप्यं कोष्ठके धान्यं गर्गो वदति सर्वदा ॥ १ ॥

## अथ धान्यनिष्क्रमणम् ।

त्रिपूत्तरेषु रोहिण्यां धनिष्ठावारुणेषु च ।एतेषु षट्सु विज्ञेयं धान्यनिष्क्रमणं बुधैः ॥ १ ॥

## अथ चौर्यम् ।

मिश्रोग्रदारुणधिष्ण्यलग्ने क्रूरग्रहस्य च । भौमे खे ज्ञे तनौ चौर्यं शकुनस्य बले सति ॥ १ ॥ चौर्यं मन्दारयोर्वारे लग्ने क्रूरग्रहस्य च । शकुनस्य बले कुर्याल्लग्ने दशमगे कुजे ॥ २ ॥

## अथ द्रव्यार्पणम् ।

चरैः क्षिप्रैश्चरे लग्ने बुधे धर्मसुताष्टमे । व्यवहारादिना द्रव्यप्रयोगो मुनिभिः स्मृतः ॥ १ ॥ साधारणोग्रतीक्ष्णेषु स्वात्यां द्रव्यं न लभ्यते । दत्तं प्रयुक्तं निक्षिप्तं नष्टं चेत्याह नारदः ॥२॥ भरण्यां संग्रहं कुर्यात्पञ्चके न त्रिपुष्करे। ऋणकर्म चरैः क्षिप्रैर्ऋणच्छेदः कुजे हितः ॥ ३ ॥ चम्पके पञ्चगुणितं त्रिगुणं च त्रिपुष्करे। यमले द्विगुणं प्रोक्तं हानिवृद्ध्यादिकं बुधैः ॥ ४ ॥ ऋणं भौमे न कुर्वीत न देयं बुधवासरे । ऋणच्छेदं कुजे कुर्यात्संचयं सोमनन्दने ॥ ५ ॥ हस्तेऽर्कवारे संक्रान्तौ यदृणं स्यात्कुलेषु तत् । वृद्धियोगे तथा ज्ञेयमृणच्छेदं तु कारयेत् ॥ ६ ॥ धनादिस्थापने क्रूरास्त्र्यायारिस्थाः खगो रविः । त्रिरन्ध्रान्त्ये शुभाः सौम्याः कृष्णेऽब्जो धनगो न सन् ॥ ७ ॥

## अथ गोक्रयविक्रयादि ।

आदित्यद्विवसुद्व्यन्त्यार्केन्द्रद्वीशैः क्रयादि गोः । दर्शभूताष्टमीचित्राध्रुवकर्णार्कभाद्यसत् ॥ १ ॥ सोमार्किवैधृतौ पाते लग्ने पञ्चानने बुधे । भद्रासंक्रान्तिरिक्तासु पशुकर्म विवर्जयेत् ॥ २ ॥ शुभग्रहोदये शुद्धे नैधने स्वर्क्षयोनिषु । रक्षावृद्धिक्रिया शस्ता पशूनां मुनिभिः स्मृता ॥ ३ ॥ नेन्दौ मन्दे सिंहलग्ने पशोर्यानप्रवेशने । सौमे लग्ने बुधे गावो न चाल्यास्तुरगाः शनौ ॥ ४ ॥ पूर्वात्रयामृतमयूखहुताशनेषु चेन्द्राग्निवाजिवसुधारणशांकरेषु । एतेषु गोमहिषदन्तितुरङ्गमादिनानाप्रकारपशुजातिगतिः प्रशस्ता ॥ ५ ॥ नासत्यपौष्णकरपुष्यशिवाजपादमूलाप्यसौम्यबहुलावसुमित्रभेषु । वृद्ध्यै गवां हि दधिमन्थनमेषु कुर्याद्रिक्ताद्विपञ्चमदिनार्किकुजेन्दु हित्वा ॥ ६ ॥

## अथाश्वकर्म ।

आदित्ये वासवे पौष्णद्वये स्वात्यां करे मृगे । अरिक्ते ज्ञत्रयार्काहे वाजिकर्माखिलं हितम् ॥ १ ॥ नारदः–विविष्णुचरभे क्षिप्रे मृदुभे स्थिरभेषु च । वाजिकर्माखिलं कार्यं सूर्यवारे विशेषतः ॥ २ ॥ गुरुशुक्रयुते लग्ने सर्वैश्च त्रिषडायगैः । चन्द्रे सप्तद्विबन्धुस्थे हयकर्म शुभं भवेत् ॥ ३ ॥ घृतार्द्रचणकक्षीरतृणमुद्गादिभक्षणे । अन्नप्राशनवद्दर्से स्नानं सौम्यग्रहोदये ॥ ४ ॥ अश्वकार्यं च कल्याणं पुंनामर्क्षाश्विवारुणे । आरोहणं च केन्द्रस्थैः शुभेऽर्के त्र्यद्रिगैः परैः ॥ ५ ॥ चौलोक्तं क्षुरकर्मादौ भेषजे भेषजोदितम् । गर्भाधानोक्तमश्वानां मैथुने तु विलोकयेत् ॥ ६ ॥ गृहारम्भोदिते काले हयशाला विधीयते । शिक्षा विद्योक्तकाले च भूषणं भूषणोदिते ॥ ७ ॥ चर्मकर्मादिकं सर्वं जययोगे शुभोदये । एवं खरोष्ट्रादिकार्यं पूर्वोक्ते वाहनादिकम् ॥ ८ ॥ महिष्याजाविकं कार्यं तावत्काले विशेषतः । शनैर्वारे च केन्द्रस्थे वासरोष्ट्रशुनां तथा ॥ ९ ॥ चक्रेऽश्वः शिरपञ्चके सुखकरः पृष्ठे च दिग्लाभदः पुच्छे द्वे गृहिणीविनाशनकरः पादेऽब्धिभङ्गो भवेत् । नाशं चोदरपञ्चभिश्च कुरुते चाऽऽस्ये द्विलाभो भवेद्देहे चाऽऽनयरोहणे फलमिदं सूर्यर्क्षतो वा क्रमात् ॥ १० ॥

## अथ नूतनाश्वपल्याणम् ।

अश्वाकारं लिखेच्चक्रमश्विन्याः साभिजिन्न्यसेत् । मुखे वेदाः ४ शीर्षे त्रीणि ३ पृष्ठे सिन्धव ७ एव च ॥ १ ॥ पृष्ठे चत्वारि ४ दीयन्ते द्वौ द्वौ २ पादे च षड् ६ हृदि । जन्मधिष्ण्यं मुखे देयं गणयेद्दिनऋक्षतः ॥ २ ॥ मुखे च धनसंपत्तिः शीर्षे लाभस्तुरङ्गमे । पृष्ठे च श्रियमाप्नोति पुच्छे लक्ष्मीर्विनश्यति ॥३॥

चरणे भयमाप्नोति हृदि सौख्यादिवर्धनम् । पल्याणे रोहणे चैव फलं प्रोक्तं शुभाशुभम् ॥ ४ ॥

## अथ पक्षिकर्म ।

पक्षिद्रेष्काणगे चन्द्रे लग्ने वा शुभसंयुते । पक्षिकर्म शुभं प्रोक्तं बुधे मन्दे बलान्विते ॥ १ ॥ तुलामध्यान्तासिंहाद्याः कुम्भाद्याः पक्षिणः स्मृताः । शुभस्वामियुता दृष्टा भवन्ति बलिनस्तु ते ॥ २ ॥

## अथ स्थलाम्बुवनचारिकर्म ।

स्वयोनिभे तनौ शुद्धे शुभस्वामियुतेक्षिते । सर्वं कर्म शुभं प्रोक्तं स्थलाम्बुवनचारिणाम् ॥ १ ॥

## अथ शत्रुबन्धनम् ।

मन्दभौमदिने लग्ने द्रेष्काणे शृङ्खलान्विते । बन्धनं वृद्धियोगे वा कार्यं दृढिस्वरोदये ॥ १ ॥ मीनकर्कटयोरन्त्यौ वृश्चिकस्याऽऽद्यमध्यमौ । सर्वे चत्वार एवैते द्रेष्काणा निगडाश्च ते ॥ २ ॥

## अथ पुष्पफलोत्तारणम् ।

द्रेष्काणः कर्कटाद्यस्तु फलपुष्पयुतः स्मृतः । शुभस्वामियुते चास्मिंस्तदुत्तारणजं शुभम् ॥ १ ॥

## अथौषधनिष्पादनम् ।

मन्दारवर्जिते वारे चरक्षिप्रमृदुध्रुवैः । सूर्यसौम्यैः केन्द्रगतैर्भेषजोत्पादनं हितम् ॥ १ ॥ रसक्रिया सुधायोगे शुद्धौ चूर्णादिकं तथा । तैलाज्यगुटिकाः क्षिप्रचरैः सौम्यार्कवासरे ॥ २ । लग्नं तुर्यं शुभस्वामियुतं दृष्टं शुभावहम् । निर्माणं वर्धमानेन्दौ भेषजानां शुभा क्रिया ॥ ३ ॥

## अथौषधग्रहणम् ।

पुष्टिदं गर्भवृद्ध्यादिज्वरादिहरणं परम् । एवं विविधमाचार्यैश्चिकित्सनमिहोच्यते ॥ १ ॥ मूलानुराधवसुतिष्यपुनर्वसौ च पौष्णाश्विनीश्रवणशाक्रसमीरणेषु । वारेषु चाङ्गिरसितेन्दुदिनेषु शस्तं भैषज्यभक्षणमिदं नियतं नराणाम्॥२॥ सौम्यग्रहबले शुद्धे व्ययादिमूर्ननधने । आयुर्योगे जातकोक्ते सेव्यं सर्वं सदौ-

पधम् ॥ ३ ॥ लग्नं वैद्यो द्युनं व्याधिर्मध्यं रोगी खमौषधम् । शुभयुक्तं च रोगघ्नं पापयुग्रोगवृद्धिकृत् ॥ ४ ॥ पञ्च कर्माणि कुर्वीत प्रोक्तभद्रोत्तरासु च । वमनं रेचनं मुक्तिरूर्ध्वाधःपार्श्वभैरुत ॥ ५ ॥ रक्तस्रावं कुजे कुर्यात्तद्धोरायामथापि वा । कुजे केन्द्रेऽथवा मन्दे रवौ वा विखलेऽष्टमे ॥ ६ ॥ अग्निभात्तुर्यतुर्यर्क्षे जया रिक्ताऽष्टमं शिरः । वारस्तत्पुनश्चरं लग्नमृणरोगादिघातने ॥ ७ ॥ व्रणक्रिया कुजे सूर्ये केन्द्रगे तद्दिनेऽष्टमे । शुद्धे षष्ठे च सक्रूरे चरलग्ने शुभस्वरे॥८॥

## अथ रोगमुक्तिस्नानम् ।

हस्तः पुष्यस्तथा ज्येष्ठा श्रवणं च मृगस्तथा । शुभान्येतानि ऋक्षाणि स्नाने रोगगतस्य च ॥ १ ॥ श्रीपतिः–इन्दोर्वारे भार्गवे च ध्रुवेषु सार्पादित्ये स्वातियुक्तेषु भेषु । पित्र्ये चान्त्ये चैव कुर्यात्कदाचिन्नैव स्नानं रोगमुक्तस्य जन्तोः ॥ २ ॥ अर्कार्किभौमेज्यदिनेषु शस्तं लग्ने स्थिरे केन्द्रगते च जीवे । कार्येस्थिरत्वं कुरुतेऽर्थसिद्धिं स्नात्वा तु रोगी भवति ह्यरोगः ॥ ३ ॥ प्रतिपच्च द्वितीया च दशमी च त्रयोदशी । स्नायाद्रोगविमुक्तस्तु शुभयोस्तारचन्द्रयोः ॥ ४ ॥ लग्ने चरे सूर्यकुजार्किवारे जयासु रिक्तासु सिते च पक्षे । मृतित्रिभायारिगतैश्च पापैः स्नानं हितं रोगविमुक्तजन्तोः ॥ ५ ॥ रोगाभ्यङ्गे चरं लग्नं शुभं व्यन्त्याः शुभाशुभाः । केन्द्राष्टकोणगाः पापाः सान्त्यान्दुष्टफलान्विदुः ॥ ६ ॥ वैधृतौ व्यतीपाते च भद्रायां धिष्ण्यसंक्रमे । रोगमुक्तो नरः स्नायात्कुवारर्क्षतिथिष्वपि ॥ ७ ॥ द्युनं पापयुतं शस्तं दशमं च शुभान्वितम् । सौम्यक्रूरयुतं रन्ध्रं रोगस्नानेऽरिभं तथा ॥ ८ ॥ रक्तस्रावे शुभं स्नानं सुधायोगे शुभोदये । बुधमन्ददिने पापरहितेऽनिष्टभोदये ॥ ९ ॥

## अथ सूतिकास्नानम् ।

मघामूलविशाखार्द्राचित्रादितियमद्वये । ज्येष्ठासार्पजलेशर्क्षे नैव स्नायात्प्रसूतिका ॥ १ ॥ शुभग्रहयुते लग्ने पञ्चमे पापवर्जिते । परित्यज्य महादोषान्सूतिकास्नानमुत्तमम् ॥ २ ॥

## अथ शतभिषक्स्नानफलम् ।

स्नानं कुर्वन्ति या नार्यश्चन्द्रे शतभिषग्गते । सप्तजन्म भवेयुस्ता विधवा दुर्भगा ध्रुवम् ॥ १ ॥ रोहिणीगुरुपुनर्वसूत्तरे या बिभर्ति नववस्त्रभूषणम् । सप्तजन्म न च विन्दते पतिं स्नानमाचरति भे च वारुणे ॥ २ ॥ हठाच्छतभिषक्स्नानं नारीणां यदि जायते । पूजयेत्स्वामिनं तत्र आत्मने सर्वसत्कृतम् ॥ ३ ॥

## अथ प्रसङ्गेन तैलाभ्यङ्गः ।

सप्तम्यां न स्पृशेत्तैलं नवम्यां प्रतिपत्तिथौ । चतुर्दश्यामथाष्टम्यां षष्ठ्यां चैव विशेषतः ॥ १ ॥ चतुर्दश्यष्टमी चैव पौर्णमास्यर्कसंक्रमः । तैलस्नानं न कुर्वीत सुतबन्धुधनक्षयः ॥ २ ॥ सोमे कीर्तिः प्रसरति क्षितौ रौहिणेये हिरण्यं देवाचार्ये तरणितनये वर्धते नित्यमायुः । तैलाभ्यङ्गात्तनयमरणं दृश्यते सूर्यवारे भौमे मृत्युः प्रभवतितरां भार्गवे वित्तनाशः ॥ ३ ॥ दर्शे स्नानं न कुर्वीत मातापित्रोस्तु जीवतोः । नवम्यां च नचेत्तत्र निमित्तान्तरसंभवः ॥ ४ ॥ प्रतिपद्यनपत्यः स्यात्तृतीयायामपत्नीकः । दशम्यामधनः स्नाने सर्वं हन्ति त्रयोदशी ॥ ५ ॥ अयं निषेधो ब्राह्मणव्यतिरिक्तविषयः । तदुक्तं भास्करव्यवहारे–त्रयोदश्यां द्वितीयायां दशम्यां च विशेषतः । शूद्रविट्क्षत्रियाः स्नानं नाऽऽचरेयुः कथंचन ॥ ६ ॥ पुत्रजन्मनि संक्रान्तौ सिद्धिजन्मदिने तथा । नित्यस्नाने च कर्तव्ये तिथिदोषो न विद्यते ॥ ७ ॥ सूर्यशुक्रारवारेषु निषिद्धासु तिथिष्वपि । उत्सवे यदि वा स्नाने पक्वतैलं न दुष्यति ॥ ८ ॥ रवौ पुष्पं गुरौ दूर्वा भौमवारे च मृत्तिका । शुक्रे च गोमयं क्षेप्यं तैले स्नानं सुखावहम् ॥ ९ ॥

## अथ प्रथमस्त्रीभोगः ।

द्विपदाप्ये तनौ सौम्यदृष्टे युक्ते तनौ शुभे । प्रथमाभिगमः श्रेष्ठश्चन्द्रे चोपचयस्थिते ॥ १ ॥ यात्रोक्ते समये यानं प्रवेशोक्ते प्रवेशनम् । विवाहोक्ते नवो भोगः शेषं स्त्रीणां शुभोदये ॥ २ ॥

## अथ मद्यारम्भः ।

मद्यारम्भणमाचार्यैरुक्तं पैत्रेशसार्पभे । मूलवारुणयाम्यैश्च त्रिपूर्वाशक्रभैः शुभम् ॥ १ ॥ सुधायोगे सुधारम्भः कर्तव्यो मनुजोदये । शुक्रे चन्द्रे च केन्द्रस्थे तत्पानं च शनेर्दिने ॥ २ ॥

## अथ व्यालग्रहणम् ।

व्यालाद्यग्रहणं कार्यं क्रूरलग्ने च तद्दिने । हित्वा कालादिकं राहौ केन्द्रगे वा शनौ कुजे ॥ १ ॥ यमाग्निसार्पमूलार्द्रामघाद्रीशेषु नश्यति । सर्पदष्टस्तथाऽर्कादौ याम्येष्वर्कोदयात् क्रमात् ॥ २ ॥

## अथ गजकर्म ।

त्वाष्ट्रभे वैष्णवेऽश्विन्यां वारुणे वसुभेऽन्तिमे । दन्तिनां शुभदं कर्म पुष्ये हस्ते च कीर्तितम् ॥ १ ॥ पौष्णाश्विनीपवनवारुणशीतरश्मिचित्रादितिश्रवणपाणि-

सुरेज्यवित्ते। वारेषु सूर्यशशिसूनुसितेज्यकानामारोहणं गजतुरङ्गरथेषु शस्तम् ॥२॥ व्ययाष्टरहितैः सौम्यैः क्रूरैश्च त्रिषडायगैः। जन्माभिषेकयात्रोक्तैर्नृपयोगैर्गजक्रिया ॥ ३ ॥ न कुर्याद्दन्तिदन्तानां छेदं गुरुगृहे रवौ। हरौ सुप्ते सिते पक्षे रात्रौ भौमार्कवासरे ॥ ४ ॥ पल्याणं च तनुत्राणं जययोगे शुभोदये। भेषजं भेषजे काले गजबन्धः शनेर्दिने ॥ ५ ॥

## अथ बलकर्म।

जयापूर्णार्कसद्वारे भांशे शीर्षोदये शुभैः। ससूर्यैः केन्द्रगैरिन्दोर्बले कार्या बलक्रिया ॥ १ ॥

## अथ नृपदर्शनम्।

श्रुतित्रयमृदुक्षिप्रध्रुवैः कार्यं नृपेक्षणम्। योगैर्यात्राभिषेकोक्तैः स्वायकेन्द्रगतैः शुभैः ॥ १ ॥

## अथ शान्तिः।

मृदुध्रुवचरक्षिप्रैः कार्यं शान्तिकपौष्टिकम्। अभद्रारार्किरिक्तासु शुद्धधर्मोदये शुभम् ॥ १ ॥

## अथ दीपिकाशय्यादि।

हस्तादितिब्रह्मगुरूत्तरेषु पौष्णाश्विमूलेन्दुजचित्रभेषु। वारेषु जीवेन्दुसितेन्दुजानां शय्यासनारम्भ (म्भो) हितप्रदः स्यात् ॥ १ ॥ दीपिकाचामरच्छत्रदोलाशय्यासनादिकम्। सुधासिद्ध्यादि सद्योगैरायुर्योगैर्जयैः शुभैः ॥ २ ॥

## अथ सूची।

अदितिर्वासवं चित्रा मैत्रमैन्दवमश्विनी। सूचीकर्म तनुत्राणं शुभयुक्तेक्षिते तनौ ॥ १ ॥

## अथ दिव्यम्।

नाष्टमेऽर्के विधौ जीवे शुक्रे नष्टे मलिम्लुचे। दिव्यं मन्दारयोर्वारे स्थिरलग्ने खलोदये ॥ १ ॥

## अथ नौका।

भाग्यवारुणमैत्राश्विपुष्यभेषु घटनं तरेः। चालनं च शुभे लग्ने सद्वारे दोषवर्जिते ॥ १ ॥

---

१ क. रवौ गु°। २ क. शस्ता। ३ क. भिमूर्धेन्दु°।

## अथ क्रूरम् ।

कृष्णपक्षे सदोपर्क्षे मिश्रैरुग्रैश्च दारुणैः । सिध्यन्ति क्रूरकर्माणि क्रूरवारे तथोदये ॥ १ ॥

## अथ शस्त्रनिर्माणम् ।

क्रूरैस्तीक्ष्णैश्च मिश्रैश्च शस्त्रकर्माणि कारयेत् । शनीज्यार्कारवारेषु पुंयोगैश्च विशेषतः ॥ १ ॥ ब्राह्मे पुष्ये श्रुतौ दास्रे मैत्रे भृगिन्दुवासरे । नन्दापूर्णातिथौ मृत्युर्बुधवारे पराजयः ॥ २ ॥ स्वातौ पौष्णे वसुद्वन्द्वे कोशपत्नीविनाशनम् । चित्रोत्तरा सुतं हन्यान्मृगार्कादिनिभे भयम् ॥३॥ कृत्तिकायां विशाखायां भौमवारे जयातिथौ । तद्दिने घटितं शस्त्रं सङ्ग्रामे जयदायकम् ॥ ४ ॥

## अथ शस्त्रधारणम् ।

संनाहकुन्तखड्गादिधारणं सवितुर्बले । मिश्रोग्रक्रूरभैः पुंभैर्जययोगैः स्वरोदितैः ॥ १ ॥

## अथाभ्यासः ।

हस्तत्रये श्रुतौ दस्रे पुष्यादित्याग्निभोत्तरे । जन्मभे सर्वशस्त्राणामभ्यासः सद्भिरुच्यते ॥ १ ॥ इज्यभौमार्कवारेषु तद्धोरातद्विलग्नके । सबलैः केन्द्रगैरेभिस्तथोपचयगैः शुभैः ॥ २ ॥ नृपावलोकनं शस्त्रधारणं भृत्यसंग्रहः । शुभदं स्याद्ध्रुवमृदुलघुश्रवणवासवैः ॥ ३ ॥

## अथ धनुरभ्यासः ।

हस्तत्रये श्रुतौ पुष्ये दस्रादित्याग्निभोत्तरे । जन्मभे च धनुर्वेदाभ्यासारम्भः प्रशस्यते ॥ १ ॥ जीवारार्कज्ञवारेषु तद्विलग्ने जयासु च । शुभैर्वृद्धिस्थैरर्क्षेज्यमन्दारैः केन्द्रगैः शुभैः ॥ २ ॥ धनुश्चक्रं कृते शस्त्रं त्रेतायां खड्गचर्मके । द्वापरे च गदाचूरी मल्लयुद्धं कलौ नरम् ॥ ३ ॥ इषुर्ब्रह्मा गुणो विष्णुर्धनुर्देवो महेश्वरः । एतेषां स्मरणादेव सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४ ॥ शार्ङ्गं वांशं दारवीयं तृणराजोद्भवं धनुः । मुष्टिः शुभोदरा नागा रज्जा रम्या मपूर्विका ॥ ५ ॥ भग्नपृष्ठं तथा यक्रं नास्ति नोन्नतपूरकम् । अतिदीर्घापपर्वाणं वर्जयेदिषुमीदृशम् ॥ ६ ॥ गाण्डीवं वर्तुलं ज्ञेयं वैष्णवं स्यात्त्रियम्बकम् । पिनाकं दारुकं ज्ञेयं शार्ङ्गं स्याद्द्रुमशृङ्गजम् ॥७॥ यस्यांसौ पतितौ पुरश्च विततं शिष्यश्चित(?) मस्तक पादौ स्थानकतौ त्रिकं त्रिनमितं मुष्टौ शुभौ द्वावपि । दृष्टिर्लक्ष्यगता न गितमुदकं पाण्यां क्रतु

१ क ख पुस्तके ।

संस्थितौ नासा सायकचुम्बिनी यदि भवेत्प्राप्तं तदा सौष्ठवम् ॥ ८ ॥ सुवृत्तः सुदृढो दीर्घः सुश्लिष्टो गुरुहीरकः । स्निग्धः श्लक्ष्णः सुस्वरश्च गुणस्याष्टौ गुणाः स्मृताः ॥ ९ ॥ आकर्णं पूरयेद्बाणं बाणाग्रं च निरीक्षयेत् । विद्धं तत्तु विजानीयाद्यदि बाहुर्न कम्पते ॥ १० ॥ आकर्णं पूरयित्वा तु सर्वत्राणेन सायकम् । पार्श्वप्रवर्तितं किंचिन्न शृणोति न पश्यति ॥ ११ ॥ यथा योगीश्वरो लक्ष्यं विहायान्यान्न पश्यति । तद्वच्छून्येतराक्षो वा चक्षुर्भ्यां लक्ष्यमानयेत् ॥ १२ ॥ लक्ष्ये चैकमना भूत्वा वेधने कृतनिश्चयः । चेदेवं सायकं मुञ्चेद्विद्धं लक्ष्यं न संशयः ॥ १३ ॥ दृष्टिर्मुष्टौ शराग्रे च मनो बुद्धिश्च हुंकृतिः । स्युर्यदेतानि युगपल्लक्ष्यवेधस्तदा भवेत् ॥ १४ ॥ मध्याह्नसमये चैव वहत्यतिसमीरणे । संमुखे चैव सूर्यस्य न कुर्याद्बाणमोचनम् ॥ १५ ॥ श्रमं धनुषि ये नित्यं न कुर्वन्ति धनुर्धराः । लक्ष्यवेधः कुतस्तेषां सङ्ग्रामे च कुतो जयः ॥ १६ ॥

## अथ वैदिको बाणमन्त्रः ।

धन्वनागा इत्यादि सर्वाः प्रदिशो जयेमेत्यन्तम । अयं नो अग्निरित्यादि शत्रूञ्जयत्वित्यन्तम् ।

## अथ स्मार्तो बाणमन्त्रः ।

मुष्टिं त्यक्त्वाऽल्पपर्वाङ्गो हस्तोनः शेपमष्टहृत् । आयः स्याद्विषमो मध्यं स मेऽरिजयदो हरिः ॥ १७ ॥

## अथ खड्गादिलक्षणम् ।

पञ्चाशदङ्गुलः श्रेष्ठो हीनस्तन्मानतोऽधमः । अनयोरन्तरे मध्यं खड्गं प्राहुर्महर्षयः ॥ १ ॥ ह्रस्वं कण्ठे छिन्नवंशं स्फुटितं विस्वनं जगुः । न दृङ्मनोनुकूलं च तन्निन्द्यं शुभमन्यथा ॥ २ ॥ गोजिह्वावंशपत्राब्जकरवीरदलाकृति । सूच्यग्रसदृशं श्रेष्ठं स्यादतोऽन्यदशोभनम् ॥ ३ ॥ रम्भाक्षारतक्रयुतः पायितो दिनपोषितः । शितः सम्यक् कुण्ठतां स न गच्छति शिलास्वपि ॥ ४ ॥ एकादशकरः कुन्तो नवहस्तस्तु शावलः । सप्तहस्तो भवेद्भल्लः क्षेपणी पञ्चहस्तका ॥ ५ ॥ त्रिशूलमष्टहस्तं च शल्यमूलं त्रिहस्तकम् । सार्धहस्तत्रयासङ्गि मुशलं यष्टिकं तथा ॥ ६ ॥ तरवारी पट्टिशं च दीर्घकं नारसिंहकम् । कात्यायनं बाणकं च ज्ञातव्यं खड्गविद्बुधैः ॥ ७ ॥

---

१ प. 'मुष्टिः श' । २ प. 'शमं मे ।

## अथ च्छुरिकाश्रमविधिः ।

तिथ्यादिके शुभे ताराचन्द्रलग्नबलान्विते । काले श्रमक्रिया शस्ता त्यक्त्वाऽनध्यायवासरम् ॥ १ ॥ रुद्रहस्तमिता दैर्घ्ये विस्तारे नवदण्डका । सर्गारिकतला वृद्धौ श्रमभूमिः प्रशस्यते ॥ २ ॥ तत्र संस्थाप्य वेतालं सुमुहूर्ते विलग्नके । कटिस्थच्छुरिकाहस्तः प्रसारितकरः परः ॥ ३ ॥ किंचिदानतपूर्वार्धे भूतचण्डान्तकं शुभम् । सरोपाक्षं लोहिताक्षं धावन्तमिव संस्मरेत् ॥४॥ गुरूपदिष्टमार्गेण वेतालमतमभ्यसेत् । गुरुद्रोहाद्भङ्गिमतं शिष्टैर्नैहोररीकृतम् ॥ ५ ॥

## अथ ताम्बूलम् ।

हस्तत्रये दितिद्वन्द्वे मृगे मूले शुभान्विते । ज्ञार्केज्यान्त्यनृपे लग्ने कार्यं ताम्बूलभक्षणम् ॥ १ ॥ पुष्योत्तरादितिदिवाकरवाजिपौष्णमूलानुराधवसुवासववैष्णवेषु । वारेषु सौरिधरणीधरवारवर्जे ताम्बूलनूतनफलाद्यशनं शुभाय ॥ २ ॥ यन्मुखं वेदविभ्रष्टं ताम्बूलरसवर्जितम् । सुभाषितपरिभ्रष्टं तन्मुखं बिलमब्रवीत् ॥ ३ ॥ सुपूगं च सुपर्णं च सुधया च समन्वितम् । दत्त्वा स द्विजराजेभ्यस्ताम्बूलं भक्षयेत्ततः ॥ ४ ॥ सुताम्बूलं च यो दद्याद्ब्राह्मणाय विशेषतः । कन्दर्पसदृशो रूपे नीरोगो जायते नरः ॥ ५ ॥ क्रमुकात्तृप्यते ब्रह्मा विष्णुस्तृप्यति पर्णतः । चूर्णादीशस्तु तृप्येत ताम्बूलदानमक्षयम् ॥ ६ ॥ ताम्बूलं श्रीकरं भद्रं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् । अस्य प्रदानात्सकला मम सन्तु मनोरथाः ॥ ७ ॥ एकपूगं सदा श्रेष्ठं द्विपूगं निष्फलं भवेत् । अतिश्रेष्ठं त्रिपूगं च ह्यधिकं नैव दृश्यते ॥८॥ द्वात्रिंशत्पर्णकं चैव दद्यात्सर्वं महीभुजे । चतुर्विंशतिपर्णं च सामन्तानामनुस्मृतम् ॥ ९ ॥ दशाष्टपर्णकं देयं जामातॄणां विशेषतः । द्वादशपर्णं विदुषे वधूनां दशपर्णकम् ॥ १० ॥ अष्टपर्णं च सर्वेषां सामान्ये तुर्यपर्णकम् । त्रिपर्णं तु न दातव्यमेकपर्णं तथैव च ॥ ११ ॥ षट्पर्णं चैव दातव्यं रिपूणां च विशेषतः । एकद्वित्रिचतुःपञ्चषड्भिः पूगीफलैः क्रमात् ॥ १२ ॥ लाभालाभौ सुखं दुःखमायुर्मरणमेव च । पर्णमूले भवेद्व्याधिः पर्णाग्रे पापसंभवः ॥ १३ ॥ चूर्णपर्णं हरत्यायुः शिरा बुद्धिविनाशिनी । ऊर्ध्वाग्रं त्रिटकं धार्यं पर्णमेकं तथैव च ॥१४॥ अङ्गुष्ठचूर्णलेपं च चर्वितं धनदायकम् । पर्णाग्रं पर्णमूलं च चूर्णपर्णं द्विपर्णकम् ॥ १५ ॥ अनिधाय मुखे पर्णं पूगं खादति यो नरः । सप्तजन्मदरिद्रत्वमन्ते विष्णुं न विन्दति ॥१६॥ तर्जन्या चूर्णमादाय ताम्बूलं न तु खादयेत् । यदि वा

१ क. °धून° । २ घ. °र्दनं शारर्गीकृ° । ३ क. °त्वर्ष्ट° । ४ घ. °पेभ्युनां । ५ घ. पूर्गं° ।

खादयेन्मूढो रौरवं नरकं व्रजेत् ॥१७॥ कनिष्ठानामिकामध्यातर्जन्यङ्गुष्ठयोगतः। शोको हानिस्तथा मृत्युरनैश्वर्यायुषी तथा ॥१८॥ वामहस्तेन ताम्बूलं स्त्रीहस्तेन तथैव च। यदि वा खादयेन्मूढस्तस्य लक्ष्मीर्विनश्यति ॥१९॥ अङ्गुष्ठेन तु लेपश्चेत्सर्वसिद्धिप्रदायकः। जयश्रीवस्त्रलाभादि भविष्यति न संशयः ॥ २० ॥ दिवा खदिरसारेण ताम्बूलं तु सुशोभितम्। रात्रौ खदिरसारेण शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥ २१ ॥ ताम्बूलं कटु तिक्तमुष्णमधुरं क्षारं कषायान्वितं वातघ्नं कृमिनाशनं कफहरं कामाग्निसंदीपनम्। वक्त्रस्याऽऽभरणं विशुद्धिकरणं दुर्गन्धिनिर्नाशनं ताम्बूलस्य सखे त्रयोदश गुणाः स्वर्गेऽपि ते दुर्लभाः ॥ २२ ॥ प्रातःकाले फलाधिक्यं चूर्णाधिक्यं तु मध्यतः। निशि पर्णाधिकं भक्षेत्तस्य लक्ष्मीर्विवर्धते॥२३॥ क्रमुकसारं त्रिवारं च द्विवारं पर्णसारकम्। खदिरेण सहैकं च क्षुत्क्षिपेत्सर्वदा बुधः ॥ २४ ॥

## अथ दीपविधिः।

सूर्यास्ते चैव संदीप्यो यावत्सूर्योदयो भवेत्। तावद्दीपस्तु संदीप्य आयुरारोग्यसंपदे ॥ १ ॥ पूर्वप्रदीपे पशुवर्धनं च याम्यप्रदीपे गृहनाशनं च। प्रत्यक्प्रदीपे पशुधान्यवृद्धिरुदक्प्रदीपे बहुराज्यता च ॥ २ ॥ एकदीपः सदा श्रेष्ठो द्वितये राज्यसंपदः। त्रितये हानिरोगौ च दारिद्र्यं हीनदीपतः ॥ ३ ॥ घृतेन दीपः संदीप्यो देवब्राह्मणतृप्तिदः। अलाभे तिलतैलेन सदा कुर्वीत वै द्विजः ॥ ४ ॥ उरुबूकस्य तैलेन यस्तु दीपं प्रदीपयेत्। पतिताः पितरस्तस्य यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ५ ॥ दीपे प्रलोभिते पुंसा कूष्माण्डच्छेदने स्त्रिया। अचिरेणैव कालेन वंशच्छेदो भविष्यति ॥ ६ ॥ मुखोद्भवेन वातेन हस्तसंभवनात्तथा। कञ्चुकोत्थेन मरुता दीपं नैव निवारयेत् ॥ ७ ॥ विसृजेति समुच्चार्य लोपयेद्दीपमञ्चलात्। तावच्च तूष्णीं स्थातव्यं यावच्छेपं प्रशाम्यति ॥ ८ ॥ ज्योतिर्विरहितं पात्रं धर्मोलिप्तं च कञ्चुकम्। पादुकोपानहौ खट्वां स्पृष्ट्वाऽऽचम्य विशुध्यति ॥ ९ ॥ दीपेनाऽऽत्मतनुच्छाया भर्तुर्यपरि चेत्पतेत्। तौ दंपती दारिद्र्यत्वमाप्नुवन्ति विनिश्चितम् ॥ १० ॥

## अथ स्त्रीसंभोगः।

कुहूपूर्णेन्दुसंक्रान्तिचतुर्दश्यष्टमीषु च। नरश्चाण्डालयोनिः स्यात्तैलस्त्रीमांससेवनात् ॥ १ ॥ विष्णुपुराणे–चतुर्दश्यष्टमी चैव ह्यमावास्या च पूर्णिमा। पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रान्तिरेव च ॥ २ ॥ तैलस्त्रीमांससंभोगी पर्वस्वेतेषु वै पुमान्। विण्मूत्रभोजनं नाम नरकं प्रतिपद्यते ॥ ३ ॥ कामशास्त्रे–पक्षान्निदाघे

१ घ. दीपपर्ज्ञापनपुमान्।

हेमन्ते नित्यमन्यर्तुषु त्र्यहात् । स्त्रियं कामयमानस्य जायते न बलक्षयः ॥ ४ ॥ इदं वात्स्यायने प्रोक्तं वाग्भटोक्तमथोच्यते । त्र्यहाद्वसन्तशरदोः पक्षाद्वर्षनिदाघयोः ॥ ५ ॥ सेवेत कामतः कामं हेमन्ते शिशिरे बली । एतद्विधानं केऽप्याहुः सुगर्भाधानहेतवे ॥ ६ ॥ अव्यङ्गो रूपवान्पुष्टो गर्भः स्यान्नान्यथा यतः । आयुर्वेदविदः प्राज्ञा ऊचिरे वेगधारणात् । शुक्रविण्मूत्रपूर्वाणां ( र्णानां ) देहधातुपरिक्षयम् ॥ ७ ॥ व्रती योगी मिताशी च रोगी व्यायामकृत्तथा । न सेवेत स्त्रियं तेषां बीजरोधो न बाधकः ॥ ८ ॥ आचारसारे-यथाकामं स्त्रियं गच्छेच्छक्तः कामी युवा गृही । श्यामां कान्तां विशेषेण सुखसंभोगहेतुतः ॥ ९ ॥ नीतिशास्त्रे—अनिषिद्धं सुखं भोगं कलाभ्यासं धनार्जनम् । धर्मं सत्यं च यो जह्यात्स वै मूढोऽथवा पशुः ॥ १० ॥ दीपे प्रदीप्ते संभोगं करोति मनुजो यदि । यावज्जन्म दरिद्रत्वं लभते नात्र संशयः ॥११ ॥ अग्रजा यदि या नारी पतिसङ्गं समा(नवाऽऽ)चरेत् । आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥१२॥ पादलग्नतनुश्चैव गुच्छिष्टं ताडनं तथा । कोपो रोषश्च निर्भर्त्सा संयोगे न च दोषभाक् ॥ १३ ॥ कञ्चुकेन समं नारी भर्तृसङ्गं समाचरेत् । त्रिभिर्वर्षैश्च मध्ये वा विधवा भवति ध्रुवम् ॥ १४ ॥ तद्वत्पत्रभिलस्कर्णा दानं वा मैथुनं चरेत् । पञ्चमे सप्तमे वर्षे वैधव्यमिह जायते ॥ १५ ॥ कामातुरेण या भर्त्रा संयोगं यदि याचिता । निवारयति सा नारी बालरण्डा भवेत्सदा ॥ १६ ॥ ऋतुस्नातां तु यो भार्यां संनिधौ नोपगच्छति । घोरायां भ्रूणहत्यायां पितृभिः सह गच्छति ॥ १७ ॥ कुङ्कुमं चाञ्जनं चैव ताम्बूलं सिन्दूरं तथा । पीतवस्त्रं च कुसुमं संयोगे च शुभावहम् ॥ १८ ॥ नमस्कृत्य भर्तृपादौ पश्चाच्छय्यां समाविशेत् । सा नारी सुखमाप्नोति न भवेद्दुःखभागिनी ॥ १९ ॥ गलत्ताम्बूलवदनां नग्नामाक्रन्दतीं तदा । दुर्मुखीं च क्षुधायुक्तां संयोगे परिवर्जयेत् ॥ २० ॥ दक्षकर्णे च मूत्रे तु पुरीषे वामकर्णके । धारयेद्ब्रह्मसूत्रं तु मैथुने तूपवीतवान् ॥ २१ ॥ भर्त्रुच्छिष्टं सदा भोज्यमन्नं ताम्बूलमेव च । उच्छिष्टं न तु भुञ्जीत गृहस्थो ह्यधरं विना ॥ २२ ॥

## अथ नवान्नभोजनम् ।

पुष्याश्विनीकमलयोनिशशाङ्कपौष्णहस्तादिपञ्चभगणेषु गुणान्वितेषु । वारे गुरुज्ञभृगुशीतगुभास्कराणां नव्यान्नभोजनमभीष्टकरं नराणाम् ॥ १ ॥

## अथ पात्रम् ।

शुभोज्यान्नसुधासिद्धौ यत्र्येद्वा समाहरेत् । तत्रान्नप्राशने प्रोक्ते काले भाजनमाचरेत् ॥ १ ॥

## अथ मैत्री ।

भार्गवेऽस्ते गुरौ लग्ने मन्देऽस्ते भार्गवोदये । रिपौ मन्दे सिते लग्ने त्रयो योगाः सुमित्रदाः ॥ १ ॥

## अथ दासी ।

दासीदासादिभृत्यानां कुर्यात्संग्रहणं बुधः । स्थिरलग्ने शुभैर्दृष्टे मन्दवारे विशेषतः ॥ १ ॥

## अथ सेतुः ।

स्वातीयुक्ते मन्दवारे वृषलग्ने शुभेक्षिते । सेतूनां बन्धनं कुर्याद्ध्रुवभे वाऽर्कि-जीवयोः ॥ १ ॥

## अथ सर्वकर्म ।

महादोषान्परित्यज्य प्रोक्ते धिष्ण्ये तिथौ दिने । शुभकर्माणि कुर्वीत सुलग्ने च विशेषतः ॥१॥ मृदुध्रुवैः स्थिरं कर्म चरक्षिप्रैश्चरं तथा । मिश्रैर्मिश्रं च तीक्ष्णोग्रैरुदग्रं चैव तद्गुणैः ॥ २ ॥ रौद्रसार्पेन्द्रयाम्याग्नित्रिपूर्वा न शुभावहाः । शेपास्ताराः शुभाख्याः स्युः सर्वकर्मसु शोभनाः ॥ ३ ॥ मृदुध्रुवचरक्षिप्रैः सद्वारे सत्तिथौ तदा । ससौम्यैः स्वस्य कृत्ये तु योज्यं नूतनसाधनम् ॥ ४ ॥ धातुलोहाश्ममृत्काष्ठनिर्मितं यत्क्रियार्थतः । साधनं तद्बुधाः प्राहुस्तृणपर्णादिकं तथा ॥ ५ ॥ सर्वे ग्रहाः शुभे कार्ये रन्ध्रगा न शुभावहाः । द्वादशे मध्यमा ज्ञेया लग्नेशोऽष्टारिगो न सन् ॥ ६ ॥ पापेन्दू लग्नगौ त्याज्यौ सर्वेषु शुभकर्मसु । अक्षीणं कार्किगोजस्थं केऽप्याहुर्लग्नगं शुभम् ॥ ७ ॥ व्रतान्नोद्वाहसीमन्तगृहारम्भाभिषेचने । त्याज्योऽरिभावगश्चन्द्रः शेपकर्मसु शोभनः ॥ ८ ॥

## अथ रोगमुक्तिदिवसाः ।

वसिष्ठः—पूर्वात्रये स्वातिभुजंगरौद्रसुरेश्वरर्क्षेषु च यस्य रोगः । स्याद्रक्षितुं देवचिकित्सकोऽपि क्षितावशक्तः खलु रोगिणं तम् ॥१॥ कृच्छ्रात्स्फुटं प्राणिति मैत्रपौष्णवभेषु मासान्छशिनश्च धिष्ण्ये । रोगस्य मुक्तिः पितृदैवधिष्ण्ये वारे भवेद्विंशतिभिस्तु नूनम् ॥२॥ पक्षाद्द्विदैवेन्द्रकरेषु भेषु मूलाश्विनाग्नित्रितये नवाहात् । तोयेशचित्रान्नकविष्णुभेषु नरुज्यमेकादशभिर्दिनैश्च ॥ ३ ॥ पुष्ये त्वहिर्बुध्न्यपुनर्वसौ च ब्राह्मार्यमर्क्षेषु च सप्तरात्रात् । ऋक्षेशरूपं यजनेन कृत्वा तल्लिङ्गमन्त्रैश्च सुगन्धिपुष्पैः ॥ ४ ॥ वस्त्राक्षतैर्गुग्गुलधूपदीपैर्नैवेद्यताम्बूलफलैश्च सम्यक् । पूजां च कृत्वाऽऽमयनाशनाय द्विजाय दद्यात्तुलं शिवाय ॥ ५ ॥

## अथ दुर्गादीनां यजनम् ।

साधारणे दारुणभे तथोग्रे रिक्तातिथौ सूर्यकुजार्किवारे । दुर्गादिकानां यजनं प्रशस्तं क्षेत्राधिपस्यापि सुरासवाद्यैः ॥ १ ॥

## अथ भूषणनिर्माणम् ।

क्षिप्रावलचलमृदुभे रिक्तामावर्जितेषु दिवसेषु । निखिलेषु च वारेषु त्रिपुष्करे भूषणं कार्यम् ॥ १ ॥

## अथ मणिधारणम् ।

क्षिप्रमृदुध्रुवचरभे शशिसितयोर्वासरेषु तल्लग्ने । मुक्ताफलरजतमयं भूषणमखिलं सवज्रकं धार्यम् ॥ १ ॥

इति शूरमहाठश्रीशिवराजविनिर्मिते । ज्योतिर्निबन्धसर्वस्वे लग्नाध्यायः समर्थितः ॥

---

## अथ शान्त्यध्यायः ।

## तत्राऽऽदौ गण्डजातफलम् ।

शौनकीयसूत्रे—पुत्रो यदि पितुर्गण्डे दिवा चैव प्रजायते । कन्यकाजननं रात्रौ मातृगण्डे तथैव च ॥ १ ॥ संध्ययोर्धनगण्डे च प्रसूतिर्यदि जायते । विनाशो जायते शीघ्रं मध्यमं तद्विपर्यये ॥ २ ॥ यवनः—यत्र गण्डं क्रूरयुतं महादोषकरं भवेत् । शुभग्रहसमायोगे ईषच्छुभकरं भवेत् ॥ ३ ॥ दिनक्षये व्यतीपाते व्याघाते विष्टिवैधृतौ । शूले गण्डातिगण्डे च परिघे यमघण्टके ॥ ४ ॥ ब्रह्मदण्डे मृत्युयोगे प्राप्ते गण्डदिने शिशुः । जातो हन्ति कुलं सर्वं तस्मात्कुर्वीत शान्तिकम् ॥ ५ ॥ धनगण्डे दरिद्रोऽपि शान्तिं कुर्यात्स्वशक्तितः । अन्यथा नाशमाप्नोति चाभुक्तर्क्षे विशेषतः ॥६॥ माण्डव्यः—जातो न जीवति नरो मातुरपथ्यो भवेत्स्वकुलहन्ता । यदि जीवति गण्डान्ते बहुगजतुरगो भवेद्भूपः ॥ ७ ॥ गर्गः—नाक्षत्रं मातरं हन्ति तिथिजं पितरं तथा । लग्नोत्थं जातकं हन्ति तस्माद्गण्डान्तमुत्सृजेत् ॥ ८ ॥ बादरायणः—दिवाजं पितरं हन्ति रात्रिजं मातरं तथा । संध्ययोर्जातमात्मानं गण्डजं नो निरामयम् ॥ ९ ॥ ज्योतिःप्रकाशे—संध्यारात्रिदिवाभागे धिष्ण्यगण्डोद्भवः शिशुः । आत्मानं मातरं तातं ध्रुवं हन्ति यथाक्रमम् ॥ १० ॥ मातरं तातमात्मानं तिथिगण्डान्तजस्तथा । लग्नगण्डान्तजस्तद्वत्तातमात्मान(नं) मातरम् ॥ ११ ॥ सर्वेषां गण्डजातानां परित्यागो विधी-

यते । अथवाऽदर्शनं तस्य मासषट्कं न कारयेत् ॥ १२ ॥ राजमार्तण्डे— गण्डप्रसूतं पुरुषं शुभमाहुरपश्यताम् । अन्ये तु होमपूर्वेण दानेन दर्शनं शुभम् ॥ १३ ॥ प्रश्नप्रदीपे—विवाहादौ भवेन्मृत्युर्जातके कुलनाशनम् । यात्रायां सर्वनाशश्च कार्यनाशोऽन्यकर्मणि ॥ १४ ॥

इति गण्डजातफलम् ।

---

## अथ गण्डदोषशान्तिः ।

तत्र राजमार्तण्डे ब्रह्मपुराणोक्त—कांस्यपात्रं प्रकुर्वीत पलैः षोडशभिर्बुधः । अष्टभिर्वा चतुर्भिर्वा द्वाभ्यां वा शोभनं समम् ॥ १ ॥ तन्मध्ये स्थापयेद्देवं नवनीतप्रपूरितम् । राजतं चन्द्रमभ्यर्च्य सितपुष्पसहस्रकैः ॥ २ ॥ दैवज्ञः सोपवासश्च शुक्लाम्बरधरः शुचिः । सोमोऽहमिति संचिन्त्य कुर्याद्देवमतन्द्रितः ॥ ३ ॥ जपेत्साहस्रिकं मन्त्रं श्रद्दधानः समाहितः । दद्याद्वै दक्षिणामिष्टां गण्डदोषोपशान्तये ॥ ४ ॥ शुद्धं चामीकरं दद्याच्चान्नपात्रं तिलान्वितम् । गण्डदोषोपशान्त्यर्थं ज्योतिर्वेदविदे शुचिः ॥ ५ ॥ ॐअमृतात्मने नमः । अयं मन्त्रः । कुङ्कुमं चन्दनं कुष्ठं गोरोचनमथापि वा । घृतपूर्णेषु कुम्भेषु चतुर्षु प्रक्षिपेत्क्रमात् ॥ ६ ॥ सहस्राक्षेण मन्त्रेण बालकं स्नापयेत्ततः । पितृयुक्तं दिवाजातं मातृयुक्तं च रात्रिजम् ॥ ७ ॥ स्नापयेत्पितृमातृभ्यां संध्ययोरुभयोरपि । कांस्यपात्रं घृतैः पूर्णं गण्डदोषोपशान्तये ॥ ८ ॥ सक्षीरं मौक्तिकं शङ्खं श्वेतवस्त्रयुगं शुभम् । यजुर्वेदविदे दद्याद्गण्डदोषापनुत्तये ॥ ९ ॥ दद्याद्धेनुं हिरण्यं च ग्रहांश्चापि प्रपूजयेत् । आयुर्वेदकरं जप्त्वा कुर्याद्ब्राह्मणतर्पणम् ॥१०॥ ॐसहस्राक्षेण शतशारदेनेत्यादिबह्वृचानाम् ।

इति गण्डदोषशान्तिः ।

---

## अथाभुक्तमूलविचारः ।

तत्र च्यवनः—अभुक्तमूलसंभवं परित्यजेच्च बालकम् । समाष्टकं पिताऽथवा न तन्मुखं विलोकयेत् ॥ १ ॥ वृद्धवसिष्ठः—ज्येष्ठान्ते घटिका चैका मूलादौ घटिकाद्वयम् । अभुक्तमूलमित्याहुस्तत्र जातं त्यजेच्छिशुम् ॥ २ ॥ बृहस्पतिः— ज्येष्ठान्त्यघटिकार्धं तु मूलादौ घटिकार्धकम् । तयोरन्तर्गता नाडी ह्यभुक्तं

मूलमुच्यते ॥३॥ अभुक्तमूलं गण्डान्ते नाडिकानां चतुष्टयम् । तच्चैन्द्रान्त्यघटी-द्वन्द्वं मूलाद्यं द्वन्द्वमेव च ॥ ४ ॥

इत्यभुक्तमूलविचारः ।

---

## अथ मूलसार्पजातफलम् ।

कात्यायनसूत्रे—मूलस्य प्रथमेंऽशे जातः पितुरनिष्टो द्वितीये मातुस्तृतीये च धनस्य चतुर्थे कुलशोकावह आत्मनः पुण्यभागी स्यादिति । वसिष्ठः—जातापत्यं पितरमथवाऽऽत्मानमाद्ये च पादे युग्मे धात्रीं हरति च धनं भ्रातरं वा तृतीये । पादे तुर्ये शुभमतितरां राज्यसाम्राज्यलक्ष्मीं मूले जातं वितरति तथा काद्रवेये प्रतीपम् ॥ १ ॥ महापुराणे—मूलांशे प्रथमे मातुर्द्वितीये च पितुस्तथा । तृतीये धनधान्यस्य नाशस्तुर्ये धनागमः ॥ २ ॥ रत्नमालायां—तदाद्यपादके पिता विपद्यते जनन्यथो । धनक्षयस्तृतीयके चतुर्थके शुभावहः ॥ ३ ॥ गर्गः—गृहं क्षेत्रं धनं धान्यं गृहोपकरणादिकम् । पशुवस्त्रादिकं चेति धनमित्युच्यते बुधैः ॥ ४ ॥ जयार्णवे—मूले सप्त ७ घटीषु मूलहननं स्तम्भेऽष्ट ८ सौख्यक्षयस्त्वग्दिग् १० बन्धुविनाशनं च विटपे रुद्रे ११ हतो मातुलः । पत्रेऽर्कैः १२ सुकृती तु बाण ५ कुसुमे मन्त्री फले सागरे ४ राजा वह्नि ३ शिखाल्पमायुरिति सन्मूलाङ्घ्रिपे स्यात्फलम् ॥ ५ ॥ मूलं स्तम्भस्त्वचा शाखा पत्रं पुष्पं फलं शिखा । तत्राङ्गाष्टदशेशार्कपञ्चाब्ध्यग्निघटीफलम् ॥ ६ ॥ मूले स्वामिविनाशः स्तम्भे हानिस्त्वचि च सहजनाशः । जननीनाशः स्कन्धे दले मङ्गलकृत्नृपभियः पुष्पे ॥ ७ ॥ सचिवः फले शिखायां मृत्युमवाप्नोति भूयो वा । ह्रासवृद्धिर्भमूनाधिकषष्ट्या स्यादत्र नाडिकामानम् ॥८॥ भूपालवल्लभे—मूलस्य घटिकान्यासो मूर्ध्नि पञ्च नृपो भवेत् । मुखे सप्त मृतिः पित्रोः स्कन्धे वेदो महाबलः ॥९॥ बाह्वोरष्टौ बली पाण्योस्तिस्रो हस्तान्वितो भवेत् । हृदि खेटा भूपमन्त्री नाभौ द्वे अल्पविद्भवेत् ॥ १० ॥ गुह्ये देवेऽतिकामी स्याज्जानुनोः षण्महामतिः । पादयोः षण्मृतिस्तस्येत्युक्तवान्कमलासनः ॥ ११ ॥ सहदेवः-मूर्धा वक्त्रं तथा बाहू हृन्नाभी च कटिद्वयम् । गुह्यं पादौ दशस्थानं कट्यां पट्टं क्रमात्फलम् ॥१२॥ मूर्ध्नि घातो मुखे क्षेमं भृत्यमातुलयोः करौ । हृदये शुभसौख्यं च नाभ्यां स्वामिविघातकः ॥ १३ ॥ करद्वये मातृहन्ता गुह्ये तस्कर एव च । पादयोर्धनहानिः स्यान्मूलचक्रफलं विदुः ॥ १४ ॥ मूर्ध्नि

---

१ घ. °नाभिषु° । २ घ. °न्ये चेन्दुर्भ° । ३ ङ. °घाटीघटिकेव° ।

पञ्च सुराज्यास्त्रिर्मुखे सप्त पितृक्षयः । नेत्रे द्वे जननीनाशो ग्रीवायां त्रिपु लम्पटः ॥ १५ ॥ स्कन्धे वेदा गुरोर्भक्तो हस्तेऽष्टौ च वली भवेत् । हृद्येकादशभिश्चाऽऽत्मघाती संजायते नरः ॥ १६ ॥ स्त्रीवाञ्छायौ भ्रमी षड्भिर्गुदे नव तपोधनः । पादे पञ्च धनं हन्ति सार्पादेतत्फलं क्रमात् ॥ १७ ॥ रुद्रयामले–फलं पुष्पं दलं शाखा त्वग्लता स्कन्ध एव च । सार्पवल्या दशाक्षाङ्कस्वरविश्वार्कसागराः ॥ १८ ॥ नाडिकास्तद्भवे बाले फलं कुर्युर्यथाक्रमम् । श्रीः श्री राजभयं हानिर्मातृपित्रात्मसंक्षयः ॥ १९ ॥ भास्करव्यवहारे––सार्पांशे प्रथमे राज्यं द्वितीये च धनक्षयः । तृतीये जननीनाशश्चतुर्थे मरणं पितुः ॥ २० ॥

इति मूलसार्पजातफलम् ।

---

## अथ मूलसार्पजातस्यापवादः ।

बादरायणः–सार्पनैर्ऋतगण्डान्तविषकन्यादियोगजाः । न स्युरुक्तफला लग्ने यदि तद्रङ्कदाः खगाः ॥ १ ॥ सारावल्यां–गण्डान्तमूलजाता विषकन्याख्या भवन्ति नोक्तफलाः । यदि जन्मलग्नखेटास्तद्दोषस्यापहन्तारः ॥ २ ॥ यवनः–मूलसार्पादिजो दोषः स्यादपश्यति लग्नपे । सक्रूरेऽब्जे च विवले शुभदृष्टिविवर्जिते ॥ ३ ॥ ब्रह्मर्षिसंहितायां–पितरं हन्ति मूलाद्यपादेऽन्यत्र च मातरम् । पितृमातृग्रहौ न स्तो यद्योजसमराशिगौ ॥४॥ बृहज्जातके·दिवाऽर्कशुक्रौ पितृमातृसंज्ञितौ शनैश्चरेन्दू निशि तद्विपर्ययात् । पितृव्यमातृष्वसृसंज्ञितौ च तावथोजयुग्मर्क्षगतौ तयोः शुभौ ॥ ५ ॥ कूर्मयामले–आद्यः पञ्चत्रयोविंशो द्वितीयो नवमोऽष्टमः । अष्टाविंशश्च मूलस्य मुहूर्ता दुःखदा जनौ ॥ ६ ॥ पातालेज्ये फवे (व्यये) मार्गे स्वर्गे भावाश्विमाघके[1] । पौषश्रवोर्जचैत्रेषु स्थितिर्मूलस्य भूतले ॥७॥ रवियुक्ताश्विनी सौम्यादित्यहस्तादिकत्रयम् । मैत्रं च रेवती ज्येष्ठा तदा मूलं न दोषकृत् ॥ ८ ॥ तृतीया दशमी षष्ठी शनिभौमसमन्विता । शुक्ला चतुर्दशी मूले जातः संहरते कुलम् ॥ ९ ॥

इति मूलसार्पजातस्यापवादः ।

---

## अथ शिशुमुखदर्शनादर्शने ।

रुद्रयामले–शाक्रे पक्षे च गण्डान्तमूलयोर्वत्सराष्टकम् । मासानां नवकं सार्पे त्यजेत्संदर्शनं शिशोः ॥ १ ॥ भुक्तमूलर्क्षजं बालं षण्मासं नावलोकयेत् । ततः

---

१ क. भावाश्विजानके । घ. भावाश्विमा° ।

संदर्शनं कुर्याद्विधिवच्छान्तिपूर्वकम् ॥ २ ॥ भुक्तमूलभवं बालं दिनानि सप्तविंशतिः । पित्रा नाऽऽलोकनं कार्यं ततः शान्तिं समाचरेत् ॥ ३ ॥ गण्डान्तमूलसार्पेन्द्रपातवैधृतिदर्शजे । पौत्रोपरागजे शान्तिं कुर्यात्तत्तद्दिने बुधः ॥ ४ ॥ एतददृष्टपूर्वशिशोर्वेदितव्यम् । सद्वारे सत्तिथौ भे च गुरुपुष्यादिके शुभे । सुलग्नेऽब्जबलं लब्ध्वा मूलाद्युत्थभयच्छिदे ॥ ५ ॥ विधेयं शान्तिकं यत्र यथावित्तानुसारतः । काले दर्शनयोग्ये वा मासान्ते द्वादशेऽह्नि वा ॥ ६ ॥ उत्पलाचार्यविवृतौ—मूलाद्युत्थं दुष्टफलं परित्यागाद्विलीयते । शिशोरदर्शनाद्वाऽपि दानहोमजपैरपि ॥ ७ ॥

इति शिशुमुखदर्शनादर्शने ।

---

## अथ मूलशान्तिः ।

रत्नमालायां—शतौषधीमूलमृदम्बुरत्नैः सबीजगर्भैः कलशैः समन्त्रैः । कुर्याज्जनित्रीपितृबालकानां स्नानं शुभार्थी सह होमदानैः ॥ १ ॥ पुराणे—बर्हिःशिखा १ हरिक्रान्ता २ सहदेवी ३ पुनर्नवा ४ । शरपुङ्खा ५ वराही च ६ काकजङ्घा ७ सुलक्ष्मणा ८ ॥ २ ॥ तुम्बिका ९ चैव कर्कन्धुः १० कर्पूरी ११ कारवल्लिका १२ । कर्कोटी चैव १३ चक्राङ्का १४ श्वेतार्कों १५ व्याघ्रपत्रिका १६ ॥ ३ ॥ रुदन्ती १७ चाश्वगन्धा च १८ मुसली १९ गिरिकर्णिका २० । इन्द्रवारु २१ ण्यपामार्गः २२ शङ्खपुष्पी २३ कुमारिका २४ ॥ ४ ॥ शल्लकी २५ चाथ गन्धारी २६ निर्गुण्डी २७ वेददारिका २८ । वटः २९ शमी ३० तथा प्लक्षः ३१ पालाशो ३२ ऽश्वत्थ ३३ एव च ॥ ५ ॥ चूत ३४ श्चोदुम्बरो ३५ जम्बू ३६ र्नन्दिवृक्षोऽ ३७ थ वेतसः ३८ । पुंनागो ३९ ऽथार्जुनो ४० ऽशोको ४१ बकुलो ४२ ऽश्मन्तकस्तथा ४३ ॥ ६ ॥ शाल ४४ स्ताल ४५ स्तमालश्च ४६ पाटलः ४७ शतपत्रिका ४८ । मधूकश्च ४९ शिरीषश्च ५० श्रीवृक्षो ५१ बृहतीद्वयम् ५२ । ५३ ॥ ७ ॥ बला ५४ चातिबला ५५ चैव पाठा ५६ नागबला ५७ तथा । जाती ५८ बकुलकश्चैव ५९ केतकी ६० कदली ६१ तथा ॥ ८ ॥ मातुलिङ्गी ६२ जयन्ती च ६३ यावनी ६४ पुण्ड्रिका ६५ तथा । द्रोणपुष्पी ६६ तथा कुम्भी ६७ श्रीपर्णी ६८ मदन- ६९ स्तथा ॥ ९ ॥ चम्पकः ७० पद्मकश्चैव ७१ तथा काञ्चनपुष्पिका ७२ । सिद्धेश्वरी च ७३ बदरी ७४ राजवृक्षो ७५ धवस्तथा ७६ ॥ १० ॥ कुन्दश्च ७७

मुचुकुन्दश्च ७८ गोजिह्वा ७९ क्षीरकन्दुका ८० । दाडिमी ८१ बीजपूरी च ८२ ब्राह्मी ८३ चाऽऽमलकी ८४ तथा ॥ ११ ॥ भृङ्गराजो ८५ ऽप्योमुखी ८६ च मत्स्याक्षी ८७ चाटरूपिका ८८ । तरङ्गिणी ८९ गुडूची च ९० निशाह्वा ९१ शतमूलिका ९२ ॥१२॥ वाकुची ९३ काकजङ्घा च ९४ बर्बरी ९५ तुलसी ९६ तथा । कुशः ९७ काश ९८ श्चेक्षुमूलं ९९ तथा सर्षपमूलकम् १०० ॥ १३ ॥ अलाभे चोक्तवृक्षाणां सद्वृक्षाणां समाहरेत् । एवं मूलशतं ग्राह्यं ततः कुम्भे विनिक्षिपेत् ॥ १४ ॥ अश्वस्थानाद्गजस्थानाद्वल्मीकात्सङ्गमाद्ध्रदात् । राजद्वाराच्च गोष्ठाच्च मृद् ग्राह्या कुम्भके क्षिपेत् ॥१५॥ वज्रमौक्तिकवैदूर्यपुष्परागेन्द्रनीलकम् । पञ्चरत्नमिदं प्रोक्तं मन्त्रैः कुम्भे विनिक्षिपेत् ॥ १६ ॥ गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः समाहरेत् । पञ्चगव्यमिदं कुम्भे क्षिपेद्गजमदान्वितम् ॥ १७ ॥ रजतं काञ्चनं ताम्रं विद्रुमं तीर्थवारि च । निक्षिपेद्धेममूलं च दशाष्टयवनिर्मितम् ॥ १८ ॥ देवदारुं च शैलेयं पद्मं नीलोत्पलं तथा । वचां लोध्रं प्रियङ्गुं च जलं[1] च श्वेतसर्षपान् ॥ १९ ॥ धात्रीफलं च तगरुं निशामांसीं पुनस्तथा । उशीरं चन्दनं कुष्ठं शतच्छिद्रे घटे क्षिपेत् ॥२०॥ वंशपात्रोपरिन्यस्तशतच्छिद्रघटोदकैः । पितृमातृशिशूनां तन्मन्त्रैः स्नानं तु कारयेत् ॥ २१ ॥ मूलरूपं विधातव्यं श्यामं कुणपवाहनम् । खड्गखेटधरं चोग्रं द्विभुजं च वृकाननम् ॥२२॥ स्थापयेत्तं ग्रहांश्चैव वस्त्रगन्धादिभिर्यजेत् । चरुं च श्रपयेत्तत्र नैर्ऋतं दुष्टचारिणम् ॥ २३ ॥ जुहुयादाज्यभागान्तं पायसं नैर्ऋतं ततः । पुण्यस्नानोक्तमन्त्रैश्च स्नापयेद्दंपती शिशुम् ॥२४॥ प्रच्छादनोर्णवस्त्रादि दद्याद्धेनुं च काञ्चनम् । दानान्ते होमयेद्विप्रः सर्वमूलानि तत्र च ॥२५॥ सावित्रसौम्यनैर्ऋतमन्त्रैर्होमश्च शक्तितो दानम् । स्नानं कुम्भाम्भोभिर्द्विजभोज्यं शान्तिकृद्भवति ॥ २६ ॥

इति मूलशान्तिः ।

---

## अथाऽऽश्लेषाशान्तिः ।

आश्लेषायां तु जातानां शान्तिं वक्ष्याम्यतः परम् । जातस्य द्वादशाहे च शान्तिं होमं समाचरेत् ॥ १ ॥ असंभवे तु जन्मर्क्षे अन्यस्मिन्वा शुभे दिने । स्नानाभ्यङ्गादिभिस्तस्मिन्वरयेत्तु द्विजोत्तमान् ॥ २ ॥ विभवे पञ्च कुम्भास्तु द्वयं वा तदलाभतः । देवतास्थापने चैकमेकं रुद्राभिमन्त्रिते ॥ ३ ॥ नागमति-

---

[1] क. जलजैश्चे° ।

कृतिं कुर्यात्सौवर्णी पलमानतः । अथवा शक्तितः कुर्याद्वित्तशाठ्यं विवर्जयेत् ॥ ४ ॥ मूले यत्तु विधानं स्यात्तत्समं सर्पदैवते । कद्रुद्राय प्रचेतस इति मन्त्रो विशेषतः ॥ ५ ॥ नैवेद्यं ह्यामिषं चास्ति पूजादानकृतिः समा । अयुतं हवनं ह्यत्र तिलैः साज्यैः प्रधानतः । ब्रह्मवृक्षस्य समिधः शतमष्टोत्तरं शुभाः ॥ ६ ॥ शुभा इति द्वादशाङ्गुलयुताः साग्रा अवक्राः सत्वचोऽव्रणाः । अन्यत्सर्वं मूलविधानवत् ॥

इत्याश्लेषाशान्तिः ।

---

## अथ वृद्धगार्ग्योक्ता ज्येष्ठाशान्तिः ।

नारदः—ज्येष्ठान्त्यपादजो ज्येष्ठं हन्ति बालो न बालिका । न बालिका तु मूलर्क्षे मातरं पितरं तथा ॥ १ ॥ ज्येष्ठोत्पन्ना नरा नार्यो घ्नन्ति चन्द्रे बलोज्झिते । कुलवृद्धं पितुर्मातुः पक्षजं तु दिवा निशि ॥ २ ॥ ज्येष्ठाद्यपादजो वृद्धं बन्धुवर्गं द्वितीयजः । धनं तृतीयजो हन्ति तथाऽऽत्मानं चतुर्थजः ॥ ३ ॥ ज्येष्ठान्त्यपादजातस्य पितुः स्वस्य विनाशनम् । जायते नात्र संदेहो दशाहाभ्यन्तरे यतः ॥ ४ ॥ ज्येष्ठर्क्षे कन्यका जाता हन्ति शीघ्रं तथाऽग्रजम् । तस्माच्छान्तिं प्रवक्ष्यामि गण्डदोषप्रशान्तये ॥ ५ ॥ सुदिने शुभनक्षत्रे चन्द्रताराबलान्विते । सूतकान्तेऽथवा कुर्याज्ज्येष्ठाशान्तिं विधानतः ॥ ६ ॥ कर्षमात्रसुवर्णेन कर्षार्धेनाथ पादतः । तद्विधानं प्रकुर्वीत वित्तशाठ्यं न कारयेत् ॥ ७ ॥ वज्राङ्कुशधरं देवमैरावतगजान्वितम् । कुर्याच्छचीपतिं रम्यं देवेन्द्रं सुरनायकम् ॥ ८ ॥ शालितण्डुलसंपूर्णकुम्भस्योपरि पूजयेत् । इन्द्रायेन्दो मरुत्वत इति मन्त्रेण वाग्यतः ॥ ९ ॥ गन्धपुष्पैर्धूपदीपैर्नानाभक्ष्यसमन्वितैः । पूजयेद्विधिना विप्रो लोकपालगणान्वितम् ॥ १० ॥ रक्तवस्त्रद्वयोपेतं पूजयेत्सुरनायकम् । तत्र संस्थापयेत्कुम्भांश्चतुर्दिक्षु विशेषतः ॥ ११ ॥ तन्मध्ये स्थापयेत्कुम्भं शतच्छिद्रसमन्वितम् । पुण्योदकसमायुक्तान्वस्त्रयुग्मेण वेष्टितान् ॥ १२ ॥ कुम्भेषु विन्यसेद्धीमान्पञ्चगव्यं समन्त्रकम् । पञ्चामृतं पञ्चरत्नं मृत्तिकाः पञ्चसंख्यकाः ॥ १३ ॥ पञ्चवृक्षकषायांश्च पञ्च पल्लवकांस्तथा । सुवर्णकुशदूर्वाश्च शतौषधीर्विनिक्षिपेत् ॥ १४ ॥ पूजयेद्वारुणैर्मन्त्रैः कुम्भान्धीमान्प्रयत्नतः । त्वं नो अग्ने जपेदादौ स त्वं नोऽपि द्वितीयकम् ॥ १५ ॥ समुद्रज्येष्ठामन्त्रेणेमं मे गङ्गे चतुर्थकम् । पूजयेद्वस्त्रपुष्पाद्यैश्चतुरः कलशानपि ॥ १६ ॥ जपं कुर्यात्प्रयत्नेन मन्त्रैरेभिर्द्विजोत्तमः । आनोभद्राजपं चाऽऽदौ भद्रा अग्ने द्वितीयकम् ॥ १७ ॥ तृतीयं पौरुषं सूक्तं कद्रुद्राय

चतुर्थकम् । आचार्यो मूलमन्त्रेण जपं कुर्याद्विशेषतः ॥ १८ ॥ इन्द्रसूक्तं रुद्रजपं मृत्युंजयजपं ततः । इत्थं संपूज्य देवेशं वरुणं कुम्भसंस्थितम् ॥ १९ ॥ सुसंकल्पविधानेन होमकर्म ततश्चरेत् । समिद्भिर्ब्रह्मवृक्षस्य शतमष्टोत्तरं तथा ॥२०॥ सर्पिषा चरुणा चैव मूलमन्त्रेण वाग्यतः । हुनेज्जाप्यं च तेनैव यत इन्द्र भयेति च ॥ २१ ॥ तिलान्व्याहृतिभिर्हुत्वा शतमष्टोत्तरं पृथक् । भार्याशिशुसमोपेतं यजमानं विशेषतः ॥ २२ ॥ अभिषेकं प्रकुर्वीत सूक्तैर्वारुणसंज्ञकैः । समुद्रज्येष्ठादिमन्त्रैरिमं मे वरुणस्तथा ॥ २३ ॥ घोषशान्त्यादिभिर्मन्त्रैरभिषेकं समाचरेत् । अभिषेकनिवृत्तौ तु यजमानः समाहितः ॥ २४ ॥ शुक्लाम्बराणि धृत्वाऽथ कुर्यादाज्यावलोकनम् । रूपंरूपेतिमन्त्रेण चित्रं तच्चक्षुरेव च ॥ २५ ॥ देवतापुरतः स्थित्वा धूपदीपनिवेदनम् । दद्यादाचमनं सम्यक्ताम्बूलार्घ्यं तथैव च ॥ २६ ॥ नमस्ते सुरनाथाय नमस्तुभ्यं शचीपते । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं गण्डदोषप्रशान्तये ॥ २७ ॥ आचार्याय च गां दद्यात्सुशीलां च पयस्विनीम् । रक्तवर्णां वस्त्रयुतां सर्वालंकारसंयुताम् ॥ २८ ॥ वस्त्रयुग्मं विधानं च यथाविभवसारतः । यक्षगन्धर्वसिद्धैश्च पूजितोऽसि शचीपते ॥ २९ ॥ दानेनानेन देवेश गण्डदोषं विनाशय । अष्टोत्तरशतसंख्यं कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ ३० ॥ तेभ्योऽपि दक्षिणां दत्त्वा प्रणिपत्य क्षमापयेत् । इमां कृत्वा ज्येष्ठाशान्तिं यथाविध्युक्तमार्गतः ॥ ३१ ॥ ज्येष्ठानक्षत्रसंभूतगण्डदोषप्रशान्तये । अज्ञानाद्वा यथाज्ञानाद्वैकल्याद्वा धनस्य च । यन्न्यूनमतिरिक्तं वा तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि ॥ ३२ ॥

इति वृद्धगार्ग्योक्ता ज्येष्ठाशान्तिः ।

---

## अथैकनक्षत्रजननशान्तिः ।

समानभे यदा देवि पितापुत्रौ च सोदरौ । भगिन्यौ वा स्वबन्धू वा तदा पूर्वस्य नाशनम् ॥ १ ॥ एकस्मिन्नेव नक्षत्रे पुत्रयोः पितृपुत्रयोः । प्रसूतयोस्तयोर्मृत्युर्भवेदेकस्य निश्चयः ॥ २ ॥ विधानं तत्र कर्तव्यं जन्मनक्षत्रपूजनम् । नक्षत्रदेवता पूज्या त्वधिमत्यधिपूर्वकम् ॥ ३ ॥ यदृक्षस्य च यद्द्रव्यं दक्षिणाविधिमन्त्रकम् । तस्य तच्च विधातव्यमृक्षदैवततुष्टये ॥ ४ ॥ गृह्योक्तेन विधानेन हवनं तत्र कारयेत् । भक्त्या हरिहरौ देवौ स्वर्णरूप्यमयौ शुभौ ॥ ५ ॥ तत्र मूर्तिदानमन्त्रः—विविधस्यास्य विश्वस्य पितरौ विश्वतोमुखौ । प्रीयेतां मूर्तिदानेन देवौ हरिहरावुभौ ॥ ६ ॥ दानं होमविधेः पश्चाद्दानादन्वभिषेचनम् ।

अभिषेचनपूर्वोऽत्र विघ्नपूजा स्मृता शिवे ॥ ७ ॥ ततोऽभिगम्य गोविन्दशूलिनोश्च निकेतनम् । तूर्याणां च निनादेन जयघोषेण पार्वति ॥ ८ ॥ पूजाविधिं समाप्यैवं सर्वोपस्करसंयुतम् । प्रार्थयेद्देवदेवेशौ लक्ष्मीशैलसुतेश्वरौ ॥ ९ ॥ दण्डवत्प्रणिपातेन वन्दनीयौ पुनःपुनः । ततः स्वगृहमागत्य ब्राह्मणान्भोजयेत्सुधीः ॥ १० ॥ तोषयेद्दक्षिणादानैर्यथाशक्ति वरानने । एवं कृते विधाने तु विघ्ननाशो भवेद्ध्रुवम् । तुष्टिदं पुष्टिदं नॄणां विधानं तत्र सुन्दरि ॥११॥

इत्येकनक्षत्रजननशान्तिः ।

---

## अथ कृष्णचतुर्दशीशान्तिः ।

मन्दरस्थं सुखासीनं गर्गं वरमुनिं शुभम् । नमस्कृत्य तु पप्रच्छ शौनको मुनिपुंगवः ॥ १ ॥ शान्तिकर्माणि सर्वाणि त्वत्तो जानाम्यहं पुरा । अधुना श्रोतुमिच्छामि कृष्णपक्षचतुर्दशीम् ॥ २ ॥ दिवा वा यदि वा रात्रौ प्रसूतेः किं फलं वद । कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां प्रसूतेः षड्विधं फलम् ॥ ३ ॥ चतुर्दशीं च षड्भागां कुर्यादादौ शुभं स्मृतम् । द्वितीये पितरं हन्ति तृतीये मातरं तथा ॥ ४ ॥ चतुर्थे मातुलं हन्ति पञ्चमे वंशनाशनम् । षष्ठे तु धनहानिः स्यादात्मनो वंशनाशनम् ॥ ५ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शान्तिं कुर्याद्विधानतः । आचार्यं वरयेद्धीमान्पुत्रदारसमन्वितम् ॥ ६ ॥ स्वकर्मनिरतं शान्तं श्रोत्रियं वेदपारगम् । सर्वालंकारसंयुक्तं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ ७ ॥ ब्राह्मणानृत्विजश्चैव स्वस्तिवाचनपूर्वकम् । रुद्रोऽधिदेवता तस्याः कर्षमात्रसुवर्णतः ॥८॥ तदर्धार्धेन वा कुर्याद्वित्तशाठ्यं न कारयेत् । प्रतिमां कारयेच्छंभोः सर्वलक्षणसंयुताम् । वृषभे च समासीनं वरदाभयपाणिनम् ॥ ९ ॥ शुद्धस्फटिकसंकाशं श्वेतमाल्याम्बरान्वितम् । त्र्यम्बकेण च मन्त्रेण पूजां कुर्याद्विधानतः ॥ १० ॥ स्थापयेच्चतुरः कुम्भांश्चतुर्दिक्षु यथाक्रमम् । पुण्यतीर्थजलोपेतान्धान्यस्योपरि विन्यसेत् ॥ ११ ॥ तन्मध्ये स्थापयेत्कुम्भं शतच्छिद्रसमन्वितम् । पञ्चामृतपञ्चरत्नानि पञ्चत्वक्पञ्च पल्लवान् ॥ १२ ॥ पञ्चधान्यं सुवर्णं च तत्तन्मन्त्रैर्विनिक्षिपेत् । शतौषधानि निक्षिप्य श्वेतवस्त्रैश्च वेष्टयेत् ॥१३॥ सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः । आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ॥ १४ ॥ शेषं मूलशान्तिवत् ॥

इति कृष्णचतुर्दशीशान्तिः ।

---

## अथ सिनीवालीशान्तिः ।

सिनीवाल्यां प्रसूता स्याद्यस्य भार्या पशुस्तथा । गजाश्वमहिषी (पि) चैव शक्रस्यापि श्रियं हरेत् ॥ १ ॥ ये सन्ति सकलाश्चान्ये स्वप्रसादोपजीविनः । वर्जयेत्तानशेषांस्तु पशुपक्षिमृगादिकान् ॥ २ ॥ कुहूप्रसूतिरत्यर्थं सर्वदोषकरी मता । यस्य प्रसूतिरेतस्यां तस्याऽऽयुर्धनवर्धनम् ॥ ३ ॥ सर्वगण्डसमस्तत्र दोषस्तु प्रबलो भवेत् । शान्तिं विना विशेषेण परित्यागो विधीयते ॥ ४ ॥ परित्यागात्तत्र शान्तिं कुर्याद्धीमान्विचक्षणः । तत्फलं तत्क्षणार्धेन पुनरेवानुपालनम् ॥ ५ ॥ न त्यजेत्पण्डितो मोहादर्थादज्ञानतोऽपि वा । तद्योगो नाशयेत्किंचित्तत्स्त्री वा नाशमश्नुते ॥ ६ ॥ कल्पोक्तशान्तिः कर्तव्या शीघ्रं दोषापनुत्तये । रुद्रः शक्रश्च पितरः पूज्याः स्युर्देवताः क्रमात् ॥ ७ ॥ कर्षमात्रसुवर्णेन तदर्धार्धेन वा पुनः । अथवा शक्तितः कुर्याद्वित्तशाठ्यं न कारयेत् ॥८॥ प्रतिमां कारयेच्छंभोश्चतुर्भुजसमन्विताम् । त्रिशूलखड्गवरदाभयहस्तां यथाक्रमात् ॥९॥ श्वेतवर्णां श्वेतपुष्पां श्वेताम्बरवृषस्थिताम् । त्र्यम्बकेण च मन्त्रेण पूजां कुर्याद्यथाविधि ॥ १० ॥ इन्द्रश्चतुर्भुजो वज्राङ्कुशचापः सुसायकः । रक्तवर्णो गजारूढो यत इन्द्रेति मन्त्रतः ॥ ११ ॥ पितरः कृष्णवर्णाश्च चतुर्हस्ता विमानगाः । यष्ट्यक्षसूत्रकमण्डल्वभयांश्चैव धारिणः ॥ १२ ॥ ये सत्या इति मन्त्रेण पूजां कुर्यादनन्तरम् । आग्नेयीं दिशमारभ्य कुम्भान्कोणेषु विन्यसेत् ॥ १३ ॥ कल्पोक्तशान्तिः कर्तव्या कुर्याच्छीघ्रं स्वशक्तितः । गोदानं वस्त्रदानं च सुवर्णं चोर्वरां शुभाम् ॥ १४ ॥ दशदानानि चोक्तानि क्षीरमाज्यं गुडस्तथा । आज्यावेक्षणमेतानि तत्तन्मन्त्रैश्च कारयेत् ॥१५ समिदाज्यचरोर्होमं तिलमाषैश्च सर्षपैः । अश्वत्थप्लक्षपालाशसमिद्भिः खादिरैः शुभैः ॥१६॥ अष्टोत्तरशतं मुख्यं प्रत्येकं जुहुयाद्द्विजः । त्र्यम्बकेणेति मन्त्रेण तिलान्व्याहृतिभिः पुमान् ॥ १७ ॥ चतुर्भिः कलशैर्युक्तं बृहत्कुम्भसमन्वितम् । शान्तिवत्कलशे कार्यमभिषेकं च कारयेत् ॥ १८ ॥ पितृमातृशिशूनां च ह्यभिषेकं तु वारुणैः । शंकरस्याभिषेकं च कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ १९ ॥ अन्येषां चैव सर्वेषां ब्राह्मणानां च तर्पणम् । तथा शक्त्यनुसारेण द्विजवाचनपूर्वकम् ॥२०॥

इति सिनीवालीशान्तिः ।

---

## अथ गोप्रसवविधिरुच्यते ।

गर्गः—प्रणिपत्य रविं वक्ष्ये प्रायश्चित्तमनुस्मरन् । सर्वारिष्टविनाशाय यदुक्तं शान्तिसागरे ॥ १ ॥ पित्रारिष्टे सुतारिष्टे मात्रारिष्टे तथैव च । प्रायश्चित्तं तदा

कुर्यात्तत्तद्दोषस्य शान्तये ॥ २ ॥ पूषाश्विनी गुरोः सार्पमघाचित्रेन्द्रमूलभे । एषु ऋक्षेषु जातस्य कुर्याद्गोजननं तथा ॥ ३ ॥ जन्मर्क्षे वा त्रिजन्मर्क्षे शुभे वारे शुभे दिने । कृत्वाऽभ्यङ्गादिकं सर्वं गृहालंकारपूर्वकम् ॥ ४ ॥ गोमयेनोपलिप्याथ गृहस्येशानकोणके । पङ्कजं कर्णिकायुक्तं रजोभिः श्वेतवर्णकैः ॥ ५ ॥ व्रीहीं-स्तत्र विनिक्षिप्य यथाविक्तानुसारतः । नवशूर्पं तु तन्मध्ये रक्तवस्त्रं प्रसारयेत् ॥ ६ ॥ स्नापयित्वा शिशुं तत्र पुनः सूत्रेण वेष्टयेत् । प्राङ्मस्तकमवाक्पादं तिलगर्भगतं शिशुम् ॥ ७ ॥ गोमुखं दर्शयित्वा तु पुनर्जातं तु गोमुखात् । विष्णुर्योनिमिति सूक्तेन गव्येन स्नापयेच्छिशुम् ॥ ८ ॥ गवामङ्गेषु त्रिमेण गवामङ्गेषु संस्पृशेत् । विष्णोः श्रेष्ठेति मन्त्रेण गोः प्रसूतं तु बालकम् ॥ ९ ॥ साचार्यस्तं समादाय पश्चान्मात्रे ददत्पिता । माता जघन्यभागस्थं शिशुमानीय तन्मुखात् ॥ १० ॥ ततः पित्रे तदा दद्यात्ततो मात्रे प्रदापयेत् । वस्त्रे स्थाप्य पिताऽस्याथ पुत्रस्य मुखमीक्षयेत् ॥ ११ ॥ गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिश्च संयुतम् । आपोहिष्ठादिभिर्मन्त्रैरभिषिञ्चेत्ततः शिशुम् ॥१२॥ मूर्ध्नि चाऽऽघ्राय तत्पुत्रं तन्मन्त्रेण तदा पिता । अङ्गादङ्गात्संभवसि हृदयादभिजायसे ॥ १३ ॥ आत्मा वै पुत्रनामाऽसि स जीव शरदां शतम् । मूर्ध्नि त्रिवारमाघ्राय तं शिशुं स्थापयेत्ततः ॥ १४ ॥ पुण्याहं वाचयेत्पश्चाद्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः । हरिद्रायाथ विप्राय तां गां चाभ्यर्च्य दापयेत् ॥ १५ ॥ गोवस्त्रस्वर्णधान्यादि दद्याद्दर्पादितः क्रमात् । यथाशक्ति धनं दद्याद्ब्राह्मणेभ्यस्तदा पिता ॥ १६ ॥ ततो होमं प्रकुर्वीत स्वस्वशाखोक्तमार्गतः । उल्लेखनादिकं कृत्वा चाऽऽज्यभागान्तमाचरेत् ॥ १७ ॥ होमस्येशानदिग्भागे धान्योपरि घटं शुभम् । पञ्चगव्यं घटे स्थाप्य तिलांस्तत्र विनिक्षिपेत् ॥१८॥ क्षीरद्रुमकषायांश्च पञ्चरत्नानि निक्षिपेत् । वस्त्रयुग्मेण संस्थाप्य गन्धादिभिरथार्चयेत् ॥ १९ ॥ विष्णुं वरुणमभ्यर्च्य प्रतिमां च विधानतः । यत इन्द्रादिभिर्मन्त्रैः कुम्भं स्पृष्ट्वाऽभिमन्त्रयेत् ॥ २० ॥ दधिमध्वाज्ययुक्तेन होमं कुर्याद्विधानतः । आपो हि ष्ठेति तिसृभिरप्सु मे सोम इत्यथ ॥ २१ ॥ तद्विष्णोः परमं पदमक्षीभ्यां ते च सूक्ततः । ऋग्भिराभिः प्रत्यृचं चाऽष्टाविंशतिसंख्यया ॥ २२ ॥ अशक्तश्चाष्टसंख्यं वा दधिमध्वाज्यसंयुतम् । आदित्यादिग्रहाणां च होमं कुर्यात्समन्त्रकम् ॥ २३ ॥

इति गोप्रसवविधिः ।

---

१–ग. °ह्रोभोजनं । २ क. °सादेव° । ३ ख. गोमूत्रं द° ।

## अथ व्यतीपातादिशान्तिः ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि शान्तिं शौनक उत्तमाम् । वैधृतौ च व्यतीपाते महादोषोऽभिजायते ॥ १ ॥ कुमारजन्मकाले तु व्यतीपातश्च वैधृतिः । संक्रान्तिश्च रवेस्तत्र जातो दारिद्र्यकारकः॥ २ ॥ दरिद्राणां महादुःखं सर्वनाशकरो भवेत् । शान्तिर्वा पुष्कला कार्या तत्र दोषो न कश्चन ॥ ३ ॥ गोमुखप्रसवं कुर्याच्छान्तिं कुर्याच्च यत्नतः । जपाभिषेकदानैश्च होमाद्यपि विशेषतः ॥ ४ ॥ नवग्रहमखं कुर्यात्तस्य दोषप्रशान्तये । प्रथमं गोमुखाज्जन्म ततः शान्तिं समाचरेत्॥ ५ ॥

इति व्यतीपातादिशान्तिः ।

---

## अथ सदन्तोत्पन्नशान्तिः ।

पुष्कर उवाच-कथयस्व मुनिश्रेष्ठ महर्षे भार्गव प्रभो । शुभाशुभं च तच्छान्तिं वद जन्मफलं शिशोः ॥ १ ॥ भार्गव उवाच-उपरि प्रथमं यस्य जायन्ते च शिशोर्द्विजाः । दन्तैर्वा सह यस्य स्याज्जन्म तद्बालकं न सत् ॥ २ ॥ मातरं पितरं खादेदात्मानं वाऽपि मातुलान् । सदन्तं बालकं विद्याद्राक्षसं स्वकुलान्तकम् ॥ ३ ॥ यदि दन्तैः समं जन्म यदि वा दशनाः शिशोः । स्युर्मध्ये सप्तमासानां कुलनाशस्तदा ध्रुवम् ॥ ४ ॥ अष्टमासादिमासेषु दन्तोत्थानं शुभावहम् । अथ तद्दोषनाशाय विधानं शृणु सत्तम ॥ ५ ॥ प्रथमं पूजयेत्तत्र देवदेवं च केशवम् । अग्निं संस्थाप्य जुहुयाद्घृतेन चरुणा पृथक् ॥ ६ ॥ देवदेवं केशवं च वह्निं सोमं समीरणम् । धातारं च विधातारं कुलदेवं नव ग्रहान् ॥ ७ ॥ यजेत्तल्लिङ्गजैर्मन्त्रैर्नाममन्त्रैरथापि वा । यथाशक्ति सहस्रं वा शतं वाऽप्यष्टविंशतिः ॥ ८ ॥ ऋत्विग्भ्यो दक्षिणा देया ततः स्नानं शिशोर्मतम् । भद्रासने निवेश्यैनं मृद्भिः सर्वौषधैः फलैः ॥९॥ सर्वैर्मनोरथैर्गन्धैः स्नापयेत्तीर्थवारिणा । तदनु ब्राह्मणा भोज्याः सुवासिन्यः सुहृद्गणाः ॥ १० ॥ विष्णुधर्मोत्तरे-गजपृष्ठगतं बालं नौस्थं वा स्नापयेद्गुरुः । तदभावे काञ्चनेन निर्मिते च वरासने ॥ ११ ॥ सर्वौषधैः सर्वगन्धैर्बीजैः पुष्पैः फलैः शुभैः । पञ्चगव्यैश्च रत्नैश्च च्छत्रं शिरसि धारयेत् ॥ १२ ॥ विप्रभोज्यं ततः कुर्याच्छक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम् । अकालदन्तजे दोषे शान्तिरेवं विधीयते ॥ १३ ॥ चुम्बन्कुमारं त्रिवारं मायश्चित्तमिदं स्मृतम् । मृदं वाऽङ्गारकान्भक्तं दधि सीधु मुखे क्षिपेत् ॥ १४ ॥ नौकामारोहयेद्बालं सह भार्ययाऽथवाऽग्रजम् । स्वर्णं दद्याद्द्विजा भोज्याः सर्पिषा

पायसेन च ॥ १५ ॥ नागार्जुनसंहितायां–सदन्तं बालकं दद्याद्ब्राह्मणाय सद-क्षिणम् । वत्सस्य मधुलाजानां प्राङ्मुखं दधिदीपयोः ॥ १६ ॥

इति सदन्तोत्पन्नशान्तिः ।

---

## * अथ धनिष्ठापञ्चकविचारः ।

दैवज्ञवल्लभे–कुर्यान्न दारुतृणसंग्रहमन्तकाशायानं मृतस्य दहनं गृहगोपनं च । शय्यावितानमिह वासवपञ्चके च केचिद्वदन्ति परतो वसुदैवतार्धात् ॥ १ ॥ रत्नमालायां–वासवोत्तरदलादिपञ्चके याम्यदिग्गमनगेहगोपने । प्रेतदाहतृणकाष्ठसंग्रहं शय्यकावितननं च वर्जयेत् ॥ २ ॥ ज्योतिःसागरे–छेदनं संग्रहं चैव काष्ठादीनां न कारयेत् । श्रवणादौ बुधः पञ्चके न गच्छेद्दक्षिणां दिशम् ॥ ३ ॥ अग्निदाहो भयं रोगो राजपीडा धनक्षयः । संग्रहे तृणकाष्ठानां कृते वस्वादिपञ्चके ॥ ४ ॥ रत्नमार्तण्डे–गृहार्थे तृणकाष्ठादिसंग्रहादग्निभीः कलिः । रोगो दण्डोऽर्थहानिः स्यात्क्रमाद्वस्वादिपञ्चके ॥ ५ ॥ गर्गः–धनिष्ठापञ्चके चन्द्रे सूर्ये पैत्रादिपञ्चके । छेदनादि न कर्तव्यं गृहार्थं तृणकाष्ठयोः ॥ ६ ॥ पूर्वार्धे नातिदोषाय दारुतक्षणसंग्रहे । यानगोपनशय्यासु संपूर्णं वासवं त्यजेत् ॥ ७ ॥ केऽप्याहुः संकटे घोरे पञ्चके पञ्च नाडिकाः । त्याज्याः क्रमात्तृतीयाद्यन्त्यान्त्यपादावसानगाः ॥ ८ ॥

इति धनिष्ठापञ्चकविचारः ।

---

## अथ पञ्चकशान्तिः ।

गरुडपुराणे–श्रीकृष्ण उवाच । प्रेतदाहो न कर्तव्यः कुम्भमीनगते विधौ । न जलं दीयते तेषामशुभं जायते भृशम् ॥ १ ॥ पञ्चकाभ्यन्तरे नैव कार्या प्रेतादिकी क्रिया । पुनर्मृत्युभयं तस्मात्पञ्चकानन्तरं शुभा ॥ २ ॥ कारिकायां–सद्यो दाहादिकं कार्यं पञ्चकर्क्षमृतस्य च । वक्ष्यमाणविधानेन प्रायश्चित्तपुरःसरम् ॥ ३ ॥ चत्वारः पुत्तला दर्भमयाः शवसमीपतः । तन्मन्त्रैर्मन्त्रिताः स्थाप्यास्ततो दाहस्तु तैः सह ॥ ४ ॥ सूतकान्ते तु पुत्राद्यैः कार्यं शान्तिकमुक्तवत् । कांस्यपात्रे घृतं दद्यात्कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ ५ ॥ प्रेतमञ्जर्याम्–पञ्चके तु मृतो योऽसौ गतिं न लभते नरः । तिलान्गां च हिरण्यं च तस्योद्देशे घृतं ददेत् ॥ ६ ॥ तेन विघ्नः शमं याति स प्रेतो लभते गतिम् । विधानं यो न कुर्वीत विघ्नस्तस्य पदे पदे ॥ ७ ॥ वासवे मरणं यस्य गृहे याति पुनर्मृतिः । सद्योपशान्तये देयं वस्त्रस्वर्णादिकं द्विजे ॥ ८ ॥ शतोद्याने गुडं दद्यान्मृतद्युः-

---

* इतः परं पञ्चीनवरूढत्वनात् पूर्वग्रन्थः तत्पुस्तके नास्ति ।

खोपशान्तये । अजपादे नरो यस्तु पञ्चत्वमुपगच्छति ॥ ९ ॥ काञ्चनं वेद- विप्राय दद्यात्तत्कुलशान्तये । उत्तराभाद्रनक्षत्रे मृतिः स्याद्यस्य कस्यचित् ॥१०॥ गोद्वयं सतिलं दद्याद्धनहानिप्रशान्तये । अन्तिमे मरणं यस्य गृहे यदि पुन- र्मृतिः । सुवर्णदक्षिणां दद्यात्कृष्णवस्त्रमथापि वा ॥ ११ ॥

इति पञ्चकशान्तिः ।

## अथ त्रिपुष्करयोगः ।

भूपालवल्लभे—रविमन्दभौमवारे भद्रा तिथिस्त्रिपादके धिष्ण्ये । योगास्त्रिपुष्कराख्य- स्त्रिपादके यमलनामा स्यात् ॥ १ ॥ रत्नकोशे—गुरुभौममन्दवारे भद्रायां विप- मपादर्क्षे । योगस्त्रिपुष्करोऽयं त्रिगुणफलो यमलभे द्विगुणः ॥ २ ॥ गर्गः— पञ्चभे पञ्चगुणितं त्रिगुणं च त्रिपुष्करे । यमले द्विगुणं सर्वं हानिवृद्ध्यादिकं भवेत् ॥ ३ ॥ तिथिर्भद्रा त्रिपादर्क्षं जीवार्कारैस्त्रिपुष्करः । योगस्त्रिगुणफलदो वृद्धौ नष्टे हृते मृते ॥ ४ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—नष्टं दृष्टं मृतं घातं कलहो डिम्भ एव च । उपागतश्च योऽत्र स्यात्त्रिदिनं सोऽनुवर्तते ॥ ५ ॥

इति त्रिपुष्करयोगः ।

## अथ त्रिपुष्करशान्तिः ।

त्रिपुष्करे त्रयः कार्याः पुत्तला द्वौ द्विपुष्करे । मृतस्य च समीपे तु स्थाप्याः पिष्टमयास्ततः ॥ १ ॥ कार्यो दाहस्तु तत्सार्धं सूतकान्ते तु शान्तिकम् । कृत्वा गाश्च हिरण्यं च दद्याद्दानं च शक्तितः ॥ २ ॥ प्रेतखण्डे—त्रिपुष्करमृते दद्याद्गो- त्रयं मूल्यमेव च । द्विपुष्करे च गोयुग्मं ततो दाहो न दोषकृत् ॥ ३ ॥

इति त्रिपुष्करशान्तिः ।

## अथ भावकाष्टकम् ।

वैशाखे कृष्णपक्षे स्यादष्टमी तिथिरुत्तमा । नवमी दशमी तद्वत्तिथिरेकादशी तथा ॥ १ ॥ द्वादशी तत्परा चैव भूतामा च विशेषतः । ज्येष्ठस्याऽऽद्या शुभा तद्वद्भूतमातृमहोत्सवः । सूतकं विद्यते चात्र लोकस्य सकलस्य च ॥ २ ॥ धनिष्ठापञ्चकं यद्वद्वर्जनीयं शुभेप्सुभिः । तथैताष्टासु तिथिषु वर्जनीयं प्रय- त्नतः ॥ ३ ॥ विवादमङ्गलादीनि कुर्यात्कर्माणि मानवः । श्राद्धादिसफलं कार्यं नात्र कार्या विचारणा ॥ ४ ॥

इति भावकाष्टकम् ।

## * अथ पल्लीपतनफलम् ।

पल्लीस्पर्शफलं वक्ष्ये यदुक्तं ब्रह्मणा पुरा । ब्रह्मस्थाने भवेद्राज्यं भाल ऐश्वर्यवर्धनम् ॥ १ ॥ कर्णयोर्भूषणावाप्तिर्नेत्रयोः प्रियदर्शनम् । नासिकायां सुगन्धाप्तिर्मुखे मिष्टान्नभोजनम् ॥ २ ॥ कपोलयोर्भवेत्सौख्यं हनुदेशे महद्भयम् । ग्रीवायां विग्रहश्चैव कण्ठे वा स्वजनागमः ॥ ३ ॥ कलिर्वंशे सुखं पृष्ठे दक्षे वामे गदादिभीः । दक्षांसे विजयो नित्यं वामांसे शत्रुजं भयम् ॥ ४ ॥ इष्टलाभो भुजे दक्षे कूर्परे मणिबन्धके । दक्षे करतले द्रव्यं तत्पृष्ठे सव्ययो भवेत् ॥ ५ ॥ वामे भुजे कूर्परे च मणिबन्धे धनक्षयः । वामे करतले हानिस्तत्पृष्ठे चार्थनष्टता ॥ ६ ॥ हृदये राजसन्मानः सौभाग्यं दक्षिणे स्तने । दक्षपार्श्वे च भोगाप्तिः स्तने वामे यशोभयम् ॥७॥ वामपार्श्वे भवेत्पीडा वामकुक्षौ शिशोस्तथा । दक्षकुक्षौ सुतावाप्तिरुदरे च विशेषतः ॥ ७ ॥ वस्त्राप्तिर्दक्षकट्यां च वामकट्यां सुखक्षयः । नाभ्यां मनोरथावाप्तिर्वस्तौ गर्भच्युतिर्भवेत् ॥ ८ ॥ गुह्ये मृत्युर्गुदे रोगो दक्षोरौ भीतिवर्धनम् । वामोरौ मृत्युतो दुःखं दक्षजानौ सुवाहनम् ॥ ९ ॥ पशुहानिर्वामजानौ दक्षिणे जघने सुखम् । क्लेशः स्याद्वामजङ्घायां स्फिजि दक्षेऽर्थवृद्धिकृत् ॥ १० ॥ स्फिजि वामे स्त्रीवियोगो दक्षे गुल्फे प्रियागमः । उपप्लवो

*काकमैथुनशान्तिपर्यन्तं खपुस्तकग्रन्थश्चैवम्—

### अथ पल्लीपतनफलम् ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि शृणु शौनक यत्नतः । पल्ल्याः प्रपतने चैव सरटस्य प्ररोहणे ॥ १ ॥ पल्ली च प्रथमे यामे मस्तके सुखदायिनी । मुखे मिष्टान्नभोजी स्यात्पादयोर्मरणं ध्रुवम् ॥ २ ॥ मध्याह्ने पतिता पल्ली दक्षिणे सुखसंपदः । वामाङ्गे कुरुते व्याधिं ब्रह्मद्वारे च वस्त्रदा ॥३॥ पल्ली तृतीययामे तु पृष्ठावासाच रोगदा । करे च कुरुते व्याधिं ब्रह्मद्वारे च वस्त्रदा ॥४॥ संध्ययोः पतिता पल्ली मस्तके स्वामिमृत्युदा । करे तु दक्षिणे व्याधिं पादे हानिकरी तथा ॥ ५ ॥

### अथ देहाङ्गफलानि ।

कपोले कुरुते सौख्यं जङ्घायां क्लेशदायिनी । शीर्षे राज्यश्रियः प्राप्तिर्ललाटे धनवर्धनम् ॥ १ ॥ कर्णयोर्भूषणप्राप्तिर्नेत्रयोर्भयवर्धनम् । नासिकायां च सौभाग्यं मुखे मिष्टान्नभोजनम् ॥ २ ॥ कण्ठे नित्यं श्रियः प्राप्तिः स्कन्धयोर्विजयो भवेत् । धनलाभो बाहुयुग्मे करयोः सुखसंपदः ॥ ३ ॥ स्तनयुग्मे तु सौभाग्यं हृदये सौख्यवर्धनम् । पृष्ठे नित्यं महाभाग्यं गुह्ये मृत्युसमागमः ॥४॥ कटियुग्मे वस्त्रलाभः पार्श्वयोर्भयदर्शनम् । जघनेऽर्थक्षयो नित्यं गुदे रोगभयं तथा ॥ ५ ॥ ऊरुयुग्मे वाहनाप्तिर्जानुयुग्मेऽर्थसंग्रहः । निकृष्यां जङ्घयोश्च

१ घ. °न्न स्यान्लाभो ललाटके ॥ १ ॥ क. । २ क °मज्जनम्° ।

वामगुल्फे पादयोर्गमनं भवेत् ॥ ११ ॥ पुरोभागे च दुर्वार्ता नष्टवार्ता च पृष्ठतः। वामे हानिर्धनं दक्षे परितो भ्रमणं क्षतिः ॥ १२ ॥ वामदक्षविभागेन यत्फलं कथितं नृणाम् । विपर्ययेण तत्स्त्रीणां ज्ञेयं शेषं द्वयोः समम् ॥ १३ ॥ इत्थं पल्ल्याः प्रपातस्य फलं ज्ञेयं विचक्षणैः । एतदेव फलं विद्यात्सरटस्य प्ररोहणे ॥ १४॥ पल्ल्याः प्ररोहणे चैव पतने सरटस्य तु । तयोः फलस्य व्यत्यासात्तद्वदेव प्रजायते ॥ १५ ॥ पल्ल्याः प्ररोहणं रात्रौ सरटस्य प्रपातनम् । नातिदुष्टफलं विद्याद्व्याधिमुग्रं विपर्यये ॥ १६ ॥ पतनानन्तरं तस्य रोहणं यदि जायते । पतने फलमुत्कृष्टं रोहणेऽल्पफलं भवेत् ॥ १७ ॥ मृत्युयोगे च जन्मर्क्षे विष्टयां पाते च वैधृतौ । चन्द्रेऽष्टमे च क्रूरे च लग्ने विघ्नः प्रजायते ॥ १८ ॥ अङ्गं दक्षिणमारुह्य वामेनोत्तरति स्फुटम् । तदा हानिकरा ज्ञेया व्यत्ययेन तु लाभदा ॥१९॥ चरणादूर्ध्वगा भूयः सद्यो रोहति शीर्षकम् । प्राज्यं राज्यं तदा दत्ते पल्ली श्वेता विशेषतः ॥ २० ॥ चिन्तिताभ्यधिकं लाभं स्थिता भोजनभाजने । पादाङ्गुलीषु संपाताद्धानिश्च महती भवेत् ॥ २१ ॥ शीर्षस्योपरि पतिता शुभाय पल्ली सिता च यदि नान्या । सितगृहगोधा स्पर्शे सर्वेष्वङ्गेषु शोभना ज्ञेया ॥ २२ ॥ प्र (क) कटिका गृहगोधा दक्षाङ्गे समारोहति पुंसाम् । वामाङ्गे तु स्त्रीणां राज्यं

---

पादयोर्भ्रमणं भवेत् ॥ ६ ॥ एवं पल्लीप्रपातस्य फलं ज्ञेयं विचक्षणैः । एवं तदेव हि फलं विद्यात्सरटरोहणे ॥ ७ ॥ पल्ल्याः प्रपतने चैव सरटस्य प्ररोहणे। पल्ल्याः प्ररोहणे चैव सरटपतने तथा ॥८॥ यद्वत्फलं च संप्रोक्तं तद्वदेव प्रजायते । पल्ल्याः प्ररोहणं रात्रौ पतनं सरटस्य च ॥ ९ ॥ निधनार्थाय हि भवेद्व्याधिपीडा विपर्ययात् । पतनानन्तरं यस्य रोहणं यदि जायते ॥१०॥ पतने फलमुत्कृष्टं रोहणे निष्फलं भवेत्। आरोहणं चोर्ध्ववक्त्रमधोवक्त्रं प्रपातनम् ॥११॥ भवेदादौ सुशीघ्रेण तत्फलं जायते ध्रुवम् । स्थानात्स्थानफलं युक्तं गर्गेण कथितं पुरा ॥ १२ ॥

अथ तिथिफलम् ।

प्रतिपद्रोगसंप्राप्तिर्द्वितीया राज्यमेव च । तृतीया च भवेल्लाभश्चतुर्थी रोग एव च ॥ १ ॥ पञ्चमी च तथा षष्ठी सप्तमी च धनागमः । अष्टमी नवमी चैव दशमी मरणं ध्रुवम् ॥ २ ॥ एकादशी पुत्रलाभो द्वादशी धनलाभदा । त्रयोदशी चतुर्दशी पौर्णमासी धनागमः ॥ ३ ॥

अथ वारफलम् ।

ग्रयः सोमे बुधगुरुशुक्राचार्याः सदा शुभाः । शेषाः सर्वेऽशुभाः प्रोक्ता वाराणां फलमादिशेत् ॥ १ ॥

अथ नक्षत्रफलम् ।

अश्विन्यां क्षेममारोग्यं भरणी रोगकारिणी । कृत्तिका धनलाभश्च रोहिण्यां च मृगे धनम् ॥ १ ॥ आर्द्रा तु मृत्युदा चैव पुष्यादिती च लाभदे । आश्लेषा

दत्ते भृगुर्त्रैदाति ॥ २३ ॥ पल्लीसरटयोर्वाऽपि युग्मभङ्गे शुभे पतेत् । दंपत्योर्जायते प्रीतिर्निन्द्यभागे वियोगिता ॥ २४ ॥

## अथ सरटपतनफलम् ।

नाशः शीर्षे मुखे हानिः पृष्ठे लाभो भयं हृदि । दक्षे रोगः शुभं वामे सरटस्य प्रपातनात् ॥ १ ॥ हंसाद्या उत्तमा जीवाः कोपात्रिंशास्तु राज्यदाः । सरटाद्यधमाः शीर्षे पतिता विघ्नदाः स्मृताः ॥ २ ॥ गोधाकुक्कुटसरटोलूका ध्वाङ्क्षाः कपोतका वाऽपि । निष्कारणं नरस्य मस्तकचटिता क्षतिं कुर्युः ॥ ३ ॥ पल्लीसरटगोधाद्याः शकृन्मूत्रं च कुर्वते । शरीरे यस्य तस्याऽऽशु दुःखं चैव महद्भयम् ॥ ४ ॥ कृकलासः पतेद्यस्य मूर्ध्नि तद्विघ्नशान्तये । मृतसंजीवनीं विद्यां जपेन्मुण्डितमस्तकः ॥ ५ ॥

## अथ पल्लीशब्दफलम् ।

वित्तं ब्रह्मणि कार्यसिद्धिरतुला शक्रे हुताशे भयं याम्ये मित्रवधः क्षयश्च निर्ऋतौ लाभः समुद्रालये । वायव्यां वरवस्त्रमन्नमतुलं सौम्येऽर्थलाभो ध्रुवं चैशान्यां गृहगोधिकाऽर्थजननी त्रासस्त्वधःशब्दिता ॥ १ ॥

---

मरणं प्रोक्तं मघा तु क्षेमदा भवेत् ॥ २ ॥ पूर्वा तु मरणं चैव उत्तरा हस्त एव च । चित्रा स्वातिश्च शुभदा विशाखा धननाशनम् ॥ ३ ॥ अनुराधा राज्यदा स्याज्ज्येष्ठायां कष्टमेवच । मूले चैव तथा राज्यं पूर्वाषाढा तथा शुभा ॥ ४ ॥ उत्तरा रोगमायाति ह्यभिजिद्धनसंपदः । श्रवणे पुत्रलाभश्च धनिष्ठा राज्यमेव च ॥ वारुणे धनहानिः स्याद्रोगो दुःखं भयं तथा ।पूर्वोत्तरा रेवतीषु हानिश्चैव प्रजायते॥६॥

### अथ लग्नफलम् ।

मेषे च शुभदा प्रोक्ता वृषे हानिस्तथैव च । मिथुने रोगसंप्राप्तिः कर्के कलह एव च ॥ १ ॥ सिंहे स्यात्फललाभाय कन्यायां तु धनक्षयः । तुलायां धनलाभश्च धनलाभश्च वृश्चिके ॥२॥ धने ज्ञानमवाप्नोति मकरे वस्त्रलाभदा । कुम्भे हानिश्च विज्ञेया मीने शोकः प्रजायते ॥ ३ ॥ नैधने चैव जन्मर्क्षे [ संप्रोक्ता ] विपनाडिका । क्रूरलग्ने लग्नफलमिति प्रोक्तं शुभाशुभम् ॥ ४ ॥

### अथ पल्लीसरटशान्तिः ।

मृत्युयोगे दग्धदिने क्रूरेऽह्नि यमकण्टके । चन्द्रेऽष्टमे नैधने च जन्मर्क्षे विपनाडिका ॥ १ ॥ क्रूरग्रहे क्रूरलग्ने क्रूरैर्यदि निरीक्षिते । अष्टमस्थे क्रूरयुते विष्टिवैधृतिसंयुते । स्पर्शमात्रे तयोः सद्यः सचैलं स्नानमाचरेत् ॥ २ ॥ दुर्निमित्ते तयोर्जाते निष्फलं जायते ध्रुवम् । पञ्चगव्यं प्राशयित्वा कुर्यादाज्यावलोकनम् ॥ ३ ॥ अशक्तो वाऽपि शक्तो वा यदीच्छेदात्मनः शुभम् । पुण्याहवाचनं कृत्वा शान्तिकर्म समाचरेत् ॥४॥ प्रतिरूपं सुवर्णेन कुर्याद्वित्तानुसारतः । रक्तवस्त्रेण संवेष्ट्य गन्धपुष्पैः

## अथ पल्लीसरटयोः शान्तिः ।

पल्लीसरटयोः स्पर्शे सचैलं स्नानमाचरेत् । पञ्चगव्यं प्राशयित्वा कुर्यादाज्यावलोकनम् ॥ १ ॥ शक्ते वाऽप्यथवाऽशक्ते यदीच्छेदात्मनः सुखम् । पुण्याहवाचनं कृत्वा शान्तिकर्म समारभेत् ॥ २ ॥ प्रतिरूपं सुवर्णेन कुर्याद्वित्तानुसारतः । रक्तवस्त्रेण संवेष्ट्य गन्धपुष्पैः प्रपूजयेत् ॥ ३ ॥ तदग्रे मृन्मयं रम्यं कलशं जलपूरितम् । वस्त्रमाल्यैरलंकृत्य स्थापयेत्तण्डुलोपरि ॥ ४ ॥ पञ्चामृतं पञ्चगव्यं पञ्चरत्नानि शक्तितः । पञ्चवृक्षकषायानि(णि)निक्षिप्याऽऽवाहयेत्ततः ॥ ५ ॥ पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्लोकपालान्क्रमेण च । अग्निसंस्थापनं कृत्वा होमकर्म समारभेत् ॥ ६ ॥ मृत्युंजयेन मन्त्रेण चैधोभिः खादिरैः शुभैः । तिलैर्व्याहृतिभिर्होममष्टोत्तरसहस्रकम् ॥ ७ ॥ अष्टोत्तरशतं वाऽपि कुर्याद्वित्तानुसारतः । अभिषेकं ततः कृत्वा यजमानस्य च द्विजैः ॥ ८ ॥ पुण्यवारुणसूक्तैश्च दोषशान्त्यै द्विजोत्तमः । धौताम्बराणि धृत्वाऽथ स्वर्णवस्त्रतिलान्हरेत् ॥ ९ ॥ ब्राह्मणान्भोजयेदित्थं शान्तिकर्म करोति यः । तस्याऽऽयुर्विजयो लक्ष्मीः कीर्तिवृद्धिः शुभं भवेत् ॥ १० ॥ पल्लीसरटयोः शान्तिः कथिता भृगुणा पुरा । शौनकाय मुनीन्द्राय लोकानुग्रहकारिणे ॥ ११ ॥

इति पल्लीसरटयोः शान्तिः ।

---

प्रपूजयेत् ॥ ५ ॥ तस्याग्रे मृन्मयं रम्यं कलशं जलपूरितम् । वस्त्रमाल्यैरलंकृत्य स्थापयेत्तण्डुलोपरि ॥ ६ ॥ पञ्चामृतं पञ्चगव्यं पञ्चपल्लवसंयुतम् । पञ्चवृक्षकषायाणि निक्षिपेत्कलशोत्तमे ॥ ७ ॥ पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्लोकपालान्क्रमेण तु । स्वेन स्वेनैव मन्त्रेण मृत्तिकादि विनिक्षिपेत् ॥ ८ ॥ इन्द्रादिलोकपालांश्च तत्तन्मन्त्रैस्तु पूजयेत् । अग्निस्थापनकं कृत्वा होमं कृत्वा ततः परम् ॥ ९ ॥ मृत्युंजयेति मन्त्रेण चैधोभिः खादिरैः शुभैः । तिलैर्व्याहृतिभिर्होममष्टोत्तरसहस्रकम् ॥ १० ॥ अष्टोत्तरशतं वाऽपि कृत्वा सम्यक् समाचरेत् । यमायेति च मन्त्रेण जपं होमादि कारयेत् ॥ ११ ॥ अभिषेकं ततः कुर्यात्सुरास्त्वामन्त्रवारुणैः । द्यौः शान्त्यादिशुभैर्मन्त्रैः पुराणोक्तक्रमेण तु ॥ १२ ॥ इत्थं कृत्वाऽभिषेकं च विधानाद्यर्चनं ततः । धौताम्बराणि धृत्वाऽथ कुर्यान्नीराजनाविधिम् ॥ १३ ॥ स्वर्णदानं वस्त्रदानं तिलदानं स्वशक्तितः । दोषोपशमनार्थाय कुर्यादाज्यावलोकनम् ॥ १४ ॥ अभिषेकं शंकराय ततोऽश्वत्थप्रदक्षिणम् । अतःपरं प्रवक्ष्यामि कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥ १५ ॥ एतद्विधानं यः कुर्याद्गण्डदोषो विनश्यति । एवं कृत्वा विधानेन सौभाग्यारोग्यसंपदः ॥ १६ ॥ सौभाग्यशान्तिमाप्नोति सत्यं सत्यं न संशयः । कथितं वृद्धगर्गेण पल्लीदोषनिवृत्तये ॥ १७ ॥ कपोतपल्लीकृकलासकाकाः शीर्षस्थिताश्चैव शिरस्नाय नूनम् । स्थानाद्वहिस्तत्क्षण एव गच्छेद्वासांसि दद्याद्द्विजपुंगवेभ्यः ॥ १८ ॥

इति पल्लीसरटशान्तिः ।

## अथ काकमैथुनशान्तिः ।

नारदः—उत्पाता विविधा लोके दिव्यभौमान्तरिक्षजाः । तेषां नामानि शान्तिं च सम्यग्वक्ष्ये पृथक्पृथक् ॥ १ ॥ दिवा वा यदि वा रात्रौ यः पश्येत्काकमैथुनम् । स नरो मृत्युमाप्नोति यदि वा स्थाननाशनम् ॥ २ ॥ यदा काकयुगं दृष्टं विदधीतार्कवत्सरम् । पितृदेवद्विजान्भक्त्या प्रत्यहं चाभिवादनम् ॥ ३ ॥ जितेन्द्रियः शुद्धमनाः सत्यधर्मपरायणः । तद्दोषशमनार्थाय शान्तिकर्म समाचरेत् ॥ ४ ॥ स्वगृह्योक्तविधानेन तत्र स्थाप्य हुताशनम् । मुखान्ते समिदाज्यार्कैर्हुनेदष्टोत्तरं शतम् ॥ ५ ॥ प्रतिमन्त्रं त्र्यम्बकेण ह्यपमृत्युद्वयेन च । व्याहृतिभिर्व्रीहितिलैर्जपाद्यन्तं प्रकल्पयेत् ॥ ६ ॥ पूर्णाहुतिं च जुहुयात्कर्ता शुचिरलंकृतः । स्वर्णशृङ्गी रौप्यखुरी कृष्णधेनुः पयस्विनी ॥ ७ ॥ वस्त्रालंकारसहिता निष्कद्वादशसंयुता । तदर्धेन तदर्धेन तदर्धार्धेन वा युता ॥ ८ ॥ तथा वित्तानुसारेण तन्न्यूनाधिककल्पना । आचार्याय श्रोत्रियाय तां गां दद्यात्कुटुम्बिने ॥९॥ ब्राह्मणेभ्यो विशिष्टेभ्यो यथाशक्ति च दक्षिणाम् । ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाच्छान्तिवाचनपूर्वकम् । एवं यः कुरुते सम्यक् स तद्दोषात्प्रमुच्यते ॥ १० ॥

इति काकमैथुनशान्तिः ।

---

## अथ कपोतशान्तिः ।

आरोहेत गृहे यस्य प्रविशेद्वा कपोतकः । स्थानहानिर्भवेत्तस्य यद्वाऽनर्थपरम्परा ॥ १ ॥ दोषाय धनिनां गेहे दरिद्राणां शिवाय च । तस्य शान्तिं प्रकुर्वीत जपहोमविधानतः ॥ २ ॥ ब्राह्मणान्वरयेत्तत्र स्वस्तिवाचनपूर्वकम् । षोडश द्वादशाष्टौ वा श्रौतस्मार्तक्रियापरान् ॥ ३ ॥ देवाः कपोत इत्यादिऋग्भिः स्यात्पञ्चभिर्जपः । कुण्डं कृत्वा प्रयत्नेन स्वगृह्योक्तविधानतः ॥ ४ ॥ ऐशान्यां स्थापयेद्वह्निं मुखान्तेऽष्टोत्तरं शतम् । प्रत्येकं समिदाज्याद्यैः प्रतिप्रणवपूर्वकम् ॥५॥ यत इन्द्र भयामहे स्वस्तिदात्रोरमन्त्रकैः । त्रिभिर्मन्त्रैश्च जुहुयात्तिलान्व्याहृतिभिस्ततः ॥ ६ ॥ जपादौ च ततो भक्त्या कुर्यात्पूर्णाहुतिं स्वयम् । विप्रेभ्यो दक्षिणां दद्याद् घोषशान्तिं ततो जपेत् ॥ ७ ॥ ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्स्वयं भुञ्जीत बन्धुभिः । एवं यः कुरुते सम्यगुक्तदोषात्प्रमुच्यते ॥ ८ ॥ पिङ्गलस्य स्वरेऽप्येवं मधुवल्मीकयोरपि । मधुगे मन्दिरे हानिः शून्यसमान्य-

मङ्गलम् ॥ ९ ॥ प्राकारे च पुरद्वारे प्रासादाद्येषु वीथिषु । तत्फलं ग्रामपस्यैवं सीम्नि सीमाधिपस्य च । शान्तिकर्माखिलं कार्यं पूर्वोक्तेन क्रमेण तु ॥ १० ॥

इति कपोतशान्तिः ।

---

## ( + अथोलूकादिशान्तिः ।

उलूकं [ इष्टो ] दृष्टो नेष्टो गृहमागतो भवति । रटमानोऽपि दक्षिणे च मरणाय भवति भूतानाम् ॥ १ ॥ दिवान्धोऽपि यदा पक्षी यं हि ग्रामं समाविशेत् । निर्जनं कुरुते ग्रामं मरणं भूभृतामपि ॥ २ ॥ तदा शान्तिः प्रकर्तव्या यथोक्ता सार्वकामिकी । अनिमित्तेषु सर्वेषु ह्यादौ रुद्रं प्रपूजयेत् ॥ ३ ॥ प्रदद्याद्गां च वस्त्राणि घृतं सद्यः प्रदापयेत् । तुण्डं रूप्यमयं कार्यं चञ्चुर्लोहमयी तथा ॥ ४ ॥ उ ( औ ) दुम्बरास्तथा पादाश्चत्वारोऽस्य क्रमेण तु । कांस्यौ पक्षौ प्रकर्तव्यौ सर्वावयवसंयुतौ ॥ ५ ॥ हैरण्यं धर्मराजं च सर्वावयवसंयुतम् । होमस्थलादुत्तरतः स्थापयेत्स्थण्डिले शुभे ॥ ६ ॥ प्रतिष्ठा तत्र कर्तव्या वेदोक्तमन्त्रपूर्वकम् । रुद्राध्यायं ततः पश्चाच्छान्त्यध्यायं तथैव च ॥ ७ ॥ काकाध्यायेन सर्वेण पूजा कार्या च पक्षिणः । कलशं स्थापयेत्तत्र सर्वौषधिसमन्वितम् ॥ ८ ॥ शान्त्यध्यायं जपेत्तत्र वह्निस्थापनपूर्वकम् । ततो होमं प्रकुर्वीत पायसेन क्रमेण तु ॥ ९ ॥ आदौ तु चक्षुषी दद्यात्पश्चात्पायसकेन तु । प्रथमा तु ह्युलूकाय दिवान्धाय तथाऽपरा ॥ १० ॥ तृतीया दुदुशब्दाय चतुर्थी चिरजीविने । ततः स्विष्टकृतं दद्यात्पश्चात्कर्म समापयेत् ॥ ११ ॥ अभिषेकं ततः कुर्याद्गीतवादित्रनिःस्वनैः । पश्चाद्दानानि वै दद्यात्तथा वित्तानुसारतः ॥ १२ ॥ प्रभूतं कनकं दद्यात्तिलांश्चैव तु वाससी । सप्तधान्यं प्रदातव्यं लोहदण्डः क्रमेण तु । वित्तशाठ्यं न कुर्वीत शान्तिमिच्छन्कदाऽपि हि । अन्नहीनं दहेद्राष्ट्रं मन्त्रहीनं तु ऋत्विजः । यजमानमदाक्षिण्यं नास्ति यज्ञसमो रिपुः ॥ १३ ॥ श्येनगृध्रप्रवेशेऽपि शान्तिरेषैव कीर्तिता ॥ १४ ॥ दिवान्धस्याऽऽहुतिं तत्र वर्जयेच्च यथाक्रमम् । अरण्यवासिने तत्र गृध्रायाऽऽहुतिरुच्यते ॥ १५ ॥ श्येनाय वयसां राज्ञे प्रदद्याच्च यथाक्रमम् । विधानं च प्रकुर्वीत कल्याणं चोपपद्यते ॥ १६ ॥

इत्युलूकादिशान्तिः ।

---

+ चतुश्चिह्नितग्रन्थोऽयं ८पुस्तकस्थः ।

## अथ मधुजालशान्तिः ।

मधुजालं गृहे यस्य दृश्यते पुरुषस्य च । मरणं तस्य जानीयात्कुलान्तो वा भवेदतः ॥ १ ॥ तत्र शान्तिः प्रकर्तव्या साध्वी वै वायुदेवता । वायुं च पूजयेत्तत्र ऋग्जपं तु यथायथम् ॥ २ ॥ होमं तत्र प्रकुर्वीत श्रपयित्वा तथा हविः । अभिषेकं प्रकुर्वीत शान्त्यध्यायेन सर्वदा ॥ ३ ॥ ततो वह्निं प्रतिष्ठाप्य चरुश्रपणपूर्वकम् । आदौ च चक्षुषी दद्यात्पश्चान्मधुमतीस्तथा ॥४॥ वसन्तेन मधुना च षड्चं चरुणा जपेत् । ततः स्विष्टकृतं दद्यात्पश्चात्कर्म समापयेत् ॥ ५ ॥ दानानि तत्र दद्याच्च मधुकुम्भं सदक्षिणम् । क्षौमवस्त्रं प्रदातव्यं तिलांश्चैव क्रमेण तु । ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चादेवं कर्म समापयेत् ॥ ६ ॥

इति मधुजालशान्तिः ।

---

## अथान्नशान्तिः ।

एवमन्नस्य विकृतौ शान्तिं कृत्वा प्रयत्नतः । तत्रा सर्वमवाप्नोति आरण्यं प्राप्नुयात्तु यः ॥१॥ अनिष्टं नाशमायाति ह्यन्द्रीशान्तिविधानतः । उपसर्गाः क्षयं यान्ति शक्रस्य प्रीणनात्ततः ॥ २ ॥

इत्यन्नशान्तिः ।

---

## अथाग्निशान्तिः ।

भृगुरुवाच--क्षि(हि)माग्निर्दहते राष्ट्रं तत्र शान्तिं च कारयेत् । वक्ष्यमाणविधानेन त्वं तदेकमनाः शृणु ॥ १ ॥ भवनाधारदहने कुम्भमज्वलने तथा । अङ्गवस्त्रस्य दहने देशभङ्गं समादिशेत् ॥ २ ॥ पैत्राचाग्निश्चैव सप्तसप्तार्चिर्मेपवाहनः । वेदोक्तेनैव मन्त्रेण ह्यग्न्युत्तारं तु कारयेत् ॥ ३ ॥ होमकुण्डा [च] पूर्वं तु स्थाप्यो वै स्थण्डिले शुभे । रक्तवस्त्रसमाच्छन्नो मन्त्रेणाग्निर्मेषेण तु ॥ ४ ॥ कलशस्तत्र संस्थाप्यः सर्वौषधिसमन्वितः । जपस्तत्र प्रकर्तव्यो रुद्राप्यपुरःसरः॥५॥ त्वामग्ने वय[ ]मग्ने त्वंपुरीप्याति(?)। इत्यपि मध्वायह्नंनरक्षसो तनूपाअग्ने आसि(?) ॥६॥ अथातो वैश्वानरं च ब्राह्मणं च जपेत्ततः । सोमाय रुद्राद्दले द्यावापृथिवी अथर्वणं जपेत् ॥ ७ ॥ जपान्ते सुसमिद्धं च वह्निं कृत्वा यथाक्रमम् । होमस्तत्र प्रकर्तव्यो हविर्धानपुरःसरः ॥ ८ ॥ लोहितैस्तण्डुलैश्चैव चरुश्रपणपूर्वकम् । आदौ चाग्निमुखे दद्यात्पश्चाच्चाऽऽज्याहुतीर्ददेत् ॥ ९ ॥ उग्निपावको अरतिस्त्वा-

मग्ने अङ्गिरास्तथा । अग्निर्ज्योतिस्तृतीया तु चतुर्थी त्वामग्ने तथा ॥ १०॥ प्रथममग्निर्मूर्धा तु होमं पूर्वं तु कारयेत्। आज्यहोमं विधायैवं चरुहोमं ततः परम्॥११॥ कर्फे(?) स्वाहेति वाऽऽद्यं तु आधायेति द्वितीयकम् । तृतीयं हव्यवाहेति चतुर्थं जातवेदसे ॥ १२॥ ततः स्विष्टकृतं दद्यात्पश्चात्कर्म समापयेत् । अभिषेकस्ततः कार्यो मन्त्रैर्वरुणदैवतैः ॥ १३ ॥ शान्त्यध्यायं पठेत्पश्चादभिषिञ्चेत्ततो नृपम् । ततश्च दक्षिणां दद्यात्कृष्णां गां काञ्चनं महीम् । तिलाः कृष्णाः प्रदातव्या भूगोश्च वचनं तथा ॥ १४ ॥

इत्यग्निशान्तिः। )

---

## अथ शिथिलीजननशान्तिः ।

नारद.—उत्पाता निखिला नृणामगम्यागमसूचकाः । तथाऽपि सद्यः फलदं शिथिलीजननं महत् ॥ १ ॥ शिथिलीजनने ग्रामे सेतौ वा देवतालये । तत्फलं ग्रामपस्यैव सीम्नि सीमाधिपस्य च ॥ २ ॥ शिथिलीजनने हानिः सर्वस्थानेषु दिक्षु च । तद्दोषप्रशमायैव शान्तिकर्म समाचरेत् ॥ ३ ॥ स्वर्णेन मृत्युप्रतिमां कृत्वा वित्तानुसारतः । रक्तवर्णं यमं दण्डधरं महिषवाहनम् ॥ ४ ॥ नववस्त्रेण संवेष्ट्य तण्डुलोपरि पूजयेत् । तल्लिङ्गेन च मन्त्रेण नैवेद्यान्तं यथाविधि ॥ ५ ॥ पूर्णकुम्भं तदैशान्यां रक्तवस्त्रेण वेष्टितम् । पञ्चत्वक्पल्लवैर्युक्तं जलमन्त्रैः समर्चयेत् ॥ ६ ॥ अग्निसंस्थापनं प्राच्यां स्वगृह्योक्तविधानतः । प्रत्येकमष्टोत्तरशतमघोरेणैव होमयेत् ॥ ७ ॥ मन्त्रेण समिदाज्यान्नैः शेषं पूर्ववदाचरेत् । द्विजाय प्रतिमां दद्यात्सर्वदोषापनुत्तये ॥ ८ ॥ जलमन्त्रेण संप्रोक्ष्य तत्स्थाने कुम्भवारिभिः । एवं यः कुरुते सम्यक्स तद्दोषात्प्रमुच्यते ॥ ९ ॥

इति शिथिलीजननशान्तिः ।

---

## अथेन्द्रलुप्तशान्तिः ।

श्रीरग्निर्बन्धुनाशश्च वित्तहानिर्महद्यशः । बन्धुलाभः पुत्रहानिः स्त्रीचिन्ता महती गदः ॥ १ ॥ पूर्वादीनि फलान्येषामिन्द्रलुप्ते च मस्तके । दन्तच्छेदे काकहते सरटीपतनेऽपि च ॥ २ ॥ पञ्चरत्नपल्लवस्वर्णपञ्चामृतफलोदकैः। अभ्युद्गमन्त्रितैर्मन्त्रैः स्नानाद्दोषं विमुञ्चति ॥ ३ ॥ एवमेवाग्निदाहेऽपि मस्तके मन्त्र-

दूषिते । आशिषो वाचनं कृत्वा ब्राह्मणान्भोजयेच्छुचिः ॥ ४ ॥ लाभदा सुखद-गोधाऽत्र शुभदा व्यत्यये व्ययः ॥ ५ ॥

इतीन्द्रलुप्तशान्तिः ।

---

## अथ नानाविधोत्पातशान्तिः ।

नारद —देवता यत्र नृत्यन्ति पतन्ति प्रज्वलन्ति वा । मुहू रुदन्ति गायन्ति प्रस्विद्यन्ति हसन्ति च ॥ १ ॥ वमन्त्यग्निं तथा धूमं स्नेहं रक्तं पयो जलम् । अधोमुखाश्च तिष्ठन्ति स्थानात्स्थानं व्रजन्ति वा ॥ २ ॥ एवमाद्याश्च दृश्यन्ते विकाराः प्रतिमासु च । गन्धर्वनगरं चैव दिवा नक्षत्रदर्शनम् ॥ ३ ॥ महोल्कापतनं काष्ठतृणरक्तप्रवर्षणम् । गन्धर्वगेहं दिग्धूमं भूमिकम्पं दिवा निशि ॥४॥ अनग्नौ च स्फुलिङ्गाः स्युर्ज्वलनं च विनेन्धनम् । निशीन्द्रचापं मण्डूकः शिखरे श्वेतवायसः ॥ ५ ॥ दृश्यन्ते विस्फुलिङ्गाश्च गोगजाश्वोष्ट्रगात्रतः । जन्तवो द्वित्रिशिरसो जायन्ते वा वियोनिषु ॥ ६ ॥ प्रतिसूर्याश्चतसृषु स्युर्दिक्षु युगपद्रवेः । जम्बूकग्रामसंवेशः धेनूनां च प्रदर्शनम् ॥ ७ ॥ काकानामाकुलं रात्रौ कपोतानां दिवा यदि । अकाले पुष्पिता वृक्षा दृश्यन्ते फलिता यदि ॥ ८ ॥ कार्यं तच्छेदनं तत्र ततः शान्तिर्मनीषिभिः । एवमाद्या महोत्पाता बहवः स्थाननाशदाः ॥ ९ ॥ केचिन्मृत्युप्रदाः केचिच्छत्रुभ्यश्च भयप्रदाः । मध्याद्भयं यशो मृत्युः क्षयः कीर्तिः सुखासुखम् ॥ १० ॥ ऐश्वर्यं धनहानिश्च मधुच्छत्रे च वल्मि(ल्मी)कम् । देवालये स्वगृहे वा ईशान्यां पूर्वतोऽपि वा ॥ ११ ॥ कुण्डं लक्षणसंयुक्तं कल्पयेन्मेखलायुतम् । गृह्योक्तविधिना तत्र स्थापयेच्च हुताशनम् ॥ १२ ॥ जुहुयादाज्यभागान्तं पृथगष्टोत्तरं शतम् । यत इन्द्र भयामहे स्वस्तिदायोरमन्त्रकैः । समिदाज्यचरुव्रीहितिलैर्व्याहृतिभिस्तथा ॥ १३ ॥ कोटिहोमं तदर्धं वा लक्षहोममथापि वा । तथा वित्तानुसारेण तन्न्यूनाधिककल्पना ॥ १४ ॥ एकविंशतिरात्रं वा पक्षं पक्षार्धमेव वा । पञ्चरात्रं त्रिरात्रं वा होमकर्म समारभेत् ॥ १५ ॥ दक्षिणां च ततो दद्यादाचार्याय कुटुम्बिने । गणेशक्षेत्रपालार्कदुर्गाश्चाप्यङ्गदेवताः ॥ १६ ॥ तासां मन्त्रैर्जपाः कार्याः शेषं पूर्ववदाचरेत् । ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्यात्पौरजनेभ्यः स्वशक्तितः ॥ १७ ॥

इति नानाविधोत्पातशान्तिः ।

---

## अथोल्कालक्षणम् ।

नारद.—स्वर्गच्युतानां रूपाणि यान्युल्कास्तानि वै भुवि । धिष्ण्योल्काविद्युदशनिस्ताराः पञ्चविधाः स्मृताः ॥ १ ॥ सम्यक् पञ्चविधानं च वक्ष्यते लक्षणं फलम् । पाचयन्ति त्रिभिः पक्षैर्धिष्ण्योल्काशनिसंज्ञिताः ॥ २ ॥ विद्युत्षड्भिरहोभिश्च तारा तद्वत्फलप्रदा । फलपाककरी तारा धिष्ण्याख्याऽर्धफलप्रदा ॥ ३ ॥ उल्काविद्युदशन्याख्याः संपूर्णफलदा नृणाम् । अश्वेभोष्ट्रपशुनृपु वृक्षक्षोणीषु च क्रमात् ॥४॥ विदारयन्ति(न्ती) पतिता स्वनेन महताऽशनिः । जनयित्री च संत्रासं विद्युद्व्योम्नि ततः स्फुटम् ॥ ५ ॥ वक्रा विशाला ज्वलिता पतन्ती वनराजिषु । धिष्ण्या सपुच्छा पतति ज्वलिताङ्गारसंनिभा ॥ ६ ॥हस्तद्वयप्रमणा सा दृश्यतेऽतिसमीपतः। ताराब्जतनुवच्छुक्ला हस्तदीर्घाम्बुजारुणा ॥७॥ ऊर्ध्वं यात्यथवा तिर्यगधो वा गमनान्तरे । उल्का शिरोविशाला तु पतन्ती वर्धते त(येत्त) नूम् ॥८॥ दीर्घपुच्छा भवेत्तस्या भेदाः स्युर्बहवस्तथा । पीडाश्वोष्ट्राहिगोमायुखरगोगजदंष्ट्रिकाः ॥ ९ ॥ कपिगोधाधूमनिभा विविधाः पापदा नृणाम् । अश्वेभचन्द्ररजतट्टपद्दंसध्वजोपमाः॥१०॥ वज्रशङ्खस्वस्तिकाब्जरूपाः शिवसुखप्रदाः। निपतन्ती स्वराद्वर्ह्नौ(?) राजराष्ट्रक्षयाय च॥११॥यद्यम्बरे निपतति लोकस्याप्यतिविभ्रमम् । यद्यर्केन्दू संस्पृशति तत्तद्भूमिप्रकम्पनम् ॥ १२ ॥ परचक्रागमभयं जनानां क्षुद्भयं जलात् । अर्केन्द्वोरपसव्योल्का पौरेतरविनाशदा ॥ १३ ॥ उदयास्तमयेऽर्केन्द्वोः परतोल्का शुभप्रदा । सितरक्ता सिता पीता सोल्का हन्ति द्विजादितः ॥ १४ ॥ सितोदितोभये पार्श्वे पुच्छे दिक्षु दिनादिषु । पतितोल्का ऋक्षनिभा विप्रादीनामनिष्टदा ॥ १५ ॥ तारा कुम्भनिभा स्निग्धा भूभुजां तु शुभप्रदा । नीला श्यामाऽरुणा चाग्निवर्णाऽशुभभयप्रदा ॥ १६ ॥ संध्यायां वह्निपीडा च दलिता राज्यनाशनम् । नक्षत्रग्रहभेदे च तद्वर्णानामनिष्टदा ॥१७॥ चरधिष्ण्येषु पतिता स्त्रीणां चोल्का भयप्रदा । क्षिप्रभेषु विशां पीडा भूपतीनां स्थिरेषु च ॥ १८ ॥ मृदुभेषु द्विजातीनां दारुणां दारुणेषु च । उग्रभेषु च शूद्राणां परेषां मिश्रभेषु च ॥ १९ ॥ राज्यराष्ट्रविनाशाय प्रासादप्रतिमासु च । गृहे तत्स्वामिनां पीडा नृपाणां पर्वतेषु च ॥ २० ॥ दिक्षु तत्तद्दिगीशानां कर्षकाणां स्थलेषु च । प्राकारे परिखे वाऽपि द्वारि तत्रो(त्रु)रमध्यगे ॥ २१ ॥ परचक्रागमभयं राज्यपौरजनक्षयः । गोष्ठे गोस्वामिनां पीडा शिल्पस्थानां जलेषु च ॥ २२ ॥ राजहन्त्री तन्तुनिभा इन्द्रध्वजसमाऽथवा । प्रतीपगा राजपत्नीं तीर्थगा च चमूपतिम् ॥ २३ ॥ अधोमुखी नृपं हन्ति ब्राह्मणानूर्ध्वगा तथा । वृक्षोपमा पुच्छनिभा जनसंक्षोभकारिणी ॥ २४ ॥ प्रसर्पिणी या सर्पव-

त्साऽङ्गनानामनिष्टदा । वर्तुलोल्का पुरं हन्ति च्छत्राकारा पुरोहितम् ॥ २५ ॥ वंशगुल्मलताकारा राष्ट्रविद्रावणी तथा । सूकरव्यालसदृशा खण्डाकारा च पापदा । इन्द्रचापनिभा राज्यं खे नता हन्ति तोयदम् ॥ २६ ॥

इत्युल्कालक्षणम् ।

---

## अथ परिवेषलक्षणम् ।

नारदः—किरणा वायुनिहता मूर्छिता मण्डलीकृताः । नानावर्णाकृतयस्ते परिवेषाः शशीनयोः ॥ १ ॥ ते रक्तनीलपाण्डुरकपोताभ्राभकपिलाः । सपीतशुक्लवर्णाश्च प्रागादिदिक्षु वृष्टिदाः ॥ २ ॥ मुहुर्मुहुः प्रलीयन्ते न संपूर्णफलप्रदाः । शुभास्त्वविकलाः स्निग्धाः क्षीरतैलाम्बुसंनिभाः ॥ ३ ॥ चापशृङ्गाटकपृथुक्षतजारुणभाः शुभाः । अनेकवृत्तवर्णश्च परिवेषो नृपान्तकृत् ॥ ४ ॥ अशोकपुष्पसंकाशो धूमाभः कलहप्रियः । मयूरपत्रसंकाशः पीतवर्णोऽतिवृष्टिकृत् ॥ ५ ॥ अहर्निशं प्रतिदिनं चन्द्रार्कावरुणौ यदा । परिविष्टौ नृपवधं कुरुतो लोहितौ यदा ॥ ६ ॥ द्विमण्डलश्चमूनाथनृपघ्नो यस्त्रिमण्डलः । परिवेषगतः सौरिः क्षुद्रधान्यविनाशकृत् ॥ ७ ॥ रणकृद्भूमिजो जीवः सर्वेषामामयप्रदः । ज्ञः सस्यहानिदः शुक्रो नृपाणां कलहप्रदः ॥८॥ परिवेषगतः केतुर्दुर्भिक्षकलहप्रदः । पीडां नृपवधं राहुर्गर्भच्छेदं करोति च ॥ ९ ॥ द्वौ ग्रहौ परिवेषस्थौ क्षितीशकलहप्रदौ । कुर्वन्ति कलहानर्घं परिवेषगतास्त्रयः ॥ १० ॥ चत्वारः परिवेषस्था नृपस्य मरणप्रदाः । परिवेषगताः पञ्च जलप्रलयदा ग्रहाः ॥ ११ ॥ एवं चक्रग्रहास्तेषामेवं फलनिरूपणम् । नृपहानिः कुजातीनां परिवेषे पृथक् फलम् ॥ १२ ॥ परिवेषेऽपि धिष्ण्यानां फलमेवं द्वयोस्त्रिषु । परिवेषो द्विजादीनां नेष्टः प्रतिपदादिषु ॥ १३ ॥ पञ्चम्यादिषु तिसृषु ह्यशुभो नृपतेस्तदा । अष्टम्यां युवराजस्य परिवेषोऽप्यनिष्टदः ॥ १४ ॥ ततस्तिसृषु तिथिषु नृपाणामशुभप्रदः । पुरोहितस्य द्वादश्यां विनाशाय भवेद्सौ ॥१५॥ सैन्यक्षोभस्त्रयोदश्यां नृपरोधो ह्यथापि वा । राजपत्न्याश्चतुर्दश्यां परिवेषो गदप्रदः ॥१६॥ परिवेषः पञ्चदश्यां क्षितीशानामनिष्टदः । परिवेषस्य मध्ये वा बाह्ये रेखा भवेद्यदि॥१७॥स्थायिनां मध्यमा नेष्टा यायिनां पार्श्वसंस्थिता । प्रावृट्रतौ च शरदि परिवेषो जलप्रदः ॥ १८ ॥ प्रायेणान्येषु ऋतुषु तदुक्तफलदायिनः ॥ १९ ॥

इति परिवेषलक्षणम् ।

---

## अथेन्द्रचापलक्षणम् ।

नानावर्णांशवो भानोः साभ्रवायुविघट्टिताः । सद्वयोम्नि चापसंस्थानमिन्द्रचापं प्रचक्षते ॥ १ ॥ अथवा शेषनागेन्द्रदीर्घनिश्वाससंभवम् । विदिक्षुजं दिक्षुजं च तद्दिङ्नृपविनाशनम् ॥ २ ॥ पीतपाटलनीलैश्च वह्निशस्त्रास्त्रभीतिदम् । वृक्षजं व्याधिजं चापं भूमिजं सस्यनाशनम् ॥ ३ ॥ अवृष्टिदं जनोद्भूतं वल्मीके युद्धभीतिदम् । अवृष्टौ वृष्टिदं त्वैन्द्रयां दिशि वृष्टाववृष्टिदम् ॥ ४ ॥ सदैव वृष्टिदं पश्चाद्दिशोरितरयोस्तथा । रात्राविन्द्रधनुः प्राच्यां नृपहानिर्भवेद्यदि ॥ ५ ॥ याम्यां सेनापतिं हन्ति पश्चिमे नायकोत्तमम् । मन्त्रिणं सौम्यदिग्भागे सचिवं कोणसंभवम् ॥ ६ ॥ रात्राविन्द्रधनुः शुक्रवर्णाभं विप्रपूर्वकम् । हन्ति यद्दिग्भवं स्पष्टं तद्दिगीशनृपोत्तमम् ॥ ७ ॥ अवनीगाढमच्छिन्नं प्रतिकूलं धनुर्द्वयम् । नृपान्तकृद्यदि भवेदानुकूल्यं च तच्छुभम् ॥ ८ ॥

इतीन्द्रचापलक्षणम् ।

---

## अथ गन्धर्वनगरलक्षणम् ।

नारदः—गन्धर्वनगरं दिक्षु दृश्यतेऽनिष्टदं क्रमात् । भूभुजां च चमूनाथसेनापतिपुरोधसाम् ॥ १ ॥ सितरक्तपीतकृष्णं विप्रादीनामनिष्टदम् । रात्रौ गन्धर्वनगरं धराधीशविनाशनम् ॥ २ ॥ इन्द्रचापाग्निधूमाभं सर्वेषामशुभप्रदम् । चित्रवर्णं चित्ररूपप्राकारध्वजतोरणम् । दृश्यते चेन्महायुद्धमन्योन्यं धरणीभुजाम् ॥ ३ ॥

इति गन्धर्वनगरलक्षणम् ।

---

## अथ प्रतिसूर्यलक्षणम् ।

नारदः—प्रतिसूर्यः सूर्यनिभः स्निग्धः पार्श्वे शुभप्रदः । वैदूर्यसदृशः स्वच्छः शुक्लो वाऽपि सुभिक्षकृत् ॥१॥ पीताभो व्याधिदः कृष्णो मृत्युदो युद्धदोऽरुणः । माला चेत्प्रतिसूर्याणां शश्वचोरभयप्रदा ॥ २ ॥ जलदोदक्प्रतिसूर्यो भानोर्याम्येऽनिलप्रदः । उभयस्थोऽम्बुभयदो नृपहोपर्यधो नृहा ॥ ३ ॥ यदा भवन्ति तीक्ष्णांशोः प्रतिसूर्याः समन्ततः । जगद्विनाशमाप्नोति तथा शीतद्युतेरपि ॥ ४ ॥

इति प्रतिसूर्यलक्षणम् ।

## अथ निर्घातलक्षणम् ।

नारदः—वायुनाऽभिहतो वायुर्गगनात्पतति क्षितौ ।: यदा दीप्तः खगरुतः स निर्घातोऽतिदोषकृत् ॥ १ ॥ निर्घातोऽर्कोदये नेष्टः क्षितीशानां विनाशकः । आयामात्यान्त्यपौरजनशूद्राणां चैव हानिदः ॥ २ ॥ आमध्याह्नात्तु विप्राणां नेष्टो राजोपजीविनाम् । तृतीययामे वैश्यानां जलजानामनिष्टदः ॥ ३ ॥ चतुर्थे चार्थनाशाय संध्यायां हन्ति संकरान् । आद्ये यामे सस्यहानिर्द्वितीये तु पिशाचकान् ॥ ४ ॥ हन्त्यर्धरात्रे तुरगांस्तृतीये शिल्पिलेखकान् । चतुर्थयामे निर्घातः पतन्हन्ति तरूञ्जनान् ॥ ५ ॥ भीमजर्जरशब्दः स यत्र तत्र दिगीश्वरम् ॥ ६ ॥

इति निर्घातलक्षणम् ।

---

## अथ दिग्दाहलक्षणम् ।

नारदः—दिग्दाहः पीतवर्णश्चेदिशतीशानां भयप्रदः । देशनाशायाग्निवर्णोऽरुणवर्णोऽनिलप्रदः ॥ १ ॥ धूम्रः सस्यविनाशाय कृष्णः शस्त्रभयप्रदः । प्राग्दाहः क्षत्रियाणां च नरेशानामनिष्टदः ॥ २ ॥ आग्नेय्यां युवराजस्य शिल्पिनामशुभप्रदः । पीडां व्रजन्ति याम्यायां मूर्खवैश्यनराधमाः ॥ ३ ॥ नैर्ऋत्यां दिशि चौराश्च पुनर्भूप्रमदागणाः । प्रतीच्यां कृषिकाराश्च वायव्यां पशुजातयः ॥ ४ ॥ सौम्ये विप्रा दिगीशाश्च वैश्याः पाखण्डिनोऽखिलाः । निर्मलं स्वमृक्षगणं प्रदक्षिणगतोऽनिलः ॥ ५ ॥ दिग्दाहः स्वर्णवर्णाभो लोकानां मङ्गलप्रदः ॥ ६ ॥

इति दिग्दाहलक्षणम् ।

---

## अथ रजोलक्षणम् ।

नारदः—सितेन रजसा छन्ना दिग्ग्रामवनपर्वताः । यदा तदा भवन्त्येते निधनं यान्ति भूमिपाः ॥ १ ॥ धूमः समुद्भवेद्यस्यां तस्यां दिशि विनाशनम् । तत्रतत्रस्थजन्तूनां हानिदः शस्त्रकोपदः ॥ २ ॥ मन्त्रिजनपदानां च व्याधिदं चासितं रजः । अर्कोदये विजृम्भेत गगनं स्थगयेदपि ॥ ३ ॥ दिनद्वयं च त्रिदिनमत्युग्रभयदं रजः । रजो भवेदेकरात्रं नृपं हन्ति निरन्तरम् ॥ ४ ॥ परचक्रागमो न स्याद्द्विरात्रं सततं यदि । क्षामं डमरमानञ्च त्रिरात्रं सततं यदि ॥५॥ ईतिर्दुर्भिक्षमतुलं यदि रात्रिचतुष्टयम् । निरन्तरं पञ्चरात्रं महाराजविनाशनम् । ऋतावन्यत्र शिशिरात्संपूर्णफलदं रजः ॥ ६ ॥

इति रजोलक्षणम् ।

---

## अथ भूकम्पलक्षणम् ।

भूभारखिन्ननागेन्द्रशेषविश्रामसंभवः । भूकम्पः सोऽपि जगतामशुभाय भवे-त्तदा ॥ १ ॥ यामक्रमेण भूकम्पो द्विजातीनामनिष्टदः । अनिष्टदः क्षितीशानां संध्ययोरुभयोरपि ॥ २ ॥ अर्यमाद्यानि चत्वारि दस्त्रेन्द्रदितिभानि च । वाय-व्यमण्डलं त्वेतदस्मिन्कम्पो भवेद्यदि ॥ ३ ॥ नृपसस्यवणिग्वेश्याशिल्पिवृष्टि-विनाशनः । पुष्यद्विदैवभरणीपितृभाग्याजपाग्निभम् ॥ ४ ॥ आग्नेयमण्डलं त्वेत-दस्मिन्कम्पो भवेद्यदि । नृपवृष्टयर्थनाशाय हन्ति शावरढङ्कणान् ॥ ५ ॥ आभि-जिद्धातृवैश्वेन्द्रवसुवैष्णवमित्रभम् । वासवं मण्डलं त्वेतदस्मिन्कम्पो भवेद्यदि॥६॥ राजनाशाय कोपाय हन्ति गुर्जरदर्दुरान् । मूलाहिर्बुध्न्यवरुणपौष्णाप्याद्राहिभानि च ॥ ७ ॥ वारुणं मण्डलं त्वेतदस्मिन्कम्पो भवेद्यदि । राजनाशकरो हन्ति पौण्ड्रचीनपुलिन्दकान् ॥ ८ ॥ प्रायेण निखिलोत्पाताः क्षितीशानामनिष्टदाः । षड्भिर्मासैश्च भूकम्पो द्वाभ्यां दाहः फलप्रदः । अनुक्तं पञ्चभिर्मासैस्तदानीं फलदं रजः ॥ ९ ॥

इति भूकम्पलक्षणम् ।

---

## अथ कदलीदुष्टप्रसवशान्तिः ।

उमोवाच --प्रथमः प्रसवो देव रम्भाया दृश्यते यदा । दक्षिणाभिमुखो दृष्टो विदधाति फलं स किम् । भूपाले वा कृषाणे वा फलं कस्मिंस्तु जायते ॥१॥ श्रीमहे-श्वर उवाच–यदा याम्यमुखा देवि कदली तु प्रसूयते । तदा ग्रामपतेर्नाशं विदधाति न संशयः ॥ २ ॥ एवं विघ्ने समुत्पन्ने विधानं तत्र कारयेत् । सूतकी चोपचर्या सा कदली हितमिच्छता ॥ ३ ॥ दर्शे तु जागरं कार्यं होमं कुर्याच्चतः परम् । कदलैर्हवनं कार्यमन्यैर्वा समुदाहृतः ॥ ४ ॥ सहस्रं प्रयतो वाग्मी जपञ्छान्तीरनेकशः । विष्णुस्तु देवता तत्र तल्लिङ्गो मन्त्र उच्यते ॥५॥ विप्रेभ्यः सप्त धान्यानि देयानि विधिवत्ततः । दद्याच्च कदलीं राजा विप्रवर्याय धीमते ॥ ६ ॥ एवं कृते विधाने च विघ्नशान्तिस्तु जायते । पूजिते विप्रवर्ये च कर्ता सुखमवाप्नुयात् ॥ ७ ॥

इति कदलीदुष्टप्रसवशान्तिः ।

---

## अथाङ्गस्फुरणफलम् ।

मूर्ध्नि स्फुरत्याशु पृथिव्यवाप्तिः स्थानप्रवृद्धिश्च ललाटदेशे । भ्रूघ्राणमध्ये प्रियसंगमः स्यान्नासाक्षिमध्ये च सहायलाभः ॥ १ ॥ दृगन्तमध्यस्फुरणेऽथ संपत्सोत्कण्ठता स्यात्स्फुरिते दृगर्धे । जयो दृशोऽधःस्फुरणे रणे स्यात्प्रियश्रुतिः प्रस्फुरिते च कर्णे ॥ २ ॥ योषित्समृद्धिः स्फुरिते च गण्डे घ्राणे तु सौख्यं हि भवेत्सदैव । भोज्येष्टसङ्गावधरोष्ठयोश्च स्कन्धे गले भोगविवृद्धिलाभौ ॥ ३ ॥ स्पन्दो भुजस्येष्टसमागमाय स्पन्दः करे स्याद्द्रविणाप्तिहेतुः । स्पन्दश्च पृष्ठस्य पराजयाय स्पन्दो जयायोरसि मानवानाम् ॥ ४ ॥ पार्श्वप्रकम्पे भवति प्रमोदः स्तनप्रकम्पे विपयस्य लाभः । कटिप्रकम्पेऽपि चलप्रमोदो नाभिप्रकम्पे निजदेशनाशः ॥ ५ ॥ धनार्थिरत्र प्रभवेत्प्रकम्पे दुःखं धनान्तो हृदयस्य चान्ते । स्फिक्क्या ( चः ) प्रकम्पे धनवाहनाप्तिर्वराङ्गकम्पे वरयोषिदाप्तिः ॥ ६ ॥ मुष्कप्रकम्पे तनयस्य जन्म वस्तौ प्रकम्पे युवतिप्रवृद्धिः । दोषः प्रकम्पे पुनरूरुपृष्ठ उरःपुरः स्यात्समुदायलाभः ॥ ७ ॥ स्याज्जानुकम्पेऽरिवरेण सधिर्जङ्घाप्रकम्पेऽपि च लाभनाशः । स्थानाप्तिरूर्ध्वं चरणस्य कम्पे यात्रा सलाभाऽङ्घ्रितलप्रकम्पे ॥ ८ ॥ पुंसां यदा दक्षिणदेहभागे स्त्रीणां तु वामावयवेषु जातः । स्पन्दः फलानि प्रदिशत्यवश्यं निहन्ति चोक्ताङ्गविपर्ययेण ॥ ९ ॥ व्रणपिटकतिलकलाञ्छनमत्स्यादयस्त्वेवमुपदिष्टाः । कण्डूयने नरपति(ते)र्दक्षिणपादे जयायेति ॥ १० ॥ चिन्तामणौ—अङ्गस्फुरणवज्ज्ञेयमावर्तानां फलं बुधैः । यच्चावर्तशिराः प्रायो निःस्वश्चाल्पायुरन्यथा ॥ ११ ॥ आवर्ता वामभागे तु स्त्रीणां संहारवृत्तयः । न शुभास्तु शुभा भाले दक्षिणाङ्गे तु सृष्टितः ॥ १२ ॥

इत्यङ्गस्फुरणफलम् ।

---

## अथ सद्योवृष्टिलक्षणम् ।

वर्षाप्रश्ने शशिन्याप्यराशिगे लग्नगेऽपि वा । केन्द्रगे वा शुक्ले पक्षे चातिवृष्टिः शुभेक्षिते ॥ १ ॥ अल्पवृष्टिः पापदृष्टे प्रावृट्काले चिराद्भवेत् । चन्द्रवच्छुक्रे सर्वमेवंविधगुणान्विते ॥ २ ॥ प्रावृषीन्दुः सितात्सप्तराशिगः शुभवीक्षितः । मन्दात्रिकोणसप्तस्थो यदि वा वृष्टिकृद्भवेत् ॥ ३ ॥ सद्योवृष्टिकरः शुक्रो यदा बुधसमीपगः । तयोर्मध्यगते भानौ तदा वृष्टिविनाशनम् ॥ ४ ॥ मघादिपञ्चधिष्ण्यस्थः पूर्वे स्वातित्रये परे । प्रवर्षणं भृगुः कुर्याद्विपरीते न वर्षणम् ॥ ५ ॥

पुरतः पृष्ठतो भानोर्ग्रहा यदि समीपगाः। तदा वृष्टिं प्रकुर्वन्ति नचेत्ते प्रतिलोमगाः ॥६॥ वसिष्ठः–अग्रगाः पृष्ठगा वाऽपि खेटाः संनिहिता रवेः। तदा वृष्टिं प्रकुर्वन्ति न चेन्नीचादिराशिगाः ॥ ७ ॥ सौम्यमार्गगतः शुक्रो वृष्टिकृन्न तु याम्यगः। उदयास्तेषु वृष्टिः स्याद्भानोरार्द्राप्रवेशने ॥ ८ ॥ विपच्चिः सस्यहानिः स्यादह-न्यार्द्राप्रवेशने। संध्ययोः सस्यवृद्धिः स्यात्सर्वसंपन्नृणां निशि ॥९॥ स्तोकवृष्टि-रनर्घः(र्थः)स्यादवृष्टिः सस्यसंपदः। आर्द्रोदये प्रभिन्ने चेद्भवेदीतिर्न संशयः ॥१०॥ चन्द्रेज्ये ज्ञेऽथवा शुक्रे केन्द्रे त्वीतिर्विनश्यति। पूर्वाषाढां गतो भानुर्जीमूतैः परिवे-ष्टितः ॥११॥ वर्षत्यार्द्रादिमूलान्तं प्रत्यक्षं प्रत्यहं तथा। वृष्टिश्चेत्पौष्णभे तस्माद्दश-क्षेधु न वर्षति ॥ १२ ॥ सिंहे भिन्ने कुतो वृष्टिरभिन्ने कर्कटे कुतः। कन्योदये प्रभिन्ने चेत्सर्वदा वृष्टिरुत्तमा ॥ १३ ॥ अहिर्बुध्न्ये पूर्वसस्यं परसस्या च रेवती। भरणी सर्वसस्या च सर्वनाशाय चाश्विनी ॥ १४ ॥ वसिष्ठः–दस्रादिकर्क्षद्वयगे दिनेशे वृष्टिर्भवेत्क्षेमकरी जनानाम्। वह्न्यर्क्षसंस्थे यदि वृष्टिरीतिर्ब्राह्मद्वयर्क्षे त्वतुलं सुभिक्षम् ॥१५॥ कश्यपः–आर्द्राप्रवेशे वृष्टिः स्यात्सार्धमासमवर्षणम् ॥१६॥ वसिष्ठः–प्रवेशकाले यदि रौद्रभस्य वृष्टिर्भवेदीतिरनर्घता च। शेषेषु पादत्रितयेषु भीतिरत्यल्पवृष्टिर्महती मंदा वा ॥ १७ ॥ नारदः–गुरोः सप्तमराशिस्थः प्रत्यग्रो भृगुजो यदा। तदाऽतिवर्षणं भूरि प्रावृट्काले बलोज्झिते ॥१८॥ आसन्नम(ग्ना ह्य)र्क-शशिनोः परिवेषगतोत्तरो। विपुला पूर्णमण्डूकस्वना वृष्टिर्भवेत्तदा ॥ १९॥ यदा प्रत्युद्गता मेघाः स्वसद्मोपरि संस्थिताः। पतन्ति दक्षिणस्था वा अगेद्वृष्टिस्तदाऽ-चिरात् ॥ २० ॥ नखैर्लिखन्तो मार्जाराश्चावनिर्लोहसंयुता। रथ्यायां सेतुबन्धाः स्युर्बालानां वृष्टिहेतवः ॥ २१ ॥ पिपीलिकाश्रेण्यश्छिन्ना खद्योता बहवस्तदा। द्रुमाधिरोहः सर्पाणां प्रतीन्दुर्वृष्टिसूचकाः ॥ २२ ॥ उदयास्तमये काले विवर्णोऽ-र्कोऽथवा शशी। मधुवर्णोऽतिवायुश्चेदतिवृष्टिर्भवेत्तदा ॥ २३ ॥ वराहः–आर्द्र-द्रव्यं स्पृशति यदि वा वारि तत्संज्ञकं वा तोयासन्नो भवति यदि वा तोयकार्यो-न्मुखो वा। प्रष्टा वाच्यः सलिलमचिरादस्ति निःसंशयेन पृच्छाकाले सलिल-मिति वा श्रूयते यत्र शब्दः ॥ २४ ॥ चिरसमुदकं गोनेत्राभं वियद्विमला दिशो लवणविकृतिः काकाण्डाभं यदा च भवेन्नभः। पवनविगमः पोप्लूयन्ते झषाः स्थलगामिनो रसनमसकृन्मण्डूकानां जलागमहेतवः ॥ २५ ॥ गिरयोऽञ्जनचूर्ण-संनिभा यदि वा वाष्पनिरुद्धकन्दराः। कृकवाकुविलोचनोपमाः परिवेषाः शशि-नश्च वृष्टिदाः ॥ २६ ॥ प्रायो ग्रहाणामुदयास्तकाले समागमे मण्डलसंक्रमे च। पक्षक्षये तीक्ष्णकरायनान्ते वृष्टिर्गतेऽर्के नियमेन चार्द्राम् ॥ २७ ॥ समागमे

१ ध. 'नम् भुवर्क्ष°। २ ए. 'गं। विपुलपूर्णम°।

पतति जलं ज्ञशुक्रयोर्ज्ञजीवयोर्गुरुसितयोश्च संगमे । यमारयोः पवनहुताशजं भयं ज्ञदृष्टयोरसहितयोश्च सद्ग्रहैः ॥ २८ ॥

इति सद्योवृष्टिलक्षणम् ।

---

## अथ सप्तनाडीचक्रम् ।

| | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| कृ | रो | मृ | आ | पु | पु | आ | म | पू | उ | ह | चि | स्वा | वि |
| अ | ज्ये | मू | पू | उ | अ | श्र | ध | श | पू | उ | रे | अ | भ. |

अथातः संप्रवक्ष्यामि यच्चक्रं सप्तनाडिकम् । येन विज्ञातमात्रेण वृष्टिं जानन्ति साधकाः ॥ १ ॥ कृत्तिकादि लिखेद्भानि साभिजिति ( न्ति) क्रमेण च । सप्तनाडीव्यधस्तत्र कर्तव्यः पन्नगाकृतिः ॥ २ ॥ ताराचतुष्के वेधेन नाड्येकैका प्रजायते । तासां नामान्यहं वक्ष्ये तथा चैव फलानि च ॥ ३ ॥ कृत्तिका च विशाखा च मैत्राख्यं भरणी तथा । ऊर्ध्वाख्या शनिनाडी सा चण्डवाताभिधा मता ॥ ४ ॥ रोहिणी स्वातिर्ज्येष्ठाश्विर्द्वितीया नाडिका मता । आदित्यप्रभवा नाडी वायुनाम्नी तथैव च ॥ ५ ॥ सौम्यं चित्रा तथा मूलं पौष्णमृक्षं चतुर्थकम् । तृतीयाऽङ्गारका नाडी दहनाख्या तथैव च ॥ ६ ॥ रौद्रं हस्तस्तथा पूर्वाषाढा भाद्रपदोत्तरा । चतुर्थी जीवनाडी सा सौम्यनाडी प्रकीर्तिता ॥ ७ ॥ पुनर्वसूत्तरा फल्गुन्युत्तराषाढतारका । पूर्वा भद्रा च शुक्रेशा पञ्चमी नीरनाडिका ॥ ८ ॥ पुष्यश्च फल्गुनी पूर्वा अभिजिच्छततारका । षष्ठी नाडी च विज्ञेया बुधेशा जलनाडिका ॥ ९ ॥ आश्लेषा च मघा कर्णो धनिष्ठाभं तथैव च । अमृताख्या हि सा चान्द्री सप्तमी सा रसावला ॥ १० ॥ मध्यमार्गस्थिता सौम्या नाडी तस्याग्रपृष्ठतः । सौम्ययाम्यगतं ज्ञेयं नाडिकानां त्रिकं त्रिकम् ॥ ११ ॥ क्रूरा याम्यगता नाड्यः सौम्याः सौम्यदिगाश्रिताः । मध्यनाडी च मध्यस्था ग्रहरूपफलप्रदा ॥ १२ ॥ एकनाडीगता ह्याद्या ग्रहाः क्रूराः शुभा यदि । ततो नाडीफलं वाच्यं शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥ १३ ॥ ग्रहाः कुर्युर्महावातं महावाताख्यनाडिकाः । वायुनाडीगता वायुं दहन्यां दाहगा यदि ॥ १४ ॥ सौम्यनाडीगता मध्या नीरस्था मेघवाहकाः । जल्यायां वृष्टिदा चन्द्रनाडीगाम्नेऽतिवृष्टिदाः ॥ १५ ॥ एकोऽप्येनत्फलं धत्ते स्वनाडीसंस्थितो ग्रहः । भूयुतः सर्वनाडीषु धत्ते नाडीभवं फलम् ॥ १६ ॥ प्रावृट्काले समायाते रौद्रामृक्षगते रवौ । नाडीत्रयसमायोगे जलयोगान्वदाम्यहम् ॥ १७ ॥ यत्र नाडीस्थितश्चन्द्रस्त-

त्रस्थाः खेचरा यदि । क्रूरसौम्यविमिश्राश्च तद्दिने वृष्टिरुत्तमा ॥ १८ ॥ एकर्क्षे तु समायोगो जायते यदि खेचरैः। तत्र काले महावृष्टिर्यावत्तस्यांशगः शशी ॥१९॥ केवलैः सौम्यपापैर्वा ग्रहैर्विद्धो यदा शशी । तदाऽतितुच्छं पानीयं दुर्दिनं भवति ध्रुवम् ॥ २० ॥ यस्य ग्रहस्य नाडीस्थचन्द्रमास्तद्ग्रहेण च । दृष्टो युक्तः करोत्यम्बु यदि क्षीणो न जायते ॥२१॥ पीयूषनाडीगश्चन्द्रस्तत्र खेटाः शुभाशुभाः। त्रिचतुष्पञ्च पानीयं दिनान्येकत्रिसप्तकम् ॥ २२ ॥ एवं जलाख्य नाडीस्थे चन्द्रे मिश्रग्रहान्विते । दिनार्धदिवसाः पञ्च दिनानि जायते जलम् ॥ २३ ॥ नीरनाडीस्थिते चन्द्रे तत्रस्थैः पूर्ववद्ग्रहैः । यामं दिनार्धकं त्रीणि दिनानि जायते जलम् ॥ २४ ॥ अमृतादित्रये यत्र भवन्ति सर्वखेचराः । तत्र वृष्टिः क्रमाज्ज्ञेया धृत्यर्करसवासरैः ॥ २५ ॥ सौम्यनाडीगताः सर्वे वृष्टिदास्ते दिनत्रयम् । शेषनाडी महावाता दुष्टवृष्टिप्रदा ग्रहाः ॥ २६ ॥ निर्जला जलदा नाडी भवेद्योगे शुभाधिके । क्रूराधिकसमो योगो जलदाऽप्यम्बुदाहिका ॥ २७॥ याम्यनाडीस्थिताः क्रूरा अनावृष्टिप्रसूचकाः । शुभयुक्ता जलांशस्थास्त्वतिवृष्टिप्रदा ग्रहाः ॥ २८ ॥ एकनाडीसमारूढौ चन्द्रमोधरणीसुतौ । यदि तत्र भवेज्जीवस्तदा जलमयी मही ॥ २९ ॥ बुधशुक्रौ यदैकत्र गुरुणा च समन्वितौ । चन्द्रयोगे तदा काले जायते वृष्टिरुत्तमा ॥ ३० ॥ जलयोगे समायाते तदा चन्द्रसितौ ग्रहौ । क्रूरैर्दृष्टौ युतौ वाऽपि तदा मेघोऽल्पवृष्टिदः ॥ ३१ ॥ उदयास्तमये मार्गे वक्रे शुक्रो च ( क्वाथ ) संक्रमे । जलनाडीगताः खेटा महावृष्टिप्रदा मताः ॥ ३२ ॥

इति सप्तनाडीचक्रम् ।

---

## अथ सस्योत्पत्तिविचारः ।

वृश्चिकवृषप्रवेशे भानोर्ये बादरायणप्रोक्ताः । ग्रीष्मशरत्सस्यानां सदसद्योगाः कृतास्त इमे ॥ १ ॥ भानोरलिप्रवेशे केन्द्रैस्तस्माच्छुभग्रहाक्रान्तैः । बलवद्भिः सौम्यैर्वा निरीक्षितैर्ग्रैष्मिका वृद्धिः ॥ २ ॥ अष्टमराशिगतेऽर्के गुरुशशिनोः कुम्भसिंहसंस्थितयोः । सिंहघटस्थितयोर्वा निष्पत्तिर्ग्रीष्मसस्यस्य ॥ ३ ॥ अर्कात्सिते द्वितीये बुधेऽथवा युगपदेव संस्थितयोः । व्ययगतयोर्वा तद्वन्निष्पत्तिरतीव गुरुदृष्ट्या ॥ ४ ॥ शुभमध्येऽलिनि सूर्याद्गुरुशशिनोः सप्तमे परा संपत् । अल्पादिस्थे सवितरि गुरौ द्वितीयेऽर्धनिष्पत्तिः ॥ ५ ॥ लाभहिबुकार्थयुक्तैः सूर्याद्लिगात्सितेन्दुशशिपुत्रैः । सस्यस्य परा संपत्कर्मणि जीवेऽथवा चाऽऽग्या ॥ ६ ॥

कुम्भे गुरुर्गवि शशी सूर्योऽलिमुखे कुजार्कजौ मकरे। निष्पत्तिरस्ति महती पश्चात्परचक्ररोगभयम् ॥ ७ ॥ मध्ये पापग्रहयोः सूर्यः सस्यं विनाशयत्यलिगः । पापः सप्तमराशौ जातं जातं विनाशयति ॥ ८ ॥ अर्थस्थाने क्रूरः सौम्यैरनीक्षितः प्रथमजातम् । सस्यं निहन्ति पश्चादुप्तं निष्पादयेद्व्यक्तम् ॥ ९ ॥ जामित्रकेन्द्रसंस्थौ क्रूरौ सूर्यस्य वृश्चिकस्थस्य । सस्यविपत्तिं कुरुतः सौम्यैर्दृष्टौ न सर्वत्र ॥ १० ॥ वृश्चिकसंस्थादर्कात्सप्तमषष्ठापगौ यदा क्रूरौ । भवति तदा निष्पत्तिः सस्यानामर्घपरिहानिः ॥ ११ ॥ विधिनाऽनेनैव रविर्वृषप्रवेशे शरत्समुत्थानाम् । विज्ञेयः सस्यानां नाशाय शिवाय वा तज्ज्ञैः ॥१२॥ त्रिषु मेषादिषु सूर्यः सौम्ययुतो वीक्षितोऽपि वा विचरन् । ग्रैष्मिकसस्यं कुरुते समर्घमुभयोपयोगं च ॥१३॥ कार्मुकमृगघटसंस्थः शारदसस्यस्य तद्वदेव रविः । संग्रहकाले ज्ञेयो विपर्ययः क्रूरदृग्योगात् ॥ १४ ॥

इति सस्योत्पत्तिविचारः ।

इति शूरमहाठश्रीशिवराजविनिर्मिते । ज्योतिर्निबन्धसर्वस्वे शान्त्युत्पाताः समीरिताः ॥

---

## अथ जातकाध्यायः ।

### तत्र राशिभेदाः ।

अथानुभवसंसिद्धं कथ्यते जन्मजं फलम् । गर्गानुकृतशास्त्रानुसारं प्रीतिकरं विदाम् ॥ १ ॥ होरामकरन्दे—निजानि भाग्यान्यवगन्तुमुच्चैरापत्पयोराशिमपि प्रतर्तुम् । द्रव्यं तथोपार्जयितुं जनानां होरां विना नान्य इहास्त्युपायः ॥ २ ॥ वर्णावली या लिखिता विधात्रा ललाटपट्टे भुवि मानवानाम् । होरादृशा निर्मलया यथावत्तां दैवविद्वाचयतीह नान्यः ॥ ३ ॥ यदन्यजन्मन्यशुभं शुभं वा कर्मार्जितं तस्य विपक्तिमेतत् । व्यनक्ति शास्त्रं हि दशाक्रमेण घटादिजातं तमसीव दीपः ॥ ४ ॥ लघुजातके-यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः प्राप्तिम् । व्यञ्जयति शास्त्रमेतत्तमसि द्रव्याणि दीप इव ॥ ५ ॥ यवनजातके— या पूर्वकर्मप्रभवस्य धात्री धात्रा ललाटे लिखिता प्रशस्तिः । तां शास्त्रमेतत्प्रकटी विधत्ते दीपो यथा वस्तु घनेऽन्धकारे ॥ ६ ॥ बृहज्जातके— मत्स्यो घटी नृयुगलं सगदं सवीणं चापी नरोऽश्वजघनो मकरो मृगास्यः । तौली च सस्यदहना प्लवगा च कन्या शेषाः स्वनामसदृशाः समसंचराः स्युः ॥ ७ ॥ लघुजातके—अरुणसितहरितपाटलपाण्डुविचित्राः सितेतरपिशङ्गौ । पिङ्गलकर्बुरबभ्रुकमलिना रुचयो यथासंख्यम् ॥ ८ ॥ शीर्षमुखबाहुहृदयोदराणि कटिवस्तिगु-

ह्यसंज्ञानि । ऊरू जानू जङ्घे चरणाविति राशयोऽजाद्याः ॥ ९ ॥ पुंस्त्रीक्रूराक्रूरचरस्थिरद्विस्वभावसंज्ञाश्च । अजवृषमिथुनकुलीराः पञ्चमनवमैः सहेन्द्राद्याः ॥ १० ॥ चत्वारः सिंहतः कुम्भो युग्मं शीर्षोदया इमे । शेषाः पृष्ठोदया ज्ञेया मीन एवोभयोदयः ॥ ११ ॥ जातकतिलके—निशाबला गोजधनुर्मृगयुग्माख्यकर्किणः । त एव मिथुनं मुक्त्वा ग्रहाः पृष्ठोदयाभिधाः ॥ १२ ॥ मेषाद्याश्चत्वारः सधन्विमकराः क्षपाबला ज्ञेयाः । पृष्ठोदया विमिथुनाः शिरसाऽन्ये शुभयतो मीनः ॥ १३ ॥ सिंहकन्यातुलाकुम्भवृश्चिका द्युबलाह्वयाः । शीर्षोदयाः सयुग्मास्ते मीन एवोभयोदयः ॥ १४ ॥ लघुजातके—अजवृषभमृगाङ्गनाकर्किमीनवणिजोंऽशकेष्विनाद्युच्चाः । दश १० शिखि ३ ष्टाविंशति २८ तिथी १५ न्द्रिय ५ त्रिधन २७ विंशेषु २० ॥ १५ ॥ जातकोत्तमे—उच्चतः सप्तमं नीचं प्रोक्तांशैः परनीचता । इह कार्यः सायनांशैः खेचरैः फलनिर्णयः ॥ १६ ॥ स्वामिनो मेषपूर्वाणां भौमः शुक्रो बुधः शशी । सूर्यो बुधः सितो भौमो गुरुर्मन्दः शनिर्गुरुः ॥ १७ ॥ सपञ्चनवमो मेषो मेषादिर्मकरस्तथा । नक्रादिः कर्कटाद्यश्च कर्किताली तुलादिकः ॥ १८ ॥ जातकतिलके—वृषकुम्भालिसिंहाद्या वृषादिषु नवांशकाः । इत्येतन्मतमेवात्र प्रमाणं फलदर्शनात् ॥१९॥ नवांशराश्योरेकत्वे शुभो वर्गोत्तमाभिधः । तत्स्थो ग्रहो नरं कुर्यात्स्वफलेनातिविश्रुतम् ॥ २० ॥ स्वगृहोच्चत्रिकोणानामेकभे भागकल्पना । स्वबुद्ध्या कैश्चिदुक्ता या न सा पूर्वैर्विभाषिता ॥ २१ ॥ गृहं होरात्रिभागश्च नवांशो द्वादशांशकः । त्रिंशांशश्चेति षड्वर्गः शुभः स्वस्य शुभस्य च ॥ २२ ॥ क्रूरमित्रभवो मध्यो मिश्रैर्मिश्रफलश्च तैः । सौम्यः स्वमित्रजः श्रेष्ठो रिपुक्रूरभवोऽशुभः ॥ २३ ॥ राश्यन्तपरमोच्चत्वं प्रोचुर्ग्रहविदस्तथा । दिग्भाग्निपिण्डतिथ्यर्कनवांशैः परमोच्चता ॥ २४ ॥ जातकतिलके—कर्मलाभारिदुश्चिक्या अत्र चोपचयाभिधाः । चतुर्थो दशमश्चात्र चतुरस्राभिधो मतः ॥ २५ ॥ अष्टमे चतुरस्रत्वं युक्तियुक्तं न दृश्यते । ताजिकेन ततश्चोक्ता दशमे चतुरस्रता ॥ २६ ॥ जामित्रं सप्तमं द्यूनं त्रिकोणं नवपञ्चकम् । दशमस्य तथा संज्ञा स्वाज्ञमेषूरणास्पदाः ॥ २७ ॥ व्ययस्य शुभरिष्फान्ताख्रित्रिकोणं तपः शुभे । लग्नतुर्यास्तखं केन्द्रं कण्टकं च चतुष्टयम् ॥ २८ ॥ केन्द्रात्परं पणफरं तस्मादापोक्लिमं मतम् । तेषु खेटाः फलं दद्युः पूर्णार्धाङ्घ्रिफलं क्रमात् ॥ २९ ॥ लघुजातके—नृचतुष्पदकीटाख्या बलिनः प्राग्दक्षिणापरोत्तरगाः । संध्यायुगात्रिबलिनः कीटा नृचतुष्पदाः राश्याः ॥ ३० ॥ अधिप-

युतो दृष्टो वा बुधजीवनिरीक्षितश्च यो राशिः । स भवति बलवान्न यदा युक्तो दृष्टोऽपि वा शेषैः ॥ ३१ ॥ जातकतिलके—तनुर्धनं भ्रातृबन्धू पुत्रोऽरिः पत्न्यथो मृतिः । धर्मकर्मायव्ययाख्या भावाश्चिन्त्यास्तनोः क्रमात् ॥ ३२ ॥ कन्याद्या इह चत्वारो दीर्घा ह्रस्वा झपादयः । कुलीरसिंहमकरकुम्भाः स्यू राशयः समाः॥३३॥

इति राशिभेदाः ।

---

## अथ ग्रहस्वरूपभेदाध्यायः ।

कालात्माऽर्को मनश्चन्द्रः सत्त्वं भौमो बुधो गिरः । जीवो ज्ञानं सुखं शुक्रो मदनो दुःखकर्मजः ॥ १ ॥ आत्मादयो जन्मखगैर्बलिभिर्बलिनो नृणाम् । विबला विबलैस्तेषु शनिर्व्यस्तफलप्रदः ॥ २ ॥ मधुपिङ्गलदृक् सूर्यो रक्तश्यामोऽल्पमूर्धजः । कौसुम्भवासाः पित्तास्थिसारः स्याच्चतुरस्रकः ॥ ३ ॥ सुदृङ् मधुरवाक् प्रांशू रक्तसारः सिताम्बरः । गौरो वृत्तः कृशः प्राज्ञो बहुवातकफः शशी ॥ ४ ॥ पिङ्गाक्षस्तरुणो हिंस्रो रक्तगौरोऽरुणाम्बरः । ह्रस्वेस्वरोऽपटुर्मज्जापित्तसारः कुजश्चलः ॥ ५ ॥ पालाशवासास्त्वक्सारः क्लिष्टवाग्बहुहास्यकृत् । दूर्वाश्यामस्त्रिदोषात्मा वृत्तोऽतिनिपुणो बुधः ॥ ६ ॥ मेदःसारो बृहत्कायः पिङ्गकेशेक्षणः सुधीः । समी कफात्मा धर्मज्ञो गौरः पीताम्बरो गुरुः ॥ ७ ॥ शुक्रसारः सुखी कान्तः सुदृग्वातकफात्मकः । कृष्णलम्बासितकचः श्यामो रक्ताम्बरो भृगुः ॥ ८ ॥ दीर्घोऽनिलात्मा दुर्दन्तः स्नायुसारोऽलसः कृशः । रोमशो मलिनो मूर्खः शनिः कृष्णोऽसिताम्बरः ॥ ९ ॥ रूपाणि स्वगृहस्थानामेतान्यथ पुनश्च ते । मित्रस्वयुक्तराशीशवलानुगुणतद्गुणैः ॥ १० ॥ क्षीणेन्द्वर्कार्किभौमाः स्युः पापाः सौम्योऽपि तद्युतः । राहुकेतू पापतरौ पापः पापयुतस्तथा ॥ ११ ॥ रविशुक्रकुजा राहुशनिचन्द्रज्ञसूरयः । प्रागादीशा अथैतेषां तदाशाचारिणो गृहाः ॥ १२ ॥ जीवार्कारा नरा ज्ञार्की क्लीबौ चन्द्रसितौ स्त्रियौ । सत्त्वं गुर्विन्द्विनाः शुक्रज्ञौ रजोऽसृक्शनी तमः ॥ १३ ॥ लघुजातके—दशमतृतीये नवपञ्चमे चतुर्थाष्टमे कलत्रं च । पश्यन्ति पादवृद्ध्या फलानि चैवं प्रयच्छन्ति ॥ १४ ॥ ताजिके—तृतीयैकादशे तुर्यदशमे नवपञ्चमे । पादवृद्ध्या पिबन्त्येषु पूर्णं चाऽऽर्यारसूरयः ॥ १५ ॥ युक्ताः परस्परं पूर्णं [illegible]दृत्पश्यन्ति खेचराः । सर्वेऽपि सप्तमं चेति पूर्णदृक् ताजिकोदिता ॥१६॥ जीवो बुधेज्यौ शुक्रज्ञौ व्यर्का व्यारा विविध्विना (?)। वीन्द्विनाराद्रनादीनां(?) मित्राण्यन्ये [illegible]

---

१ ख. 'स्वभगहोऽश' । २ घ. 'विश्रा' । विद्वि तारा ईना' ।

शत्रवः ॥ १७ ॥ स्फुटो मित्रारिभावोऽयं सर्वैरुक्तो महर्षिभिः । नवो लोकप्रसिद्धस्तु न प्रत्यक्षफलो यतः ॥ १८ ॥ जातकतिलके—होराशास्त्रेषु सर्वेषु ज्ञसितर्क्षे गुरुः शुभः । जीवस्य ज्ञसितौ शत्रू यदि तद्युज्यते कथम् ॥ १९ ॥ अशुभो ज्ञो रविक्षेत्रे रविः क्लेशकरो ज्ञभे । यदि मित्रगृहस्थौ स्तः कथमत्राशुभं फलम् ॥ २० ॥ इत्यादि बहुधा चैतद्युक्तियुक्तं न दृश्यते । अधिमित्रारियुक्तिश्च नैषा पूर्वैर्पभाषिता ॥ २१ ॥ लघुजातके—बलवान्मित्रस्वगृहोच्चनवांशके(शे)ष्वीक्षितः शुभैश्चापि । चन्द्रसितौ स्त्रीक्षेत्रे पुरुषक्षेत्रोपगाः शेषाः ॥ २२ ॥ अहनि सितार्कसुरेज्या द्युनिशं ज्ञो नक्तमिन्दुकुजसौराः । स्वदिनादिष्वशुभशुभा बहुलेतरपक्षयोर्बलिनः ॥ २३ ॥ प्राच्याद्या जीवबुधौ सूर्यारौ भास्करिः शशाङ्कसितौ । उदगयने शशिसूर्यौ वक्रेऽन्ये स्निग्धविपुलाश्च ॥ २४ ॥ मन्दारसौम्यवाक्पतिसितचन्द्रार्का यथोत्तरं बलिनः । नैसर्गिकबलमेतद्बलसाम्येऽस्मादधिकचिन्ता ॥ २५ ॥ जातकतिलके–युक्तो दृष्टोऽशुभैः खेटो बली मित्रैश्च तैः परम् । पापैः क्लेशकरस्तैस्तु मित्रैः स क्लेशदैन्यकृत् ॥ २६ ॥ चन्द्रेण संयुताः सर्वे सर्वेनैव बलोत्कटाः । भार्धान्तरस्था अबलाः क्रमात्पापैर्युताः समाः २७ ॥ अर्केणास्तंगतास्तद्वत्तेन मुक्ताः क्रमाच्छुभाः । सौम्याः पापोज्झितार्श्चैवं सौम्ययोगे शुभं भवेत् ॥ २८ ॥

इति ग्रहस्वरूपभेदाध्यायः ।

---

## अथाऽऽधानचिन्ता ।

चन्द्रे तूपचयर्क्षस्थे स्त्रीणां कुजनिरीक्षिते । यद्रजो दृश्यते तत्स्याद्गर्भग्रहणयोग्यकम् ॥ १ ॥ पुंसामुपचयस्थोऽब्जो गुरुणा यदि दृश्यते । स्त्रीपुंसोश्च तदा योगं चन्द्रे नैवान्यथा तयोः ॥ २ ॥ शुक्रार्कौ बलिनौ स्वांशे पुंसामुपचयस्थितौ । यदा स्त्रीणां कुजेन्दू वा तदा स्याद्गर्भसंभवः ॥ ३ ॥ वराहः–आधानेऽस्तगृहं यत्तच्छीलो मैथुने पुमान्भवति । स्त्रावासमसद्युतवीक्षितं विदग्धं शुभैरस्तम् ॥ ४ ॥ जातकतिलके–शुक्रार्कभौमशनिभिः स्वांशोपचयगैस्तथा । त्रिकोणलग्नगे चेज्ये सबले गर्भसंभवः ॥ ५ ॥ स्त्रीपुंसोस्तु मनोभावो यथा गर्भस्तथा रते । पुंसोऽर्काद्रोगदौ द्यूने मन्दारौ चेन्दुतः स्त्रियाः ॥ ६ ॥ मन्दारमध्यगे सूर्ये पुंसो मृत्युर्विधौ स्त्रियाः । मन्देनाऽऽरेण चाब्जेऽर्के दृष्टे युक्ते मृतिस्तयोः ॥ ७ ॥ शनीन्दू पितृमात्राख्यौ निश्यह्नि रविभार्गवौ । ओजयुग्मर्क्षगौ स्वर्क्षस्थितौ च

---

१ क. 'न्द्रेऽनुप' ।

शुभदौ तयोः ॥ ८ ॥ होरामकरन्दे—क्रूरान्तरस्थौ युगपत्पृथग्वा विलग्नचन्द्रौ भवतो निषेके । शुभग्रहालोकनवर्जितौ चेत्तदा सगर्भैव विपद्यते स्त्री ॥ ९ ॥ इन्दुतो यदि विलग्नतोऽथवा बन्धुगैरशुभदैः कुजेऽष्टमे । बन्धुरिष्फगतयोः कुजार्कयोः स्यात्क्षये शशिनि पूर्ववन्मृतिः ॥ १० ॥ गर्गः—शनियुक्तेक्षितः शुक्रः पञ्चमस्थो निशाकरात् । सपापः कर्मगो वाऽर्को भवेन्मातुरनिष्टदः ॥ ११ ॥ चन्द्रात्त्रिकोणगो मन्दः कुर्यान्मातृवधं निशि । भृगुपुत्रात्तथैवाऽऽरो दिवसे पापवीक्षितः ॥ १२ ॥ मृगाङ्कजातके—क्षीणेऽब्जे पापसंयुक्ते मातुर्मृत्युरिने पितुः । पापैर्दृष्टे भवेद्व्याधिर्मिश्रैर्मिश्रं शुभैः शुभम् ॥ १३ ॥ गर्गः—क्लेशो मातुः सुखास्तस्थैः पापैर्वा चन्द्रसंयुतैः । मरणं जायते क्रूरैः शशाङ्कात्सप्तमस्थितैः ॥ १४ ॥ होराप्रदीपे—सूर्यात्सप्तमराशौ यदि युक्तौ सूर्यलोहितौ प्रसवे । सौम्यैर्दृष्टौ निधनं कुर्यातां सद्य एव पितुः ॥ १५ ॥ चन्द्रादष्टमराशौ नवमे वा सप्तमेऽपि वा पापाः । सर्वेऽप्यतमे इन्दुर्बालं जातं सह जनन्या ॥ १६ ॥ बादरायणजातके—रुधिरसहितस्तु सौरश्चरभवने रात्रिजन्मनि नरस्य । कथयति पितरमतीतं परदेशे नात्र संदेहः ॥ १७ ॥ यत्रस्थस्तत्र स्यात्स्वपुत्ररुधिराङ्गसंयुतः सूर्यः । प्राग्जन्मनो निवृत्तं कथयति पितरं प्रसूतस्य ॥ १८ ॥ होराप्रदीपे—जन्माष्टषष्ठकामद्वादशभवनस्थितेषु पापेषु । माता सुतेन सार्धं म्रियते नैवात्र संदेहः ॥ १९ ॥ बादरायणः—जीवति मातरि म्रियते सूनुः षष्ठान्त्यगेषु पापेषु । जन्माष्टसप्तमेषु जीवति सूनौ म्रियेत तन्माता ॥२०॥ होरामकरन्दे—स्मरतनुगतयोर्दिनकरकुजयोः । भवति हि निधनं प्रहरणजनितम् ॥ २१ ॥ जातकतिलके—कललाण्डकशाखास्थित्वग्रोमोद्गमचेतनाः । क्षुत्तृषा चाष्टमे मासि निर्गमोद्वेगितागमः ॥२२॥ शुक्रारेज्यार्किसोमार्कज्ञलग्नेशेन्दिनाः क्रमात् । मासेशा बलवत्खेटाः स रजोद्गोद्भवः स्त्रियाः ॥ २३ ॥ होरामकरन्दे—विक्रमशालिनि मासपतौ स्याद्गर्भविवृद्धिरथोच्चगते वा । नीचगते कलुषेऽस्तगते वा पापयुते खलु गर्भनिपातः ॥२४॥ जातकोत्तमे-प्राग्लग्नस्थौ मन्दभौमौ निषेके नारीगर्भस्रावहेतू भवेताम् । तत्संदृष्टे तद्गृहस्थे हिमांशौ यद्वा स्त्रीणां जायते गर्भपातः ॥ २५ ॥ जातकतिलके—ओजर्क्षे विषमांशस्थैर्लग्नेज्यार्केन्दुभिः पुमान् । समे समांशगैः स्त्री स्यादाधाने प्रसवेऽपि वा ॥ २६ ॥ गुर्वर्कावोजभांशस्थौ गुर्वर्कौ पुंजनुःकरौ । शुक्रेन्द्वाराः समर्क्षांशे बलिनः स्त्रीजनुःकराः ॥ २७ ॥ गुर्वर्कयोर्युग्मभांशके बुधदृष्टयोः । पुंद्वयं स्यात्सितारार्कजैस्तद्वत्स्त्रीद्वयगैः स्त्रियौ ॥ २८ ॥ लग्नं विनौजभांशस्थे मन्दे पुंजन्म जायते । बली वा नृलगः केन्द्रे नृदृष्टश्चाबलोऽन्यथा ॥२९॥ ओजेऽब्ज-

१ प. 'अन्दुभि०।

लग्नेऽसृग्दृष्टे चन्द्रज्ञौ वा समौजगौ । ओजांशे शुक्रलग्नार्काः क्लीवजन्मकरास्तथा ॥ ३० ॥ समौजभस्थौ लग्नार्कावन्योन्यं यदि पश्यतः । ज्ञार्की वा रविभौमौ वा तद्वत्क्लीवकरौ मतौ ॥ ३१ ॥ लग्ने धन्वंशके दृष्टे बलिना ज्ञेन वाऽर्किणा । सर्वैर्धन्वंशगैः खेटैर्गर्भेऽत्यधिकजन्तुकः ॥ ३२ ॥ जातकोत्तमे–भौमदृक्काणगे चन्द्रे सौम्यैरायधनस्थितैः । सूर्यस्तद्वेष्टितस्तद्वत्पापलग्ने विनिर्दिशेत् ॥३३॥ अशुभैर्द्वादशर्क्षस्थैः शुभदृष्टिविवर्जितैः । आधानलग्ने मरणं योषितः प्रवदेद्बुधः ॥ ३४ ॥

इत्याधानचिन्ता ।

---

## अथ जन्माध्यायः ।

आधानकालविज्ञाने योगानुक्तान्विचिन्तयेत् । प्रश्नतः सूतिकालाद्वा युक्त्या तत्फलसंविदः ॥ १ ॥ होरामकरन्दे–निषेकतो द्यूनगृहं स्वभं वा जन्मर्क्षमेतन्न मतं बहूनाम् । द्विपट्कभागे शशभृद्धि यस्मिंस्तस्मिन्प्रसूतिः पुरतो मृगाङ्के ॥ २ ॥ प्रश्ने यद्भे शशी तस्मात्पञ्चमं जन्मभं वदेत् । इत्याह भगवान्गर्गः सप्तमं बादरायणः ॥ ३ ॥ तत्काले चन्द्रमा यस्मिन्द्वादशांशे व्ययस्थितः । पुरस्ताद्राशिगे चन्द्रे प्रसवं तस्य निर्दिशेत् ॥ ४ ॥ जातकोत्तमे–गर्भाधाने चरे भानौ दशमे मासि सूयते । स्थिरे चैकादशे मासि द्वादशे द्विस्वभावगे ॥ ५ ॥ आधाने प्रश्नकाले वा शन्यंशे सप्तमे शनौ । त्रिभिरब्दैः प्रसूतिः स्याच्चन्द्रे वाऽस्तेऽर्कवत्सरैः ॥ ६ ॥ वृद्धयवनः–यो यस्य मासस्य भवेद्धि नाथः संयोगमेतं तु यदा प्रयाति । अर्वाग्विधाने स तदाऽस्य जन्म वीर्येण हीनो यदि वाऽऽत्मजेन ॥७॥ गर्गः–बलहीनैर्ग्रहैः सर्वैर्नवपञ्चमगे बुधे । द्विगुणाङ्घ्रिशिरोहस्तो भवत्येकोदरस्तथा ॥ ८ ॥ चतुष्पदर्क्षगे सूर्ये द्विस्वभावर्क्षगैः परैः । सबलैर्यमलौ स्यातामेककोशाभिवेष्टितौ ॥ ९ ॥ यवनजातके–शनैश्चरे मूर्तिगते शशाङ्कजे व्ययस्थिते नीचगते प्रभाकरे । विलोमजन्म प्रवदन्ति भूमिजे सभार्गवे नालविवर्जितश्च ॥ १० ॥ होरामकरन्दे–सदन्तौ सौम्यभांशस्थौ कुरुतो मन्दभूमिजौ । कर्कलग्ने विधुः कुब्जं सूते मन्दारवीक्षितः ॥ ११ ॥ वराहः–कुलीरालिझषान्तस्थैः पापैश्चन्द्रे वृषोपगे । मूकः पापेक्षिते सौम्यदृष्टे गीः स्याच्चिरेण तु ॥ १२ ॥ जातकतिलके–सिंहाजधनुरन्तस्थैः पापैर्दृष्टे वृषे विधौ । मूकः स्याच्छुभदृष्टे तु चिरेण लभते गिरम् ॥ १३ ॥ पापैः सिंहाजधन्वंशे जडस्तल्लग्नगे विधौ । मीनलग्नेऽर्कमन्दारदृष्टैः पङ्गुः शुभैर्विना ॥ १४ ॥ मन्देन्दुनेक्षिते लग्ने मृगाङ्के वामनो

भवेत् । धीधर्मलग्नद्रेक्काणैः सपापैरभुजाङ्घ्रिकः ॥ १५ ॥ सिंहलग्नस्थितार्केन्द्वोः कुजसूर्यजदृष्टयोः । अन्धः शुभाशुभैर्दृष्टौ तौ चेद्बुद्बुदलोचनः ॥ १६ ॥ व्ययेऽब्जे वामनेत्रोनो दक्षिणाक्षिवियुग्रवौ । पापैः स्युरशुभा योगाः शुभाः शुभखगेक्षणात् ॥ १७ ॥

इति जन्माध्यायः ।

---

## अथ सूतिकाध्यायः ।

जातकतिलके—शीर्षोदये जन्मलग्ने मूर्ध्नोत्तानः प्रसूयते । पृष्ठोदयेऽन्यथाऽङ्घ्रिभ्यां हस्ताभ्यामुभयोदये ॥ १ ॥ वक्रिते लग्नभांशेंऽशे लग्नस्थे विग्रहो भवेत् । सक्लेशं व्यस्तगं जन्म शुभदृष्टे तनौ सुखम् ॥ २ ॥ चन्द्रो नावेक्षते लग्नं परोक्षः स्यात्पिता जनौ । खाद्भ्रष्टे चरभे सूर्ये तस्मिंल्लग्ने विदेशगः ॥ ३ ॥ लग्ने मन्दे कुजेऽस्ते वा चन्द्रे वा ज्ञसितान्तरे । परोक्षस्य पितुर्जन्म सम्यग्योगेऽन्यथाऽन्तरे ॥ ४ ॥ सारावल्यां—द्युनिशोरर्कसितयोः कुजेन संदृष्टयोः पितुरभावः । चरराशौ परदेशे युक्तेक्षितयोस्तु तत्र मृतः ॥ ५ ॥ जातकतिलके—सिंहगोजैस्तनौ सौरः सार्को वा नालवेष्टितः । लग्नांशलक्षितेऽङ्गे स्यात्कौलपूरुषपाठतः ॥ ६ ॥ यदि क्रूरर्क्षगौ पापौ सूर्याद्धर्मसुतास्तगौ । बद्धः स्थिरादिभस्थेऽर्के पिता स्वविपयादिषु ॥ ७ ॥ सारावल्यां—कुजसौरयोस्त्रिकोणे चन्द्रेऽस्तगते विसृज्यते मात्रा । दृष्टे सुरेन्द्रगुरुणा सुखान्विते दीर्घजीवी च ॥ ८ ॥ म्रियते पापैर्दृष्टे शशिनि विलग्ने कुजेऽस्तगे युक्तः । लग्नास्तलाभगतयोर्वसुधासुतमन्दयोरेवम् ॥ ९ ॥ जातकतिलके—क्रूरैः सुखास्तगैर्मातुः क्लेशः स्यादिन्दुसंयुतैः । चन्द्रात्सुखास्तगैः क्रूरैः क्लेशः क्षीणात्तथा मृतिः ॥ १० ॥ बृहज्जातके—न लग्नमिन्दुं च गुरुर्निरीक्षते न वा शशाङ्कं रविणा समागतम् । सपापकोऽर्केण युतोऽथवा शशी परेण जातं प्रवदन्ति निश्चयात् ॥ ११ ॥ जातकोत्तमे—गुरुदृष्टे तनौ वाऽब्जे गुरुवर्गोज्झितेऽपि वा । सपापार्कयुते वेन्दौ जारजातः प्रसूयते ॥ १२ ॥ गर्गः—गुरुक्षेत्रगते चन्द्रे तद्युक्ते वाऽन्यराशिगे । तद्द्रेक्काणे तदंशे वा न परजातमादिशेत् ॥ १३ ॥ लघुजातके—अदृढं नवमथ दग्धं चित्रं सुदृढं मनोरमं जीर्णम् । गृहमर्कादिर्वीर्यात्प्रतिवेश्मनि संनिकृष्टैश्च ॥ १४ ॥ गुरुरुच्चे दशमस्थो द्वित्रिभूमिकं करोति गृहम् । धनुषि सबले त्रिशालं द्विशालमन्येषु यमलेषु ॥ १५ ॥ बृहज्जातके—मन्दर्क्षांशे शशिनि हिबुके मन्ददृष्टेऽब्जगे वा तद्युक्ते वा तमसि शयनं नीचसंस्थैश्च भूमौ ॥ १६ ॥

---

१ प. 'मो आयातेश' । २ उ. 'जननो' । ३ प. 'त्रादापु' ।

यद्वद्राशिर्व्रजति ह्यरिजं गर्भमोक्षश्च तद्वत्पापैश्चन्द्रात्स्मरसुखगतैः क्लेशमाहुर्जनन्याः ॥ १७ ॥ होराप्रकाशे-जीवो यदा बन्धुगतः स्वभागेगो नभस्थलस्थो भृगुनन्दनस्तथा । चन्द्रोऽस्तगो मूर्तिगतः शनैश्चरस्तदा वृतं वस्त्रवरैस्तु मन्दिरम् ॥ १८ ॥ लघुजातके—द्वारवास्तुनि केन्द्रोपगाद्ग्रहाद्सति वा विलग्नर्क्षात् । दीपोऽर्कादुदयाद्वर्तिरिन्दुतः स्नेहनिर्देशः ॥ १९ ॥ गर्गः—कुजदृष्टे बलिन्यर्के दीपाः स्युर्बहवो जनौ । सबलैर्व्ययगैरन्यैर्ग्रहैर्ज्योतिस्तृणैर्भवेत् ॥ २० ॥ जातकतिलके—लग्नोक्तदिशि खट्वायाः शिरोङ्गानि धिया ततः । लग्नं पश्यन्ति ये खेटास्तद्वस्त्रास्तरणं व्रजेत् ॥ २१ ॥ लघुजातके—षट्त्रिनवान्त्याः पादाः खट्वाङ्गान्यन्तरालभवनानि । जनितत्त्वं यमलर्क्षे क्रूरैस्तत्तुल्य उपघातः ॥ २२ ॥ लग्नाब्जान्तर्गतैः खेटैस्तुल्याः स्युरुपसूतिकाः । दृश्यचक्रार्धगैर्बाह्या गृहान्तरथा अदृश्यगैः ॥ २३ ॥ शुभैस्तैः सूतिका रम्याः क्रूरे रूपादिनाऽन्यथा । तत्तद्ग्रहबलोत्कर्षप्रभावा बहवः स्मृताः ॥ २४ ॥ लघुजातके—अर्कादिनाम्रमणिहेमशुक्तिरजतादि मौक्तिकं लोहम् । वक्तव्यं बलवद्भिः स्वस्थाने हेम जीवेऽपि ॥ २५ ॥ जातकसारे—दीपाम्बगन्यन्नभूपादिशय्यावस्करवालकम् । सूतिकास्थानमर्कादिदिग्भागे कथयेज्जनैः ॥ २६ ॥ रिक्तं भाण्डं सपापेऽब्जे पूर्णेऽब्जे मौक्तिकादिकम् । ताम्बूलादि सिते जीवे देवे शास्त्रं वदेद्गौ ॥ २७ ॥ भर्तृपित्रादिखेटेषु यो बली तद्गृहे जनिः । एकर्क्षगैर्न दृष्टौ चेल्लग्नेन्दू विजने तदा ॥ २८ ॥ जातकतिलके—लग्नायनवमांशेऽशो याद्दग्वा सबलो ग्रहः । तद्वन्मूर्तिर्भवेद्वर्णश्चन्द्रयुक्तांशनाथवत् ॥ २९ ॥ त्रिंशांशे यस्य भानुः स्यात्तद्वत्सत्त्वादिभिर्युतः । ससतारसरातायाः(?) स्मृताः सूर्यादितो गुणाः ॥ २९ ॥ क्रूरसौम्ययुतक्षाङ्गं कालपूरुषवरुशम् । सबलेऽर्के समः पित्रा जननीसदृशो विधौ ॥ ३१ ॥ जातकोत्तमे—अत्र जातिं कुलं देशं बुद्ध्वा वर्णादिकं वदेत् । दृश्यो भागोऽत्र वामाङ्गमदृश्यो विद्धि दक्षिणम् ॥ ३२ ॥

इति सूतिकाध्यायः ।

---

## अथ व्रणादिज्ञानम् ।

बृहज्जातके—कं दृक्श्रोत्रनसाकपोलहनवो वक्त्रं च होरादयस्ते कण्ठांसकबाहुपार्श्वहृदयं क्रोडं च नाभिस्ततः । बस्तिः शिश्नगुदे ततश्च वृषणावूरू ततो जानुनी जङ्घाङ्घ्रीत्युभयत्र वामगुदितैर्द्रेकाणभागैस्त्रिधा ॥ १ ॥ तस्मिन्पापयुते व्रणः

---

१ प. °गतेन° । २ प. °शाजन्तु° ।

शुभयुते दृष्टे च लक्ष्माऽऽदिशेत्स्वर्क्षांशस्थिरसंयुते तु सहजः स्यादन्यथाऽऽगन्तुकः। मन्देऽश्मानिलजोऽग्निशस्त्रविषजो भौमे ज्ञपापे कुजः सूर्ये काष्ठचतुष्पदादणुविधौ शृङ्ग्यब्जजोऽन्यैः शुभम् ॥ २ ॥ जातकतिलके—यदा ज्ञाद्यास्त्रयः खेटाः शुभाः क्रूराश्च तेष्वपि। यो बली स्वदशायां स तिष्ठेत्पापो व्रणादिकृत् ॥३॥ लग्नात्पष्ठो व्रणस्तद्वद्व्रणकृच्चाथ पष्ठकम्। कालाङ्गरीत्या यत्राङ्गे तत्र वा तद्विधो व्रणः ॥ ४ ॥ शुभदृष्टस्तु पष्ठोऽसौ कुर्याद्वा तिलकं मशम्। लक्ष्मकृच्छुभयुक्तश्चेच्छुभाश्चाप्यत्र दुष्फलाः ॥ ५ ॥ कालपूरुषतुल्येऽङ्गे यत्र स्यातां च संगतौ। चन्द्रार्कौ तत्र लक्ष्मापि मशकाद्यमिहाऽऽदिशेत् ॥ ६ ॥

इति व्रणादिज्ञानम्।

---

## अथानिष्टाध्यायः।

होरामकरन्दे—वैशोत्सादकरः शशाङ्कभृगुजः क्रूरैः स्वसप्ताम्बुगैः शिल्पी केन्द्रगतार्किणा बुधयुतस्त्र्यंशे तनौ वीक्षिते। अन्त्ये देवगुरौ दिनेश्वरसुतस्यांशे च दासीसुतो नीचः कामगयोः खरांशुशशिनोः सौरेण संदृष्टयोः ॥ १ ॥ सारावल्याम्-उदये दिनकरपुत्रे मन्दे त्रिकोणे कुजे च सोन्मादः। क्षीणे शशिनि ससौरे जीवे वा व्ययगृहे जातः ॥२ ॥ जातकतिलके—चन्द्रेऽलिकर्कांशस्थे सपापे गुह्यरुग्भवेत्। हीनाङ्गो वेशिगे मन्दे कर्मगेऽब्जे कुजेऽस्तगे ॥ ३ ॥ मन्दारयुतदृष्टेऽब्जे चापमध्यनवांशगे। मृगवीनाजकर्क्यंशे स्थिते वा कुष्ठवान्भवेत् ॥ ४ ॥ गर्गः—क्रूरयुक्तेक्षितो लग्नात्पञ्चमो नवमोऽथवा। गोकर्क्यलिमृगाख्यश्चेद्राशिः स्यात्कुष्ठवांस्तदा ॥ ५ ॥ जातकतिलके—पापयोर्मध्यगे चन्द्रे रवौ मकरराशिगे। श्वासगुल्मक्षयप्लीहविद्रधिव्याधिपीडितः ॥ ६ ॥ अन्योन्यक्षेत्रगौ स्यातामथवा भवनांशगौ। चन्द्रार्कौ चेत्तः जातः क्षयरोगी भवेन्नरः ॥ ७ ॥ व्ययारिधनमृत्युस्थाः स्वेच्छयाऽऽर्किकुजेन्द्विनाः। अन्धं कुर्युर्बली तेषु यस्तत्प्रकृतिदोषतः ॥ ८ ॥ धीधर्मायतृतीयस्थाः पापाः सौम्यारवीक्षिताः। कर्णघातकरास्ते तु द्यूनस्था दन्तदूषिणः ॥ ९ ॥ सारावल्यां मध्ये पापग्रहयोश्चन्द्रे मदनस्थितेऽर्केजे जन्तोः। श्वासक्षयविद्रधिना गुल्मप्लीहादिपीडितस्य भवः ॥ १० ॥ बृहज्जातके—उदयत्युडुपेऽसुरास्यगे स पिशाचोऽशुभयोस्त्रिकोणयोः। सोपप्लवमण्डले रवौ चेदुदयस्थे नयनापवर्जितः ॥ ११ ॥ होरामकरन्दे—मन्दारवर्गे भृगुजेऽस्तसंस्थे कुजार्किदृष्टे परदारगः स्यात्। तथैव सेन्दू कुजसूर्यजौ चेज्जा-

---

१ व. 'शोषाद'।

यापती तौ कुलटौ भवेताम् ॥ १२ ॥ बृहस्पतिः–पञ्चमे नवमे द्यूने समेतौ सितभास्करौ । यस्य स्यातां भवेद्भार्या तस्यैकाङ्गविवर्जिता ॥ १३ ॥ वराहः—लग्नाद्व्ययारिगतयोः शशितिग्मरश्म्योः पत्न्या सहैकनयनस्य वदन्ति जन्म । द्यूनस्थयोर्नवमपञ्चमसंस्थयोर्वा शुक्रार्कयोर्विकलदारमुशन्ति जातम् ॥ १४ ॥ सारावल्याम्–भौमे कलत्रसंस्थे नित्यं वियुतो भवेत्स्त्रिया पुरुषः । म्रियते वा शनिदृष्टे योषिद्वश्यं न दृष्टेऽन्यैः ॥ १५ ॥ लग्नस्थे रवितनये गण्डान्ते भार्गवे कलत्रस्थे । वन्ध्यापतिस्तथा स्याद्यदि न सुतर्क्षं शुभैर्दृष्टम् ॥ १६ ॥ बादरायणः–व्ययरन्ध्रलग्नसंस्थैः क्रूरैः क्षीणे क्षपाकरे धीस्थे । स्त्रीहीनो भवति नरः पुत्रैश्च विवर्जितो नूनम् ॥ १७ ॥ जातकतिलके–पातकी स्याद्विलग्नस्थे गुरौ द्यूनगते शनौ । सोन्मादो लग्नगे जीवे द्यूनस्थे भूसुते भवेत् ॥ १८ ॥ पापैर्दृष्टे गोजचापे लग्ने विकृतदन्तवान् । चापे गव्यशुभर्क्षे वा खल्वाटः पापवीक्षिते ॥ १९ ॥ धीधर्मगे रवौ पापदृष्टे स्याद्दृढेक्षणः । तद्वच्छनौ वहुव्याधिर्हीनाङ्गस्तु कुजे भवेत् ॥ २० ॥ व्ययपुत्रार्थधर्मस्थैः पापैर्बन्धनभाग्भवेत् । धनुर्वृषाजलग्ने तु बन्धनं तच्च रज्जुजम् ॥ २१ ॥ युग्मकन्यातुलाकुम्भे लग्नस्थे निगडोद्भवम् । कर्किसिंहझपे दुर्गे रोधः स्याद्भूगृहेऽलिनि ॥ २२ ॥ मन्दार्कारैः शुभादृष्टैः कर्कस्थैर्भृतको भवेत् । ग्रहेणैकेन स श्रेष्ठो द्वाभ्यां मध्योऽधमस्त्रिभिः ॥ २३ ॥

इत्यनिष्टाध्यायः ।

---

## अथारिष्टाध्यायः ।

जातकतिलके–पापेक्षिते शुभैर्दृष्टे पापभांशगते विधौ । रन्ध्रारिगे मृतिः सद्यः शुभदृष्टे समाष्टकृत् ॥ १ ॥ शुभपापेक्षिते तस्मिन्मृतिर्वर्षचतुष्टयात् । एवं शुभाशुभर्क्षांशे तद्दृष्टे चानुपाततः ॥ २ ॥ सद्भे पापेक्षिते मासाच्चन्द्रे रन्ध्रारिगे मृतिः । शुभे तद्वच्छुभैर्दृष्टे वक्रिपापेक्षितेऽथवा ॥ ३ ॥ होरामकरन्दे–निधनरिपुगृहस्थः पापदृष्टः शशाङ्को झटिति निधनकारी सौम्यदृष्टोऽष्टवर्षात् । अशुभशुभसमानालोकनाद्वैश्चतुर्भिर्भवति खलु विमिश्रैश्चानुपातो विधेयः ॥ ४ ॥ षष्ठाष्टमगताः सौम्याः क्रूरैर्वक्रिभिरीक्षिताः । शुभदृष्टिविहीनास्ते मासेनान्तकराः स्मृताः ॥५॥ होराप्रदीपे–वर्षादयनान्मासात्सद्योऽब्जोऽष्टारिगो मृतिं कुर्यात् । एकादिपादवृद्ध्या दृष्टः पापैः क्रमाद्बलिभिः ॥ ६ ॥ संध्यायां भान्तगैः क्रूरैर्होरायां शशिनो मृतिः । चन्द्रे केन्द्रेऽन्यकेन्द्रेषु सपापेषु तथा शिशोः ॥ ७ ॥ होरामकरन्दे—त्रिकोणरन्ध्रास्तमनुव्ययेषु चन्द्रे सपापे म्रियते प्रसूतः । वीर्यान्वितैर्जीवबुधास्फु-

जिद्भिर्नाऽऽलोकितश्चेन्न युतोऽथवा स्यात् ॥ ८ ॥ सारावल्यां—क्षीणशरीरश्चन्द्रो लग्नस्थः क्रूरवीक्षितः कुरुते । स्वर्गगमनं हि पुंसां कुलीरगोजान्परित्यज्य ॥ ९ ॥ होराप्रदीपे—अस्ते विधौ सपापे लग्ने रन्ध्रे कुजेऽत्र जातस्य । मात्रा सहैव मरणं तद्वत्सूर्येण शस्त्रेण ॥ १० ॥ बादरायणः—लग्ने वा चन्द्रे वा पापा बलिनस्त्रिकोणरन्ध्रेषु । सौम्यैरमिश्रदृष्टाः सद्यो मरणाय निर्दिष्टाः ॥ ११ ॥ सारावल्यां—द्यूनगतेऽर्के लग्ने यमे कुजे वा विपर्यये चाऽपि । अन्यतरेण युतेऽब्जे शुभैरदृष्टे शिशुर्म्रियते ॥ १२ ॥ होरामकरन्दे—क्रूराश्चर्क्षस्य पूर्वार्धे पश्चार्धे च शुभग्रहाः । प्रसूतिर्निधनायैव कुलीरालिसमुद्गमे ॥ १३ ॥ जातकतिलके—क्षीणचन्द्रे व्ययगते पापैस्तनुमृतिस्थितैः । केन्द्रबाह्यैः शुभैर्मृत्युर्लग्नेऽब्जे वाऽस्तगैः शुभैः ॥ १४ ॥ केन्द्रमृत्युगतैः पापैः क्षीणेऽब्जे लग्नगे मृतिः । सुखास्ताष्टगते वाऽब्जे क्रूरान्तस्थेऽथवा भवेत् ॥ १५ ॥ चन्द्रे लग्नपतौ वाऽपि विबले क्रूरसंयुते । क्रूरेक्षिते शुभैर्दृष्टे तद्वत्क्रूरेक्षिते मृतिः ॥ १६ ॥ वक्री शनिः कुजर्क्षस्थः केन्द्रादिनिधनस्थितः । कुजेन बलिना दृष्टो यदि वर्षद्वयान्मृतिः ॥ १७ ॥ जीवेऽष्टमे कुजर्क्षस्थे मन्दारेन्द्विनवीक्षिते । शुभदृष्टे मृतिस्त्र्यब्दैर्नवभिः सेन्द्विने शनौ ॥ १८ ॥ शत्रुभस्थारिनाक्यारैर्मासादष्टमगैर्मृतिः । ज्ञे वाऽरिभे चतुर्वर्षैरारिदृष्टेऽरिरन्ध्रभे ॥१९॥ रन्ध्रारिव्ययगे शुक्रे सर्वपापेक्षितेऽरिभे । षड्भिरब्दैर्मृतिर्वर्षात्पापे चैवंविधेऽष्टमे ॥ २० ॥ मन्दोऽस्तगः कुजोऽम्बुस्थो मृगालितनुगः शशी । युक्तः सौम्येषु केन्द्रेषु मृत्युर्वा रिष्फगैः शुभैः ॥ २१ ॥ होरामकरन्दे—क्रूरयुक्तस्तु होरेशः पञ्चतामेव यच्छति । मासेन जन्मपस्तद्वच्छिद्रे सौम्यैर्न वीक्षितः ॥ २२ ॥ गर्गः—रिपुव्ययगतैः पापैरथवा धनमृत्युगैः । लग्ने वा पापमध्यस्थे तद्वद् द्यूनेऽपि वा मृतिः ॥ २३ ॥ जातकतिलके—पापर्क्षगेऽर्के व्योमस्थे बहुपापेक्षिते मृतिः । यद्दृक्षे केतुरुदितस्तज्ज्ञो मासद्वयात्तथा ॥ २४ ॥ पाशाहिपक्षनिगडा दृकाणा लग्नगा यदि । स्वक्रूराः स्वाधिपा दृष्टा मृत्युर्वर्षैस्तु सप्तभिः ॥ २५ ॥ रिष्फारिरन्ध्रगैः सौम्यैः पापैः केन्द्रत्रिकोणगैः । सूर्योदये मृतिः सद्यो लग्नेऽब्जे वाऽस्तगैः शुभैः ॥ २६ ॥ चन्द्राधिष्ठितराशीशे लग्नेशे वाऽर्कसंयुते । रन्ध्रारिव्ययगे मृत्युर्वर्षैर्भप्रमितैः शिशोः ॥ २७ ॥ सार्कारेऽब्जे शुभैर्दृष्टे नवमेऽब्जे सुतास्थिते । मृत्युर्वा सेन्द्विने शुक्रे गुरुदृष्टयथातिगे ॥ २८ ॥ लग्नाद्वर्काद्द्विवीः पापा बलिनोऽष्टत्रिकोणगाः । शुभैर्न युक्ता नो दृष्टाः सद्योमृत्युकराः शिशोः ॥ २९ ॥ जीवेन्द्विनज्ञैरेकस्थैः शुक्रार्केन्दुकुजैस्तथा । मन्देन्द्विनारैरथवा मृत्युर्वर्षैस्तु सप्तभिः ॥ ३० ॥ पापदृष्टः शनिर्लग्ने हन्ति षोडशभिर्दिनैः । मासेन पापसंयुक्तः केवलोऽब्देन बालकम् ॥ ३१ ॥ सेन्द्विनो ज्ञः शुभादृष्टो हन्त्येकादशहायनैः । पापयुक्तेक्षितश्चन्द्रो हन्त्य-

मायां समाद्रयात् ॥ ३२ ॥ लग्नान्मन्दाररविभिः शत्रुभे सप्तमे विधौ । क्षीणेन दृष्टे गुरुणा मृत्युर्वर्षैस्तु सप्तभिः ॥ ३३ ॥ मृगालिगोऽसितो ज्ञो वा सुखस्थोऽसृग्यमेक्षितः । मृत्युरन्ध्राधिपो वाऽस्ते क्षीणेऽब्जे पापलग्नगे ॥ ३४ ॥ पापे लग्नाधिपेऽब्जांशे क्रूरदृष्टे व्यये विधौ । मृत्यू राहौ तनौ दृश्यैः शुभैः पापैरदृश्यगैः ॥ ३५ ॥ सुखेऽब्जे कर्मगैः पापैः खेऽब्जे वा सुखगैः खलैः । शुभैरापोक्लिमैः केन्द्रैश्चन्द्रपापयुतैर्मृतिः ॥ ३६ ॥ होराप्रदीपे—मासैः षोडशभिर्हन्यात्स्वत्र्यंशे लग्नगोऽर्कजः । अब्दैर्द्वादशभिः पापैर्दृष्टो विगतरश्मिभिः ॥ ३७ ॥ मन्दो लग्ने स्वांशे यावति च प्रथमतः शुभायोगे । तावद्भिरेव वर्षैर्मृत्युकरो भवति जातस्य ॥ ३८ ॥ कर्मस्मरजलतनुगाः क्रूराः सौम्यावलोकनवियुक्ताः । मासैर्द्वादशसंख्यैः कुर्वन्ति शिशुं विगतजीवम् ॥ ३९ ॥ सारावल्यां—राहुः सप्तमभवने शशिसूर्यनिरीक्षितो न शुभदृष्टः । दशभिर्द्वाभ्यां सहितैरब्दैर्जातं तु नाशयति ॥ ४० ॥ क्षीणं यदा शशाङ्कं पश्येद्राहुः समागतं क्रूरैः । मारयति तदा दिवसैर्निर्व्याजैः कतिपयैरेव ॥ ४१ ॥ राहुश्चतुष्टयस्थो मरणाय निरीक्षितो भवति पापैः । वर्षैर्वदन्ति दशभिः षोडशभिः केचिदाचार्याः ॥ ४२ ॥ होरामकरन्दे—आदावभ्युदितः केतुर्निर्घातोल्कानिला अनु । रौद्रे सार्पे मुहूर्ते वा जातो याति यमालयम् ॥ ४३ ॥ सारावल्या—घटसिंहवृश्चिकोदयकृतस्थितिर्जीवितं हरति राहुः । पापैर्निरीक्ष्यमाणः सप्तमितैर्निश्चितं वर्षैः ॥ ४४ ॥ होरामकरन्दे—नागैर्नन्दैर्यमलनयनैः पक्षदस्रैः समीरैः क्षोण्या वेदैर्दहननयनैर्नागचन्द्रैः खदस्रैः । मेषादीनां शशिधरकरैर्जन्मकालेऽब्जयुक्तैर्भागैर्दिग्भिर्भवति मरणं वत्सरैर्भागतुल्यैः ॥ ८ । ९ । २२ । २२ । ५ । १ । ४ । २३ । १८ । २० । २१ । १० ॥ ४५ ॥ यवनः—द्वादशस्थो यदा सौरिर्जन्मसंस्थश्च भूसुतः । चतुर्थः सैंहिकेयश्चेद्दश मासान्न जीवति ॥ ४६ ॥ द्वादशस्थौ रविभौमस्तनुस्थौ शशिसूर्यजौ । सौम्यैर्न दृश्यते लग्नं स याति यममन्दिरम् ॥ ४७ ॥ षष्ठेऽष्टमे तनौ वाऽपि भौमो बुधयुतो यदि । तस्करक्रूरकर्मत्वात्खञ्जपादं करोति वा ॥ ४८ ॥ लग्नभावे यदा राहुः केन्द्रे स्यादणुरत्रिजः । शिशोर्मृत्युर्भवेत्सद्यः क्रूरदृष्टो विशेषतः ॥ ४९ ॥ पातालस्थो यदा राहुश्चन्द्रः षष्ठोऽष्टमोऽपि वा । पापदृष्टो विशेषेण सद्यः प्राणहरः शिशोः ॥ ५० ॥ जन्मलग्ने यदा राहुः षष्ठो भवति चन्द्रमाः । जातो मृत्युमवाप्नोति क्रूरदृष्टयाऽपमृत्युना ॥ ५१ ॥ शनिक्षेत्रे यदा भानुर्भानुक्षेत्रे यदा शनिः । बालो विंशतिमे वर्षे म्रियते दुष्टभावगौ ॥ ५२ ॥ षष्ठेऽष्टमे वा शीतांशुर्बुधयुक्तो यदा भवेत् । अश्वदोषाद्भवेन्मृत्युर्यद्वा व्याघ्रविदारणात् ॥ ५३ ॥ दशमार्किगृहे भानुर्मात्रा सार्धं शिशोर्मृतिः । भौमे

शत्रुगृहे खस्थे पित्रा सार्धं तथा मृतिः ॥ ५४ ॥ बादरायणः—वक्रशनैश्चरमध्ये होरायुक्तो निशाकरो हन्यात्। जननीमपत्यसहितां सौम्यैर्न निरीक्षितः सद्यः ॥ ५५ ॥ पापग्रहमध्यगतश्चन्द्रो होरागतोऽष्टमे सूर्यः। शस्त्रविदारितगर्भस्तत्र विशल्या भवेन्नारी ॥ ५६ ॥ पश्यन्ति यदा सौम्या होरास्थं पापमध्यगं चन्द्रम्। न भवति मातृविनाशो गर्भविनाशो न संदेहः ॥ ५७ ॥ प्रसवसमयेऽष्टमस्थो निशाकरः पापवीक्षितः क्षीणः। गर्भविपत्तिं कुर्यात्सक्रूरो मातरं हन्यात् ॥ ५८ ॥ क्षीणस्तु वक्रसहितो होरायां चन्द्रमा भवति। जामित्रे वा युगपत्सद्यो जातस्य मरणकारी ॥ ५९ ॥ होरायां वा निधने रिष्फे वा क्रूरखेचराः सर्वे। क्षीण-निशाकरदृष्टाः सद्यो निधनं शिशोः कुर्युः ॥ ६० ॥ पञ्चमनवमव्ययगे निधने वा सप्तमे सहिताः। रुधिरनिशाकरसौराः सौम्यैस्त्यक्ताः शिशुं हन्युः॥६१॥ सूर्यादष्टमराशौ भवतः शनिलोहितौ प्रसवकाले। सौम्यैर्दृष्टौ मरणं सद्यः कुर्यातां पितुर्घोरम् ॥ ६२ ॥ वृद्धयवन—पापग्रहावेक्षणसंगमाद्यैश्चन्द्रोऽर्दितः सद्भिरवीक्षितश्च। करोति मातुः स्तनपानहानिं श्रीणाति राशीश्वरजैः स्वभावैः. ॥ ६३ ॥ सारावल्यां—तीव्रफलराजयोगा यवनाद्यैर्ये विनिर्मितास्तेषु। वक्तव्यं दैवविदा खलकुलजातस्य रिष्टमिति ॥ ६४ ॥ लग्नाधिपे पापयुतेऽस्तसंस्थे राहुश्च केन्द्रे मृतिमेति तद्वत्। क्रूरैः सुतस्थैरपि केन्द्रसंस्थैर्म्रियेत जातः सगदोऽथवा स्यात् ॥ ६५ ॥ पापातियुक्तदृष्टोऽपि पापः पाके मृतिप्रदः। अतिनीचारिसं-स्थोऽपि शुभदृष्टिविवर्जितः ॥ ६६ ॥ लग्नस्थितो भावसमोऽरिदृष्टः पापोऽष्टप-ष्ठोऽपि निहन्ति पाके। पापेऽष्टमे स्याद्विधवाऽपि नारी द्विस्त्रिव्ययास्तोपगतैश्च दुष्टैः ॥ ६७ ॥ जातकतिलके—योगकारणखेटेषु बली जन्मनि यद्गृहे। तद्गतो-ऽब्जो बली हन्ति पापदृष्टोऽब्ज(ष्टस्त)मध्यमः ॥ ६८ ॥ लग्नं वा जन्मभं चन्द्रः प्राप्तो हन्ति तथाविधः। अनुक्तविधियोगेषु प्रौढेऽप्येष विधिर्मृषा ॥ ६९ ॥ दोषेष्वनुक्तविधिषु चिरात्तत्तद्दशासु वा। विबलस्य सपापस्य दशायां वा मृति-र्भवेत् ॥ ७० ॥ अर्कश्चन्द्रः कुजः सौरिर्लग्ने तिष्ठति पञ्चमे। पितरं मातरं हन्ति भ्रातरं च शिशुं क्रमात् ॥ ७१ ॥ ताताम्बिकामातुलसोदराश्च मातामही मातृपिता च सूनुः। सूर्यादिखेटाः खलु पञ्चमस्था निघ्नन्ति सर्वे क्रमशः प्रसूतौ ॥ ७२ ॥

इत्यरिष्टाध्यायः।

---

## अथ चन्द्रारिष्टभङ्गः ।

जातकतिलके–कृष्णपक्षे शुद्रस्यश्च दृश्यः पूर्णः सिते निशि । शुभाशुभेक्षितश्चन्द्रो न हन्ति रिपुरन्ध्रगः ॥ १ ॥ गर्गः–रात्रौ जातः सिते पक्षे दिवा जातः सितेतरे । चन्द्रारिष्टं न तस्य स्यात्पितृवच्चं स रक्षति ॥ २ ॥ आपूर्यमाणमूर्तिश्चेचन्द्रः सर्वग्रहेक्षितः । अरिष्टहारी पूर्णो वा सुहृद्भावेऽसितेक्षितः ॥ ३ ॥ जातकतिलके–परमोच्चगतो रिष्टं शुक्रदृष्टः शशी हरेत् । क्षीणोऽपि शुभवर्गस्थो हरेद्वा शुभवीक्षितः ॥ ४ ॥ षष्ठसप्ताष्टमाश्चन्द्राद्विपापा बलिनः शुभाः । घ्नन्ति रिष्टं शुभैर्युक्तास्तदंशस्थो विधुस्तथा ॥ ५ ॥ शुभद्वादशभागस्थः पूर्यमाणतनुः शशी । रिष्टहृच्छुभभस्थो वा लग्नेशेनैव वीक्षितः ॥ ६ ॥ क्रूरवर्गस्थितश्चन्द्रो रिष्टहृद्वर्गपेक्षितः । जन्मभेशो बली दृष्टः शुभैर्मित्रैश्च रिष्टहृत् ॥ ७ ॥ लग्नस्थो जन्मराशीशो रिष्टहृन्निखिलेक्षितः । लग्नेशाद्द्वादशे षट्त्रिसुखस्वाये शुभेक्षितः ॥ ८ ॥ ज्ञसितौ द्वादशे चन्द्राल्लाभे क्रूरो गुरुश्च खे । रिष्टघ्नो जन्मभेशो वा शुभदृष्टो बलोत्कटः ॥९॥ होराप्रकाशे–आये तृतीये षष्ठे वा तुलाघटझषाश्रितः । यदि केतुर्भवेल्लग्नात्तदा रिष्टं न जायते ॥ १० ॥ सारावल्यां–सर्वैर्गगनभ्रमणैर्दृष्टश्चन्द्रो विनाशयति रिष्टम् । आपूर्यमाणमूर्तिर्यथा नृपः स्वन्तया दृष्टः ॥ ११ ॥ चन्द्रः संपूर्णतनुः शुक्रेण निरीक्षितः सुहृद्भागे । कष्टहराणां श्रेष्ठो वातहराणां यथा वस्तिः ॥१२ ॥ परमोच्चे शिशिरतनुर्भृगुतनयनिरीक्षितो हरति रिष्टम् । जलमिव महातिसारं जातीफलवल्कलक्वथितम् ॥ १३ ॥ सप्ताष्टमषष्ठस्थाः शशिनः सौम्या हरन्ति कष्टफलम् । पापैरमिश्रचाराः कल्याणघृतं यथोन्मादम् ॥ १४ ॥ दृष्टः शुभैः समस्तैस्तेषां त्र्यंशे शशी हरति रिष्टम् । लवणश्रुतिपूरणवन्नयनभयं दारुणं शूलम् ॥ १५ ॥ आपूर्यमाणमूर्तिर्द्वादशभागे शुभस्य यदि चन्द्रः । रिष्टं नयति विनाशं तक्राभ्यासो यथा गुदजान् ॥ १६ ॥ सौम्यक्षेत्रे चन्द्रो होरापतिना विलोकितो हन्ति । रिष्टं न वीक्षितोऽन्यैः कुलाङ्गना कुलमिवान्यगता ॥ १७ ॥ क्रूरभवने शशाङ्को भवने शनिरीक्षितस्तदनुवर्गे । रक्षति शिशुं मजालं कृपण इव धनं प्रयत्नेन ॥ १८ ॥ जन्माधिपतिर्बलवान्सुहृद्भिरभिवीक्षितः शुभैर्भङ्गम् । रिष्टस्य करोति सदाऽभीरुरिव प्राप्तसङ्ग्रामः ॥ १९ ॥ जन्माधिपतिर्लग्ने सर्वेषां गोचरे पतितः । हन्ति निशाकररिष्टं यथैव शूलं कुबेराक्षः ॥ २० ॥ स्वोच्चस्थः स्वगृहेऽथवाऽपि सुहृदां वर्गेऽथ सौम्येऽपि वा संपूर्णः शुभवीक्षितः शशधरो वर्गे स्वकीयेऽथवा । शत्रूणामवलोकने न पतितः पापैरयुक्तेक्षितो रिष्टं हन्ति सुदुस्तरं दिनपतिः मालेयराशिं यथा ॥ २१ ॥ शशिनि गते बुधसितयोराये क्रूरेषु

वायपतौ गगने । त्वरितं चातुर्थिक इव नश्यति मुनिकुसुमरसनस्यैः ॥ २२ ॥ लग्नेश्वरात्तु चन्द्रः षट्त्रिदशायद्विबुकेषु शुभदृष्टः । मारयति चन्द्रारिष्टं सिंह इव महागजं क्रुद्धः ॥ २३ ॥ होरामकरन्दे—दस्रभेऽनलभे पुष्ये शीतरश्मिस्त्रिपुष्करे । वर्गोत्तमे वा पूर्णाङ्गः स्वीयारिष्टापहः स्मृतः ॥ २४ ॥ द्वितीये वा तृतीये वा पादे पुष्यस्य चन्द्रमाः । रोहिणीषु द्वितीये स्यात्कष्टशान्त्यै शुभेक्षितः ॥ २५ ॥ होराप्रकाशे—रिष्टं घ्नन्ति त्रिकोणस्थाः शुक्रज्ञेज्याः परस्परम् । निरन्तरमदृश्येऽर्धे बलिनो वाऽखिलग्रहाः ॥ २६ ॥ भद्राभरे व्यतीपाते गण्डान्ते वैधृतौ तथा । संध्यायामपि जातस्य रिष्टं जातु न जायते ॥ २७ ॥

इति चन्द्रारिष्टभङ्गः ।

---

## अथ सर्वारिष्टभङ्गः ।

जातकतिलके—गुरुर्दीप्तो बली केन्द्रे विशेषाल्लग्नगो हरेत् । पापदृष्टोऽखिलं रिष्टं तद्वज्ज्ञसितलग्नपाः ॥ १ ॥ लग्नं शुभगृहं पापा विबलाः सबलाः शुभाः । घ्नन्ति रिष्टं त्रिषष्ठाये राहुर्वाऽपि शुभेक्षितः ॥ २ ॥ शुभैः सद्वर्गगैर्दृष्टाः पापास्तु शुभवर्गगाः । रिष्टघ्नाः प्रकृतिस्था वा सर्वे शीर्षोदयर्क्षगाः ॥ ३ ॥ शुभस्तत्कालविजयी रिष्टहृच्छुभवीक्षितः । सप्तर्षीणां समुदये तत्काले कुम्भजस्य च ॥४॥ परिविष्टो गगनगैः क्रूरैरपि विलोकितः । कष्टं हराति राहुर्वा कर्किगोजविलग्नगः ॥ ५ ॥ परस्परं चतुर्थस्था ग्रहाः सर्वे सराहवः । रिष्टं हरन्ति वा तद्वदेकभस्थाः शुभांशगाः ॥ ६ ॥ होरामकरन्दे—मृदुर्विवस्वान्विरजस्कमम्बरं बलाहकाः स्निग्धरुचो दिवौकसः । शस्ता मुहूर्ता यदि सुप्रशस्ताः पापं तदा याति विनाशमाशु ॥ ७ ॥ जीवज्ञास्फुजितामेकः कण्टके पूर्णविक्रमः । रिष्टहृत्संभमेत्केन्द्रे क्रूरोऽपि परमोच्चगः ॥ ८ ॥ राहुस्त्रिषष्ठलाभे लग्नात्सौम्यैर्निरीक्षितः सद्यः । नाशयति सर्वदुरितं मारुत इव तूलसंघातम् ॥ ९ ॥ शीर्षोदयेषु राशिषु सर्वे गगनाधिवासिनः सूतौ । प्रकृतिस्था वा रिष्टं विलीयते घृतमिवाग्निस्थम् ॥ १० ॥ यत्रोतिभङ्गपरैः सरोजदामभिः स्वयं कुरुते । भञ्जनकष्टमनिष्टं समनटदेशे यथा करभः ॥ ११ ॥ बहवो यदि शुभफलदा योगास्तत्रापि भज्यते रिष्टम् । सूर्यात्त्रिकोण इन्दौ यथा हि यात्राऽमरेन्द्रस्य ॥ १२ ॥ लग्नपगुरुशुक्रविदामेकोऽपि यदि केन्द्रमाश्रितो बलवान् । रिष्टं नश्यति सद्यो यथा मृगाङ्कः क्षयव्याधिम् ॥ १३ ॥ होरामकरन्दे—लग्नेश्वरोऽतिबलवाञ्छुभबन्धुदृष्टो रिष्टं

---

१ प. 'हक्तारिगमक' । २ प. 'दुर्विध' ।

हरत्यहिमरश्मिरिवान्धकारम् । निःशेषखेचरदृशां यदि सोऽपि पात्रं जातो गतोऽङ्गभवनं निधनं निहन्ति ॥ १४ ॥ मित्रक्षेत्रगताः पापास्त्रिकोणस्थाः शुभग्रहाः । नाशं नयन्ति पापानि श्रुतिपाठादिवाकुलम् ॥ १५ ॥ मेषगः कर्किगश्चन्द्रो ग्रस्तोऽपि शुभवीक्षितः । केन्द्रगो दुरितं हन्ति चण्डानिल इवाम्बुदम् ॥ १६ ॥ सौम्यद्वयान्तरगतः संपूर्णः स्निग्धमण्डलश्चन्द्रः । निःशेषं रिष्टहन्ताऽऽशु ( ष्टघ्नो ) भुजंगलोकस्य गरुड इव ॥ १७ ॥

इति सर्वारिष्टभङ्गः ।

---

## अथ नियतायुः ।

गर्ग.–दीर्घायुषोऽपि ये योगाः प्रोक्ता जन्मविधौ मया । बलं ततस्तथा ज्ञेयाश्छेदकारिष्टभङ्गदाः ॥ १ ॥ होरामकरन्दे–चतुष्टये पूर्णबलः शुभश्चेद्व्योमौकसां मृत्युपदं विहीनम् । त्रिंशत्तदायुः कथितं मुनीन्द्रैर्दशाधिकं तद्यदि सौम्यदृष्टः ॥ २ ॥ कुलीरलग्ने वचसामधीशः केन्द्रे कविस्तत्र भवेच्छतायुः । गुरुः स्वराशौ निजदृक्काणश्चेत्सप्ताधिका विंशतिरायुरत्र ॥ ३ ॥ शुभास्थिताः शुभखगा निजकेन्द्रयाते चन्द्रे तनौ बलिनि जीवति वर्षषष्टिः । सौम्यास्त्रिकोणभवनेषु गुरौ स्वतुङ्गे लग्ने स्थिते स्फुटमिहाऽऽयुरशीतियुक्तम् ॥ ४ ॥ होराप्रदीपे–लग्ने सनिधने शून्ये चन्द्रे वीर्याश्रिते गुरौ । शुभस्थानस्थितैः शेषैर्जन्म विद्याच्छतायुषाम् ॥ ५ ॥ योगजातके—जीवे लग्ने शुभे केन्द्रे निधने ग्रहवर्जिते । लग्नचन्द्रौ न दृष्टौ चेत्पापैर्जीवति सप्ततिम् ॥६॥ सौम्याः खेऽस्ते स्वभे चन्द्रे लग्ने जातोऽत्र षष्टिकः । गुरौ भृगौ च केन्द्रस्थे जीवेद्वर्षशतं नरः ॥ ७ ॥ होराप्रकाशे—केन्द्रत्रिकोणनिधनेषु न यस्य पापा लग्नाधिपः सुरगुरुश्च चतुष्टयस्थः । भुङ्क्ते शुभानि विविधानि सुपुण्यकर्मा जीवेच्च वत्सरशतं स विमुक्तरोगः ॥ ८ ॥ बादरायणः–मृगवदनपश्चिमार्धे भूनन्दनचन्द्रसंयुते लग्ने। केन्द्रगते सुरपूज्ये जीवति जातोऽष्टवर्षशतम् ॥९॥ स्वोच्चे लग्ने भृगुजे सौम्यैर्दृष्टेऽष्टमेऽपि चन्द्रमसि। सुरमन्त्रिणि केन्द्रगते जातः शतजीवितो भवति ॥ १० ॥ निधनोपगते सौम्यग्रहे शुभनिरीक्षिते । चन्द्रोऽपि यद्यनिष्टः स्याच्छतायुः केन्द्रगे गुरौ ॥ ११ ॥

इति नियतायुः ।

---

१ घ. 'न ॥ ३ ॥ सभेस्थि' । २ ख. 'नेसूर्ष' ।

## अथ परमायुः ।

यवनजातके—अनिमिषपरमांशके विलग्ने शशितनये गवि पञ्चवर्गलिप्ते । भवति परमायुषः प्रमाणं यदि सहिताः सकलाः स्वतुङ्गभेषु ॥१ ॥ होराप्रदीपे—धनुषोऽन्तगते लग्ने परमोच्चगतैर्ग्रहैः समस्तैश्च । गवि पञ्चवर्गलिप्ते सौम्ये परमायुराप्नोति ॥२ ॥ बादरायणः—एकादशयामगतः शशभृत्केन्द्रोपगतौ च गुरुशुक्रौ । विंशतिशतं समानां जीवयुतो नरपतिर्जातः ॥ ३ ॥

इति परमायुः ।

---

## अथामितायुः ।

गर्गः—जीवेन्दुकर्किगो लग्ने केन्द्रे भृगुसुतेन्दुजौ । क्रमारिलाभगाः क्रूराः कुर्युर्जन्मामितायुषाम् ॥ १ ॥ जातकतिलके—तुलालग्नस्थिते शुक्रे स्वोच्चस्थगुरुभौमयोः । अश्विनीसहितेऽब्जे स्यादमितायुर्महीपतिः ॥ २ ॥ कर्किलग्ने सगुर्विन्दौ केन्द्रस्थबुधशुक्रयोः । त्रिषडायगतैः शेषैरमितायुः क्रमं विना ॥ ३ ॥ शुद्धे रन्ध्रे सिते केन्द्रे कर्किलग्ने गुरौ विधौ । बह्वायुः कर्किलग्नेऽब्जे शेषैर्याति शुभर्क्षगैः ॥ ४ ॥ परमोच्चगतैश्चन्द्रशुक्रार्यैर्लग्नगे गुरौ । मेषगोधनुरंशस्थैरविशेर्ज्यैश्चिरायुषः ॥ ५ ॥

इत्यमितायुः ।

---

## अथाऽऽयुर्दायविवरणम् ।

जातकतिलके-सूर्योदयैः स्वाङ्गगुणैर्वर्षमेकमिह स्मृतम् । परमायुर्मनुष्याणां खार्काः कश्चिद्वदेच्छतम् ॥ १ ॥ दन्तेन्दवोऽब्दा नागस्य वाहस्य यमवह्नयः । शरपक्षाः खरोष्ट्रस्य जिनो गोर्महिषस्य च । शुनो द्वादश मेषादेः परमायू रसेन्दवः ॥ २ ॥ माण्डव्यः—आसादकूपसरसीषु सहस्रमेकमायुर्युगं पुरवरेषु महत्सु विधात् । ग्रामेषु चायुतमुदीरितमुत्तमेषु वृक्षेषु पञ्च च शतानि हि कीर्तितानि ॥ ३ ॥ ज्योतिर्विवरणे—सपञ्चदिवसाः पूर्णयमचन्द्रमिताः समाः । परमायुर्मनुष्याणां केचिद्दूनू रदेन्दवः ॥ ४ ॥ सत्त्वाद्यायुर्मनुष्यायुर्दायवत्साध्यमेव तत् । निघ्नस्वेनाऽऽयुषा तेन खार्काप्तं प्रस्फुटं भवेत् ॥ ५ ॥ एवमायुर्बुधैः प्रोक्तं योगजं चाऽत्र कल्पयेत् । देवयोन्यवताराणामायुरग्रं (ग्र्यं) क्वचिद्भवेत् ॥ ६ ॥ अग्रं

---

१ क. निनागोय० ।

(ध्यं) स्वायुस्तुरीयांशं मोचयतेऽथ युगान्तरे । पूर्वपूर्वमिदं ज्ञेयं दिग्घ्नं दिग्घ्नं यथोत्तरम् ॥ ७ ॥

इत्यायुर्दायविवरणम् ।

---

## अथाऽऽयुर्दायानयनम् ।

जातकतिलके—सायनांशस्य लग्नस्य राशींस्त्यक्त्वा लवादिकम् । सूर्यनन्दै-१२।९।र्हतं तत्स्याल्लग्नस्याऽऽयुर्दिनादिकम् ॥१॥ खेन्दुगोक्षाग्निकेन्द्राङ्गराशीन्सूर्यादिषु त्यजेत् । सायनांशेषु तच्छेषं षड्भाल्पं भगणात्त्यजेत् ॥ २ ॥ स्ववर्षगुणितं तत्स्यादायुर्मासादिकं स्फुटम् । व्ययभावस्थपापस्य व्ययपापान्तरांशकैः ॥ आयुर्निघ्नं रिप्फलग्नान्तराशार्धहृतं स्फुटम् ॥ ३ ॥ ताजिकसारे—भान्ते प्रोक्तं परं तुङ्गपरमायुः समा रवेः । गोब्जा अब्जस्य तत्त्वाब्दा भौमगुर्वोः शरक्षमाः ॥ ४ ॥ विदः सूर्याः सितस्येन्दुयमा मन्दस्य खाश्विनाः । १९ । २५ । १५ । १२ । २१ । २० ॥ सलग्नार्कादिदायैक्यं ज्ञेयमायुरिदं स्फुटम् । जन्मारिष्टैर्दशारिष्टैर्न्यूनं तत्राऽऽदिशेन्मृतिम् ॥ ५ ॥

इत्यायुर्दायानयनम् ।

---

## अथ दशाविभागः ।

यस्य यावद्ग्रहस्याऽऽयुर्दशा स्यात्तत्र तावती । जन्तोर्जातस्य तत्राऽऽद्या लग्नस्याऽऽयुर्मिता दशा ॥ १ ॥ लग्नकेन्द्रादिगानां स्युस्तत्र आपोक्लिमावधि । दशाक्रमेण खेटानां तेष्वल्पांशस्य पूर्वगाः ॥ २ ॥ तत्तद्ग्रहस्थितानां स्युस्तत्तदग्रगता दशाः । न बला बलवत्स्वेष्टदशाः आक्षेधिमा ध्रुवम् ॥ ३ ॥

इति दशाविभागः ।

---

## अथ दशाफलपाकनिर्देशः ।

दशा लग्नस्य तत्र्यंशैश्चैरैः श्रेष्ठा समाऽधमा । व्युत्क्रमाद्द्विस्वभावस्य स्थिरस्योनेष्टमध्यमा ॥ १ ॥ बलानुरूपमत्रापि लग्नेशस्य दशाफलम् । संयोज्य धीमाल्लँग्नस्य दशायाः फलमादिशेत् ॥ २ ॥ संक्षिप्तजातके—मित्रोच्चस्वगृहांशोपगतानां शोभना दशाः सर्वाः । स्वोच्चाभिलाषिणामपि ननु कथितं तद्विपर्ययस्थानाम् ॥ ३ ॥ गर्गः—यद्यद्द्रव्यं गुणाश्छायाः स्वभावाः प्रकृतिः स्थितिः । यस्य

---

१ घ. °युर्लग्नं रि० । २ क. °भरस्वेष्ट' ध° । ३ क. °र्धेऽभिधेय°।

यस्य ग्रहस्योक्तं तत्तद्योज्यं दशास्वपि ॥ ४ ॥ दशायां सबलस्यार्थलाभमारोग्यमादिशेत् । विबलस्य रुजं हानिं मिश्रं समबलस्य च ॥ ५ ॥ जातकतिलके—यस्य ग्रहस्य यद्द्रव्यं कर्माऽऽजीवं च यस्य यत् । भभावदृष्टियोगोत्थं फलं तत्तद्दशासु च ॥ ६ ॥ दिग्बलाद्योनिजं देशं नीत्वा दद्याद्धनं सुखम् । नीचस्थः स्वंमचिन्तार्थे राज्याद्यफलपाककृत् ॥ ७ ॥ बालभावे पितुः स्यातां लाभालाभौ दशोद्भवौ । सुखक्लेशौ स्वयं भुङ्क्ते तारुण्ये त्वखिलं फलम् ॥ ८ ॥

इति दशाफलपाकनिर्देशः ।

## अथान्तर्दशाविभागः ।

दशाधिपस्त्रिकोणस्थस्तृतीयांशं तथाविधम् । चतुरस्रगतः पादं सप्तमः सप्तमांशकम् ॥ १ ॥ ते चेदन्तर्दशादाया बहवोऽप्येकभावगाः । तद्भावनिकटः पूर्वं दद्यात्तां दूरगस्तथा ॥२॥ एवं लग्नदशायां च लग्नमन्तर्दशा निजम् । दद्याद्ग्रहदशायां च दद्युरन्तर्दशा ग्रहाः ॥ ३ ॥ न्यसेद्रूपं दशेशस्य ततस्त्वन्तर्दशा भवेत् । स्वान्स्वानंशान्क्रमेणोक्तान्यथालाभं च वक्ति सः ॥ ४ ॥ अन्योन्यच्छेदघातोत्थो गुणकाख्यः प्रजायते । गुणकोऽसौ पृथक्छेदैर्भक्तो लब्धवधो हरः ॥ ५ ॥ दशाप्रमाणं वर्षाद्यं गुणकघ्नं हरोद्धृतम् । लब्धं दशापतेराद्या वर्षाद्यन्तर्दशा भवेत् ॥ ६ ॥ तदेकक्षादिगानां सा पृथगन्तर्दशाऽशकैः । विहिताऽन्तर्दशायाः स्युर्मानान्यंशक्रमात्ततः ॥ ७ ॥ दशाधिपस्यैकगृहे बाणेन्द्वंशान्तरस्थितः । तदन्तेऽन्यान्तर्दशाभूतं तद्दशायां च तद्बलम् ॥ ८ ॥

इत्यन्तर्दशाविभागः ।

## अथान्तर्दशाफलम् ।

दशेशान्तर्दशानाथमित्रारित्वाच्छुभाशुभम् । फलं तयोर्बलवतः मौढ्यमन्यस्य हीयते ॥ १ ॥ नष्टस्यान्तर्दशा दैन्यं कुर्यान्नीचस्य नीचताम् । लग्नजन्मेशयोः शत्रोः शत्रुभीतिं सुखक्षयम् ॥ २ ॥ क्रूरस्यान्तर्दशा क्रूरदशायां विशती नृणाम् । तयोर्विशेषाच्छत्रुत्वे प्राणसंदेहकारिणी ॥ ३ ॥ मन्दारान्तर्दशे मृत्यौ दशयोः कुजमन्दयोः । परस्परं त्रिकोणस्थौ तौ चेत्तत्र विशेषतः ॥ ४ ॥ मृत्युदाऽन्तर्दशा लग्नदशायां लग्नपारिजा । रिष्टं पूर्णं समांशत्वे दशेशान्तर्दशेशयोः ॥ ५ ॥ अन्त-

---

१ ख. स्वार्थानार्थे° । २ क. °नाशनम् ।

दशेशो बलवाञ्छुभयोगेक्षणादिभिः । दशेशे विबले चात्र क्लेशाय न तु मृत्यवे ॥ ६ ॥

इत्यन्तर्दशाफलम् ।

---

## अथ भावविचारः ।

जातकतिलके—स्वस्वामिना सुसंदृष्टो भावः सर्वोऽपि सत्फलः । क्रूरेक्षितः कष्टफलो निष्फलो दृष्टिवर्जितः ॥ १ ॥ सर्वग्रहेक्षितो भावो ग्रहो वा मङ्गलप्रदः । क्षमः स्यात्स्वफलं दातुं लग्नेन्दू राज्यदौ तथा ॥ २ ॥ पद्धतौ–पुष्णन्ति सौम्या रिपुराशिवर्जं घ्नन्तीतरेऽष्टव्ययशत्रुवर्जम् । सूर्यादिका नात्र मृतिव्ययस्थाः पापाः प्रदुष्टा इतरे तु किंचित् ॥ ३ ॥ उच्चस्थः स्वगृहस्थो वा मन्दो राज्यप्रदो भवेत् । वृषकर्कटमेषस्थो राहुरारोग्यकृत्ततः ॥ ४ ॥ लग्नगे कार्किगे चन्द्रे धनी स्यादन्यराशिषु । विकलाङ्गो जडो दीनः कृष्णपक्षे विशेषतः ॥ ५ ॥

## अथ धनचिन्ता ।

शुभा धनस्थिताः कुर्युर्वाग्मिनं मिष्टभोजनम् । क्रूराः प्रोक्तविरोधेन कदर्यं बहुभाषिणम् ॥ १ ॥

## अथ सहजचिन्ता ।

सहजे सर्वपापाढ्ये पापर्क्षे भ्रातरो न हि । नाशयेत्सहजं जातं मन्दो भौमेक्षितोऽनुजम् ॥ १ ॥ नवांशा भ्रातृभावस्था यावन्तोऽब्जकुजेक्षिताः । तत्संख्याः सहजा ज्ञेया दृष्टा अन्यैस्तु योपितः ॥ २ ॥

## अथ सुहृच्चिन्ता ।

जीवेक्षिते शुभं शुक्रेऽङ्गारदृष्टे सुहृत्क्षयः । सुखे क्रूरयुते मातुः क्लेशकृत्सुशुभे शुभम् ॥ १ ॥

## अथ सुतचिन्ता ।

पुत्रभावोपभुक्तांशतुल्याः संख्याः शुभांशके । द्विघ्नाः शुभेक्षिते क्लिष्टाः पापांशे पापवीक्षिते ॥ १ ॥ ताजिकतिलके—पापर्क्षे पञ्चमे राशौ पापैर्बलिभिरन्विते । सौम्यग्रहैरसंदृष्टे पुत्राभावो भवेन्नृणाम् ॥ २ ॥ पुत्रभावे कुजः पुत्रं जातं जातं विनाशयेत् । गुरुशुक्रेक्षितस्त्वायं न च सर्वग्रहेक्षितः ॥ ३ ॥ लग्नाद्दशमगे चन्द्रे भार्गवे सप्तमे स्थिते । अशुभेषु सुखस्थेषु वंशच्छेदोऽस्य जायते ॥ ४ ॥

---

१ क. °म् । मृत्यादि° ख. °म् । मृत्यादि ।

## अथारिचिन्ता ।

शनिदृष्टेऽरिभावस्थे कुजे स्युर्बहवोऽरयः । शुभयुक्तेक्षिते त्वल्पास्ते च क्षेत्रग्रहोन्मिताः ॥ १ ॥

## अथ कलत्रचिन्ता ।

यूनेशान्यतमेंऽशे स्याद्यावन्तो द्यूनपक्षकाः । तावत्यः स्युः स्त्रियो नृणामेकैकाऽर्किकुजांशके ॥ १ ॥ शनैश्चरे विलग्नस्थे भसंधिस्थे सितेऽस्तगे । पुत्रभावे शुभैर्युक्ते जातो वन्ध्यापतिर्भवेत् ॥ २ ॥ पापर्क्षे पापसंयुक्ते कलत्रे पापसंयुते । विभार्यो मृतदारो वा शुक्रेन्द्विज्ययुधैः शुभम् ॥ ३ ॥ लग्नान्त्यमन्दगैः पापैः क्षीणे धीस्थे निशाकरे । पुत्रजायाविहीनस्य जायते जन्म निश्चितम् ॥ ४ ॥

## अथ मृत्युचिन्ता ।

स्वोच्चे स्वोच्चनवांशे च शुभवर्गे च नीचभे । नीचांशे क्रूरषड्वर्गे मित्रभे सुहृदंशके ॥ १ ॥ वर्गोत्तमेऽरिभेऽर्यंशे स्वर्क्षे द्वादशधा क्रमात् । निर्याणं ग्रहयोगाख्यं कथ्यते यवनोदितम् ॥ २ ॥ भुक्तितोऽग्निप्रवेशेन जनहीतः प्रमादतः । वनाग्निना दम्भकृत्याद्दीपनेन विषादनात् ॥ ३ ॥ वन्धाग्निशितलोहाच्च रक्तकोपात्तथैव च । कफात्कासात्स्त्र्यपराधान्मृत्युर्मृत्युगते रवौ ॥ ४ ॥ जलप्रवेशाद्धस्ताभिघातादशनिपातनः । सीहस्तात्पित्तकफतो दोषत्रयभवामयात् ॥ ५ ॥ ज्वराद्धृदयरोगाच्च पशुपादाभिघाततः । गुदरोगाच्छृङ्गघातात्क्षयाच्चन्द्रेऽष्टमे मृतिः ॥ ६ ॥ सङ्ग्रामाद्ग्रहणतः स्वहस्तान्निजशस्त्रतः । द्विजशापादश्मघातात्काष्ठात्कूपात्प्रमादतः ॥ ७ ॥ भृगुपाताद्गुप्तरोगाद्विषभक्षणतस्तथा । चौरप्रहरणाद्भौमे मृत्युः स्यान्मृत्युभावगे ॥ ८ ॥ ज्वरात्कफविकारेभ्यो वातरोगाद्व्रणेन च । महाभयेन प्रियजनवियोगाद्वदनामयात् ॥ ९ ॥ नेत्ररोगात्पायुरोगाद्व्यन्धनेनोदरामयात् । पादव्रणाद्बुधे मृत्युर्मृत्युभावगते क्रमात् ॥ १० ॥ नानारोगैर्मूत्ररोगात्कर्णरोगात्तथैव च । स्वजनाच्च विषूचीतोऽतिसारान्निजभृत्यतः ॥ ११ ॥ रक्तकोपात्तुरगतः स्वकेशान्मूर्ध्नि कोपतः । वहुभाषणतो मृत्युर्जीवे स्यान्मृत्युभावगे ॥ १२ ॥ तृषया मुखरोगाच्च दन्तदुःखाच्छिद्रदोषतः । विषूच्या वनसत्त्वेन भुजगाद्विषभक्षणात् ॥ १३ ॥ लूतया विषकण्ठेन सुरतात्श्रमकोपतः । बहुदुःखाद्भवेन्मृत्युर्मृत्युभावगते सिते ॥ १४ ॥ बुभुक्षया लङ्घनेन तथा प्रायोपवेशनात् । वन्धुवर्गादरिकरात्क्षयेण पृथुदद्रुतः ॥ १५ ॥ पिटकैर्व्रणकोपेन हयपाताभिघा-

---

१ घ. °तादिशनि° । २ घ त् ॥ ५ ॥ जठरादगुदे° ।

ततः । हस्तितः खरतो मृत्युर्मन्दे स्यान्मृत्युभावगे ॥ १६ ॥ चरभे परदेशे स्यान्मृत्युभे स्वगृहे स्थिरे । द्व्यङ्गे पथि मृतिश्चाथ संग्रहे भावजं फलम् ॥१७॥ खेऽर्के सुखे कुजे मृत्युर्भवेच्छैलाग्रपातजः । धीधर्मस्थौ शुभादृष्टौ क्रूरौ चेद्बन्धनान्मृतिः ॥ १८ ॥ कन्यास्थौ पापदृष्टौ चेत्सूर्येन्दू स्वजनान्मृतिः । पापयोर्मध्यगे चन्द्रे कुजर्क्षस्थेऽग्निशस्त्रतः ॥ १९ ॥ मृत्युः सुखे कुजेऽर्के वा खे शनौ शूलभेदतः । भौमे क्षीणेन्दुदृष्टेऽस्ते यन्त्रोत्पीडनया मृतिः ॥ २० ॥

## अथ गतिज्ञानम् ।

पापत्र्यंशे मृत्युभावे वह्निना दह्यते शवम् । शुभयुक्तेक्षिते तस्मिन्दृक्काणे शोष्यते च तत् ॥ १ ॥ सपत्र्यंशे शवं गृध्रशृगालाद्यैस्तु भुज्यते । शुभत्र्यंशे क्लिद्यते तत्पापयुक्ते तु शोष्यते ॥ २ ॥ शुक्रेन्दू पितृलोकेशौ शनिज्ञौ नरकाधिपौ । तिर्यग्लोकस्य सूर्यारौ स्वर्गस्याधिपतिर्गुरुः ॥ ३ ॥ रवीन्द्वोर्बलवान्यस्य दृक्काणे तस्य लोकतः । आगतः प्राग्जनौ चासौ तुङ्गादिस्थस्य तत्समः ॥ ४ ॥ मृत्युषष्ठभावस्थत्रिंशयोर्यो बली जनौ । तन्नाथस्य व्रजेल्लोकं मृत्योर्जन्तुरसंशयम् ॥ ५ ॥ केन्द्रारिमृत्युगो जीवः स्वोच्चस्थो यस्य जन्मनि । शेषा ग्रहाश्चेद्बलास्तस्य मोक्षो मृतस्य हि ॥ ६ ॥ चक्रावसानलग्नस्थो गुरुः शुभनवांशगः । यस्य जन्मनि शेषाश्चेदबलाः स विमुच्यते ॥ ७ ॥ एवमुक्तास्तु ये योगाः स्वर्गादिगतिकारकाः । मृत्युकालेऽपि जन्तोस्ते तथा स्युस्तत्फलप्रदाः ॥ ८ ॥

## अथ भाग्यचिन्ता ।

लग्नाद्विधोर्वा नवमं भाग्यस्थानं भवेत्ततः । भाग्यं हि चिन्त्यते नृणां तत्तत्पतिबलाबलात् ॥ १ ॥ स्वस्वामिना युक्तदृष्टं स्वदेशे फलदायकम् । तदन्ययुक्तदृष्टं तत्परदेशे फलप्रदम् ॥ २ ॥ गुरुर्भाग्ये भवेन्मन्त्री महाभाग्योऽखिलेक्षिते । अबलेऽपि शुभे खेटे भाग्यस्थे धार्मिकोत्तमः ॥ ३ ॥ शनिः कुजोऽथ वा द्वौ वा भाग्ये पूर्णेन्दुसंयुते । सर्वे वा स्वोच्चगे भाग्ये भवन्ति नृपजन्मनि ॥ ४ ॥ भाग्ये रवीन्द्वोः स्वल्पायुः कुजेन्द्वोर्मातुरन्तकृत् । हीनः पितृभ्यां व्रणितो द्वेष्यो हिंस्रः कुजेन्द्विनैः ॥ ५ ॥ गर्गः–अदृश्येऽर्धे भाग्यनाथे गते जन्म यदा भवेत् । लग्नपे च विशेषेण यावज्जीवं समृद्धिमान् ॥ ६ ॥

## अथ कर्मचिन्ता ।

अर्थाप्तिः पितृतो मातुः शत्रोर्मित्रात्सहोत्थतः । स्त्रिया भृत्यादिनार्यैः स्याल्लग्नेन्द्वोः कर्मगैः क्रमात् ॥ १ ॥ यावन्तो लग्नतश्चन्द्राद्ग्रहाः कर्मस्थितास्तु ते ।

---

१ प शुभेर्दृष्टौ ।

तत्तत्फलप्रदाः सर्वे स्वदशायां विशेषतः ॥ २ ॥ हेमांपथ्यादिभिः सूर्ये कृपियोपाश्रयैर्निधौ । धात्वस्त्रसाहसैर्भौमे ज्ञे कलाकाव्यलेखनैः ॥ ३ ॥ धर्मक्रियादिभिर्जीवे पशुरत्नादिभिः सिते । नीचशिल्पादिभिर्मन्दे वृत्तिरस्य स्वनाथवत् ॥४॥

## अथाऽऽयचिन्ता ।

आयेशेऽर्के नृपाल्लाभस्तत्स्थे पश्यति वा तथा । चन्द्रे स्त्र्यम्बुहारिमार्यं धनं भौमेऽस्त्रसाहसैः ॥ १ ॥ काव्यलेखनजं ज्ञे स्यात्स्वर्णयज्ञाश्वजं गुरौ । शुक्रे गानगमस्त्रीजं शनौ ग्रामादिकर्मजम् ॥ २ ॥ सारावल्यां–होरागतैरथाऽऽयगृहस्थितैस्तैर्विचिन्तयेद्द्रव्यम् । बलसंयुतैर्ग्रहेन्द्रैरनेकधा दृष्टमाचार्यैः ॥ ३ ॥

## अथ व्ययचिन्ता ।

क्षीणेऽब्जे वा रवौ रिष्फे धनं पुंसां नृपो हरेत् । बहुधाऽर्थक्षयो भौमे ज्ञदृष्टेऽन्येषु सद्व्ययः ॥ १ ॥

## अथ ग्रहभावफलम् ।

जातकोत्तमे—लग्नेऽर्केऽल्पकचः शूरो मेषे तिमिरलोचनः । स्फोटाक्षः कर्कटे सिंहे निशान्धो निर्धनो घटे ॥ १ ॥ मुखरुग्विक्रमी नित्योद्विग्नो वित्तनयोऽरिहा । स्त्रीजितोऽन्धोऽर्थवान्मान्यो धनी पापी धनादिगे ॥ २ ॥ लग्ने चन्द्रे जडो जातः क्षीणेन्दौ रोगवान्भवेत् । कर्कटे रूपवान्मेषे पुत्रवान्वृषभेऽर्थवान् ॥ ३ ॥ धनादिगे धनी स्वार्थपरो भोक्ता सुपुत्रवान् । रोगभाक्कामुकोऽल्पायुर्दाता श्रीमान्सुखी विद्रक् ॥ ४ ॥ लग्ने भौमे नरोऽल्पायुः क्षमी स्वर्क्षे मृगेऽर्थवान् । धनादिस्थे कदन्नाशी शूरो यानोज्झितोऽग्रजः ॥ ५ ॥ पूज्यो दुःखी व्यसुर्मानी शूरः श्रीमान् बली क्रमात् । दीर्घायुर्मतिमान् भूरिसहजो वाहनादियुक् ॥ ६ ॥ विद्वान्वादिजितो धर्मी चिरंजीवी धनान्वितः । सकलारम्भको भोगी प्राज्ञो लग्नादिगे बुधे ॥ ७ ॥ दीर्घजीवी महाभोगी कृपणो वाहनार्थयुक् । मन्त्रज्ञः स्त्रीजितो वक्ता दीर्घायुः सर्वशास्त्रवित् ॥ ८ ॥ राजमान्यो धनी दीनो गुरौ लग्नादिभावगे । बह्वायुः सर्वभोगाढ्यः स्वार्थनिष्ठो यशोर्थभाक् ॥ ९ ॥ मन्त्रवेत्ता वधूद्वेषी सुभगः परमायुषी । सुखी मानी धनी कान्ताजीवी लग्नादिगे कवौ ॥ १० ॥ गतायुर्लग्नगे मन्दे घटे नक्रे महानृपः । कुम्भे तु मण्डलाधीशश्चापे मीने पुराधिपः ॥ ११ ॥ श्रमी दाताऽऽमयी मूर्खः शृगे नीचो व्रणार्दितः ।

द्वेषी ग्रामेश्वरो भोगी पातकी स्वादिगे शनौ ॥ १२ ॥ रोगी निःस्वः सुधीः दुःखी दुर्भगः श्रीयुतोऽशुचिः । गतायुर्विकलो मानी धनी पापी ततः क्रमात् ॥ १३ ॥ विगतायुः खलः शूरो दुःखी मूर्खोऽर्थवान्भ्रमी । क्षताङ्गो दुर्भगः श्रेष्ठः ख्यातो भ्रष्टः शिखी क्रमात् ॥ १४ ॥ अल्पायुर्विधवा मान्या द्वेष्या वन्ध्या कुलाधिका । पतित्यक्ता च विधवा धूर्ता साध्वी धनान्विता ॥ १५ ॥ सरोगा स्याद्रवौ मन्दे कुजे लग्नादिभावगे । दीर्घायुः सधना श्रेष्ठा भोगिनी पुत्रिणी खला ॥ १६ ॥ भर्तुः प्रिया सती साध्वी सुभगा धनगर्विता । दुष्टा लग्नाच्छभैरत्र चन्द्रे त्वष्टगते त्र्यसुः ॥ १७ ॥ विधवा मलिना धन्या सुखहीना मृतप्रजा । सती पत्युज्झिता वन्ध्या दुर्भगा बहुभाषिणी ॥ १८॥ सुभगा कर्कशा राहौ केतौ त्वन्तादिभावगे । केचिन्मतमिदं ज्ञेयं यतश्च स्त्रीफलं नृवत् ॥ १९ ॥

इति ग्रहभावफलम् ।

---

## अथ स्त्रीजातकाध्यायः ।

लघुजातके—स्त्रीपुंसोर्जन्मफलं तुल्यं किंचित्तु चन्द्रलग्नस्थम् । तद्बलयोर्वपुराकृति[कृती]श्च(च) सौभाग्यमस्तमये ॥ १ ॥ गर्गः—वैधव्यं निधने चिन्त्यं शरीरं जन्मलग्नभात् । सप्तमे पतिसौभाग्यं पञ्चमे प्रसवस्तथा ॥२॥ वराहः—पुंसो जन्मफलं यत्र घटति वनितासु पतिषु तत्तासाम् । वक्तव्यं राज्याद्यं वृपणविनाशादिवापायम् ॥ ३ ॥ जातकतिलके—लग्नेन्द्वोः समभे जाता स्वोचिताकारशीलभाक् । ओजभेषु रुपाकारा दुःशीला दुःखिता वधूः ॥ ४ ॥ लग्नेऽब्जे वा युते दृष्टे शुभैः सच्छीलभूषणा । दुःशीला निर्गुणा पापैर्लग्नेन्द्वोर्युतदृष्टयोः ॥ ५ ॥ शुभैरदृष्टे विबले द्यूनभे ग्रहवर्जिते । जाताया इह कान्ताया भवेत्सा पुरुषाकृतिः ॥ ६ ॥ प्रवासी चरभे द्यूने स्वगृहस्थ स्थिरगे पतिः । द्व्यङ्के चिरप्रवासी च क्लीबोऽस्ते बुधमन्दयोः ॥ ७ ॥ कुजेऽस्ते विधवा बाल्ये पतित्यक्ताऽस्तगे रवौ । वृद्धत्वं याति कन्यैव पापदृष्टेऽस्तगे शनौ ॥ ८ ॥ विधवा द्यूनगैः क्रूरैः पुनर्भूस्तैर्युताऽन्वितैः । नीचैर्व्ययस्थैरशुभैर्वृता च स्मरातुरा ॥ ९ ॥ द्यूनगे विबले क्रूरे शुभग्रहयुतेक्षिते । जायते स्वपतिं त्यक्त्वा पुनरन्यकुटुम्बिनी ॥ १० ॥ द्यूने शुक्रे गृहेशे वा सुरूपः सुभगः पतिः । बोधे तु निपुणो विद्वांश्चन्द्रे कान्ततरो मृदुः ॥ ११ ॥ ऐणे तु कर्मकृत्तीक्ष्णो गुणी जैवे जितेन्द्रियः । स्त्रीलोलोऽकर्मकृत् कौजे मन्दे मूर्खो जरन्नपि ॥ १२ ॥ क्रूरेऽष्टमस्थे वैधव्यं शुभदृष्टिविवर्जिते । यस्यांशे निधनाधीश्वरस्तद्दशायां विनिर्दिशेत् ॥ १३ ॥ शुभो धनगतो यस्याः क्रूरो निधनगोऽपि

वा । मृत्युगस्य दशायां सा म्रियते विधवैव सा ॥ १४ ॥ कन्यालिवृषसिंहस्थे शशाङ्केऽल्पसुता वधूः । पापेऽस्ते नवमस्थे स्यात्मव्रज्यां यात्यसंशयम् ॥ १५ ॥ बलिनो ज्ञेज्यशुक्रारा: समभं जन्मसंज्ञकम् । स्याचदाऽनेकशास्त्रज्ञा ख्याता स्त्री ब्रह्मवादिनी ॥ १६ ॥ पापद्वयमध्यगते चन्द्रे लग्ने च कन्यका जाता । निज-पितृकुलं समस्तं श्वशुरकुलं हन्ति निःशेषम् ॥ १७ ॥ बादरायणः—उन्मृष्टा स्याद्दानौ भौमे विधवा नवोढैव । कन्यैव पापदृष्टे भानुसुते याति वैधव्यम् ॥ १८ ॥ लग्ने सौरी रविः पुत्रे धर्मस्थो धरणीसुतः । अस्मिन्योगे प्रजाता स्त्री सा भवेद्विषकन्यका ॥ १९ ॥ रिपुक्षेत्रगतौ द्वौ तु लग्ने यत्र शुभग्रहौ । क्रूरश्चैकस्तदा जाता भवेत्स्त्री विषकन्यका ॥ २० ॥ यवनः—भद्रातिथिर्यदाऽऽश्लेषा शतभिषक् कृत्तिकाऽथवा । मन्दाररविवाराश्च विषकन्या बुधैर्मता ॥२१॥ गर्गः—द्वादशी वारुणं सूर्यो विशाखा सप्तमी कुजे । मन्दे श्लेषा द्वितीया च विषयोगास्त्रयो मताः ॥ २२ ॥ त्रैलोक्यप्रकाशे—व्ययाष्टगे कुजे क्रूरयुते राहौ च लग्नगे । रण्डाऽथ लग्नगे सूर्ये भौमे वा दुर्भगा शनौ ॥ २३ ॥ मूर्तौ राह्वर्क-भौमेषु रण्डा भवति कामिनी । एषु शुक्रद्वितीयेषु पतिमन्यं चिकीर्षति ॥ २४ ॥ रन्ध्रगौ सूर्यमन्दौ चेद्विलग्नान्निजराशिगौ । वन्ध्याऽथ चन्द्रमाः सौम्यः काकवन्ध्या तदा भवेत् ॥२५॥ मृतापत्या च शुक्रेज्यौ सारौ गर्भस्रवा भवेत् । तस्माज्जन्मनि चिन्तायां रन्ध्रं भव्यं ग्रहोज्झितम् ॥ २६ ॥ अस्यापवादः—लग्नाद्विधोर्वा यदि जन्मकाले शुभग्रहो वा मदनाधिपश्च । द्यूनस्थितो हन्त्यनपत्यदोषं वैधव्यदोषं च विषाङ्गनाख्यम् ॥ २७ ॥

इति स्त्रीजातकाध्यायः ॥

---

## अथ राजयोगाध्यायः ।

जातकतिलके—वर्गोत्तमांशगे लग्ने चन्द्रे वा चतुरादिभिः । अर्धचन्द्रैर्विलिभिः खेटैर्दृष्टो भूपो भवेद्ध्रुवम् ॥ १ ॥ स्वोच्चगार्केज्यमन्दारैः सकलैरथ वा त्रिभिः । तदेकतमयुग्लग्नं स्वर्क्षे चन्द्रे तथा नृपः ॥ २ ॥ लग्ने शनौ कुजे स्वोच्चे चापे चन्द्रार्कयोर्नृपः । चापे रवौ कुजे सेन्दौ मृगलग्ने गते नृपः ॥ ३ ॥ मीनलग्नगते शुक्रे कन्यालग्ने बुधे तथा । चापे चन्द्रयुते जीवे भौमः स्वोच्चे भवेन्नृपः ॥ ४ ॥ मृगसिंहघटस्थेषु भौमभास्करसौरिषु । मीनलग्नगते चन्द्रे जातो भवति भूपतिः॥५॥ मेषलग्नगते भौमे गुरौ स्वोच्चगते नृपः । कुलीरलग्नगे जीवे भौमे मेषगते

नृपः ॥ ६ ॥ गुरौ कुलीरलग्नस्थे भास्करे मेषराशिगे । लाभस्थैश्चन्द्रशुक्रज्ञैर्भूपो विक्रमवान्भवेत ॥ ७ ॥ बुधे कन्याविलग्नस्थे कुजशन्योः सुखस्थयोः । कलत्रस्थे सजीवेऽब्जे कर्मस्थे भार्गवे नृपः ॥ ८ ॥ अपि दासकुलोद्भूतो योगैरुक्तैरिमैर्नृपः । नृपजा वक्ष्यमाणैः स्युरन्यजास्तु नृपोपमाः॥ ९ ॥ एकोऽपि बलवान्खेटो भूपकृत्परमोच्चगः । केन्द्रादिशुभभावस्थो विशेषाच्च उच्चगाः ॥ १० ॥ लग्नस्थयोर्भौमशन्योः सुखस्थेऽब्जेऽस्तगे गुरौ । कर्मगेऽर्के बुधे लाभे शुक्रे धर्मस्थिते नृपः ॥ ११ ॥ लघुजातके–एकोऽपि नृपतिजन्मप्रदो ग्रहः स्वोच्चगः सुहृद्दृष्टः । बलिभिः केन्द्रोपगतैस्त्रिप्रभृतिभिरवनिपालभवः ॥ १२ ॥ वर्गोत्तमगतचन्द्रे चतुराद्यैर्वीक्षिते विलग्ने वा । नृपजन्म भवति राज्यं नृपतियोगे बलवति दशायाम् ॥ १३ ॥ सारावल्याम्—एक एव ग्रहः स्वोच्चे वर्गोत्तमगतो यदि । बलवान्मित्रसंदृष्टः कुरुते स महीपतिम् ॥ १४ ॥ केन्द्रे विलग्ननाथः सुहृद्भिरभिवीक्षितो यदा विहगैः । लग्नस्थितैश्च सौम्यैर्भूपतिरिह जायते नियतम् ॥ १५ ॥ मृगसिंहौ परित्यज्य स्थितो लग्ने बृहस्पतिः । करोत्यवश्यं नृपतिं बहुश्वपरिवारितम् ॥ १६ ॥ न्यूनोऽपि कुमुदबन्धुर्नृपकुलजं पार्थिवं करोत्युच्चैः । किंपुनरखण्डमण्डलकरतः प्रकटितदिगन्तः ॥ १७ ॥ जातकोत्तमे–जन्मेशो वा विलग्नेशः केन्द्रस्थः पूर्णविक्रमः । संपूर्णो वा शशी तद्वत्कुरुते पृथिवीश्वरम् ॥ १८ ॥ देवमन्त्री कुटुम्बस्थो भार्गवेण समन्वितः । जनयेद्वसुधापालं निर्जितारातिमण्डलम् ॥ १९ ॥ यवनः—धने व्यये यदा लग्ने सप्तमे भवने ग्रहः । छत्रयोगस्तदा नीचकुलोऽपि नृपतिर्भवेत् ॥ २० ॥ त्रिभिश्छत्रं महाछत्रं पञ्चभिश्चातिसंज्ञकम् । सप्तभिस्तुर्यपङ्क्त्यन्तग्रहैश्छत्रादिनिर्णयः ॥ २१ ॥

इति राजयोगाध्यायः ।

---

## अथ राजयोगभङ्गः ।

अवर्गोत्तमगे लग्ने ग्रहैर्दृष्टे न भूपतिः । त्रिशङ्कुभोदयोत्पातव्यतीपातैश्च जन्मतः ॥१॥ जीवेऽर्के गतिनीचस्थे त्रिभिरर्कगतैर्ग्रहैः । क्रूरे कर्मगते चैव कुम्भलग्ने च नो नृपः ॥ २ ॥ चन्द्रे परमनीचस्थे शुक्रेऽर्के वा न भूपतिः । केमद्रुमे च शून्येषु कण्टकेष्वर्कजे तनौ ॥ ३ ॥

इति राजयोगभङ्गः ।

---

१ क. °श्चाभितं° । २ °र्वंशुरभाय° ।

## अथ राजयोगनिर्णयः।

राजयोगैर्द्विजो विद्वान्क्षत्रियो नृपतिर्भवेत्। वैश्यो लक्षेश्वरः शूद्रो राजसेवापरः शुचिः॥ १॥

## अथ चन्द्रयोगः।

विनाऽर्कं व्ययगे चन्द्रादनफा सुनफा स्वगैः। व्ययस्वगैर्दुरुधराऽन्यथा केमद्रुमो भवेत्॥ १॥ प्रभुः सुवेषो नीरोगः ख्यातिशीलः सुखान्वितः। निर्वृत्तश्चानफायोगे भोगी वाग्मी धनी भवेत्॥ २॥ भूपो भूपसमो वा स्यात्सधनः ख्यातिधर्मवान्। आत्मार्जितधनः शान्तः सुनफायां सुखी गुणी॥ ३॥ धनवाहनसौख्याप्तिस्त्यागी वाञ्छितभोगभाक्। ख्यातो दुरुधरायोगे वाग्मी सद्रूपशक्तिमान्॥ ४॥ बलवद्ग्रहजैरेतैर्योगैः पूर्णे निशाकरे। यथोक्तफलभाजः स्युर्नृपाश्च नृपवंशजाः॥५॥ मलिनो दुःखितो नीचो निःस्वः प्रेष्यः खलो भवेत्। केमद्रुमे नृपोत्थोऽपि लोकविद्विष्टवृत्तिभाक्॥ ६॥ अनफादित्रये भूपो भूपवंशभवो भवेत्। इतरे धनवान्केमद्रुमजो निर्धनोऽशुचिः॥ ७॥ केमद्रुमफलाभावश्चन्द्रे सर्वग्रहेक्षिते। सग्रहेऽब्जेऽथवा केन्द्रे केमद्रुमफलाल्पता॥ ८॥ तारामहर्त्ता—कुमुदगहनबन्धौ वीक्ष्यमाणे समस्तैर्गगनगृहनिवासैर्दीर्घजीवी विनाश्य। फलमशुभसमुत्थं यत्र केमद्रुमस्थं भवति मनुजनाथः सार्वभौमो जितारिः॥ ९॥ द्विस्वेन्दुं धनगैरर्काद्विश्वस्थानं बुधैर्मतम्। यचेद्ग्रहसंयुक्तं योज्यं यानेऽर्थसिद्धिदम्॥ १०॥

## अथ म्लेच्छयोगः।

मूर्तौ सप्तमगाः क्रूराः सचन्द्रा वा पटस्थिताः। रक्षोभे जायते म्लेच्छो धर्मे पापत्रयान्विते॥ १॥ शनिराहुकुजा धर्मे यद्वा लग्ने स्मरे पदे। सचन्द्रा वा पृथक् भोक्ता भावेषु म्लेच्छतां व्रजेत्॥ २॥

## अथ राशिलग्नयोः फलम्।

अस्थिरविभूति मित्रं चलमटनं स्खलितनियममपि चरभे। स्थिरभे तद्विपरीतं क्षमान्वितं दीर्घसूत्रं च॥ १॥ द्विशरीरे त्यागयुतं कृतज्ञमुत्साहिनं विविधचेष्टम्। ग्रामारण्यजलोद्भवराशिषु जातास्तथाशीलाः॥ २॥ रागी सुखी कविर्धीमाक्रोधी मानी यतिर्धनी। गुणग्राही श्रेष्ठी धर्मी कुटिला मेषराशितः॥ ३॥ तस्करभोक्तृविचक्षणधनिनृपतिनपुंसकाभयदरिद्राः। खलपापोग्रोत्कृष्टा मेषादीनां नवांशभवाः॥ ४॥

## अथ प्रव्रज्यायोगः ।

वराहः–चतुरादिभिरेकस्थैः प्रव्रज्यां स्वां ग्रहः करोति वली । बहुभिर्वीर्ययुतैर्बह्वयः प्रथमा वीर्याधिकस्यैव ॥ १ ॥ तापसवृद्धश्रावकरक्तपटाजीविभिक्षुचरकाणाम् । निर्ग्रन्थानां चार्कात्पराजितैः प्रच्युतैर्बलिभिः ॥ २॥ दिनकरलुप्तमयूखैरदीक्षिता भक्तिवादिनस्तेषाम् । याचितदीक्षा बलिभिः पराजितैरन्यदृष्टैर्वा ॥ ३ ॥ जातकोत्तमे—वन्याशी शिवभक्तश्चोपासको योगविग्रतिः । विष्णुभक्तश्च दिग्वासाः प्रव्रज्या भानुतः क्रमात् ॥ ४ ॥ अन्यच्च—ज्ञानवान्वीतरागी चोपासको विवराश्रमी । तीर्थकृच्छ्राद्धकृद्यशी दुस्तपस्वी क्रमाद्रवेः ॥ ५ ॥

इति शूरमहाठश्रीशिवदासविनिर्मिते ।
ज्योतिर्निबन्धसर्वस्वे संपूर्णं जातकं स्फुटम् ॥ १ ॥

---

## अथ नानाविधप्रश्नप्रकरणम् ।

### तत्राऽऽदौ शुभाशुभज्ञानम् ।

ग्रहभावफलोत्पातशकुनस्वरवर्णनम् । पृच्छाजातकमाचार्यैरधिकाराष्टकं मतम् ॥ १ ॥ अधिकारेषु सर्वेषु प्रश्नतन्त्रं शिरःस्थितम् । यस्माच्छुभाशुभं सर्वं सद्यःप्रत्ययकारकम् ॥ २ ॥ संपूज्य खचरान्साङ्गान्दैवज्ञं स्वक्रियापरम् । श्रद्धायुक्तः पूर्णपाणिः पृच्छेदव्याकुलः पुमान् ॥ ३ ॥ कर्मणा येन येनेह प्रेरितोऽभ्येति प्रच्छकः । जन्मपृच्छारम्भलग्नैर्युक्त्या तस्य फलं वदेत् ॥ ४ ॥ क्षुद्रपाखण्डधूर्तेषु श्रद्धाहीनोपहासके । ज्ञानं न तथ्यतामेति यदि शंभुः स्वयं वदेत् ॥ ५॥ भक्तार्तदीनवदने दैवज्ञो नाऽऽदिशेद्यदि । विफलं भवति ज्ञानं तस्मात्तेभ्यः सदा वदेत् ॥ ६ ॥ स्वस्थचित्तं सकृत्पृच्छेदार्तः पूर्वाह्ण एव तत् । सत्यं स्यादपराह्णे तु मध्यं रात्रौ तु निष्फलम् ॥ ७॥ प्राची प्रतीची माहेशी कौबेरी दिक् सुखप्रदा । अवाची राक्षसी दुष्टा शून्याऽऽग्नेयी च मारुती ॥ ८ ॥ अङ्गुष्ठकर्णवदनस्तनहस्तकेशकक्ष्यांसपादतलगुह्यशिरांसि गण्डम् । ओष्ठं च संस्पृशति वक्ति शुभानि यद्वा प्रष्टा तदा कलयति ध्रुवमिष्टसिद्धिम् ॥ ९ ॥ अधीतगणितो यः स्याज्जातकेषु कृतश्रमः । सोऽधिकारी भवेदत्र प्रश्नशास्त्रे निराकुलः ॥ १० ॥ पूर्णनाडीस्थितः पृच्छेच्छुभं स्यादन्यथा क्षतिः । श्वासप्रवेशे संपूर्णं निर्गमेऽल्पफलं वदेत् ॥ ११ ॥ सौम्ये त्रिलग्ने यदि वाऽस्य वर्गे शीर्षोदये सिद्धिमुपैति कार्यम् । अतो विपर्यस्तमसिद्धिहेतुः कृच्छ्रेण संसिद्धिकरं विमिश्रम् ॥ १२ ॥

---

१ क. ख. सत्पुपदा० ।

प्रश्नवर्णा रसैर्निघ्ना गजाढ्याः सप्तभाजिताः । शेषे सौम्योदये शस्तं नेष्टं पापोदये वदेत् ॥ १३ ॥ दूतोक्तवर्णसंख्याङ्को द्विगुणो भाज्यते त्रिभिः । यद्येकः शेषतां याति तच्छुभं नान्यथा पुनः ॥ १४ ॥

इति शुभाशुभज्ञानम् ।

---

## अथ लग्नादिभावविचारः ।

रूपलक्षणवर्णानां क्लेशदुःखसुखायुषाम् । वय प्रमाणं जातानां तनुस्थाने नियोजयेत् ॥ १ ॥ मणिमुक्ताफलस्वर्णरत्नधातुकदम्बकम् । क्रयाणकानि सर्वाणि धनस्थाने नियोजयेत् ॥ २ ॥ भगिनीभ्रातृभृत्यानां दासकर्मकृतामपि । कुर्वीत वीक्षणं विद्वान्सम्यग्दुश्चिक्यवेश्मनि ॥ ३ ॥ वाटिकाग्रामगेहादिवृद्धिस्थानं गमागमौ । प्रवेशं मातरं क्षेत्रं निधिमन्त्रौषधं सुखे ॥ ४ ॥ गर्भापत्यविनेयानां मन्त्रसंधानयोरपि । विद्याबुद्धिप्रधानानां सुतस्थानाद्विनिर्णयः ॥ ५ ॥ महिष्याद्यरियुग्युद्धगवाश्वक्रूरकर्मणाम् । मातुलांचकलङ्कानां रिपुस्थानाद्विनिर्णयः ॥ ६ ॥ वाणिज्यं व्यवहारं च विवादं चौरकर्म च । गमागमं कलत्राद्यं पश्येत्प्राज्ञः कलत्रतः ॥ ७ ॥ नद्युत्तारेऽध्ववैषम्ये दुर्गे शात्रवसंकटे । नष्टे दृष्टे रणे व्याधौ छिद्रे छिद्रं निरीक्षयेत् ॥ ८ ॥ वापीकूपतडागादिप्रपादेवगृहाणि च । दीक्षायात्रां मठं धर्मं गुरुं धर्मे निरीक्षयेत् ॥ ९ ॥ राज्यं मुद्रां पदं स्थानं पुण्यं मानं पितुः स्थितम् । वृष्ट्यादिव्योमवृत्तान्तं व्योमस्थाने निरीक्षयेत् ॥ १० ॥ सस्यकाञ्चनकन्यानां गजयानाश्ववाससाम् । लाभे विद्यार्थयोर्लाभं लक्षयेत्क्रयविक्रयौ ॥ ११ ॥ त्यागे भागे विवाहेषु दानेषु कृषिकर्मणि । युद्धे व्ययेषु सर्वेषु विद्धि विद्वन्व्ययं व्ययात् ॥ १२ ॥ यो यो भावः स्वामिदृष्टो युतो वा सौम्यैर्वा स्यात्तस्य तस्यास्ति वृद्धिः । पापैरेवं तस्य भावस्य हानिर्निर्देष्टव्या प्रश्नतो जन्मतो वा ॥ १३ ॥ यत्र स्वपद्कसद्भावस्तत्र पूर्णफलं वदेत् । चन्द्रदृष्ट्या विशेषेण तद्विनाऽप्यधिया पुनः ॥ १४ ॥ चन्द्रदृष्टिं विनाऽन्यस्य शुभस्य यदि दृग् भवेत् । शुभं प्रयोजनं किंचिदन्यदुत्पद्यते तदा ॥ १५ ॥ लग्नं लग्नेश्वरः पश्येद्भावं पश्यति भावपः । तावुभौ भावगौ स्यातां तदा तत्सिद्धिमादिशेत् ॥ १६ ॥ संपूर्णं सबलैः खेटैः शुभं चाशुभमल्पकम् । विबलैरशुभं पूर्णं नान्यद्वचस्तं व्ययाष्टमे ॥ १७ ॥ केन्द्रे सर्वग्रहाः पुष्टा[1]कालिक-

---

१ ध. 'टान्तफलनानारी' ।

फलप्रदाः । कार्यं पणफराद्धावि ज्ञेयमापोक्लिमाद्गतम् ॥१८॥ पृच्छालग्नेषु सर्वेषु लग्नाधिपबलाबलात् । समस्तं फलमादेश्यं स्थानदृष्टिप्रभावतः ॥ १९ ॥

इति लग्नादिभावविचारः ।

---

## अथ ग्रहबलाबलम् ।

उच्चस्वराशिमित्रस्थः शुभदृष्टियुतोदितः । बली स्यात्पापयुग्दृष्टो नष्टो नीचारिगोऽफलः ॥ १ ॥ क्रूरदृष्टो युतो वाऽपि क्रूराक्रान्तो विरश्मिकः । स विनष्टो ग्रहो ज्ञेयो विपरीतस्तु पुष्टिमान् ॥ २ ॥ लग्ननाथे विनष्टे स्याद्विनष्टावयवो नरः । तेजोवर्णाधिकं नष्टे ब्रूयादिदमशङ्कितः ॥ ३ ॥ यदि लग्नेश्वरः षष्ठः स्वयमेव रिपुर्भवेत् । रन्ध्रेशो मृत्युकारी स्याद्द्वादशस्थो व्ययप्रदः ॥ ४ ॥ भावप्रान्तगतः खेटः परभावफलप्रदः । आसीनोऽन्त्यघटीं यावद्विवाहादौ फलप्रदः ॥ ५ ॥

## अथ धात्वादिचिन्ता ।

धातुर्मूलं जीव इत्योजराशौ युग्मे विद्यादेतदेव प्रतीपम् । लग्ने योंऽशस्तत्क्रमाद्गण्यमेवं संक्षेपोऽयं विस्तराचत्प्रभेदः ॥१॥ ऊर्ध्वदृष्ट्या भवेज्जीवो ह्यधोदृष्ट्या च मूलकम् । समावलोकनाद्धातुं मिश्रं मिश्रदृशा वदेत् ॥ २ ॥

## अथ बहुप्रश्ने विशेषः ।

लग्नादाद्यास्तृतीयात्तु द्वितीया सप्तमात्परा । चतुर्थी दशमाच्चिन्ता पञ्चम्यादि ततो भवेत् ॥ १ ॥ ततोऽपि पञ्चमात्पश्चाद्रन्ध्राल्लाभाद्यथाक्रमम् । पणवान्त्याच्च पृच्छैव पृच्छा द्वादश संस्मृताः ॥ २ ॥ धनादिभावं लग्नं स्यात्तस्मादपि धनादितः । शतं वेदाब्धिराहितं प्रश्नानामिह जायते ॥ ३ ॥ भद्रार्धयामकुलिकव्यतीपातेषु वैधृतौ । क्रान्तिसाम्ये संक्रमणे ग्रहणे चेन्न सिद्धये ॥ ४ ॥

## अथ लाभालाभविचारः ।

लग्नलाभपती लग्ने लाभे वा लग्नलाभपौ । लग्ने लाभाधिपो वा स्याल्लाभे लाभाधिपो भवेत् ॥ १ ॥ एकोऽपि हि यदा योगस्तदा लाभः सुनिश्चितम् । चन्द्रयुक्तो विशेषेण पूर्णमायुश्च यच्छति ॥ २ ॥ लग्नलाभपयोर्दृष्टिर्लाभे लाभकरी मता । लाभः सर्वखगैर्दृष्टो लाभः पूर्णो भवेत्तदा ॥ ३ ॥ धनादिसर्वलाभेषु वाच्यमेवं यथा तथा । निष्फलाः कथिता योगा यदि चन्द्रो न पश्यति ॥ ४ ॥ तिर्यग्योनौ गते लग्ने द्वितीयगतेऽथवा । शुभग्रहेण युक्तश्चेत्पशुलाभस्तदा भवेत् ॥ ५ ॥ केन्द्रगो यदि लग्नेशः शुभो दृष्टः शुभैरपि । लग्नपो वा त्रिकोण-

स्थश्चन्द्रोऽत्र क्षेमकारकः ॥ ६ ॥ लग्नगो यदि कर्मेशो दृष्टो लग्नाधिपेन तु । नृपाल्लाभस्तदा वाच्यश्चन्द्रदृष्टो विशेषतः ॥ ७ ॥ चन्द्रो लग्नपतिर्वाऽपि धनपस्याग्रगो भवेत् । तदा न धनलाभः स्याद्धनहानिर्ध्रुवं भवेत् ॥ ८ ॥ धने लाभपतिर्लग्ने वित्तपो धनलाभकृत् । धने शुक्रेन्दुगुरवो धनेशो वाऽतिलब्धये ॥ ९ ॥ त्रिपश्चलाभास्तमयेषु सौम्या लाभप्रदा नेष्टफलाश्च पापाः । घटोऽथ कन्या मिथुनो घटश्च नृराशयस्तेषु शुभं वदन्ति ॥ १० ॥ इन्दुं द्विसप्तनवमायारिपुत्रिसंस्थं पश्येद्गुरुः शुभफलं प्रमदाकृतः स्यात् । लग्नत्रिधर्मसुतनैधनगास्तु पापाः कार्यार्थनाशभयदाः शुभदाः शुभाः स्युः ॥ ११ ॥ लाभे लाभेशसंदृष्टे लाभे शुक्रे गुरौ विधौ । लाभो भवति तत्कालं स्वस्यान्यस्य श्रिया सह ॥ १२ ॥ चरे लग्ने शुभैर्युक्ते लाभे चन्द्रे बलाधिके । त्रिकोणकेन्द्रगैः सौम्यैर्लाभो भवति निश्चितम् ॥ १३ ॥ मेषे लाभो वृषे लाभो मिथुने लाभ इष्यते । नास्ति कर्कटके लाभः सिंहे लाभस्तु शीतलः ॥ १४ ॥ कन्यायां च घटे लाभो न लाभो वृश्चिके मतः । धनुषि स्यादाशु लाभो मृगे कार्यं तु शीतलम् । कुपुत्रस्तु भवेत्कुम्भे मीने लाभः शुभो भवेत् ॥ १५ ॥

## अथ नष्टलाभविचारः ।

राशिदृकाणांशाश्चला हितं निश्चला मतिभ्रंशम् । उभयशरीराः पातं दिशन्त्यमी द्रव्यजातस्य ॥ १ ॥ वृषसिंहवृश्चिकघटैर्वृद्धिस्थानं गमागमौ न स्तः । न मृतं न चापि नष्टं न रोगशान्तिर्न चाभिभवः ॥ २ ॥ तद्विपरीतं तु चरैर्द्विशरीरैर्मिश्रितं फलं वाच्यम् । लग्नेन्द्वोर्वक्तव्यं शुभदृष्ट्या शोभनमतोऽन्यत् ॥३ ॥ होरास्थितः पूर्णतनुः शशाङ्को जीवेन दृष्टो यदि वा सितेन । क्षिप्रं प्रनष्टस्य करोति लब्धिं लाभोपयातो बलवाञ्छुभश्च ॥ ४ ॥ पूर्णः शशी लग्नगतः शुभो वा शीर्षोदये सौम्यनिरीक्षितश्च । तदाऽऽशु नष्टस्य करोति लाभं तथैव पूर्वोदितलाभयोगैः ॥ ५ ॥ स्थिरोदये स्थिरांशे वा वर्गोत्तमगतेऽपि वा । स्थितं तत्रैव तद्द्रव्यं स्वकीयेनैव चोरितम् ॥ ६ ॥ यस्मिन्राशौ भवेच्चन्द्रस्तद्राशेरधिपेन चेत् । दृश्यते चन्द्रमाः प्रश्ने नष्टं च लभ्यते तदा ॥ ७ ॥ चन्द्रे क्रूरयुते नष्टं चक्रिणि द्यूनपे तथा । न लभ्यतेऽस्तपे नष्टे चौरेशोऽपि मरिष्यति ॥ ८ ॥ सक्रूरे द्यूनपः केन्द्रे चोराप्तिः सशुभोऽन्यथा । सूर्यलुप्तो धनेशश्चेच्चोराप्तिर्न हृतं धनम् ॥ ९ ॥ लग्नपे द्यूनमायाते नष्टं कष्टेन लभ्यते । द्यूनपे लग्नमायाते स्वयं चोरः प्रयच्छति ॥ १० ॥ विधौ व्ययगते वस्तु हृतं भुक्तं तु तस्करैः । स्थिरेऽस्तपे स्थितं

---

१ क. 'नैलग्नप' ।

तत्र ग्रामान्तरगमश्वरे ॥ ११ ॥ उच्चगो यदि सप्तेशः स्वामी चौरः स्ववेश्मगः । चौरस्यापि वयोजातिरूपं सप्तेश्वराद्वदेत् ॥ १२ ॥ नीतं चौरिकया वस्तु धृतं चौरेण कुत्रचित् । कीटमर्कटमीनेषु चतुर्थे जलसंनिधौ ॥ १३ ॥ मेष-सिंहद्वये भूमौ हयस्यैव विनिर्दिशेत् । नृयुग्मे च तुलाकुम्भे नानाकारे गृहे भुवि ॥ १४ ॥ क्षेत्रमध्ये तु कन्यायां मकरे वृश्चिके भुवि । वृषभ-च्छागयोर्गेहे यद्वा तत्स्थग्रहाद्वदेत् ॥ १५ ॥ सूर्ये गृहेशशय्यायां चन्द्रे तोयसमीपतः । दग्धस्थाने कुजे ज्ञे तु चित्रगेहे गुरौ तथा ॥ १६ ॥ देवालये भृगौ क्रीडागृहे मन्दे मलाश्रये । लग्नाचन्द्रो भवेद्यत्र तत्र चौरगृहं वदेत् ॥ १७ ॥ चौरः खेटस्तु तद्राशिं त्यक्त्वा याति द्वितीयकम् । तदानीं नग-राच्चौरो निर्गतो वर्त्म चांशकात् ॥ १८ ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रोऽथ स्वजनाङ्गना । भ्राता पुत्रोऽथ भृत्यश्च दासः स्यान्मूषकोऽप्यभूः ॥ १९ ॥ पूर्वराशिं यदा वक्री समागच्छति लग्नपः । तदा ग्रामान्तराच्चौरः स्वयमेवाऽऽग-मिष्यति ॥ २० ॥ मेषादिषु क्रमाच्चौरनामैषां राशिसादृशम् । मेषे वृषे च दिक्पूर्वा आग्नेयी मिथुने स्मृता ॥ २१ ॥ दक्षिणा कर्कटे ज्ञेया सिंहेऽप्येवं विजा-नता । कन्यायां नैर्ऋती ज्ञेया पश्चिमा घटवृश्चिके ॥ २२ ॥ मारुती धनुषि ज्ञेया उत्तरा मृगकुम्भयोः । मीनराशौ तथैशानी दिशालक्षणमीदृशम् ॥ २३ ॥ चरे दूरं विजानीयात्स्थिरे गृहगतं वदेत् । द्विशरीरे भवेद्वाह्ये गृहं त्रिविधमा-दिशेत् ॥ २४ ॥ चरे वै गृहकोणेषु स्थिरे मृन्मयभाजने । द्विशरीरे भवेत्क्षेत्रे स्थिरे गृहगतं वदेत् ॥ २५ ॥ मेषेऽरण्ये वृषे क्षेत्रे युग्मे ग्रामेऽथ कर्कटे । नद्यां सिंहे तडागे च कन्यायां तु निजे गृहे ॥ २६ ॥ घटेऽन्तरिक्षेऽलौ वह्नौ चापे क्षेत्रे मृगे जले । कुम्भे भूमिगतं मीने पथि नष्टादिकं वदेत् ॥ २७ ॥ कुमारिकां बालशशी बुधश्च वृद्धां शनिः सूर्यगुरू प्रसूताम् । स्त्रीः कर्कशा भौमसितौ व्यधत्त एवं वयः स्यात्पुरुषेषु चैवम् ॥२८॥ विस्मृतं यन्मया वस्तु तत्प्राप्तिं यदि पृच्छति। वस्तुस्थानं तृतीयं तु ग्राहकः सुखवेश्मकः ॥ २९ ॥ धातुवादे रणे चौर्ये पर-स्वहरणेऽपि वा । शुभपापसमायोगाल्लग्नस्यैवं विचारणा ॥ ३० ॥ चन्द्रलग्नपती षष्ठे बलिनौ ऋणलाभदौ। लाभयोगे तु लाभः स्यादन्यो लाभस्तु लाभतः ॥३१॥

इति नष्टलाभविचारः ।

---

## अथ गर्भपृच्छा ।

स्नाता योषिद्यदा पृच्छेद्यत्र स्यादष्टमाधिपः । अङ्के दिनानि तावन्ति यदि

च्छिद्रात्परे ततः ॥ १ ॥ लग्ने पुत्राधिपः पुत्रे लग्नेशो यदि संस्थितः । भावी पुत्रस्तदा प्रश्ने वक्तव्यमिति निश्चितम् ॥ २ ॥ पुत्रेश्वरो यदा लग्ने पुत्रपश्चेन्दुना युतः । भृगुभूमिसुतौ पश्येचन्द्रो गर्भे सुतां वदेत् ॥ ३ ॥ लग्ने शुभे शुभे पुत्रे लाभे पुत्रे स्वगे गुरौ । प्रश्ने समुदितं घाच्यं सुतो गर्भेऽन्यथाऽन्यथा ॥ ४ ॥ पञ्चमे सुभगे गर्भो गर्भस्थो नीरुजस्तथा । सोपद्रवः सपापे तु गर्भस्रावोऽथवा मृतिः ॥ ५ ॥ लग्नं विना चरे राशौ त्रिपथे पुत्रकृच्छनिः । समे स्त्री राहुरेवं चेज्जातमृत्युकरो मतः ॥ ६ ॥ सपापश्चन्द्रमाश्छिद्रे पष्ठे वा शुभदृग्विना । राहुश्चतुष्टये वा स्यात्सद्योमृत्युकरो मतः ॥ ७ ॥ गर्भग्रन्थिः शनौ राहौ कुजे गर्भस्त्रिमासिकः । वातग्रन्थिं शनीन्दुभ्यां राह्विन्दुभ्यां जलोदरम् ॥ ८ ॥ चन्द्राद्दृष्टेऽधमैर्युक्ते क्रूरदृष्टे च पञ्चमे । नीचस्थेऽस्तमिते गर्भे नैवापत्यं प्रजायते ॥ ९ ॥ चन्द्रो वा यदि वा लग्ने पञ्चमे भवने स्थितः । सौम्येक्षितो यदाऽवश्यं गर्भिणीति तदा वदेत् ॥१०॥ हरित्रिपवृश्चिककन्यापञ्चमगाश्चन्द्रतो विलग्नाद्वा । पृच्छाकाले वाच्यं स्वल्पापत्या भवेद्योषित् ॥ ११ ॥ पुंवर्गे लग्नगते पुंग्रहदृष्टे बलान्विते पुरुषः । युग्मे स्त्री ग्रहदृष्टे स्त्रीबुधयुक्ते तु गर्भयुता ॥ १२ ॥ प्रसूता वाऽप्रसूता वा पष्ठेशः पुत्रपोऽथवा । ज्ञगुरू व्योम्नि शुक्रो वा प्रसूता सा न चान्यथा ॥ १३ ॥ सुतेशलग्नाधिपती स्त्रीपुंभे स्त्रीसुतप्रदौ । सूर्यनाड्यां सुतश्चन्द्रे सुता क्लीवस्तु संक्रमे ॥ १४ ॥ लग्नचक्रे तु चत्वारि ग्रहयुग्माणि चेत्तदा । यमलं जायते तत्र चरे त्रीणि स्वपक्षतः ॥ १५ ॥ लग्नात्पुत्राद्गुरुर्यत्र तावन्मासान्गतान्वदेत् । यद्वा भुक्तांशका लग्ने गतमासास्तु तत्समा· ॥ १६ ॥ यावत्संख्ये द्वादशांशे शीतरश्मिर्व्यवस्थितः । तत्संख्यो यस्ततो राशिर्जन्मेन्दौ तद्गतं वदेत् ॥ १७ ॥ शनौ द्यूने जनिरब्दैश्चन्द्रे कामेऽर्कवत्सरैः । पञ्चमः सप्तमो वा स्यात्तद्राशिश्चन्द्रतः शिशोः ॥१८॥ दिवालग्ने दिनस्वामी दिने जन्म निशापतिः । निशालग्ने निशि ज्ञेयं सायं जन्मान्यथा ध्रुवम् ॥ १९ ॥ वीक्षितं यमवक्राभ्यां पञ्चमं परवल्लभा । सेन्दुरर्कः सपापश्चेत्तथैवेज्यो न पश्यति ॥ २० ॥

इति गर्भपृच्छा ।

---

## अथ विवाहपृच्छा ।

लग्नादिन्दुस्तृतीयास्तपञ्चकर्मायगो यदि । गुरुणा वीक्षितस्तर्हि भवेत्संबन्धकारकः ॥ १ ॥ तुलाष्टपकुलीरेपु संयुतेष्वीक्षितेषु च । निशानायकशुक्राभ्यां कन्यालाभो भवेद्ध्रुवम् ॥ २ ॥ व्ययेशो यदि लग्नस्थो लग्नेशो व्ययगो भवेत् । तदा विवाहकर्ता स्याद्राशिर्विषमे शनौ ॥ ३ ॥

## अथ विवाहे शुभाशुभम् ।

यदि लग्नगतः क्रूरस्तस्मात्सप्तमगः कुजः । विज्ञेयं भर्तृमरणं सप्तमाब्दान्तरे यदि ॥ १ ॥ लग्नात्पञ्चमगः क्रूरः शत्रुदृष्टः स्वनीचगः । मृतपुत्रा तदा नारी कुलट्या वा न संशयः ॥ २ ॥ यदि लग्नगतश्चन्द्रस्तस्मात्सप्तमगः कुजः । मासेऽष्टमे व्यतीते तु भवेन्मृत्युर्वरस्य च ॥ ३ ॥ आयुर्लग्ने सुते पुत्रान्द्यूने वित्तं गुरुर्बुधः । ददातीह विवाहोक्तं योज्यं स्त्रीजातकोदितम् ॥ ४ ॥

## अथ संभोगः ।

अस्ते रविसितवक्रैः परजायां स्वां गुरौ वेश्याम् । चन्द्रे च वयः शशिवत्सम-देत्सौरेऽन्त्यजातीनाम् ॥ १ ॥ सप्तमे वाऽष्टमे शुक्रे रतं स्वाभाविकं भवेत् । बुधेन गुरुणा वाऽपि शुक्रे युक्ते महत्सुखम् ॥ २ ॥ सचन्द्रे सुरता योषित्सकुजे कलहो भवेत् । कटिशूलः ससौरे स्यात्सार्के मिथ्या रतं गतम् ॥ ३ ॥ सराहौ तामसो भोगः सकेतौ कलहैर्युतः । लग्ने जीवे द्यूने चन्द्रे तुर्ये वा क्रीडनं महत् ॥ ४ ॥ सुखद्यूनगतैः क्रूरैः सुरतं मेतवद्भवेत् । स्त्रीलाभयोगैः संभोगो भवि-ष्यति नचान्यथा ॥ ५ ॥

## अथ गमनम् ।

चरलग्ने चरभागे मध्याद्भ्रष्टे प्रवासचिन्ता स्यात् । भ्रष्टः सप्तमभवनात्पुन-र्निवृत्तो यदि न वक्री स्यात् ॥ १ ॥ स्थित्वा विदिक्षु गमनं पृच्छति गन्ता चरोदये शुद्धे । ब्रूयाद्यात्रासिद्धिं शिवं तथा चार्थलाभं च ॥ २ ॥ उदयगते चरराशौ गुरुबुधभास्करेषु चैकतमः । गमनमुपदिशन्ति पुंसां निवर्तनं वक्रसं-स्थितो वाऽपि ॥ ३ ॥ स्थिरराशिस्थे चन्द्रे स्थिरोदये गन्तुमिच्छतो गमनम् । नास्तीति वक्ति शास्त्रं तथा चरे स्थातुकामस्य ॥ ४ ॥ सुखे व्योम्नि स्थिते सौम्ये तदा न गमनं भवेत् । तत्रैव गमनं पापे वक्री खेटो यदा न हि ॥ ५ ॥ भाग्यपो लग्नपो वा स्याचन्द्रगो वा विशेषतः । चन्द्रलग्नेश्वरौ भाग्ये गमस्तत्रा-प्यचिन्तितः ॥ ६ ॥ चन्द्रो लग्नपतिर्वाऽपि केन्द्रे खेटैः सहाग्रगः । सिद्धेऽपि गमने प्रष्टुर्गमनं नेति निश्चितम् ॥ ७ ॥ शुभे मूर्तौ शुभं देहे दशमे कार्यसिद्धिकृत् । सप्तमे तु शुभैर्युक्ते गतो यत्र शुभं ततः ॥ ८ ॥ चतुर्थे सशुभे कृत्वा कार्यं स्वागमनं भवेत् । अत्राशुभेषु तद्धानिर्मिश्रैर्मिश्रफलं भवेत् ॥ ९ ॥ स्थिरोदये जीवदर्शनेश्वरेक्षिते गमागमौ नेव वदेच्च पृच्छतः । त्रिपञ्चषष्ठा रिपुसंगमाय पापाश्च-तुर्थो विनिवर्तनाय ॥ १० ॥ ग्रहः सर्वोत्तमबलो लग्नाद्यस्मिन्गृहे स्थितः । मासै-

स्तत्तुल्यसंख्याकैर्निवृत्तिं यातुरादिशेत् ॥ ११ ॥ चरांशस्थे ग्रहे तस्मिन्कालमेवं विनिर्दिशेत् । द्विगुणं स्थिरभागस्थे त्रिगुणं द्व्यात्मकांशके ॥ १२ ॥ चन्द्रो यानि यदा लग्ने जीवो वाऽप्यथवा कविः । सूर्यो वाऽस्तं तु लग्नेशो लग्नांशं वा तदाऽऽगमः ॥ १३ ॥ सप्तमे शीतगौ शुक्रे मार्गेऽपि गच्छतां नृणाम् । स्त्रीसंभोगो भवेस्स्नेहान्मिथुनादिषु मूर्तिषु ॥ १४ ॥ गमनप्रश्ने नवमस्थाने गते द्यूनपे भवेद्गमनम् । लग्नाज्जामित्रपतिः कालेनाऽऽप्नोति यावता वक्रम् । अयननिवृत्तिरथवा विनिवृत्तिस्तेन कालेन ॥ १५ ॥

इति गमनपृच्छा ।

## अथाऽऽगमनम् ।

द्वितीये वा तृतीये वा विलग्नादथवा सुखात् । सौम्यः करोति नष्टाप्तिं चाऽऽगमं च प्रवासिनः ॥ १ ॥ प्रश्नयामले—प्रश्नाक्षराणि षड्घ्नानि शशियुक्तानि सप्तभिः । हरेच्छेषात्फलं प्रष्टुः प्रस्थानं १ पथ २ आगमः ३ । गृहागमः ४ सिद्धि ५ रोगौ ६ मृत्युः स्या ७ त्फलमीदृशम् ॥ २ ॥ लग्नात्सौम्यो हिबुके शीघ्रागमनं चरे लग्ने । धनसुतसहजारिस्थाः सौम्याः शीघ्रागमाय निर्दिष्टाः ॥ ३ ॥ अकृतार्थः समभ्येति धनेशो यदि वक्रितः । वक्राभिलाषिणि स्थायी प्रोषितः परिकीर्तितः ॥ ४ ॥ दूरगतस्याऽऽगमनं सुतधनसहजस्थितैर्ग्रहैर्विलग्नात्(?) । सौम्यैर्नष्टप्राप्तिर्लब्धागमनं गुरुसिताभ्याम् ॥ ५ ॥ जामित्रेऽप्यथवा षष्ठे ग्रहः केन्द्रे च वाक्पतिः । प्रोषितागमनं विद्यात्त्रिकोणे ज्ञे सितेऽपि वा ॥ ६ ॥ अष्टमस्थे निशानाथे कण्टकैः पापवर्जितैः । प्रवासी सुखमायाति सौम्यैर्लाभसमन्वितः ॥ ७ ॥ केन्द्राद्द्वितीये खचरो यदा याति तदाऽऽगमः । गन्तुकामं ग्रहं दृष्ट्वा वाच्यमेतन्न चान्यथा ॥ ८ ॥ केन्द्राच्चन्द्रोऽग्रिमं याति तदाऽऽगन्ता तु मार्गगः । नायं सप्तमकेन्द्रे स्यादग्रिमादग्रिमं तथा ॥ ९ ॥ मार्गस्थं पथिकं ब्रूते द्यूने चन्द्रो व्यवस्थितः । मार्गनाथः परेऽर्धे चेत्पथिकागमनं तदा ॥ १० ॥ चरलग्ने चरांशे वा चतुर्थे चन्द्रमाः स्थितः । ब्रूते प्रवासिनं व्यक्तं समायातं स्ववेश्मनि ॥ ११ ॥ गृहप्राप्तः प्रवासी स्याच्चतुर्थे स्वामिसंयुते । शुभयुक्ते दिनान्येवं भुक्तं भोग्यं च तद्वशात् ॥ १२ ॥ शनिः सपापो दशमे विदेशे पथिकः सरुक् । पापा रन्ध्रे रुजं कुर्युः सचन्द्रास्ते मृतिप्रदाः ॥ १३ ॥ पृष्ठोदये पापनिरीक्षिते वा पापास्तृतीये रिपुकेन्द्रगा वा । सौम्यैर्न दृष्टा वधबन्धदाः स्युर्नष्टा विनष्टा मुषिताश्च

१ घ. °नानिवृ° ।

वा स्युः ॥ १४ ॥ मन्दः पापसमेतो लग्नान्नवमे त्वशुभसंदृष्टः । रोगार्तः परदेशेऽष्टमगो वा मृत्युकर एव ॥ १५ ॥ सप्तमे यदि वा षष्ठे खेचरः कण्टके गुरौ । प्रवासी सुखमायाति ज्ञे शुक्रे वा तृतीयगे ॥ १६ ॥ गृहमागतो न यदाऽसौ किं बद्धः किं नु हत इति प्रश्ने । मूर्तौ क्रूरो यदि तन्निहतो बद्धोऽथवा पुरुषः ॥१७॥ सप्तमगोऽष्टमगो वा चेत्क्रूरस्तद्धतोऽथ बद्धो वा । मूर्तौ समेऽपि च [यदा] यद्वा लग्नेऽष्टमे च भवेत् ॥ १८ ॥ ग्रहो विलग्नाद्यतमे ग्रहे स्यात्तेनाऽऽहता द्वादश राशयस्तु । तावद्दिनान्यागमनस्य विद्यान्निवर्तनं वक्रगते ग्रहे च ॥ १९ ॥ गुरौ लग्नेऽथवा शुक्रे शत्रुतस्करसंकटे । न प्रहारोऽथवा हानिर्वक्तव्या पथि गच्छतः ॥ २० ॥ न विश्रामश्चरे लग्ने द्वौ विश्रामौ स्थिरात्मके । विश्रामत्रितयं प्रोक्तं द्विस्वभावे विचक्षणैः ॥ २१ ॥

इत्यागमनपृच्छा ।

---

## अथ परचक्रागमः ।

नाऽऽगच्छति परचक्रं यदाऽर्कचन्द्रौ चतुर्थभवनस्थौ । गुरुबुधशुक्रा हिबुके यदा तदा शीघ्रमायाति ॥ १ ॥ सुतशत्रुगतैः पापैः शत्रुर्मार्गान्निवर्तते । चतुर्थगैरपि प्राप्तः शत्रुर्भग्नो निवर्तते ॥ २ ॥ झपालिकुम्भकर्कटा रसातले यदि स्थिताः । रिपोः पराजयस्तदा चतुष्पदैः पलायनम् ॥ ३ ॥ मेषधनुःसिंहवृषा यद्युदयस्था भवन्ति हिबुके वा । विनिवर्तते तदाऽरिर्ग्रहसहिता वा वियुक्ता वा ॥ ४ ॥ लग्नादेवं स्मरस्थाने निवृत्तिः स्यात्प्रवासिनः । शुभयुक्तेक्षिते तद्वत्र प्रयासोऽस्ति कर्मणि ॥ ५ ॥ द्वितीये वा तृतीये वा गुरुशुक्रौ यदा तदा । तदाऽऽश्वागच्छते सेना प्रवासो वा न संशयः ॥ ६ ॥ नवमे तु यदा पापाः पञ्चमे तु शुभाः स्थिताः रिपुरायाति देशस्थः कुरुते च पराभवम् ॥ ७ ॥ आयाति धूनपे वक्रे राशिचक्रे तु निश्चितम् । सीमान्तं धिष्ण्यचक्रे च मार्गे वक्रागमो ध्रुवम् ॥ ८ ॥ स्थिरे तु लग्नमागते द्विरात्मके तु चन्द्रमाः । निवर्तते रिपुस्तदा सुदूरमागतोऽपि सन् ॥९॥ चरे शशी लग्नगतो द्विदेहः पथोऽर्धमागत्य निवर्ततेऽरिः । विपर्यये चाऽऽगमनं हि शत्रोः पराजयः स्यादशुभेक्षिते तु ॥ १० ॥ स्थिरे चन्द्रश्चरं लग्नं यदि चेत्स्यात्परागमः[1] । लग्नं स्थिरं चरे चन्द्रस्तदा नास्ति परागमः ॥ ११ ॥ चरगौ स्थिरगौ द्व्यङ्गराशिगौ तनुशीतगू । आगमो नाऽऽगमः शत्रोः क्रमान्मार्गान्निवर्तनम् ॥ १२ ॥ बली क्रूरो यदा लग्ने मार्गे स्याद्गच्छतो मृतिः । यद्दृष्टौ धर्म-

---

१ क. 'ऽनय'।

लग्नेशावन्यस्याऽऽगमकारकौ ॥ १३ ॥ स्थिरराशौ यद्युदये शनिः स्थिरे स्यात्तदाऽऽयातुः । उदये रविर्गुरुर्वा चरराशौ स्यात्तदाऽऽशु गमः ॥ १४ ॥ द्विशरीरगते लग्ने चरराशिगते विधौ । पन्थानमर्धमागत्य स्वयं शत्रुर्निवर्तते ॥ १५॥ चन्द्रोऽधिष्ठितभं लग्नाद्यावत्संख्ये स्थितो भवेत् । रिपुरायाति तावद्भिर्दिनैर्मध्ये खगो न चेत् ॥ १६ ॥

इति परचक्रागमः ।

---

## अथ युद्धपृच्छा ।

युद्धं भावि न [वा] चेत्प्रश्ने लग्नेशसप्तमाधीशौ । शत्रू स्यातां तु तदा युद्धं भवतीति वक्तव्यम् ॥ १ ॥ लग्नं लग्नस्य पूर्वं वा यदि पापसमाश्रितम् । तदा घोरं भवेद्युद्धं पापो वेक्षेत पापकम् ॥ २ ॥ लग्नास्तनाथयोर्योगे रणं दीर्घं समादिशेत् । मन्दे वक्रे स्वल्पबले केन्द्रेऽल्पं बहुभिर्दिनैः ॥ ३ ॥ स्वगृहोच्चस्थे तु कुजे महारणं दशमगे भवति । लग्नस्थे मध्यतरं द्यूनस्थे सद्मनि प्रचुरम् ॥ ४ ॥ लग्नद्यूनपती पापौ पापांशस्थौ तु युद्धदौ । तावेव कलितौ केन्द्रे षष्ठपो वा तथाविधः ॥ ५ ॥ कर्तर्यां यदि चन्द्रार्कौ संहारः सैन्ययोर्द्वयोः । निकटे निकटं युद्धं दूरे दूरं च प्रच्छके ॥ ६ ॥ सिंहादि मकरान्तं हि सूर्यक्षेत्रमुदाहृतम् । कुम्भाद्याः कर्किपर्यन्ताश्चन्द्रक्षेत्रं विदुर्बुधाः ॥ ७ ॥

इति युद्धपृच्छा ।

---

## अथ जयपराजयौ ।

लग्नं च दशमं वाऽस्तं सौम्याढ्यं स्थायिनो जयः । तृतीये नवमे षष्ठे पापाश्चेद्यायिनो जयः ॥ १ ॥ उदयचतुर्थैः क्रूरैः सप्तमदशमस्थितैः सौम्यैः । विजयो भवति हि युद्धे द्यूनोदयगैः शुभैश्चापि ॥ २ ॥ सौम्यास्तृतीयभवनाद्धर्माद्वा यायिनः शुभैः शुभदाः । व्ययदशमा ये पापाः पुरस्य नेष्टाः शुभा यातुः ॥ ३ ॥ लग्नेशे द्यूनगेऽन्त्ये वा भवेत्प्रष्टुः पराजयः । लग्नेशे वाऽस्तपे षष्ठे शत्रोरेव पराजयः ॥ ४ ॥ लग्ने शशिनि कुजेऽस्ते विलोमतो वा तयोर्नाशः । स्वपतौ लग्ने प्रष्टुस्तुर्येशेऽस्ते रिपोः सहायबलम् ॥ ५ ॥ लग्ने क्रूरे प्रष्टुर्विजयोऽस्ते च विद्विषो विजयः । लग्नेशेऽस्ते यायी निबध्यते लग्नगेऽस्तपे स्थायी ॥ ६ ॥ विवादे शत्रुहनने रणे संकटके तथा । क्रूरे मूर्तौ जयो ज्ञेयः क्रूरदृष्ट्या पराजयः ॥ ७ ॥ उभयोः को विजयीति प्रश्ने लाभे तथा धर्मे । बुधगुरुशुक्रादित्याः स्थाने विजयं समा-

मोति ॥ ८ ॥ चन्द्रसौम्यान्तरगता राशयस्तु समा यदि । तदा बहुतरं सैन्यं शत्रोः स्यादन्यथाऽल्पकम् ॥ ९ ॥ क्रूराक्रान्तानि यावन्ति मध्ये भानीन्दुलग्नयोः । तावन्तः प्राणिनो वध्या द्वित्रिघ्नाः स्वांशकादिकैः ॥ १० ॥ ज्ञेयो लग्नपतिर्यायी पौरो जायापतिः स्मृतः । वक्री व्यावर्तकः प्रोक्तो मार्गी मार्गगतिस्तयोः ॥ ११ ॥ द्यूने पापो धनं दत्त्वा यायिनोः पुरपः सुखी । शुभैः कर्मगतैर्दत्वा धनं यायी व्रजेद्गृहम् ॥ १२ ॥ लग्नादेकादशेऽप्येको गुरुज्ञसितभानुपु । नागरस्य जयं ब्रूते नवमे लाभमुत्तमम् ॥ १३ ॥ सूर्ये चन्द्रे च सूर्यांशे संस्थिते स्थायिनां जयः । चन्द्रे सूर्ये च चन्द्रांशे संस्थिते यायिनां जयः ॥ १४ ॥ सूर्ये सूर्यांशसंयुक्ते चन्द्रे चन्द्रांशसंस्थिते । एवं योगे भवेत्संधिर्युद्धमेव विपर्यये ॥ १५ ॥

इति जयपराजयौ ।

---

## अथ संधिविग्रहौ ।

नृराशिसंस्था उदये शुभाः स्युर्व्ययायसंस्थाश्च यदा भवन्ति । तदाऽशु संधिं प्रवदेन्नृपाणां पापैर्द्विदेहोपगतैर्विरोधम् ॥ १ ॥ केन्द्रोपगताः सौम्याः सौम्यैर्दृष्टा नृलग्नगाः प्रीतिम् । कुर्वन्ति पापदृष्टाः पापास्तेष्वेव विपरीतम् ॥२॥ संधिं कुर्यात्सुहृद्दृष्टिर्लग्नेशास्तपयोर्मिथः । पृच्छायां लग्नगे क्रूरे संधिर्जातोऽपि नश्यति ॥३॥ लग्नं विना विधुः केन्द्रे त्रिकोणे वा बलान्वितः । संधिकृद्द्वेषिणोर्यद्वा पदे लग्नेश्वरो बली ॥ ४ ॥ नृभे त्रिषट्तपोरिप्फे संधिकृत्स्याच्छुभग्रहः । द्यूने लग्नपशत्रुत्वे संधिर्विश्लिष्यते स्वयम् ॥ ५ ॥ पुत्रगेहे तदीशो वा साधनं सबलं ध्रुवम् । आयेऽपि सबले संधिर्विबले विग्रहो भवेत् ॥ ६ ॥

इति संधिविग्रहौ ।

---

## अथ दुर्गभङ्गः ।

सबले दुर्बले वाऽपि क्रूरलग्नगते ग्रहे । न भवेत्कोटभङ्गोऽत्र शुभे व्यस्तमवक्रिते ॥ १ ॥ द्यूने लग्ने यदा पापाः संस्थितो लग्नपो व्यये । षष्ठे धनेऽथवा छिद्रे दुर्गभङ्गस्तदा न हि ॥ २ ॥ लग्ने भौमोऽथवा राहुः क्रूरो रन्ध्रे न भङ्गकृत् । यदि सप्तमगो राट्दुर्गभङ्गो भवेद्ध्रुवम् ॥ ३ ॥

इति दुर्गभङ्गः ।

---

## अथ वेष्टितदुर्गभङ्गपृच्छा।

वेष्टितं वा न वा प्रश्ने धने रिष्फे सपापके। तदा तद्वेष्टितं दुर्गं वाच्यं ग्रामादिकं परैः॥ १॥ दुर्गं वैरिजनैस्तु वेष्टितमिति प्रश्ने द्वितीयान्त्यगैः पापैर्वेष्टितमस्ति किं तु न गतं त्वेकादशभ्रातृगैः। एवं स्यात्सभयं तथाऽम्बुखगतैः पापैरतीतं भयं यातं नेति च केन्द्रगैः खलखगैर्दुर्गं गृहीतं परैः॥ २॥ लग्ने मध्येऽस्ते वा पितृभज्येष्ठे यदा भवतः। दुर्गस्थानां विजयं सौख्यं शुभदृग्युते विशेषेण॥३॥ शुभोऽम्बुनाथस्तनुपं बलान्वितः स्वोच्चस्थितः स्नेहदृशा प्रपश्येत्। दुर्गस्थितानां च शुभं तथैवं चेत्सप्तमं स्याच्छुभदं हि शत्रोः॥ ४॥ धने लाभे यदि क्रूरावेष्टितः सभटो गडः। सुखे द्यूने यदा पापाः स्वयमुद्वेष्टितः परैः॥ ५॥ मृत्युनाथः सभौमश्चेद्संख्याता मृतास्तथा। कण्टके सूर्यपुत्रश्चेद्बद्धाः स्युर्बहवो जनाः॥ ६॥ लाभव्योमसुतस्थौ चेद्गुरुशुक्रौ तदा परः। त्यक्त्वा याति स्वकं देशं स्वास्थ्यं तत्कोटवासिनाम्॥ ७॥ लग्नेशः शुभदः केन्द्रे कोटस्थानां शुभप्रदः। लग्ने पैत्रेन्द्रतिष्यश्चेत्कोटस्थैर्बाध्यते परः॥ ८॥ वेष्टितोऽपि गडः प्रश्ने ग्रहीतुं शक्यते यदा। पापः केन्द्रगतश्चेत्स्यात्कोटोऽसौ गृह्यते तदा॥ ९॥ लग्नपापान्तरा भागा यावन्तस्तावता दिनैः। मासैर्वर्षैश्चरादिस्थे लग्ने तद्गृह्यते स्फुटम्॥ १०॥ देशकालानुमानेन दिनाद्यं तत्र चेद्बुधे। द्रोहात्खण्डयाः शनौ भौमे युद्धाद्राहौ विषादितः॥ ११॥

इति वेष्टितदुर्गभङ्गपृच्छा।

---

## अथ परदुर्गाप्तिपृच्छा।

परदुर्गं यदाऽस्माभिर्गृह्यते तत्र लग्नपे। सबले दुर्बलेऽस्तेशे लग्ने क्रूरयुतेऽपि च॥ १॥ यायिनां जयदैर्योगैर्यद्वा मध्यगतैः खलैः। लग्नक्रूरान्तरांशोक्तकाले तत्कोटमाप्यते॥ २॥

## अथाऽऽत्मदुर्गपृच्छा।

आत्मदुर्गं परैः किं नु गृह्यते तत्र लग्नपे। सबले लग्नपे क्रूरे स्थायिनां बलमा (आ) गते॥ १॥ तदा दुर्गं न यात्येव द्यूने क्रूरग्रहो यदि। विबले लग्नपे यायिबले दुर्गं प्रयच्छति॥ २॥

---

१ क. किंतुगृ॰।

## अथान्यदुर्गभङ्गपृच्छा ।

दुर्गमन्यत्तथा चान्ये ग्राहकास्तत्र चाऽऽदिमम् । वचनं तत्स्वपक्षोऽत्र ज्ञात्वा पूर्वोक्तवद्वदेत् ॥ १ ॥

इत्यन्यदुर्गभङ्गपृच्छा ।

---

## अथ मन्त्रभेदपृच्छा ।

लग्नमध्यगतैः सौम्यैर्द्यूने षष्ठेऽथवा गृहे । भेदे विचिन्त्यमानेऽत्र शीघ्रं भेदः प्रसिध्यति ॥ १ ॥ शुभे लाभादियोगेऽपि भेदे सिद्धिरुदाहृता । तथा बलिनि लग्नेशे सप्तमे विबले ध्रुवम् ॥ २ ॥ भेदस्य शत्रुराशिर्यस्तेनासौ भिद्यते द्रुतम् । सखिवश्यादिराशिर्यस्तद्द्वारा भिद्यतेऽथवा ॥ ३ ॥

## अथ विवादः ।

विवादे मरणे युद्धे लग्ने पापो जयावहः । न सौम्यः सौम्यदृक् शस्ता पापा दृष्टिर्न शोभना ॥ १ ॥ लग्ने क्रूरे जयी वादी प्रतिवादी तथाऽस्तगे । उभयत्रापि चेत्क्रूरो दीर्घरोषः प्रजायते ॥ २ ॥ बलवल्लग्ननाथेन द्यूनपो हन्यते रणे । बलवान्द्यूनपो हन्याल्लग्ननाथं सुनिश्चितम् ॥ ३ ॥ लग्नं द्यूनं मुक्त्वा परस्परं क्रूरयोः सकलदृष्टौ । वादान्ते वादियुगं छुरिकाभ्यां प्रहरति तदैव ॥ ४ ॥ विवादे शत्रुसंघाते द्यूने युद्धे प्रमोपणे । पुरघातेऽभिचारे च ज्ञेयमेव जयादिकम् ॥ ५ ॥

## अथ सेवापृच्छा ।

स्वामिचित्तं शुभैर्दृष्टमपि लग्नपसप्तमौ । शुभस्वामीन्दुयुग्दृष्टौ शुभं व्यस्तेऽन्यथा भवेत् ॥ १ ॥ यदा पृष्ठोदये लग्ने द्यूने शीर्षोदयो भवेत् । सेव्यसेवकयोर्वैरं ब्रूयात्प्रीतिर्विपर्यये ॥ २ ॥ धननाशो धने पापे विभ्रमः सप्तमे तथा । मरणं मृत्युयोगे स्यात्सौम्ये संपत्सुखं महत् ॥ ३ ॥ सेव्यसेवकयोः प्रीतिः प्रश्ने युग्मतुलालिनि । लग्ने प्रीतिस्तयोर्वाच्या कन्यालग्ने च मध्यमा ॥ ४ ॥ द्वितीयद्यूनरन्ध्रेषु सौम्याः प्रीत्यर्थसौख्यदाः । पापा भवन्ति तेष्वेव सेव्यसेवकविघ्नदाः ॥ ५ ॥ यदा लग्नपतिर्लग्ने जायेशः सप्तमे यदि । तदा प्रीतिर्द्वयोर्वाच्या समानैव परस्परम् ॥ ६ ॥

## अथाऽऽश्रयः ।

भवति स आश्रयणीयः प्रश्ने धनसप्ताष्टमेषु चेत्पापाः । हिबुकेऽपि तस्य नाशं कुर्युः सौम्याः सुखं दद्युः ॥ १ ॥ एष स्वामी भव्योऽन्यो वा स्थानं यदि प्रश्ने । लग्नपतौ मकूले स्वामी भव्योऽस्तपे तथाऽन्येशः ॥ २ ॥ अन्येशो

भविता वा ममेति केन्द्रे यदा विलग्नेशः । षष्ठान्त्यपमुथशिलगस्तदाऽन्यनाथो न हि भर्तुः ॥ ३ ॥ केन्द्रस्थे लग्नपे क्रूरदृष्ट्या क्रूरनिरीक्षिते । षष्ठे वाऽन्यः पतिर्न स्याद्वक्री चेदपरं वदेत् ॥ ४ ॥

## अथ नृपदर्शनम् ।

नृपदर्शनं भवेन्नो पृच्छायां लग्नपस्य सवितुर्वा । गगने चरमुथशिलतो दशमस्थित्याऽर्थं दृष्ट्या वा ॥ १ ॥ दशमस्वामी लग्ने पश्यति लग्नाधिपं नृपाल्लाभः । राज्ञश्चित्तं कीदृक् तत्रापि विचिन्तयेदेवम् ॥ २ ॥ अमात्यस्नेहपृच्छायां योगो लग्नास्तनाथयोः । स्नेहदृष्ट्या दिशेत्प्रीतिं वैरं वैरदृशा पुनः ॥ ३ ॥

## अथ गौरवम् ।

नृपतेर्गौरवलाभो मे स्यादिति लग्नपापपत्योश्च । स्नेहदृशा शीघ्रं स्याद्रिपुदृष्ट्या बहुदिनैरेव ॥ १ ॥ आयेशे केन्द्रस्थे शशियुतदृष्टे च फलमस्ति । स्थिरराशौ परिपूर्णं चरेऽल्पमर्धं भवेन्मिश्रे ॥ २ ॥ मन्दे क्रूरोपहते भूत्वा चाऽऽशुमणाशमुपयाति । क्रूराच्छुद्धे सच्छुभेऽप्यधिकतरा प्राप्तिरेव स्यात् ॥ ३ ॥

## अथ पदलाभपृच्छा ।

स्वस्थावस्थे नभोनाथे तुङ्गादिस्थे शुभेक्षिते । धनकेन्द्रत्रिकोणस्थे राज्यादिपदलब्धयः ॥ १ ॥ लग्ननाथोऽभ्रनाथेन तुङ्गादिस्थेन वीक्षितः । करोत्येव पदप्राप्तिं लग्ने लग्नाधिपोऽथवा ॥ २ ॥ स्थिरोदये पदप्राप्तिः शुभस्वामियुतेक्षिते । इत्थमेव पदस्थाने सा स्वल्पा किं तु वृश्चिके ॥ ३ ॥ पदेशश्चेत्पदं पश्येत्पदं चैव स्थिरं भवेत् । मध्यपे सशुभे राज्यं राज्यभ्रंशः सपापके ॥ ४ ॥ सूर्येऽम्बरे गुरौ लग्ने चन्द्रे कामेऽथवा सुखे । न लभेत्सद्म एवार्थान्राज्यं खेऽर्के तनौ गुरौ ॥ ५ ॥ लग्ननाथनभोनाथौ चन्द्राद्वयोम्नि पदप्रदौ । राजयोगेषु सर्वेषु पदप्राप्तिस्तु निश्चितम् ॥ ६ ॥ येशादियोगत्रितये सुनफादित्रये तथा । पदप्राप्तिर्भवेच्छीर्षोदये लग्ने शुभान्विते ॥ ७ ॥ सप्तमे चाष्टमे शुक्रे पदलाभः स्वभावतः । शुभयुक्ते पदं भीत्या सपापे विग्रहादिभिः ॥ ८ ॥

## अथाधिकारः ।

पदस्थाने यदा चन्द्रः शुभो वा सरविर्भवेत् । पदेशो वा विलग्नेशो मुद्राप्राप्तिस्तदैव हि ॥ १ ॥ पदप्राप्तिकरैर्योगैर्मुद्राप्राप्तिः प्रजायते । सिंहोदयेऽर्कसंदृष्टे साम्राज्यं प्रच्छको वदेत् ॥ २ ॥

## अथ पदनिर्वाहपृच्छा ।

राज्यं स्थिरं चलं वा प्रश्ने तनुपखेशयोर्मुथशिलिनि । यदि मन्दः स्यात्केन्द्रे तत्स्थिरमन्यथा चलं भवति ॥ १ ॥ लग्नेशे निजनीचाधिपकृतमुथशिले स्वनीचधिया । राज्यभ्रंशः शेषैस्तद्दिशि देशं समुद्रसं कुरुते ॥ २ ॥ तुङ्गे सौम्योऽथवा पापो लग्ने धर्मे त्रिकोणगे । निर्वाहमाश्चिरादेश्या नीचे नष्टे खपे च्युतिः ॥ ३ ॥

## अथ स्थानप्राप्तिः ।

सबले दशमे सौम्ये सहजे वाऽपि केन्द्रगे । स्थानाप्तिर्व्योमकामस्थौ शुभौ वा धीविलग्नगौ ॥ १ ॥

## अथ धातुवादः ।

लग्नेशाज्जायते धातुः संभ्रमो धातुवादकृत् । चन्द्रार्कौ लाभकर्तारौ धनाप्तिसिद्धिस्तु तद्बलात् ॥ १ ॥ सौम्याः केन्द्रे च बलिनो लाभे वाऽपि समाश्रिताः । धातुवादी विजानाति धातुवादं च नान्यथा ॥ २ ॥ लग्ने पापः शुभः मोक्तः पापदृष्टिर्न शोभना । शुभदृष्टिः शुभा मोक्ता शुभयोगो न शोभनः ॥ ३ ॥ लग्ने रिष्फे रिपौ छिद्रे लग्नपः शुभदृग्विना । हानिं भ्रंशं बन्धनं च मृत्युं कुर्याद्यथाक्रमम् ॥ ४ ॥ अरिष्टाल्लाभतश्चौर्याद्यात्रायोगैर्वदेत्सुधीः । वादिनो मरणं लाभो धनहानिः पलायनम् ॥ ५ ॥

## अथ चौर्यपृच्छा ।

चौरागमनपृच्छायां लग्ने पापस्तु सिद्धिकृत् । न शुभा दृक् शुभो मूर्तौ न शुभः शुभदृक् शुभा ॥ १ ॥ मेषे वर्गोत्तमे लग्ने बुधयुक्ते विशेषतः । चौर्यसिद्धिर्भवेदत्र यदि वाऽऽरयुतेक्षिते ॥ २ ॥ रणचौर्यादिहननधातुवादादिकर्मसु । शुभपापसमायोगादसिद्धिः सिद्धिरुच्यते ॥ ३ ॥

## अथ सौख्यपृच्छा ।

यदा क्रूरग्रहो लग्ने नीचः शत्रुगृहे स्थितः । तदा तस्य शुभं वाच्यं ग्रहराश्यनुरूपतः ॥ १ ॥ भूतं द्वादशतश्चिन्त्यं वर्तमानं तु लग्नतः । भविष्यं तु धनस्थानात्सौम्यक्रूरयुतेक्षणात् ॥ २ ॥

## अथ भयपृच्छा ।

उत्पन्नभीतेर्भयचिन्ता विनाशो न वेति पृष्टे तनुपो विलग्नम् । पश्येत्तदा नैव

---

१ क. 'नवोधा' ।

भयं न पश्येद्भयं भवेत्क्रूरयुते विशेषात् ॥ १ ॥ भयमर्को लग्नगतः सौरो व्याधिं धरासुतो घातम् । मरणं वैफल्यं वा चन्द्रः कुरुते विलग्नस्थः ॥ २ ॥

## अथाग्निभयम् ।

सर्पाग्निशस्त्रवन्तं दृक्काणं वीक्षते रविर्बलवान् । भौमो वा मध्याह्ने ब्रूयाद्भयमग्निसंभूतम् ॥ १ ॥

## अथ नदीपूरणपृच्छा ।

राशीश्वरो द्वितीये दुश्चिक्ये वा शुभग्रहोपगते । भवतीह नदीपूरः सप्तविंशे दिने वाच्यम् ॥ १ ॥

## अथ कालवृष्टिपृच्छा ।

अम्बरगं शुभयुग्मं वृष्टयै भभवेद्विवाहादौ । लग्ने शुभत्रयस्य तु योगे महती भवेद्वृष्टिः ॥ १ ॥

## अथ स्त्रीविग्रहः ।

पीयूषांशौ पापयुक्तेक्षिते वा स्त्रीभिः सार्धं विग्रहः कीर्तनीयः । पापैर्यद्वा मन्मथस्थानयातैस्तैरेवाम्बुस्थानगैर्वा स वाच्यः ॥ १ ॥

## अथ धृताविवाहितापृच्छा ।

क्रूरिते च चतुर्थे स्यात्परिणीता नितम्बिनी । सप्तमे क्रूरिते च स्याद्धृतैव हि कुटुम्बिनी ॥ १ ॥ उभये सौम्यतां प्राप्ते द्वे स्तो धृतविवाहिते । उभये क्रूरतां प्राप्ते न धृता न विवाहिता ॥ २ ॥ लग्नलग्नेशचन्द्राश्च निर्दोषा स्त्री चरर्क्षगाः । अदृष्टपुरुषा साध्वी परभुक्ता चरर्क्षगाः ॥ ३ ॥

## अथ बन्धनपृच्छा ।

सौरे दृक्काणे वा भुजंगपरिवेष्टितेऽथवा लग्ने । शशिसौराभ्यां दृष्टे बन्धनमिति वाच्यमादेशे ॥ १ ॥ पापक्षेत्रेषु यमे त्रिकोणचतुरस्रसप्तमेषु गते । क्रूरैर्निरीक्ष्यमाणे बद्धोऽस्तीत्यादिशेत्क्षिप्रम् ॥ २ ॥

## अथ मृत्युयोगः ।

स्मरे व्यये धने क्रूरो लग्ने मृत्यौ रिपौ शशी । सद्योमृत्युकरो योगः क्रूरे वा चन्द्रपार्श्वगे ॥ १ ॥ लग्ने रवौ स्मरे चन्द्रे भवेद्योगोऽयमेव हि । एतेषु रोगिणो मृत्युः सद्यः स्यात्तस्य वा(ऽथवा)ऽऽपदः ॥२॥ लग्नपो मृत्युपश्चापि मृत्यौ स्याताशुभौ यदि । स्थितौ दृक्काण एकस्मिन्सदा मृत्युं ध्रुवं वदेत् ॥ ३ ॥ छिद्रलग्ने-

ग्वरौ छिद्रे सचन्द्रौ मृत्युकारकौ । सपापे रिपुभे मृत्यौ चन्द्रे मृत्युस्तथा खले ॥ ४ ॥ वर्गोत्तमगते मूर्ती मतीशे चन्द्रसंयुते । वित्ते भौमेऽथवा राहौ तद्दिने ह्यसितो वधः ॥ ५ ॥

## अथ मृत्युभङ्गः ।

उदिते लग्नपे वाऽपि च्छिद्रपेऽस्तमुपागते। मृत्युयोगेऽपि नो मृत्युर्वाच्यो मृत्युरतोऽन्यथा ॥ १ ॥

## अथ गतप्राप्तिपृच्छा ।

सप्तमस्थे यदा पापे बद्धा ह्यानीयते गतः । सौम्येऽस्तगे च न प्राप्तिः शुक्रे प्राप्तिस्तथा चिरात् ॥ १ ॥ लग्नपः केन्द्रनाथेन योगकृद्गतलब्धये । अस्तं गतोऽस्तपो लग्ननाथदृष्टस्तथाऽऽप्तये ॥ २ ॥

## अथ मृताप्तिपृच्छा ।

पापसंबन्धगे चन्द्रे लब्धिः सौम्ययुते न हि । स चेद्वक्री विनष्टो वा तदाऽसौ लभ्यते मृतः ॥ १ ॥

## अथ हृतनष्टविस्मृतिस्थापितवस्तुप्राप्तिपृच्छा ।

वस्तु मे वदति नेति पृच्छति द्यूनलग्नपतियोगतोऽर्पयेत् । एतयोर्यदि परस्तु संचरेदन्यहस्तवशतस्तदेप्याति ॥ १ ॥ लग्नपेऽस्तयुजि प्रच्छकस्तदा द्यूनपे तनुगतेऽर्थवान्परः । क्रूरसौम्यखगयोगतस्तयोः साध्वसाधुपरिकल्पना तयोः ॥ २ ॥

## अथ चोरो भवति न वेति पृच्छा ।

एप चोरो न वेति स्यात्प्रश्ने लोकश्रुतोरित्र । चन्द्रो मुथाशिलः क्रूरः सत्यं चोरोऽन्यथा न हि ॥ १ ॥ अनेनैव कदा चौर्यं कृतं नो वेति लग्नपः । इन्दुर्वा मुशरीफः[1] स्यात्कस्यचित्तेन तत्कृतम् ॥ २ ॥

## अथ कोऽयं नर इति पृच्छा ।

कोऽयं नरश्चेदिति पृच्छते तदा मध्ये स्वराशौ खचरः स तत्रजः । उच्चे महान्विश्रुत एवमन्यवर्गेऽन्यथा हीननरः पुमांश्च ॥ १ ॥

## अथास्य को देश इति पृच्छा ।

व्योम्नि स्थितोऽर्कतो यस्यां दिशि तद्विषयोद्भवः । न चेत्तत्र ग्रहो मध्यपतेः प्रागादिशं वदेत् ॥ १ ॥

---

१ क. 'र्वामूत्परी.फीरशा' । ख. र्वामुशरीफः स्या ।

## अथ मित्रप्रीतिपृच्छा।

मित्रेण सह प्रीतिर्भविता लग्नेश्वरायपत्योश्च। प्रियदृष्ट्या मुथशिलतः प्रीतिर्वाऽन्योन्यगृहयानात् ॥ १ ॥

## अथ कोऽश्वो विजयीति पृच्छा।

बह्वश्वानां मध्ये को विजयी लग्नलाभगगनेषु। होरेश्वरे परे वा तद्वर्णात्तज्जयो वाच्यः ॥१॥ अस्याभावे होरालग्नपतिभ्यां ततश्चिन्त्यम्। चन्द्रस्तद्राश्यधिपवशाच्च जातिं वदेत्प्रष्टुः ॥ २॥

## अथ मेलकः।

शून्यनाथः स्थितः केन्द्रे तस्मिन्ग्रामे मिलिष्यति। अन्यग्रामे पणफरे न मेलः स्यादपोक्लिमे ॥ १ ॥

## अथ वस्तुग्रहणम्।

गृह्णाम्यहमिदं वस्तु सति प्रश्ने त्वमूदृशि। बलशालि विलग्नं चेद्गृह्यते तत्क्रयाणकम् ॥ १ ॥ तस्मात्क्रयाणकाल्लाभः प्रष्टुर्भवति निश्चितम्। विक्रेताऽऽयपतिः क्रेता लग्नेशस्तद्बलात्पुनः ॥ २ ॥

## अथ वस्तुविक्रयः।

विक्रीणाम्यमुकं वस्तु प्रश्न एवंविधे सति। आयस्थाने बलवति विक्रेतव्यं सुलाभकृत् ॥ १ ॥

## अथ क्रयविक्रयमध्ये कस्माल्लाभः।

बलवल्लग्नलग्नेशे गृह्यते वस्तु लाभकृत्। बलवल्लाभलाभेशे विक्रयो लाभकृन्मतः ॥ १ ॥ मूर्तिं पश्यति मूर्तीशे क्रेतव्यं विक्रयोऽन्यथा। बलहीने धनेशे तु समर्घं व्यत्ययेऽन्यथा ॥ २ ॥

## अथ वस्तुसंग्रहणाल्लाभोऽस्ति न वेति पृच्छा।

वस्तुसंग्रहणं कुर्याल्लाभयोगे महत्यपि। गुरुस्तद्वस्तुतो लाभो भविष्यत्यन्यथा न हि ॥ १ ॥

## अथ कृतसंग्रहस्य वस्तुनः कदा विक्रयः।

संपूर्णो लाभयोगश्चेत्प्रश्नकाले यदा तदा। शीघ्रं तद्विक्रयं कुर्यादन्यथा वस्तु रक्षयेत् ॥ १ ॥

## अथ वर्षेऽस्मिन्कथं स्यात् ।

समर्घं वा महर्घं वा वर्षेऽस्मिन्कि भविष्यति । तनुद्वये तदधिपे पुष्टापुष्टे समं वदेत् ॥ १ ॥ लग्ने लग्नेश्वरे पुष्टे विक्रयः क्रियते तदा । द्यूने द्यूनेश्वरे धान्यसंग्रहो शुभये द्वयम् ॥ २ ॥

## अथ साटिः ।

द्यूनलग्नपती मित्रे मित्रसाटिरिहेष्यते । वैरभावे तयोः साटिर्वैरित्वं कपटेन च ॥ १ ॥

## अथानयोः कः सत्यः ।

विक्रेता सत्यवादी स्यात्सौम्यलग्ने तथा धने । क्रेता सत्य इनेन्दू चेच्छुभदृष्टौ सुशोभनौ ॥ १ ॥

## अथ दिनचर्या ।

सबले लाभलाभेशे महर्घं स्यात्क्रयाणकम् । अबले लाभलाभेशे समर्घं मिश्रके समम् ॥ १ ॥

## अथ धान्यनिष्पत्तिः ।

प्रश्ने धान्यस्य निष्पत्तौ चतुर्थे सद्ग्रहा यदि । केन्द्रे वा धान्यनिष्पत्तिः पापैर्धान्यक्षतिर्भवेत् ॥ १ ॥

## अथ सुभिक्षपृच्छा ।

स्वस्वामिशुभयुक्तेषु दृष्टेषु च चतुर्ष्वपि । केन्द्रेषु च सुभिक्षं स्याद्दुर्भिक्षं क्रूरखेचरैः ॥ १ ॥ यत्केन्द्रं विबलं तत्र दुर्भिक्षं तद्दिशि ध्रुवम् । महर्घं क्रूरमध्यस्थं मिश्रं मिश्रैर्युतेक्षितम् ॥ २ ॥

## अथ दुर्भिक्षम् ।

केन्द्रस्थौ राहुमन्दौ चेच्चतुर्थे वा विशेषतः । शुष्कलग्ने तदा वाच्यं दुर्भिक्षं निश्चयादिति ॥ १ ॥

## अथ वृष्टिपृच्छा ।

कुम्भकर्कटगोमीनमकरालितुलाधराः । सजला राशयः प्रोक्ता निर्जलाः शेषराशयः ॥ १ ॥ रविभौमार्कजाः शुष्काः सजलौ चन्द्रभार्गवौ । बुधवाचस्पती ज्ञेयौ सजलौ जलराशिगौ ॥ २ ॥ सौम्या जलराशिस्थास्तृतीयधनकेन्द्रगाः सिते पक्षे । चन्द्रे वा लग्नगते जलराशिस्थे वदेद्वृष्टिम् ॥ ३ ॥ जललग्नेऽम्बुखेटैश्च

युक्ते भौमयुते तथा । विद्युद्गर्जनसंयुक्ता वृष्टिः सौरयुतेऽपि च ॥ ४ ॥ लग्ने चरे शुभे द्विस्थे जलं मासात्स्थिरे पुनः । चतुर्विंशद्दिनैर्द्व्यङ्गे दिनैः षट्त्रिंशता भवेत् ॥ ५ ॥ चरलग्ने खगाः सर्वे तदा सार्धदिनाज्जलम् । शुष्के शुष्कग्रहैर्युक्ते नाम्भो मिश्रग्रहैश्चिरात् ॥ ६ ॥ लग्ने सुखे द्युने व्योम्नि शुभस्वामियुतेक्षिते । आषाढादिषु मासेषु वृष्टिः स्यादन्यथा न हि ॥ ७ ॥ सजलो विजलेनाऽऽढ्यः पूर्वमम्भोऽन्यथोपरि । विजलः सजलेनाऽऽढ्यो नाम्भः पूर्वे परं बहु ॥ ८ ॥ मातृष्यब्जः सितादस्ते शुभदृष्टोऽम्बुकृत्तदा । शनैस्त्रिकोणगो वाऽपि सोमो जलकरो भवेत् ॥ ९ ॥ जलार्थपृच्छासमये राम्यां प्राच्यामथापि वा । सुस्वरं कुरुते काकः सुवृष्टिर्जायते तदा ॥ १० ॥ आर्द्रद्रव्यं पूर्णकुम्भं तोयार्द्राङ्गं च प्रच्छकम् । तोयासन्नं तोयशब्दं श्रुत्वा दृष्ट्वा जलं वदेत् ॥ ११ ॥

## अथ कूपपृच्छा ।

लग्ने सुखेऽम्बुखेटश्चेत्ससौम्योऽम्भस्तदा बहु । पापैः शुष्कर्क्षगैर्नाम्बु कूपवाप्यादिके स्फुटम् ॥ १ ॥ सुखे वाऽब्जसितौ तोयं सुस्वादु निकटं वदेत् । लग्नाम्बुस्थितखेटेषु बलिनः स्वादु चाऽऽदिशेत् ॥ २ ॥ तथाऽर्कतो नरैरष्टवेदाशाङ्काद्रिपक्षभिः । कुनेत्रैर्जलमन्यत्र करैरम्बु विधोः शिरः ॥ ३ ॥

## अथ नौका ।

मृत्युर्धरणकं नौश्च फलेन सदृशं त्रयम् । म्रियते येन योगेन तेन योगेन मुच्यते ॥१॥ क्षेमेण नौः समायाति मृत्युयोगे समागते । आमयावी च म्रियते बद्धः शीघ्रेण मुच्यते ॥ २ ॥ नेक्षते लग्नपो लग्नं मृत्युपो नेक्षते मृतिम् । यानपात्रस्य वक्तव्यं निश्चितं मज्जनं तदा ॥ ३ ॥ तावुभौ सप्तमे चेद्वा तदा तज्जलगामि च । पापाः सुखाष्टमेऽङ्गेशोऽस्तं गते नौपतेर्मृतिः ॥ ४ ॥ लग्नेशचन्द्रनाथं च चन्द्रं वा मृत्युपो यदि । पश्येत्क्रूरदृशा नावा समं नश्यति नौपतिः ॥ ५ ॥ मार्गाद्व्यावृत्य नौरेति लग्नपे तद्भवेऽसृजौ । रन्ध्रे सौम्ये तरी सार्थो समेतीन्दौ चरे द्रुतम् ॥ ६ ॥ मिथो रिपुदृशेक्षितौ लग्नेशशशिराशिपौ । तत्रान्योन्यविरोधेन व्यवहारो विनश्यति ॥ ७ ॥

## अथ रोगपृच्छा ।

शुभग्रहाः सौम्यनिरीक्षिताः स्युर्विलग्नसप्ताष्टमपञ्चमस्थाः । त्रिषड्दशाये च निशाकरः स्याच्छुभं वदेद्रोगनिपीडितानाम् ॥ १ ॥ स्थिरलग्ने यदा जीवः शुभो

१ ष "त्युयोगेक्षत"।

वा केन्द्रकोणगः । रोगप्रश्ने वदेत्स्वस्थं व्यस्तं दृष्टोदये खलैः ॥ २ ॥ चरलग्ने चतुर्थे वा चन्द्रः षष्ठाष्टमेऽम्बरे । कुजे स्याद्रोगिणो मृत्युः पापैर्लग्नाष्टसप्तमे ॥ ३॥ लग्नात्षष्ठाष्टमे चन्द्रे रिपुदृष्ट्या खलेक्षिते । युक्ते वा स्यान्मृतिस्तस्मिन्सौम्यदृष्टिविवर्जिते ॥ ४ ॥ लग्नाधिपे बलयुते विबले मृतीशे तौ चेत्तनौ भवत एव सुखी तदा स्यात् । यदा मृतीशस्तनुभागमेति तदाऽऽतुरो याति यमालयं हि ॥ ५ ॥ लग्ने छिद्रे शशी पापो द्वितीये सप्तमे व्यये । सद्योमृत्युकरो योगश्चन्द्रो वा क्रूरमध्यगः ॥ ६ ॥ लग्नं वैद्यो द्युनं रोगो मध्यं रोगी खमौषधम् । तद्बलाद्बलमादेश्यं सौम्यैः क्रूरैर्युतेऽन्यथा ॥ ७ ॥

## अथ रोगनाशकयोगः ।

मान्द्यात्प्रवर्तते मान्द्यं क्रूरे सप्तमसंस्थिते । सप्तमे त्वथवा सौम्ये स रोगी नौषधं भिषक् ॥ १ ॥ वैद्यौषध्योर्बलाधिक्ये बलत्वे रोगरोगिणोः। रोगी जीवति निर्विघ्नं विपरीते विपर्ययः ॥ २ ॥ वैद्यस्य रोगिणो मैत्रं मैत्रमौषधरोगयोः । व्याधेरुपशमो वाच्यः प्रकोपस्तद्विपर्यये ॥ ३ ॥ लग्नस्वामिबलत्वे च केन्द्रसौम्यग्रहेऽपि वा । उच्चस्थे च त्रिकोणे च रोगी जीवति मानवः ॥ ४ ॥ रोगप्रश्ने क्रूरो लग्ने रोगोऽधिको वैद्यात् । तत्रैव यदि शुभः स्याद्भूरिगुणं भवति वैद्योक्तम् ॥ ५ ॥ दशमे क्रूरो यदिचेद्रोगो वर्धेत भेषजैस्तत्र । तत्रैव शुभः स्वीयैर्भैषज्यै रोगनाशकरः ॥ ६ ॥

## अथ स्वस्थो रोगी वा ।

नीरुजः सरुजो वेति चन्द्रो वा लग्नपो रिपौ । षष्ठेशसहितो वाऽपि रोगयुक्तो न चान्यथा ॥ १ ॥ षष्ठे चरे स्थितो रोगी संचरन्गृहमध्यतः । उपविष्टः स्थिरे द्व्यङ्गे सुप्तो दुःखी सुखी गृहे ॥ २ ॥

## अथ क्व मृत्युः ।

छिद्रे चरे स्थिरे द्व्यङ्गे परे स्वे पथि च व्यसुः । शुभे वाऽर्के चरे रन्ध्रे तीर्थे वा केन्द्रगैः शुभैः ॥ १ ॥

## अथ मुक्तिर्भविष्यति न वा ।

शुक्रेन्दू पितृलोकेशौ शनिज्ञौ नरकाधिपौ । तिर्यग्लोकस्य सूर्यारौ स्वर्गस्याधिपतिर्गुरुः ॥ १ ॥ केन्द्रारिमृत्युगो जीवः स्वोच्चस्थो वा स्वराशिगः । पृच्छायां मृत्युकाले वा तस्य मोक्षो मृतस्य हि ॥ २ ॥ पृच्छायां सप्तमस्थश्चेद्ग्रहो वा मृतिशानुगः । बलवान्यादि तल्लोकं मृतो जन्तुरवाप्नुयात् ॥ ३ ॥

## अथ कस्माल्लोकादागतोऽयम् ।

रवीन्द्वोर्बलवान्यस्य दृकाणे तस्य लोकतः। आगतोऽस्तीति वक्तव्यं प्रश्नलग्नाच्च जन्मतः ॥ १ ॥

## अथ रोगज्ञानम् ।

रोगप्रश्नेऽष्टमस्थाने ग्रहयोगाद्रुजं वदेत् । चन्द्रशुक्रावतीसारं वातं शनिभुजंगमौ ॥ १ ॥ भौमार्कौ रुधिरोद्रेकं शुक्रभौमौ बलक्षयम् । सक्रूरेज्ये त्रिदोषः स्यात्सग्रहार्कौ तु चित्ररुक् ॥ २ ॥ राह्वर्कौ कुष्ठरोगश्च कम्पः पापयुते शनौ । रक्तपित्तं तु सूर्येन्दू श्लेष्माजीर्णकरो बुधः ॥ ३ ॥ संनिपातकरो जीवः सेन्दुः पापद्वयं गतः । अस्तंगते कुजे छिद्रे ब्रूयाल्लिङ्गादिदूषणम् ॥ ४ ॥ स्त्रीनिमित्तं कृते प्रश्ने वाच्यं तयोर्निदूषणम् । कुजार्कौ सप्तमे पापं कुजे मान्द्यं बुधे भ्रमम् ॥५॥ शिरोव्याधिं गुरौ शुक्रे कफं वायुं शनित्रिके । रन्ध्रेऽर्कार्यैर्युते दृष्टे व्याधिं तद्धातुतो वदेत् ॥ ६ ॥

## अथ दोषपृच्छा ।

छिद्रे व्यये रवौ दोषो यक्षिणीक्षेत्रपालजः । जलमातृभवश्चन्द्रे डाकिनीजः कुजे तथा ॥ १ ॥ बुधे भौतो गुरौ पैत्रः खेचरासुरजः सिते । कुलदेवीकृतो मन्दे राहौ प्रेतकृतस्तथा ॥ २ ॥ छिद्रे क्रूरग्रहैर्युक्ते कर्मणः स्त्रीनरोद्भवात् । शुभपापयुते दोषः स्त्रीणामेवान्यथा नृणाम् ॥ ३ ॥ विबलग्रहजो दोषः साध्योऽसाध्योऽन्यथा मतः । ज्ञेयोऽत्र कर्मजो दोषो रन्ध्रेऽन्त्ये च बलोज्झिते ॥ ४ ॥ स्वीयसंबन्धभावोत्थं शेषभावोत्थतः परम् । यदि स्यात्पैतृको दोषस्तदा तन्मृत्युरुच्यते ॥ ५ ॥ मृत्युपे शनिसंयुक्ते मातङ्गैस्तु हतो नरः । धर्माधिपोऽथ धर्मे वा गुरुस्तीर्थपथे मृतिः ॥ ६ ॥ क्रूरेऽष्टमेऽभिचाराच्च सूर्यात्सर्पाम्बुशस्त्रतः । अग्निना कण्ठपाशेन पशुशृङ्गिनिपातादिभिः ॥७॥ शल्यज्ञानं तु वास्तुप्रकरणे लिखितमस्ति ।

## अथ निधिपृच्छा ।

सुखस्थाने यदा चन्द्रः सौम्यो वा बलसंयुतः । निधीशो वाऽपि लग्नेशो निधिरस्ति सुखप्रदः ॥ १ ॥ जीवेन्दू केन्द्रगौ स्यातां सुखे वा जीवभार्गवौ । निधिरस्ति भवेल्लाभः कृते यत्नेऽत्र वत्सरे ॥ २ ॥ चन्द्रज्ञगुरुशुक्राणामेकोऽपि यदि वेश्मगः । स्वीयं वा परकीयं वा सदसद्बलवन्निधिम् ॥ ३ ॥ यद्येते चेत्स्थिरा रन्ध्रे लभ्यते पैतृकं धनम् । यावत्संख्यासु खे खेटास्तावत्संख्या निधेर्भवेत् ॥ ४ ॥ यथा भूमिगतं द्रव्यं परहस्तगतं तथा । तद्वदेव परिज्ञेयं

विस्मृतं पैतृकं धनम् ॥५॥ धनं भूमिमध्येऽस्ति नो वेति पृष्टे विलग्ने शुभे सौम्यदृष्टेऽस्ति तस्मिन् । यदि क्रूरदृष्टे खनित्वा तु नीतं बहु स्वल्पमस्तीति वाच्यं हि तस्मात् ॥ ६ ॥ निधीशोऽभ्यन्तरे राशौ गृहमध्ये निधिः स्थितः । बाह्यराशौ वहिःष्ठः स्याज्ज्ञेयो वा फणिचक्रतः ॥ ७ ॥ अग्नौ लग्ने चोरबाधा भूतैर्बाधा शनौ व्यये । राजबाधा पापलग्ने स्वस्थयोः शनिभौमयोः ॥ ८ ॥ रव्यारावष्टमे लोष्टं तुषाद्यं वा व्यये शनौ । राहौ वा विवले मन्दे लग्नगेऽङ्गारकान्वदेत् ॥९॥ केन्द्रकोणेषु पापेषु रिक्तकुम्भस्य दर्शनम् । स्वोच्चे शशिनि केन्द्रस्थे सौम्ये वा प्रतिमासु च ॥ १० ॥ अथाहिवलयं वक्ष्ये स्फुटज्ञानकरं निधेः । तत्रैवौदयिकौ कार्यौ चरौ तात्कालिकौ ततः ॥ ११ ॥ गतर्क्षाब्धिहतिर्यातघटीतिथ्यंशसंयुता । द्विघ्ना त्र्याप्ता लवादिन्दुः षड्गुणोऽष्टघटीयुतः ॥ १२ ॥ चन्द्रवत्साधयेत्सूर्यं चन्द्रभे यदिचेदुभौ । निधिरस्ति तदा सत्यं क्रूरेऽब्जे च न लभ्यते ॥ १३ ॥ सूर्यभे चेत्तदा शल्यं वदेत्तौ चेत्स्वधिष्ण्यगौ । निधिः शल्ययुतोऽस्तीति व्यस्तगौ शून्यमादिशेत् ॥ १४ ॥ सशुक्रेऽब्जे निधिमाप्तिः पूर्णे पूर्णो निधिर्विधौ । यत्रेन्दुः स्यान्निधिस्तत्र क्षीणे चन्द्रेऽल्पकं धनम् ॥ १५ ॥ स्वर्णं रौप्यं च ताम्रं च रत्नं कांस्यायसी त्रपु । नागं चन्द्राद्वदेत्खद्वाखगादिग्रहैः क्रमात् ॥ १६ ॥ हेमराजतताम्रारपाषाणं मृन्मयायसम् । सूर्यादिग्रहगे चन्द्रे द्रव्यभाण्डं विनिर्दिशेत् ॥ १७ ॥ अश्विन्यादित्रये काष्ठं लोहमार्द्रादिपञ्चके । ताम्रमाप्यचतुष्के स्यादस्थि पौष्णाजपादयोः ॥ १८ ॥ भुक्तराश्यंशमानेन भूमानं काम्बिकैः (कथितं) करैः । नीचे निम्नं परेऽम्बुस्थमूर्ध्वस्थे तुङ्गगे विधौ ॥ १९ ॥ दस्राद्यं पञ्च रौद्रात्पूर्वापाढाचतुष्टयम् । पौष्णाजपादभे चन्द्रः शेषेषु स्याद्रविः प्रभुः ॥२०॥ सहस्रलक्षकोट्यादि गुणयेद्ग्रहसंख्यया । दायवत्साधयेत्संख्यां राशिमानेन वा धिया ॥ २१ ॥

## अथ मृगया ।

बलहीने द्युने पापैर्युद्धयोगैर्जयान्वितैः । पापैरिष्टकरैर्योगैः सिद्धिः स्यान्मृगयादिके ॥ १ ॥ तस्मिन्नहनि यो वारास्तिथियुक्तो विरूपकः । वर्गितो दलितो भाप्तः शेषं वध्यमितिर्भवेत् ॥ २ ॥ द्यूनलग्नपयोर्योगे सिद्धिः सौम्येऽत्र लग्नपे । पापे द्यूनेश्वरे ज्ञारौ पापक्षीशेऽन्यथा न हि ॥ ३ ॥ क्रूरयोगैरनिष्टैश्च मृगयासिद्धिरिष्यते । द्यूने क्रूरैर्बलभ्रष्टैर्युद्धयोगैर्बलप्रदः ॥ ४ ॥ दर्शविष्टिव्यतीपातक्रूरपञ्चाङ्गिके तिथौ । कथिता मृगयासिद्धिः क्रूरयोगैः परैरपि ॥ ५ ॥ भौमज्ञौ मृगयाधीशौ तन्वीशौ मृगयान्गुतिः । शुभे लग्नपतौ सिद्धिः क्रूरे द्यूनपतौ सति ॥६॥

पापाद्धि जलजासिद्धिर्जलक्षेत्रे जलग्रहैः । लग्नास्तभावगैर्योगैर्बहुवृष्टिफलप्रदैः ॥ ७ ॥ क्रूराक्रान्तानि यावन्ति मध्ये भानीन्दुलग्नयोः । तावन्तः प्राणिनो वध्या द्वित्रिघ्नाः स्वांशचक्रयोः ॥ ८ ॥

## अथ बन्धमोक्षौ ।

सौरे दृकाणे वा भुजंगपरिवेष्टितेऽथवा लग्ने । शशिसौराभ्यां दृष्टे बन्धनमस्तीति सप्तमाष्टगते ॥ १ ॥ द्यूने लग्ने भवेत्पापस्तदा बद्धो भवेन्नरः । लग्नाष्टमगतः पापस्तदा मारित एव सः ॥ २ ॥ द्यूने लग्ने भवेत्क्रूरश्छिद्रे लग्नेऽथवा भवेत् । मुच्यते पुरुषो बद्धो मूर्तौ पापः शुभागमः ॥ ३ ॥ निधनारिष्टयोगैश्च क्षिप्रं बद्धो विमुच्यते । चतुर्थे धनपो दीर्घं बन्धनं कुरुते दृढम् ॥ ४ ॥ लग्ने सप्ताष्टमे क्रूरास्तदा बद्धोऽपि मुच्यते । द्वितीये बन्धनं पापे व्ययगे मरणं भवेत् ॥ ५ ॥ मुक्तिप्रश्ने यदा केन्द्रे केन्द्रेशाः स्युर्न मोक्षदाः । तस्मिन्वर्षेऽथ लग्नेशे व्यये बद्धः पलत्यसौ ( लायते ) ॥ ६ ॥ लग्नेशेऽस्तमितेऽम्बुस्थे कुजदृष्टे भवेन्मृतिः । गुप्त्यां मृतिर्विधौ केन्द्रे मन्दयुक्ते निरीक्षिते ॥ ७ ॥ दीर्घपीडा च भौमेन युग्दृष्टे बन्धताडने । त्रिधर्मेशे व्यये लग्नस्वामियोगात्पलायनम् ॥ ८ ॥ मेषे घटे च शीघ्रं स्यात्कर्के नक्रे सुकष्टतः । स्थिरे चिराद्विधौ लग्ने द्व्यङ्के मोक्षोऽस्य योगतः ॥ ९ ॥ यावच्छुक्रो बली लग्ने तावच्चोरो बलाधिकः । अस्तं गते तनौ शुक्रे बन्धमोक्षादिसंशयः ॥ १० ॥ चरोदये शुभे शीघ्रं मोक्षयोगैस्तु लाभदैः । स्थिरे मोक्षो विलम्बेन बन्धः शुक्रे स्थिरे स्थिरः ॥ ११ ॥ अचिरेण चरे मन्दे दीर्घकालेन तु स्थिरे । मध्यमेन द्विमूर्तिस्थो मोचयेद्बन्धनं स्थिरम् ॥ १२ ॥

## *अथ लिखितपृच्छा ।*

पूर्णः शुभैर्युतश्चन्द्रो वीक्षितो वा शुभा लिपिः । क्षीणः पापयुतो वाऽपि चन्द्रे वार्ता त्वशोभना ॥ १ ॥ प्राप्तो न वा पृच्छति लेखवाहकस्तदा विलग्नाधिपतिः शशी वा । अस्तेऽथवा तत्पतिना सुयोगे प्राप्तस्तथैकर्क्षगतौ युतिः स्यात् ॥ २ ॥ सक्रूरज्ञयुते चन्द्रे ससौरे वाऽमृते लिपिः । शुभा सेज्ये कलिः सारे नृपाज्ञाऽर्कार्द्रगोः भियम् ॥ ३ ॥ लेखोत्तरं ग्राहकादेष्यतीति प्रश्नेऽस्तपान्मूसरिफः शशी स्यात् । लग्नाधिपो वाऽपि च तौ तु केन्द्राद्द्वितीयगो वा पथि वर्तते सः ॥ ४ ॥ शशिलग्नेशयोर्योगे ये मध्यांशास्तु तत्समैः । क्षणवासरमासा-

---

१ घ. संशयः । २ घ. °भसेज्ये° । ३ घ. नृपमार्का° ।

ब्दैर्युक्तया तस्याऽऽगमं वदेत् ॥ ५ ॥ बुधाब्जयोः खेशयोगात्करे लेखश्चटी- ( खः पति ) ष्यति । नान्यथा केन्द्रगे चन्द्रे स्थिरभेऽन्यादरं वदेत् ॥ ६ ॥ सौम्यैर्योगं बुधः प्राप्य शुभा वार्ताऽन्यथा खलैः । तस्मिन्मूर्त्यादिभावस्थे वार्ता तदनुयायिनाम् ॥ ७ ॥

## अथ वार्तापृच्छा ।

चन्द्रो लग्नपति-र्वाऽपि यदि केन्द्रे शुभान्वितः । किंवदन्ती तदा सत्या स्यादसत्या विपर्यये ॥ १ ॥ शुभा शुभान्विते सत्या तथा दुष्टा खलान्विते । लग्ने तदीश्वरे शुक्रे स्यात्सत्याऽग्रे जनश्रुतिः ॥ २ ॥

## अथ हन्तुं गमनम् ।

रिपुं हन्तुं गमिष्येऽद्य लग्ने क्रूरयुते जयः । लग्नेन्दू स्वेशदृष्टौ वा जयः प्रभुर्न चान्यथा ॥ १ ॥ स्वस्वामिना स्नेहदृशाऽवलोकितस्तदा रिपुर्निगृही- तोऽपि मुच्यते । चेत्क्रूरदृष्ट्या युधि नश्यतेऽसौ यद्येकभे तौ विधृतः पलायते ॥ २ ॥ मूर्तौ सुखे च चन्द्रे चरभस्थे चेत्पराभवः प्रभुः । सशुभेऽब्जे संतोषः सक्रूरे निःसृतो म्रियते ॥ ३ ॥

## अथाभिचारः ।

बलवल्लग्नपे सिद्धिरभिचारेऽस्य जायते । गुरौ लग्ने रवौ खस्थ इन्द्रजालं प्रसिध्यति ॥ १ ॥

## अथ योगसिद्धिः ।

लग्ने वा दशमे सूर्यो यद्वा सौम्यग्रहो भवेत् । योगसिद्धिस्तदा वाच्या प्रव्रज्यायोगतोऽथवा ॥ १ ॥

## अथ विद्याभ्यासः ।

सौम्यैः केन्द्रत्रिकोणायस्थितैः शीर्षोदयो भवेत् । विद्याप्तिरथ वेतालसिद्धि- र्योगैर्जयावहैः ॥ १ ॥

## अथ काव्यम् ।

लग्नेशचन्द्रपुत्रेशाः प्रबन्धे ज्ञानकाव्ययोः । कारणं तद्बलं प्रश्ने ज्ञात्वा तेभ्यः फलं वदेत् ॥ १ ॥

## अथ दीक्षा ।

एकराशिगताः खेटाश्चतुराद्या यदा तदा । बलवद्ग्रहजा दीक्षा नृणां वाच्याऽत्र युक्तितः ॥ १ ॥ सूर्यादिभिर्ग्रहैर्दृष्टः पददो दशमे गुरुः । पृच्छायां जन्मकाले वा धर्मे धर्मप्रदो भवेत् ॥ २ ॥

## अथ स्वप्नः ।

शुभयोगैः शुभः स्वप्नो दुःस्वप्नः पापयोगतः । अनिष्टारिष्टयोगैश्च स्वप्नो दुःखफलप्रदः ॥ १ ॥ शुभैः केन्द्रत्रिकोणस्थैर्विशुद्धे चाष्टमे सति । दुःस्वप्ना अपि शस्ताः स्युर्दुर्निमित्तानि च स्फुटम् ॥ २ ॥

## अथ भोजनम् ।

स्थिरे विलग्ने सकृदेव भोजनं द्विदेहके द्वीश्वरभे बहूनि । विलग्नतुर्यादिचतुष्टयस्थे लग्नस्य वीर्येण रसस्तु वाच्यः ॥ १ ॥ चन्द्रः स्वनाथदृष्टस्तदा शुभं नेक्षितस्तदा कष्टम् । चन्द्रो यस्य मुथशिलस्तस्य विशेषं वदेद्भुक्तौ ॥ २ ॥ लग्ने राहौ मन्दे रविदृष्टे भोजनाभावः । सूर्यादृष्टे सायं कदन्नमपि नीचगेऽरिगृहे ॥ ३ ॥ पृच्छायां यो बली भावो लग्नाद्यस्तस्य भावतः । स्वीयादिसदने वाच्यं भावि भूतं च भोजनम् ॥ ४ ॥ लाभे वेश्मनि लग्ने च शुभदृष्टे सुभोजनम् । जीवे लग्ने भृगौ वाऽपि स्वगृहेऽन्यगृहे धिया ॥ ५ ॥ चन्द्रे लग्ने सुखे वाऽपि क्षीराक्तं मधुरं शुभम् । कालहोराधिपो लग्ने स्वेच्छया शीघ्रभोजनम् ॥ ६ ॥ सूर्यात्तिक्तं चन्द्राल्लवणं भौमात्कटूष्णमांसयुतम् । बुधगुरुशुक्रैर्मधुरं क्रीडायुक्तं शनेः कदन्नं च ॥ ७ ॥ सबलः पश्यतां(ति) लग्नं करोति रससंग्रहम् । भोजने लग्नसंस्थानामथवा केन्द्रगामिणाम् ॥ ८ ॥ क्रूरैः सौम्यर्क्षगैः श्रेष्ठं विपरीतं स्ववेश्मनि । बलयुक्ते रवौ तीक्ष्णं क्षारं चन्द्रे शुभैः शुभम् ॥ ९ ॥ क्रूरैः क्रूरो रसो वाच्यो मिश्रैर्मिश्रं रसायनम् । मिश्रैर्मिश्रो रसो ज्ञेयः शत्रुभैर्विरसैर्युतम् ॥ १० ॥

## अथ भुक्तियानम् ।

प्रश्नेऽस्मिन्भुक्तियाने तु भौमो वाऽऽर्किः शशीयुतः । तदा भुक्तौ न गन्तव्यं ससौम्येऽब्जे तु गम्यताम् ॥ १ ॥

## अथ वाटिका ।

लाभो वाटिकयाऽनया मम भवेत्प्रश्ने विलग्ने शुभे तद्दृष्टाश्च सहायिनः खलखगे चौरस्तु वक्रेऽन्यगः । सौम्यैस्त्वष्टमगैः शुभं तु दशमे सौम्ये शुभे पादपाः

श्रेष्ठाः सत्फलदायिनः स्वपतिना दृष्टेऽन्यथा तद्विना ॥ १ ॥ स्वेशोदयाद्द्वयोर्लभ्यं द्रुमा नश्यन्ति खे कुजे । शुभेऽम्बुगे बहुफलास्तद्वद्देशात्फलं वदेत् ॥ २॥

## अथार्घपृच्छा ।

सबले दुर्बले लग्ने स्यात्समर्घं महर्घकम् । दिनार्धे शुभदृष्टेऽब्जे महर्घं व्यत्ययेऽन्यथा ॥ १ ॥ तिलकोद्रवकङ्गूणां चणकश्यामवस्तुपु । शनिः स्वामी रसेष्विन्दुः स्नेहगन्धाम्भसां रविः ॥ २ ॥ शुक्रस्तु पूर्वसस्यानां त्रिदलानां प्रभुर्बुधः । यवसर्षपगोधूमशालीक्षूणां प्रभुर्गुरुः ॥ ३ ॥ अरुणानां प्रभुर्भौमस्ततो यस्यास्ति संक्रमः । तद्ग्रं सबलांशोऽपि तत्तद्वस्तु समर्घकम् ॥ ४ ॥ पूर्वात्रिवारे तुर्यर्क्षे समर्घं सूर्यसंक्रमात् । पूर्वात्रितयपश्चर्क्षे तुर्यवारे महर्घकम् ॥ ५ ॥ मासर्क्षात्पूर्णिमा हीना समा वा यदि वाऽधिका । समर्घं च समत्वं च महर्घं च विनिर्दिशेत् ॥ ६ ॥

## अथ देशभङ्गपृच्छा ।

यदि केन्द्रगताः क्रूरास्तदा सर्वत्र विद्रुतम् । सौम्याश्चेत्सर्वतः क्षेमं विशेषः कूर्मचक्रतः ॥ १ ॥ लग्नाद्यस्यां दिशि क्रूरो मन्दो राहुर्यतोऽथवा । तत्र दुर्भिक्षतो भङ्गो रव्याराब्जैः परागमात् ॥ २ ॥ सस्वामिभाद्गृहे ग्रामे स्वर्क्षाद्देशे नृपर्क्षतः । मध्यादिक्षु शनिर्यत्र तत्र दुर्भिक्षविद्वरे ( देत् )॥ ३ ॥

## अथाऽऽयुष्पृच्छा ।

आयुष्प्रश्ने मृत्युयोगे प्रष्टुर्मृत्युं समादिशेत् । तद्भङ्गे सति कष्टं स्याज्जातकोक्तं च कल्पयेत् ॥ १ ॥ उद्गतकलासमूहं परमायुस्ताडितं समुद्धृत्य । मण्डलकलाभिराप्तो वर्षादिरिहाऽऽयुषः कालः ॥ २ ॥ शङ्खाब्जकाकपालोर्वीछत्रध्वजादिकं विधोः । स्वर्णलोहितधात्वादि क्षितिसूनोरुदाहृतम् ॥ ३ ॥ वैकृतं तु गुरुहारकामान्तं चन्द्रजस्य तु । पीतं धातुमणिजातप्रमुखं कथितं गुरोः ॥ ४ ॥ वैदूर्यस्फटिकाम्भोजरजताद्यं विदुर्भृगोः । सीसाञ्जनेन्द्रनीलाख्यं पूर्ववत्कथितं शनेः ॥ ५ ॥ राहोरपि शनिप्रोक्तं यस्य राहुरधिष्ठितः । देशकालाकृतिद्रव्यजातिवर्णमुखग्रहैः । युक्त्या विचार्य वक्तव्यं पौनःपुन्येन हौरिकैः ॥ ६ ॥

---

१ क. विद्रवम् । २ ख. °त ॥ २ ॥ रुण्डेऽग्निभा°। ग. त ॥ २ ॥ सण्डेऽपिभाद्गृहेग्रामे°।
३ क. विड्व° ।

## अथ नष्टजन्म ।

लग्नत्रिकोणराशीनां जन्मराशिर्बलाधिकः । शीर्षादि संस्पृशन्प्रष्टा पृच्छेत्तद्राशिमादिशेत् ॥ १ ॥ गुरुर्लग्ने पितोत्पन्नो राहुकेतू तु शात्रवः । शनिर्लग्ने पूर्वमित्रं तन्मृत्युः शस्त्रतः पुरा ॥ २ ॥ बुधे तोयात्कुजे त्वाजौ मृत्युः शुक्रेरितः पितुः ॥ ३ ॥

## अथ दुर्दिने लग्नज्ञानम् ।

रमंशुर्बुगुशंचन्द्रा वर्गेशाः मश्नवर्णतः । लग्नं तत्र ग्रहादीनामोजे चौजं समे समम् ॥ १ ॥ तल्लग्नाद्ग्रहयोगेश्च पूर्वोक्तैः फलमादिशेत् । प्रच्छकोच्चारिताङ्केभ्यो लग्नांशास्तत्र कल्पयेत् ॥ २ ॥

## अथ चिन्तामुष्टिकज्ञानम् ।

कुजार्कौ धातुसंज्ञौ तु मूलसंज्ञौ शशीनजौ । जीवाख्यौ जीवशुक्रौ च योनिर्यस्यांशके बुधः ॥ १ ॥ यल्लग्नं यस्य खेटस्य तस्मादारभ्य यावति । योनिग्रहो भवेत्तस्मात्ततो योनिविनिर्णयः ॥ २ ॥ लग्नोदितनवांशे वा चन्द्रे वाऽप्येवमेव हि । केन्द्रगैर्वा ग्रहैर्योनिर्लूका मुष्टिश्च कथ्यते ॥ ३ ॥ चन्द्रार्कौ मृत्युलोकेशौ ज्ञेज्यौ स्वर्गाधिपौ मतौ । स्मृताः पाताललोकेशाः सौरारभृगुराहवः ॥ ४ ॥

## अथ फलकालनिर्णयः ।

लग्नेशो वीक्षते लग्नं कार्येशः कार्यमीक्षते । कार्यसिद्धिर्भवेदिन्दुः कार्यमेति तदा स्फुटम् ॥ १ ॥ लग्नेशो वीक्षते कार्यं कार्येशो लग्नमीक्षते । तदा कार्यस्य संसिद्धिरिन्दुर्लग्नं यदेति च ॥ २ ॥ कार्यकार्येशमध्यांशास्तान्मितैर्वर्षमासकैः । दिनैर्दण्डैर्यथायोग्यं योज्याः कार्यस्य सिद्धये ॥३॥ अयनक्षणदिवसर्तुमासः पक्षः समाश्चेतो ज्ञेयः । *लग्ननवांशपतुल्यः कालो लग्नोदितांशसमसंख्यः ॥ ४ ॥*

इति शूरमहाठश्रीशिवराजविनिर्मिते ।

ज्योतिर्निबन्धसर्वस्वे मश्नाध्यायः समीरितः ॥

---

## अथ स्वरशास्त्रसारम् ।

### तत्राऽऽदौ स्वरशास्त्रप्रशंसा ।

विलोक्य स्वरशास्त्राणि शिवोक्तानागमानपि । स्वानुभूत्याऽत्र तत्सारं ब्रुवे

---

१ क. 'ड्डुसच' ।

भूपालवल्लभे ॥ १ ॥ त्रिस्तनी गौर्यथा निन्द्या त्रिपदं यद्वदासनम् । विप्रहीना यथा वर्णास्त्रयः स्कन्धाः स्वरैर्विना ॥ २ ॥ चतुरङ्गेण सैन्येन यत्कार्यं नैव सिध्यति । तत्साधयति दैवज्ञो हेलयैव नृपेप्सितम् ॥ ३ ॥ जयचर्यायां— पत्त्यश्वरथभूपालैः संपूर्णा यदि वाहिनी । तथाऽपि भङ्गमायाति नृपो हीनः स्वरोदये ॥ ४ ॥ पुण्यैरपि न योद्धव्यं यावद्धीनः स्वरोदये । स्वरोदयबले प्राप्ते योद्धव्यं शस्त्रकोटिभिः ॥ ५ ॥ जयार्णवे—यस्यैकोऽपि गृहे नास्ति स्वरशास्त्रस्य पारगः । रम्भास्तम्भोपमं राज्यं निश्चितं तस्य भूपतेः ॥ ६ ॥ जयचर्यायां—स्वरशास्त्रे कृताभ्यासः सत्यवादी जितेन्द्रियः । तस्याऽऽदेशस्य यः कर्ता जयश्रीस्तं नृपं भजेत् ॥ ७ ॥ विजयभैरवे—ग्रहज्ञः शकुनज्ञश्च स्वरज्ञो मन्त्रपारगः । केरलज्ञस्तथा प्रोक्तं भूभृतां रत्नपञ्चकम् ॥ ८ ॥ भूपालवल्लभे—सर्वत एवाऽऽत्मानं गोपाये[दि]ति श्रुतिः प्राह । तद्रक्षणं विनं[वै]तच्छास्त्रं स्यात्कथं सुकरम् ॥ ९ ॥ मानवीये धर्मशास्त्रे—प्रजानां रक्षणं राज्ञां परमो धर्म इष्यते । दुष्टांश्च निर्जित्य कथं स संभवितुमर्हति ॥ १० ॥ भूपालवल्लभे—सप्ताङ्गानां नृपो मूलं सर्वधमार्थपालकः । अतः संरक्षिते राज्ञि तत्सर्वं रक्षितं भवेत् ॥ ११ ॥ पुराणसारे—ये वर्णाश्च स्वधर्मेषु निरतास्तान्नृपस्तु यः । पालयेत्तं च यो रक्षेद्युद्धे राज्ञः फलं भवेत् ॥१२॥ नीतिशास्त्रे—निषिद्धाऽपि क्षितीशाज्ञा पालनीया द्विजैरपि । न दूषणं भवेत्तेषां विष्ण्वंशो भूपतिर्यतः ॥ १३ ॥ भूपालवल्लभे—यत्किंचिदुच्यते पुण्ये शास्त्रेऽस्मिन्नाभिचारिकम् । तत्पापमपि नो पापं येन धर्मोऽभिरक्ष्यते ॥ १४ ॥ आज्ञासिद्धमिदं शास्त्रं भवान्यै शम्भुनोदितम् । न देयं पापलुब्धाय देयं स्वाचारवर्तिने ॥ १५ ॥ उपरोधाद्भयाल्लोभाद्यो ददाति दुरात्मने । स याति नरकं घोरं शिवाज्ञेति सनातनी ॥ १६ ॥ जयार्णवे—स्वरचक्राणि चक्राणि भूबलानि बलानि च । एतैरङ्गैः क्रमाच्छत्रुं दुर्बलं वीक्ष्य घातयेत् ॥ १७ ॥ बलादिस्वरचक्राणि भद्रादीनि पराणि च । भूबलानि प्रसिद्धानि घातादीनि बलानि च ॥ १८ ॥ जयार्णवे—अभङ्गे चाप्यभेदे च स्थानसैन्याधिके रिपौ । दुःसाध्ये दुर्जये कार्यं मन्त्रयन्त्रादिकं बलम् ॥ १९ ॥

इति स्वरशास्त्रप्रशंसा ।

---

१ क. °दि मेदिनी । २ क. °स्य कोविदः । ३ क. °देशं च यः कुर्याज्जयी° ।

## अथ स्वरोदयः ।

लाभालाभौ सुखं दुःखं जीवितं मरणं तथा । जयः पराजयश्चेति सर्वं ज्ञेयं स्वरोदये ॥ १ ॥ शत्रुपराभवे—अकछडधभवा नन्दातिथित्रये भानुभौमयोः क्षेत्रे । उदिता अन्त्यात्सप्तर्क्षे क्रियगोयुग्मांशपट्के स्युः ॥ २ ॥ इखजैढनमशा भद्रात्रितये बुधचन्द्रयोः क्षेत्रे । आदित्यर्क्षात्पञ्चसु मिथुनान्त्ये कर्कटे सिंहे ॥ ३ ॥ उगंझतपयषा जयात्रितये गुरुगृहे भवन्त्युदिताः । अर्यमधिष्ण्यात्पञ्चसु कन्यायां तुलिनि वृश्चिकत्रिलवे ॥ ४ ॥ एघटथफरसा वर्णा रिक्तात्रितये गृहे भृगोरुदिताः । मैत्रात्पञ्चसु वृश्चिकशेषे चापे मृगस्य लवषट्के ॥ ५ ॥ ओचैठदवलहवर्णाः पूर्णातिथित्रये गृहेऽर्कतनयस्य । उदिताः श्रुतिपञ्चके मृगशेषे कुम्भभे च झषे ॥ ६ ॥ भूपालवल्लभे—द्वादशाब्दादिनाड्यन्ताः स्वस्थानेषु स्वकालतः । * उदयन्ति स्वभोगेन तथैकादशधा स्वराः ॥ ७ ॥ कूर्मयामले—प्राच्यादिदिक्षु मध्ये च नन्दादितिथिषु क्रमात् । आदयो ह्युदयन्त्यस्मात्पञ्चम्यामस्तगामिनः ॥ ८ ॥ तिथिभुक्तघटीसंख्या षष्टिघ्नी भगुणोद्धृता ३२७ । लब्धं पञ्चहृतं शेषं स्वरस्तत्कालजो भवेत् ॥ ९ ॥ शत्रुपराभवे—उदितस्वरस्य नाम्नः पञ्चावस्थाः क्रमात्स्वातिथिभोगात् । बालकुमारप्रौढस्थविरास्तमिताश्च विज्ञेयाः ॥ १० ॥ रुद्रयामले—स्वनामाद्यक्षरं यत्र कोष्ठे तस्मादनुक्रमात् । बालस्वरः कुमारश्च तरुणः स्थविरो मृतः ॥ ११ ॥ किंचिल्लाभकरो बालः कुमारस्त्वर्धलाभदः । युवा सर्वार्थदः प्रोक्तो वृद्धे हानिर्मृते क्षयः ॥ १२ ॥ जयचर्यायां—युद्धे वादे च यात्रायां नष्टे दृष्टे रुजान्विते । बालस्वरो भवेद्दुष्टो विवाहादौ भवेच्छुभः ॥ १३ ॥ सर्वेषु शुभकार्येषु यात्राकाले विशेषतः । कुमारः कुरुते वृद्धिं सङ्ग्रामे सक्षतो जयः ॥ १४ ॥ शुभाशुभेषु कार्येषु मन्त्रयन्त्रादिसाधने । सर्वसिद्धिं युवा दत्ते याने युद्धे विशेषतः ॥ १५ ॥ दाने देवार्चने दीक्षाविधौ मन्त्रप्रकल्पने । वृद्धस्वरो भवेद्भव्यो रणे भङ्गे भयं गमे ॥ १६ ॥ विवाहादि शुभं सर्वं सङ्ग्रामाद्यशुभं तथा । न कर्तव्यं नरैः किंचिज्जाते मृत्युस्वरोदये ॥ १७ ॥ भूपालवल्लभे—यो यस्य पञ्चमस्थाने स स्वरो मरणप्रदः । तृतीये सर्वसिद्धिः स्याच्छेषे मध्यफलोदयः ॥ १८ ॥ मृत्युर्हीनस्वरे नाम्नि जयो नाम्नि स्वराधिके । समनाम्नि भवेत्साम्यं

---

* जयचर्यायां 'उदयान्त्यस्त°' ।

---

१ प. °जउठ° । २ ख. ष. °गऊत° । ३ ख. °के ॥ ५ ॥ आचकवल° । ४ प. °चठवल । ५ क. °श्चहं । ६ ख. °मेशहृतो° । ७ प. °ह्नोद्धृये । ८ क. ध. त्युर्हीने° ।

संधिर्जयपराजयौ ॥ १९ ॥ रुद्रयामले—शत्रोर्मृत्युस्वरे प्राप्ते यूनि प्राप्ते स्वकीयके । तत्काले कुर्वतां युद्धं विजयो जायते ध्रुवम् ॥ २० ॥ वर्णस्वरबले सर्वं कर्तव्यं च शुभाशुभम् । सिद्धिदं सर्वकार्येषु युद्धकाले विशेषतः ॥ २१ ॥ जयार्णवे—तिथिर्वारश्च नक्षत्रं पूर्ववद्यत्प्रसाधनम् । वर्णस्वरो भवेद्यत्र तत्तस्याधःस्थितं कुरु ॥ २२ ॥ जयचर्यायां—यस्य नामादिमो वर्णस्तिथिवारर्क्षसंयुतः । तद्दिनं वर्जयेत्तस्य हानिमृत्युकरं यतः ॥ २३ ॥

इति स्वरोदयः।

---

## अथ तत्कालस्वरचिन्ता।

ब्रह्मयामले — * प्रच्छकस्तादिदं पश्यन्स्थित्वा वा तत्र पृच्छति । हानिर्मृत्युर्भयं भङ्गो जायते नात्र संशयः ॥ १ ॥ तिथ्यादावुदयं याति तिथिस्वराद्घटीस्वरः । बालस्वरादिकं प्रश्ने फलं तस्य वदाम्यहम् ॥ २ ॥ बालोदये यदा पृच्छा लाभार्थे स्वल्पदा भवेत् । रुजार्ते चिररोगः स्याद्रणे हानिः क्षयो रणे ॥ ३ ॥ कुमारोदयवेलायां लाभो भवति पुष्कलः । रुजो नाशो जयो युद्धे यात्रा सर्वत्र सिद्धिदा ॥ ४ ॥ युवोदये लभेद्राज्यं क्लेशच्छेदश्च तत्क्षणात् । सङ्ग्रामे भङ्गमायाति यात्रायां न निवर्तते॥५॥ मृतोदये तु मृत्युः स्यात्सङ्ग्रामादौ विशेषतः । ओजस्वरा नरा नार्यो युग्माः स्वोदयतः फलम् ॥ ६ ॥ गर्भार्थे पुंस्वरे पुत्रः कन्या कन्यास्वरोदये । युग्मे युग्मं क्षयो नष्टे मातुर्मृत्युश्च संक्रमे ॥ ७ ॥ रुद्रयामले एकपक्षाक्षरे चैकः स्वरश्चेद्योधयोर्द्वयोः । ह्रस्वो गौरो जयी शुक्ले कृष्णो दीर्घो जयी परे ॥ ८ ॥ + एकस्वरोदये यायी स्थायी यूनि कुमारके । सङ्ग्रामादौ जयी बालो बालवृद्धान्तिमस्वरे ॥ ९ ॥ नरपतिजयचर्यायां— ×पञ्चाणेडः (ओ) स्वराः(रा) [ स्ते ] कचडतपभवसुखेष्वङग-व्यञ्जनेषु स्युर्नन्दाद्येस्तिथेस्ते तिथिकपिलवतोऽप्यन्तरा भोगभाजः। नाम्नो बालः कुमारो युवसजरमृताः स्वादिवर्णस्वराच्चे सिद्ध्युत्कर्षो युवान्तोपचय इतरयोर्युध्यतां द्विण्मृतानि ॥ १० ॥ बालकुमारयोर्मध्यमं ज्ञेयम् ।

---

* पृच्छाभिः पृच्छकः स्यात्तु स्वरस्य स्तम्भितादिशम् । इतिजयचर्या° । + योधयोः सर्वभेदे ज्येस्वरेयूनिकुमारको । यायीजयीतथास्थायी बालवृद्धान्तिमस्वरे । इतिजयचर्यायाम् । × श्लोकोऽयं कपुस्तक एव नान्यत्र । मुद्रितजयचर्यापुस्तके तु नेदृंपद्यम् ।

### वर्णस्वरचक्रम् ।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| अ | इ | उ | ए | ओ |
| क | ख | ग | घ | च |
| छ | ज | झ | ट | ठ |
| ड | ढ | त | थ | द |
| ध | न | प | फ | ब |
| भ | म | य | र | ल |
| व | श | ष | स | ह |
| बा | कु | यु | वृ | मृ |

### राशिस्वरचक्रम् ।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| मे.९ | मि. ३ | क: ९ | वृ. ६ | म. ३ |
| वृ.९ | क. ९ | तु. ९ | ध. ९ | कुं. ९ |
| मि.६ | सिं. ९ | वृ. ३ | म. ६ | मी.९ |
| अ | इ | उ | ए | ओ |
| बा. | कु. | यु. | वृ. | मृ. |

### नक्षत्रस्वरचक्रम् ।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| अ. | इ. | उ. | ए. | ओ. |
| रे. | पु. | उ. | अनु. | श्र. |
| अ. | पु. | ह. | ज्ये. | ध. |
| भ. | आ. | चि. | मू. | श. |
| कृ. रो. | म. | स्वा. | पू. | पू. |
| मृ. आ. | पू. | वि. | उ. | उ. |

### मासस्वरचक्रम् ।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| अ. | इ. | उ. | ए. | ओ. |
| भा. | आश्वि. | चै. | ज्ये. | माघ |
| मार्ग. | श्रा. | पौ. | का. | फा |
| वै. | आषा. | ० | ० | ० |
| २ | २ | २ | २ | २ |
| ४३ | ४२ | ४३ | ४३ | ४३ |
| ३८ | ३८ | ३८ | ३८ | ३८ |

### द्वादशवार्षिकस्वरचक्रम् ।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| अ. | इ. | उ. | ए. | ओ. |
| प्र. | प्र. | ख. | शो. | रा. |
| १२ | १२ | १२ | १२ | १२ |
| व. १ | १ | १ | १ | १ |
| मा. १ | १ | १ | १ | १ |
| दि. २ | २ | २ | २ | २ |
| घ.४३ | ४३ | ४३ | ४३ | ४३ |
| प.३८ | ३८ | ३८ | ३८ | ३८ |
| बा. | कु. | यु. | वृ. | मृ. |

### ऋतुस्वरचक्रम् ।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| अ. | ई. | उ. | ए. | ओ. |
| व. | ग्री. | वपो. | श. | हेमन्त |
| | ४८ | ३६ | २४ | १२ |
| ग्री | वर्षा. | श. | हेमं. | शिशिर |
| १२ | २४ | ३६ | ४८ | |
| बा. | कु | यु. | वृ. | मृ. |

### वारस्वरचक्रम् ।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| अ | इ | उ | ए | ओ |
| र. मं. | चं. बु. | गु. | शु. | श. |
| मे. सि. | मि. क. | ध. | वृष | म. |
| वृ. | कर्क | मी. | तुल | कुं. |

### दिक्स्वरचक्रम् ।

| | | |
|---|---|---|
| श्री. | पू. अ. नन्दा १।६।११ | श्री. |
| उ. ए रिक्ता ४।९।१४ | म. ओ. पूर्णा ५।१०।१५ | द. इ. भद्रा २।७।१२ |
| श्री. | प. उ जया ३।८।१३ | श्री. |

*

| | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| अ | इ | उ | ए | ओ | अ | इ | उ | ए | ओ | अ | इ | उ | ए | ओ |
| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० | ११ | | | | |
| ५ | १० | १६ | २१ | २७ | ३२ | ३८ | ४३ | ४९ | ५४ | ६० | | | | |
| २७ | ५४ | २१ | ४९ | १६ | ४३ | १० | ३८ | ५ | ३२ | ० | | | | |
| १६ | ३२ | ४८ | ५ | २१ | ३८ | ५४ | १० | २७ | ४३ | ० | | | | |

इति वर्णस्वरादिचक्रोद्धारः ।

---

## अथ राहुकालानलम् ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि ख्याता या ब्रह्मयामले । राहुकालानली यात्रा सद्यः-प्रत्ययकारिणी ॥ १ ॥ ग्रहयोगवशाद्यात्रा ज्योतिश्शास्त्रेषु भाषिता । सा यात्रा शुभकार्येषु फलं नैव तु संगरे ॥ २ ॥ जयचर्यायां–यस्य च्छायाप्रभावेण च्छाद्येते शशिभास्करौ । तस्य राहोः प्रभावं च वक्ष्येऽहं रणकर्मणि ॥ ३ ॥ केचिन्मूर्खा वदन्त्येवं ग्रहो राहुरकारणम् । यतो वर्षे दिने लग्नेऽप्याधिपत्यं न दृश्यते ॥ ४ ॥ वेदागमपुराणेषु ख्यातो राहुः खगेश्वरः । तस्य माहात्म्यमज्ञात्वा मिथ्या जल्पति मूढधीः ॥ ५ ॥ दुष्टरिष्टेषु सर्वेषु जातकादिषु गण्यते । सद्यः-प्रत्ययदो राहुर्जये स्यादेककारणम् ॥ ६ ॥ यत्र धिष्ण्ये स्थितो राहुर्मुखं तन्मृति-प्रदगम् । गुदं ततः पञ्चदशे जीवाङ्गे संस्थितं तु तत् ॥ ७ ॥ राहुभुक्तानि

---

* एतच्चक्रनामादिकं नोपलब्धं किंतु यथास्थानं तत्तत्स्थानीयं शोधकैः सूक्ष्मदर्शिभिर्यथावदवगन्तव्यम् ।

धिष्ण्यानि जीवपक्षे त्रयोदश । त्रयोदशैव धिष्ण्यानि मृतपक्षः प्रकीर्तितः ॥ ८ ॥ *जयार्णवे- जीवो ग्लावमृते हंसोऽथवा द्वौ जीवपक्षगौ । तदा यात्रा शुभा ज्ञेया वैपरीत्ये तु हानिदा ॥ ९ ॥ चन्द्रे वदनगे यायी नश्येत्स्थायी गुदस्थिते । जीवपक्षे जयी यायी मृत्युगे स्थायिनो जयः ॥ १० ॥ ब्रह्मयामले—जीवपक्षगते चन्द्रे कार्यं स्यादमृतोपमम् । मृतपक्षे मृतं ज्ञेयं यतश्चन्द्रबले बलम् ॥ ११ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे–नन्दषट्कं भूपषट्कं त्रिकमन्त्यं गमे न सत् । राहुभाच्छेषधिष्ण्यानि दशाङ्के नो शुभानि च ॥ १२ ॥ जयभैरवे–युद्धकाले यदा शीघ्रं यात्रायोगो न लभ्यते । उत्पाद्येते तदा शीघ्रं तत्कालेन्दुदिवाकरौ ॥ १३ ॥ जयचर्यायाम्–इष्टा नाड्यो हता धिष्ण्यैः षष्टिभागाप्तशेषके । अश्विन्यादीन्दुभुक्तेन युक्ते तत्कालचन्द्रमाः ॥ १४ ॥ यथा चन्द्रस्तथा सूर्यः कर्तव्यश्चेष्टकालिकः । यतोऽहोरात्रमध्ये तौ भ्रमन्तौ धिष्ण्यमण्डले ॥ १५ ॥

इति राहुकालानलम् ।

---

## अथ चन्द्रार्ककालानलम् ।

सिंहात्षट्कं रविक्षेत्रं चन्द्रक्षेत्रं घटादिकम् । चन्द्रक्षेत्रे चन्द्रसूर्यौ स्थायिनो जायते वधः ॥ १ ॥ स्वक्षेत्रगौ चन्द्रसूर्यौ संधिर्युद्धं विपर्यये । कर्तर्यां यदि चन्द्रार्कौ संहारः सैन्ययोर्द्वयोः ॥ २ ॥ चन्द्रसूर्यौ रविक्षेत्रे यातुर्भङ्गोऽन्यथा जयः । यात्रायां युद्धकाले च चान्द्रस्थौ स्थायिनां शुभम् ॥ ३ ॥

इति चन्द्रार्ककालानलम् ।

---

## अथ रिक्तपूर्णचक्रम् ।

भानुभाद्भानुसंक्रान्ते रिक्तः पूर्णो विधुः क्रमात् । चन्द्रे रिक्ते जयी पौरः पूर्णे यायी जयी मभे ॥ १ ॥

इति रिक्तपूर्णचक्रम् ।

---

## अथ कुलाकुलचक्रम् ।

जयचर्यायां—द्वितीया दशमी षष्ठी कुलाकुलाः प्रकीर्तिताः । विषमा अकुलाः सर्वाः शेषाश्च तिथयः कुलाः ॥ १ ॥ रविश्चन्द्रो गुरुर्मन्दश्चत्वारो ह्यकुला मताः । भौमशुक्रौ कुलाख्यौ च बुधवारः कुलाकुलः ॥ २ ॥ वारुणार्द्राभिजिन्मूलं कुला-

---

* जीवपक्षे कृपानाथे मृतपक्षे रवौ तथा । तस्मिन्काले शुभा यात्रा विपरीता तु हानिदा ॥ इति जयचर्यायाम् ।

कुलमुदीरितम् । कुलानि समधिष्ण्यानि शेषभान्यकुलानि च ॥ ३ ॥ तिथौ वारे च नक्षत्रे ह्यकुले यायिनो जयः । कुलाख्ये स्थायिनो नूनं संधिश्चैव कुलाकुले ॥ ४ ॥

| कुलाकुलम् | अकुलम् | कुलम् |
|---|---|---|
| २ १० ६ | १ ७ १३ ३ ९ ५ ११ १५ | ४ १२ ८ १४ |
| बु. | र. च. बृ. श. | मं. शु. |
| आ. अ. मू. श. | अ० कृ० मृ० पु० आ० पू० ह० स्वा० अ० उ० श्र० उ० | भ० रो० पु म० उ० चि० वि० ज्ये० पू० ध० पू०भा० रे० |

इति कुलाकुलचक्रम् ।

## अथ लोहज्ञानम् ।

दस्रादिसप्तकेऽरण्ये पुष्यात्सप्ते पुरान्तिके । चित्रादिसप्तके तोये क्षेत्रे वैश्वाचतुष्टये ॥ १ ॥ लोहं वर्षति मार्गेषु पूर्वा(र्वे)भाद्रपदात्रये । तिथिः पञ्चगुणा कार्या दिनभेन समन्विता ॥ २ ॥ त्रिभिर्भक्ता शेषमेकं जले लोहं विनिर्दिशेत् । द्वाभ्यां ग्रामे तथाऽऽकाशे शेषं शून्यं यदा भवेत् ॥ ३ ॥ ब्रह्मयामले—तिथिः पञ्चगुणा भाढ्या ऽयाप्ता रूपादिशेषके । लोहं जले स्थले व्योम्नि ब्रूयान्नष्टस्थितिस्तदा ॥ ४ ॥ तिथेः प्राग्घटिकाः पञ्चदशोर्ध्वं वीक्षते शिवा । दश वामे दिशो दक्षे दशधाऽग्रे तिथिः क्रमात् ॥ ५ ॥ सहदेवमते—ऊर्ध्वदक्तिथयः पादे दश वामभुजे दश । दक्षे च दश योगिन्यास्तिथिनाड्यस्तु संमुखम् ॥ ६ ॥ यत्रास्ति भैरवी दृष्टिस्तत्र लोहं प्रवर्षति । एतत्सर्वं प्रविज्ञाय तत्तत्स्थानं विवर्जयेत् ॥ ७ ॥ तिथिः पञ्चगुणा मासयुक्ता वसुभिरुद्धृता । शेषसंमितादिग्भागं गृह्णीयाद्ग्रामगेहयोः ॥ ८ ॥ तिथिर्द्विघ्ना भयुक् ऽयाप्ता शेषके चलनं न हि । द्वाभ्यामर्धपथं

१ क. °नि मासध° ।

यानं शत्रोः शून्यैर्न सत्वरम् ॥ ९ ॥ सूर्यभाद्दिनभे सप्तभक्तेऽप्येकादिलब्धितः । द्वयोर्युतिर्भवेन्मन्दा रौद्री वक्रा स्थिरा क्रमात् ॥ १० ॥ तिथिः पञ्चगुणा कार्या दिनभं तत्र विन्यसेत् । वह्निभिस्तु हरेद्भागं शेषे यात्रां विनिर्दिशेत् ॥ ११ ॥ एकेनार्धपथं यावद्द्वाभ्यां सीमावधेरतः । पूर्णेन पुरपर्यन्तं गमनं वाच्यते ध्रुवम् ॥ १२ ॥ वह्निभाद्दिनभं वह्निभिर्हृच्छू(हृतं शू)न्यादिशेषके । घातादनुविलम्बश्च लग्ने मार्गे इति क्रमात् ॥१३॥ भूपालवल्लभे—द्वितीयो दशमः षष्ठश्चतुर्थो द्वादशोऽष्टमः । राशयश्च तथा चन्द्रो युद्धे विजयदायकाः ॥ १४ ॥ एकादशे तृतीये वा चन्द्रे राशौ क्षतं विदुः । नवपञ्चमजन्मस्थः सप्तमो भङ्गदायकः ॥ १५ ॥ वारे शुक्रज्ञचन्द्राणां होरावेला तनौ जयी । अग्राह्या त्वथ जीवार्कभौमार्किणां च पश्चिमः ॥ १६ ॥ तिथिनक्षत्रवाराणामैक्यं वेदसमन्वितम् । अष्टभिस्तु हरेद्भागं खण्डः शेषदिशि स्मृतः ॥ १७ ॥

इति लोहज्ञानम् ।

## अथ कविचक्रम् ।

कविचक्रं प्रकर्तव्यं चतुरस्रं त्रिनाडिकम् । वह्निभात्त्रित्रिधिष्ण्यानि प्रवेशे रुद्रकोणतः ॥ १ ॥ निर्गमे त्रीणि धिष्ण्यानि कविचक्रमिदं भवेत् । सौम्याः प्रवेशभे चक्रात्तद्दिशि स्यात्प्रवेशनम् ॥ २ ॥ सौम्ये चक्रान्निर्गमर्क्षे तद्दिशो निर्गमः शुभः । निर्गमर्क्षस्थिते क्रूरे क्रूरखेटैर्बहिः स्थितैः । निशीथे वेष्टकान्सुप्तान्निहन्युः पौरवासिनः ॥ ३ ॥ जयचर्यायां—हीनसैन्यः सदा स्थायी यायी सैन्याधिकस्तथा । चतुरस्रं त्रिनाडीक * स्थानभादीशतो न्यसेत् ॥ ४ ॥ यदि नामोज्झिते स्थाने शत्रुसैन्यं व्यवस्थितम् । तत्र चक्रं समालेख्यं सेनाध्यक्षर्क्षपूर्वकम् ॥ ५ ॥ + क्रूरे शीघ्रे प्रवेशर्क्षे यत्र तत्र विशेद्रणम् । वक्रस्थे निर्गमे सौम्ये तद्दिशा निर्गमं कुरु ॥ ६ ॥ प्रवेशर्क्षे प्रवेशश्च निर्गमे निर्गमस्तथा । भूफलं पृष्ठतः कृत्वा प्रोक्तः कविरणे जयः ॥ ७ ॥ कृत्तिकादिरयं न्यासः प्रोक्तो बहुमतान्मया । केऽप्याहुः पुरभात्केचिद्दुर्गभाच्चार्कभात्परे ॥ ८ ॥

इति कविचक्रम् ।

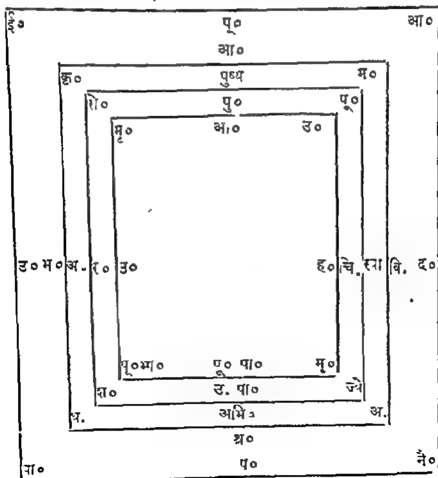
## अथ कोटचक्रम् ।

सूर्यचन्द्रभगर्भस्थे[२] स्थानाप्तिर्विजयो भवेत् । चन्द्रभात्स्थानभं गर्भे वेष्टनं

* जयचर्यायां—कविचक्रं लिखेद्भुवि । प्रवेशनिर्गमे भानि स्था० । + त्रीणित्रीणि प्रवेशे च ईशादौ विदिशि क्रमात् । निर्गमे च चतुष्कं च पूर्वाशादिक्रमेण च ॥ ईशादौ बाह्यतो मध्यं मध्याद्बाह्य तु पूर्वतः । प्रवेशो बाह्यतः कोणे मध्यादिषु विपर्ययः ॥ इति जयचर्यायाम् ।

१ घ. °न्द्राद्युद्देऽवीज° । २ घ. °र्यभाचन्द्रमा गर्भे स्था° ।

ग्रामदुर्गयोः ॥ १ ॥ स्थानभाच्छत्रुभं मध्ये शत्रुभङ्गः प्रजायते । चन्द्रभाच्छत्रु-भङ्गर्क्षे शत्रोर्भवति बन्धनम् ॥ २ ॥ ग्रामभात्कोटभात्स्वामिधिष्ण्याद्वा क्रूरखे-चराः । भङ्गं गर्भस्थिताः कुर्युः सौम्या गर्भे जयप्रदाः ॥ ३ ॥ भूपालवल्लभे— क्रूरा गर्भे पुरं घ्नन्ति प्राकारे खण्डिकारकाः । बहिष्ठा वेष्टके सैन्ये मृत्युदा नात्र संशयः ॥ ४ ॥ मध्ये क्रूरा बहिः सौम्या गृह्यते निश्चितं पुरम् । सौम्या मध्ये बहिः क्रूरा दुःसाध्यं दुर्गमुच्यते ॥ ५ ॥ प्राकारे संस्थिताः क्रूरा मध्ये सौम्या ग्रहा यदि । दुर्गभङ्गे समृत्पन्ने भङ्गमायान्ति वेष्टकाः ॥ ६ ॥ प्राकारे खेचराः सौम्या मध्ये क्रूरचतुष्टयम् । भेदाद्भङ्गो भवेत्तत्र विना युद्धेन गृह्यते ॥ ७ ॥ वक्रगाः पुरमध्यस्था यदि स्युः क्रूरखेचराः । पुरं मुक्त्वा पलायन्ते दुर्गस्था नात्र संशयः ॥ ८ ॥ दुर्गमध्ये गते सूर्ये जलशोषः प्रजायते । चन्द्रे भङ्गः कुजे दाहो बुधे बुद्धिः शुभाढ्यया ॥ ९ ॥ गुरौ सुभिक्षं सबलं बलं शुक्रे शनौ रुजः । राहौ भङ्गो भयं भेदः केतौ विषभयं प्रभोः ॥ १० ॥




इति कविचक्रम् । एतदेव कोटचक्रम् ।

## अथ लग्नबलम् ।

लग्नस्थितेन चन्द्रेण यात्रायां वैरिभिर्भवेत् । युद्धे भङ्गो विवाहे तु वैधव्यं जायते ध्रुवम् ॥ १ ॥ यत्र लग्नस्थितः सूर्यश्चन्द्रमा सिंहिकासुतः । केतुर्मन्दश्च भौमश्च तस्य मृत्युर्न संशयः ॥ २ ॥ ज्ञेन शुक्रेण जीवेन यदा युक्ता भवन्ति ते । तदाऽसौ सक्षतो जीवेद्रणे रोगे तु मूर्छितः ॥ ३ ॥ यथा दुष्टफलाः क्रूरास्तथा सौम्याः शुभप्रदाः । सर्वकालमिदं ज्ञेयं युद्धकाले विशेषतः ॥ ४ ॥ द्वौ यदा वैकनक्षत्रौ समानाक्षरनायकौ । ह्रस्वो गौरो जयी शुक्ले कृष्णे कृष्णोऽतिदीर्घकः ॥ ५ ॥

इति लग्नबलम् ।

---

## अथ कालबलम् ।

जयार्णवे-अवर्गाद्यष्टकं ज्ञेयं पूर्वाद्याशास्वनुक्रमात् । स्ववर्गात्पञ्चमस्थाने खण्डिभङ्गस्तु जायते ॥ १ ॥ दुर्गवर्गस्य ये भक्ष्यास्तावन्नामाक्षरा नराः । तद्दुर्गे ते रणे त्याज्या न कार्या दुर्गनायकाः ॥ २ ॥ ग्रहाश्चन्द्रेण ये यान्ति दिशस्त्यर्केण संगरे( रम्) । भूबलं पृष्ठतः कृत्वा स जयी स्यान्न संशयः ॥३॥ गरुडौतुहरिश्वाहिमूषकैणशशाः क्रमात् । वर्गेशास्तेऽर्कवाराद्यौ भङ्गमायान्ति संगरे ॥ ४ ॥ तिथिभोगादिके कार्या पृष्ठतो वाहनाभिधा । भभोगाधिकतस्तद्वत्पुरतो जयदा गमे ॥ ५ ॥

इति कालबलम् ।

---

## अथ वडवानली भूमिः ।

जयार्णवे-एकतः सर्ववीर्याणि भूबलं चैकतः स्मृतम् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन जयार्थी भूबलं श्रयेत् ॥ १ ॥ जयचर्यायां मासाख्या चतुरङ्गाख्ये दिनाख्या कविसंगरे । मासाख्या कोटसङ्ग्रामे सूक्ष्माख्या खलके रणे ॥ २ ॥ आदियामले-कल्पादावभवद्युद्धममरासुरयोर्महत् । तत्र भग्नाः सुराश्चोग्रं तपश्चक्रुर्जयार्थिनः ॥ ३ ॥ तेन शस्त्रास्त्रभृद्रुद्रो निर्गतो वडवानलात् । तद्बलं कथयामास देवेभ्यः शत्रुविच्छिदे ॥ ४ ॥ द्वित्रिवेदैः पृथग्युक्ता तिथिर्भक्ता गजैः क्रमात् । पात्रवृ(द)कार्तिके त्यक्ता राज्ञां भूर्वडवानली ॥५॥ इयं पृष्ठस्थिता यस्य जयश्रीस्तस्य संमुखी । भङ्गः पादाश्च घातश्च तन्मुखानां क्रमाद्रणे ॥ ६ ॥ रसाघाते दिशः पाते नखाः काले जिनाः पले । वर्तमाना तिथिर्योज्या गजाप्ता तद्दिशो मता ॥ ७ ॥ पल्याद्बली भवेत्कालः कालात्पातो बलान्वितः । पाताच्च बलवान्घा-

सस्तस्मात्तान्परिवर्जयेत् ॥ ८ ॥ घातः पातं ग्रसत्युग्रं पलः कालं निकृन्तति । घातकालस्थयोस्तस्माल्लोहपातात्त्वधःस्थिते ॥ ९ ॥

इति वडवानली भूमिः ।

तत्र मन्त्रः—पञ्चवक्त्रं दशभुजं त्रिनेत्रं शूलधारिणम् । जटाधरं वृषारूढं ध्यायेद्रुद्रं जयप्रदम् ॥ १ ॥ चैत्रात्संहारमार्गेण पूर्वादिदिक्चतुष्टये । दक्षे पृष्ठे जयो युद्धे जयो विष्णुविनिर्मिते ॥ २ ॥

## अथ क्षेत्रपाली ।

विलोमं पूर्वतो मासाश्चैत्राद्या दिक्चतुष्टये । महरा[ः]न्स(स)व्यमार्गेणमासस्थानादि गण्यते ॥१॥ चतुरङ्गे कवौ कोटे जयदा पृष्ठदक्षिणे । क्षेत्रपाली महाभूमिर्भूपालानां जयोत्कटा ॥ २ ॥

## अथ पक्षभूमिः ।

पूर्वोत्तरदिशोः शुक्ले कृष्णेऽन्तकजलाशये । जयदा पक्षभागेण गौरी काली क्रमेण च ॥ १ ॥

## अथ कालभूमिः ।

पूर्वाह्णे पावके कोणे पराह्णे वायुगोचरे । इयं गुह्याभिधा भूमिर्जयदा पृष्ठदक्षिणे ॥ १ ॥

## अथ बिम्बभूमिः ।

जयचर्यायां—पराह्णः पूर्वदिग्भागे ततः सव्येन मन्दगः । यत्र स्यात्तत्र कालः स्यात्पाशस्तस्य तु संमुखः ॥ १ ॥ दक्षिणस्थः शुभः कालः पाशो वामदिगाश्रितः । यात्रायां समरे श्रेष्ठस्ततोऽन्यत्र न शोभनः ॥ २ ॥ भूपालवल्लभे—पूर्वस्यां दिनपं कृत्वा पृष्ठे वारान्न्यसेत्क्रमात् । यत्र मन्दस्तत्र कालस्तन्मुखो भङ्गमाप्नुयात् ॥ ३ ॥ अज्ञातभूबलो योधः शीघ्रं सङ्ग्रामकर्मणि । जयमुद्रां समासाद्य युद्धं कुर्वञ्जयी भवेत् ॥ ४ ॥ जिह्वाग्रं विन्यसेत्तालौ पृष्ठे कृत्वा समीरणम् । वामाङ्गुष्ठं क्षिपेन्मुष्टौ जयमुद्राऽभिधीयते ॥ ५ ॥ दक्षपृष्ठे रवेर्बिम्बं जयदं समराङ्गणे । चन्द्रबिम्बं तथा रात्रौ पुरो वामे च शोभनम् ॥ ६ ॥

## अथ लग्नभूमिः ।

सूर्यराश्यादितः सव्ये लग्नं तत्कालसंभवम् । पृष्ठदक्षिणगं कृत्वा जयो युद्धे न संशयः ॥ १ ॥

## अथ राहुभूमिः ।

इन्द्रवायुयमे रुद्रे तोयाग्निशशिराक्षसे । यामार्धमुदितो राहुर्भ्रमत्येव दिगष्टके ॥ १ ॥ सर्वेषां भूबलानां च राहुभूः प्रबला स्मृता । तस्यां स्थितस्य विशेषेण चतुरङ्गे जयो भवेत् ॥ २ ॥ रविः सोमः कुजः सौम्यो गुरुः शुक्रः शनिस्तमः । ऐन्द्रादीशानपर्यन्तमर्धयामोदयाः क्रमात् ॥ ३ ॥ अर्धयामोदयः खेटः स्थाप्यः प्राच्यां ततः शनिः । यत्राऽऽस्ते तद्दिशि ज्ञेयं बुधैः कुलिकजं तमः ॥ ४ ॥ संमुखी वामसंस्था वा यस्यैषा राहुमण्डली । पराजयो भवेत्तस्य वादद्यूतरणादिषु ॥ ५ ॥

### कुलिकराहुचक्रम् ।

| | | |
|---|---|---|
| ई. रा. ३२ | पू. सू. ४ | आ. चं. ८ |
| उ. श. २८ | | मं. १२ द. |
| शु. २४ वा. | गु. २० प. | बु. १६ नै. |

इति राहुभूमिः ।

---

## अथ योगिनी ।

पूर्वआग्नेयनैऋत्यपश्चिमवायव्येशानदिक्षु भागादितः क्रमात् । योगिनी संमुखा त्याज्या सा तु यामार्धभुक्तितः ॥ १ ॥ भ्रमत्येषा तु भयदा दक्षपृष्ठस्थिता सदा । प्रागुत्तराग्निनैर्ऋत्ये यमतोयानिलेश्वरे । सूर्यादिषु च वारेषु पर्यटन्वारयोगिनी ॥ २ ॥

इति योगिनी ।

---

## अथ वारकालः ।

सन्ध्यर्कजीवभौमेषु मध्ये कालः प्रकीर्तितः । बाह्ये शुक्रेन्दुसौम्येषु वर्जनीयः सदा रणे ॥ १ ॥

## वारयोगिनीचक्रम् ।

| | | |
|---|---|---|
| ई<br>रा. | पू<br>सू. | आ.<br>मं. |
| उ. चं. | | गु. द. |
| श.<br>वा. | शु.<br>प. | बु.<br>नै. |

इति वारकालः ।

---

## अथ तिथिकालः ।

मध्यबाह्यक्रमाद्दिक्षु वामं प्रतिपदादिषु । वर्तमानतिथौ कालं वर्जयेदाश्रयद्वये ॥ १ ॥

## तिथियोगिनीचक्रम् ।

| | | |
|---|---|---|
| ई.<br>३०।८ | पू.<br>१।९ | आ.<br>३।११ |
| उ. २।१० | | ५।१३ द. |
| ७।१५<br>वा. | ६।१४<br>प. | ४।१२<br>नै. |

इति तिथिकालः ।

---

## अथ वायुभूमिः ।

दक्षपृष्ठस्थितो वायुर्जयदो भवति ध्रुवम् । वामाङ्गे भयदः प्रोक्तः सर्वयुद्धेषु सर्वदा ॥ १ ॥

इति वायुभूमिः ।

---

## अथ भूबलम् ।

युद्धार्णवे—युद्धकाले यदा चन्द्रः स्थायी जयति निश्चितम् । यदा सूर्यप्रवाहस्तु यायी विजयते ध्रुवम् ॥ १ ॥ पार्थिवे सक्षतं युद्धं संधिर्भवति वारुणे । विजयो वह्नितत्त्वेन वायौ भङ्गो मृतिस्तु खे ॥ २ ॥ पूर्णनाडीगतं पृष्ठे शून्यमङ्गं तदग्रतः । शून्यस्थानकृतः शत्रुर्म्रियते नात्र संशयः ॥ ३ ॥ पूर्वोत्तरदिशोश्चन्द्रो भानौ पश्चिमयाम्ययोः । स्थितस्तत्र जयी युद्धे स्थायी यायी क्रमेण च ॥ ४ ॥ एतेषां भूबलानां तु भूरिमेलापको बली । प्रागुक्तं यद्दिने सर्वं तद्यात्रां प्रकल्पयेत् ॥ ५ ॥

इति भूबलम् ।

---

## अथ घातचक्रम् ।

जयचर्यायां—नराकारं लिखेच्चक्रमष्टावयवसंयुतम् । येन विज्ञातमात्रेण ज्ञायते घातनिर्णयः ॥ १ ॥ मुखैकं मस्तके त्रीणि हस्ते पादे चतुश्चतुः । हृदि पञ्च त्रिकं कण्ठे साभिजिद्भानि विन्यसेत् ॥ २ ॥ कृत्वा योधप्रमादौ तु मुखे शिरसि वामयोः । हस्ताङ्घ्र्योर्हृदये दक्षकराङ्घ्र्योर्गणयेत्क्रमात् ॥ ३ ॥ यत्राङ्गे भानुभौमार्किराहवो धिष्ण्यसंस्थिताः । तत्र घातं विजानीयाच्चन्द्रयोगे विशेषतः ॥ ४ ॥ ग्रहभुक्तिप्रमाणेन नवांशकक्रमेण वा । प्रहरो जायते तत्र चक्रे त्रिगुणसंख्यया ॥ ५ ॥ निजमोच्चेऽर्धघातं च पादोनं मैत्रभे ग्रहे । उदासीने भवेत्सर्वं द्विगुणं शत्रुभे वदेत् ॥ ६ ॥ एकोऽप्यनेकघातांश्च करोति भूबलोज्झिते । भूबलस्थे भटे खेटाः स्थिता घातं न कुर्वते ॥ ७ ॥ क्रूराघातं न कुर्वन्ति पृष्ठदक्षिणगे रवौ । संमुखा वामगा ये ते योधाङ्गे घातकारकाः ॥ ८ ॥ दक्षिणाङ्गं गताः क्रूराः सौम्या वामाङ्गसंस्थिताः । शिरश्छेदेऽपि संजाते कबन्धं संमुखं व्रजेत् ॥ ९ ॥ यस्य वामाङ्गगाः क्रूराः सौम्यखेटास्तु दक्षिणे । स मृत्युं नूनमायाति यद्यपि स्यान्महाभटः ॥ १० ॥

## अथ द्वितीया घातवटी ।

भूपालवल्लभे—नामाधिष्ण्यं मुखे दद्याद्वे नेत्रे त्रीणि मूर्धनि । वेदा बाह्वोः पञ्च हृदि पृथक् चत्वारि पादयोः ॥ १ ॥ मुखं नेत्रं शिरो वामहस्तौ वामपदं च हृत् । याम्यहस्तस्तथा पादः क्रमाच्चत्रेन्दुयुक्खलाः ॥ २ ॥ तत्र घातो विनिर्देश्यो घाताद्घातस्तु केतुतः । यत्राङ्गे विबलाः सौम्यास्तत्र घातेऽपि जीवति ॥ ३ ॥ ऊर्ध्वदृष्टी कुजादित्यावधोदृष्टी तमःशनी । समदृष्टी जीवचन्द्रौ तिर्यग्दृष्टी ज्ञभार्गवौ ॥ ४ ॥ दृष्टिभावाद्भवेद्घातो भुक्तांशाङ्गुलसंमितः । भोग्यांशाङ्गुलविस्तारस्त्रिगुणो वक्रगाद्ग्रहात् ॥ ५ ॥ देहस्थं कुलनक्षत्रमकुलं बाह्यसंस्थितम् । देहस्थपापघातेन स्वल्पेनापि मृतिर्भवेत् ॥ ६ ॥

## अथ तृतीया घातवटी ।

विजयलतायां—नराकारचक्रे मुखे योधधिष्ण्यं न्यसेन्मस्तके त्रीणि चत्वारि वामे । करेऽङ्घ्रौ च पञ्चोदरे हृद्ययोर्द्वयं कण्ठके बाहुपादेऽष्ट सव्ये ॥ १ ॥ सपापेन्दुयुक्ते वदेद्घातमङ्गे सुधीः खेटभुक्तांशतुल्याङ्गुलं तु । भवेन्नैव घातो बलात्खेटभूमेर्भटस्य स्थितस्यापि वक्ष्येऽग्रतस्ताम् ॥ २ ॥ रुद्रयामले—रविनक्षत्रतः शीर्षे त्रयं चैकं मुखे स्थितम् । करयोः पादयोरष्टौ हृदये पञ्चकं ततः ॥३॥ त्रयं कण्ठे ततस्तत्र विन्यसेद्ग्रहसंहतिम् । यत्र चन्द्रस्तत्र घातः पादयुक्ते महान्भवेत् ॥ ४ ॥ उदितांशकतुल्या स्याद्घाते तत्राङ्गुलप्रमा । संपूर्णार्धाधिका भेदा इह ज्ञेयास्तु पूर्ववत् ॥ ५ ॥ सहदेवमते—गततिथ्याऽऽढ्ह लग्नैक्यं जन्मभाद्दिनभान्वितम् । नवाप्तं शेषसंख्यस्य घातं खेटस्य चाऽऽदिशेत् ॥ ६ ॥ शिरस्यार्किर्मुखे चन्द्रो वामकक्षासु भूमिजः । ज्ञो वामकुक्षौ पृष्ठे च बाह्वोर्घातपतिर्गुरुः ॥ ७ ॥ कट्योर्वा पादयोः शुक्रो दक्षकक्षासु वक्षसि । शनिर्नाभ्युदरे राहुर्मणिबन्धाग्रयोः शिखी ॥८॥ स्वरसारे—जन्मभात्सप्तगो भानुर्नेष्टो द्विर्द्वादशे कुजः । चतुर्थे दशमे मन्दस्त्रिकोणे गुः शिखी मृतौ ॥ ९ ॥ मुखशीर्षोदरे भानुर्भौमो हृत्स्तनाभिषु । राहुस्कन्धे च कक्षायां पृष्ठे वक्षसि मन्दगः ॥ १० ॥ केतुर्दण्डे त्रिधा हन्ति चन्द्राद्दाने विशेषतः । अथेन्दोः पापयुक्तस्य घातो वाच्योऽत्र जन्मतः ॥ ११ ॥ भाले भुजे हृदि क्रोडे पृष्ठे कट्यां करे ततः । वस्तौ पांगुल्फ्यिके संधौ गुदेऽङ्घ्रौ च क्रमेण तु ॥ १२ ॥

## घातचक्रम् ।

| १ | | २ | | ३ | |
|---|---|---|---|---|---|
| योधभात्- | | नामभात्- | | सूर्यभात्- | |
| मुखे १ | हृदये ५ | मुखे १ | वामपा० ४ | शिर० ३ | हृदये ५ |
| शिरसि २ | कण्ठे ३ | नेत्र० २ | हृदये ५ | मुखे १ | कण्ठे ३ |
| वामकरे ४ | द० क० ४ | शिर० ३ | द० क० ४ | वामक० ४ | द० क० ४ |
| वामच० ४ | द० च० ४ | वामह०४ | द० पा० ४ | वामपा० ४ | द०पा० ४ |

इति घातचक्रम् ।

---

## अथ जाग्रत्सुपुप्तचक्रम् ।

वसुबाणरसाम्भोधिसप्तचन्द्राग्निवाहवः । वर्णाङ्कैक्यं नगैर्भक्तं जयः शेषेऽधिको भवेत् ॥ १ ॥ दस्रादितुर्यतुर्यर्क्षे नन्दा पूर्णेन्दुभार्गवौ । एतत्त्रयसमायोगे बालयोगः प्रजायते ॥ २ ॥ याम्यादितुर्यतुर्यर्क्षे भद्राभौमार्कचन्द्रजाः । एतत्त्रयसमायोगे युवयोगः प्रजायते ॥ ३ ॥ कुमारे सुशुभं कार्यं शुभे कार्ये विधीयते । युवाख्ये तु विवादश्च द्यूतमद्यादिकर्म च ॥ ४ ॥ वृद्धयोगे प्रकुर्वीत ऋणरोगारिघातनम् । धूर्तोग्रदारुणं कर्म बाल्ये ग्रामप्रवेशनम् ॥ ५ ॥ न नष्टं दृश्यते वस्तु रोगग्रस्तो न जीवति । ऋणं न दीयते तस्य परद्रव्यं तु गृह्यते ॥ ६ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—वृद्धयोगे मृत्युयोगे पातोपग्रहविष्टिषु । उग्रकर्मास्तजन्मस्थे चन्द्रे तीक्ष्णोग्रामिश्रभे ॥ ७ ॥ भूपालवल्लभे—वह्निर्वामपदे पाणौ शीर्षे याम्यकरे पदे । वह्निरेकैकशः कुर्यात्सूताख्ये नृचतुष्टये ॥ ८ ॥ वह्निर्नास्ति पदे याति बन्धनं वामपाणिगे । शीर्षे मृत्युर्याम्यकरे युद्धं चन्द्रेऽरिभाद्भवेत् ॥ ९ ॥

इति जाग्रत्सुपुप्तचक्रम् ।

---

## अथ सेनाचक्रम् ।

[1]सेनाचक्रं प्रवक्ष्यामि यदुक्तं रुद्रयामले । तत्रैकं के पापयोगाद्भङ्गश्छत्रपताकयोः ॥ १ ॥ [2]कर्णे द्वे हेरचाराणां नेत्रे द्वे स्वरवेदिनाम् । एकं घ्राणे प्रभोर्भङ्गो जिह्वायां भूश्च मन्त्रिणाम् ॥ २ ॥ मान्त्रिकाणां रदेष्वब्धिः पृष्ठे वाद्यभूतां द्वयम् ।

---

१ क. ख. घ. 'त्रैरपादयोर्वीणा' । २ क. कर्णाग्रदेरचा' ख. कर्णाग्रि:रचापानाने' ।

स्कन्धयोर्द्वे मतङ्गानां रथानां भुजयोर्द्वयम् ॥ ३ ॥ धन्विनामङ्गुलीषु द्विर्वाहिनां हृदये द्वयम् । खड्गिनामुदरे रूपं गुह्ये सेनापतेस्तथा ॥ ४ ॥ पादयोर्द्विः पदातीनां रोम्णि भूरुपकर्तृणाम् । एवं क्रूरा यदङ्गस्थास्तदङ्गं हन्यते परैः ॥ ५ ॥ यदङ्गसंस्थिताः सौम्यास्तदङ्गं जयमाप्नुयात् । यदङ्गे सकलाः पापास्तदङ्गं मृत्युमेति च ॥ ६ ॥ अग्निभात्तुर्यतुर्यर्क्षे जयोरिक्तांशमङ्गगः । एतद्ग्रहसमायोगे वृद्धयोगः प्रजायते ॥ ७ ॥ मिश्रैर्मिश्रफलं सौम्या भङ्गदाः स्युर्यदाऽस्तगाः । शिरोक्षिघ्राणगे मन्दे राज्ञा शस्त्रेण वध्यते ॥ ८ ॥ अत्रैव चेत्तमःकेतू राज्ञो बन्धनकारकौ । सक्षतं बन्धनं भौमस्तथैवार्कः पलायनम् ॥ ९ ॥ मूर्ध्नि मस्थानभं देयं सेनाचक्रे तदा बुधैः । युद्धकालेऽपि केऽप्याहुर्वीक्ष्य तात्कालिकैर्ग्रहैः ॥ १० ॥ स्थानेऽर्कस्य रथैर्भङ्गस्तथा रथपदातिभिः । राहोर्गजैः शनेरश्वैः केतोः सर्वैश्च जायते ॥ ११ ॥

## सेनाचक्रम् ।

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| शिरसि | १ | छत्रध्वजादीनाम् | भुजयोः | २ | रथानाम् |
| कर्णयोः | २ | हेरचाराणाम् | अङ्गुल्योः | २ | धन्विनाम् |
| नेत्रयोः | २ | स्वरविदाम् | हृदये | २ | अश्वानाम् |
| घ्राणे | १ | नभोभङ्गः | उदरे | १ | खड्गिनाम् |
| जिह्वायां | १ | सचिवानाम् | गुह्ये | १ | सेनापतेः |
| दन्तेषु | ४ | मान्त्रिकाणाम् | चरणे | २ | पदातीनाम् |
| पृष्ठे | २ | वाद्यभृताम् | रोम्णि | १ | उपकरणानाम् |
| स्कन्धयोः | २ | गजानाम् | | | |

इति सेनाचक्रम् ।

---

## अथ द्वन्द्वयुद्धम् ।

समरसिंहे- द्वन्द्वं दुर्गं कविश्चातुरङ्गं युद्धं चतुर्विधम् । प्राधान्यमेषां द्वन्द्वस्य युद्धस्येति तदुच्यते ॥ १ ॥ दुर्गे भीताः कवौ सुप्ता निर्वैराश्चातुरङ्गके । हन्यन्ते तत्त्रयं निन्द्यं द्वन्द्वमेवोत्तमं विदुः ॥ २ ॥ स्वामिविप्रसुहृत्त्राणे गोभूस्त्रीस्वयशोहृतौ । येषां नाशग्रहो भानुस्तांस्तान्दृष्ट्वाऽर्कमीक्षते ॥ ३ ॥ वैरं सुहृद्धनं मानो विपदः स्त्री यशः सुहृत् । अङ्कस्य कारणान्यष्टौ निर्णयोऽत्रैव कल्पते ॥ ४ ॥ साकूतं वीक्षणं हासः स्पर्शनं वा तदिङ्गितम् । युद्धस्य कारणं तस्मिन्सद्यो द्वन्द्वेन युध्यते ॥ ५ ॥ शब्दो द्विधा ध्वनिः स्पष्टो जातोऽसौ लोपलम्भनात् ।

१ ग. °धा' ४ । °द्योर्गेश्च प° । २ क. °रिक्तांशमङ्गगः ।

तत्र पक्षोऽवधिर्युद्धे भसंख्यानि दिनानि च ॥ ६ ॥ अक्षराणां मानहानिः शब्दो मासे रणेऽवधिः । वृत्तिर्भोजनमानश्च वारेण पञ्चवासराः ॥ ७ ॥ ताम्बूलहनने केशच्छेदने च कशाहतौ । उपानत्तलपादादिघाते कालस्त्रिमासिकः ॥ ८ ॥ विरुद्धच्छत्रचामरवारणे मासतुष्टयम् । ऋणदासीभृत्यशस्त्रहरणे मासपञ्चकम् ॥ ९ ॥ पङ्क्तिगेहारामहृतौ न्यूनः पाण्मासिकोऽवधिः । षण्मासात्प्रथमे सूडे प्रतिसूडे तु वत्सरः ॥ १० ॥ शस्त्रे पतद्ग्रहे वादे पीठे न्यासे त्रिवत्सराः । अज्ञानाद्भुक्ते वित्तमवधिर्दशवार्षिकः ॥ ११ ॥ स्त्रीहृतौ वृत्तिहरणे विरुद्धे चान्वयागते । नैवावधिः क्वापि राज्ञामतस्ते पूर्ववैरिणः ॥ १२ ॥ वर्षाणां विंशतिर्भूमेर्भोगवृद्धिरुदीरिता । स्त्रीबालानामशक्तानां त्रिंशदब्दा मतोऽवधिः ॥ १३ ॥ जले नक्रो वने सिंहः काकोऽह्नि निशि कौशिकः । बली तद्वद्बलं देशात्कालात्तस्मात्स्वरं श्रयेत् ॥१४॥ अबलस्य बलोपायो मणिमन्त्रौषधादिकः । यतो द्यूतं च युद्धं च जायते न विना बलात् ॥ १५ ॥ भीतं व्यस्त्रं पलायन्तं विश्वस्तं शरणागतम् । रिपुं शक्तोऽपि नो हन्यात्तथा कूटविषाग्निभिः ॥ १५ ॥

इति द्वन्द्वयुद्धम् ।

---

## अथ च्छुरिकायुद्धम् ।

पञ्चाङ्गुष्ठारम (द्व्यङ्गुलम) भृतितो ज्ञातव्याश्छुरिका नव । वाली कुमारी चामुण्डा कालिका महाकालिका ॥ १ ॥ भैरवी योगिनी चैव वैष्णवी शान्तिकारिका । पुनरित्यष्टयङ्गुलादूर्ध्वं ज्ञातव्याः प्रथमादितः ॥ २ ॥ पञ्चाङ्गुला वा कटिका द्विगुणा यमदंष्ट्रिका । चण्डा पवित्रिका टोणा त्र्यङ्गुलोर्ध्वं प्रकीर्तिता ॥३॥ चतुर्विंशार्धाङ्गुलकं कोपा गुप्ती च दीर्घकम् । अत ऊर्ध्वं च यच्छस्त्रं तज्ज्ञेयं खड्गखड्गवैः ॥ ४ ॥ हीना वंशहरीतक्योः स्फुटिता विष्णुना कृता । न हङ्मनोनुकूला च निन्द्या शस्त्री परा शुभा ॥ ५ ॥ शस्त्राङ्गुलं पदसगेतं सप्तहृच्छेपकोऽधिपः । शस्त्रस्वामीशयोर्वैरं मृत्युकार्यन्यथा शुभम् ॥ ६ ॥ लक्षणसमुच्चये— स्वनाम्नोक्तविधानेन शस्त्र्यां जीवकलां न्यसेत् । स्वाभिधानं तु नत्यन्तं स्मरेद्युद्धे जयाय वै ॥ ७ ॥ मुष्टिं विहाय सर्वोपयोगित्वाद्गणितोदितैः । अङ्गुलैर्गुणयेद्वा स्वाम्यङ्गुष्ठान्त्यपर्वणा ॥ ८ ॥ कर्तुर्दक्षिणहस्तस्य मध्याया मध्यपर्वणः । प्रमाणमङ्गुलस्योक्तं शस्त्रमूल्यादिकर्मसु ॥ ९ ॥ नाकारणं विवृणुयान्मूल्यं देशं च नो वदेत् । नेक्षेताऽऽस्यं लङ्घयेन्न स्पृशेन्नैवाशुचिर्नरः ॥ १० ॥ क्वणिते मरणं कोशात्प्रवृत्ते स्यात्पराजयः । ज्वलिते विजयः कोशाद्युद्धं निर्ग-

---

१ ख. ग. °टोणी अङ्गुल्यौ देय°। २ क. शिशयः ख. ग. विशयः ।

च्छति स्वयम् ॥ ११ ॥ न च्छेद्योऽसौ विनिष्पन्नो निरूपैः कारयेत्समम् । मूले छिन्ने प्रभोर्मृत्युश्छिन्नेऽग्रे संततेर्मृतिः ॥ १२ ॥ समरसिंहे-रक्तपानाच्छ्रियः प्राप्तिः सुताप्तिर्घृतपानतः । जलपानाद्भवेद्वित्तं सिद्धिरश्वोष्ट्रदुग्धतः ॥ १३ ॥ झपपित्तमृगाजाश्वदुग्धैस्तैलयुतैर्दृढा । अर्कदुग्धं मेषशृङ्गं मषीयुक्तं तथा पुनः ॥ १४ ॥ पारावताखुशकृता छुरिकां प्रविलेपयेत् । ततस्तैलेन मथिता तैलपीता भवेद्दृढा ॥ १५ ॥ रम्भाक्षारे तक्रयुते पायिता या दिनोपिता । शिता सम्यक्कुण्ठिता सा न गच्छति शिलास्वपि ॥ १६ ॥ छुरिकाख्ये न्यसेदर्कांज्जन्मभांद्वाऽष्टविंशतिः । एकमग्रेऽहिवलना धृतिरस्त्रे नवान्तरे ॥ १७ ॥ पापग्रहोऽथवा चन्द्रः पापयुक्तोऽथवा बुधः । यत्राऽऽस्ते तत्र घातः स्याद्ग्रहभुक्ताङ्गुलप्रमः ॥ १८ ॥

## अथ च्छुरिकोपास्तिः ।

अथोपास्तिकल्पेऽत्र च्छुरिकाया जयाय वै । परितोष्य गुरुं मन्त्रं गृहीयात्तत्प्रसादतः ॥ १ ॥ शुचिर्भूत्वा प्रतिदिनं त्रिसंध्यं तं समभ्यसेत् । अर्चयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्ध्यायन्भगवतीं पराम् ॥ २ ॥ आभेटचा शशिखण्डमण्डितजटाजूटां भुशुण्डस्रजं बन्धूकप्रसुनारुणाम्बरधरां प्रेतासनाध्यासिनीम् । तां ध्यायेच्चतुर्भुजां त्रिनयनामापीनतुङ्गस्तनीं मध्ये निम्नवलित्रयाङ्किततनुं रौद्रीं कृपाणेश्वरीम् ॥ ३ ॥

## अथ मन्त्रः ।

अस्य श्रीछुरिकामन्त्रस्य शंभुर्ऋषिर्गायत्री छन्दः श्रीभगवती देवता छ्रीं बीजं छ्रौं शक्तिर्जयार्थे जपे विनियोगः । ॐ छ्रां हृदयाय नमः । ॐ छ्रीं शिरसे स्वाहा । ॐ छ्रूं शिखायै वषट् । ॐ छ्रैं कवचाय हुम् । ॐ छ्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ छ्रः अस्त्राय फट् । इति कृत्वा ध्यात्वा मन्त्रमयुतं जपेत् । तिलाज्येन सहस्रं जुहुयात् । सिद्धो भवति । ॐ छ्रां छ्रीं छ्रूं छ्रैं छ्रौं छ्रः । नमो भगवत्यै कात्यायन्यै छुरिकायै नमः । अथ वा । ॐ छ्रां छ्रीं छ्रूं छ्रैं छ्रौं छ्रः । षडक्षरो मन्त्रः[१] ।

इति च्छुरिकायुद्धम् ।

---

## अथ व्यूहरचना ।

रत्नकोशे-दण्डोरगौ रविसुतस्य रवेश्च चक्रं शुक्रस्य पद्मसरटौ गरुडो बुधस्य । व्यूहौ च सूचिमकरौ धरणीसुतस्य श्येनो गुरोः शिशिरगोरपि मण्ड-

१ क. °त्रिमं° ।

लाख्यः ॥ १ ॥ रुद्रयामले—स्वानुकूलग्रहव्यूहः कर्तव्यो युद्धकर्मणि । रिपूणां प्रतिकूलस्य कार्यो व्यूहो ग्रहस्य वा ॥ २ ॥ भूपालवल्लभे—बलाकापङ्क्तिवद्व्यूहो बलाकाख्यः कृतो रणे । काकव्यूहः काकसंघो बलाकाव्यूहभञ्जकः ॥ ३ ॥ तावुभावपि भज्येते श्येनव्यूहेन निश्चितम् । एको रथोऽग्रे कर्तव्यः पश्चाद्द्विरदसप्तकम् ॥ ४ ॥ त्रिंशदश्वाः खड्गिशतं पार्श्वे कुन्तधरास्तथा । मध्येऽष्टौ रथिनस्त्रिंशदश्वाः पश्चाद्गजद्वयम् ॥ ५ ॥ ततः सर्वगतं सर्वं श्येनव्यूहः स उच्यते । अग्रे द्वौ पृष्ठगाश्चान्ये क्रौञ्चव्यूहः स उच्यते ॥ ६ ॥ बलाककाकौ क्रौञ्चेन क्रौञ्चः श्येनेन भज्यते । अग्रे रथद्वयं पश्चाद्गजाः सप्त व्यवस्थिताः ॥ ७ ॥ तत्पृष्ठे विंशतिरिभाः पश्चाशद्वाजिवाहकाः । सप्त सप्त रथाः पार्श्वे गजौ द्वौ द्वौ ततः स्थितौ॥८॥ तत्प्रमाणे रथवेदी बहिस्तद्वद्गजाः स्थिताः । मध्ये पदातयो वाहाः पार्श्वयोश्च तुरङ्गमाः ॥ ९ ॥ विज्ञेयः शकटव्यूहो न भेद्यस्त्रिदशैरपि । अग्रे रथत्रयं पृष्ठे गजाकारो गजव्रजः ॥ १० ॥ स्यन्दनाः पञ्च पश्चैव पार्श्वकोणचतुष्टये । मध्यं प्रपूरयेदश्वैर्लाङ्गूलगजमालिका ॥ ११ ॥ मध्ये खड्गिधनुष्मन्तः पार्श्वयो रथिनो गजाः । पृष्ठतः सकला सेना सिंहव्यूहः स जायते ॥ १२ ॥ शकटव्यूहकालेन सूचीव्यूहेन भिद्यते । पद्मव्यूहस्तु सिंहेन सूचीकाकेन भिद्यते ॥ १३ ॥ गजषोडशकं मध्ये वृत्ताकारेण कल्पयेत् । बाह्यतो रथिभिर्वेष्ट्यं तद्बाह्ये कुन्तधारकौ(काः) ॥१४॥ शरचापधरा बाह्ये खड्गचर्मधरास्ततः । बाह्यतोऽश्वैः समावेष्ट्य पङ्क्तित्रितयतः क्रमात् ॥ १५॥ पुनःपुनः प्रकुर्वीत यावद्भवति वाहिनी । चक्रव्यूहः स विज्ञेयो दुर्भेद्यस्त्रिदशैरपि ॥ १६ ॥ अन्तरे रथमेकैकं स्थानपृष्ठेषु कल्पयेत् । तदन्तरे गजान्पञ्च नवाश्वान्स्थापयेत्ततः ॥ १७ ॥ ततः पत्तीन्पञ्चदश पत्रे पत्रे प्रकल्पयेत् । तन्मध्ये स्यन्दनान्सप्त गजांश्चैव त्रयोदश॥१८॥ एकोनविंशतिहयान्पदातींश्चाष्टविंशतिः । गजैरश्वैः पूरणीया पद्ममध्यस्थकर्णिका ॥ १९ ॥ तन्मध्ये गजमारूढश्चभूपो वाऽथवा नृपः । अन्तरे द्रोणिकायां तु रथद्विरदवाजिनः ॥ २० ॥ त्रयस्त्रयश्च सर्वत्र त्रयस्त्रिंशत्पदातयः । पद्मव्यूहः स विज्ञेयः पद्माकारकृतो यदा ॥ २१ ॥ रथं गजं हयं पत्तिं मालाकारेण विन्यसेत् । पुनः पुनः श्रेणिबन्धान्मालाव्यूहः स उच्यते ॥ २२ ॥ चतुर्दिक्षु रथौ द्वौ द्वौ तत्पृष्ठे द्विरदा दश । चतुर्विंशतिरश्वाश्च त्रिंशत् खड्गधरास्तथा ॥ २३ ॥ शरचापधराश्चैव दश वा खेटधारिणः । तेषां पृष्ठे कुन्तधरा यन्त्रधरास्तथैव च ॥ २४ ॥ वेद्याकाराः पूरणीया गजैरश्वैः पदातिभिः । अग्रे नृपः स विज्ञेयो व्यूहः पुष्करणीति च ॥२५॥ सर्पाकारं रथैनार्श्वैः पूरयेत्सैनिकैरपि । सर्पव्यूहः स विज्ञेयः

कृतान्तो युद्धकर्मणि ॥२६॥ सप्तधा स्युः सप्त रथा गजवाजिपदातयः । रथेभाश्वपत्तयश्च सप्त सप्तगुणाः क्रमात् ॥ २७ ॥ अधोऽधः कल्पयेदेवमग्निव्यूहः स उच्यते । सर्वोत्तमोऽयं व्यूहानामग्निवन्नाशकारकः ॥ २८ ॥ चतुरेखाङ्कितां सेनां वेश्माकारां प्रकल्पयेत् । रथैर्हयैर्गजैः पड्भिः क्रमेणैव चतुर्दिशः ॥ २९ ॥ ततश्चतुर्षु द्वारेषु रथौ द्वौ द्वौ तथा गजौ । अश्वावपि पदाती च चतुर्दिक्षु प्रकल्पयेत् ॥ ३० ॥ तन्मध्ये नृपतिस्तिष्ठेद्वेश्माकारेऽन्तरे सुधीः । विज्ञेयः खलकव्यूहः खलकौ द्वारवस्थितौ ॥ ३१ ॥ सौपर्णः श्येनवत्कार्यस्तत्संख्या द्विगुणा पुनः । शकटोऽग्निश्चक्रसंज्ञो व्यूहेषु बलवत्तराः ॥ ३२ ॥ दण्डाकारो भवेद्दण्डो मकरो मकराकृतिः । सूचीव्यूहः समः सूच्याः स्वनामसदृशाः परे ॥ ३३ ॥

इति व्यूहरचना ।

---

## अथ सूक्ष्मस्वरप्रकरणम् ।

पवनविजये—न तिथिर्न च नक्षत्रं न वारो नैन्दवं बलम् । सर्वसिद्धिकरं ज्ञानं कथयस्व महेश्वर ॥ १ ॥ शृणु पार्वति देहस्थं रहस्यं ज्ञानमुत्तमम् । येन विज्ञातमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रजायते ॥ २ ॥ कन्दादूर्ध्वमधस्तिर्यग्व्याप्य देहं समन्ततः । चक्रवत्तु भ्रमन्त्येता नाड्यः प्राणसमाश्रिताः ॥ ३ ॥ योगरहस्ये—इडा वामा विधोर्नाडी पिङ्गला दक्षिणा रवेः । सुपुम्णा मध्यगा वह्नेस्तिस्रो हंसस्वरूपकाः ॥ ४ ॥ जयार्णवे—एकैकस्य कलाः पञ्च क्रमेणैवोदयन्ति च । पृथिवी सलिलं तेजो वायुराकाशमेव च ॥५॥ ऊर्ध्वमग्निरधश्चाऽऽपस्तिर्यगस्ति प्रभञ्जनः । धरामध्ये विजानीयान्नभः सर्वत्र संस्थितम् ॥ ६ ॥ अष्टाङ्गुलो वहेद्वायुरनलश्चतुरङ्गुलः । षोडशाङ्गुलमानस्तु पृथिवी द्वादशाङ्गुला ॥ ७ ॥ स्वरोदये—रक्तं तेजो मही पीता नीलो वायुर्जलं सितम् । कृष्णवर्णं नभो ज्ञेयं चन्द्रः कृष्णो रविः सितः ॥ ८ ॥ वायुश्चापाकृतिस्तेजस्त्रिकोणं वर्तुलं जलम् । चतुरस्रा मही ज्ञेया निराकारं नभः सदा ॥ ९ ॥ तीक्ष्णं तेजः कटुर्वायुर्वारुणं मधुरं मतम् । कषाया भूः खमस्वादं क्षारा भूर्वोऽऽम्लको मरुत् ॥ १० ॥ जले वायौ जीवचिन्ता मूलचिन्ता भुवि स्मृता । धातुचिन्ताऽग्नितत्त्वे च शून्यं खे तद्द्वये द्वयम् ॥ ११ ॥ अप्सु शीघ्रं भवेल्लाभः पृथिव्यां बहुभिर्दिनैः । वायौ भङ्गोऽनले हानिराकाशे निष्फलं सदा ॥ १२ ॥ चरं तोये स्थिरं भूम्यां मरणाद्यदनेऽनिले । तेजसा मिश्रमुग्रं च न किंचित्खे विधीयते ॥ १३ ॥ पृथ्वीजलाभ्यां तु सुतः कन्यका तु प्रभञ्जने । तेजसा गर्भपातः स्यान्नभसा च

नपुंसकम् ॥ १४ ॥ गर्भप्रश्ने यदा दूतः पूर्णे पुत्रः प्रजायते । शून्ये कन्या युगे युग्मं गर्भपातस्तु संक्रमे ॥ १५ ॥ अन्तर्वत्न्याः सुतं सूर्ये वदेच्चन्द्रे तु कन्यकाम् । अशून्ये शून्यके स्थाने शून्ये वा तपनं वदेत् ॥ १६ ॥ योधद्वये कृतप्रश्ने पूर्णस्थे प्रथमो जयी । रिक्तेऽन्योऽस्य विधौ स्थायी जयी यायी रवौ भवेत् ॥ १७ ॥ पृथ्वीतत्त्वे सकृद्युद्धं संधिर्भवाति वारुणे । विजयो वह्नितत्त्वेन वायौ भङ्गोऽम्बरे मृतिः ॥ १८ ॥ पूर्वोत्तरदिशोश्चन्द्रे भानौ पश्चिमयाम्ययोः । स्थितस्तत्र जयी युद्धे स्थायी यायी क्रमेण च ॥ १९ ॥ शुभकार्ये शुभश्चन्द्रः क्रूरकार्ये रविः शुभः । वाहनाद्यथ पादेन गच्छन्सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ २० ॥ यात्रादाने विवाहे च वस्त्रालंकारभूषणे । सुहृन्मेले प्रवेशे च स्थिरकार्ये शुभादिषु ॥ २१ ॥ गृहप्रवेशने स्वामिदर्शने बीजवापने । देवतायाः प्रतिष्ठासु शान्तिके पौष्टिके तथा ॥ २२ ॥ आरामेऽथ तडागादौ निधिनिक्षेपसंग्रहे । भार्यास्नेहे च कर्तव्या वामा सर्वत्र पूजिता ॥ २३ ॥ विद्यारम्भेषु दीक्षायां सेवावाणिज्यकर्षणे । शस्त्राभ्यासे विवादे च द्यूते खेटकचार्यके ॥ २४ ॥ सङ्ग्रामे भेषजे,जाप्ये विषभूतानिलग्रहे । क्रयविक्रयपण्येषु स्नानभोजनमैथुने ॥ २५ ॥ वाहने गजवाहादिरथयन्त्रादिशिल्पके । लिपिलेखकवाहादौ मन्त्रदीक्षाभिचारके ॥२६॥ विग्रहोद्धारदानेषु सूर्यः सर्वत्र पूजितः । उदये जायते चन्द्रः सूर्योऽस्ते शुभकृत्सदा । सर्वत्र सर्वकार्येषु जीवः शस्तोऽन्यथा न सन् ॥ २७ ॥ समरसिंहे— पूर्णनाडीगतं पृष्ठे शून्यमङ्गं तदग्रतः । शून्यस्थानगतः शत्रुः क्रियते नात्र संशयः ॥ २८ ॥ प्रश्ने प्रारम्भणे वाऽपि कार्याणां वामनासिका । पूर्णवायोः प्रवेशश्च तदा सिद्धिर्न चान्यथा ॥ २९ ॥

इति सूक्ष्मस्वरप्रकरणम् ।

---

## अथ तत्त्वगुणाः ।

उमामहेश्वरसंवादे—अस्थि मांसं त्वचा मेदस्तथा रोम च पञ्चमम् । क्षितेः पञ्च गुणाः प्रोक्ता ज्ञातव्यास्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १ ॥ क्षुधा तृषा तथा निद्रा व्याधिरालस्यमेव च । तेजसस्तु गुणाः पञ्च सामान्यास्ते प्रकीर्तिताः ॥ २ ॥ धावनं चलनं चैव कुञ्चनं च प्रसारणम् । निरोधश्चेति विज्ञेया वायोः पञ्च गुणा बुधैः ॥ ३ ॥ रागद्वेषौ तथा लज्जा भयं मोहस्तथैव च । व्योम पञ्चगुणं प्रोक्तं देहस्थं सर्वदा बुधैः ॥ ४ ॥ मूत्रं श्लेष्मा च रक्तं च शुक्रं स्वेदश्च पञ्चमः । आपः पञ्चगुणाः प्रोक्ता ज्ञातव्यास्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ५ ॥ वश्यमाकर्षणं पुष्टि

शान्तिं कुर्वन्ति पूरके । कुम्भके स्तम्भनं कुर्याद्धयरक्षाविवर्धनम् ॥ ६ ॥ रेचके मारणं कुर्याद्द्विपमोचाटनं तथा । आश्लेष्मान्तं च रुद्धेन नसा ज्ञानं कथं भवेत् ॥ ७ ॥ मुखनासाक्षीणि कर्णौ द्व्यङ्गुलीभिर्निरोधयेत् । तत्त्वोदयमिदं ज्ञेयं षण्मुखीकरणं प्रिये ॥८॥ क्षणं वामे क्षणं दक्षे यदा वहति मारुतः । विषुवेण समो ज्ञेयः सर्वकार्यविनाशकः ॥९ ॥ व्यवहारे खले वादे विपदाने च कर्मणि । कुपितः स्वामिचौराद्याः पूर्वस्थाः स्युर्भयंकराः ॥ १० ॥ लग्नर्क्षतिथियोगर्क्षैर्भक्तैस्तत्त्वं धरादिकम् । याने लाभः सुखं कीर्तिर्भङ्गो हानिः फलं क्रमात् ॥ ११ ॥

इति शूरमहाठश्रीशिवदासविनिर्मिते । ज्योतिर्निबन्धसर्वस्वे स्वरशास्त्रविचारणा ॥

---

## अथ प्रश्नोत्तराध्यायः ।

तत्राऽऽदौ भिन्नमतयोः किं प्रमाणमिति प्रश्नः—नैकस्मिन्समये सर्वशास्त्रोक्तं शुभमाप्यते । संहितास्वरशास्त्राद्यं भेदैर्भिन्नं यतः स्मृतम् ॥ १ ॥ अस्योत्तरं—तेष्वे-कमुररीकृत्य तदधिष्ठानदेवताम् । समाराध्य ततः कुर्यात्कर्माभीष्टप्रसिद्धये ॥२॥ सुगन्धैर्भूर्जपत्रादौ कार्यं भेदयुतं लिखेत् । सदेवं तत्समभ्यर्च्य कादौ धृत्वेष्ट-मारभेत् ॥ ३ ॥ तिथ्यादिग्रहदिङ्मासदेवताः प्रागुदीरिताः । भूचक्रस्वरपूर्वाणां ज्ञेयाः स्वाभिजनेश्वराः ॥ ४ ॥ एवं दोषे समुत्पन्ने विधानं क्रियते बुधैः । स एवोपशमं याति तथा रोगः सदौषधैः ॥ ५ ॥ तदुक्तं यामले रौद्रे तन्मयाऽत्र गुरोर्मुखात् । श्रुतं प्रकाशितं तच्च दृष्टमाधुनिकैः स्फुटम् ॥ ६ ॥ ज्योतिर्विवरणे—ग्रहयोगोद्भवं शस्तं दुष्टं चापि फलं क्वचित् । न नश्यति यथोष्णत्वं रवेः शैत्य-मनुष्णगोः ॥ ७ ॥ संहितोक्तं शुभं मुख्यं युद्धादौ स्वरशास्त्रजम् । शकुनाद्यं परे प्राहुः कार्ये साधारणे सदा ॥ ८ ॥

### अथाष्टकवर्गप्रश्नोत्तरम् ।

अष्टवर्गफलमेव जातके नास्य किं परिणयेऽपि मुख्यता । सत्यमुद्वहनजन्म-शास्त्रयोरन्यथा मुनिभिरेव संस्मृतम् ॥ १ ॥ क्रूरमष्टममनिष्टमिष्टदं सप्तमं शुभमु-शन्ति जन्मनि । नेयमुद्वहनरीतिरित्यसावत्र गोचरपथो रथोद्धतः ॥ २ ॥

### अथ प्रलयप्रश्नोत्तरम् ।

सिद्धान्तशिरोमणौ—वृद्धिर्विधेरह्नि भुवः समन्तात्स्याद्योजनं भूभवभूतिपूर्वैः ।

---

१ स. प. धूर्णाङ्गे' । २ प. 'ने रस्तः । ३ प. 'के तस्य ।

ब्राह्मे लये योजनमात्रवृद्धेर्नाशो भुवः प्राकृतिकेऽखिलायाः ॥ १ ॥ दिने दिने यन्म्रियते हि भूतैर्दैनंदिनं तत्प्रलयं वदन्ति । ब्राह्मं लयं ब्रह्मदिनान्तकाले भूतानि यद्ब्रह्मतनुं व्रजन्ति ॥ २ ॥ ब्रह्मात्यये यत्प्रकृतिं प्रयान्ति सर्वाण्यतः प्राकृतिकं कृतीन्द्राः । लीनान्यतः कर्मपुटान्तरत्वात्पृथक्क्रियन्ते प्रकृतेर्विकारैः ॥ ३ ॥ ज्ञानाग्निदग्धाखिलपुण्यपापा मनः समाधाय हरौ परेशे । सद्योगिनो यान्त्यनिवृत्तिमस्मदात्यन्तिके चेति लयश्चतुर्धा ॥ ४ ॥

## अथ दासीजातकफलप्रश्नोत्तरम् ।

शुभलक्षणसंयुक्ता दास्यो दासाश्च कुञ्जराः । तिष्ठन्ति सदने येषां तेषां श्रीर्वर्धतेऽन्वहम् ॥ १ ॥ जातकोत्तमे—दासीदासोद्भवः कश्चिद्राजलक्षणलक्षितः । जायते राजयोगेन भर्तुस्तत्फलमादिशेत् ॥ २ ॥ चरादिस्थितलग्नेन्दू जन्मनि ग्रहजं फलम् । प्रसादोत्थं च कुर्यातां स्वामिनोऽन्यस्य भाववत् ॥ ३ ॥ * यस्या दा( स्माद्दा )स्याश्च पादौ द्वौ भूम्यां वै सुप्रतिष्ठितौ ॥ ४ ॥

## अथ स्वप्नप्रश्नोत्तरम् ।

निद्रादुष्टमनोजन्यं स्वप्नमाहू रतान्वितम् । तत्फलं सदसत्केन हेतुना कीर्तितं बुधैः ॥ १ ॥ निद्रायां निश्चलीभूते चित्तेऽभीष्टं प्रविश्य तत् । भाव्यं सूचयति स्वप्नः सद्यः प्रत्यक्षतो यतः ॥ २ ॥ निवृत्तानि यदाऽक्षाणि विषयेभ्यो मनः पुनः । न निवर्तेत वीक्ष्यन्ते तदा स्वप्नाः शरीरिभिः ॥ ३ ॥

## अथाऽऽक्षेपपरिहाराः ।

अथोच्यन्ते विदां प्रीत्यै कियन्तः परिहारकाः । आक्षेपाणां समालोक्य नानाशास्त्राणि यत्नतः ॥ १ ॥ तत्र प्रथम सज्जनदुर्जनयोर्दृष्टान्तः—अतिजातस्य या मूर्तिः शशिनः सज्जनस्य हि । क्व सा वै रात्रिजातस्य तमसो दुर्जनस्य च ॥ २ ॥ जानन्ति हि गुणान्वक्तुं तद्विधा ये च तादृशम् । वेत्ति विश्वंभरा भारं गिरीणां गरिमाश्रयम् ॥ ३ ॥ +

## अथ प्रसङ्गेन कवेः प्रशंसा ।

प्रसन्नाः कान्तिहारिण्यो नानाश्लेषविचक्षणाः । भवन्ति कस्यचित्पुण्यैर्मुखे वाचो गृहे स्त्रियः ॥ १ ॥ किं कवेस्तेन काव्येन किं काण्डेन धनुष्मतः । परस्य

*अस्योत्तरार्धो न दृश्यते । +चम्पूग्रन्थे—तत्फलगर्हालापः क्रियते दुर्मुखैर्मुहुः । जानाति हि पुनः सम्यक् कविरेव कवेः श्रमम् । इदपद्यं खघपुस्तकयोः ।

१ घ. 'मिता नास्य नो वदेत् ।

हृदये लग्नं न घूर्णयति यच्छिरः ॥ २ ॥ रोहणं सूक्तिरत्नानां वृन्दे वृन्दे विपश्चिताम् । यन्मध्ये पतितो नीचः काचोऽप्युच्चैर्मणीयते ॥ ३ ॥ अप्रगल्भाः पदन्यासे जननीरागहेतवः । सन्त्येके बहुलालापाः कवयो बालका इव ॥ ४ ॥ वाचः काठिन्यमायान्ति भङ्गश्लेषविशेषतः । नोद्वेगस्तत्र कर्तव्यो यस्मान्नैको रसः कवेः ॥ ५ ॥ काव्यस्याऽऽम्रफलस्यापि कोमलस्येतरस्य च । बन्धच्छायाविशेषेण रसोऽप्यन्यादृशो भवेत् ॥ ६ ॥ ग्रन्थे मदीये लिखितानि यानि मुदे गुरूणां सकलानि तानि । लोकप्रसिद्धं जगतीतलेऽस्मिन्पिण्डस्य मातुः स्खलितं सुखाय ॥ ७ ॥ प्रहचन्द्रिकायाम्—अहो पूर्वमुपेक्ष्य कंचिद्विशेषं स्वमत्या स्वकाव्ये तु ये नो वदन्ति । ग्रहज्ञानगर्वान्वितास्तत्र कस्माद्वृथा नूतनं शास्त्रमुत्पादयन्ति ॥८॥ अथान्यः—स्वर्णे यदि सुगन्धित्वं चन्द्रश्चन्दनकोटरे । द्राक्षाफलानि चेदिक्षौ राशि वस्तुविवेकिता ॥ ९ ॥ प्रियायां धर्मतात्पर्यं प्रभुत्वे च कृपालुता । विद्वत्सु च सदाचारो निस्पृहत्वं तपस्विनि ॥ १० ॥ संपत्तौ यदि दातृत्वं विद्यायां चेन्निगर्वता । आक्षेपपरीहारौ चेच्छास्त्रे किं स्यादतः परम् ॥ ११ ॥ आक्षेपो द्विविधः प्रोक्तो निर्मूलश्च समूलकः । बालाद्यैः प्रथमो ज्ञेयः कार्यकारणतः परः ॥ १२ ॥ खपुष्पं कच्छपीदुग्धं शशशृङ्गादिकारणम् । यः पृच्छति पिशाचोऽसौ वक्ता वा नितरां ततः ॥ १३ ॥

## अथ कर्माभावे सृष्टयुत्पत्तिविषयक आक्षेपः ।

कल्पादौ कर्मशेषाणां सर्जनं चेत्करोति कः । तर्हि किं प्रथमे कल्पे कर्माभावे कथं सृजिः ॥ १ ॥

## अथास्य परिहारः ।

कर्माभावेऽपि सृष्ट्यर्थमुत्तमाधममध्यमाः । जीवाः स्वावयवेभ्यस्तु तद्विधेभ्यो विनिर्मिताः ॥ १ ॥ यतो व्यवहृतिर्लोके वर्णैः संकरजातिभिः । पशुभिः पक्षिभिः सम्यक् भवत्येभिर्विना न तु ॥ २ ॥ पद्मपुराणे–त्वमेको जगतां कर्ता गोप्ता हर्ता स्वयं प्रभुः । नान्यः कर्तुमकर्तुं वाऽन्यथाकर्तुं स्वयं प्रभुः ॥ ३ ॥ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । जगद्योनिस्त्वमेकोऽसि स्वेच्छया कर्तुमर्हसि ॥ ४ ॥ विश्वंभरशास्त्रे–निर्मिता मानसाः पुत्राः सनकाद्या महर्षयः । तथैव प्रथमे कल्पे जीवाः सर्वे स्वयंभुवा ॥ ५ ॥ अन्यथा मन्दबुद्धीनां प्रतिभाति दुरात्मता । कुतर्कज्ञानमुग्धानां तन्मतं नोपपत्तिमत् ॥ ६ ॥

---

१ क. °न्धनेष्टवि° २ र°. ख. °काच्मूद्वर्पोर्भवेत् ।

सुरेश्वरवार्तिके—अनादिभावरूपं यद्विज्ञानेन विलीयते । तदज्ञानमिति प्राज्ञा लक्षणं संप्रचक्षते ॥ ७ ॥ अथाऽऽह वाजसनीये—ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः । ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ ८ ॥ विश्वंभरशास्त्रे—अनन्यपूर्वके कल्पे स्वयंभूश्चतुराननः । स्रष्टा प्रजापतिः पूर्वं देवान्दैत्यांश्च राक्षसान् ॥ ९ ॥ स्वमुखाद्ब्राह्मणाञ्जज्ञे क्षत्रियान्बाहुतस्तथा । ऊरुद्वयात्ततो जज्ञे वैश्याञ्छूद्रांश्च पादतः ॥ १० ॥ ब्रह्मपुराणे—चातुर्वर्ण्यसमुद्भूताः प्रतिलोमानुलोमजाः । तेभ्यश्च ये सुता जाता ये चान्ये तत्समुद्भवाः ॥ ११ ॥ वर्णान्यवर्णप्रभवा ज्ञेयास्ते वर्णसंकराः । जाता ये व्रात्यवर्गेभ्यो मिश्रवर्गाः प्रकीर्तिताः ॥ १२ ॥

इति कर्माभावे सृष्ट्युत्पत्तिविषयकाक्षेपपरिहारः ।

---

## अथैकस्मिन्काले बहुसंहारे किं कारणमित्याक्षेपः ।

एकस्मिन्दिवसे क्षेत्रे बहूनां युगपत्कुतः । संहारो जायते तन्मे कारणं ब्रूहि शास्त्रतः ॥ १ ॥

## अथास्योत्तरम् ।

जयार्णवे—केचित्कूर्मादिवेधेन योगिनीचक्रतः परे । स्वामिदौष्ट्यवशादन्ये आहुरेके स्वकर्मणा ॥ १ ॥ एकयोढव्यया नार्या यथा प्लवनसंस्थिताः । निमज्जन्ति जले तद्वद्राज्ञो दौस्थ्येन विग्रहः ॥ २ ॥ उत्कृष्टपापभारेण खिन्ना भूर्योगिनीगणम् । क्रोधेन प्रेरयत्युग्रं जनध्वंसस्तदा भवेत् ॥ ३ ॥ शुष्ककाष्ठाश्रयादार्द्रं दावाग्नौ यात्यभावताम् । तथा पापाश्रयात्क्वापि पुण्यवानपि नश्यति ॥ ४ ॥ पुनराक्षेपः—क्षेत्रेशादिवशेन स्याद्यदि चेन्मरणं नृणाम् । तर्हि तत्रापि तन्मध्ये जीवन्ति कतिचित्कथम् ॥ ५ ॥ अस्योत्तरं पुराणसारे—उत्कृष्टपापिनः सत्यभयेऽपि विलयं ययुः । महाविघ्नाम्बुधौ मग्नाः पुण्यभाजस्तरन्ति वै ॥ ६ ॥

## अथ यमलयोः को ज्येष्ठ इत्याक्षेपस्तस्योत्तरं च ।

ज्योतिर्विवरणे—पूर्वशास्त्रानुसारेण भ्रात्रोर्यमलजातयोः । ज्येष्ठत्वं च लघुत्वं च वच्मि संसारहेतवे ॥ १ ॥ एके तु जन्मसमयात्प्रवदन्त्याधानतस्त्वपरे । ज्येष्ठत्वं च लघुत्वं च केचित्साम्यं तयोरुभयोः ॥ २ ॥ बीजप्रक्षेपतो भाति कनीयान्पूर्वसंभवः । पश्चाज्जातस्तथा ज्यायान्मानपात्रस्थधान्यवत् ॥ ३ ॥

---

१ क. दौस्थ्यव° ।

वयोन्मानं यतः कालात्तस्मायस्य जनिः पुरा । स ज्येष्ठोऽन्यो लघुर्गर्भे नाऽऽधानस्य प्रमाणतः ॥ ४ ॥ इत्यादिवचनैरत्र निश्चयो नैव जायते । महाभागवते प्रोक्तो मया तस्मात्प्रकाश्यते ॥ ५ ॥ तृतीयस्कन्धे–प्रजापतिर्नाम तयोरकार्षीद्यः प्राक्स्वदेहाद्यमयोरजायत । तं वै हिरण्यकशिपुं विदुः प्रजा यं तं हिरण्याक्षमसूत साऽग्रतः ॥ ६ ॥ अस्य स्पष्टता सप्तमस्कन्धे–यज्ञान्ते तौ दितेः पुत्रौ दैत्यदानववन्दितौ । हिरण्यकशिपुर्ज्येष्ठो हिरण्याक्षोऽनुजस्ततः ॥ ७ ॥

## अथ जीवात्मनोः को भेद इत्याक्षेपपरिहारः ।

चैतन्यांशोऽज्ञता माया जीव इत्यभिधीयते । यथाऽग्न्यंशो ज्वलत्काष्ठमङ्गार इति भण्यते ॥१॥ अग्निरङ्गारतां हित्वा यथा काष्ठत्वमात्रजेत् । तथा जीवत्वसंत्यागाच्चैतन्यं ब्रह्म केवलम् ॥ २ ॥ चैतन्यं मायया युक्तं जीव इत्यभिधीयते । उपाधिरहितं तच्च ब्रह्मेति मोच्यते बुधैः ॥ ३ ॥ मायाशबलितं चैतन्यं जीवः । निरुपाधिकं चैतन्यं ब्रह्म ।

## अथ रोगस्नानाक्षेपः ।

स्नानं रोगविमुक्तस्य कल्याणाभ्युदयं विदुः । तत्कथं दोषदुष्टेऽह्नि कथितं पूर्वसूरिभिः ॥ १ ॥

## अथास्योत्तरम् ।

स्वकर्मणः शुभे काले गर्हिते गर्हितस्य च । सिद्धिः प्रत्यक्षतो नूनं दृश्यते ह्यानिरन्यथा ॥ १ ॥ यस्मिन्काले तु यत्कर्म कीर्तितं तिथिभादितः । शुभं चैवाशुभं मिश्रं तत्तथैव फलायते ॥ २ ॥ ज्योतिःशास्त्रमिदं ब्राह्मं दिव्यं ज्ञानमतीन्द्रियम् । प्रत्यक्षफलदं सिद्धं त्रिकालज्ञानकारणम् ॥ ३ ॥ अस्याऽऽगमप्रमाणस्य शास्त्रस्य फलगौरवम् । जानन्ति मुनयस्तस्मात्तैरुक्तं यत्तु तत्स्फुटम् ॥४॥ अत्र प्रधानं दोषस्य निवृत्तिस्तन्यदङ्गकम् । मुख्यं कृत्वोक्ततिथ्यादौ साङ्गचर्यात्परं व्रजेत् ॥ ५ ॥ यथोत्सवविवाहादौ वस्त्रालंकारधारणम् । वपनं व्रतदीक्षादौ रुक्स्नाने शान्तिकं तथा ॥ ६ ॥

## अथ रवीन्द्वोः स्थिरचरत्वविषयक आक्षेपस्तत्परिहारश्च ।

रविः स्थिरः कथं त्यक्तो गृहीतोऽब्जचरः कथम् । गृहारम्भे प्रवेशे च हेतुं जानासि चेद्वद ॥ १ ॥ स्थिरत्वं च चरत्वं च न स्तः स्वाभाविके तयोः । शुभुक्तिवशतः प्रोक्ता गोलार्धकोविदैः ॥ २ ॥ बृहस्पतिसंहितायां–विशाखाकृ-

त्तिके तारे मृदुतीक्ष्णे च मिश्रिते । पापवारयुते क्रूरे ते स्तः सौम्ये शुभेऽहनि ॥ ३ ॥ तथा लल्लोक्तितो भानुः सौम्यभागस्थितो बली । स्थिरे शस्तस्तथा ज्ञेयो यात्रापुष्ट्यादिकर्मसु ॥ ४ ॥

## अथ फलपाकाक्षेपस्तत्परिहारश्च ।

संहितास्वरशास्त्रादौ लग्नर्क्षग्रहभेदतः । प्रकारैर्बहुभिः प्रोक्तः कर्मकालः पुरातनैः ॥ १ ॥ तेष्वेकः कस्यचित्कालः शुभोऽपि विफलो भवेत् । फलदः कस्यचित्सोऽपि स्फुटं तत्कारणं वद ॥ २ ॥ ज्योतिष्प्रकाशे—कार्यसिद्ध्यै मुहूर्ता ये प्रोक्तास्ते यस्य जन्मानि । सानुकूलाः सदा तस्य फलदाः स्युर्न चान्यथा ॥३॥ *विनाऽऽदित्यं ग्रहाः सर्वे दिवसं कर्तुमक्षमाः । न फलन्ति मुहूर्तानि तथेशानुग्रहं विना ॥ ४ ॥*

## अथ योगाक्षेपस्तत्परिहारश्च ।

मोघाः स्युः शिखिना दग्धबीजवद्योगाः केऽपि शरीरधारिणः । दृढफलोदयाः परे पर्णाकीर्णहुताशराशिवत् ॥ १ ॥ यथा मृगजले बुद्धिर्जलमस्तीति वै पुनः । शुक्तौ रौप्यं तथा ज्ञानमिह ज्ञेयो नयो मुधा ॥ २ ॥

## अथ भूमानाक्षेपस्तत्परिहारश्च ।

पृथ्वीमानं पुराणेषु यत्प्रोक्तं तेन साम्यता । ज्योतिःशास्त्रे कथं नास्ति तन्मे निःसंशयं वद ॥ १ ॥ बह्वङ्कैः साधनं कष्टं स्वल्पाङ्कैस्तु सुखावहम् । तेनापवर्तितं मानं धरित्र्याः केचिदूचिरे ॥ २ ॥ अन्ये वदन्ति कृतिनो धर्मादीनां युगे युगे। क्षीणत्वं स्यात्तथा भूमिः स्वतः संकोचतामियात् ॥ ३ ॥ सैव पृथ्वीति वै सत्यं *साधनार्थं दिवौकसाम् । भूमानं कल्पितं प्राज्ञैः सूर्येन्द्वोर्बिम्बवद्गृहे ॥ ४ ॥*

## अथ भूमानम् ।

पुराणेषु क्षितेर्मानं कोटिप्राङ्गेषु योजनम् । पट्कोट्यूनं च केऽप्याहुर्मानं कोटिमितं परे ॥ १ ॥

## अथ ज्योतिःशास्त्रोक्तं भूमानम् ।

सिद्धान्तशिरोमणौ—प्रोक्तो योजनसंख्यया कुपरिधिः सप्ताङ्गनन्दाब्धय४९६७· स्तद्व्यासः कुभुजंगसायकभुवः १५८१ सिद्धांशके २४ नाधिकः । पृष्ठक्षेत्रफलं तथा युगगुणत्रिंशच्छराष्टद्रयो ७८५३०३४ भूमेः कन्दुकजालवत्कुपरिधि-व्यासाहतः प्रस्फुटम् ॥ १ ॥ निरक्षदेशात्क्षितिषोडशांशे भवेदवन्तीगणितेन

यस्मात् । तदन्तरं षोडशसंगुणं स्याद्भूमानमस्माद्वद किं तदुक्तम् ॥ २ ॥ शृङ्गोन्नतिग्रहयुतिग्रहणोदयास्तच्छायादिकं परिधिना घटतेऽमुना हि । नान्येन तेन [ च ]गुरूक्तमहीप्रमाणप्रामाण्यमन्वययुजा व्यतिरेककेण ॥ ३ ॥ लङ्कावन्त्योरन्तरयोजनानि ३१० । २६ । १५ एतत्षोडशगुणितं जातं भूमानं ४९६७ तत्क्षेत्रफलं लक्षाः ७८ सहस्राणि ५२ योजनानि २४ ॥

## अथ प्रसङ्गेन ब्रह्माण्डमानम् ।

सिद्धान्तशिरोमणौ––कोटिघ्नैर्नखनन्दषट्कनखभूभृद्भुजंगेन्दुभिर्ज्योतिःशास्त्रविदो वदन्ति नभसः कक्षामिमां योजनैः । तद्ब्रह्माण्डकटाहसंपुटतटे केचिज्जगुर्वेष्टनं केचित्प्रोचुरदृश्यदृश्यकगिरिं पौराणिकाः सूरयः ॥ १ ॥ अन्त्यं १८ शङ्कुः ७१ निखर्वः २० अब्जं ६९ कोटिः २० ॥

## * अथ वैधव्यादियोगे कथं विवाहसिद्धिरित्याक्षेपः ।

वैधव्यादिषु योगेषु जन्मकाले मृगीदृशाम् । ब्रूहि वैवाहिकं कर्म कथं तासां विधीयते ॥ १ ॥

## अथास्य परिहारः ।

संहितासारे–अवैधव्यकरैर्योगैर्विवाहपटलोदितैः । वरायाऽऽयुष्मते देया कन्या वैधव्ययोगजा ॥ १ ॥ प्रारब्धानामनारब्धकर्मणां विरतिर्यथा । आत्मज्ञानात्तथा दोषा नन्दाद्यैर्विलयं ययुः ॥ २ ॥ व्रतखण्डे – सावित्र्यादिव्रतानीह भक्त्या कुर्वन्ति याः स्त्रियः । सौभाग्यं सुभगत्वं च भवेत्तासां सुसंततिः ॥ ३ ॥ पुराणान्तरे—बालवैधव्ययोगेऽपि कुम्भद्रुप्रतिमादिभिः । कृत्वा लग्नं रहः पश्चात्कन्योद्वाह्येति चापरे ॥ ४ ॥ यथा गर्गः—स्वकन्याया वत्सरेण गान्धार्या मेषेणेत्याह । अस्मिन्युगे भास्करो लीलावत्या मणिकेन । अत्र दृष्टान्तः—यथेन्धनस्य संस्कारात्ताम्रं काञ्चनतामियात् । तथा दुष्टफला कन्या विमला स्याद्विधानतः॥५॥

## अथ मूकबधिरयोर्मौञ्ज्यादिसंस्काराः ।

मूकाद्या व्रतमोक्षान्तः संस्कारैस्तु यथोचितैः । संस्कार्यास्तत्र मन्त्रोक्तिः कर्तव्या गुरुणा सकृत् ॥ १ ॥

इति ज्योतिर्निबन्धसारे सामान्यत आक्षेपपरिहाराः ।

---

* धनुश्चिह्नगतग्रन्थो ग पुस्तकस्थः ।

---

१ ग. °नि ३१० । २६ । २ ग. °नं ४९६० । ३ घ. °स्पर्शं गिरिवरं पौ° ।

## अथ तिथिनिर्णयः ।

तत्र व्यासः—द्विधा त्रिधा चतुर्धा वा पञ्चधा दिवसः स्मृतः । तत्र मध्याह्नतः पूर्वं पूर्वाह्णः परतः परः ॥ १ ॥ द्युमानस्य त्रिभागेण भास्करोदयतः क्रमात् । पूर्वाह्णश्चैव मध्याह्नो ह्यपराह्णः स्मृतो बुधैः ॥ २ ॥ मनुस्मृतौ—पूर्वाह्णः प्रहरः सार्धो मध्याह्नः प्रहरस्तथा । आतृतीयोऽपराह्णः स्यात्सायाह्नश्च ततः परम् ॥ ३ ॥ मुहूर्तत्रितयं प्रातस्तावानेव तु संगवः । मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तः स्यादपराह्णोऽपि तादृशः ॥ ४ ॥ सायाह्नस्त्रिमुहूर्तोऽथ क्षणोऽह्नः पञ्चभूलवः । आवर्तनोऽत्र मध्याह्नः पूर्वाह्णः संगवो मतः ॥ ५ ॥ स्कन्दपुराणे—उदयात्प्राक्तनी संध्या घटिकाद्वयमुच्यते । सायं संध्या त्रिघटिका अस्तादुपरि भानुतः ॥ ६ ॥ त्रिमुहूर्तः प्रदोषः स्याद्रवावस्तं गते ततः । महानिशा निशीथस्य मध्यस्थं घटिकाद्वयम् ॥ ७ ॥ आचारसारे—नाडिकाः पञ्च पश्चात्प्रातस्त्वेकाधिकोऽरुणः । उषःकालोऽष्टपश्चाशत्कोपः सूर्योदयः स्मृतः ॥ ८ ॥ निशीन्दूदयतो राका पूर्णिमाऽनुमतिर्दिवा । दृष्टचन्द्रा सिनीवाली स्वमा नष्टेन्दुका कुहूः ॥ ९ ॥

## अथ काललक्षणम् ।

कर्मप्रदीपे—कर्मणो यस्य यः कालस्तत्कालव्यापिनी तिथिः । तथा कर्माणि कुर्वीत ह्रासवृद्धी न कारणम् ॥ १ ॥ सूर्योदये—जन्मान्ताभ्यङ्गपानादिस्नानदन्तमृजासु च । तिथिस्तात्कालिकी ज्ञेया पारणे लेखने तथा ॥ २ ॥ कालविवेके—मध्याह्नव्यापिनी या स्यादेकभक्ते सदा तिथिः । दिनार्धसमये यस्मादेकभक्तं बुधैः स्मृतम् ॥ ३ ॥ कालनिर्णये—खर्वो दर्पस्तथा हिंसा त्रिविधं तिथिलक्षणम् । खर्वदर्पौ परौ पूज्यौ हिंसा स्यात्पूर्वकालिकी ॥ ४ ॥ खर्वो नाम तिथेः साम्यं दर्पो वृद्धिः प्रकीर्तितः । क्षयो हिंसाऽथ सद्वेधे कार्य एष विनिर्णयः ॥ ५ ॥ व्रतोपवासनियमे घटिकैका यदा भवेत् । सा तिथिः सकला ज्ञेया पित्रर्थे चाऽपराह्णिकी ॥ ६ ॥ नागो द्वादशनाडीभिर्दिक्पञ्चदशभिस्तथा । भूतोऽष्टादशनाडीभिर्दूषयत्युत्तरां तिथिम् ॥ ७ ॥ द्वादशनाडीभिः स्कन्दषष्ठीविषयम् । पञ्चदशभिर्नारायणजन्यादिविषयम् । अष्टादशभिरिति दर्शश्राद्धविषयम् । तिथ्यार्धे तु भवेद्यावद्ध्रासो वृद्धिः परेऽहनि । तावद्ग्राह्यः स पूर्वेगुरदृष्टोऽपि स्वकर्मणि ॥ ८ ॥

## अथ साधारणतिथिनिर्णयः ।

निर्णयामृते[1]—द्वितीया त्रिमुहूर्तेन नवमी याममात्रतः । दशमी घटिकार्धेन

१ द. दिग्ग त्रि°।

दूषयत्युत्तरां तिथिम् ॥ १ ॥ नागो द्वादशनाडीभिः सूर्यश्चैव तु सप्तभिः । कामोऽष्टादशनाडीभिर्दूषयत्युत्तरां तिथिम् ॥ २ ॥ स्कन्दपुराणे-प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या तिथिर्नक्तव्रते सदा । एकादशीं विना सर्वाः शुक्ले कृष्णे समाः स्मृताः ॥ ३ ॥ भविष्योत्तरपुराणे—मुहूर्तोनदिनं नक्तं प्रवदन्ति मनीषिणः । नक्षत्रदर्शनान्नक्तमहं मन्ये गणाधिप ॥४॥ प्रदोषव्यापिनी न स्याद्दिवा नक्तं विधीयते । तिथौ सास्तमये नक्तं सदैवार्कदिने दिवा ॥५॥ आत्मनो द्विगुणा छाया मन्दीभवति भास्करे । तन्नक्तं नक्तमित्याहुर्न नक्तं निशि भोजनम् ॥६॥ एवं ज्ञात्वा ततो विद्वान्सायाह्ने तु भुजिक्रियाम् । कुर्यान्नक्तव्रती नक्तं फलं भवति निश्चितम् ॥ ७ ॥ दीपिकायां—नक्षत्रदर्शनान्नक्तं गृहस्थस्य बुधैः स्मृतम् । यतेर्दिनाष्टमे भागे तस्य रात्रौ निषिध्यते ॥ ८ ॥ कालादर्शे—उदये सोपवासस्य नक्तस्यास्तमये तिथिः । मध्याह्ने दृश्यते या तु सैकभक्ते त्वयाचिते ॥ ९ ॥ उपवासे तिथिस्त्याज्या सशल्या फलकाङ्क्षिभिः । तथा विहीनशल्याऽपि वृद्धिं याति यदग्रतः ॥ १० ॥

इति साधारणतिथिनिर्णयः ।

---

## अथ तिथिनियमनवाक्यानि ।

युग्माग्नियुगभूताना षण्मुन्योर्वसुरन्ध्रयोः । रुद्रेण द्वादशी युक्ता चतुर्दश्या च पूर्णिमा ॥ १ ॥ प्रतिपद्यप्यमावास्या तिथेर्युग्मं महाफलम् । एतद्व्यस्तं महादोषं हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ॥ २ ॥ पक्षतिस्तिलकाशोककरवीरव्रते हिता । सद्वितीया तथा भ्रातृद्वितीया प्रतिपद्युता ॥ ३ ॥ ब्रह्मवैवर्ते—रम्भाख्यां वर्जयित्वा तु तृतीया द्विजसत्तम । अन्येषु सर्वकार्येषु गणयुक्ता प्रशस्यते ॥ ४ ॥ चतुर्थीसहिता या तु सा तृतीया फलप्रदा । अवैधव्यकरी स्त्रीणां पुत्रपौत्रप्रदायिनी ॥ ५ ॥ गणनाथव्रते ग्राह्या तृतीयासहिता सदा । चतुर्थी त्वन्यदेवस्य व्रते ग्राह्या परान्विता ॥ ६ ॥ षष्ठीयुक्ता सदा कार्या पञ्चमी नागपूजने । स्कन्दषष्ठी तु कर्तव्या पञ्चम्या सहिता बुधैः ॥ ७ ॥ भविष्यपुराणे—कृष्णाष्टमी स्कन्दषष्ठी शिवरात्रिचतुर्दशी । एताः पूर्वयुताः कार्यास्तिथ्यन्ते पारणं भवेत् ॥ ८ ॥ सप्तमी नाष्टमीयुक्ता न सप्तम्या युताऽष्टमी । सर्वेषु व्रतकल्पेषु न दुर्गा दशमीयुता ॥ ९ ॥ शुक्लपक्षेऽष्टमी चैव शुक्लपक्षे चतुर्दशी । पूर्वविद्धा न कर्तव्या कर्तव्या परसंयुता ॥ १० ॥ कृष्णपक्षेऽष्टमी चैव कृष्णपक्षे चतुर्दशी । पूर्वविद्धा तु कर्तव्या परविद्धा न कर्हिचित् ॥ ११ ॥ अष्टमी नवमीविद्धा नवम्या चाष्टमी तथा । अर्धनारीश्वरं प्राप्य उमामाहेश्वरी तिथिः ॥ १२ ॥

---

१ प. सोमवारस्य°।

## अथ जन्माष्टमीनिर्णयः ।

सनत्कुमार उवाच-श्रावणस्य तु मासस्य कृष्णाष्टम्यां नराधिप । रोहिणी यदि लभ्येत जयन्ती नाम सा तिथिः ॥ १ ॥ व्यासः-अर्धरात्रे तु रोहिण्यां यदा कृष्णाष्टमी भवेत्। तस्यामभ्यर्चनं शौरेर्हन्ति पापं त्रिजन्मजम् ॥ २ ॥ विष्णुरहस्ये—प्राजापत्यर्क्षसंयुक्ता कृष्णा नभसि चाष्टमी । मुहूर्तमपि लभ्येत सैवोपोष्या महाफला ॥ ३ ॥ व्यासः-जन्माष्टमी रोहिणी च शिवरात्रिस्तथैव च । पूर्वविद्धैव कर्तव्या तिथिभान्ते च पारणम् ॥ ४ ॥ रोहिणीसहिता कार्या पूर्वा वा यदि वा परा । रोहिणीसहिता पूर्वा तदन्ते पारणं भवेत् ॥ ५ ॥ जयन्ती शिवरात्रिश्च कार्ये भद्राजयान्विते । कृत्वोपवासं तिथ्यन्ते तदा कुर्याच्च पारणम् ॥ ६ ॥ नारदः-कार्या विद्धाऽपि सप्तम्या रोहिणीसहिताऽष्टमी । तत्रोपवासं कुर्वीत तिथिभान्ते च पारणम् ॥ ७ ॥ व्यासः-तिथ्यृक्षयोर्यदा छेदो नक्षत्रान्तमथापि वा । अर्धरात्रेऽथवा कुर्यात्पारणं त्वपरेऽहनि ॥ ८ ॥ पारणं तिथिभान्ते च कुर्यादेकस्य वा क्षये । अतोऽन्यथा पारणायां व्रतभङ्गमवाप्नुयात्॥९॥ याः काश्चित्तिथयः प्रोक्ताः पुण्या नक्षत्रयोगतः । ऋक्षान्ते पारणं कुर्याद्विना श्रवणरोहिणी(ण्यौ) ॥१०॥ एतत्संभवाभिप्रायम् । विष्णुरहस्ये-मुहूर्तेनापि संयुक्ता संपूर्णा साऽष्टमी भवेत् । किं पुनर्नवमीयुक्ता कुलकोट्यास्तु मुक्तिदा ॥ ११ ॥ व्यासः-दिनद्वयेऽप्यर्धरात्रे योगस्तिथिभयोर्यदा । तदा परदिने कार्यं जयन्तीव्रतमुत्तमम् ॥ १२ ॥ स्कन्दपुराणे—उदये चाष्टमी किंचिन्नवमी सकला यदि । लभ्यते बुधसंयुक्ता प्राजापत्यर्क्षसंयुता । अपि वर्षशतेनापि लभ्यते वा न वा विभो ॥ १३ ॥ पद्मपुराणे-प्रेतयोनिगणानां तु प्रेतत्वं नाशितं नरैः । यैः कृता श्रावणे मासि त्वष्टमी रोहिणीयुता ॥ १४ ॥ किं पुनर्बुधवारेण सोमेनापि विशेषतः । किं पुनर्नवमीयुक्ता कुलकोट्यास्तु मुक्तिदा ॥ १५ ॥ सूर्योदये-सर्वथा सप्तमीयुक्ता संत्याज्या सर्ववैष्णवैः । उपोष्या नवमीयुक्ता तदुक्तं पुष्करे स्फुटम् ॥ १६ ॥ वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमीसंयुताऽष्टमी । सऋक्षाऽपि न कर्तव्या सशल्या सा प्रकीर्तिता ॥ १७ ॥ अत्र निर्णयः-अर्धरात्रे तु योगोऽयं रोहिण्या भवति क्वचित् । तामेवोपवसेन्नान्यामर्धरात्रोपयोगतः ॥ १८ ॥ अष्टम्यां रोहिणीयोगो मध्यरात्रे दिनद्वये । तदोत्तरैव कर्तव्या न पूर्वेत्येष निर्णयः ॥ १९ ॥ जयन्ती बुधवारेण सोमवारेण वा पुनः । लभ्यते दैवयोगेन तामुपोष्य महाफलम् ॥ २० ॥

## अथ रामनवमी ।

ब्रह्मवैवर्ते-नवमी चाष्टमीविद्धा त्याज्या रामपरायणैः । उपोषणं नवम्यां तु दशम्यामेव पारणम् ॥ १ ॥ श्रीरामजन्मनवमी संपूर्णफलदा सदा । खण्डा चेत्परविद्धैवादितियुक्ता विशेषतः ॥ २ ॥ अष्टम्या नवमी विद्धा कर्तव्या फलकाङ्क्षिभिः । सदुर्गा वा सनन्दा वा कर्तव्या दशमी सदा ॥ ३ ॥

## अथैकादशीनिर्णयः ।

## तत्र नित्यैकादश्युपवासविषयाणि वचनानि ।

ऋष्यशृङ्गः-एकादशी न लभ्येत सकला द्वादशी भवेत् । उपोष्या दशमीविद्धा ऋषिरुद्दालकोऽब्रवीत् ॥ १ ॥ भविष्यपुराणे—एकादशी दशायुक्ता परतोऽपि न वर्तते । यतिभिर्गृहिभिश्चैव सैवोपाष्या क्षये तिथिः ॥ २ ॥ ऋष्यशृङ्गः—पारणाहे न लभ्येत द्वादशी सकलाऽपि चेत् । तदानीं दशमीविद्धामुपोष्यैकादशीं तिथिम् ॥ ३ ॥ हारीतः-त्रयोदश्यां यदा न स्याद्द्वादशी घटिकाद्वयम् । दशम्येकादशीमिश्रा सैवोपोष्या सदा तिथिः ॥ ४ ॥ विष्णुरहस्ये—दशमीशेषसंयुक्ता उपोष्यैकादशी सदा । यदा स्यान्न त्रयोदश्यां मुहूर्त द्वादशी तिथिः॥५॥ भविष्यपुराणे-विद्धाऽप्येकादशी ग्राह्या परतो द्वादशी न चेत् । द्वादश द्वादशीं हन्ति त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥६॥ विद्धाऽप्यविद्धा विज्ञेया परतो द्वादशी न चेत् । अविद्धाऽपि तथा विद्धा परतो द्वादशी यदि ॥ ७ ॥ वराहपुराणे – संपूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा । सर्वैरेवोत्तरा कार्या परतो द्वादशी यदि ॥ ८ ॥ ब्रह्मवैवर्ते-द्वादश्यामुपवासस्तु द्वादश्यामेव पारणम् । वञ्जुली वैष्णवैः कार्या हत्यायुतविनाशनी ॥ ९ ॥

## अथ काम्यैकादशीवचनानि ।

कालनिर्णये-भार्तवेधः कृतयुगे त्रेतायामरुणोदये । द्वापरे तु उषःकाले कलौ सूर्योदये स्मृतः ॥ १ ॥ गरुडपुराणे-उदयात्प्राग्यदा विप्र मुहूर्तद्वयसंयुता । संपूर्णैकादशी नाम तत्रैवोपवसेद्गृही ॥ २ ॥ पुनः प्रभातसमये घटिकैका यदा भवेत् । तत्रोपवासो विहितश्चतुर्थाश्रमवासिनाम् ॥ ३ ॥ कूर्मपुराणे—संपूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा । उत्तरां तु यतिः कुर्यात्पूर्वामुपवसेद्गृही ॥ ४ ॥ विष्णुरहस्ये-दशमीशेषसंयुक्तामुपोष्यैकादशीं किल । संवत्सरकृतेनेह नरो धर्मेण मुच्यते ॥ ५ ॥ वराह-यदि दैवात्तु संसिध्येदेकादश्यां तिथित्रयम् । तत्र

क्रतुशतं पुण्यं द्वादशीपारणं भवेत् ॥ ६ ॥नक्षत्रेर्त्रे—दशमीशेषसंयुक्तां यः करोति स मूढधीः । एकादशीफलं तस्य न स्याद्द्वादशवार्षिकम् ॥ ७ ॥ पितामहः—एकादशी यदा वत्स दिनक्षयतिथिर्भवेत् । तत्रोपोष्या द्वादशी स्यात्त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥ ८ ॥ एतत्तु नन्दवृद्धिविषयम् । एकादशीदिनक्षय उपवासं करोति यः तस्य पुण्यानि नश्यन्ति मघायां पिण्डदो यथा ॥ ९ ॥ मत्स्य. दिनक्षयेऽर्कसंक्रान्तौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । उपवासं न कुर्वीत पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥ १० ॥ नारदः—रविवारेऽर्कसंक्रान्तावसितैकादशीदिने । दर्शे पाते कृते श्राद्धे पुत्री नोपवसेद्गृही ॥ ११ ॥ भार०—संक्रान्त्यामुपवासेन पारणेन युधिष्ठिर । एकादश्यां तु कृष्णायां ज्येष्ठपुत्रो विनश्यति ॥ १२ ॥ वायुपुराणे—उपवासनिषेधे तु भक्ष्यं किंचित्प्रकल्पयेत् । न दुष्यत्युपवासेन उपवासफलं लभेत् ॥ १३ ॥ उदयव्यापिनी ग्राह्या श्रवणद्वादशी बुधैः । शुक्ले पूर्वा परा कृष्णे व्रते ग्राह्या त्रयोदशी ॥ १४ ॥ आभाकार्पा सिते पक्षे मैत्रश्रुत्यन्त्यरोहिणी । संयोगे नैव भोक्तव्यं द्वादश द्वादशीर्हरेत् ॥ १५ ॥ मैत्रर्क्षं च कृते त्याज्यं त्रेतायां रेवतीं त्यजेत् । द्वापारे रोहिणी त्याज्या कलौ च श्रवणं त्यजेत् ॥ १६ ॥

## अथ शिवरात्रिनिर्णयः ।

स्कन्दपुराणे—निशि भ्रमन्ति भूतानि शक्तयः शूलभृद्यतः । अतस्तस्यां चतुर्दश्यां सत्यां तत्पूजनं भवेत् ॥ १ ॥प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिः शिवप्रियैः । रात्रौ जागरणं यस्मात्तस्मात्तां समुपोषयेत् ॥ २ ॥ कालनिर्णये—माघासिते भूतदिनं हि राजन्नुपैति योगं यदि पञ्चदश्या । जयाप्रयुक्तां न तु जातु कुर्याच्छिवस्य रात्रिं प्रियकृच्छिवस्य ॥ ३ ॥ स्मृतिसंग्रहे उपोष्यास्तिथयः सर्वाः सर्वत्र व्रतचारिभिः । तिथ्यन्ते पारणं कुर्याद्विना शिवचतुर्दशीम् ॥ ४ ॥ उपोषणं चतुर्दश्यां चतुर्दश्यां तु पारणम् । कृतैः सुकृतलक्षैश्च प्राप्यते वा न वा नरैः ॥ ५ ॥ त्रयोदशी दिनास्तान्ता प्रदोषे च चतुर्दशी । त्रिवर्गप्राप्तये कार्या गृहस्थैः शिवतोषिणी ॥ ६ ॥ माघे चतुर्दशी कृष्णा या भवेद्रजनीमुखे । तद्दिने ह्युपवासः स्यात्तिथ्यन्ते पारणं भवेत् ॥ ७ ॥ त्रयोदश्या युता कार्या शिवरात्रिचतुर्दशी । पारणाहे चतुर्दश्यां यावदस्तं याति नो रविः ॥ ८ ॥ व्यास—त्रयोदशी यत्र देवि दिनभुक्तिप्रमाणतः । जागरे शिवरात्रिः स्यान्निशि पूर्णा चतुर्दशी ॥ ९ ॥ शिवरात्रिः परा कार्या यदि रात्रौ त्रयोदशी । अन्यथा तु भवेत्पूर्वा परमा चेद्भुजिक्षमा ॥ १० ॥ तिथ्यन्ते चैव भान्ते च पारणं यत्र चोदितम् । यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां प्रातरेव हि पारणम् ॥ ११ ॥

## अथ पूर्णिमानिर्णयः ।

भूतविद्धा न कर्तव्या पूर्णिमा च कदाचन । वर्जयित्वा मुनिश्रेष्ठाः सावित्रीव्रतमुत्तमम् ॥ १ ॥ रामकौतुके—पूर्वा दूर्वा शिवपुत्रा सावित्री श्रावणी वटः । रम्भा दुर्गा वृहज्जन्म रोहिण्यग्रबलिः स्मरः ॥ २ ॥ वृद्धशून्यशयनी द्वितीया । श्रावणी पौर्णमासी च संगवस्पृग्यदा भवेत् । तदौदयिकी ग्राह्या नान्यदोदयगा क्वचित् ॥ ३ ॥ कारिकायाम्—उपाकर्मक्रियां कुर्यात्प्रातर्युक्ते तु कर्मणि । श्रुतिद्वययुता कार्या नोत्तराषाढसंयुता ॥ ४ ॥ पवित्रारोपणादौ तु पूर्वा पूर्णा प्रशस्यते । परोपाकर्मणि ग्राह्या ग्रहसंक्रान्तिवर्जिता ॥ ५ ॥ गर्गः—अर्धरात्रात्पुरस्ताच्चेत्संक्रान्तिग्रहणं भवेत् । उपाकर्म न कर्तव्यं परतश्चेन्न दोषकृत् ॥६॥ वेदोपाकरणे प्राप्ते कुलीरे संस्थिते रवौ । गर्गः प्राह प्रकर्तव्यं कर्तव्यं सिंहसंस्थिते ॥ ७ ॥ उत्सर्गोपाकृतेर्यश्च प्रारम्भः प्रथमो बुधैः । न कर्तव्योऽस्तगे शुक्रे बाले वृद्धे तथा गुरौ ॥८॥ कात्यायनः-ग्रहसंक्रान्तिरहिताः श्रुतिपर्वकराः क्रमात् । परविद्धा उपादेया ऋग्यजुःसामशाखिनाम् ॥९॥ विश्वरूपे—मध्याह्नव्यापिनी या च भाद्रे शुक्लचतुर्दशी । सैवानन्तव्रते ग्राह्या पूर्वायुक्ता विशेषतः ॥ १० ॥ चतुर्दश्युत्तरा शुक्ला पूर्वा कृष्णा चतुर्दशी । उदये द्विमुहूर्ताऽपि ग्राह्याऽनन्तव्रते तिथिः ॥ ११ ॥ स्कन्दपुराणे—जयायोगेन यः कुर्याद्रिक्तायां पूजनं हरेः । वर्षपूजाफलं तस्य वाप्कलेयाय गच्छति ॥ १२ ॥ अतो मुहूर्तमात्राऽपि पूर्णिमायां चतुर्दशी । तस्यामभ्यर्चनं कुर्यादनन्तस्य विशेषतः ॥ १३ ॥ कालादर्शे—प्रतिपद्या वत्सरादौ प्रतिपच्च बलेस्तथा । पूर्वविद्धा न कर्तव्या कर्तव्या परसंयुता ॥१४॥ वसिष्ठः—नन्दां संवत्सरादौ तु दर्शविद्धां न कारयेत् । बलेः प्रतिपदं चैव सर्वश्रेयोविनाशिनीम् ॥ १५ ॥ कालनिर्णये—द्वे शुक्ले द्वे च कृष्णे च युगादी कवयो विदुः । शुक्ले पूर्वाह्णिके ग्राह्ये कृष्णे चैवाऽऽपराह्णिके ॥ १६ ॥ *(हेमाद्रौ पितामहः—चैत्रे मासि जगद्ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि । शुक्ले पक्षे समग्रं तु तदा सूर्योदये सति ॥ १७ ॥

## अथाऽऽन्दोलननिर्णयः ।

चैत्रशुक्लतृतीयायां गौरीमीश्वरसंयुताम् । मुहूर्तमात्रसत्त्वेऽपि दिने गौरीव्रतं परे ॥ १ ॥ मात्स्ये—वसन्तमासमासाद्य तृतीयायां जनप्रिये । सौभाग्याय सदा स्त्रीभिः कार्यं पुत्रसुखेप्सुभिः ॥ २ ॥ देवीपुराणे—तृतीयायां मधोः शुक्ले पूजयेद्देवि शंकरम् । कुङ्कुमागरुकर्पूरमणिवस्त्रसुगन्धकैः ॥ ३ ॥ स्रग्गन्धधूपदीपैश्च दमनेन विशेषतः । आन्दोलयेत्ततो वत्स शिवोमातुष्टये सदा ॥ ४ ॥

---

* धनुश्चिह्नितग्रन्थो ध. पुस्तकस्थः ।

## अथाक्षयतृतीयानिर्णयः । )

प्रचेताः—तृतीयाऽह्नद्वये शुक्ला मध्याह्ने प्राप्य माधवे । प्रथमैव तदा कार्या निष्फला तु परा स्मृता ॥ १ ॥ रोहिणीबुधसंयुक्ता तृतीया माधवे यदि । विशेषफलदा सा तु स्नानदानजपादिषु ॥ २ ॥ नारदीये—गौरी. विनायकोपेता जायते यदि भूपते । विनाऽपि रोहिणीयोगात्पुण्यं कोटिगुणं भवेत् ॥ ३ ॥ गरुडपुराणे प्रेतरूपाः पितरश्चण्डशर्माणं प्रत्यूचुः—वैशाखस्य तृतीयां यः पूर्वविद्धां करोति वै । हव्यं देवा न गृह्णन्ति कव्यं च पितरस्तथा ॥ ४ ॥ नारदः—पूर्वविद्धादिने दत्तं पितॄणां नोपतिष्ठति । नैव गृह्णाति वैकुण्ठः पूजां तद्दिनसंभवाम् ॥ ५ ॥ देवीपुराणे—भद्राग्निऋक्षसंयुक्तं यदि कुर्याद्युगादिकम् । रुदन्ति पितरस्तस्य निराशाः पितरो गताः ॥ ६ ॥ भद्रायाः फलमेकं तु तृतीया सकला भवेत् । द्वितीयासहिता कार्या रविपर्वसमं फलम् ॥ ७ ॥ भद्रातिथौ न कर्तव्या यागाश्चैव युगादिषु । चतुर्थीसहिता युक्ता रोहिण्या मनुरब्रवीत् ॥ ८ ॥ तृतीयायां तु वैशाखे रोहिण्यृक्षं प्रपूजयेत् । उदकुम्भप्रदानेन ब्रह्मलोके महीयते ॥ ९ ॥ जया भद्रातिथिर्मिश्रा प्राजापत्यर्क्षसंयुता । उदकान्नं च मे दत्तं यज्ञकोटिफलं लभेत् ॥१०॥ देवीपुराणे—सिंहस्थे चोत्तमा सूर्ये शुदिते फलशोद्भवे । मुहूर्ते रोहिणी पूर्वा पूज्या सुखसुताप्तये ॥ ११ ॥ कन्यागते तु या सूर्ये पूजयेदमृतोद्भवम् । विपकन्या भवेत्सा तु तथैव घटजोदये ॥१२॥ श्रावणे चैव भाद्रेऽपि घटजो नोदयेद्यदि । शुक्ले वा कृष्णपक्षे वा पूजयेदमृतोद्भवम् ॥ १३ ॥ ब्रह्माण्डपुराणे—दूर्वाष्टमी मेघपूजा पवित्रारोपणं हरेः । अगस्तेरुदयादूर्ध्वं निष्फलं जायते ध्रुवम् ॥ १४ ॥ दूर्वा चेद्रोहिणीयुक्ता सैव जन्माष्टमी भवेत् । विरूढात्प्राशनात्स्त्रीणां नोपवासस्तु लुप्यते ॥ १५ ॥ चिन्तामणौ—मैत्रविद्धा सदा कार्या ज्येष्ठा कामप्रदायिनी । मूलविद्धा न कर्तव्या ज्येष्ठा कामविनाशिनी ॥ १६ ॥ मूलविद्धा कृता ज्येष्ठा पुरा दुर्योधनेन हि । आयुःक्षयं गताः सर्वे तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥ १७ ॥ व्यास—प्रभोः श्रावणमासस्य या शुक्ला च चतुर्दशी । सावित्रीव्यापिनी ग्राह्या नान्या शुक्ला कदाचन ॥ १८॥ पवित्रारोपणं विघ्नाच्छ्रावणे न भवेद्यदि । कार्तिक्यवधि शुक्रार्के कर्तव्यमिति नारदः ॥ १९ ॥ वैशाखे दमनारोपः स्यान्मधौ विघ्नतो यदि । पवित्रदमनारोपे पूर्वोक्तास्तिथिदेवताः ॥ २० ॥

## अथ पर्वनिर्णयः ।

सप्ताहो द्विधा विभागो ग्राह्यः । कात्यायनः—तिथेः परस्था घटिकास्तु याः

स्युर्न्यूनास्तथैवाभ्यधिकास्तु तासाम् । अर्धं वियोज्यं च तथा प्रयोज्यं ह्रासे च वृद्धौ प्रथमे दिने तत् ॥ १ ॥ पर्वणो यश्चतुर्थांश आद्याः प्रतिपदस्त्रयः । यागकालः स विज्ञेयः प्रातरुक्तो मनीषिभिः ॥ २ ॥ अपराह्णेऽथवा रात्रौ यदि पर्व समाप्यते । उपोष्य तस्मिन्नहनि श्वोभूते याग इष्यते ॥ ३ ॥ उपोष्येत्यन्वाधानादिकर्म । त्रिमुहूर्ता द्वितीया चेत्प्रतिपद्यापराह्णिकी । अन्वाधानं चतुर्दश्यां परतः सोमदर्शनात् ॥ ४ ॥ पूर्वाह्णे वाऽथ मध्याह्ने यदि पर्व समाप्यते । उपोष्य तत्र पूर्वेद्युस्तदहर्याग इष्यते ॥ ५ ॥ पञ्चमी यत्र संपूर्णा द्वितीया क्षयगामिनी । चतुरिष्टिरमावास्या भूने कव्यादिकी क्रिया ॥ ६ ॥ यागकालात्तिथिर्द्वैधपद्फला यदि दृश्यते । पर्व तत्रोत्तरं ग्राह्यं हीने पूर्वं प्रकल्पयेत् ॥ ७ ॥ शातातपः– यस्मादह्नस्तृतीयेऽह्नि परे चन्द्रोदयो भवेत् । चन्द्रक्षयः स विज्ञेयः श्रौते च श्राद्धकर्मणि ॥ ८ ॥ संधिश्चेत्संगवादूर्ध्वं प्राक् चैवाऽऽवर्तनाद्रवेः । पौर्णमासीति विज्ञेया सद्यःकालविधौ तिथिः ॥ ९ ॥

## अथ श्राद्धतिथिनिर्णयः ।

* ( भृगुः–मलमासमृतानां तु यच्छ्राद्धं प्रतिवत्सरम् । मलमासे तु तत्कार्यं नान्येषां तु कदाचन ॥ १ ॥ अतो मलमासमृतानां कादाचित्कं प्रत्याब्दिकं मलमासेऽपि(एव) कार्यं श्रा(शु)द्धमासमृतानां च प्रथमाब्दिकं तत्र कार्यं द्वितीयाब्दादिकं तु शुद्धमास इति ।) मत्स्यपुराणे–पितृभ्यश्च तिथेर्मूलं सुरेभ्यः प्रातरेव च । प्रदत्तो(त्तं) ब्रह्मणा पूर्वं विधिमेनं न लङ्घयेत् ॥२॥ याज्ञवल्क्यः–पूर्वाह्णे दैविकं श्राद्धमपराह्णे तु पार्वणम् । एकोद्दिष्टं तु मध्याह्ने प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम् ॥ ३ ॥ गर्गः–अह्नः पञ्चदशो भागो मुहूर्त इति कथ्यते । अष्टमः कुतुपस्तत्र श्राद्धारम्भः प्रशस्यते ॥ ४ ॥ श्राद्धकल्पे–श्राद्धकालस्तु सर्वेषां कुतुपात्क्षणपञ्चकम् । दर्शश्राद्धे तु साग्नीनां सायाह्नो वाऽप्यसंभवे ॥ ५ ॥ पितामहः–सिनीवाली द्विजैः कार्या साग्निकैः पितृकर्मणि । द्विजैरनग्निकैः शूद्रैः स्त्रीभिः कार्या कुहूः सदा ॥६॥ चन्द्रिकायां–तिथिक्षये सिनीवाली तिथिवृद्धौ कुहूः स्मृता । साम्येऽपि च कुहूर्ज्ञेया दर्शश्राद्धादिकर्मसु ॥ ७ ॥ दक्षः–अपराह्णे त्वमा ग्राह्या श्राद्धकर्मणि सर्वदा । तस्मिन्नमा यदा न स्यात्तदा मध्यंदिने मता ॥ ८ ॥ यो यस्य विहितः कालः श्राद्धस्यात्र स्वयंभुवा । तत्कालव्यापिनी या स्यात्सैव ग्राह्या तिथिर्बुधैः ॥ ९ ॥ दिनद्वयेऽपि संपूर्णा स्वकालव्यापिनी भवेत् । तदा पूर्वा पितृश्राद्धे

---

* धनुश्चिह्नितग्रन्थो घ. पुस्तकस्थः ।

---

१ ख. कालतिथिर्वेधप° । घ. कालतिथैर्द्वैध° ।

मातृश्राद्धे परा स्मृता ॥ १० ॥ असंपूर्णापराह्णा तु यायिनी चेद्दिनद्वये । तदा संपूर्णकुतुपव्यापिनी गृह्यते तिथिः ॥ ११ ॥ हारीतः—अपराह्णद्वये चामा यदि स्यात्तत्र याऽधिका । सा ग्राह्या यदि तुल्या स्यादग्रे वृद्धौ परा स्मृता ॥ १२ ॥ निर्णयवचनं—श्राद्धे पराह्णगा ग्राह्या नचेत्सायाह्नगा तिथिः । द्व्यपराह्णस्पृगाद्या तु पैतृके मातृके परा ॥ १३ ॥ अनल्पकालवर्तिन्यां तिथौ कर्म विधीयते । साम्ये पूर्वा परा वाऽपि क्षये पूर्वा च या परा ॥ १४ ॥ पितामह.—दर्शं च पौर्णमासं च पित्रोः सांवत्सरं दिनम् । पूर्वविद्धमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ॥ १५ ॥ स्वकर्मकालपर्याप्ता तिथिर्न स्याद्यदा तदा । तिथौ सत्यां प्रकुर्वीत प्रारम्भं वा समापनम् ॥ १६ ॥

इति श्राद्धतिथिनिर्णयः ।

---

## + ( अथ नवरात्रप्रतिपन्निर्णयः ।

ततो नीराजनं कार्यं प्रतिपद्याश्विने सिते । प्रारम्भो नवरात्रस्य हित्वा चित्रां च वैधृतिम् ॥ १ ॥ वैधृतिस्तु तथा चित्रा समग्रा प्रतिपद्दिने । प्रभाते प्रतिपन्नास्ति यदा कुर्यात्तदैव हि ॥ २ ॥ चित्रावैधृतियोगस्तु भवेद्यामत्रयं यदि । प्रातरेव तदा कार्यं नवरात्रं सदा बुधैः ॥ ३ ॥ आद्यास्तु नाडिकास्त्याज्याः षोडश द्वादशाथवा । देवीपूजा प्रकर्तव्या शुद्धसंततिकाङ्क्षिभिः ॥ ४ ॥ वृद्धौ समाप्तिरष्टम्यां क्षयेऽमाप्रतिपन्निशि । प्रारम्भो नवरात्रस्य नवरात्रमथार्थवत् ॥५॥ )

## अथ महानवमीनिर्णयः ।

मदनपारिजाते—सप्तमी स्वल्पसंयुक्ता त्याज्येयस्य सिताष्टमी । स्तोकाऽपि सा तिथिः पुण्या यस्यां सूर्योदयो भवेत् ॥ १ ॥ यदा सूर्योदये न स्यान्नवमी वा परेऽहनि । तदाऽष्टमीं प्रकुर्वीत सप्तम्या सहितां नृप ॥ २ ॥ बलिदाने कृतेऽष्टम्यां पुत्रभङ्गो भवेद्ध्रुवम् । नवम्यां तु कृतं राज्ञा देशे राष्ट्रे सुखावहम् ॥ ३ ॥ कालनिर्णये—नन्दायां ज्वलितो वह्निः पूर्णायां पशुपातनम् । भद्रायां गोधनक्रीडा तत्र राज्यं विनश्यति ॥ ४ ॥ सूर्योदये—अश्वयुक्शुक्लनवमी ह्यष्टमी मूलसंयुता । सा महानवमी तस्यां जगन्मातरमर्चयेत् ॥ ५ ॥

इति महानवमीनिर्णयः ।

---

+ धनुश्चिह्नितग्रन्थो ख. घ. पुस्तकस्थः ।

## अथ विजयादशमीनिर्णयः ।

निर्णयरूपनिर्णये—आश्विनस्य सिते पक्षे सीमातिक्रमणोत्सवः । विजयाय मुहूर्तोऽयं कर्तव्यो विजये क्षणे ॥१॥ नवम्या सहिता कार्या दशम्याश्वयुजः सिता। एकादश्या युता जातु न कार्या जयकाङ्क्षिभिः ॥२॥ पुराणे—नवमीशेषयुक्तायां दशम्यां विजयोत्सवम् । कुरु राम त्वमित्युक्तं वसिष्ठेन महात्मना ॥३॥ काठोक्तौ— या पूर्णा नवमीयुक्ता तस्यां पूज्याऽपराजिता । ददाति विजयं सौख्यं यात्रायां सर्वदिक्षु च ॥ ४ ॥ आश्विनस्य सिते पक्षे दशम्यां सर्वराशिषु । सायंकाले शुभा यात्रा दिवा वा विजयक्षणे ॥ ५ ॥ एकादशो मुहूर्तो विजयः । चिन्तामणौ—आश्विनस्य सिते पक्षे दशम्यां तारकोदये । स कालो विजयो ज्ञेयः सर्वकार्यार्थसिद्धये ॥ ६ ॥ रत्नकोशे—ईषत्संध्यामतिक्रान्तः किंचिदुद्भिन्नतारकः । विजयो नाम कालोऽयं सर्वकार्यार्थसिद्धये ॥ ७ ॥ इषस्य दशमीं शुक्लां पूर्वविद्धां न कारयेत् । श्रवणेनापि संयुक्तां राज्ञां पट्टाभिषेचने ॥ ८ ॥ सूर्योदये यदा राजन्दृश्यते दशमी तिथिः । आश्विने मासि शुक्ले तु विजयां तां विदुर्बुधाः ॥ ९ ॥ तथा च स्कन्दपुराणे—मार्तण्डस्योदये पुण्या वर्तते दशमी तिथिः । आश्विने शुक्लपक्षे तु सा भवेज्जयदा नृणाम् ॥ १० ॥ निषिद्धमपि कर्तव्यं तैलाभ्यञ्जनमादरात् । अश्वानामपि कर्तव्यं तैलस्नानं नदीजले ॥ ११ ॥ तूर्यघोषसमायुक्तान्पुरं प्रावेशयेद्धयान् । पुष्पमालापरीतांस्तान्हयांश्चन्दनभूषितान् ॥ १२ ॥ चामरैर्वीज्यमानांश्च साधुशब्दैश्च लालितान् । राजद्वारि समाविष्टान्स्त्रीभिर्नीराजितान्हयान् ॥१३॥ सपूज्य विधिवद्राजा नमस्कुर्यात्प्रयत्नतः । भक्ष्यं भोज्यं स्वहस्तेन भोजयेत्तुरगान्नृपः ॥ १४ ॥ वाहाधिकारिणः सर्वान्दानमानैस्तु तोषयेत् । तथैव वारणान्राजा पूजयेच्चक्रमेलकान् ॥ १५ ॥ नाममन्त्रेण विधिवच्चतुर्थ्यन्तेन मन्त्रवित् । कृताभ्यङ्गो महाघोषैस्तूर्याणां शुभलब्धये ॥ १६ ॥ ततश्च पूजयेद्देवान्गन्धपुष्पादिकैरलम् । आहूय ब्राह्मणान्सर्वान्वाचयेत्स्वस्ति मङ्गलम् ॥ १७ ॥ ततस्तुरगमारुह्य तूर्यघोषसमन्वितः । वन्दिभिः स्तूयमानस्तु समानशकुनैर्व्रजेत् ॥ १८ ॥ ज्योतिःशास्त्रोदितां काष्ठां सुहृद्भिः परिवारितः । संप्राप्तस्तु शमीवृक्षमश्मन्तकमथापि वा ॥ १९ ॥ अवतीर्य नृपो वाहाद्वेगात्सह पुरोधसा । संनिषण्णः शमीमूलं विदध्यात्स्वस्तिवाचनम् ॥ २० ॥ कार्योद्देशाज्जनैः सार्कं प्रयोगं कुशलैर्वदन् । ततः प्रोक्ष्य शमीमूले भूमिं भूमिपतिर्ध्रुवम् ॥ २१ ॥ उत्कृत्य मृत्तिकां तत्र प्रक्षिपेत्तण्डुलाङ्छुभान् । सपूगं हेम शक्त्या तु ह्यभावे रौप्यमुत्तमम् । ततः प्रदक्षिणं कुर्यात्तस्य वृक्षस्य

भूपतिः ॥२२॥ तत्र मन्त्रः–शमी शमयते पापं शमी शत्रुविनाशिनी । धरित्र्यर्जुनबाणानां रामस्य प्रियवादिनी ॥ २३ ॥ करिष्यमाणा या यात्रा यथाकालं सुखं मया । तत्र निर्विघ्नकर्त्री त्वं भव श्रीरामपूजिते ॥ २४ ॥ अश्मन्तक महावृक्ष महादोषनिवारण । इष्टानां दर्शनं देहि शत्रूणां च विनाशनम् ॥ २५ ॥ ततः शमीतरोर्वाऽश्मन्तकस्य वोभयोः पत्राणि गृहीत्वा तस्यां मृदि तण्डुलहेमानि प्रक्षिप्य गोलकं कृत्वा सर्वकार्यसिद्ध्यर्थं गृह्णाति । ततो वृक्षं नमस्कृत्य दिग्लिङ्गैर्मन्त्रैः प्राचीपूर्व[क]दिग्जयं गृहीतखड्गः करोति । एवं त्रिचतुःपादक्रमेण तुलितासिर्दिग्विजयं कृत्वा शत्रवो जिता इति ब्रूयात् । इन्द्रादीन्देवान्विप्रांश्च नमस्कृत्य स्वपुरं प्रविशेत् । ततः सविप्रः स महाद्वारसमीपे पुण्यस्त्रीभिर्नीराजितो द्वारि न्यस्तेषु मञ्चकेषु तुलिकोपरि तण्डुलैः कृतमूर्तिषु शत्रुषु पादं कृत्वा लब्धविप्रानुज्ञो निषण्णो भूत्वा द्रव्यवस्त्रताम्बूलादि सर्वं दद्यात् । एवं कृत्वा विसर्ज्याऽऽशु सर्वान्पौरान्निजालयान् । प्रतिवर्षं कृते चैवं सर्वकार्यपरो भवेत् ॥ २६ ॥ एवं सर्वेषु पौरेषु विधिरेष सनातनः । निष्पादितो यथाधर्मं विदधाति सुखं श्रियम् ॥ २७ ॥ एवं कृते विधाने च तुष्टिदे पुष्टिदे नृणाम् । सर्वपौरजनैः सार्धं विजयं प्राप्नुयान्नृपः ॥ २८ ॥

इति विजयादशमीनिर्णयः ।

---

## अथ दीपोत्सवनिर्णयः ।

आश्विनस्यासिते पक्षे लक्ष्मीर्निद्रां विमुञ्चति । सा च दीपावली प्रोक्ता सर्वकल्याणरूपिणी ॥ १ ॥ इषासितचतुर्दश्यामिन्दुक्षयतिथावपि । ऊर्जादौ स्वातिसंयुक्ते तदा दीपावली भवेत् ॥ २ ॥ तैले लक्ष्मीर्जले गङ्गा दीपावलितिथौ वसेत् । अलक्ष्मीपरिहारार्थं तैलाभ्यङ्गं तु कारयेत् ॥ ३ ॥ * ( स्मृतिदर्पणे–चतुर्दशी याऽऽश्वयुजस्य कृष्णा स्वात्यर्क्षयुक्ता च भवेत्प्रभाते । स्नानं समभ्यज्य नरैस्तु कार्यं सुगन्धितैलेन विभूतिकामैः॥ ४ ॥ ) भविष्योत्तरे–आश्विनस्यासिते पक्षे चतुर्दश्यां विधूदये । स्नातव्यं तिलतैलेन नरैर्नरकभीरुभिः ॥ ५ ॥ + ( सर्वज्ञनारायणः–तथा कृष्णचतुर्दश्यामाश्विनेऽर्कोदयात्पुरा । यामिन्यां पश्चिमे यामे तैलाभ्यङ्गो विशिष्यते ॥ ६ ॥ कालादर्शे–मृगाङ्कोदयवेलायां त्रयोदश्यां यदा भवेत् । दर्शे वा मङ्गलस्नानं दुःखशोकफलप्रदम् ॥ ७ ॥ हेमाद्रौ–त्रयोदशी यदा प्रातः क्षयं याति चतुर्दशी । रात्रिशेषे त्वमावास्या तदाऽभ्यङ्गे त्रयोदशी॥८॥

---

* धनुश्चिह्नितग्रन्थो घ. पुस्तकस्थः । + धनुश्चिह्नितग्रन्थो घ. पुस्तके ।

अमावास्याचतुर्दश्योः प्रदोषे दीपदानतः । यममार्गान्धकारेभ्यो मुच्यते कार्तिके नरः ॥ ९ ॥ ज्योतिषे—तुलासंस्थे सहस्रांशौ प्रदोषे भूतदर्शयोः । उल्काहस्ता नराः कुर्युः पितॄणां मार्गदर्शनम् ॥ १० ॥ ब्राह्मे-अपराह्णे प्रकर्तव्यं श्राद्धं पितृपरायणैः । प्रदोषसमये राजन्कर्तव्या दीपमालिका ॥ ११ ॥) अपामार्गं भ्रामयित्वा संकुर्याद्यमतर्पणम् । नरकाय प्रदातव्यो दीपः संपूज्य देवताः ॥ १२ ॥ अमायामाश्विने मासि पितृकर्म विधाय च । दीपदानं ततः कुर्यात्प्रदोषे च तथोल्मुकम् ॥ १३ ॥ नीराजनं द्वितीयेऽह्नि प्रातःकाले विधीयते । द्वितीयायां स्वसा भ्रातुर्विदध्यान्मङ्गलोत्सवम् ॥ १४ ॥ उषस्यभ्यञ्जनं दीपं स्नात्वा नीराजनं ततः । कुर्यात्संलग्नमेतच्च दीपोत्सवदिनत्रयम् ॥ १५ ॥ आश्विने मासि भूतादितिथयः कीर्तितास्त्रयः । दीपदानादिकृत्येषु ग्राह्या मध्याह्नकालिकाः ॥१६॥ यदि स्युः संगवादर्वाग्गताश्च तिथयस्त्रयः । दीपदानादिकृत्येषु कर्तव्याः पर्वसंयुताः ॥ १७ ॥ कालनिर्णये—वत्सरादौ वसन्तादौ बलिराज्ये तथैव च । प्रतिपत्पूर्वविद्धा नो कर्तव्या तु कथंचन ॥ १८ ॥ वसिष्ठः—मुहूर्ते वर्तते दर्शो माङ्गल्यं तद्दिने भवेत् । वित्तापत्यकलत्रादि तत्सर्वं नश्यति ध्रुवम् ॥ १९ ॥ आश्विने मासि दर्शान्ते नारीनीराजनं यदि । नारीणां तत्र वैधव्यं प्रजानां मरणं तथा ॥ २० ॥ कार्तिके शुक्लपक्षादौ नारीनीराजनं भवेत् । प्रातर्नीराजनं कार्यं सायं मङ्गलमालिका ॥ २१ ॥ अथचेत्प्रतिपत्स्वल्पा द्वितीयायां यदा भवेत् । द्वितीयायां तदा कार्या सायं मङ्गलमालिका ॥ २२ ॥ नन्दायामुदयेऽभ्यङ्गं कृत्वा नीराजनं ततः । सुवेषः सत्कथागीतैर्दानैश्च दिवसं नयेत् ॥ २३ ॥ रत्नावल्या—कार्तिके शुक्लपक्षादौ विधानद्वितयं हितम् । नारीनीराजनं प्रातः सायं मङ्गलमालिका ॥ २४ ॥ दीपविधानम्—आश्विने कृष्णपक्षे तु द्वादशीमुख्यपञ्चसु । तिथिषूक्तः पूर्वरात्रे नृणां नीराजनाविधिः ॥२५॥ कृताभ्यङ्गमहोत्साहाः कृतमाल्यानुलेपनाः । शुचिवस्त्राः शुभाचाराः करे गृहीतदीपिकाः ॥२६॥ नीराजयेयुर्देवांस्तु विप्रान्गाश्च तुरङ्गमान् । ज्येष्ठाञ्छ्रेष्ठाञ्जघन्यांश्च मातृमुख्याश्च योषितः । राजानं सचिवं चापि राजपुत्रानपि ध्रुवम् ॥ २७ ॥ नीराजनमन्त्रः-दीपोत्सवे महापुण्ये बलिराज्यं प्रवर्तते । भूयाच्छुभकरं नृणां कृतनीराजनान्मया ॥ २८ ॥ विरोचनसुतो धीमान्परमं दैत्यकारणम् । बलिर्भूयात्सुखायात्र सर्वेषां प्राणिनामपि ॥ २९ ॥ सुभिक्षमायुरारोग्यं नित्योद्योगपरा जनाः । भवन्त्विह महोत्साहा रात्रौ नीराजनान्मया ॥ ३० ॥ एवं विधानं कर्तव्यं रात्रौ नीराजनात्मकम् । नित्याभ्यङ्गपरैः पुंभिर्हृष्टैः पुष्टैर्महोत्सवैः ॥ ३१ ॥

श्रीभारते-यो यादृशानुभावेन तिष्ठत्यस्यां युधिष्ठिर । हर्षदैन्यादिरूपेण तद्वद्वर्षं प्रयाति हि ॥३२॥ कार्तिके शुक्लपक्षाद्ये विधानद्वितयं तिथौ। नारीनीराजनं प्रातः सायं मङ्गलमालिका ॥ ३३ ॥ प्रातःसायाह्नयोः कार्यं सपताकं महार्चनम् । पुष्पाणां प्रकरं योषाः कुर्युश्चत्वरभूमिषु ॥ ३४ ॥ दधिदूर्वाक्षतापुष्पप्रकरं चन्दनं तथा । प्रकीर्य सद्मनो द्वारे तोरणैश्च सुसंस्कृते ॥ ३५ ॥ उपचाराञ्छुभाचारान्कुर्याद्बलिदिने सुधीः । मातृष्वसृसुतादिभ्यो देयं वस्त्रादिभूषणम् ॥ ३६ ॥ ब्राह्मणेभ्यो धनं गाश्च गोभ्यश्चैव तृणं जलम्। भक्ष्यं भोज्यं च सर्वेभ्यः प्राणिभ्यो भूतिमिच्छता ॥ ३७ ॥ देयं बहुतरं सम्यग्विष्णुसंतोषकारकम् । द्यूतक्रीडां ततः कुर्याद्ब्राह्मणप्रमुखो जनः ॥ ३८ ॥ कुर्यात्ताम्बूलदानं च मिथः प्रीतिविवर्धनम् । ततो रात्रौ समभ्यर्च्य पुष्पैः शंकरवल्लभाम् । दीपैर्नीराजयेद्गीतैस्तोषयेत्स्मयतो नृपः ॥ ३९ ॥ ततः प्रभाते विमले भगिनी भ्रातृमन्दिरम् । गत्वा निमन्त्रयेद्भ्रातृज्जनकं जननीं तथा । आनीय सकलान्हृष्टाञ्छुभं स्वमन्दिरं प्रति ॥ ४० ॥ अभ्यङ्गं कारयेद्यत्नाच्छुभैर्भोज्यैश्च भोजयेत् । पित्रादिसर्वबन्धुभ्यो दद्याद्वस्त्रादि भूरिशः । तैश्च ताभ्यः प्रदातव्यं वस्त्रालंकारभूषणम्॥ ४१ ॥

## अथ होलिकानिर्णयः ।

भविष्यपुराणे—दुर्वासा उवाच । तपस्ये पौर्णमास्यां तु रजन्यां होलिकोत्सवः । न कर्तव्यो दिवा विष्ट्यां रिक्तायां प्रतिपद्यपि ॥ १ ॥ विद्याविनोदे—नन्दायां मरणं घोरं भद्रायां देशनाशनम् । दुर्भिक्षं च चतुर्दश्यां करोत्येव हुताशनी ॥ २ ॥ नारदः—प्रतिपद्भूतभद्रासु यार्चिता होलिका दिवा । संवत्सरं च तद्राष्ट्रं पुरं हन्ति च साऽद्भुतम् ॥ ३ ॥ प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या पूर्णिमा फाल्गुनी सदा । तस्यां भद्रामुखं त्यक्त्वा पूज्या होला निशामुखे ॥ ४ ॥ होलिकाशान्तिकं कर्म जनारोग्योत्सवाय च । त्यक्त्वा भद्रां निशीथेऽपि ज्वाल्या भद्राऽग्निदाहकृत्॥५॥ प्रदोषव्यापिनी न स्यात्तदा पूर्वदिने भवेत् । भद्रामुखं वर्जयित्वा होलिकायाः प्रदीपनम् ॥ ६ ॥ विद्याविनोदे—यामत्रयोर्ध्वयुक्ता चेत्फाल्गुनी तु भवेत्तिथिः । भद्रामुखं परित्यज्य कार्या होला मनीषिभिः ॥ ७ ॥ कालविवेके—प्रहरद्वयात्परतः फाल्गुनी पूर्णिमा यदि । होलिका तु तदा पूज्या रात्रौ भद्राविशेषतः ॥ ८ ॥ तपस्ये मासि राकायां निशि चन्द्रोदयेऽर्चितः । प्रदक्षिणं प्रकुर्वीत होलिकायाः प्रदीपनम् ॥ ९ ॥ चन्द्रोदये यदा न स्यात्पूर्णिमा

---

१ प. °हृष्टेनभावे° ।

फाल्गुनी तदा। पूर्वेद्युर्मध्यगे चन्द्रे विधेयं होलिकार्चनम् ॥ १० ॥ माधवे— असत्यामपि पूर्णायां वृद्धिले होलिकार्चनम्। क्रियमाणं च नन्दायां शान्तिर्भवति नो क्षये ॥ ११ ॥ फाल्गुने मासि संप्राप्ते शुक्लपक्षे सुखास्पदे। पञ्चमीप्रमुखास्ताः स्युस्तिथयोऽनन्तपुण्यदाः ॥ १२ ॥ दश स्युः शोभनास्तासु काष्ठस्तेयं विधीयते। अपत्यैर्वाऽथ वृद्धैर्वा युवभिर्वा दिनात्यये। प्राप्तायां पूर्णिमायां तु कुर्यात्तत्काष्ठदीपनम् ॥ १३ ॥ चिन्तामणौ–चण्डालसूतिकागेहाच्छिशुहारितवह्निना। भद्रामुखं परित्यज्य होलाया दीपनं शुभम् ॥ १४ ॥ स्नात्वा राजा शुचिर्भूत्वा स्वस्तिवाचनतत्परः। दत्त्वा दानानि भूरीणि दीपयेद्धोलिकाचितिम्। ग्रामाद्बहिश्च मध्ये वा तूर्यनादसमन्वितम् ॥ १५ ॥ तत्र दीपनमन्त्रः— दीपयाम्यद्य ते घोरां चितिं राक्षससत्तमे। हिताय सर्वजगतां प्रीतये पार्वतीपतेः ॥ १६ ॥ ततोऽभ्युक्ष्य चितिं सर्वां साज्येन पयसा सुधीः। गन्धपुष्पैः समभ्यर्च्य कृत्वा चैव प्रदक्षिणम् ॥ १७ ॥ नारिकेलादिदिव्यानि बीजपूरफलानि च। द्राक्षेक्षुकदलादीनि फलानि च समर्पयेत् ॥ १८ ॥ अर्चयित्वाऽक्षतै रक्तैः कुङ्कुमेन सुसंस्कृतैः। गीतैर्वाद्यैस्तथा नित्यै रात्रिः सा नीयते नरैः ॥ १९ ॥ तमग्निं त्रिः परिक्रम्य शब्दैर्लिङ्गभगाङ्कितैः। तेन शब्देन सा पापा राक्षसी क्षयमाप्नुयात् ॥ २० ॥ भूतिवन्दनमन्त्रः—वन्दिताऽसि सुरेन्द्रेण ब्रह्माच्युतशिवादिभिः। अतस्त्वं पाहि मां विघ्नाद्विभूते भूतिदा भव ॥ २१ ॥ सायाह्ने होलिकां कुर्यात्पूर्वाह्णे क्रीडनं गवाम्। दीपं दद्यात्प्रदोषे तु एष धर्मः सनातनः ॥ २२ ॥ द्वितीया च तृतीया च चतुर्थी पञ्चमी तथा। षष्ठी च सप्तमी चैव सेचने तिथयः स्मृताः ॥ २३ ॥ प्रतारणैकनिपुणा हासोत्सवरसेप्सवः। सिन्दूरोद्धूलनं कुर्युरन्यद्रविणसंपदा ॥ २४ ॥ पलाशकुसुमोद्भूतशुभवारिप्रसेचनम्। विधीयते मिथो लोके वसन्तप्रीतये ध्रुवम् ॥ २५ ॥ जलेन वाऽथ तैलेन दध्ना च पयसाऽपि वा। इक्षूणां च रसेनैव वसन्तस्य प्रसेचनम् ॥ २६ ॥ आदौ देवेषु कर्तव्यं ततो विप्रेषु बन्धुषु। कर्तव्यं भूमिपालेन सुखसंभोगवृद्धये ॥ २७ ॥ निर्लज्जा मानरहिता गतेर्ष्या गतसाध्वसाः क्रीडेयुः सकला लोका वसन्तस्योत्सवं प्रति ॥ २८ ॥ निवृत्ते चोरसत्रे तस्मिन्गुरुप्रमुखतो द्विजान्। संपूजयेन्महीपालो वस्त्रालंकारभूषणैः ॥ २९ ॥

इति होलिकानिर्णयः।

---

## अथ नागपञ्चमीविधानम् ।

भविष्योत्तरे—श्रावणे मासि पञ्चम्यां सिते पक्षे विधीयते । विधानं नागदेवानां शीलपद्मयास्ततः परम् ॥ १ ॥ नागास्तु मृन्मया ज्ञेया आलेख्याः कुङ्कुमेन वा । चन्दनेनाथवा लेख्यास्तदभावे हरिद्रया ॥ २ ॥ आलेख्याः सदने स्वेन स्वस्मिन्स्वस्मिन्मनीषिभिः । मृन्मयास्तु विधातव्यास्ते पूज्याः पुरवासिभिः ॥ ३ ॥ कर्तारो नापितास्तेषां यत्रकुत्राऽऽस्पदे शुभे । गङ्गावारिणि सुस्नातैर्द्विजाद्यैः पुरवासिभिः ॥ ४ ॥ संस्नाप्य पयसा पूर्वं मन्त्रैस्तल्लिङ्गकैर्ध्रुवम् । दध्ना वा सर्पिषा चैव मधुना सितया तथा ॥ ५ ॥ ततो गङ्गाजलेनैव ततो गन्धं समर्पयेत् । पूजयेत्कुसुमैर्दिव्यैरपामार्गेण दूर्वया ॥ ६ ॥ बिल्वपत्रैश्च बहुभिर्दशाङ्गेनैव धूपयेत् । दीपैर्नीराजयेत्पश्चान्नैवेद्यं तु समर्पयेत् ॥ ७ ॥ ताम्बूलं क्रमुकैर्युक्तं सकर्पूरं मदान्वितम् । ततश्च प्रार्थयेन्नागान्वासुकिप्रमुखान्नव ॥ ८ ॥ नमामि वासुकिं नागं नौमि तं तक्षकं विभुम् । नमामि शङ्खनागेन्द्रं कुमुदं प्रणमाम्यहम् ॥ ९ ॥ अनन्तं भुजगश्रेष्ठं नौमि कर्कोटकं विभुम् । पद्मं नमामि नागेन्द्रं पुण्डरीकं नमाम्यहम् ॥ १० ॥ नमामि पुलिकं नागं नागलोकनिकेतनम् । इति संप्रणमन्नागान् गृह्णन्नामानि सर्वशः ॥११॥ सर्वश इति नवानाम् । आरोपयन्पवित्राणि वस्त्राणि विविधानि च । ततः प्रदक्षिणीकृत्य व्रजेदायतनं निजम् ॥१२॥ ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्तत्पत्नीश्च यथाविधि । सायंकाले तु भुञ्जीत गृहस्वामी विशेषतः ॥ १३ ॥

## अथ पारणाहनिर्णयः ।

पारणाहे यदा राजन्स्वल्पा चेद्द्वादशी भवेत् । अद्भिस्तु पारणं कुर्यात्पुनर्भुञ्जन्न दोषभाक् ॥ १ ॥ आमध्याह्नानि कर्माणि प्रातरेव विधाय च । स्वल्पायामपि भद्रायां पारयेद्रविदर्शने ॥ २ ॥ त्रयोदशीगतं श्राद्धं द्वादश्यामेव कारयेत् । स्वल्पायामपि तत्प्रातः सर्वं कुर्वन्न दुष्यति ॥ ३ ॥ एतद्वैष्णवविषयम् । अद्भिस्तु पारणं कृत्वा न श्राद्धं कर्तुमर्हति । वैश्वदेवादिकं कर्म श्राद्धात्पश्चाद्यतः स्मृतम् ॥ ४ ॥ वसिष्ठः—एकादशीगतं श्राद्धं कृत्वा शेषान्नमाहरेत् । आघ्रायाशनसिद्धिः स्यादुपवासो न दुष्यति ॥ ५ ॥ एकादश्यां त्रयोदश्यां यच्छ्राद्धं प्रतिवत्सरम् । द्वादश्यां वैष्णवैः कार्यं स्मार्तैरेव मृतेऽहनि ॥ ६ ॥ आनुकूल्येनोपवासं कृत्वा श्राद्धं क्षयेऽहनि । यः कुर्यात्पितरस्तस्मै वरं दद्युर्यथेप्सितम् ॥ ७ ॥

स्सरे हि सदागते ॥ इत्यावाह्य पवनं प्रणम्य क्षणमात्रं तिष्ठेत् । यावत्सूर्यदर्शनं केषांचिन्मत उदयात्षोडश पलानि प्रतीक्षेत् । ततस्तु यद्दिग्विभागाद्वायुरेति तदवलोक्यम् । सुभिक्षं जनमारः स्यात्सुराज्यं धनमूढता । बहुतोयं जयं हर्षं संतोषं तनुते क्रमात् ॥ अन्यच्च—पूर्ववायुर्धनोत्कर्षं वह्निवायुर्जनक्षयम् । दक्षिणः पशुनाशं च नैर्ऋतो धान्यहानिकृत् ॥ पश्चिमो मेघवृद्धिं च वायव्यस्त्वीतिमादिशेत् । उत्तरो धनलाभाय रुद्रवायुर्धनप्रदः ॥ अनयोर्द्वयोर्वचनयोर्मध्ये द्वितीयवचनस्यार्थः प्रायेण घटते । सार्धपौरुषमानेन पताकोच्छ्राय इष्यते । तासां कम्पाद्विजानीयात्फलमेतन्महीपतिः ॥ होमधूमशिखायां च प्रेक्षणीयः प्रभञ्जनः । एवं कृत्वा महीनाथो न कुत्रापि च सीदति ॥

इति गर्गोक्तवायुपरीक्षा ।

---

## अथ वत्सराधिपपूजा ।

यश्चैत्रशुक्लप्रतिपद्दिनवारो नृपो हि सः । तस्य पूजा विधातव्या पताकातोरणादिभिः ॥ १ ॥ प्रतिगृहं ध्वजाकर्म (जोच्छ्रायः) शक्त्या ब्राह्मणतर्पणम् । निरीक्षणं च कर्तव्यं शकुनानां शुभेप्सुभिः ॥ २ ॥ रघुवंशे महाकाव्ये श्रीमद्भागवते तथा । सप्तशत्यां स्तुतौ देव्या उपश्रुतिकृतौ तथा । कर्तव्या शकुनेच्छा च समाफलविशुद्धये ॥ ३ ॥

## अथ दमनकार्पणम् ।

भविष्योत्तरे—चैत्रे मासि सिते पक्षे चतुर्थी नवमी तथा । दशमी द्वादशी चैव तथैव च त्रयोदशी ॥ १ ॥ चतुर्दशी पञ्चदशी श्रेष्ठा दमनकार्पणे । चतुर्थी गणनाथस्य दुर्गाया नवमी तथा ॥ २ ॥ विष्णोस्तु नवमी पुण्या तथैव द्वादशी शुभा । त्रयोदशीश्वरस्यैव श्रेष्ठाऽरण्यनिवासिनः ॥ ३ ॥ भैरवस्यैकवीराया ज्ञेया भूता फलप्रदा । पूर्णिमा सर्वदेवानां पुण्या दमनकार्पणे ॥ ४ ॥ कारुहस्तागतः श्रेष्ठः प्रोक्तो दमनको बुधैः । आनीय मन्दिरं स्नात्वा कृत्वा गन्धादिपूजनम् अर्पयेत्सर्वदेवेभ्यो यथाकालं यथातिथि ॥ ५ ॥ धान्यमावाहनं पूजां तथैव च विसर्जनम् । कृत्वाऽर्पयेद्दमनकं देवेभ्यः सुसमाहितः ॥ ६ ॥ *(द्वादश्यां चैत्रमासस्य शुक्लायां दमनोत्सवः । बौधायनादिभिः प्रोक्तः कर्तव्यः प्रतिवत्सरम् ॥ ७ ॥ पारणाहे न लभ्येत द्वादशी घटिकाऽपि चेत् । तदा त्रयोदशी ग्राह्या

---

* धनुश्चिह्नितमन्थो मपुस्तकस्थः ।

पवित्रदमनार्पणे ॥ ८ ॥ हरौ न दमनारोपः स्यान्मधौ विघ्नतो यदि । वैशाखे श्रावणे वाऽपि तत्तिथौ स्यात्तदर्पणम् ॥ ९ ॥)

इति दमनकार्पणम् ।

---

## अथ पुनर्दहनम् ।

चतुर्दशी तिथिर्नन्दा भद्रा शुक्रारवासरौ । सितेज्ययोरस्तमयं द्व्यङ्घ्रिभं विषमाङ्घ्रिभम् ॥१॥ शुक्लपक्षं च संत्यज्य पुनर्दहनमुत्तमम् । वसूत्तरार्धतः पञ्चनक्षत्रेषु त्रिजन्मसु ॥ २ ॥ पौष्णब्रह्मर्क्षयोः पौनर्दहनात्कुलनाशनम् । दिनोत्तरार्धे तत्कर्तुश्चन्द्रताराबलान्विते ॥ ३ ॥ पापग्रहे बलयुते शुक्रे लग्नांशवर्जिते । पुनर्दाहो मया प्रोक्तः श्राद्धकालमथो ब्रुवे ॥ ४ ॥

## अथ सपिण्ड्यादिश्राद्धप्रकरणम् ।

सपिण्डीकरणं कार्यं वत्सरे वाऽर्धवत्सरे । त्रिमासे वा त्रिपक्षे वा मासि वा द्वादशेऽह्नि वा ॥ १ ॥ एष्वेव कालेष्वेतानि एकोद्दिष्टानि षोडश । कृत्तिकासु च नन्दायां भृगोर्वारे त्रिजन्मसु ॥ २ ॥ पिण्डदानं न कर्तव्यं कुलक्षयकरं यतः । त्रिजन्मसु त्रिपाद्र्क्षेषु नन्दायां भृगुवासरे ॥ ३ ॥ धातृपौष्णभयोः श्राद्धं न कर्तव्यं कुलक्षयात् । सकृन्महालये काम्ये न्यूनश्राद्धेऽखिलेषु च ॥ ४ ॥ अतीतविषये चैवमेतत्सर्वं विचिन्तयेत् । नभस्ये मासि संप्राप्ते कृष्णपक्षे समागते ॥ ५ ॥ तत्र श्राद्धं प्रकुर्वीत सकृद्वा चेदशक्तिमान् । विशिष्टदिवसे कर्तुश्चन्द्रताराबलान्विते ॥ ६ ॥ नन्दाः स्युस्तिथयो निन्द्या भूतानां शस्त्रघातिनाम् । *द्वितीया मध्यमा ज्ञेया तृतीया भरणीयुता* ॥ ७ ॥ पूज्या यदि चतुर्थी वा श्रीप्रदा पितृकर्मणि । आनन्दयोगः पञ्चम्यां याम्यर्क्षस्थे निशाकरे ॥ ८ ॥ भोजयेद्यः पितॄंस्तत्र पुत्रपौत्रधनं भवेत् । यशस्करी सप्तमी स्यादष्टमी भोगदायिनी ॥ ९ ॥ श्राद्धकर्तुश्च नवमी सर्वकामफलप्रदा । सूर्ये कन्यागते चन्द्रे रौद्रनक्षत्रगे यदा । सप्तम्यां वा तथाऽष्टम्यां नवम्यां वा तिथौ युते ॥ १० ॥ योगोऽयं पितृकल्याणः पितॄन्योऽस्मिन्समर्चयेत् । इह संपदमश्नाति पश्चात्स्वर्गमवाप्नुयात् ॥ ११ ॥ दशम्यां पुष्यनक्षत्रे संयोगोऽमृतसंज्ञकः । अर्चयेद्यः पितॄंस्तत्र नित्यतृप्तास्तु तस्य ते ॥ १२ ॥ सर्वसंपत्प्रदा कर्तुर्द्वादशी तिथिरुत्तमा । त्रयोदशीचतुर्दश्योर्हानिर्धनकलत्रयोः ॥ १३ ॥ अनन्तपुण्यफलदा गजच्छाया त्रयोदशी । श्राद्धकर्मण्यमावास्या पक्षश्राद्धफलप्रदा ॥ १४ ॥

## अथ चैत्रशुक्लप्रतिपदि काकपिण्डविधानम् ।

गर्गसंहितायां—फाल्गुने मासि दर्शस्य मध्यरात्रे पुराद्बहिः । धन्वन्तराणां संवीक्ष्य पञ्चाशत्तरुसंनिधौ ॥ १ ॥ भूमिं संशोध्य यत्नेन निखनेत्कुद्दलादिभिः । कण्टकास्थिशरावाणि खण्डकानि बहिः क्षिपेत् ॥ २ ॥ प्रसिञ्चेत्तु ततस्तोयैः सरस्यादिभवैरपि । ततः स मार्जयित्वा च धूपयेद्धूपसंचयैः । आलिप्य चन्दनार्द्रैर्व्यैः पुष्पाणि विकिरेत्ततः ॥ ३ ॥ महाफणिमहाभोगदृढाधारकृतालये । प्रसन्ना भव मातस्त्वं कुरु चाद्य जनप्रियम् ॥ ४ ॥ इत्यनेन मन्त्रेण गन्धपुष्पादि निधाय पृथ्वि त्वया धृता लोकेति प्रातःकालविधिं पठन्पूर्वाभिमुखो निषण्णो वर्तेत । प्रातरेवारुणोदयवेलायां दध्योदनपिण्डपञ्चकं सव्यञ्जनं पूर्वादिक्रमेणोत्तरपर्यन्तं निदध्यात् । दधिक्राव्णो अकारिषमिति स्तोकं दधि पिण्डोपरि निधापयेत् । ततो दिक्क्रमेणेन्द्रयमवरुणकुबेरेभ्यश्चतुरः पिण्डांस्तल्लिङ्गकैर्मन्त्रैश्चतुर्थ्या समर्पयेत् । नमोन्तमुच्चार्य ततश्च पञ्चमं पिण्डं ब्रह्मणे समर्पयेत् । ततस्तां सपिण्डभूमिं प्रणिपत्य धन्वन्तरसप्तकं भूम्यन्तरं संव्रजेत् । तदनन्तरं काकागमनं निरीक्षेत् । यस्माद्दिग्विभागादागच्छति वायसः कंचित्पिण्डं गृह्णाति साशङ्कं निःशङ्कं वा निर्भयः सन्निति तदवलोकनीयम् । शब्दायमानो वा मौनी ग्रासमात्रं परिगृह्यान्यं काकं पश्यति किंवा न पश्यति यां यां चेष्टां कुरुते तदनुरूपं फलमादिशेत् । तच्चाऽऽह—यतो दिग्विभागादागच्छति तस्मिन्दिग्विभागे दुर्भिक्षं सूचयति । यद्दिग्देशस्थं पिण्डमश्नाति तस्मिन्देशे सुभिक्षं सूचयति । अन्यान्समाहूय तैः सह पिण्डमश्नाति तदाऽत्यन्तं सुभिक्षं सूचयति । मौनेनात्ति तदा सुभिक्षे सति पुनर्दस्युभयमादिशति । साशङ्कं समश्नाति तदा तस्मिन्नेव देशे सुभिक्षं सूचयति स्थाने स्थाने च दुर्भिक्षमादिशति । अपरेण गृहीतमन्नं बलादाहृत्य भक्षयति तदा राजभयमादिशति । तेष्वेव काकेषु विशेषोऽस्ति । शुभ्रकण्ठः काको ब्राह्मणस्तस्य फलं त्रिभिर्मासैः । मयूरपिच्छवर्णाभकण्ठः क्षत्रियस्तस्य फलं षड्भिर्मासैः । शिखाकारं मस्तकं यस्य स वैश्यस्तत्फलं नवभिर्मासैरादेष्टव्यम् । कृष्णकण्ठः काकः शूद्रस्तस्य फलं वर्षेण भवति । पञ्चानां पिण्डानां मध्ये ब्रह्मस्थानगतं पिण्डं गृह्णाति तदा सर्वदेशे सुभिक्षं जायते । यस्य वर्णस्य काको मध्यपिण्डं गृह्णाति तस्यैव वर्णस्य क्षेमं विदधाति । पिण्डं गृहीत्वा यां दिशं गच्छति स्वमाससंख्यया महर्घं विदधाति । तद्दोषशमनाय तत्काल एवं विधानं कार्यम् । पायसं शर्करापूपकारिकाः क्षीरपट्टिकाः । एवमादीनि चान्नानि निक्षिपेत्काकभुक्तये ॥५॥ आदिशब्देन

घृतमांसम् । उद्दिष्टं च पिण्डमात्रं न गृह्णाति तदा सर्वदेशे जनमारं दिशति । तदा सर्वैरन्नैर्नरमूर्तिं कृत्वा काकेभ्यो भूतेभ्यः श्वभ्यश्च दद्यात् । श्वचाण्डालपतितभूतवायसग्रहराक्षसभैरववेतालपिशाचेभ्यो बलिं विदधे, इति तत्र मन्त्रः । एवं कृते विधाने च विघ्ना नश्यन्ति तत्क्षणात् । नन्दते जगतीलोको नात्र कार्या विचारणा ॥ ६ ॥

## अथावटधान्यनिक्षेपविधानम् ।

फाल्गुनस्यामावास्यायां दिनात्यये ग्रामात्पूर्वोत्तरे समस्थले भूमिशुद्धिं विधाय वर्तमानधान्यसंख्ययाऽवटान्कृत्वा तेष्ववटेषु गोमयेन संमार्जनं कृत्वा गन्धपुष्पादिकानुपचारान्विदध्यात् । एकस्मिन्नेकस्मिन्नवटे शतं कणान्निक्षिपेत् । द्वादशद्वादशैकैकस्य धान्यस्य कर्तव्याः । एकद्वित्रिचतुरङ्गुलं वाऽवटान्तरं कार्यमेवं धान्यमिता अवटपङ्क्तयो भवन्ति । ततः कोणेषु निक्षिप्तेषु मासादिदेवताः षोडशोपचारैरुपचार्याः । ततश्चार्द्रार्कपत्रैरवटमुखान्याच्छाद्य प्रदक्षिणं कृत्वा गृहान्गच्छेत् । पश्चात्प्रातःकाल उत्थाय कृतस्नानादिकः समागत्य पुनस्तेषामवटानामर्चनं कृत्वाऽर्कपत्राणि निःसारयेत् । ततोऽवटगर्भानवलोकयेत् । तत्र धान्यकणानां न्यूनाधिक्यं यस्मिन्यस्मिन्मासावटे दृश्यते तस्मिन्तस्मिन्मासि तस्य-तस्य धान्यस्य न्यूनाधिकता ज्ञातव्या । यस्मिन्मासि यस्य धान्यस्य न्यूनता भवति तस्य मासस्याधिदेवताप्रीतये ब्राह्मणतर्पणं कुर्यात् । एकस्य कस्यचिद्ब्राह्मणस्य द्वारदेशे शक्त्या धान्यराशिं दद्यात् । तस्याप्यभावे स्वेस्वे द्वारदेशे देहलीसमीप उभयतः सर्वधान्यपूजां कृत्वा मासपर्यन्तं समागतेभ्यो भिक्षुकेभ्यः स्तोकं स्तोकं देयम् । एवं कृते विधाने च विघ्नः कोऽपि न जायते ॥

इत्यवटधान्यनिक्षेपविधानम् ।

---

## अथ चैत्रशुद्धप्रतिपदि वायुपरीक्षा ।

चैत्रे मासि ग्रामाद्बहिः पूर्वपश्चिमे वा दक्षिणोत्तरे वा समस्थले देशे संमार्जनं कृत्वा तस्य संमार्जितस्य मण्डलस्य चतुर्दिक्षु चतस्रः पताकाः समुच्छ्रिताः कार्याः । तासां मध्ये स्थण्डिलं कृत्वाऽग्निमुखपुरःसरं गणपतिदुर्गाक्षेत्राधिपतिपूर्वकमष्टलोकपालप्रीतये साज्येन पायसेन हवनं कुर्यान्मन्त्रैस्तल्लिङ्गकैः प्रत्येकमष्टोत्तरशतं तथैव स्विष्टकृतम् । ततो हवने कृते वायुप्रार्थनं कुर्यात् । तत्र प्रार्थनामन्त्रः—एह्यात्मन्सर्वभूतानां कुरङ्गपतिवाहन । समादिश फलं चास्मिन्व-

*( अमावास्याव्यतीपातपौर्णमास्यष्टकासु च । विद्वाञ्छ्राद्धमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ॥१५॥ विभक्ता वाऽविभक्ता वा कुर्युः श्राद्धं पृथक्सुताः । मघासु च ततोऽन्यत्र नाधिकारः पृथग्विना ॥१६॥ संग्रहे–जातमात्रोऽपि दौहित्रो विद्यमानेऽपि मातुले। कुर्यान्मातामहश्राद्धं प्रतिपद्याश्विने सिते ॥१७॥) दस्रद्वये पुष्यचतुष्टये च हस्तत्रये मैत्रचतुष्टये च । सौम्यद्वये च श्रवणत्रये च श्राद्धप्रदाता धनपुत्रवान्स्यात् ॥ १८ ॥

इति सपिण्ड्यादिश्राद्धप्रकरणम् ।

इति शूरमहाठश्रीशिवराजविनिर्मिते । ज्योतिर्निबन्धसर्वस्वे तिथ्यादीनां विनिर्णयः ॥ १ ॥ ज्योतिर्निबन्धे न्यूनं यद्व्यस्तं च कथितं पुनः । पूरितं तद्यथास्थाने व्यस्तं त्यक्तं च विष्णुना ॥ २ ॥ जातकं स्वरशास्त्रं च प्रश्नाख्यानं यथा तथा । लिखितं ग्रन्थविस्ता(स्त)रभयेनाज्ञानतो न हि ॥ ३ ॥

इति ज्योतिर्निबन्धः संपूर्णः ।

श्रीशिवार्पणमस्तु ।

शुभं भवतु ।



* धनुश्चिह्नितग्रन्थो ग. पुस्तके ।